ॐ

परमात्मने नमः

श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय, पुष्प नं.

अष्टपाहुड़ प्रवचन

भाग-६

परम पूज्य श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा रचित परमागम श्री अष्टपाहुड़ (मोक्षपाहुड़, गाथा १-१०६) पर परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाहिक शब्दशः प्रवचन

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

: सह-प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

प्रथमावृत्ति :

प्रकाशनतिथि : पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के 41वें समाधिदिवस की स्मृति में

ISBN No. :

न्यौछावर राशि : 20 रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,**
   सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250, फोन : 02846–244334
2. **श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई–400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
3. **श्री आदिनाथ–कुन्दकुन्द–कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़–आगरा मार्ग, सासनी–204216 (उ.प्र.)
4. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**
   ए–4, बापूनगर, जयपुर, राजस्थान–302015, फोन : (0141) 2707458
5. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली–422401, फोन : (0253) 2491044
6. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
7. **श्री सीमन्धर–कुन्दकुन्द–कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट**
   योगी निकेतन प्लाट, 'स्वरुचि' सवाणी होलनी शेरीमां, निर्मला कोन्वेन्ट रोड
   राजकोट–360007 फोन : (0281) 2477728, मो. 09374100508

टाईप–सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक :

प्रकाशकीय

शासननायक अन्तिम तीर्थंकर देवाधिदेव श्री महावीर परमात्मा का वर्तमान शासन प्रवर्त रहा है। आपश्री की दिव्यध्वनि द्वारा प्रकाशित मोक्षमार्ग, परम्परा हुए अनेक आचार्य भगवन्तों द्वारा आज भी विद्यमान है। श्री गौतम गणधर के बाद अनेक आचार्य हुए, उनमें श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव का स्थान श्री महावीरस्वामी, श्री गौतम गणधर के पश्चात् तीसरे स्थान पर आता है, यह जगत विदित है।

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य विक्रम संवत् ४९ के लगभग हुए हैं। आपश्री ने स्वयं की ऋद्धि द्वारा वर्तमान विदेहक्षेत्र में प्रत्यक्ष विराजमान श्री सीमन्धर भगवान के समवसरण में आठ दिन रहकर दिव्यदेशना ग्रहण की है, वहाँ से आकर उन्होंने अनेक महान परमागमों की रचना की। उनमें अष्टप्राभृत ग्रन्थ का भी समावेश होता है। आचार्य भगवन्त की पवित्र परिणति के दर्शन उनकी प्रत्येक कृतियों में होते हैं। भव्य जीवों के प्रति निष्कारण करुणा करके उन्होंने मोक्षमार्ग का अन्तर–बाह्यस्वरूप स्पष्ट किया है। आचार्य भगवन्त ने मोक्षमार्ग को टिका रखा है, यह कथन वस्तुत: सत्य प्रतीत होता है।

चतुर्थ गुणस्थान से चौदह गुणस्थानपर्यन्त अन्तरंग मोक्षमार्ग के साथ भूमिकानुसार वर्तते विकल्प की मर्यादा कैसी और कितनी होती है वह आपश्री ने स्पष्ट किया है। इस प्रकार निश्चय व्यवहार मोक्षमार्ग का स्वरूप स्पष्ट करके अनेक प्रकार के विपरीत अभिप्रायों में से मुमुक्षु जीवों को उभारा है। अष्टप्राभृत ग्रन्थ में मुख्यरूप से निर्ग्रन्थ मुनिदशा कैसी होती है और साथ में कितनी मर्यादा में उस गुणस्थान में विकल्प की स्थिति होती है, यह स्पष्ट किया है।

वर्तमान दिगम्बर साहित्य तो था ही परन्तु साहित्य में निहित मोक्षमार्ग का स्वरूप यदि इस काल में किसी दिव्यशक्ति धारक महापुरुष ने प्रकाशित किया हो तो वे हैं परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी। पूज्य गुरुदेवश्री ने शास्त्रों में निहित मोक्षमार्ग को स्वयं की दिव्य श्रुतलब्धि द्वारा समाज में निर्भीकता से उद्घाटित किया है। शास्त्र में मोक्षमार्ग का रहस्य तो प्ररूपित था ही परन्तु इस काल के अचम्भा समान पूज्य गुरुदेवश्री की अतिशय भगवती प्रज्ञा ने उस रहस्य को

स्पष्ट किया है। पूज्य गुरुदेवश्री का असीम उपकार आज तो गाया ही जाता है किन्तु पंचम काल के अन्त तक गाया जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा अनेक परमागमों पर विस्तृत प्रवचन हुए हैं। उनमें अष्टपाहुड़ का भी समावेश होता है। प्रस्तुत प्रवचन शब्दश: प्रकाशित हों, ऐसी भावना मुमुक्षु समाज में से व्यक्त होने से श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विले पार्ला, मुम्बई द्वारा इन प्रवचनों का अक्षरश: प्रकाशित करना सहर्ष स्वीकार किया गया तद्नुसार ये प्रवचन लगभग सात भाग में प्रकाशित होंगे। इस छठवें भाग में **मोक्षपाहुड़** की 1 से 106 गाथाओं के प्रवचनों का समावेश है।

मोक्षपाहुड़ में आत्मा की अनन्त सुखस्वरूप मोक्षदशा और उसकी प्राप्ति के उपाय का वर्णन किया गया है। अधिकार के प्रारम्भ में आत्मा के बहिरात्मा, अन्तरात्मा तथा परमात्मा—इन तीन भेदों का निरूपण करते हुए आचार्य महाराज कहते हैं कि बहिरात्मपना हेय है, अन्तरात्मपना उपादेय है और परमात्मपना परम उपादेय है। तदुपरान्त मुनिधर्म का भी विस्तृत वर्णन करके श्रावकधर्म की चर्चा करते हुए सर्व प्रथम निर्मल सम्यग्दर्शन को धारण करने की प्रेरणा देते हैं। जिन्होंने सर्वसिद्धि दातार सम्यक्त्व को स्वप्न में भी मलिन नहीं किया, वे ही धन्य हैं, वे ही कृतार्थ हैं, वे ही शूरवीर हैं और वे ही पण्डित हैं। अन्ततः मोक्षपाहुड़ का उपसंहार करते हुए आचार्य भगवान कहते हैं कि निज शुद्धात्मा ही सर्वोत्तम पदार्थ है, जो इस देह में ही रहता है। अरिहन्त आदि पंच परमेष्ठी निजात्मा में ही लीन हैं और सम्यग्दर्शन, ज्ञान तथा चारित्र इसी आत्मा की दशाएँ हैं, इसलिए मुझे तो एक आत्मा की ही शरण है।

उपरोक्त विषयों की सम्पूर्ण छनावट पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक पहलुओं से प्रस्तुत प्रवचनों में की है। आचार्य भगवान के हृदय में प्रविष्ट होकर उनके भावों को खोलने की अलौकिक सामर्थ्य के दर्शन पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों में होते हैं। सम्यक्त्वसहित चारित्र का स्वरूप कैसा होता है, इसका विशद वर्णन प्रस्तुत प्रवचनों में हुआ है।

इन प्रवचनों को सी.डी. में से सुनकर गुजराती भाषा में शब्दश: तैयार करने का कार्य नीलेशभाई जैन, भावनगर द्वारा किया गया है, तत्पश्चात् इन प्रवचनों को श्री चेतनभाई मेहता, राजकोट द्वारा जाँचा गया है। बहुत प्रवचन बैटरीवाले होने से जहाँ आवाज बराबर सुनायी नहीं दी, वहाँ .... करके छोड़ दिया गया है। वाक्य रचना पूर्ण करने के लिये कोष्ठक का भी प्रयोग किया गया है।

हिन्दी भाषी मुमुक्षु समाज में भी इन प्रवचनों का व्यापक प्रचार-प्रसार हो इस भावना से इन प्रवचनों का हिन्दी रूपान्तरण एवं सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राजस्थान) ने किया है। तदर्थ संस्था सभी सहयोगियों का सहृदय आभार व्यक्त करती है।

ग्रन्थ के मूल अंश को बोल्ड टाईप में दिया गया है।

प्रवचनों को पुस्तकारूढ़ करने में जागृतिपूर्वक सावधानी रखी गयी तथापि कहीं क्षति रह गयी हो तो पाठकवर्ग से प्रार्थना है कि वे हमें अवश्य सूचित करें। जिनवाणी का कार्य अति गम्भीर है, इसलिए कहीं प्रमादवश क्षति रह गयी हो तो देव-गुरु-शास्त्र की विनम्रतापूर्वक क्षमायाचना करते हैं। पूज्य गुरुदेवश्री के चरणों में तथा प्रशममूर्ति भगवती माता के चरणों में कोटि-कोटि वन्दन समर्पित करते हुए भावना भाते हैं कि आपश्री की दिव्यदेशना जयवन्त वर्तो.. जयवन्त वर्तो..

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ www.vitragvani.com पर रखा गया है।

अन्ततः प्रस्तुत प्रवचनों के स्वाध्याय द्वारा मुमुक्षु जीव आत्महित की साधना करें इसी भावना के साथ विराम लेते हैं।

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

एवं

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के हार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक – इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी

सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और

न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन क्रमांक	दिनांक	गाथा	पृष्ठ नम्बर
६१	१३-०८-१९७०	१	००१
६२	१४-०८-१९७०	२	०१८
६३	१५-०८-१९७०	३ से ५	०३७
६४	१६-०८-१९७०	५ - ६	०५४
६५	१९-०८-१९७०	७ से ९	०७०
६६	२०-०८-१९७०	१० से १३	०९०
६७	२१-०८-१९७०	१३ से १६	११०
६८	२२-०८-१९७०	१६ से १८	१२९
६९	२३-०८-१९७०	१९ से २१	१४८
७०	२४-०८-१९७०	२२ से २४	१६५
७१	२६-०८-१९७०	२५ - २६	१८२
७२	२७-०८-१९७०	२६ से २८	२०१
७३	१३-१२-१९७०	२९ - ३०	२२३
७४	२९-०८-१९७०	३१ से ३३	२३८
७५	३०-०८-१९७०	३४ से ३७	२५८
७६	३१-०८-१९७०	३७ से ३९	२७८
७७	०१-०९-१९७०	३९ से ४१	२९७
७८	०२-०९-१९७०	४१ से ४३	३१६
७९	०३-०९-१९७०	४४	३३६
८०	०४-०९-१९७०	४५ से ४७	३५४
८१	०७-०९-१९७०	४८ से ५१	३७४
८२	०८-०९-१९७०	५१ से ५३	३९०
१३३	२१-०३-१९७४	५३ से ५५	४०८
८४	१०-०९-१९७०	५५ - ५६	४२४
८५	११-०९-१९७०	५७ से ६०	४४३

८६	१२–०९–१९७०	६१ – ६२	४६४
८७	१३–०९–१९७०	६३ से ६५	४८५
८८	१४–०९–१९७०	६५ से ६९	५०५
१३८	२९–०४–१९७४	७० से ७३	५२७
९०	१७–०९–१९७०	७३ से ७५	५४०
९१	१८–०९–१९७०	७६ से ७९	५६०
९२	१९–०९–१९७०	७९ से ८२	५८२
९३	२०–०९–१९७०	८२ – ८३	६०३
९४	२१–०९–१९७०	८४ से ८६	६१९
९५	२३–०९–१९७०	८७ से ८९	६३९
९६	२४–०९–१९७०	९० से ९२	६६१
९७	२५–०९–१९७०	९३ से ९७	६८४
९८	२६–०९–१९७०	९७ से १००	७०६
९९	२७–०९–१९७०	१०१ से १०३	७३०
१००	२८–०९–१९७०	१०४ – १०५	७५१
१०१	२९–०९–१९७०	१०६	७७८
१०२	०१–१०–१९७०	१०६	७९६
१५५	२४–०५–१९७४	१०६	८१५

ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

अष्टपाहुड़ प्रवचन

(श्रीमद् भगवत कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री अष्टपाहुड़ ग्रन्थ पर
अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचन)

(भाग – ६)

अथ मोक्षपाहुड़

ॐ नमः सिद्धेभ्यः।

अथ मोक्षपाहुड की वचनिका लिख्यते।

प्रथम ही मंगल के लिये सिद्धों को नमस्कार करते हैं –

(दोहा)

अष्ट कर्म को नाश करि, शुद्ध अष्ट गुण पाय।
भये सिद्ध निज ध्यानतैं, नमूं मोक्षसुखदाय।।१।।

इस प्रकार मंगल के लिए सिद्धों को नमस्कार कर श्रीकुन्दकुन्द आचार्यकृत 'मोक्षपाहुड' ग्रन्थ प्राकृत गाथाबन्ध है, उसकी देशभाषामय वचनिका लिखते हैं। प्रथम ही आचार्य मंगल के लिए परमात्मा को नमस्कार करते हैं –

गाथा–१

णाणमयं अप्पाणं उवलद्धं जेण झडियकम्मेण।
चइऊण य परदव्वं णमो णमो तस्स देवस्स।।१।।

ज्ञानमय आत्मा उपलब्धः येन क्षरितकर्मणा।
त्यक्त्वा च परद्रव्यं नमो नमस्तस्मै देवाय।।१।।

परद्रव्य को तज कर्म-क्षय से ज्ञानमय निज आतमा।
को प्राप्त हैं जो उन प्रभु को बार-बार नमन सदा।।१।।

अर्थ **– आचार्य कहते हैं कि जिसने परद्रव्य को छोड़कर के द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म खिरा दिये हैं, ऐसे होकर निर्मल ज्ञानमयी आत्मा को प्राप्त कर लिया है, इस प्रकार के देव को हमारा नमस्कार हो-नमस्कार हो। दो बार कहने में अतिप्रीतियुक्त भाव बताये हैं।**

भावार्थ **– यह 'मोक्षपाहुड' का प्रारम्भ है। यहाँ जिनने समस्त परद्रव्य को छोड़कर कर्म का अभाव करके केवलज्ञानानन्दस्वरूप मोक्षपद को प्राप्त कर लिया है, उस देव को मंगल के लिए नमस्कार किया – यह युक्त है। जहाँ जैसा प्रकरण वहाँ वैसी योग्यता। यहाँ भाव-मोक्ष तो अरहन्त के हैं और द्रव्य-भाव दोनों प्रकार के मोक्ष सिद्ध परमेष्ठी के हैं, इसलिए दोनों को नमस्कार जानो।।१।।**

प्रवचन-६१, गाथा-१, गुरुवार, श्रावण शुक्ल १०, दिनांक १३-०८-१९७०

मोक्ष का क्या स्वरूप है और मोक्ष किस मार्ग से मिलता है, दोनों का इसमें अधिकार है। मोक्षमार्ग और मोक्ष क्या है, मोक्षमार्ग किसको कहते हैं और मोक्ष किसको कहते हैं, उसका यहाँ स्वरूप है। बोधपाहुड़ में थोड़ा अरिहन्त का स्वरूप था, जानने का...

ॐ नमः सिद्धेभ्यः। मोक्षप्राभृत की शुरुआत करते हैं न! मांगलिक किया। ॐ पंच परमेष्ठी वाचक शब्द है, ॐ। इसलिए पंच परमेष्ठी को नमस्कार कर और सिद्धेभ्यः-सिद्ध को भी नमस्कार करता हूँ। **अथ मोक्षपाहुड की वचनिका लिख्यते। प्रथम ही मंगल के लिये सिद्धों को नमस्कार करते हैं।** पण्डित जयचन्द्र अर्थकार-वचनिकाकार प्रथम सिद्ध को नमस्कार करते हैं। देखो! क्या है? पुस्तक है या नहीं?....

अष्ट कर्म को नाश करि, शुद्ध अष्ट गुण पाय।
भये सिद्ध निज ध्यानतैं, नमूं मोक्षसुखदाय।।१।।

एक कड़ी में दोनों समा दिये। मोक्ष का मार्ग और मोक्ष। कैसे? '**अष्ट कर्म को नाश करि**', वह भी व्यवहारवचन है। अष्ट कर्म का नाश होता है, अपने शुद्ध द्रव्य के आश्रय से जब शुद्धता प्रगट होती है तो कर्म उसके कारण से नाश हो जाते हैं। ऐसा व्यवहार का वचन है। '**अष्ट कर्म को नाश करि**', एक ओर कहे कि विकार का नाश करनेवाला आत्मा नहीं। समयसार। परमार्थ से विकार का नाश करनेवाला भी आत्मा नहीं। क्योंकि नाश करना, वह आत्मा में स्वभाव नहीं है। वह स्वभाव का आश्रय करता है तो अशुद्धता नाश होती है और उस अशुद्धता के नाश में कर्म का उसके कारण नाश हो जाता है। तो वह शब्द व्यवहार से कहने में आता है।

'**अष्ट कर्म को नाश करि, शुद्ध अष्ट गुण पाय।**' आठ गुण। लो। यहाँ तो गुण शब्द कहा। वह तो पर्याय है। पर्याय को गुण कहने में आता है। क्योंकि जो अपना गुण शुद्ध है, उसकी पर्याय राग-द्वेष और अज्ञान में थी तो वह अवगुण था। और अवगुण का नाश होकर अपने शुद्ध चैतन्य के आश्रय से वीतरागी निर्मल पर्याय प्रगट हुई, उसको यहाँ अवगुण के नाश की अपेक्षा गुण कहने में आया है। है तो वह पर्याय। समझ में आया? आठ गुण, वह कोई गुण नहीं है। समझ में आया? '**शुद्ध अष्ट गुण पाय।**' व्यवहार से आठ पर्याय। बाकी तो अनन्त गुण की पर्याय सिद्ध भगवान को पूर्ण शुद्ध हो गयी है। उसे परमात्मा प्राप्त हुए हैं। उसको यहाँ स्मरण करके नमस्कार किया है।

'**भये सिद्ध निज ध्यानतैं,**' उसमें यह एक मोक्षमार्ग ले लिया। कैसे मोक्ष हुआ? सिद्ध परमात्मा कैसे हुए? कि भये—'हुए सिद्ध निज ध्यान से'। व्याख्या है या नहीं? अपना ज्ञायकभाव पूर्णानन्दस्वभाव, अपना निज स्वभाव, उसका ध्यान। निज अर्थात् द्रव्य त्रिकाली। उसका ध्यान अर्थात् वर्तमान पर्याय स्वभाव के आश्रय से उत्पन्न हो, उससे मुक्ति होती है। समझ में आया? पर के आश्रय से (मोक्षमार्ग उत्पन्न होता नहीं)।

मुमुक्षु : परन्तु उसका साधन तो व्यवहार है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : साधन ही यह है, दूसरा साधन नहीं है। व्यवहार-फ्यवहार साधन कैसा? व्यवहार साधन निश्चय का, सब कहने में आता है। व्यवहार से है नहीं।

निज ध्यान से सिद्ध हुए। लो! अपना स्वरूप राग और व्यवहार की अपेक्षा छोड़कर

निज अर्थात् परमात्मा स्वरूप जो शक्तिरूप परमात्मा है, अपना स्वाभाविक रूप... वह दोपहर को चलता है, ध्रुव स्वभाव जो परमात्मा निज स्वरूप है, उसका ध्यान। पर परमात्मा का ध्यान नहीं। परमेष्ठी का भी ध्यान नहीं। क्योंकि वह परद्रव्य है। परद्रव्य का लक्ष्य करेगा तो राग उत्पन्न होता है। उसमें मोक्षमार्ग उत्पन्न होता नहीं। आहाहा! यह मार्ग है, देखो! यह तो पण्डित जयचन्द्र नमस्कार करते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य तो बाद में करेंगे।

'**भये सिद्ध निज ध्यानतैं,**' निज शब्द लिया है अर्थात् अपना निज स्वरूप आनन्द, उसमें जिसकी लगनी लगी है। समझ में आया? ये लगन कहते हैं न? किसकी शादी है? ये शादी करते हैं। समझ में आया? अपना निज शुद्ध ध्रुव परमानन्द मूर्ति, ऐसा त्रिकाल ज्ञायकभाव वह निज, उसका ध्यान। उसका ध्यान। परद्रव्य का नहीं, राग का नहीं, एक समय की पर्याय का ध्यान नहीं। समझ में आया? उसका नाम मोक्षमार्ग है। इतने में मोक्ष का मार्ग समा दिया। बहुत संक्षेप में। '**भये सिद्ध निज ध्यानतैं**' निज ध्यान से। अपना सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वह निज स्वरूप का ध्यान है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह तीन वीतरागी पर्याय, वह ध्यान की पर्याय है। किसका (ध्यान)? निज द्रव्य का। समझ में आया? यह तो कुन्दकुन्दाचार्यदेव का मक्खन कथन है। उसमें कोई व्यवहार-फ्यवहार, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा या पंच महाव्रत का विकल्प, वह मोक्षमार्ग नहीं। समझ में आया?

स्वद्रव्य आश्रय निश्चय और परद्रव्य आश्रय व्यवहार। जितना भगवान आत्मा, अपना निज स्वभाव में लीन-एकाग्र होता है, वही निज ध्यान से आत्मा को सिद्धपद की मुक्ति की प्राप्ति होती है। समझ में आया? '**नमूं...**' ऐसे ध्यान से जो सिद्धपद पाया, अब मुक्त को नमस्कार करते हैं। तीसरे पद में मोक्ष का मार्ग बताया। '**नमूं मोक्षसुखदाय।**' ऐसे सिद्धपद की पर्याय को मैं नमस्कार करता हूँ। अपना निजस्वरूप से अनन्त सिद्ध जो हुए, भूतकाल में अनन्त परमात्मा हुए, वह सब निज ध्यान से हुए हैं। अपना निजानन्द प्रभु, उसमें लगनी लगाकर धुन चढ़ती थी, धुन ध्येय में। ध्रुव में ध्यान की धुन चढ़ती है अन्दर। ध्रुव के ध्येय से ध्यान की धुन चढ़ती है। लो, वह चार आये।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह मोक्ष कहते हैं।

ध्रुव त्रिकाली ज्ञायक भगवान को ध्येय बनाकर, ध्रुव के ध्येय के ध्यान की धुन, वह मोक्ष का मार्ग है, उससे मोक्ष मिलता है। बाकी सब बातें हैं। ऐसे व्रत किये, तप किया। वह बाहर में सब तो विकल्प है, वह सब बन्ध का मार्ग है। बन्ध का मार्ग क्या मुक्ति का मार्ग होगा? समझ में आया? बन्ध का मार्ग है, वह क्या मुक्ति का मार्ग होगा? बन्ध तो बन्ध ही है।

भगवान आत्मा... आया था न? सर्वविशुद्ध पारिणामिकपरमभावग्राहक शुद्ध उपादानभूत शुद्ध द्रव्यार्थिक से जीव... वह जीव। समझ में आया? ऐसी डिग्रीवाला। ठीक कहा। भगवान आत्मा त्रिकाल शुद्ध विशुद्ध पारिणामिकपरमस्वभावभाव, परिणामिक सहज परमभाव परमभाव को जाननेवाला द्रव्यार्थिकनय कैसा? शुद्ध उपादानभूत वह तो त्रिकाल चीज़ है। शुद्ध उपादानभूत है त्रिकाली। उसको शुद्ध द्रव्यार्थिकनय जीव उसको कहता है। उसको जीव कहते हैं। आहाहा! वह नय का ध्येय। पर्याय का... पर्याय में ... समझ में आया? नय है न? तो नय में तो अंश आता है। अंश आया कैसा? त्रिकाली ध्रुव अंश आया। एक समय का पर्याय का अंशवाला नय में चला गया। समझ में आया? उसमें भी एक अंश आया है। द्रव्यार्थिकनय है न?

मुमुक्षु : अंशी का क्या हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अंशी क्या? दो मिलकर पूरा अंशी। प्रमाण का विषय। परन्तू मूल चीज़ जो है द्रव्यार्थिकनय का विषय वह एक अंश पूरा अंश-पूरा ध्रुव है। नय है न। नय तो एक अंश में आता है। भले ही पूरे ध्रुव को पकड़ा। परन्तु वह है एक अंश। पर्यायनय का एक अंश रह गया। उसको गौण करके त्रिकाली ज्ञायकभाव को मुख्य करके उसको जीव कहने में आया है। समझ में आया? यह तो वीतराग सर्वज्ञ से सिद्ध हुआ—साबित हुआ अनादि का मार्ग है। वह कोई नया नहीं है।

मुमुक्षु : नय में प्रमाण कहाँ आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रमाण का अर्थ क्या? पर्याय को मिलाना, वह प्रमाण। परन्तु प्रमाण का पूज्यपना नहीं है। आहाहा! वह जैनतत्त्व मीमांसा में आया है। प्रमाण में दो अंश

आये तो वह पूज्य नहीं हुआ। उसको नयचक्र में लेते हैं। क्योंकि उसमें व्यवहार का निषेध नहीं आता। समझ में आया? है न जैनतत्त्व मीमांसा? नहीं है? उसमें है। नयचक्र में से पूरा भाग दिया था। प्रमाण, वह त्रिकाली ध्रुव और एक समय की पर्याय (दोनों को विषय करता है)। यहाँ होगा, भाई को मालूम होगा। कहाँ गये चन्दुभाई! समझ में आया? क्या कहा?

भगवान आत्मा, एक समय की पर्याय को गौण करके, अभाव करके नहीं। समझ में आया? क्योंकि वह अभूतार्थ है। वास्तव में एक समय की पर्याय व्यवहार का विषय है और व्यवहार है, वह अभूतार्थ है; त्रिकाल सत्यार्थ नहीं। त्रिकाल सत्यार्थ नहीं। व्यवहार की अपेक्षा से व्यवहार, व्यवहार सत्यार्थ है। समझ में आया? ऐसा वीतराग का मार्ग है, भाई! थोड़ा दिमाग को-ज्ञान को तैयार करना पड़ेगा। समझ में आया? ज्ञानमय अन्दर वस्तु... ये कोई बाहर की प्रवृत्ति ... का मार्ग नहीं है। समझ में आया? ... एक लड़का है न, भाई! दिलीप। लड़का है न? कलकत्ता। हमारे जयन्तीभाई आये थे, गये। जयन्तीभाई है? गये। उसका लड़का। उसके पिताजी ने लड़के को पूछा, बारहवाँ वर्ष चलता है, ग्यारह वर्ष पूरे हुए। गृहस्थ लोग है, लाखोंपति है। हुण्डी का धन्धा है, ब्याज का। उसके पिताजी निवृत्त होकर यहाँ रहते हैं। उसको पिताजी ने पूछा, अरे! दिलीप, महाराज कहते हैं कि मुनि जंगल में बसते हैं। मुनि तो जंगल में बसते हैं तो उन्हें कैसे अच्छा लगता होगा? गोठने को क्या कहते हैं? कैसे अच्छा लगता होगा? सुहाता होगा। सुहाता होगा बराबर है। कैसे सुहाता होगा? ऐसा उसके पिताजी ने (पूछा)। वैसे तो उन्होंने ऐसा पूछा, केम गोठतुं हशे? हमारी काठियावाड़ी भाषा है न। काठियावाड़ी भाषा में पूछा, भाई! महाराज कहते हैं कि मुनि तो जंगल में रहते हैं। वहाँ उनको कैसे सुहाता होगा? ऐसा प्रश्न किया। आपकी भाषा में कैसे सुहाता होगा?

तब वह जवाब देता है, बालक है, अरे! पप्पा! वह तो अतीन्द्रिय आनन्द में मौज करते हैं। समझ में आया? उसके पिताजी को उत्तर देता है। अरे! पप्पा! वे तो अतीन्द्रिय आनन्द में मौज करते हैं। अरे! पापा! सिद्ध अकेले हैं या नहीं? लड़का ऐसा उत्तर देता है। अपनी बात की पुष्टि करने को उसके पिता को सिद्ध का दृष्टान्त दिया। सिद्ध अकेले

हैं या नहीं ? उनको अच्छा नहीं लगता होगा, सिद्ध को नहीं सुहाता होगा। क्यों ? ऐई ! लड़का यहाँ बैठता था। अभी कलकत्ता ले गये। सिद्ध अकेले हैं तो उनको नहीं सुहाता होगा। अरे ! पापा ! वे तो अनन्त आनन्द में विराजमान हैं, अनन्त आनन्द का अनुभव करते हैं। आपको शोर चाहिए। ऐई ! शोभालालजी ! पापा ! आपको घोंघाट, घोंघाट समझे ? कोलाहल-ऐसा करना, वैसा करना ऐसा शोर चाहिए। आपको निवृत्ति नहीं चाहिए। सेठ ! बारह वर्ष का लड़का कहता है। कहा था न ? तुम थे न ? समझ में आया ?

भगवान आत्मा अन्त में तो एकान्त में अकेले ही रहना है। वहाँ भी अन्त में अकेले रहना है तो, अन्तर में अकेला रहे तो एकान्त अकेला सिद्ध होगा। साथ में विकल्प का सहारा लेगा तो सिद्ध नहीं होगा। अन्त में तो सादि-अनन्त काल अकेला रहना है। आहाहा ! कोई परसंयोग नहीं, विकल्प नहीं, अकेले आनन्द में अकेले रहना है। सादि-अनन्त। तो अकेला हो जाओ। मैं तो अकेला ही हूँ। राग से भी सम्बन्ध नहीं, परन्तु मेरे द्रव्य और पर्याय में भी सम्बन्ध नहीं। आहाहा ! कल सेठ कहते थे कि क्लास में सूक्ष्म अधिकार लिया। कहा, सूक्ष्म सुने तो सही। ऐ... सेठ ! कल कहते थे। सुने तो सही यह चीज़। जीवन चला जा रहा है और देह छूटने के सन्मुख काल है। चालीस-चालीस, पचास-पचास वर्ष निकल गये। समझ में आया ? तो यह वीतराग की मूल चीज़ क्या है, वह समझ में नहीं आये और उसकी रुचि नहीं हो तो क्या किया उसने ? समझ में आया ? बाहर में हो-हा, हो-हा की, वह तो अनन्त बार की है। भगवान ! हमारी भाषा में घोंघाट कहते हैं। वह लड़के ने घोंघाट कहा था। पापा ! आपको घोंघाट चाहिए। कोलाहल-ऐसा लेना, ऐसा देना। विकल्प... विकल्प... विकल्प। संकल्प-विकल्प करो। दूसरा आप क्या करते हो ? संकल्प-विकल्प करते हो। पैसा देते-लेते नहीं, ऐसा लड़के ने कहा। पैसे का धन्धा है न।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु बोलता तो है न। बोलता तो है न वह। समझ में आया ?

देखो ! निश्चयनय के आश्रय से धर्म होता है। जैनतत्त्व मीमांसा चलती है न ? उसका २५६ पृष्ठ है। व्यवहारनय के आश्रय से नहीं है, उसका खुलासा करते हुए आचार्य

देवसेन कृत नयचक्र की टीका-प्रकाशक-वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्र ... सोलापुर में कहा है, देखो! शंका - जो यह प्रमाण लक्षण व्यवहार है, यह व्यवहार निश्चयनय को ग्रहण करता हुआ अधिक विषयवाला पूज्य क्यों नहीं है ? भाषा देखो! भाषा तो देखो! ननु प्रमाणलक्षण युक्त व्यवहार। प्रमाणलक्षण व्यवहार, शब्द कहा। भाई! व्यवहार है न ? दो आ गया न ? द्रव्य और पर्याय, दो आये। दो आये तो व्यवहार हो गया। प्रमाण स्वयं व्यवहार का विषय है। सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। समझ में आया ? क्योंकि त्रिकाली ज्ञायक भगवान आत्मा, वह निश्चय और एक समय की पर्याय, व्यवहार। तो दो मिलकर ज्ञान किया तो सद्भूतव्यवहार हुआ, निश्चय नहीं। आहाहा! ऐ... जयकुमारजी! कठिन बात। पहले कहा था।

प्रमाण लक्षण व्यवहार है। यह व्यवहार-निश्चय उभय को ग्रहण करता हुआ। महाराज! प्रमाण तो दो भाग आते हैं। त्रिकाल निश्चय भी आता है और वर्तमान व्यवहार भी आता है। दो हुए तो क्यों पूज्य नहीं ? अधिक विषयवाला होने से। प्रमाण में तो अधिक विषय है। निश्चयनय के विषय से प्रमाण में तो अधिक विषय है। समझ में आया ? निश्चय में तो अकेले द्रव्य का विषय हुआ। और प्रमाण में तो निश्चय का विषय ऐसा रखा है और तदुपरान्त पर्याय व्यवहार का विषय हुआ। तो दो का विषय हुआ तो दो के विषय में तो उसका विषय अधिक हो गया। अधिक विषयवाला पूज्य क्यों नहीं ? धन्नालालजी! अधिक हो गया।

समाधान - ऐसा नहीं है। सुन! क्योंकि प्रमाणलक्षण व्यवहार आत्मा को नयपक्ष से अतिक्रान्त करने में समर्थ नहीं। आहाहा! भाषा देखो! नयचक्र का संस्कृत है। यहाँ संस्कृत है। .... प्रमाण, नय (पक्ष से) अतिक्रान्त करने में समर्थ नहीं। प्रमाण के विषय में दो नय साथ में रहते हैं। निश्चय में तो नयातिक्रान्त होकर, व्यवहार से अतिक्रान्त होकर अपने स्वरूप का आश्रय करता है। सूक्ष्म बात है, भाई! समझ में आया ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रमाणलक्षण ने निश्चय के विषय को तो उसने लक्ष्य में रखा ही है। उसका निषेध नहीं किया। इससे अतिरिक्त पर्याय का विषय किया तो व्यवहार हो

गया। दो हो गया न? दो। एक में निश्चय और दो में व्यवहार। व्यवहार में तो दो विषय अधिक हो गया। प्रमाण में विषय निश्चय का भी रहा और व्यवहार का भी रहा। दो विषय अधिक हो गया। तो अधिक विषयवाला प्रमाण क्यों पूजनीक नहीं है? और आप निश्चयनय को पूज्य कहते हो। आहाहा! यहाँ तो बाह्य व्यवहार पूज्य नहीं, परन्तु प्रमाण पूज्य नहीं है (ऐसा कहते हैं)। गजब है न! व्यवहार हो गया न। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रमाण पूजनीक नहीं है, ऐसा किसने कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : देवसेनाचार्य टीकाकार ने कहा। किसने कहा (पूछते हैं)। कहीं ये आपका सोनगढ़ का नहीं हो। सेठ तो स्पष्ट कराते हैं न। यह सोनगढ़ का नहीं है। देखो! नाम दिया है न। आचार्य देवसेनकृत नयचक्र की टीका और प्रकाशक कौन? सोनगढ़ नहीं। प्रकाशक-वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री, सोलापुर। १९४९। आहाहा! जिसे जो चीज़ बैठी हो वह कहे। यह चीज़ अलौकिक मार्ग है, भगवान! उसके ख्याल में यह बात आयी नहीं।... (हित) करने का भाव तो है। परन्तु (हित) कैसे होता है, यह खबर नहीं तो क्या करे? समझ में आया? कोई भी उल्टी दृष्टिवाले को भाव तो ठीक करने का होता है। परन्तु खबर नहीं कि कैसे ठीक होता है। ऐसे ही बेखबर के कारण अनादि से भूल रहा है। समझ में आया? भूल रहा है, वह तो दया का पात्र है। क्योंकि उसको दुःख फल होगा, उसका तिरस्कार क्यों करे? जिसकी दृष्टि विपरीत है, उसका फल दुःखरूप है, उसका अनादर क्यों करे? वह खुद ही अपना अनादर करके दुःखी हो रहा है। डालचन्दजी! यहाँ तो भगवान है, वह भी भगवान है, हों! पर्याय में भूल है। वह पर्याय की भूल निकाल देगा तो उसका कल्याण होगा। कल्याण तो उसके पास पड़ा ही है।

यहाँ तो कहते हैं, प्रमाण क्यों पूज्य नहीं? कि प्रमाण आत्मा को नयपक्ष से अतिक्रान्त करने में समर्थ नहीं है। स्पष्टीकरण इस प्रकार है, इस निश्चय को ग्रहण करके भी अनुयोग व्यवच्छेद नहीं करता। क्या कहते हैं? प्रमाण निश्चय को तो मानता है, लक्ष्य में लेता है, परन्तु प्रमाण व्यवहार जो पर्याय है, उसका निषेध (नहीं) करता। उसको भी अन्दर लक्ष्य में लेकर दोनों को मिलाकर लक्ष्य करता है। आहाहा! पर्याय भी व्यवहार है, उसका निषेध उसमें (प्रमाण में) नहीं आता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : रात को करना। प्रमाण आत्मज्ञान है अर्थात् है इतना। परन्तु वह प्रमाण व्यवहारनय का विषय हुआ। आश्रय करनेयोग्य नहीं है और वह निश्चय का विषय अखण्ड अभेद नहीं हुआ। प्रमाण में पर्याय का भी आदर है जानने में। और यहाँ जानने में पर्याय का आदर छोड़ दिया। छोड़ व्यवहार को। अकेले निश्चय के आश्रय से तेरा कल्याण होगा। व्यवहार का ज्ञान करते हैं, वह दूसरी बात है। समझ में आया ? भगवान! यह तो तेरा मार्ग अन्तर में है, उसकी बात चलती है। आहाहा!

मुमुक्षु : परन्तु महाराज! आप बारबार भगवान... भगवान... भगवान कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान ही आत्मा है, प्रभु! यहाँ तो भगवान ही कहते हैं। भगवान ने कहा। आचार्य ने नहीं कहा? ७२ गाथा में कहा। तीन बार भगवान कहा। समयसार ७२ गाथा। आचार्य, अमृतचन्द्राचार्य मुनि भावलिंगी सन्त। णमो लोए सव्व आइरियाणं, ऐसे पद में मिले हुए आचार्य ऐसा कहते हैं, भगवान आत्मा। समयसार में ७२ गाथा। ७० और २। समयसार में देख लेना। अशुचि,... समझ में आया ? आस्रव यहाँ है या नहीं ? हिन्दी नहीं है। गुजराती है। देखो! ७२ (गाथा) आयी।

जल में सेवाल (काई) है, सो मल या मैल है, उस सेवाल की भाँति... उस सेवाल की तरह-भाँति **आस्रव मलरूप या मैलरूप अनुभव में आते हैं...** ओहो! व्रत का, दया, दान का विकल्प, पूजा-भक्ति का विकल्प शुभराग मैलरूप अनुभव में आता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? संस्कृत टीका अमृतचन्द्राचार्य की है। उसका हिन्दी चलता है। **उस सेवाल की भाँति आस्रव मलरूप या मैलरूप अनुभव में आते हैं, इसलिए वे अशुचि हैं...** जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे वह भाव मैल है, अशुचि है, अपवित्र है। आहाहा! कितना वीर्य नपुंसक है! शुभभाव में वीर्य आया, वह नपुंसकता हुई। आहाहा! समझ में आया ? जो वीर्य स्वरूप शुद्ध आनन्द की रचना करे, उसको भगवान वीर्य कहते हैं। समझ में आया ? स्वरूप रचना वीर्य का सामर्थ्य। अपना वीर्य तो आनन्दस्वरूप, शुद्धस्वरूप परम पवित्र धाम भगवान, उसके आश्रय से शुद्धता की रचना, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, आनन्द की रचना हो, उसको वीर्य कहते हैं। तीर्थंकरगोत्र का भाव, वह

वीर्य नहीं, नपुंसकता है। आहाहा! दोष है, अपराध है। पण्डितजी! वह अमृतचन्द्राचार्य के पुरुषार्थसिद्धि उपाय में आया है। सम्यग्दृष्टि जीव का आहारकशरीर बँधता है, तीर्थंकरगोत्र बँधता है तो क्या है वह? तो अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, शुभ उपयोग का अपराध है। समझ में आया? आहाहा! तीर्थंकरगोत्र का भाव शुभ उपयोगरूपी अपराध।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रकृति है तो क्या है? जड़ है। उसमें क्या है?

मुमुक्षु : भगवान बना देती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई भगवान नहीं बनाती। रोकती है। वह तो रोकती है। समझ में आया? वह भगवान बनाती है या अपने द्रव्य का आश्रय भगवान बनाता है? कौन-सी गाथा है? (पुरुषार्थसिद्धि उपाय) २२०? देखो!

यहाँ कोई शंका करता है कि... रत्नत्रय के धारक मुनियों के देवायु आदि शुभ प्रकृतियों का बन्ध होता है, ऐसा जो शास्त्रों में कथन है, वह किस प्रकार से सिद्ध होगा? उसका उत्तर। इस लोक में रत्नत्रयरूप धर्म निर्वाण का कारण है। भगवान! यहाँ कहा न? निज ध्यान। अपना भगवान आत्मा उसका निज ध्यान—ऐसा दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वह तो निर्वाण का कारण है, अन्य गति का नहीं। वह कोई अन्य गति-चार गति का कारण नहीं। और रत्नत्रय में जो पूर्व का आस्रव होता है, वह अपराध शुभ उपयोग का है। संस्कृत मूल पाठ है। '**आस्रवति यत्तु पुण्यं शुभोपयोगोऽय-मपराधः**'। समझ में आया? तीर्थंकरगोत्र का आया न? वह सब आया उसमें आ गया। तीर्थंकरगोत्र का भाव भी बन्ध का कारण है, वह अपराध है। वह २१८ में आया। २१८ देखो! सम्यग्दर्शन हो, तभी योग और कषाय तीर्थंकर, आहारक का बन्ध करनेवाला होता है। **रत्नत्रय है, वह तो बन्धक नहीं है, बन्ध में उदासीन है।** सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तो आत्मा की वीतरागी पर्याय स्व-आश्रय से उत्पन्न हुई, वह बन्ध का कारण है नहीं। जो तीर्थंकरगोत्र का बन्ध कहा, वह तो भाव है, राग है, अपराध है। आहाहा! समझ में आया? उस भाव का जब अभाव होगा, वीतरागता होगी, तब केवलज्ञान होगा। आहाहा! लोग प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए।

मुमुक्षु : मेरुपर्वत पर भगवान को ले जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ ले जाए, उसमें क्या हुआ ? मेरुपर्वत, पर ऊपर जाते हैं। अपनी पर्याय ऊपर जाती है तो अपने आश्रय से जाती है। क्या प्रकृति के आश्रय से जाती है ? मेरु पर्वत पर ले जाए उसमें क्या हुआ ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : पुण्यफला अरहन्ता।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्यफल अरहन्ता की व्याख्या क्या है ? वह भी झूठ है जो कहते हैं। वहाँ प्रवचनसार में ऐसा लिखा है। जो उसकी क्रिया है, वह पुण्य का फल है। उदय की क्रिया करने में आती है, वह है। समझ में आया ? प्रवचनसार। शीर्षक में ऐसा है, देखो ! वह तो बहुत प्रसिद्ध हो गया। ऐसी गाथा है न ? ४५ (गाथा)। देखो ! '**अथैवं सति तीर्थकृतां पुण्यविपाकोऽकिंचित्कर**' तीर्थंकर को पुण्य का विपाक कुछ करता नहीं। वह तो बाहर की क्रिया है, ऐसा कहते हैं। '**अथैवं सति तीर्थकृतां**'**। इस प्रकार होने से तीर्थंकरों के पुण्य का विपाक अकिंचित्कर ही है (-कुछ करता नहीं है, स्वभाव का किंचित् घात नहीं करता)...** वह तो क्रिया का उदय है। तीर्थंकर प्रकृति से अरिहन्त पद मिलता है, ऐसा है नहीं। बहुत गड़बड़, बड़ी गड़बड़ हो गयी। समझ में आया ?

कहते हैं, अहो ! यहाँ क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा। पुण्य-पाप का भाव अशुचि है, अपवित्र है, मैल है। भगवान आत्मा... संस्कृत टीका है। भगवान आत्मा... ऐसा अमृतचन्द्राचार्य पंच महाव्रतधारी मुनि (कहते हैं)। और णमो लोए सव्व आइरियाणं में परमेष्ठी में बैठे है, वह कहते हैं कि भगवान आत्मा... ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? पुण्य-पाप का परिणाम, शुभ-अशुभभाव, भगवान ! वह तो अशुचि है न, नाथ ! वह तो मैल है, प्रभु ! और तू तो भगवान है न ! आहाहा ! समझ में आया ? तेरे में तो अनन्त आनन्द, ज्ञान, वीतरागलक्ष्मी पड़ी है। उसको आत्मा कहते हैं। पुण्य-पाप आस्रव को आत्मा कहते नहीं। आहाहा !

तीन बात आयी। अशुचि, विपरीत। जो पुण्य-पाप भाव है, वह चैतन्य से विपरीत है, जड़ है। शुभ-अशुभभाव जिससे तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव जड़ है, अचेतन है। क्योंकि उस राग में चैतन्य का निर्मल अंश नहीं है। वह राग तो अन्धा है। समझ में आया ? नन्दकिशोरजी ! राग, जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, जो भाव पंच महाव्रत का विकल्प है,

वह अन्धा है, जड़ है। चैतन्य के स्वभाव से राग विपरीत भाव है। और भगवान आत्मा निर्मलानन्द है। साथ-साथ लिया है, देखो! भगवान आत्मा पवित्र वीतरागस्वभाव से भरा है, वह भगवान आत्मा।

तीसरा। दु:ख का कारण। भगवान पुण्य और पाप का भाव तो दु:ख का कारण है। गजब बात है! राग है। तीर्थंकरगोत्र का जो भाव है, वह दु:ख है। आहाहा! सेठ! क्या बराबर? राग है, राग दु:ख है, आकुलता है। आहाहा! वीतरागी तत्त्व चैतन्य क्या है, उसकी खबर नहीं। खबर नहीं है और धर्म हो जाएगा! सम्यग्दर्शन का तो ठिकाना नहीं। समझ में आया? कहते हैं, अहो! भगवान आत्मा, आस्रव तो आकुलता को उत्पन्न करनेवाला है। भगवान आत्मा सदा निराकुल स्वभाव के कारण किसी का कार्य नहीं और किसी का कारण नहीं। भगवान शुभभाव का कारण नहीं। भगवान आत्मा शुभभाव तीर्थंकरगोत्र का कारण नहीं और शुभभाव का वह कार्य नहीं। शुभभाव हुआ तो यहाँ निश्चय कार्य हुआ, ऐसा है नहीं। समझ में आया? तीन बार लिया है, भगवान... भगवान ऐसा। धन्नालालजी!

मुमुक्षु : भगवान.. भगवान.. कुछ क्रिया तो बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भगवान होने की क्रिया बताते नहीं? भगवान होने की क्रिया नहीं है। राग से भिन्न होकर अपने में एकाग्र होना, वह क्रिया नहीं है। पर्याय ही क्रिया है, द्रव्य तो अक्रिय है। ध्रुव जो आत्मा भगवान त्रिकाली, वह तो अक्रिय है। वह आयेगा। और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो स्वभाव की एकाग्रता है, वह सक्रियता मोक्षमार्ग है। वह सक्रिया है। यह निज साधन है। नन्दकिशोरजी! मार्ग तो ऐसा है, भगवान! लोगों में ऐसी गड़बड़ हो गयी न। एकान्त है, सोनगढ़ एकान्त है। अरे! भगवान! तू किसको कहता है? आचार्य को कह दे। समझ में आया? ऐसा एकान्त क्यों करते हो?

देखो, यहाँ आया स्पष्टीकरण, निश्चय को ग्रहण करके भी अनुयोग व्यवच्छेद नहीं करता। कौन? प्रमाण। प्रमाणज्ञान में निश्चय और व्यवहार दो आते हैं। दो का लक्ष्य करते हैं, उसमें प्रमाण में व्यवहार का अभाव नहीं होता। व्यवच्छेद नहीं करता प्रमाण। अनुयोग व्यवच्छेद नहीं करता। अनुयोग व्यवच्छेद के अभाव में व्यवहार लक्षण भाव क्रिया को

रोकने में असमर्थ है। देखो! आहाहा! प्रमाणज्ञान राग को रोकने में असमर्थ है। निश्चय स्वभाव के आश्रय से जो निश्चय है, वह राग को रोकने में समर्थ है। समझ में आया? मार्ग ऐसा है। भाई! खबर नहीं तो कहीं का कहीं जोड़ दे। अतएव वह आत्मा को ज्ञानचेतन में स्थापित करने के लिये असमर्थ है। प्रमाणज्ञान आत्मा में स्थापित करने में असमर्थ है। क्योंकि व्यवहार का निषेध करके स्वरूप में स्थिर करने में प्रमाण की सामर्थ्य नहीं। समझ में आया? ... उस दिन आया था न? इस समय भी चला। सेठिया का आया था न। समझ में आया?

निश्चयनय तो एकत्व को प्राप्त करने के साथ ज्ञानस्वरूप चैतन्य में स्थापित कर परमानन्द को उत्पन्न करता, वीतराग करके स्वयं निवृत्त होता हुआ। देखो! निश्चय तो स्वभाव राग से निवृत्त होता है और स्वभाव में प्रवृत्त होता है। वह निश्चय मोक्ष का मार्ग करा देता है। २५७ पृष्ठ। इसलिए यह उत्तम प्रकार से पूज्य है। निश्चयनय ही पूज्य है। उत्तम प्रकार से पूज्य है। देखो! निश्चयनय परमार्थ का प्रतिपादक होने से भूतार्थ है। इसी में आत्मा अविश्रान्तरूप से अन्तर्दृष्टि होता है। अन्तर में रहता है। व्यवहार बाहर आया और दो का ज्ञान करने में है क्या? कहते हैं। मार्ग तो ऐसा अलौकिक मार्ग है, भाई!

यहाँ कहा, देखो! '**भये सिद्ध निज ध्यानतैं, नमूं मोक्षसुखदाय।**' दो बात आ गयीं इस पंक्ति में। मोक्ष का मार्ग भी आया और मोक्ष सुखदायक है। सिद्ध मैं नमन करता हूँ। पण्डित जयचन्द्र(जी) के मांगलिक में दो बात आ गयी। **इस प्रकार मंगल के लिए सिद्धों को नमस्कार कर श्रीकुन्दकुन्द आचार्यकृत 'मोक्षपाहुड' ग्रन्थ प्राकृत गाथाबन्ध है, उसकी देशभाषामय वचनिका लिखते हैं।** पण्डित जयचन्द्र(जी) करते हैं। **प्रथम ही आचार्य मंगल के लिए परमात्मा को नमस्कार करते हैं**—अब, कुन्दकुन्दाचार्य नमस्कार करते हैं। मोक्षप्राभृत की शुरुआत करने को। अच्छा हुआ, अधिकार अच्छा हा गया। मोक्षप्राभृत के मांगलिक में।

मुमुक्षु : मुमुक्षु की पुकार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुकार में वह है, भाई!

णाणमयं अप्पाणं उवलद्धं जेण झडियकम्मेण।
चइऊण य परदव्वं णमो णमो तस्स देवस्स॥१॥

सिद्ध की व्याख्या करते हैं। सिद्ध की व्याख्या करके नमस्कार करते हैं। भगवान आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य भगवान के प्रति प्रीतिसूचक दो बार नमस्कार-नमस्कार करते हैं।

अर्थ - आचार्य कहते हैं कि जिसने परद्रव्य को छोड़कर के... 'चइऊण य परदव्वं' है न ? छोड़कर का अर्थ परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर। समझ में आया ? यहाँ तो स्वद्रव्य का आश्रय करता है और परद्रव्य का लक्ष्य छोड़ना है, वह बात है। छोड़े क्या ? छूटा ही पड़ा है। जो परद्रव्य पर, विकल्प पर, शरीर पर, वाणी पर, भेद पर लक्ष्य था, वह सब परद्रव्य का लक्ष्य था। वह '**चइऊण य परदव्वं**' परद्रव्य को छोड़कर। '**त्यक्त्वा च परद्रव्यं**'। उसका अर्थ ? मोक्ष है न, मोक्ष का मार्ग है न ? उसमें परद्रव्य का लक्ष्य छूटता है और स्वद्रव्य का आश्रय होता है। और स्वद्रव्य के आश्रय से सिद्धपद हुआ है, पर का लक्ष्य छोड़कर। ऐसा कहते हैं। ओहोहो ! परद्रव्य देव-गुरु-शास्त्र आदि। विकल्प परद्रव्य। एक समय की पर्याय भी एक न्याय से स्वद्रव्य की अपेक्षा परद्रव्य।

नियमसार ५० गाथा। परद्रव्यं, परभावं हेयं। तीन बोल आये हैं। ५० गाथा। अपनी पर्याय जो है, वह स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य है। बाह्य तत्त्व है। आज सबेरे रास्ते में चला था। किसी ने पूछा था, वह जीवतत्त्व आया न ? सात तत्त्व में। जीवतत्त्व जो आया है, वह तो एक समय की पर्याय का जीवतत्त्व आया है। सात तत्त्व बहिर्तत्त्व है, उसमें जीवतत्त्व आया। सात तत्त्व है, वह बहिर्तत्त्व है। उसमें जीवतत्त्व क्या आया ? एक समय की पर्याय का जीवतत्त्व। और संवर, निर्जरा, मोक्ष सब पर्याय है, वह बहिर्तत्त्व है। भगवान आत्मा पूर्णानन्द नाथ शुद्ध ध्रुव, जो दोपहर को चलता है, वही एक अन्त: तत्त्व है। आहाहा ! समझ में आया ? बहिर्तत्त्व का ज्ञान, वह व्यवहारज्ञान। समझ में आया ?

आत्मा त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप ध्रुव, वह निजद्रव्य एक। उसके सिवा,... वह अन्त:तत्त्व और एक समय की पर्याय और रागादि और आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध, मोक्ष पर्याय, वह सब परद्रव्य है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने नियमसार में बहिर्तत्त्व कहा। वह बहिर्तत्त्व है। शरीर, वाणी, कर्म बहिर्तत्त्व तो बहुत दूर रह गये। यहाँ तो संवर, निर्जरा, मोक्ष की धर्म की वीतरागी पर्याय, एक समय की पर्याय भी बहिर्तत्त्व कहने में आती है।

मुमुक्षु : नियमसार तो चारित्र का ग्रन्थ है। चारित्र जब होगा, तब ऐसा माना जाएगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा द्रव्य का आश्रय करेगा, तब निर्मल पर्याय होगी। पर्याय का आश्रय करेगा तो निर्मल पर्याय नहीं होगी, विकल्प होगा।

मुमुक्षु : मोक्षपर्याय...

पूज्य गुरुदेवश्री : नमस्कार पर्याय ने किया तो क्या हुआ ? ... अन्तर में तो अपनी पर्याय अपने द्रव्य में झुके, वह नमस्कार है। परन्तु विकल्प के काल में भी सम्यग्दृष्टि की एकाग्रता तो अन्दर चलती ही है। समझ में आया ? विकल्प के काल में भी सम्यग्दृष्टि की स्वभाव सन्मुख की एकाग्रता तो चलती ही है। वह एकाग्रता चलती है, वह वास्तव में नमस्कार कहने में आता है। समझ में आया ? आहाहा ! कठिन मार्ग, भाई ! जन्म-मरण के दुःख से, आकुलता से छूटना हो, आकुलता है न सब ? तो स्वद्रव्य का आश्रय करने से छूटती है। क्योंकि आकुलता तो परद्रव्य है। आहाहा !

कहते हैं, '**चइऊण य परदव्वं**'। जिसने परद्रव्य का लक्ष्य छोड़ दिया है और जटित कर्म खिरे हैं कर्म। देखो ! कर्म खपाते हैं, ऐसा शब्द नहीं पड़ा है। भैया ! जटित कर्म। कर्म खिर गया है, ऐसा लिखा है। कर्म खपाये हैं, कर्म का नाश किया, ऐसा नहीं लिया। समझ में आया ? खिर गया है। परद्रव्य का लक्ष्य छूटा और अपने द्रव्य का आश्रय किया तो परद्रव्य कर्म जो (था), वह खिर गया है, खिरे हैं। खिरे हैं उसके कारण। आत्मा खिराता है, ऐसा नहीं। पण्डितजी ! आहाहा ! वह तो जड़ है। जड़ का आत्मा स्वामी है कि उसको बाँधे और छोड़े ? या उसकी निर्जरा करे कर्म की ? क्या आत्मा उसका स्वामी है ? अपने द्रव्य का आश्रय होकर परद्रव्य का लक्ष्य जहाँ छूटा, वहाँ कर्म भी उसके कारण छूट जाते हैं। जटित कर्म। खिरे हैं द्रव्यकर्म। तीनों। जटित कर्म। द्रव्यकर्म भी खिरते हैं, भावकर्म भी खिरते हैं। अशुद्धता का नाश करते नहीं हैं, ऐसा यहाँ आया। देखो ! अशुद्धता का नाश हो जाता है। अशुद्धता का नाश करते हैं, ऐसा नहीं। उसका नाश कैसे करे ? अशुद्धता है, उसका नाश कैसे करे ? उस पर लक्ष्य करके नाश करे ? अपने द्रव्य का आश्रय उग्ररूप से करता है तो अशुद्धता उत्पन्न होती नहीं, उसे अशुद्धता का नाश होता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा ! कठिन बात, भाई !

जटित भावकर्म जटित। भावकर्म का नाश करते हैं, ऐसा नहीं लिया। भावकर्म खिर

जाते हैं। भावकर्म अर्थात् पुण्य और पाप का विकल्प जो अशुद्ध भाव है, वह खिर जाता है। स्वद्रव्य का आश्रय किया तो वह परद्रव्य खिर जाता है, छूट जाता है। छोड़ते हैं, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? द्रव्यकर्म जड़। भावकर्म विकारी पर्याय। नोकर्म अर्थात् शरीर। वह खिरते हैं। जटित कर्म अर्थात् छूट गये हैं। **ऐसे होकर...** ऐसे होकर। सिद्ध भगवान। **ज्ञानमयी आत्मा को प्राप्त कर लिया है,...** देखो! अकेले ज्ञान की मूर्ति, चैतन्यबिम्ब उसको प्राप्त हुआ। सिद्ध अर्थात् ज्ञानमय पूर्ण प्राप्त हुआ, उसका नाम सिद्ध। समझ में आया? ज्ञानप्रधान कथन है न? सारा ज्ञानमय ही आत्मा है, ज्ञानमय ही आत्मा है। समझण का पिण्ड आत्मा है, ज्ञायकभाव आत्मा है। सिद्ध, परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर स्वद्रव्य का आश्रय करते हैं, वहाँ परद्रव्य कर्म आदि भावकर्म है, वह जटित खिर जाते हैं, छूट जाते हैं। और पाया क्या? वह तो छूट गया? पाया क्या? ज्ञानमय आत्मा। पूर्ण ज्ञानमय पर्याय में केवलज्ञानमय पर्याय को पाया। वह सिद्ध। ऐसा आया न? इसलिए (अज्ञानी) कहते हैं, देखो! ज्ञानमय आत्मा हुआ। चारित्र-फारित्र है नहीं। ज्ञानमय चारित्र है, ज्ञानमय आनन्द, ज्ञानमय श्रद्धा है, सब ज्ञानमय है; रागमय नहीं। समझ में आया? केवलज्ञान आनन्द स्वरूप है न। ज्ञान के साथ वह है न।

इस प्रकार के देव को हमारा नमस्कार हो... देव को। देखो! लक्ष्य में परद्रव्य हुआ न। ८३ गाथा में आया न? नमस्कार, वैयावृत्य आदि परद्रव्य के कारण हैं। परद्रव्य उसमें लक्ष्य में आता है। ८३ गाथा के भावार्थ में आया है। **नमस्कार हो-नमस्कार हो। दो बार कहने में अतिप्रीतियुक्त भाव बताये हैं।**

भावार्थ - यह 'मोक्षपाहुड' का प्रारम्भ है। यहाँ जिनने समस्त परद्रव्य को छोड़कर... जिनने अर्थात् जिसने समस्त परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर **कर्म का अभाव करके...** अभाव करके अर्थात् अभाव हुआ। वह तो शब्द में ऐसी ही लिखावट आये। **केवलज्ञानानन्दस्वरूप मोक्षपद को प्राप्त कर लिया है,...** केवलज्ञान और पूर्ण आनन्द, उसका नाम मोक्ष। अकेला अतीन्द्रिय आनन्द रह गया और अकेला ज्ञान रह गया। राग तो नहीं, परन्तु अपूर्णता नहीं। पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द पाया। **उस देव को...** देखो! देव की पहिचान करवायी। ऐसे देव होते हैं। दूसरे देव कहते हैं, ऐसा देव है नहीं। **मंगल के लिए**

नमस्कार किया - यह युक्त है। जहाँ जैसा प्रकरण, वहाँ वैसी योग्यता। ऐसा। अर्थात् यहाँ मोक्षपाहुड़ है तो वहाँ सिद्ध को नमस्कार करना उचित है। मोक्षप्राभृत है न, तो सिद्ध को नमस्कार करना उचित है, वह प्रकरण के योग्य है। प्रकरण के लायक है। **जहाँ जैसा प्रकरण, वहाँ वैसी योग्यता**।

यहाँ भाव-मोक्ष तो अरहन्त के... मोक्ष की व्याख्या करते हैं। अरिहन्त को भावमोक्ष हुआ है। भाव सब निर्मल हो गये और चार घाति (नष्ट हो गये)। भावमोक्ष हो गया। **और द्रव्य-भाव दोनों प्रकार के मोक्ष सिद्ध परमेष्ठी के हैं,...** कर्म का निमित्त भी छूट गया और अशुद्धता भी छूट गयी। **ऐसे सिद्ध परमेष्ठी के हैं,...** ऐसा भाव। **इसलिए दोनों को नमस्कार जानो**। अरिहन्त और सिद्ध दोनों को नमस्कार किया है। मोक्षपाहुड़ की शुरुआत में मांगलिक करते हैं। दूसरी गाथा लेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-२

आगे इस प्रकार नमस्कार कर ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा करते हैं -

णमिऊण य तं देवं अणंतवरणाणदंसणं सुद्धं।
वोच्छं परमप्पाणं परमपयं परमजोईणं।।२।।

नत्वा च तं देवं अनंतवरज्ञानदर्शनं शुद्धम्।
वक्ष्ये परमात्मानं परमपदं परमयोगिनाम्।।२।।

उन अमित वर दृग ज्ञान शुद्ध जिनेश को करके नमन।
सब परम योगी को कहूँ परमात्मामय परम पद।।२।।

अर्थ **- आचार्य कहते हैं कि उस पूर्वोक्त देव को नमस्कार कर, परमात्मा जो उत्कृष्ट शुद्ध आत्मा उसको, परम योगीश्वर जो उत्कृष्ट योग्य ध्यान के करनेवाले**

मुनिराजों के लिए कहूँगा। कैसा है पूर्वोक्त देव? जिसके अनन्त और श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन पाया जाता है, विशुद्ध है-कर्ममल से रहित है, जिसका पद परम उत्कृष्ट है।

***भावार्थ* – इस ग्रन्थ में मोक्ष को जिस कारण से पावे और जैसा मोक्षपद है, वैसा वर्णन करेंगे, इसलिए उसी रीति उसी की प्रतिज्ञा की है। योगीश्वरों के लिए कहेंगे, इसका आशय यह है कि ऐसे मोक्षपद को शुद्ध परमात्मा के ध्यान द्वारा प्राप्त करते हैं, उस ध्यान की योग्यता योगीश्वरों के ही प्रधानरूप से पाई जाती है, गृहस्थों के यह ध्यान प्रधान नहीं है।।२।।**

प्रवचन-६२, गाथा-२, शुक्रवार, श्रावण शुक्ल ११, दिनांक १४-०८-१९७०

मोक्षपाहुड़ की दूसरी गाथा। मोक्षप्राभृत का अर्थ मोक्ष सार। मोक्ष में सार चीज़ क्या है मोक्ष में? और उसका मार्ग क्या है? वह अधिकार यहाँ है। समझ में आया? **आगे इस प्रकार नमस्कार कर ग्रन्थ करने की प्रतिज्ञा करते हैं** – '**णमिऊण य तं देवं**' कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं नमस्कार करते हैं।

णमिऊण य तं देवं अणंतवरणाणदंसणं सुद्धं।
वोच्छं परमप्पाणं परमपयं परमजोईणं।।२।।

अर्थ - आचार्य कहते हैं कि उस पूर्वोक्त देव को नमस्कार कर,... पहली गाथा में देव की व्याख्या की। ज्ञानमय, जिसके कर्म खिर गये हैं, परद्रव्य का लक्ष्य छूट गया है और अपनी पूर्ण दशा प्राप्त हो गयी है। ऐसे परमात्मा को नमस्कार कर। परमात्मा जो उत्कृष्ट शुद्ध आत्मा, ऐम। ऐसे परमात्मा की व्याख्या-परम आत्मा। उत्कृष्ट आखिर की अन्तिम उत्कृष्ट दशा, पूर्ण दशा, परमानन्द और पूर्ण ज्ञानदशा (जिसे प्राप्त हुई), उसको यहाँ परमात्मा कहते हैं। **उत्कृष्ट शुद्ध आत्मा...** मोक्षमार्ग में तो अभी शुद्धता थोड़ी प्रगट हुई है। समझ में आया? आज कोई प्रश्न करता था। सम्मेदशिखर को एक बार बन्दे जो कोई, आता है या नहीं? उसमें कोई धर्म-बर्म है या नहीं? शुद्धता है या नहीं? आज सवेरे प्रश्न किया था। है ही नहीं, धर्म नहीं। सम्मेदशिखर का दर्शन करो, साक्षात् त्रिलोकनाथ तीर्थंकर

का दर्शन करो। वह उसमें आयेगा। वह परद्रव्य है। परद्रव्य के आश्रय से तो राग ही उत्पन्न होता है। समझ में आया? आगे गाथा आयेगी। '**परदव्वादो दुग्गइ सदव्वादो हु सुग्गइ होइ।**' अपना द्रव्य ज्ञायक चिदानन्दस्वरूप, उसका अन्तर आश्रय करने से जो शुद्धता उत्पन्न होती है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अपूर्ण शुद्धता है। परमात्मा को पूर्ण शुद्धता है। अभी शुद्ध कहा न? परमेश्वर अरिहन्त और सिद्ध (को) पूर्ण शुद्धता है। और वह स्वद्रव्य के आश्रय से पूर्ण शुद्धता प्रगट होती है। परद्रव्य के आश्रय से, चाहे तो समवसरण हो, त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का दर्शन करे, पूजा करे, अनन्त बार ऐसी पूजा की, शास्त्र तो ऐसा कहते हैं। समवसरण में मणिरत्न के दीपक से, कल्पवृक्ष के फूल से समवसरण में भगवान की अनन्त बार आरती उतारी। शोभालालजी! परन्तु वह तो शुभभाव है। धन्नालालजी!

मुमुक्षु : क्रिया धर्म का कारण तो होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं।

मुमुक्षु : परम्परा से होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा भी नहीं।

अपना द्रव्य चैतन्य शुद्ध आनन्दकन्द परमात्मा, उसके आश्रय से ही सम्यग्दर्शन, उसके आश्रय से सम्यग्ज्ञान, उसके आश्रय से सम्यक्चारित्र, उसके आश्रय से शुक्लध्यान, उसके आश्रय से केवलज्ञान (प्रगट होता है)। यह बात है। त्रिकाल वस्तु ऐसी है। ऐसा तीर्थंकर स्वयं कहते हैं कि हमारे सन्मुख देखना, वह तेरा विकल्प है, शुभभाव है। तो सम्मेदशिखर देखने से जन्म-मरण मिट जाते हैं, ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : पोते माने?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना। पोते अर्थात् क्या कहा? स्वयं। हिन्दुस्तानी में स्पष्ट कराते हैं। अपना आत्मा, निज शुद्ध चिदानन्द पुण्य-पाप विकल्प से रहित त्रिकाल जो दोपहर को चलता है, अखण्ड ज्ञायकभाव परमपारिणामिक स्वभाव, ध्रुवभाव उसमें अन्तर एकाग्रता होना, उसके आश्रय से ही मोक्ष का मार्ग उत्पन्न होता है। साक्षात् तीर्थंकर हो, समवसरण में अनन्त बार दर्शन किये, परन्तु उससे कोई संवर, निर्जरा उत्पन्न होती नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! 'एक बार वंदे जो कोई... नरक पशु न होई', उसमें दो गति

तो है न? बाद में चार गति मिलेगी। शुभभाव हो तो एकाध भव में नहीं मिलेगी, परन्तु उससे कोई जन्म-मरण का अन्त आता है, ऐसी चीज़ है नहीं। समझ में आया? श्वेताम्बर में शत्रुंजय का माहात्म्य बहुत गाया है। बहुत गाया है। शत्रुंजय माहात्म्य का एक पुस्तक बनाया है। अपने में सम्मेदशिखर का माहात्म्य का एक पुस्तक है। महावीरकीर्ति यहाँ आये थे न? चार दिन रहे थे। उसके पास वह पुस्तक था। सम्मेदशिखर का माहात्म्य का एक पुस्तक छपा हुआ था। उन्होंने कहा कि देखो! उसमें ऐसा लिखा है कि सम्मेदशिखर का दर्शन करे तो ४९ भव में मुक्ति होगी। कहा, वह वचन वीतराग का नहीं। पण्डितजी! चाहे सम्मेदशिखर का माहात्म्य लिख दिया हो। इन्होंने शत्रुंजय का माहात्म्य लिख दिया है कि शत्रुंजय का दर्शन करके, चाहे जैसा मुनि हो, उसको आहार-पानी दे तो परित संसार हो जाए, संसार घट जाए। धूल में भी घटे नहीं। आहाहा! यहाँ मोक्ष अधिकार में वह लेंगे। समझ में आया? है न वह पहले?

मुमुक्षु : अभी बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी बताओ? देखो! १३वीं गाथा, १३... १३। मोक्ष अधिकार। यही अधिकार। यही अधिकार चलता है न? १३ गाथा, देखो! '**परदव्वरओ बज्झदि वरिओ मुच्चेइ विविहकम्मेहिं।**' परद्रव्य के आश्रय से तो बन्ध ही होता है और '**वरिओ मुच्चेइ विविहकम्मेहिं**' समझे न? परद्रव्य से विरक्त होकर अपने द्रव्य का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र होता है। यहाँ तो यह कहा, परन्तु १६वीं गाथा देखो। '**परदव्वादो दुग्गइ।**' १६वीं, १६वीं (गाथा), मोक्ष अधिकार। '**परदव्वादो दुग्गइ।**' परद्रव्य से दुर्गति का अर्थ क्या? अपना चैतन्य भगवान पूर्णानन्द ज्ञायकभाव, उसको छोड़कर चाहे तो तीर्थंकर आदि समवसरण हो, परन्तु परद्रव्य के आश्रय से दुर्गति है। दुर्गति का अर्थ राग है, वह अपनी गति नहीं है। है? **परद्रव्य से दुर्गति होती है और स्वद्रव्य से सुगति होती है...** देखो! '**सदव्वा हु सुग्गइ होइ।**' आहाहा! भगवान आत्मा, उसकी पर्याय के आश्रय से भी लाभ नहीं। यह तो त्रिकाली ज्ञायक द्रव्यस्वभाव, ध्रुवस्वभाव परमभाव, जो दोपहर को चलता है, परमपारिणामिकभाव, जिसमें चार भाव की पर्याय का भी अभाव है। समझ में आया? ऐसा स्वभाव '**सदव्वा हु सुग्गइ**' अपने स्वद्रव्य के आश्रय से मुक्ति मिलती है

और बीच में थोड़ा विकल्प रह जाए तो स्वर्ग भी उससे मिलता है। समझ में आया ? परन्तु परद्रव्य से-परद्रव्य के लक्ष्य से चाहे तो सिद्ध भगवान का लक्ष्य करो, परन्तु वह अपने से परद्रव्य है। समझ में आया ? उससे तो विकल्प ही उत्पन्न होगा, राग ही उत्पन्न होगा, वह स्वरूप की गति नहीं, वह विपरीत विभावगति है। आहाहा ! समझ में आया ? हो, बीच में। जब तक वीतरागता न हो, तब तक सम्यग्दृष्टि को भी ऐसा शुभराग भगवान की भक्ति का, स्मरण का आता है। हो, परन्तु वह भाव मुक्ति का कारण है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं, हम तो तेरे से परद्रव्य हैं, हम तो तेरे से परद्रव्य है। हमारे लक्ष्य से तेरा मोक्ष होगा, ऐसा है नहीं। हमारे लक्ष्य से धर्म होगा नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ... विनय उड़ जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उस ही में विनय होता है। भगवान कहते हैं ऐसा मानते हैं तो विनय है। भगवान ऐसा कहते हैं कि हमारी ओर के लक्ष्य से तुझे राग होगा और तेरे स्वभाव के आश्रय से तुझे अरागी सम्यग्दर्शन आदि पर्याय होगी। ऐसा भगवान ने कहा, ऐसा माने तो भगवान का विनय कहने में आता है।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन तो उनके सान्निध्य में होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने सान्निध्य में होता है। पर के सान्निध्य में नहीं। कहो ! वह बात तो चलती है। इस कारण से तो यह अधिकार लिया है। भगवान आत्मा, क्षयोपशम में से क्षायिक समकित होता है, वह भी अपने सान्निध्य में होता है। वह तो बाहर के निमित्त की उपस्थिति का ज्ञान कराया है। समझ में आया ? क्षयोपशम समकित, अपना स्वरूप का अनुभव दृष्टि भी हुई, उसमें से क्षायिक... ऐसा पाठ है न ? गोम्मटसार में। क्षायिक समकित केवली ... केवली तीर्थंकर के समीप होता है अथवा श्रुतकेवली के समीप में। उसका अर्थ उस समय में अपनी समीप में आश्रय करते हैं तो क्षयोपशम में से क्षायिक होता है। तब बाहर के केवली को भी व्यवहार ... कहने में आता है। सेठ ! देखो न ! यहाँ तो आचार्य स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं), '**परदव्वादो दुग्गइ।**' एक ही शब्द। आहाहा ! इतनी बात

वीतराग... समझ में आया ? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि हमारी ओर का तेरा लक्ष्य भी राग है, वह दुर्गति है। दुर्गति का अर्थ अपने स्वभाव की गति नहीं। अपने स्वभाव की गति नहीं। स्वभाव से विपरीत राग की गति है। तो राग से कोई स्वर्गादि मिलो तो वह तो दुर्गति नहीं। वहाँ सुख नहीं है। समझ में आया ? आहाहा

मुमुक्षु : महाराज! हम पहली क्लास के हैं...

पूज्य गुरुदेवश्री : पहली क्लास की बात यहाँ चलती है। खुलासा करवाते हैं। पहली क्लास की बात चलती है। कितनी बार आयी है। यहाँ तो ३६-३६ साल हो गये और क्लास कितने साल से चलते हैं। (संवत्) २००३ की साल से चलते हैं। नहीं ? २००३। २३ वर्ष हुए। २३ वर्ष तो ये बड़े क्लास को हुए। छोटा क्लास वेकेशन लड़कों का होता है, वह तो (संवत्) १९९७ की साल से (चलते हैं)। २९ वर्ष हुए। वैशाख मास का जो वेकेशन होता है, उसकी क्लास तो १९९७ की साल (से चलता है)। समझ में आया ? १९९७ में जब मन्दिर हुआ न ? तब से वह क्लास चलता है। कितने वर्ष हुए ? ३० वर्ष हुए। ३० वर्ष से यहाँ बालकों का-विद्यार्थी का क्लास चलता है और प्रौढ़ का २००३ से। कितने हुए ? २४ वर्ष हुए। २००३ की क्लास थी। पहले डॉक्टर आये थे। तलोद से। प्रेमचन्द डॉक्टर। २४ वर्ष से बड़ों की क्लास चलती है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : जब कुछ और सिखाते होंगे, अब कुछ और सिखाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही बात है पहले से। ठीक कहते हैं। एक ही नियम पहले से है। कहा न ? एक बार तुमको कहा था न ? (संवत्) १९८५ के वर्ष। कितने वर्ष हुए ? ४१ वर्ष हुए। चालीस और एक। हम सम्प्रदाय में मुँहपत्ती में थे। हमारी तो बहुत प्रतिष्ठा थी। बोटाद में सभा में १५०० लोग। खचाखच लोग। हम तो व्याख्यान पढ़ते थे, लोगों को प्रेम बहुत था न। सम्प्रदाय में हमारे पर बहुत प्रेम था। हमको तो प्रभु तुल्य लोग कहते थे। बालब्रह्मचारी हैं। व्याख्यान की ऐसी शैली, ढब बहुत है तो लोग तो... बात आते-आते ऐसी बात आ गयी। पौष मास, १९८५ के वर्ष। भैया! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह धर्म नहीं। धर्म नहीं का अर्थ अधर्म है। ऐसा कहा। लोग तो मान गये। लोगों को तो हमारे पर बहुत प्रेम था न।

मुमुक्षु : कोई तो भड़का होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक भड़का था। एक साधु था, सम्प्रदाय का साधु था, वह भड़क गया। वोसरे... वोसरे... वोसरे (बोलने लगा)। वोसरे अर्थात् यह नहीं चाहिए, नहीं चाहिए। दो बात कही थी। बहुत लोग थे, १५०० लोग थे। १९८५ के वर्ष। ४१ वर्ष हुए। पौष मास। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव धर्म नहीं। क्योंकि बन्ध के भाव को धर्म कहते नहीं। धर्म तो अबन्ध परिणामी भाव है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वह तो अबन्ध परिणाम हैं, उससे तो किंचित् बन्ध पड़ता नहीं। और पंच महाव्रत है, वह आस्रव है। दो बोल कहे थे। चालीस और एक, ४१ वर्ष हुए। सभा में सम्प्रदाय में स्थानकवासी में (कहा था), हों! हमारे पर लोगों को प्रेम था, कोई शंका नहीं करे। वेश वह था न। मार्ग ऐसा है, कहा। पंच महाव्रत का परिणाम भी आस्रव और विकल्प है, बन्ध का कारण है। और तीर्थंकरगोत्र जिस भाव से बँधे, वह भी धर्म नहीं। धर्म नहीं है, उसका जो अर्थ करना हो करो। धर्म नहीं का अर्थ अधर्म है। यहाँ लिखा है न? आत्म अवलोकन, चिद्विलास में। चिद्विलास में लिखा है। दीपचन्दजी... दीपचन्दजी ने चिद्विलास, अनुभव प्रकाश में लिखा है। गृहस्थ को अधर्मस्वभाव है। थोड़ा धर्म है और थोड़ा अधर्म है। ऐसा लिखा है। मूल पाठ, श्लोक है। समझ में आया? जितना पुण्यभाव है, जितना अव्रतभाव है, इतना उसको अधर्म है। और आत्मा का त्रिकाल ज्ञायकभाव भगवान आत्मा, उसका आश्रय करके जितनी शुद्धि प्रगट की है, उतना धर्म है। समझ में आया? पंचाध्यायी में लिया है। कहो, समझ में आया? ये कहते हैं, सम्मेदशिखर का क्या करना? सम्मेदशिखर परद्रव्य है, वह अपना द्रव्य नहीं। लाख, करोड़ बार सम्मेदशिखर की यात्रा करे तो शुभभाव होगा, राग होगा। उसमें संवर, निर्जरा और सम्यग्दर्शन होगा नहीं। नन्दकिशोरजी! ऐसा मार्ग है।

मुमुक्षु : पाप से तो बच जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व का पाप नहीं है? राग धर्म है, ऐसी मान्यता मिथ्यात्व है। वह बड़ा पाप नहीं है? राग होता है और मानता है कि हमारे धर्म होता है। तो आस्रव को धर्म माना, आस्रव को संवर माना, वह मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? मिथ्यात्व की पुष्टि होती है। उसमें धर्म-बर्म कुछ होता नहीं।

यहाँ कहते हैं, अहो! भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध परमात्मा। पूर्ण दशा। यहाँ तो कहा था, मोक्षमार्ग है, वह अपूर्ण शुद्ध है और परमात्मा पूर्ण शुद्ध है। पूर्ण शुद्धता भी अपने स्वद्रव्य के आश्रय से होती है। समझ में आया? और **परम योगीश्वर जो उत्कृष्ट योग्य ध्यान के करनेवाले मुनिराजों के लिए कहूँगा।** ऐसा आचार्य कहते हैं। क्या? महा धर्मात्मा सन्त, जिसने अपने शुद्ध स्वरूप में योग जोड़ दिया है। योगी। योग-अपनी निर्मल परिणति से निर्मल अपने ज्ञायकभाव में जोड़ दी है। वह योग। उस योग को साधनेवाला योगी। समझ में आया? ऐसा करते हैं न? कुम्भक, रेचक और फलाना, वह योग नहीं। यहाँ तो भगवान आत्मा पूर्ण चैतन्य आनन्द का नाथ, आनन्द की मूर्ति, उसमें जिसने अपनी निर्मल पर्याय जोड़ दी है। समझ में आया? अन्तर में जोड़ दी है, वह योग। और योग को करनेवाला योगी। तो योगी में उत्कृष्ट तो मुनि है। सम्यग्दृष्टि और श्रावक भी योगी तो है, परन्तु अल्प योगी हैं। समझ में आया? मुनि उत्कृष्ट योगी है।

कहते हैं, **परम योगीश्वर जो उत्कृष्ट योग्य ध्यान के करनेवाले मुनिराजों के लिए कहूँगा।** उनके लिये कहूँगा। तेरा स्वभाव तो अन्तर के आश्रय से प्राप्त हो, उतना तेरा मोक्ष का मार्ग है, ऐसा कहूँगा। **कैसा है पूर्वोक्त देव? जिसके अनन्त और श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन पाया जाता है,...** परमात्मा... मोक्ष की बात चलती है न? तो जिसमें अनन्त... अनन्त... अनन्त ज्ञान है। सर्वज्ञ हुआ, पूर्ण ज्ञान हुआ, पूर्ण दर्शन हुआ, ऐसा जिसके **पाया जाता है,...** और **विशुद्ध है-कर्ममल से रहित है,...** पाठ में है न? वह शुद्ध है। आखिर का शुद्ध शब्द है न? पहली पंक्ति। उसका अर्थ ऐसा कहा है, अठारह दोष रहित परमात्मा हैं। उनको क्षुधा नहीं, तृषा नहीं, रोग नहीं। समझ में आया? पानी पीते नहीं, आहार करते नहीं। क्षुधा, तृषा का दोष लगाना और उसको देव कहना, वह देव की स्थिति के स्वरूप की खबर नहीं। समझ में आया? यह टीका में लिखा है, भाई! उसका अर्थ यहाँ ऐसा किया। अठारह दोषरहित लिखा है? अठारह दोषरहित लिखा है। चिह्न किया है। संस्कृत टीका में है।

देव किसको कहते हैं? अठारह दोष नहीं है। मिथ्यात्व, अज्ञान, राग-द्वेष, मोह नहीं है। वह तो नहीं है, वह तो ठीक है। नाम नहीं दिये हैं। अन्तर है। श्वेताम्बर अठारह कहते हैं और दिगम्बर अठारह कहते हैं, उसमें बहुत अन्तर है, पूरा फर्क है। क्षुधा, तृषा,

श्वेताम्बर में हैनहीं। वह तो क्षुधा, तृषा रोग मानते हैं। केवली को भी रोग मानते हैं। महावीर को रोग हुआ तो गौशाला से लेश्या डाली और रोग हुआ, ऐसा भगवती शास्त्र में पाठ है। वह बात सत्य नहीं है। भगवान को रोग होता ही नहीं। ऐसी असाता रहे ? इतना आगे बढ़कर, करते... करते... करते... गुणश्रेणी करते-करते केवलज्ञान हुआ (और) असाता रह गयी कि शरीर में रोग हो ? उसने तत्त्व को जाना नहीं। समझ में आया ? यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है। वह मानते हैं कि क्षुधा लगी थी और आहार लिया। समझ में आया ? रोग हुआ न, रोग ? बाद में एक मुनि थे। मुनि तो बहुत रो पड़े कि अरे.. ! मेरे भगवान को रोग हुआ। छह महीने में देह छूट जाएगा। ऐसा आता है। एक मुनि बहुत रो पड़े। भगवान ने बुलाया। जाओ !

मुमुक्षु : भगवान के समय में मुनि ऐसे थे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा माना उन्होंने। और मुनि को ऐसा हो जाए कि छह महीने में भगवान का काल हो जाएगा ? भगवान को तो अभी तीस वर्ष रहना है। गौशाला ने कहा, छह महीने में काल हो जाएगा। उसे शंका हो गयी थी। कहो ऐसे मुनि ? बात ही सब कल्पित है। समझ में आया ? भगवान ने एक मुनि को कहा, सिंह अणगार को, उसका नाम सिंह अणगार। सिंह अणगार को बुलाओ कि तुम्हारे गुरु बुलाते हैं। वह वाड़ी में रोते थे। वाड़ी समझे ? वाड़ी होती है न ? खेत में। वाड़ी-ये बाग। दूर जाकर रोते थे। अरे ! भगवान का छह माह में काल होगा। हाय... हाय... ! भगवान ने बुलाया कि जाओ बुलाओ। अरे ! सिंहा। मैं अभी तीस वर्ष रहूँगा। जाओ, मेरे लिये रेवती के यहाँ भोजन बनाया है, वह मत लाना। परन्तु उसके अश्व के लिये बनाया है ऐसा आहार लाना। टीका में तो माँस का अर्थ किया है। माँस मुनि को होता है ? समकिती को माँस नहीं होता है। बात तो सब गड़बड़ी कर दी।

आया, फिर आहार लेने को गया। एक लाया तो कहा, यह आहार नहीं। तो कौन सा ? भगवान ने कहा, दूसरा आहार है। कौन जाननेवाला है ? भगवान जाननेवाला है। ओहो ! आहार दिया और परित संसार किया। मुनि को आहार देकर रेवती ने संसार का नाश कर दिया। ऐसा होता ही नहीं। एक-एक बात झूठ है। पर को आहार देने में संसार का नाश

होता नहीं, शुभभाव होता है। क्योंकि परद्रव्य आश्रय वह बात है। यहाँ आया न? '**परदव्वादो**'। चाहे तो तीन लोक के नाथ तीर्थंकर जब छद्मस्थ हो, छद्मस्थ होते हैं न? उसको आहार देते हैं तो भी शुभभाव होता है, भव का नाश नहीं। ऐसी बात है। समझ में आया? परद्रव्य चाहे तो तीर्थंकर जब छद्मस्थ थे, (तब) आहार लेने को जाते थे। केवलज्ञान के बाद आहार नहीं। आहार लिया। जाते थे। मुनि आये। ओहो! धन्य अवतार! हमारे आँगन में कल्पवृक्ष आया। समझ में आया?

जैसे श्रेयांसकुमार। श्रेयांसकुमार। ऋषभदेव भगवान गये। पहले तो उसको स्वप्न आया था कि मेरे पास कोई कल्पवृक्ष आता है। निमित्तज्ञानी को पूछा कि यह क्या है? आज भगवान तेरे घर पधारेंगे। ऐसा स्वप्न का फल है। श्रेयांसकुमार थे। चरमशरीरी आखिरी का देह। राजकुमार बहुत सुन्दर। भगवान आये। स्वप्न में तो आया था। ओहो! कैसे आहार देना? मालूम नहीं। आहार कैसे देना उस विधि की खबर नहीं। ऐसे नजर करते जातिस्मरण हो गया। भगवान पर नजर करते-करते जातिस्मरण हो गया। राजकुमार। सोने की नगरी जैसा शरीर। बहुत उज्ज्वल सुन्दर शरीर। कमर पर बाँधकर आये थे, कमर पर कपड़ा बाँधकर भगवान के पास आये। कैसे आहार देना मालूम नहीं। सुना नहीं। भगवान का उपदेश आया नही था। अभी तो पहली बार था। ऐसे दृष्टि की तो जातिस्मरण (हो गया)। आठ भव पहले... ओहो! मैं पत्नी थी और वे मेरे पति थे। देखो! जातिस्मरण राजकुमार को! ये स्मृति। समझ में आया?

आठ भव पहले ऋषभदेव भगवान का आत्मा मेरा पति था। मैं पत्नी थी। इतना ख्याल राजकुमार को आ गया। आत्मा में जितनी निर्मलता होती है, तब जातिस्मरण होता है। समझ में आया? आहाहा! ओहोहो! मुनि को आहार दिया। गन्ने का रस? क्या (कहते हैं)? गन्ना। गन्ने का रस था। तिष्ठ... तिष्ठ... पधारो पधारो महाराज! देव वृष्टि हुई। अहो दानं! अहो दानं! शुभभाव है। ऐई..!

मुमुक्षु : दानरूप धर्म तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म अर्थात् व्यवहार, पुण्य। ऐसी बात है। यही तो चलता है, मोक्ष अधिकार में तो वह बात चली है। जितना परद्रव्य पर लक्ष्य जाए, चाहे तो तीर्थंकर

हो या चाहे तो सच्चे मुनि हो, उनको आहार देने में शुभभाव ही होगा। संवर, निर्जरा धर्म स्वद्रव्य के आश्रय से होता है। परद्रव्य के आश्रय से होता नहीं। यह वीतराग का महासिद्धान्त। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? आहार दिया। अहो दानं! देवों ने भी प्रशंसा की, परन्तु वह शुभभाव है। अपने द्रव्य के आश्रय से जितना दर्शन, ज्ञान, चारित्र हुआ, वह मोक्ष का मार्ग। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, देव को क्षुधा नहीं होती। सुद्ध है न पाठ? '**अणंतवरणाणदंसणं सुद्धं**'। शुद्ध का अर्थ क्षुधा नहीं, तृषा नहीं, रोग नहीं। सर्वज्ञ अरिहंतदेव को रोग नहीं, क्षुधा नहीं, तृषा नहीं। पूर्णानन्द का नाथ को भी क्षुधा हो तो किसको क्षुधा मिटे? आहाहा! देव है स्वर्ग का, तैंतीस सागर की स्थिति। ३३००० वर्ष के बाद आहार की इच्छा उत्पन्न होती है। ३३००० वर्ष के बाद। तो भगवान तीर्थंकर सर्वज्ञदेव है, केवली है। उसको क्षुधा की इच्छा उत्पन्न होती है? क्षुधा होती है? समझ में आया? ऐसा भगवान पूर्णानन्दस्वरूप श्रेष्ठ शुद्ध। आहार, पानी, रोग कुछ नहीं। ऐसे देव **कर्ममल से रहित है,...** कर्म का मैल उनको है नहीं।

कैसा (परमात्मा) है पूर्वोक्त देव? जिसके अनन्त और श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन पाया जाता है,... जिन्हें बेहद अपरिमित ज्ञान और दर्शन है। ज्ञानपर्याय इतनी प्रगट हुई है, अन्तर गुण के आश्रय से, भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति स्वभाव सत्त्व, उसमें घुस जाने से इतनी पर्याय में अनन्तता आ गयी कि अपरिमित ज्ञान और दर्शन श्रेष्ठ हो गया। उससे उत्कृष्ट अन्य ज्ञान रहा नहीं। आहाहा! ऐसे परमात्मा को देव और परमात्मा कहते हैं। परमात्मा समझने में ही बड़ी भूल है। समझ में आया? आहा! अपने बोधपाहुड़ में पहले आ गया है न? ददाति इति देव। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष दे वह देव। डालचन्दजी! ऐसी गाथा आ गयी। उसका अर्थ—जो तीर्थंकर होते हैं, महा अहिंसा का परिणाम अपने में वीतरागी दशा उत्पन्न हुई है, वह धर्म। और उसमें कोई विकल्प बाकी रहा था, वह पुण्य है। और पुण्य से उसको समवसरण की लक्ष्मी मिली, वह अर्थ। और बाहर का भोग मिला वह भोग। यह सब साधन उसके पास थे। समझ में आया? ऐसे देव को जो उनकी पहिचान करके माने तो उसको अपनी आत्मा में पवित्रता भी प्रगट होती है, उसको पुण्य-शुभभाव भी होता है, उसको लक्ष्मी भी मिलती है और उसको भोग भी मिलता है। समझ में आया?

नियमसार में लिया है, भाई ! धर्मध्यान से दोनों मिलता है–शुद्धता और स्वर्ग। ऐसा नियमसार में पाठ है। यहाँ भी आयेगा। समझ में आया ? निश्चय धर्मध्यान है, अपना पवित्र भगवान, उसमें एकाकार होकर जो निश्चय धर्मध्यान है उससे मुक्ति होगी। और व्यवहार धर्म अर्थात् बीच में विकल्प आया है, उसको स्वर्ग मिलेगा। '**कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमोनमः**'। आता है या नहीं उसमें ?

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमोनमः॥

जो वास्तविक परमात्मा और अपना ॐ स्वरूप। अपना आत्मा ही ॐ स्वरूप है। समझ में आया ? ओंकार का दो रूप। एक विकल्प वाणीरूप और एक स्वभावरूप। ऐसा ॐ भगवान आत्मा–अपना निज स्वरूप, उसका जो ध्यान करता है और उसकी एकाग्रता करता है, उसको मुक्ति होती है। उसमें थोड़ा विकल्प परद्रव्य आश्रय रह जाए तो उससे '**कामदं**' काम मिलता है, विषय के साधन। धर्मी की वासना विषय पर नहीं है, यह तो मिलता है, उतनी बात है। सम्यग्दृष्टि तो विषय के साधन को साधन मानते ही नहीं और विषय में सुख तीन काल में मानते नहीं। आहा ! धर्मी सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में इन्द्र के सुख को भी दुःख मानता है। सुख तो अपने आनन्द में है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उसको भी समकिती तो दुःख मानते हैं। समझ में आया ? ऐसी चीज़ है, भैया ! वीतराग का मार्ग तो ऐसा है। तेरा मार्ग ऐसा है।

परमात्मा को **श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन पाया जाता है,...** उत्कृष्ट पद। उससे ऊपर दूसरा कोई ऊँचा पद नहीं है।

भावार्थ - इस ग्रन्थ में मोक्ष को जिस कारण से पावे... देखो ! **मोक्ष को जिस कारण से पावे...** जिस कारण से मोक्ष मिले, उसका अधिकार। **और जैसा मोक्षपद है, वैसा वर्णन करेंगे,...** दोनों का वर्णन (करेंगे)। मार्ग का और मोक्ष का, दो का वर्णन है। समझ में आया ? **इसलिए उसी रीति उसी की प्रतिज्ञा की है**। उसकी प्रतिज्ञा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने की, मैं मोक्षमार्ग कहूँगा और मोक्ष कहूँगा। पुनः **योगीश्वरों के लिए कहेंगे,...** धर्मात्मा जिसकी योग्यता अपने में उग्रपने ध्यान में लगी है, उनको कहूँगा।

मुमुक्षु : हम तो गृहस्थ हैं, हमारे लिये नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : है, नीचे है, सुनो! आता है या नहीं ?

इसका आशय यह है कि ऐसे मोक्षपद को शुद्ध परमात्मा के ध्यान द्वारा प्राप्त करते हैं,... क्या कहते हैं ? देखो! स्पष्टीकरण कर दिया। ऐसे मोक्षपद को-केवलज्ञान, सिद्धपद को, अरिहन्तपद को शुद्ध परमात्मा के ध्यान द्वारा प्राप्त करते हैं। लो! परमात्मा वह पर नहीं। निज परमात्मा परम स्वरूप। समझ में आया ? पंचम गति का प्रगट करनेवाला धर्मात्मा पंचमभाव का स्मरण करते हैं। आता है न ? भाई! नियमसार... नियमसार में। ओहो! पंचमभाव को पंचम गति की भावना रखनेवाला मोक्ष की भावना रखनेवाला पंचमभाव (का स्मरण करते हैं)। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक जो पर्याय है, उससे रहित पंचमभाव की स्मृति करते हैं। समझ में आया ? पर परमात्मा को स्मरण नहीं करते हैं, पर्याय का स्मरण नहीं करते हैं, ऐसा कहते हैं। पंचमभाव। समझ में आया ? त्रिकाल पंचमभाव का स्मरण करने से पंचम गति मिलती है। पंच परावर्तन-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भाव। पंच परावर्तन का नाश करने को और पंचम गति प्राप्त करने को पंचमभाव का आश्रय करने से उसका नाश होता है और (पंचम गति की) उत्पत्ति होती है। समझ में आया ? कठिन बात, भाई!

मोक्षपद को शुद्ध परमात्मा के ध्यान द्वारा प्राप्त करते हैं,... अल्प शब्द लिये। मोक्ष का मार्ग क्या ? मोक्षपद को शुद्ध परमात्मा के ध्यान द्वारा प्राप्त करते हैं, दोनों ले लिये। अपना निज आनन्दस्वरूप भगवान, उसके ध्यान से ही मोक्ष होता है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आत्मा का ध्यान है। आहाहा!

मुमुक्षु : टूंका मतलब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : टूंका-संक्षेप। हमारी गुजराती भाषा है। थोड़े में। थोड़े में, संक्षेप में यह कहने में आया है कि अपने ध्यान से मोक्ष पाते हैं। इतना थोड़ा शब्द पड़ा है। 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो।' वह आता है या नहीं ? छहढाला में आता है। 'छोड़ी सकल जगत द्वंद्व फंद निज आतम उर ध्यावो।' आहाहा! अरे! लोगों को क्या चीज़ (है यह मालूम नहीं)। कहाँ तीर मारना है (उसकी खबर नहीं)। अपने आया था न ?

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान का तीर तो अन्दर ध्येय में लगाना है। आहाहा! उसको मति और श्रुतज्ञान कहते हैं। जो ज्ञान की पर्याय अपने में-ध्रुव में लग जाए, उसको ज्ञान की पर्याय कहते हैं। समझ में आया?

कहते हैं, निज शुद्ध परमात्मा का ध्यान। **उस ध्यान की योग्यता योगीश्वरों के ही प्रधानरूप से पाई जाती है,...** प्रधान है, ऐसा कहा है। इसने निकाल दिया होगा। इसमें गृहस्थ का है न? भाई! इसमें वह निकाल दिया है। क्योंकि ... गृहस्थ थे न। गृहस्थ को नहीं होता और गौण है, वह निकाल दिया है। अर्थ में लिया ही नहीं। .. का ज्ञान था न। वह अर्थ ही नहीं किया है। गृहस्थाश्रम था तो, गृहस्थाश्रम में...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आयेगा। गौणपने धर्मध्यान... वास्तव में तो शुद्धोपयोग वह धर्मध्यान है और वास्तव में तो शुद्ध उपयोगी स्वभाव ही आत्मा है। शुद्ध उपयोगी स्वभाव वह आत्मा है। शुभपरिणाम आत्मा नहीं। जिसको सम्यग्दर्शन में आत्मा की प्राप्ति होती है, वह शुद्ध उपयोग परिणाम से प्राप्त होती है। लाख बात करे, चर्चा-फर्चा (करे) कि शास्त्र में ऐसा आया है। समझ में आया? क्योंकि आत्मा ही अपने स्वभाव से प्रत्यक्ष ज्ञाता है। और अपना शुद्ध उपयोग स्वभावी आत्मा है। तो आत्मा की प्राप्ति जब सम्यग्दर्शन में होती है, तब शुद्ध उपयोग में ही प्राप्त होता है। क्योंकि शुद्ध उपयोगी आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? लोगों को मालूम नहीं क्या चीज़ है अन्दर।

वस्तु त्रिकाली ज्ञायक भगवान, उसमें जब दृष्टि जमी तो शुभ-अशुभभाव का अभाव हुआ। शुद्ध उपयोग में। समझ में आया? आत्मा का स्वभाव ही ऐसा है। अलिंगग्रहण में आया है। अलिंगग्रहण में। जैसे सूर्य में कलंक नहीं, सूर्य में कलंक-मैल नहीं, वैसे भगवान में शुभाशुभ परिणाम मैल नहीं। वह तो शुद्ध उपयोग स्वभावी आत्मा है। ऐसा दसवाँ बोल है। बीस बोल है न? अलिंगग्रहण के बीस बोल। १७२ गाथा। १७२, प्रवचनसार। दसवाँ बोल। सूर्य में कलंक नहीं, वैसे भगवान में कलंक नहीं। अर्थात् शुभ-अशुभ परिणाम तो कलंक है। उस कलंकरहित शुद्ध उपयोग स्वभावी आत्मा है। तो आत्मा की प्राप्ति जब सम्यग्दर्शन में होती है तो उसका अर्थ यह हुआ कि शुद्ध उपयोग स्वभाव

हुआ तो प्राप्ति हुई। बात तो ऐसी है। समझ में आया? अलिंगग्रहण में है या नहीं? हिन्दी नहीं है, गुजराती है। अलिंगग्रहण का सब अर्थ आ गया है। गये साल। गये साल वह था। लो, वही निकला, १७२। देखो! **जिस लिंग में अर्थात् उपयोग नामक लक्षण में ग्रहण अर्थात् सूर्य की भाँति उपराग (मलिनता, विकार) नहीं है...** देखो! भगवान आत्मा में, जैसे सूर्य में विकार नहीं। सूर्य का कोई किरण विकारवाला नहीं होता, कोयलेवाला कोई किरण प्रगट नहीं होता। कोयला। सूर्य में से ऐसा काला (किरण) निकले? किरण सफेद-श्वेत होता है। मलिनता नहीं। अलिंगग्रहण। **इस प्रकार 'आत्मा शुद्धोपयोगस्वभावी है' ऐसे अर्थ की प्राप्ति होती है।** आत्मा तो शुद्ध उपयोग स्वभावी ही आत्मा है। पुण्य और पाप का विकल्प, वह आत्मा नहीं। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा? शुद्ध उपयोगस्वभावी आत्मा। उसका अर्थ क्या हुआ? जिसको सम्यग्दर्शन में आत्मा की प्राप्ति होती है, तो आत्मा तो शुद्ध उपयोगी है, तो शुद्ध उपयोग में ही प्राप्त होता है। समझ में आया? नन्दकिशोरजी! देखो न! **'आत्मा शुद्धोपयोगस्वभावी है' ऐसे अर्थ की प्राप्ति होती है।** आहाहा!

मुमुक्षु : हमारे गले में बैठा दो, महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन बैठाये? ... उसकी होती है या नहीं? आहाहा! देखो!

भगवान आत्मा किसको कहते हैं परमेश्वर? और ऐसा है। वह तो शुद्ध उपयोगस्वभावी आत्मा है। उसका अर्थ क्या हुआ? कि आत्मा की प्राप्ति सम्यग्दर्शन में होती है, आत्मज्ञान होता है, आत्मदर्शन होता है, आत्मविद्या प्राप्त होती है। आत्मविद्या प्राप्त होती है तो आत्मा तो शुद्ध उपयोगी है, तो शुद्ध उपयोग रूपी विद्या से प्राप्त होता है। आहाहा! समझ में आया? पण्डितजी!

मुमुक्षु : ये क्रिया तो समझ में आ गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो दूसरी क्रिया क्या है? दूसरी क्रिया आत्मा की नहीं। पुण्य आदि शुभभाव आत्मा की नहीं और आत्मा नहीं, वह तो आस्रव है। वह तो आस्रवतत्त्व है। आहाहा! यहाँ तो आत्मा शुद्ध उपयोग स्वभावी कहा। समझ में आया? और छठवाँ बोल है न? छठवाँ। **लिंग के द्वारा नहीं किन्तु स्वभाव के द्वारा ग्रहण होता है, वह**

अलिंगग्रहण है, इस प्रकार 'आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता है'... आत्मवस्तु प्रत्यक्ष ज्ञाता है, ऐसा कहते हैं। उसका अर्थ क्या हुआ ? कि सम्यग्दर्शन में आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञान से प्रत्यक्ष होता है, उपयोग में शुद्ध उपयोग होता है। ऐसा आत्मा है। आहाहा! फिर से, आत्मा शुद्ध उपयोगी और प्रत्यक्ष है। दो बोल लिये। देखो! है न ? छठवें में, प्रत्यक्ष। देखो! अपने स्वभाव के द्वारा जिसका ग्रहण है। आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। एक बात। आत्मा परोक्ष, वह आत्मा नहीं। एक बात।

प्रत्यक्ष ज्ञाता है, उसका अर्थ क्या हुआ ? मति और श्रुतज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष होता है, ऐसा आत्मा का स्वरूप है। और दूसरी बात कि आत्मा शुद्ध उपयोगी है। तो प्रत्यक्षपना आया और शुद्ध उपयोगी आया। आहाहा! आचार्य ने तो कमाल कर दिया है न! देखो न! आत्मा उसे कहें, आत्मा उसे कहें कि जिसमें आत्मा सीधा प्रत्यक्ष हो। राग और निमित्त की अपेक्षा छोड़कर, सीधे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा प्रत्यक्ष हो, वह आत्मा। प्रत्यक्ष आत्मा और शुद्ध उपयोगी आत्मा। तो वह जो प्रत्यक्ष मतिज्ञान हुआ, वह शुद्ध उपयोग है। आहाहा! पण्डितजी! आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! बात तो यही है, उसे निर्णय करना पड़ेगा। और ऐसा निर्णय नहीं करेगा तो स्वरूप ओर की अनुभव दृष्टि होगी नहीं। समझ में आया ? विकल्प द्वारा भी ऐसा आत्मा है, ऐसा निर्णय करे, तब विकल्प छूटकर निर्विकल्प अनुभव होगा। नहीं तो निर्विकल्प का अनुभव होगा नहीं। समझ में आया ? आहाहा!

भगवान आत्मा राग और मन के पर्दे में रहे, वह आत्मा नहीं। भगवान आत्मा सीधा प्रत्यक्ष हो, ऐसा उसका स्वभाव है। प्रत्यक्ष है, ज्ञाता है और शुद्ध उपयोगी है। ओहोहो! वस्तु शुद्ध उपयोगी है। तो वस्तु की प्राप्ति जब सम्यग्दर्शन में होती है, उसका अर्थ यह हुआ कि वह शुद्ध उपयोग से ही प्राप्त होता है। क्योंकि आत्मा शुद्ध उपयोगी है। आहाहा! बहुत गड़बड़ अभी चल रही है। तकरार... तकरार। अरे! वाद-विवाद करे तो अन्धा। 'सद्गुरु कहे सहज का धन्धा, वादविवाद करे सो अन्धा।' समझ में आया ? मार्ग ऐसा है। आहाहा! वह अलिंगग्रहण का आया था न ? १७२, प्रवचनसार। बीस बोल में छठवाँ बोल और दसवाँ बोल, दो की व्याख्या हुई।

यहाँ कहा न ? कि शुद्ध परमात्मा ध्यान से प्राप्त होता है। क्या (कहा) ? देखो ! ध्यान से प्राप्त होता है। ध्यान में क्या ? शुद्ध उपयोग हुआ और प्रत्यक्ष हुआ। आहाहा ! समझ में आया ? कोई सूक्ष्म संकल्प, विकल्प से भी आत्मा का पता लग जाए, वस्तु ही ऐसी नहीं है, ऐसा कहते हैं। वस्तु ऐसी नहीं है। वस्तु भगवान आत्मा तो प्रत्यक्ष हो जाए, ऐसा उसका स्वभाव ही है। समझ में आया ?

एक बार कहा था। ४७ शक्ति का वर्णन किया न ? उसमें प्रकाश नाम का एक गुण है। ४७ शक्ति है न ? प्रकाशशक्ति। प्रकाशशक्ति का क्या गुण ? प्रकाशगुण का क्या गुण ? आत्मा में एक प्रकाश नाम का अनादि-अनन्त गुण है। वह गुण गुणी के आधार से है। गुणी की जब दृष्टि हुई तो प्रकाशगुण का कार्य क्या हुआ ? प्रत्यक्ष हो गया। समझ में आया ? व्यवहार का विकल्प से प्रत्यक्ष निश्चय होता है, वह बात यहाँ नहीं रहती। व्यवहार पहले, निश्चय बाद में, (ऐसा) कुछ है ही नहीं। व्यवहार पहला-फहेला कैसा ? भगवान आत्मा आनन्द का धाम सिद्ध समान परमात्मा। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' आता है न ? बनारसीदास में। 'चेतनरूप अनूप अमूरत सिद्ध समान सदा पद मेरो, मोह महातम आतम संग किया परसंग महातम घेरो, ज्ञानकला उपजी अब मोकू, कहूं गुण नाटक आगम केरो, तासू प्रसाद सधे शिवमारग वेगे मिटे घटवास वसेरो।' पण्डितजी ! बनारसीदास का है। बनारसीदास, टोडरमल बहुत... पण्डितों ने शास्त्र का रहस्य खोल दिया है। समझ में आया ? अभी गड़बड़ हो गयी। आहाहा !

कहते हैं, समझ में आया ? अपना स्वरूप भगवान शुद्ध। पर का बसेरा छूट जाए ऐसा उपाय ज्ञानकला उपजी अब मोकू। मैं तो सिद्ध समान हूँ। द्रव्य। द्रव्य सिद्ध समान है न ! ऐसी प्रतीति हुई तो पर्याय में शुद्धता आ गयी। वह शुद्धता शुद्ध उपयोग की और वह शुद्धता प्रत्यक्ष ज्ञान की। आहाहा ! समझ में आया ? शुद्ध उपयोग यहाँ आचरण की अपेक्षा है। ज्ञान प्रत्यक्ष की अपेक्षा से है। समझ में आया ? बाहर उपयोग है न ? बाहर उपयोग, उसमें तो जानना-देखना उतनी ही बात है। परन्तु शुद्ध-अशुद्ध उपयोग है, वह आचरण की अपेक्षा से है। पाँच ज्ञान, तीन अज्ञान, चार दर्शन। उपयोग तो जानना-देखनारूप मात्र, बस इतना। शुद्ध उपयोग और अशुद्ध उपयोग का दो भेद-शुभ-अशुभ, वह तीनों

आचरण की अपेक्षा से है। शुद्ध उपयोग आचरण का है। मात्र जानना-देखना, ऐसा नहीं। समझ में आया?

अपने में—ज्ञायक में पुण्य-पाप के विकल्प का लक्ष्य, आश्रय छोड़कर स्वभाव का आश्रय करके जो शुद्ध उपयोग आचरणरूप हुआ, वह आत्मा। उसमें ज्ञान प्रत्यक्ष हुआ, वह ज्ञान। ज्ञान और आचरण, ज्ञान और चारित्र दोनों साथ में आ गये। समझ में आया? आहाहा! वह द्रव्यसंग्रह में लिया है, भाई! द्रव्यसंग्रह। बाह्य उपयोग, वह आचरण नहीं। द्रव्यसंग्रह टीका में यह बात है। बाह्य उपयोग, वह आचरण नहीं। शुद्ध-अशुद्ध उपयोग आचरण में आता है। समझ में आया? द्रव्यसंग्रह में टीका बहुत अच्छी है।

यहाँ तो अपने (यह है), मोक्षपद को शुद्ध परमात्मा के ध्यान से प्राप्त करता है। इतना। ध्यान तो स्वरूप पर जाए तब ध्यान होता है कि परलक्ष्य से ध्यान होता है? आता है या नहीं? जिनबिम्ब के दर्शन से निद्धत निकाचित कर्म का नाश होता है, ऐसा धवल में आता है। तो रतनचन्दजी लिखते हैं, देखो! भगवान का जिनबिम्ब का दर्शन से भी निद्धत निकाचित कर्म का टुकड़ा होता है। जैसे सिंह हाथी के कुम्भस्थल में थापा मारे तो फुरचा उड़ जाता है। सिंह... सिंह। क्या कहते हैं? शेर। सिंह हाथी के कुम्भस्थल में थापा मारे तो टुकड़े को जाते हैं। ऐसे जिनबिम्ब के दर्शन से निद्धत और निकाचित कर्म का टुकड़ा होता है, ऐसा शास्त्र में लिखा है। उसका अर्थ वह करते हैं। परन्तु ये जिनबिम्ब तो पर है। पर का आश्रय करने से तो विकल्प उठता है। परद्रव्य का आश्रय तो राग है। उससे निद्धत निकाचित कर्म नाश होता है? समझ में आया? अपना जिनबिम्ब। वह अपने बोधपाहुड़ में आ गया। बोधपाहुड़ में आ गया। जिनबिम्ब वीतरागी रसकन्द वज्र की मूर्ति। अरूपी निराकार वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श रहित शुद्ध आनन्द का धाम वीतरागी बिम्ब आत्मा द्रव्य है, उसके दर्शन से शुद्ध उपयोग होता है, प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, मिथ्यात्व का टुकड़ा हो जाता है। समझ में आया? वह परद्रव्य हुआ, उससे क्या होता है? देखो यहाँ, '**परदव्वादो दुग्गइ**' ऐसा कहा है। १६वीं गाथा में तो ऐसा कहा।

उस ध्यान की योग्यता योगीश्वरों के ही प्रधानरूप से पाई जाती है,... उस ध्यान की योग्यता मुनियों को मुख्य है। **गृहस्थों के यह ध्यान प्रधान नहीं है**। मुख्य नहीं, गौणपने

है। चौथे, पाँचवें में भी शुद्ध उपयोग का ध्यान गौनपने है। मुनियों को मुख्यपने है। मुनि को क्षण-पल में, क्षण-पल में सप्तम गुणस्थान का ध्यान आता है। क्षण में सातवाँ, क्षण में छठा। श्रावक, सच्चा श्रावक समकिती है। उसको भी ध्यानकाल में, सामायिक के काल में, सम्यग्दर्शन का भान है तो सामायिक काल में भी शुद्ध उपयोग का ध्यान आ जाता है। आहाहा! समझ में आया? ... उसमें निकाल दिया है, उसमें नहीं है। श्रीमद् स्वयं गृहस्थ थे न। इसलिए गौण करना पोसाता नहीं। परन्तु बात तो सच्ची है। मुनि को भी ध्यान है। ओहो! तीन कषाय का अभाव, वीतरागी बिम्ब में जम गये। अन्तर्मुहूर्त में हजारों बार तो सप्तम गुणस्थान आता है। मुनि भावलिंगी में आनन्द आता है। आनन्द तो है लेकिन... समझ में आया? वह मुख्यपने ध्यान कहने में आता है। श्रावक और समकिती को गौणपने ध्यान (कहने में आता है)। क्योंकि ध्यान में उसको शुद्ध उपयोग कभी-कभी होता है। कभी-कभी होता है। और मुनि को तो सदा सप्तम गुणस्थान में आता है। ऐसे झूले में झूलते हैं। मुख्यपने मुनि को उपदेश करते हैं, गौणपने समकिती श्रावक का भी उसमें उपदेश आता है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-३

आगे कहते हैं कि जिस परमात्मा को कहने की प्रतिज्ञा की है, उसको योगी ध्यानी मुनि जानकर, उसका ध्यान करके परम पद को प्राप्त करते हैं –

जं जाणिऊण जोई जोअत्थो जोइऊण अणवरयं।
अव्वाबाहमणंतं अणोवमं लहइ णिव्वाणं।।३।।

यत् ज्ञात्वा योगी योगस्थः दृष्ट्वा अनवरतम्।
अव्याबाधमनंतं अनुपमं लभते निर्वाणम्।।३।।

योगस्थ योगी जिसे जान सतत सु अनुभव कर अमित।
निर्वाण अनुपम अबाधित पाते उसे मैं कहूँ अब।।३।।

अर्थ – आगे कहेंगे कि परमात्मा को जानकर योगी (मुनि) योग (ध्यान) में स्थित होकर निरन्तर उस परमात्मा को अनुभवगोचर करके निर्वाण को प्राप्त होता है। कैसा है निर्वाण? 'अव्याबाध' है, जहाँ किसी प्रकार की बाधा नहीं है। 'अनन्त' है, जिसका नाश नहीं है। 'अनुपम' है, जिसको किसी की उपमा नहीं लगती है।

भावार्थ – आचार्य कहते हैं कि ऐसे परमात्मा को आगे कहेंगे जिसके ध्यान में मुनि निरन्तर अनुभव करके केवलज्ञान प्राप्त कर निर्वाण को प्राप्त करते हैं। यहाँ यह तात्पर्य है कि परमात्मा के ध्यान से मोक्ष होता है।।३।।

प्रवचन-६३, गाथा-३ से ५, शनिवार, श्रावण शुक्ल १२, दिनांक १५-०८-१९७०

... चैतन्य भगवान आत्मा पूर्णानन्द सहजानन्दस्वरूप, उसको जानकर, जानकर ऐसे। जाने बिना एकाग्र कैसे हो? कहते हैं। जानकर, उसमें एकाकार होना। जोग उसमें लगाना। ऐसा ध्यानी ध्यान के विषे तिष्ठता हुआ। लो, यह मार्ग। चैतन्य प्रभु पूर्ण परम स्वरूप... दोपहर को चलता है पारिणामिकभाव। ३२० गाथा चलती है न। समझ में आया? अपना निज स्वरूप पूर्ण शुद्ध, जिसमें अनन्त-अनन्त सिद्धपर्याय का संग्रह है

अन्दर में। अनन्त-अनन्त मोक्षमार्ग की पर्याय का अन्दर संग्रह है। निज स्वभाव परम स्वरूप, उसका ध्यानकर, उसका ज्ञान कर। देखो! दूसरा ज्ञान नहीं (कहा)। दूसरा ज्ञान-शास्त्रज्ञान आदि ज्ञान नहीं।

अपना शुद्ध ध्रुव स्वरूप परम स्वरूप, उसमें एकाग्र होकर तिष्ठता हुआ, ध्यान विषे तिष्ठता हुआ। दृष्टा है न? '**जोइऊण**' है न? उसे देखकर। समझ में आया? '**जाणिऊण**' और '**जोइऊण**'। दृष्टा। दो शब्द पड़े हैं। और तीसरा शब्द योग। आत्मा... बहुत धीरज से (समझने जैसा है)। सूक्ष्म बात है। वह कोई बाहर से प्राप्त हो, ऐसी चीज़ नहीं। अरे! परमात्मस्वरूप जे शुद्ध है, उसको जानकर। एक बात। उसको देखकर और उसमें उपयोग स्थिर होकर। समझ में आया? ज्ञान, दर्शन, चारित्र तीनों आ गये। '**जोअत्थो**' उसमें रहे। उसमें रहकर। '**जोअत्थो**'। स्थ-त्याग विषे तिष्ठता हुआ। ऐसा है न? भगवान आत्मा आनन्दधाम चैतन्यबिम्ब, ऐसा जो ध्रुव ज्ञायकभाव, वही सार में सार जगत में चीज़ है। धर्मी को उपादेय करनेयोग्य हो तो यह एक चीज़ है। समझ में आया? उपादेय का अर्थ आदर के योग्य हो, अंगीकार करनेयोग्य हो, ध्यान करनेयोग्य हो तो वह एक चीज़ है। सेठ! यह क्या बताते हैं?

पूर्ण ध्रुव ज्ञायक चिदानन्द अनन्त आनन्द का धाम वह चीज़। निज परमात्मस्वरूप। समझ में आया? उसमें तिष्ठता हुआ। स्थिर होकर ज्ञाता-दृष्टा होकर, स्थिर होकर। **उस परमात्मा को अनुभवगोचर करके...** परमात्मा के आनन्द का अनुभवयोग्य करके। अनुभवगम्य लेकर। मोक्षप्राभृत है। आहा! अनुभव। आत्मा का स्वरूप जो है, उसका अनुसरण करके, आनन्द का वेदन करके, आनन्द का अनुभव करके लक्ष्य में आत्मा लिया तो आत्मा का आनन्द का अनुभव हुआ। सुखानुभवरूप आनन्द। समझ में आया? यह मोक्षमार्ग है। आहाहा! समझ में आया? **उस परमात्मा को अनुभवगोचर करके...** ज्ञान में गम्य करके, दृष्टा में दृश्य करके, स्थिरता में लीनता करके आनन्द का अनुभव करके। आहाहा! **निर्वाण को प्राप्त होता है**। लो!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : निरन्तर। निरन्तर है न? '**अनवरत**' कहा है न? निरन्तर पहले आया न? **स्थित होकर निरन्तर...** अन्तर पड़े बिना। समझ में आया? '**जाणिऊण**',

'जोअत्थो', 'जोइऊण', 'जोई', 'अणवरयं'।'अणवरयं' निरन्तर। ध्रुवस्वरूप भगवान को ध्येय बनाकर। समझ में आया? यह मूल विषय सूक्ष्म है। मोक्ष अधिकार लिया न? **अनुभवगोचर करके निर्वाण को प्राप्त होता है।** लो, मोक्ष फल। मोक्षमार्ग अन्तर आनन्द का ज्ञान, आनन्द की श्रद्धा, आनन्द का दृष्टा और आनन्द में लीन होकर आनन्द का अनुभव (करना)। आहाहा! समझ में आया? उसका फल निर्वाण है। इस परिणाम का फल मुक्ति / सिद्धपद है। निर्वाण को प्राप्त होता है।

कैसा है निर्वाण? 'अव्याबाध' है, जहाँ किसी प्रकार की बाधा नहीं है। वस्तु का आनन्द परमात्मदशा पूर्ण हुई, वहाँ किसी प्रकार का विघ्न-बाधा है नहीं। समझ में आया? अव्याबाध कहा न? अव्याबाध अनन्त। ओहो! अनन्त-अनन्त समाधिसुख में। ऐसा जो निर्वाण, उस निर्वाणस्वरूप भगवान, मोक्षस्वरूप आत्मा त्रिकाली मोक्षस्वरूपी आत्मा है। उसका शक्ति-स्वभाव मोक्ष ही है। उसकी शक्ति में एकाकार होकर व्यक्त में प्रगट मुक्ति होती है, उसमें कोई बाधा और विघ्न है नहीं। ऐसी दशा प्रगट हुई, अनन्त काल रहेगी। समझ में आया?

लोग कहते हैं न कि हमें सुख चाहिए। सुखी होना है, सुखी। सेठ! कहाँ सुखी होना है? सुखी होने का पंथ तो भगवान आत्मा में है। क्योंकि वह आनन्द और सुखस्वरूप ही आत्मा है। ऐसा आनन्द का धाम भगवान, उसका ज्ञान, उसको देखकर, उसमें एकाकार होकर स्थिर होता हुआ निरन्तर अपना अनुभव करता है, उसको निर्वाण पद की प्राप्ति होती है। लो, बहुत संक्षेप में मार्ग कहा। टूंका को क्या कहते हैं? संक्षेप में। संक्षेप में यह मार्ग है। 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो' आता है न, छहढाला में? जहाँ अनन्त आनन्द पड़ा है, जहाँ अनन्त शान्ति अर्थात् वीतरागता पड़ी है। जहाँ अनन्त-अनन्त गुण ध्रुवरूप एकरूप सदृश शक्ति पड़ी है। ऐसा भगवान आत्मा में ज्ञान करके, दर्शन उसको देख करके, उसमें लीन होकर निरन्तर उसका अनुभव करना, उसका नाम मोक्ष का मार्ग और उससे उसको मोक्ष अर्थात् निर्वाण की प्राप्ति होती है। इसके सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : फल? ये मोक्षफल।

मुमुक्षु : अव्याबाध...

पूज्य गुरुदेवश्री : अव्याबाध सुख। अनन्त-अनन्त आनन्द। अनन्त दर्शन, ज्ञान अनन्त सहित। आता है न श्रीमद् में? अनन्त-अनन्त समाधि सुख में। पर्याय में, हों! वस्तु तो आनन्दमूर्ति है। परन्तु उसमें एकाकार होकर पूर्ण आनन्द का अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद में पूर्ण हो गया, उसका नाम निर्वाण और मुक्ति कहने में आता है।

मुमुक्षु : एकाकार कौन हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय द्रव्य में (एकाकार हुई)। जो रागाकार थी, वह स्वभावाकार हुई। कहो, समझ में आया? जो पर्याय वर्तमान अवस्था विकार या परभाव आकार थी, वह स्वभावाकार उसमें एकाकार हुई। आहाहा! समझ में आया? मार्ग ऐसा है। उसको पहले ज्ञान, श्रद्धा करके निश्चित तो करना पड़ेगा या नहीं? निश्चित किये बिना अन्तर का अनुभव हो सकता नहीं।

कैसा है? **'अनन्त' है, जिसका नाश नहीं है।** विघ्न नहीं और नाश नहीं। पूर्ण दशा निर्वाण जहाँ प्राप्त हुआ, उसका अन्त कहाँ? वह तो त्रिकाल वैसी की वैसी अनन्त काल रहेगी। त्रिकाल तो वस्तु है ही। पर्याय में भी ऐसा (हो गया)। त्रिकाल के आश्रय पर्याय पूर्ण हुई, वह भी सादि-अनन्त वैसी की वैसी रहेगी। समझ में आया? **जिसको किसी की उपमा नहीं लगती है।** आहा! **'अणोवमं'** किसकी उपमा? सिद्ध का सुख सिद्ध जैसा। किसी की उपमा उसे लागू होती नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव सुखरूप दशा, उसको किसी दूसरे की उपमा है नहीं। वह उसके जैसा। अनन्त आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द। समझ में आया?

संसार का घी आदि का स्वाद का भी किसी पदार्थ के साथ उपमा मिलाकर कह सके नहीं। घी का स्वाद कैसा? बहुत मीठा। कैसा मीठा? शक्कर जैसा? गुड़ जैसा? उपमा ही नहीं है। तो शक्कर जैसी चीज़ ख्याल में आती है कि ऐसी मिठास है, फिर भी कोई बाह्य पदार्थ की उपमा से उसको घटित कर सके, ऐसा नहीं है। ये तो अतीन्द्रिय आनन्द! आहा! उसकी कोई उपमा नहीं, ऐसा यहाँ कहना है।

मुमुक्षु : ऐसा सुख हमको दे दो, महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ से ? कौन दे ? कहाँ है ? उसके पास है। डुंटी में कस्तूरी मृग बाहर ढूंढ़ता है। डुंटी समझे नाभि। नाभि में कस्तूरी। मृग बाहर ढूँढ़ता है। जहाँ है उसकी खबर नहीं। वैसे भगवान आत्मा आनन्द का धाम जहाँ है, वहाँ तो नजर करता नहीं और नजर निमित्त पर, या विकल्प पर, या एक समय की पर्याय खण्ड-खण्ड है, उस पर (है तो) उसमें वह आनन्द नजर में आता नहीं। समझ में आया ? पुण्य-पाप का भाव विकल्प है, वही दु:ख है। समझ में आया ? राग है, वह दु:ख है। वह तो आनन्द की विकृत अवस्था है। आहा ! अशुभराग विषयवासना, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ का विकल्प, उसमें तीव्र आकुलता है। किसके साथ मिलान करके आकुलता जान सके ? अपने आनन्द का भान हो तो आनन्द के साथ मिलान करे तो आकुलता जान सके। इसके सिवा उसको आकुलता का ज्ञान होता नहीं। समझ में आया ?

कहते हैं कि उपमा लागू होती नहीं। किसकी उपमा देना ? ओहो ! लौकिक पदार्थ की भी जहाँ दूसरे के साथ मिलान करे, ऐसी चीज़ नहीं (मिलती)। घी का स्वाद, मिर्च का तीखापन। तीखापन समझे ? चरपराई। कैसी चरपराई ? बताओ ! बहुत चरपरा लगता है। ज्ञान में आता है, हाँ ! चरपरा लगता नहीं यहाँ। चरपरा तो जड़ है। समझ में आया ? ज्ञान में ऐसा चरपरा है, ऐसा चरपरा है। क्या उपमा ?

मुमुक्षु : जलता है, चरपराता है।

पूज्य गुरदेवश्री : चरपरा क्या ? जलता है ? चरपराई का ज्ञान उसको होता है। परन्तु कैसा ? ऐसे भगवान आत्मा अकेला आनन्द का धाम प्रभु, स्वसंवेदन आनन्द से अनुभव में आनेवाला, उसकी उपमा क्या देनी ? उसके स्वरूप मोक्ष की उपमा (किसके साथ देनी ?) समझ में आया ? देखो ! ये कुन्दकुन्दाचार्यदेव मोक्षप्राभृत (में ऐसा कहते हैं)। भगवान के पास गये थे, ये सन्देश लेकर आये। समझ में आया ? कहते हैं, कहा था न ? वहाँ समयसार पढ़ते हैं। वहाँ मुम्बई।... आगरावाले। स्थानकवासी। पढ़े उसमें कहे, वह बड़ा अच्छा है। अपने गुजराती सेठ हैं न ? उसने कहा होगा। ये अष्टपाहुड़ ? अष्टपाहुड़ उनका कहा हुआ नहीं है। क्योंकि यहाँ तो ऐसा निकले कि एक वस्त्र का धागा भी रखे और मुनि नाम धारण करे तो निगोद गच्छई। जुगराजजी ! कहाँ गये ? नहीं आये ? देर हो गयी। कल जुगराजजी कहते थे। समयसार पढ़ते थे न। उसका प्रवचन स्थानकवासी

उपाश्रय में रखा। अर्थ अपनी दृष्टि से करे। तुम उसको मानते हो ? हाँ। मुनि थे, बड़े थे। नग्न हो तो जिनकल्पी मुनि, हम स्थविरकल्पी मुनि है। आहाहा! अरे! केवलकल्पी, जिनकल्पी वस्त्ररहित दोनों होते हैं।

वह भी (संवत्) १९८६ में कहा था, हाँ! एक मुनिन्द्रसागर था न ? नहीं सुना होगा। दिगम्बर में एक मुनिन्द्रसागर था। संवत् १९८६, भावसागर में मिले थे। संवत् १९८६, भावनगर में। मुनिन्द्रसागर थे। लम्पटी। लम्पटी था। दिगम्बर। १९८६ में हमको भावनगर मिला था। वह तो लम्पटी निकला, फिर मर गया। मिला था। उसके साथ बात हुई तो उसको भी मक्खन लगाया। स्थविरकल्पी को ऐसा होता है और जिनकल्पी नग्न रहते हैं। अरे! क्या अर्थ है मालूम नहीं। १९८६ की बात है। संवत् १९८६। तब तो हम सम्प्रदाय में थे न। १९९१ में... बात झूठी है। स्थविरकल्पी और जिनकल्पी दोनों नग्न होते हैं। वस्त्र का टुकड़ा कोई भी रखे और मुनिपना माने तो निगोदं गच्छई। नव तत्त्व की विराधना करता है। एक तत्त्व की नहीं, नवों तत्त्व की विराधना करते हैं। तो कहे, नहीं, यह पुस्तक नहीं। ये कुन्दकुन्दाचार्य का किया हुआ नहीं है, ऐसा कहा। लोगों को अपनी दृष्टि का पोषण करना है। जहाँ-तहाँ से अपनी दृष्टि का पोषण हो, ऐसा मान ले। दृष्टि में विरुद्ध हो तो (कहे), नहीं, यह हमें नहीं मानना है।

मुमुक्षु : इस समय कौन-सा काल चल रहा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथा काल चला है। काल-बाल आत्मा में है ही नहीं। ... कहा। यह तो एक समय की अपनी पर्याय है, उसको काल कहते हैं। वह तो त्रिकाली द्रव्य में समय की पर्याय काल है ही नहीं। ये काल तो कहाँ आया ? समझ में आया ? पंचम काल में कोई दूसरी बात होगी, ऐसा कहते हैं। चौथे काल की बात होगी, पंचम काल की दूसरी होगी। आहाहा! पंचम काल में क्या कीचड़ का चूरमा बनाते हैं ? पंक, पंक कादव, कादव का लड्डू बनाते हैं ? पहले आटे का बनता था और अभी कीचड़ का बनता है, ऐसा है ? पहले घी का बनता था और अब पेसाब का लड्डू बनता है, ऐसा है ? वह तो वही चीज़ है तीनों। चौथे काल में भी वही थी, आटा, घी और शक्कर। अभी भी वही है। भले स्वाद में थोड़ा अन्तर हो, वस्तु कोई बदलती नहीं। मार्ग तो एक ही है तीनों काल में।

यहाँ जो कहते हैं, भगवान आत्मा... पूर्णानन्द की प्रतीति, ज्ञाता-दृष्टा और रमणता वही एक मोक्ष का मार्ग है। ऐसी जहाँ मोक्षमार्ग की दशा अन्तर में मुनि को पूर्ण रूप से प्रगट होती है तो मनि की दशा दिगम्बर सहज हो जाती है। उसको वस्त्र आदि रहता नहीं। ऐसा निमित्त सम्बन्ध है। समझ में आया? अन्दर मुनिपना प्रगट हुआ हो और वस्त्र-पात्र रखते हो, ऐसा तीन काल में बन सकता नहीं। ऐसी चीज़ नहीं, मार्ग में ऐसी चीज़ नहीं है। कुन्दकुन्दाचार्य नग्न मुनि थे, वह तो कहते हैं। समझ में आया? ओहो!

जिसको किसी की उपमा नहीं लगती है। अनन्त-अनन्त दर्शन, ज्ञान। अनन्त समाधि, आनन्द। आहाहा! एक सम्यग्दर्शन, ज्ञान का आनन्द का अंश, उसमें कोई उपमा लागू नहीं हो तो पूर्णानन्द का मुक्ति स्थान अपनी निर्मल पूर्ण पर्याय (उसको किसकी उपमा दे?)

भावार्थ - आचार्य कहते हैं कि ऐसे परमात्मा को आगे कहेंगे जिसके ध्यान में मुनि निरन्तर अनुभव करके केवलज्ञान प्राप्त कर... देखो! **निर्वाण को प्राप्त करते हैं। यहाँ यह तात्पर्य है कि परमात्मा के ध्यान से मोक्ष होता है।** लो, संक्षेप में। अपना परम स्वरूप निज भगवान, उसके ध्यान से ही मुक्ति प्राप्त होती है। कहो, नन्दकिशोरजी! यह पूजा, भक्ति से मुक्ति नहीं होती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पुण्य बँधे। बीच में आता है, परन्तु वह बन्ध, पुण्यभाव है।

गाथा-४

आगे परमात्मा कैसा है ऐसा बताने के लिए आत्मा को तीन प्रकार का दिखाते हैं -

तिपयारो सो अप्पा परमंतरबाहिरो [1]हु देहीणं।
तत्थ परो झाइज्जइ अंतोवाएण चइवि बहिरप्पा॥४॥

---

१. मुद्रित संस्कृत प्रति में 'हु हेऊण' ऐसा पाठ है जिसकी संस्कृत 'तु हित्वा' की है।

त्रिप्रकारः स आत्मा परमन्तः बहिः स्फुटं देहिनाम् ।
तत्र परं ध्यायते अन्तरुपायेन त्यज बहिरात्मानम् ।।४।।

वह परम अन्तः बहिः आतम त्रिधा देही के कहा।
अन्तः यतन से छोड़ बहिरात्मा परम को ध्या वहाँ।।४।।

***अर्थ* – वह आत्मा प्राणियों के तीन प्रकार का है; अन्तरात्मा, बहिरात्मा और परमात्मा। अन्तरात्मा के उपाय द्वारा बहिरात्मपन को छोड़कर परमात्मा का ध्यान करना चाहिए।**

***भावार्थ* – बहिरात्मपन को छोड़कर अन्तरात्मास्वरूप होकर परमात्मा का ध्यान करना चाहिए, इससे मोक्ष होता है।।४।।**

गाथा-४ पर प्रवचन

आगे परमात्मा कैसा है ऐसा बताने के लिए आत्मा को तीन प्रकार का दिखाते हैं- अब तीन प्रकार का आत्मा दिखाते हैं, देखो!

तिपयारो सो अप्पा परमंतरबाहिरो हु देहीणं।
तत्थ परो झाइज्जइ अंतोवाएण चइवि बहिरप्पा।।४।।

अर्थ - वह आत्मा प्राणियों के तीन प्रकार का है; अन्तरात्मा, बहिरात्मा और परमात्मा। आत्मा की तीन दशा है। आत्मा द्रव्य है त्रिकाली, उसकी तीन अवस्था है। एक बहिरात्म अवस्था। एक अन्तरात्म अवस्था। एक परमात्म अवस्था। त्रिकाली परमात्मस्वरूप तो ध्रुव है। समझ में आया? परन्तु उसकी पर्याय में-अवस्था में तीन प्रकार है। **अन्तरात्मा के उपाय द्वारा...** देखो पाठ है न? '**अंतोवाएण**'। बाद में खुलासा करेंगे। **अन्तरात्मा के उपाय द्वारा बहिरात्मपन को छोड़कर परमात्मा का ध्यान करना चाहिए।** तीनों बोल आ गये। समझ में आया? तीन की व्याख्या करेंगे।

अन्तरात्मा के उपाय द्वारा... स्वरूप अन्तरात्मा। अन्तरात्मा पूर्णानन्द नाथ, उसका अनुभव होना, वह अन्तरात्मा। और विकल्प और इन्द्रिय को अपना मानना, वह बहिरात्मा।

और अपनी पूर्ण दशा की प्राप्ति होना, वह परमात्मा। **अन्तरात्मा के उपाय द्वारा...** देखो! उपाय द्वारा है न? '**अंतोवाएण**' है न? '**अन्तरुपायेन**'। ऐसा पाठ है। '**अन्तरुपायेन**'। **बहिरात्मपन को छोड़कर परमात्मा का ध्यान करना चाहिए।**

भावार्थ - बहिरात्मपन को छोड़कर अन्तरात्मास्वरूप होकर परमात्मा का ध्यान करना चाहिए, इससे मोक्ष होता है। चारों बोल आ गये। क्या? बहिरात्मदशा को छोड़कर, अन्तरात्म की दशा प्रगट कर, उसके फलरूप परमात्मदशा प्रगट करनी। मूल परमात्मा तो ध्रुव है, उसका ध्यान करना। समझ में आया? तो बहिरात्मपना छूट जाए, अन्तरात्मा प्राप्त हो। अन्तरात्मा द्वारा पूर्ण परमात्मा, परमात्मा के ध्यान से मिलता है। आहाहा! ये सब क्रियाकाण्ड, यह-वह कहाँ गया? वह तो बीच में अशुभ से बचने को विकल्प—व्यवहार आता है और वह व्यवहार बन्ध का कारण है। बीच में आता है। जब तक पूर्ण वीतराग न हो, तो ऐसा भाव आता है, परन्तु है बन्ध का कारण। वह मोक्ष का उपाय नहीं है। अब उसका स्पष्टीकरण करते हैं।

गाथा-५

आगे तीन प्रकार के आत्मा का स्वरूप दिखाते हैं -

अक्खाणि बाहिरप्पा अंतरअप्पा तु अप्पसंकप्पो।
कम्मकलंकविमुक्को परमप्पा भणणए देवो।।५।।

अक्षाणि बहिरात्मा अन्तरात्मा स्फुटं आत्मसंकल्पः।
कर्मकलंकविमुक्तः परमात्मा भण्यते देवः।।५।।

है अक्ष-धी बहिरात्म आतम-बुद्धि अंतः आतमा।
जो मुक्त कर्म-कलंक से वे देव हैं परमात्मा।।५।।

***अर्थ* - अक्ष अर्थात् स्पर्शन आदि इन्द्रियाँ वह तो बाह्य आत्मा है, क्योंकि इन्द्रियों से स्पर्श आदि विषयों का ज्ञान होता है, तब लोग कहते हैं कि ऐसे ही जो इन्द्रियाँ हैं, वही आत्मा है, इस प्रकार इन्द्रियों को बाह्य आत्मा कहते हैं। अन्तरात्मा है,**

वह अन्तरंग में आत्मा का प्रकट अनुभवगोचर संकल्प है शरीर और इन्द्रियों से भिन्न मन के द्वारा देखने, जाननेवाला है, वह मैं हूँ, इस प्रकार स्वसंवेदनगोचर संकल्प वही अन्तरात्मा है तथा परमात्मा कर्म जो द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादिक तथा भावकर्म जो राग-द्वेष-मोहादिक और नोकर्म जो शरीरादिक कलंकमल से विमुक्त-रहित, अनन्त ज्ञानादिक गुणसहित वही परमात्मा है, वही देव है, अन्य को देव कहना उपचार है।

भावार्थ - बाह्य आत्मा तो इन्द्रियों को कहा तथा अन्तरात्मा देह में स्थित देखना जानना जिनके पाया जाता है, ऐसा मन के द्वारा संकल्प है और परमात्मा कर्मकलंक से रहित कहा। यहाँ ऐसा बताया है कि यह जीव ही जबतक बाह्य शरीरादिक को ही आत्मा जानता है, तबतक तो बहिरात्मा है, संसारी है, जब यही जीव अन्तरंग में आत्मा को जानता है, तब यह सम्यग्दृष्टि होता है, तब अन्तरात्मा है और यह जीव जब परमात्मा के ध्यान से कर्मकलंक से रहित होता है, तब पहिले तो केवलज्ञान प्राप्त कर अरहन्त होता है, पीछे सिद्धपद को प्राप्त करता है, इन दोनों को ही परमात्मा कहते हैं। अरहन्त तो भाव कलंक रहित हैं और सिद्ध द्रव्य-भावरूप दोनों ही प्रकार के कलंक से रहित हैं, इस प्रकार जानो।।५।।

गाथा-५ पर प्रवचन

आगे तीन प्रकार के आत्मा का स्वरूप दिखाते हैं -

अक्खाणि बाहिरप्पा अंतरअप्पा तु अप्पसंकप्पो।
कम्मकलंकविमुक्को परमप्पा भण्णए देवो।।५।।

अर्थ - अक्ष अर्थात् स्पर्शन आदि इन्द्रियाँ वह तो बाह्य आत्मा है,... देखो, भाषा! क्या कहते हैं? जो कोई अन्दर भावेन्द्रिय अंश और द्रव्येन्द्रिय ये जड़ और इन्द्रिय का विषय सब इन्द्रिय में गिनने में आता है। ३१ गाथा में आता है न। वहाँ दूसरा शब्द लिया है। समयसार की ३१वीं गाथा है न? '**जो इन्दिय जिणित्ता....**'

जो इन्दिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।
तं खलु जिदिंदियं ते भणंति जे णिच्छिदा साहू।।३१।।

निश्चय के जाननेवाले उसे जितेन्द्रिय कहते हैं। जितेन्द्रिय का अर्थ जिसने इन्द्रियाँ जीती। यहाँ बहिरात्मपने में इन्द्रियाँ अपनी मानी। समझ में आया? बहिरात्मा की व्याख्या– बहिर–एक समय की पर्याय क्षयोपशम ज्ञान बहिरतत्त्व है। उसको इन्द्रिय कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? और जो विकल्प राग है, वह भी बहिरतत्त्व है। और उसका जाननेवाला विषय है, वह भी बहिरतत्त्व है। ३१वीं गाथा में तीनों को इन्द्रिय कहा है। क्या कहा, समझ में आया?

अतीन्द्रिय भगवान आत्मा उसका अनुभव करना, वह तो अन्तरात्मा हुआ। और बहिरात्मा? अणीन्द्रिय भगवान आत्मा, उससे विरुद्ध एक समय की भावेन्द्रिय की पर्याय–अवस्था... समझ में आता है? और जड़ इन्द्रिय की अवस्था और इन्द्रिय से जाननेयोग्य विषय... आहाहा! भगवान और भगवान की वाणी सबको इन्द्रिय में डाल दिया है यहाँ तो। आहाहा! समझ में आया?

'**अक्खाणि बाहिरप्पा**' इस शब्द में इतना भरा है। इन्द्रियों को अपनी मानता है। अणीन्द्रिय भगवान चिदानन्द परमात्मा, उसका अनुभव नहीं, दृष्टि नहीं और इन्द्रियज्ञान, इन्द्रियज्ञान, इन्द्रिय और इन्द्रिय का विषय, तीनों को यहाँ '**अक्खाणि**' इन्द्रिय में डाल दिया है। ये तीनों इन्द्रिय हैं। अणीन्द्रिय भगवान तो भिन्न वह इन्द्रिय है। समझ में आया? आहाहा! यह वाणी, वह भी कहते हैं कि इन्द्रिय है। समझ में आया? भगवान की दिव्यध्वनि, वह भी इन्द्रिय है। भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और उसका विषय तीनों इन्द्रिय में डाल दिया है। समझ में आया? ये तीनों को अपना माने, वह बहिरात्मा मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। बात तो सीधी है। बहुत ... ओहोहो!

मुमुक्षु : भावेन्द्रिय में क्या लेना?

पूज्य गुरुदेवश्री : भावेन्द्रिय क्षयोपशम पर्याय, क्षयोपशम। रूप, गन्ध जानने की योग्यता की पर्याय। वह भी इन्द्रिय, भावेन्द्रिय इन्द्रिय है। उसको उतने को अपना मानना, वह भी बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

'**अक्खाणि' अक्ष अर्थात् स्पर्शन आदि इन्द्रियाँ, वह तो बाह्य आत्मा है,...** ऐसा। इन्द्रिय से बाह्य आत्मा, ऐसा लिखा है न? '**अक्खाणि बाहिरप्पा**' बस, सीधी बात।

इन्द्रियाँ, वह बहिरात्मा। समझ में आया ? भगवान आत्मा परमस्वरूप अणीन्द्रिय, उससे एक समय की भावेन्द्रिय का क्षयोपशमज्ञान, भावेन्द्रिय का क्षयोपशमज्ञान। जिस ज्ञान में विषय जानने में आता है, वह विषय, ये जड़ इन्द्रियाँ और भावेन्द्रियाँ—तीनों को इन्द्रिय कहने में आता है। ये इन्द्रियाँ अपनी मानता है, अपना स्वरूप मानता है, वह बहिरात्मा है। आत्मा में वह चीज़ है नहीं। समझ में आया ? भावइन्द्रिय की क्षयोपशम की पर्याय भी द्रव्य-स्वभाव में नहीं।

अक्ष अर्थात् स्पर्शन आदि इन्द्रियाँ वह तो बाह्य आत्मा है क्योंकि इन्द्रियों से स्पर्श आदि विषयों का ज्ञान होता है... देखो! भावेन्द्रिय और द्रव्येन्द्रिय द्वारा तो स्पर्श आदि का ज्ञान होता है, अपना ज्ञान होता नहीं। समझ में आया ? जिसको पाँच इन्द्रिय की पर्याय में मिठास है कि अहो! पाँच इन्द्रिय है तो हमको ज्ञान होता है। ये जड़ इन्द्रिय है तो हमको ज्ञान होता है। वह जड़ को अपना माननेवाला है। समझ में आया ? **इन्द्रियों से स्पर्श आदि विषयों का ज्ञान होता है...** देखो! इन्द्रियों से। भावेन्द्रिय और द्रव्येन्द्रिय निमित्त और भावेन्द्रिय में परविषय का ज्ञान। सामनेवाली चीज़ का। **तब लोग कहते हैं, ऐसी ही जो इन्द्रियाँ है, वही आत्मा है,...** वही आत्मा है। क्योंकि ज्ञान में वह चीज़ जानने में आती है। ये उघाड़ ज्ञान में इन्द्रियाँ निमित्त हैं। उसमें जानने में आता है तो वह आत्मा। समझ में आया ? अणीन्द्रिय भगवान आत्मा तो ज्ञान में आया नहीं। तो कहीं और जगह अपनत्व माने बिना रहेगा नहीं। समझ में आया ?

पाँच इन्द्रियाँ जड़, जड़ द्रव्य शरीरपर्याय प्राप्त। शरीरपर्याय को प्राप्त, ऐसा है न वहाँ ? ३१ गाथा में। ये शरीरपर्याय को प्राप्त जड़ इन्द्रियाँ हैं। और भावेन्द्रियाँ, जिसमें-जो ज्ञान की अवस्था में ये स्पर्श, रूप, गन्ध है ऐसा जानने में आता है, वह पर्याय। उसे भी यहाँ इन्द्रिय कहने में आता है और जड़ इन्द्रिय इन्द्रिय है। और उससे विषय जानने में आता है, उसे भी भगवान को इन्द्रिय में डाल दिया है। ३१वीं गाथा। भगवान की वाणी और भगवान की प्रतिमा इन्द्रिय है, ऐसा कहते हैं। ऐई! तीनों को एक इन्द्रिय मानकर, इसका नाम जड़ उसको जानने में आता है, वह जानने में आया, वह जानने में आया तो वह मैं हूँ। समझ में आया ? ज्ञान की वर्तमान पर्याय में भगवान देखने में आये, ये देखने में आया, ये देखने में आया, ऐसी दो की एकता करके, मैं वही आत्मा हूँ, ऐसे माननेवाले को आत्मा में वह चीज़

नहीं है, वह बहिर चीज़ है। बहिर चीज़ को अपनी मानते हैं, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? आहाहा! क्षयोपशमज्ञान है न? क्षयोपशमज्ञान।

मुमुक्षु : वह तो अपनी पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। नहीं। क्षयोपशमज्ञान बहिरभाव है, अपना भाव नहीं।

मुमुक्षु : बहिरात्मा की सूक्ष्म व्याख्या है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म व्याख्या है। समझ में आया? इन्द्रिय का अर्थ क्या? जड़ इन्द्रियाँ और जड़ इन्द्रिय जिस ज्ञान की पर्याय में जानने में आती है, वह भी इन्द्रिय है। एक समय की पर्याय इन्द्रियज्ञान है। इन्द्रियज्ञान तो इन्द्रिय है। समझ में आया? इन्द्रिय से ज्ञान हुआ। शब्द, रूप, रस, गन्ध। इन्द्रियाँ जड़ निमित्त। ... पर्याय में आया। देखो! समझे? उसको यहाँ इन्द्रिय कहते हैं। इन्द्रिय तो दूर भिन्न रही। आहाहा! समझ में आया?

उसको क्या लगता है? मेरी पर्याय में इन्द्रिय से जानने में आता है और मेरी पर्याय वह है। समझ में आया? उसका मुझे ख्याल आया कि ये भगवान है, वाणी है, स्त्री है, पर्वत है, जंगल है, शत्रुंजय है, सम्मेदशिखर है। वह तो मेरी ज्ञान की पर्याय में ख्याल आया या नहीं? वह मैं हूँ। समझ में आया? उसको कहते हैं कि तू बहिरात्मा है। तुझे अन्तरवस्तु क्या है, उसका ज्ञान के भान बिना उसको मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा कहते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने को जानने में जो ज्ञानपर्याय आती है, वह वास्तविक ज्ञान। वह तो अणीन्द्रिय ज्ञान हुआ। आहाहा! समझ में आया?

फिर से, अपना आत्मा अतीन्द्रिय स्वरूप है, उसका ज्ञान करने से जो पर्याय प्रगट हुई वह तो अणीन्द्रिय ज्ञान हुआ। वह अणीन्द्रिय के ध्येय से ज्ञान हुआ। इन्द्रिय के ध्येय से हुआ नहीं। समझ में आया? यहाँ तो भगवान आत्मा अन्तर में शुद्ध आनन्द का धाम, अकेला चैतन्यरस का तत्त्व (है)। उस चैतन्यरस के आश्रय से जो हो, वह तो अपनी पर्याय निर्मल है। वह अणीन्द्रिय है, अणीन्द्रिय है। वस्तु अणीन्द्रिय, पर्याय अणीन्द्रिय। समझ में आया? और बाह्य पदार्थ इन्द्रिय और उससे ज्ञान हुआ, वह इन्द्रिय। आहाहा! कठिन बात।

शब्द सुनते हैं न ? उसमें जो ज्ञान होता है न ? वह ज्ञानपर्याय शब्द को इन्द्रियज्ञान कहते हैं, उसको इन्द्रिय कहते हैं। ऐसा मार्ग है। भाव इन्द्रिय, वह भी जड़ अचेतन है। अरर! उसको अपना माने, वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। पोपटभाई! स्त्री-पुत्र तो कहीं रह गये उनके घर रह गये। साथ में नहीं आते। ये इन्द्रियाँ तो यहीं है। आहाहा! कहते हैं कि आँख इन्द्रिय। आँख से जो ज्ञान अन्दर हुआ, निमित्त से, उपादान उसका, वह भी इन्द्रिय और ज्ञान में जो विषय हुआ, लड़का, भगवान वह भी इन्द्रिय। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : मन इन्द्रिय है। मन से ज्ञान होता है, वह भी इन्द्रियज्ञान है; अतीन्द्रिय नहीं। भाव मन संकल्प-विकल्परूप है। वह भी अचेतन है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी इन्द्रिय से ज्ञान हुआ तो उसे इन्द्रिय कहते हैं। ऐसी बात है। जिसमें इन्द्रिय निमित्त हुई और जिसमें बाह्य विषय निमित्त पड़ा, ऐसा जो ज्ञान है, उसको तो इन्द्रिय कहते हैं। भारी काम, भाई!

मुमुक्षु : पहले तो इन्द्रियज्ञान से ही जानेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले-फहले उसमें है नहीं कुछ। विकल्प से निर्णय करने में आता है तो वह यथार्थ निर्णय नहीं। समझ में आया ? आता है पहले। विकल्प से (निर्णय किया), वह तो इन्द्रिय से निर्णय हुआ। ऐसा हुआ। परन्तु यथार्थ नहीं। वह तो इन्द्रिय से निर्णय हुआ। ऐसी बात है। आहाहा! समझ में आया ?

जो वस्तु अखण्ड अभेद अणीन्द्रिय तत्त्व पदार्थ... ये अणीन्द्रिय आयेगा न अभी ? भाई! १९२ में आयेगा। प्रवचनसार। अतीन्द्रिय महा पदार्थ। १९२ गाथा बहुत अच्छी है। १९२, प्रवचनसार। १९२ में वह आता है। मूल पाठ में श्लोक है। लो, १९० तो आ गयी। १९२। '**एवं णाणप्पाणं दंसणभूदं अदिंदियमहत्थं**' १९२ गाथा है, प्रवचनसार। भगवान की दिव्यध्वनि का सार। '**अदिंदियमहत्थं**।' अतीन्द्रिय महापदार्थ भगवान आत्मा है। इन्द्रिय ज्ञान और इन्द्रिय वह महापदार्थ नहीं, वह आत्मा नहीं। समझ में आया ? '**धुवमचलमणालंबं मण्णेऽहं अप्पगं सुद्धं**।' ऐसे मैं अपने आत्मा को इन्द्रियज्ञान से भिन्न

अणीन्द्रियमय स्वरूप ऐसा मैं अपने आत्मा को मानता हूँ, अनुभवता हूँ, उसका नाम अन्तरात्मा। समझ में आया?

क्या कहते हैं? देखो! **अक्ष अर्थात् स्पर्शन आदि इन्द्रियाँ...** अर्थात् पाँचों। **वह तो बाह्य आत्मा है क्योंकि इन्द्रियों से स्पर्श आदि विषयों का ज्ञान होता है...** इन्द्रिय के निमित्त से तो विषय शब्द, रूप, रस, गन्ध का ज्ञान होता है। **तब लोग कहते हैं, ऐसी ही जो इन्द्रियाँ हैं, वही आत्मा है,...** ये मेरा ज्ञान हुआ, मैं ही हूँ। ऐसा। इन्द्रिय से ज्ञान हुआ, वह मेरा ज्ञान है। वह मैं हूँ। ऐसा है नहीं। वह ते परालम्बी पर का ज्ञान हुआ, इन्द्रिय है। आहाहा! समझ में आया? देखो! **विषयों का ज्ञान होता है, तब लोग कहते हैं, ऐसी ही जो इन्द्रियाँ है, वही आत्मा है।** ख्याल आया ज्ञान में। ज्ञान है न? तो ज्ञान की पर्याय हुई या नहीं? तो वह मैं हूँ। परन्तु वह तो ज्ञेय का ज्ञान, इन्द्रिय का ज्ञान है, इन्द्रिय अवलम्बन का ज्ञान है, वह आत्मा नहीं। आहाहा! समझ में आया? मार्ग अगम्य सूक्ष्म है, भाई! वह कोई बाहर से प्राप्त हो, ऐसी चीज़ नहीं। यहाँ तो ऐसा भी कहते हैं कि जो इन्द्रिय से ज्ञान सुनने में आया, समझ में आया? उस ज्ञान से भी आत्मा प्राप्त नहीं होता।

मुमुक्षु : सुनने आना या नहीं आना?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐ... सेठ! क्या करना? आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग का है। सुनने आते हैं, सुने और विकल्प हो और उसमें क्षयोपशमज्ञान की पर्याय भी अपने से प्रगट हो। अपने से, हों! तो भी वह अपना स्वरूप नहीं। आहाहा! ग्यारह अंग का ज्ञान और नव पूर्व का ज्ञान, उसको यहाँ इन्द्रियज्ञान कहते हैं। क्योंकि जहाँ अन्तर स्पर्श चैतन्यमूर्ति का नहीं हुआ और जहाँ बाहर से इतना क्षयोपशम हुआ, वह अणीन्द्रिय ज्ञान हो तो आत्मा में आनन्द आना चाहिए। आनन्द साथ में आना चाहिए। आनन्द साथ है नहीं तो वह सब इन्द्रियज्ञान ही है और इन्द्रियज्ञान से आत्मा का बोध होता है, ऐसा है नहीं। आहाहा! कठिन बात।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय तो द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न हुई, वह अणीन्द्रिय ज्ञान है। समझ में आया? प्रत्यक्ष ज्ञान है। मति-श्रुतज्ञान अपने अनुभव में प्रत्यक्ष है। उसमें

इन्द्रियाँ, भावेन्द्रियाँ निमित्त है ही नहीं उसमें। नहीं है, वह भी कथन है ऐसा। आहाहा! चैतन्य भगवान आत्मा, अपना चैतन्य पुंज प्रभु, उसमें जहाँ दृष्टि हुई तो इन्द्रिय का ज्ञान भी उसमें कारण नहीं पड़ा। उससे निरपेक्ष आत्मा का भान होता है। समझ में आया? इसलिए आचार्य ने '**अक्खाणि बाहिरप्पा**' (कहा)। आहाहा! कितना समाया है! वही कुन्दकुन्दाचार्य ३१ गाथा में वही कहते हैं, एक ही बात है। समझ में आया?

विकल्प भी जहाँ बन्ध का कारण है और इन्द्रियज्ञान भी बन्ध का कारण है। समझ में आया? जितना बहिर्लक्ष्यी इन्द्रिय का निमित्त पड़ता है और भावइन्द्रिय जिससे होती है, वह सब... क्या? अचेतन है। उससे आत्मा का बोध नहीं होता। बहिर्मुख उपयोग को यहाँ अचेतन कहने में आता है। आहाहा! वाह! भावइन्द्रिय का उपयोग अचेतन है। अचेतन न हो तो आत्मा के उपयोग से तो आनन्द आना चाहिए। आनन्द साथ में है नहीं। आनन्द नहीं है तो वह दु:ख है। आहाहा! समझ में आया? लोगों को परमप्रभु चैतन्यस्वरूप पर से बिल्कुल निरपेक्ष है, वह बात जँचती नहीं तो अन्दर स्वरूप की ओर आरूढ़ होता नहीं। बाहर ही बाहर भटकता रहता है। वह तो बहिरात्मा है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। देखो न। समझ में आया? आज स्वतन्त्र दिन का गाते हैं। स्वतन्त्र तो यह है। आज अगस्त की १५ तारीख है न। स्वतन्त्र। धूल भी स्वतन्त्र हुआ नहीं। स्वतन्त्र किसको कहते हैं? यहाँ तो इन्द्रियज्ञान भी परतन्त्र है। तो दूसरी बात कहाँ लेनी? पैसा, धूल और राग। आहाहा! अपने स्वभाव के आश्रय से ज्ञान न हो और इन्द्रिय के निमित्त और लक्ष्य से ज्ञान हो, वह ज्ञान पराधीन दु:खरूप ज्ञान है। आहाहा! वीतरागमार्ग की स्वतन्त्रता अलग है। दुनिया स्वतन्त्रता कहीं और मान बैठी है। बाहर में देश स्वतन्त्र हुआ। धूल भी स्वतन्त्र नहीं हुआ, सुन न! भाई! आज चारों ओर गाना गाते हैं।

यहाँ कहते हैं कि स्पर्श आदि विषयों का ज्ञान होता है, तब लोग कहते हैं और ऐसा मानता है कि वही मैं हूँ। ज्ञान आया न? पहले ख्याल थोड़ा था, अब विशेष ख्याल आया। इन्द्रिय के निमित्त से। रस आया कि... समझ में आया? **इन्द्रियों से स्पर्श आदि विषयों का ज्ञान होता है...** स्पर्श आदि का ज्ञान हो, हाँ! मुलायम, सख्त ऐसा ज्ञान हो। **तब लोग कहते हैं,...** वह मैं हूँ। समझ में आया? मेरे को ख्याल में आया, वह मैं हूँ। मेरे को ख्याल में आया, वह मैं हूँ। **ऐसे ही जो इन्द्रियाँ हैं, वही आत्मा है,...** देखो! इन्द्रियज्ञान, इन्द्रिय

और इन्द्रिय का विषय, सबको बाह्य कहने में आता है। और उसको अपना मानना वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा का भावज्ञान उत्पन्न हुआ, उसको आत्मा कहते हैं। अणीन्द्रिय भगवान आत्मा को स्पर्श करके भावश्रुतज्ञान उपयोग जो उत्पन्न हुआ, वह आत्मा। कपूरचन्दजी! बात तो ठीक है, भावश्रुत को आत्मा कहते हैं न? भावश्रुत उत्पन्न कहाँ से हुआ? सुनने से नहीं। अन्दर भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु, उसके आश्रय से, उसके ध्येय से जो उपयोग चैतन्य में से आया, उसको चैतन्य का उपयोग और चैतन्य कहने में आता है। जो रागादि में उपयोग है और उघाड़भाव उपयोग है तो इन्द्रिय का। उसको यहाँ इन्द्रिय कहा, अचेतन कहा, जड़ कहा। बहिरात्मा से बाह्य है, ऐसा कहा। समझ में आया?

इस प्रकार इन्द्रियों को बाह्य आत्मा कहते हैं। ओहो! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अन्दर पड़ा रहा। इन्द्रिय से ज्ञान, इन्द्रिय में सुखबुद्धि हो... समझ में आया? इन्द्रिय में सुखबुद्धि। स्पर्श करने से सुखबुद्धि उत्पन्न हो, वह सब बहिरात्मा है। समझ में आया? **अन्तरात्मा है, वह अन्तरंग में...** देखो! अन्तरंग में **आत्मा का प्रकट अनुभवगोचर संकल्प है,...** निर्णय। संकल्प का अर्थ निर्णय। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि किसको कहते हैं? ऐसा कहते हैं। अन्तरात्मा किसको कहते हैं? धर्मी किसको कहते हैं? जो अन्तरात्मा है, वह अन्तरंग में, अन्दर अन्तर अंग ज्ञानादि। वह **आत्मा का प्रकट अनुभवगोचर...** आनन्द आदि की अनुभूति होकर जो अनुभवगम्य निर्णय, उसका निर्णय। अनुभव हुआ, उसका निर्णय (कि) यह आत्मा। समझ में आया? संकल्प है। **प्रकट अनुभवगोचर संकल्प है,...** ऐसा लिया न? पाठ में ऐसा है। '**अप्पसंकप्पो**'' **अंतरअप्पा हु अप्पसंकप्पो।**' आत्मा का संकल्प। आत्मा का संकल्प का अर्थ आत्मा का निर्णय। आत्मा का निर्णय का अर्थ एक समय की ज्ञानपर्याय विषयादि का लक्ष्य छोड़कर, त्रिकाली ज्ञायकभाव पर दृष्टि पड़ी। वहाँ जो पर्याय में ज्ञान हुआ, उसका निर्णय किया उसने। उस निर्णय को निर्णय कहने में आता है। विकल्प से निर्णय किया, वह भी वास्तविक निर्णय नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! '**अप्पसंकप्पो**'। '**अप्प**' आत्म का निर्णय। अन्तरात्मा ज्ञान में भास होकर, शुद्ध स्वरूप आनन्द का धाम भगवान ऐसा आनन्द का अनुभव होकर निर्णय हुआ, यह

आत्मा, उसका नाम अन्तरात्मा कहते हैं। समझ में आया? उसको धर्मात्मा कहते हैं। चाहे तो पशु हो या नारकी हो परन्तु अन्तर ज्ञानानन्द का अनुभव होकर निर्णय हुआ, वह अन्तरात्मा। आहाहा! बाह्य में कोई अमुक निर्णय हुआ, अमुक निर्णय हुआ, ऐसा कुछ लिया नहीं। भगवान का निर्णय, बस। समझ में आया? निज परमात्मा का अन्तर ज्ञान में अनुभव होकर निर्णय है। **शरीर और इन्द्रियों से भिन्न मन के द्वारा देखने, जाननेवाला है, वह मैं हूँ,...** वह तो एक अपेक्षित बात ली है। मैं तो अपने से जाननेवाला आत्मा हूँ। मन से कहने में आता है न। रहस्यपूर्ण चिट्ठी में है। मन से कहने में आता है। ... समझ में आया? मन के द्वारा, ऐसा कहा न? मन छूट गया। अपने आत्मा से निर्णय हुआ।

इस प्रकार स्वसंवेदनगोचर संकल्प वही अन्तरात्मा है। देखो! संकल्प की व्याख्या की। स्वसंवेदनगम्य संकल्प वही अन्तरात्मा। स्व अर्थात् अपने से, सं अर्थात् प्रत्यक्ष, आनन्द का वेदन होकर जो निर्णय हुआ, उस निर्णय को अन्तरात्मा कहते हैं। वह मोक्ष के मार्ग में चढ़ा। परमात्मा की व्याख्या है.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-६४, गाथा-५-६, रविवार, श्रावण शुक्ल १३, दिनांक १६-०८-१९७०

अष्टपाहुड़ में मोक्षपाहुड़ की पाँचवीं गाथा। उसका भावार्थ। यहाँ आया भावार्थ। क्या कहते हैं? देखो! तीन प्रकार के आत्मा की व्याख्या है। बाह्य आत्मा तो इन्द्रियों को कहा। अर्थात् यह आत्मा आनन्द और ज्ञायकभाव है, उसको छोड़कर, ये इन्द्रिय और इन्द्रिय का विषय और भाव इन्द्रिय, इन्द्रिय के दो भेद—भाव इन्द्रिय और जड़ इन्द्रिय, वह मैं हूँ, ऐसा अस्तित्व में अपनी मान्यता, वह मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। अपना स्वरूप तो ज्ञानानन्द चैतन्य आनन्दमय भिन्न है। ऐसे को नहीं मानकर बहिर, आत्मा के स्वभाव में है नहीं, ऐसे इन्द्रिय पर लक्ष्य करके और इन्द्रिय के विषय जो लक्ष्य में आते हैं, उससे मुझे

ठीक रहता है, वही मान्यता परविषय को अपना मानता है। परविषय को ही अपना मानता है। अपना भिन्न स्वरूप मानते नहीं।

अन्तरात्मा देह में स्थित देखना जानना जिसके पाया जाता है... (पहले) बहिरात्मा की व्याख्या कही। (अब), अन्तरात्मा, अन्दर देह में भिन्न जानने-देखनेवाला आनन्दस्वरूप, उसका **मन के द्वारा संकल्प है...** अन्तर ज्ञान के द्वारा अन्तर के अनुभव में निर्णय होना कि मैं तो आत्मा पवित्र शुद्ध हूँ। समझ में आया ? ऐसा सम्यग्दर्शन का निर्णय होना। मेरे में दुःख नहीं, राग नहीं, इन्द्रियाँ नहीं, शरीर नहीं, वाणी नहीं, कर्म नहीं। मैं तो पूर्ण आनन्दस्वरूप (हूँ)।

मुमुक्षु : ऐसा निर्णय तो मन के द्वारा हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा द्वारा। यहाँ मन द्वारा तो बात की है। मन मर जाता है, उसको मन द्वारा कहने में आया है। व्याख्या ऐसी की है। मन वहाँ मर जाता है। अपना स्वरूप शुद्ध आनन्द है, ऐसा जहाँ निर्णय करते हैं, वहाँ संकल्प और मन दूर हो जाता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : इसमें तो मन द्वारा लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मन द्वारा लिखा है, उसका अर्थ यह है। समझ में आया ? वह लिखा है, उसमें भी आया है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी, टोडरमल। उसको मन द्वारा भी कहने में आता है। आया है ? आता है। मनजनित कहिये। आया है। है आत्मजनित। भगवान आत्मा पर से बिल्कुल भिन्न। देखो! यह सम्यग्दर्शन-धर्म का पहला रूप। पहला स्वरूप। मैं पूर्ण आनन्द ज्ञायक चैतन्यबिम्ब, उस ओर की एकाग्रता का निर्णय यथार्थ अनुभव होकर निर्णय हुआ, उसका नाम सम्यग्दर्शन अथवा आत्मा-अन्तरात्मा कहते हैं। समझ में आया ?

देह में भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यबिम्ब परमात्मस्वरूप ही अपना है। उस ओर का झुकाव और विकल्प एवं एक समय की पर्याय को पीठ देना। समझ में आया ? निमित्त और विकल्प और एक समय की पर्याय जो विकल्प को जानती है, उस ओर विमुख होकर, भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वभाव, उसके सन्मुख होकर ज्ञान में वस्तु को ज्ञेय

बनाकर जो निर्णय निर्विकल्प वेदन हुआ, उसका नाम अन्तरात्मा और सम्यग्दृष्टि कहते हैं। बहुत महँगा, भाई!

फिर से, भगवान आत्मा पूर्ण चैतन्य द्रव्य। वह दोपहर को चलता है। सूक्ष्म बात है थोड़ी। बात-मार्ग तो यही है। वस्तु पूर्ण आनन्द और ज्ञान से भरी हुई चीज़, उसके सन्मुख होना और निमित्त, राग और एक समय की पर्याय में सन्मुखता है, उससे विमुख होना। समझ में आया? यहाँ क्या कहते हैं? देखो! देह में जानने-देखनेवाला। बस! उसमें कोई राग या विकल्प या व्यवहाररत्नत्रय उसमें है ही नहीं। जो अनादि से विकल्प दया, दान, व्रतादि अथवा उसको जाननेवाली वर्तमान प्रगट ज्ञान की एक समय की अवस्था, उसको इसने अपना स्वरूप मान रखा है। समझ में आया? पर्यायबुद्धि। एक समय की वर्तमान अवस्था-दशा प्रगट और राग। उसे अपना माना है। स्वभाव से विमुख होकर और एक समय की पर्याय के सन्मुख होकर अपना इतना अस्तित्व स्वीकारा है, वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है। और एक समय का विकल्प और एक समय की पर्याय, उससे विमुख होकर, पीठ देकर, स्वभाव सन्मुख होकर वर्तमान में ज्ञानानन्दस्वभाव शुद्ध चैतन्यद्रव्य, उसका ज्ञान होकर, भान होकर निर्णय होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन, उसका नाम अन्तरात्मा।

तत्त्वार्थसूत्र में शब्द आया, भाई! तत्त्वार्थसूत्र में तीन बोल लिये हैं। एक-असिद्ध, एक-ईषतसिद्ध, एक-सिद्ध। तत्त्वार्थसार में। तत्त्वार्थसूत्र का ही तत्त्वार्थसार बनाया है। समझे? अमृतचन्द्राचार्य। जीव सामान्यपने सब एक है। उपयोगस्वभाव की अपेक्षा से सब एक गिनने में आता है। और दो प्रकार—बद्ध और मुक्त। बद्ध और मुक्त, (ऐसे) दो प्रकार से भी कहने में आया है। और तीन प्रकार से कहने में आया है। अब यहाँ लेना है। '**स एवासिद्धनोसिद्धसिद्ध त्वात् कीर्त्यते त्रिधा**' संस्कृत श्लोक है। '**स एव**' असिद्ध। असिद्ध अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीव असिद्ध। असिद्ध। ऐसे चौदहवें गुणस्थान तक असिद्ध कहने में आता है। यहाँ तो आत्मा का बिल्कुल सिद्धस्वरूप का भान नहीं, अज्ञान है, उस जीव को असिद्ध संसारी कहने में आता है। असिद्ध अर्थात् संसारी। जिसको विकल्प और राग अपने में भासता है और वह मैं हूँ, यह इन्द्रिय और इन्द्रिय का सुख मेरे में है, ऐसा भासता है, वह असिद्ध संसारी मिथ्यादृष्टि मूढ़ प्राणी है। समझ में आया? और सम्यग्दृष्टि को ईषतसिद्ध (कहते हैं)। नोकषाय कहते हैं न? पण्डितजी! नोकषाय। कषाय, नोकषाय।

नोकषाय आता है न ? नोकषाय का अर्थ ईषतकषाय। ऐसे सम्यग्दृष्टि ईषतसिद्ध है। थोड़ा सिद्ध है। और तीन रत्न प्राप्त है, वह सिद्ध है। सिद्ध कहते हुए यहाँ ऐसा लिया है। रत्नत्रय प्राप्त जीव को सिद्ध कहते हैं। वह प्रवचनसार में अन्त में आता है। जो मोक्षमार्ग, रत्नत्रय को साधते हैं, उसको ही मोक्षतत्त्व कहने में आता है।

फिर से, एक बार नहीं समझे तो फिर से। क्या कहते हैं, समझ में आया ? संसारी असिद्ध, ईषतसिद्ध–नोसिद्ध शब्द पाठ में है, भाई ! असिद्ध, नोसिद्ध। नोकषाय कहते हैं या नहीं ? नोकषाय अर्थात् अल्प कषाय के साथ जो है विषयवासना, इत्यादि–इत्यादि हास्य, रति, अरति इत्यादि। इसको नोकषाय कहते हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ को कषाय कहते हैं। और हास्य, रति आदि को नोकषाय कहते हैं। ऐसे सिद्ध रहित। अपना स्वरूप सिद्ध समान है, उसकी दृष्टि नहीं और राग और पुण्य मेरा है, ऐसे बहिरात्मा को, मिथ्यादृष्टि को असिद्ध संसारी कहने में आया है।

अब, ईषतसिद्ध। सम्यग्दृष्टि संसारी नहीं। वैसे पूर्ण सिद्ध नहीं। क्योंकि संसार जो उदयभाव है, उससे सम्यग्दृष्टि मुक्त है। समझ में आया ? है, सीधी बात है। समझ में आया ? आत्मा भगवान शुद्ध आनन्द का धाम, अतीन्द्रिय आनन्द का धाम, उससे विरुद्ध विकल्प को, एक समय की पर्याय को जो अपना स्वरूप मानते हैं, वह मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा हैं, वह संसारी प्राणी हैं, वह संसारी है। ऐसे संसारी चौदहवें गुणस्थान तक कहा। वह तो पर्याय में पूर्णता शुद्ध नहीं, उस अपेक्षा से चौदहवें गुणस्थान तक संसारी कहा और असिद्ध कहा। उदयभाव आता है न ? उदयभाव असिद्ध कहा न ? २१ बोल में। तो असिद्ध है, चौदहवें गुणस्थान तक असिद्ध है और सिद्ध, सिद्ध है। वह पूर्ण की अपेक्षा से।

यहाँ सम्यग्दर्शन हुआ। मैं तो पूर्ण शुद्ध हूँ, (ऐसा) निर्णय हुआ। तत्त्व का अन्तर निर्णय, अनुभव से निर्णय हुआ, हों ! अकेली धारणा का निर्णय नहीं। आहाहा !

मुमुक्षु : कल के प्रवचन में हम तो सब बात सीख गये थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या सीख गये थे। सीख ले, ऐसी यह चीज़ नहीं है। अन्तर अनुभव में सीखे, उसे सीखा कहने में आता है। समझ में आया ?

आत्मा अपनी पर्याय में शुद्धपने का वेदन हो, शुद्धपने का वेदन हो, उसके द्वारा पूरा परमात्मा मैं हूँ, ऐसा अनुभव होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन और अन्तरात्मा है। सेठ !

उसका नाम ईषतसिद्ध है। थोड़ा सिद्ध, छोटा सिद्ध। जिनेन्द्र का लघुनन्दन। आता है या नहीं? छोटा सिद्ध कहा। लघुनन्दन कहा। आता है या नहीं लघुनन्दन? 'ते जगमांही जिनेश्वर के लघुनन्दन।' समयसार नाटक। 'ते जगमांही जिनेश्वर के लघुनन्दन, केलि करे जगमांही जिनेश्वर के लघुनन्दन।' लघुनन्दन। सिद्ध, आहाहा!

मुमुक्षु : भेदविज्ञान जग्यो...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह उसमें आता है। 'भेदज्ञान जग्यो जिनके घट, शीतल चित्त भयो जिम चंदन, केलि करे शिवमारगमांही जगमांही जिनेश्वर के लघुनन्दन।' लघुनन्दन। धवल में गणधर को सर्वज्ञ का पुत्र कहने में आया है। समझ में आया? धवल में गणधरदेव को सर्वज्ञ परमात्मा का पुत्र कहने में आया है। यहाँ समकिती को भी लघुनन्दन—भगवान का पुत्र कहने में आया है। और वह पुत्र पूर्ण उत्तराधिकार लेगा। इस कारण पूर्ण लेगा, तब सिद्ध कहने में आया। रत्नत्रय की प्राप्ति, दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन की प्राप्ति पूर्ण हो तो वह सिद्ध यहाँ लेना है, हों! वह सिद्ध बाद में। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, सिद्ध नहीं लेकिन ईषतसिद्ध तो है। अन्तरात्मा, क्योंकि अन्तर्दृष्टि में, अन्तर्दृष्टि में पूर्ण परमात्मा निज स्वरूप ही दृष्टि में आया है और पर्याय में राग का भी अवलम्बन नहीं है। और राग में वास्तव में तो अन्तरात्मा में अशुद्ध परिणमन भी नहीं। आहाहा! शुद्ध परिणमन में आया परन्तु पूर्ण शुद्ध नहीं, इस कारण से उसको ईषतसिद्ध – छोटा परमात्मा-छोटा सिद्ध कहने में आया है। आहाहा! सेठ!

मुमुक्षु : राजतिलक नहीं हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : तिलक हो गया, परन्तु अभी राग बैठा नहीं पूरा। समझ में आया? अमृतचन्द्राचार्य २३४वीं गाथा है, तत्त्वार्थसार। समझ में आया? '**स एवासिद्धनोसिद्धसिद्ध त्वात् कीर्त्यते त्रिधा**' जीव के तीन प्रकार के भेद किये जाते हैं। त्रिधा। एक, असिद्ध। राग, इन्द्रियाँ, मन उसमें सुख—ऐसी बुद्धि है, तब तक अपने आत्मा का अनादर है, उसको बहिरात्मा कहने में आता है। आहा! समझ में आया? मैं दुःखी हूँ, मैं संकल्प-विकल्पवाला हूँ, उसको मिथ्यादृष्टि असिद्ध कहते हैं। और मैं शुद्ध आनन्दमूर्ति हूँ, मेरे में दुःख नहीं, मेरे में संकल्प-विकल्प नहीं, मेरे में उदयभाव नहीं। आहाहा! देखो!

वहाँ उदय का अभाव सिद्ध में, यहाँ दृष्टि में उदय का अभाव। समझ में आया? भगवान आत्मा उदयभाव के जो गति आदि बोल हैं, मैं मनुष्यगति नहीं, ऐसा सम्यग्दृष्टि मानते हैं। २१ बोल आते हैं न? पण्डितजी! उदयभाव के। अपने आया था न? लिया था न? नियमसार। इसमें है, यहाँ आया है, चला है। ३८ गाथा में (४१ गाथा में है) आया था न? उदयभाव के २१ बोल।

सम्यग्दृष्टि अपने को नारकगति नहीं मानते। उदयभाव है न? नरक की पड़ा दिखे लेकिन सम्यग्दृष्टि मैं नारकी हूँ, ऐसा नहीं मानते। तिर्यंचगति नहीं मानते। गति तो उदय विकार है, मेरी चीज़ में वह है नहीं। आहाहा! समझ में आया? मनुष्यगति नहीं मानते। मैं मनुष्यगति में हूँ, मैं मनुष्यगति में हूँ। ना, मैं तो ज्ञान, आनन्द में हूँ। मनुष्यगति नहीं, मनुष्यगति का मैं ज्ञायक-जाननेवाला हूँ। समझ में आया? मनुष्यगति से सिद्ध होगा, ऐसा है नहीं। मैं मनुष्यगति ही नहीं न! ये देह की बात नहीं है, यह मनुष्यदेह गति नहीं है। ये तो पुद्गल की पर्याय है। मनुष्यगति तो जीव की विकृत अवस्था है, उसको गति कहते हैं। इस शरीर को गति नहीं कहते। यह मनुष्यपना जीवगति है, ऐसा नहीं, यह जड़ है। अन्दर गति की योग्यता जो मनुष्य मैं हूँ, वह गति अरूपी विकृत अवस्था। वह मैं नहीं। आहाहा! मैं पैसेवाला हूँ, मैं धूलवाला हूँ, ऐसा तो नहीं, ऐसा कहते हैं। पोपटभाई!

मुमुक्षु : भगवान तो ऐसा ही कहे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान ऐसा कहते हैं या दूसरा कहते हैं?

मैं देवगति नहीं। क्रोध, मान, माया, लोभ मैं नहीं। सम्यग्दृष्टि अन्तरात्मा है तो (ऐसा मानते हैं कि) चार कषाय मैं नहीं। समझ में आया? स्त्री, पुरुष, नपुंसक लिंग, उसकी विकार की वासना मैं नहीं। स्त्री के देह का आकार, पुरुष का जो देह का आहार है, वह तो जड़ का है। परन्तु अन्दर वासना है, वह भी मैं नहीं। उसमें मैं नहीं, वह मैं नहीं। उदयभाव का अभाव है, उस अपेक्षा से उसको ईषतसिद्ध कहने में आया है। उदयभाव का जिसमें अस्तित्व है, ऐसा माना है, वह बहिरआत्मा है। वह असिद्ध है। आहाहा! समझ में आया?

मैं मिथ्यादर्शन में नहीं, मैं अज्ञान में नहीं, असंयतपने में मैं नहीं। ओहो! अविरति

पर्याय मेरे में नहीं। क्योंकि वह उदयभाव विकार है। आहाहा! अविरति संयमी कहना, अविरति सम्यग्दृष्टि कहना, चौथे गुणस्थानवाले को अविरति सम्यग्दृष्टि कहना। यहाँ कहते हैं अविरति मेरे में है नहीं। अविरति भिन्न है। अविरति मेरी है तो वह तो (उदय) भाव हुआ। विकार मेरा है, आस्रव मेरा है, वह तो मिथ्यादृष्टिपना हुआ। आहाहा! कठिन बात, भाई! जयकुमारजी! गजब बात...!

मुमुक्षु : अविरति मैं नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : अविरति मैं नहीं। अविरति उदयभाव है, विकार है। वह मैं नहीं, मेरे में नहीं। मेरे में तो शुद्ध चैतन्यमूर्ति दर्शन, ज्ञान, चारित्र की परिणति, वह मेरे में हैं। आहाहा!

यहाँ देखो! असिद्धत्व है न? उदयभाव। असिद्धत्व मैं नहीं। आया या नहीं उसमें? आया। पर्याय में पूर्णता शुद्धता नहीं उस अपेक्षा से चौदहवें गुणस्थान तक असिद्ध कहा। वह तो ज्ञान कराने को ऐसा कहा। सम्यग्दृष्टि अपने आत्मा को पूर्ण आनन्दस्वरूप मैं हूँ, अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द हूँ, इसका निर्णय किया। उसमें यह निर्णय छूट गया। असंयतपना या असिद्धिपना मैं नहीं। इसलिए उसे ईषतसिद्ध कहा, भाई! आहाहा! मैं असिद्ध नहीं और मैं सिद्ध नहीं, पूर्ण सिद्ध नहीं हुआ। दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीन की पूर्णता नहीं। इसलिए सम्यग्दृष्टि को ईषतसिद्ध-छोटा सिद्ध कहने में आता है। वह छोटा ही बड़ा हो जाएगा। समझ में आया? बात तो बहुत स्पष्ट है, परन्तु बात को ऐसी घोटाले में चढ़ा ही है। व्यवहार से होगा। व्यवहार से तो मुक्त है, तब तो सम्यग्दर्शन हुआ। तुझे व्यवहार से होगा कहाँ-से? समझ में आया? छह लेश्या। छह लेश्या है न? शुक्ललेश्या मैं नहीं। कृष्ण, नील, कापोत तो दूर रह गयी। आहाहा! समझ में आया? १२३ पृष्ठ पर वह गाथा है। तत्त्वार्थसार १२३ पृष्ठ। ओहोहो!

कहते हैं **अन्तरात्मा देह में स्थित देखना जानना जिसके पाया जाता है, ऐसा मन के द्वारा संकल्प है...** यह अन्तरात्मा। आहाहा! समझ में आया? अन्तरात्मा कहो या आत्मा का अनुभवी कहो या आत्मा का सम्यग्दर्शन में उदयभाव से मुक्त, स्वभावभाव से सहित, उदयभाव से मुक्त। समझे? वैसे तो उदयभाव से सर्वथा मुक्त तो सिद्ध होते हैं। चौदहवें गुणस्थान तक असिद्ध कहने में आया है। परन्तु वह तो पर्याय में पूर्ण शुद्धता नहीं,

उस अपेक्षा से। यहाँ तो द्रव्यदृष्टि जहाँ हुई, असिद्धपना मेरे में है ही नहीं, दृष्टि की अपेक्षा से मैं असिद्ध नहीं हूँ। समझ में आया? आहाहा! लो, वह आत्मा।

अपना स्वभाव शुद्ध आनन्दधाम ध्रुवधाम भगवान, उसके सन्मुख का निर्णय और विकल्प आदि का निर्णय छूट गया कि मैं विकल्प हूँ और मैं अल्पज्ञ हूँ। मैं तो सर्वज्ञ हूँ। ऐसी दृष्टि में सम्यग्दर्शन हुआ तो केवलज्ञान प्रगट हुआ। कैसे? पूर्ण ज्ञान ऐसा नहीं माना था तो पूर्ण ज्ञान हूँ, वह माना, उस अपेक्षा से केवल अकेला ज्ञान समकिती को प्रगट हुआ। समझ में आया? आहाहा!

अब परमात्मा। बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। **परमात्मा कर्मकलंक से रहित कहा।** कर्म का निमित्तपना भी वहाँ छूट गया। वह परमात्मा। वस्तु तो अपना आत्मा ही परमात्मा है-कर्मकलंकरहित। समझ में आया? कर्मकलंकरहित ही आत्मा है। परन्तु जिसको कर्म का थोड़ा निमित्तपना था, वह भी छूट गया। अकेला सिद्ध परमात्मा पूर्णानन्द की दशा (रही) वह परमात्मा। समझ में आया?

यहाँ ऐसा बताया है कि यह जीव ही जबतक बाह्य शरीरादिक को ही आत्मा जानता है... जबतक बाह्य शरीर, वाणी, मन, राग, पुण्य, उदयभाव अपना जाने **तबतक तो बहिरात्मा है, संसारी है,...** देखो! यहाँ लिखा, बहिरात्मा है, संसारी है। है! समझ में आया? **जब यही जीव अन्तरंग में...** संसारी का अर्थ ऐसा नहीं कि स्त्री-पुत्र छूट गया तो संसार छोड़ा। धूल भी छोड़ा नहीं। संसार किसको कहना मालूम नहीं। आहाहा! बहिरात्मपना छूटे, तब संसार छूटा कहने में आया है।

मुमुक्षु : ... तो छूटा।

पूज्य गुरुदेवश्री : छूटा, समकित छूटा। समझ में आया? ऐई!

कहते हैं, **यह जीव ही जबतक बाह्य शरीरादिक को ही आत्मा जानता है...** अपने में-स्वभाव में उदयभाव ही नहीं। समझ में आया? यह बाह्य का क्षयोपशमभाव है, वह भी जीव में नहीं। आहाहा! बाह्य का क्षयोपशमज्ञान का भाव है, वह भी अपना माने, वह भी बहिरात्मा है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, **यह जीव ही जबतक बाह्य शरीरादिक को ही आत्मा जानता है...** ऐसे स्थूलरूप से शरीरादि लोग माने, परन्तु ऐसा नहीं है।

सूक्ष्मरूप से जो भी रागादि उदयभाव (होते हैं) वह शरीर है-परशरीर है। अपना स्वरूप नहीं। समझ में आया? शरीरादिक है न? आदि में सब ले लेना। समझ में आया? ग्यारह अंग, नव पूर्व का विकास हो। दृष्टि मिथ्यात्व है, दृष्टि पर के ऊपर है। यह ज्ञान हुआ, वह मेरा है, (ऐसा माननेवाला) भी बहिरात्मा है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : मेहनत की ही कहाँ है? की ही नहीं, फिर क्या व्यर्थ जाए? उल्टी मेहनत की है। उल्टी। आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञानानन्द सहजानन्द प्रभु, उसके ऊपर दृष्टि नहीं है तो वह बहिरात्मा है, ये राग, ज्ञान का उघाड़, संसारी है ऐसा कहते हैं। आहाहा! नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया, अभव्य या भव्य, उसको भी नव पूर्व का बोध था या नहीं? वह संसारी था, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

जब वही जीव अन्तरंग में आत्मा को जानता है... अन्तरंग में आत्मा को जानता है। राग से, विकल्प से, मन से, बाह्य लक्ष्यी बोध से भी भिन्न। भीखाभाई! ऐसी बात है। आहाहा! ऐसे **अन्तरंग में आत्मा को जानता है, तब वह सम्यग्दृष्टि होता है...** तब वह पहले दर्जे का धर्मी होता है। पहली सीढ़ी-धर्म की पहली सीढ़ी। आहाहा!

मुमुक्षु : बाह्यलक्ष्यी बोध...

पूज्य गुरुदेवश्री : बाह्यलक्ष्यीवाला भी भिन्न है। बाह्यलक्ष्यी ज्ञान भी स्वरूप से भिन्न है। उसको अपना मानना, वह बहिरात्मा है। बाह्यलक्ष्यी का पूछा। यह सुनने से जो ज्ञान होता है, राग मन्द का जो ज्ञान होता है, वह सब परसत्तावलम्बी बाह्यलक्ष्यी ज्ञान है। समझ में आया? जिसमें स्वचैतन्य भगवान का आश्रय होकर ज्ञान नहीं, वह ज्ञान परसत्तावलम्बी कहने में आता है और परसत्तावलम्बी क्यों कहते हैं कि उसमें आनन्द नहीं। जो द्रव्य का ज्ञान हो तो द्रव्य में जितने गुण है, सब गुण के आनन्द का स्वाद आना चाहिए। यह तो एक ही ज्ञान की पर्याय का ख्याल आया तो एक ही गुण की पर्याय, वह भी परसत्तावलम्बी, वह आत्मा नहीं। समझ में आया? आहाहा! अजर अगम्य प्याला है। समझ में आया? जहर उतर जाए, जहर। जानपने का अभिमान... समझ में आया? बाह्य धारणा हुई, उसका अभिमान। वही मेरा है, ऐसा माना। उससे मैं अधिक हो गया। तो उसकी रुचि छोड़कर अन्दर नहीं जा सकेगा। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ रुक गया। मिथ्यात्व। रुचि हो गयी। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : रुचि माने क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : रुचि माने, यह मेरा है—ऐसा पोषण मानता है। पोषण—लाभ माने, हित माने, मेरी चीज़ माने, वह उसकी चीज़ नहीं। उसकी चीज़ हो तो उसके ज्ञान में आनन्द आना चाहिए। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म भाव है परन्तु चीज़ तो ऐसी है।

तब अन्तरात्मा है... देखो! **और यह जीव जब परमात्मा के ध्यान से...** देखो! परमात्मा निज स्वरूप, हों! अपना परमात्मा पूर्णानन्दस्वरूप, उसको ध्येय में लेकर ध्यान करके, पूर्ण शुद्ध वस्तु का ध्यान करके। **कर्मकलंक से रहित होता है, तब पहिले तो केवलज्ञान प्राप्त कर...** पहले तो केवलज्ञान (प्राप्त कर) अरिहन्त परमात्मा होता है। परमात्मा की व्याख्या करनी है न। पहले अरिहन्त परमात्मा होता है। **पीछे सिद्धपद को प्राप्त करता है,...** दोनों परमात्मा। **इन दोनों ही को परमात्मा कहते हैं। अरहन्त तो भाव कलंक रहित हैं...** ओहोहो! शैली... समकिती भी भाव कलंकरहित है, परन्तु पर्याय में जरा है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि भी भावकलंक मेरा है, इससे तो रहित है। परन्तु सम्यग्दृष्टि होने पर भी ऐसा भाव कलंक उत्पन्न होता है। वह भावकलंक रहित होकर, अकेला अरिहन्त आत्मा हुआ, वह परमात्मा। ओहोहो! समझ में आया?

और सिद्ध द्रव्य-भावरूप दोनों ही प्रकार के कलंक से रहित हैं,... सिद्ध को तो फिर चार अघातिकर्म का भी कलंक नहीं है। अरिहन्त को चार घातिकर्म का कलंक छूट गया निमित्त; और इनको अघाति का छूट गया। तो द्रव्य-भाव रहित अकलंक सिद्ध को कहने में आता है। **इस प्रकार जानो।**

गाथा-६

आगे उस परमात्मा का विशेषण द्वारा स्वरूप कहते हैं -

मलरहिओ कलचत्तो अणिंदिओ केवलो विसुद्धप्पा।
परमेट्ठी परमजिणो सिवकरो सासओ सिद्धो।।६।।

मलरहितः कलत्यक्तः अनिंद्रियः केवलः विशुद्धात्मा।
परमेष्ठी परमजिनः शिवंकरः शाश्वतः सिद्धः।।६।।

वे मल-रहित तन-मुक्त केवल अनिन्द्रिय हैं परम जिन।
परमेष्ठी शाश्वत शिवंकर हैं विशुद्धात्मा सिद्ध सब।।६।।

अर्थ - परमात्मा ऐसा है - मलरहित है - द्रव्यकर्म भावकर्मरूप मल से रहित है, कलत्यक्त (शरीर रहित) है, अनिन्द्रिय (इन्द्रिय रहित) है अथवा अनिन्दित अर्थात् किसी प्रकार निन्दायुक्त नहीं है, सब प्रकार से प्रशंसायोग्य है, केवल (केवलज्ञानमयी) है, विशुद्धात्मा, जिसकी आत्मा का स्वरूप विशेषरूप से शुद्ध है, ज्ञान में ज्ञेयों के आकार झलकते हैं तो भी उनरूप नहीं होता है और न उनसे राग-द्वेष है, परमेष्ठी है - परमपद में स्थित है, परमजिन है, सब कर्मों को जीत लिये हैं, शिवंकर है-भव्य जीवों को परम मंगल तथा मोक्ष को करता है, शाश्वता (अविनाशी) है, सिद्ध है, अपने स्वरूप की सिद्धि करके निर्वाणपद को प्राप्त हुआ है।

भावार्थ - ऐसा परमात्मा है, जो इस प्रकार से परमात्मा का ध्यान करता है, वह ऐसा ही हो जाता है।।६।।

गाथा-६ पर प्रवचन

आगे उस परमात्मा का विशेषण द्वारा स्वरूप कहते हैं - गाथा-६।

मलरहिओ कलचत्तो अणिंदिओ केवलो विसुद्धप्पा।
परमेट्ठी परमजिणो सिवकरो सासओ सिद्धो।।६।।

देखो ! कुन्दकुन्दाचार्य परमात्मा की व्याख्या करते हैं। कितने विशेष हुए ? १० ? समझ में आया ? उस है न ? पाँच ऊपर और पाँच नीचे। परमात्मा के दस विशेषण से पहिचान करवाते हैं।

अर्थ - परमात्मा ऐसा है-मलरहित है-द्रव्यकर्म भावकर्मरूप मल से रहित है,... परमात्मा को द्रव्यकर्म का भी सम्बन्ध नहीं और भावकर्म-राग का भी सम्बन्ध नहीं। आहाहा ! एक ओर कहना कि सम्यग्दृष्टि भावकर्म, द्रव्यकर्म से रहित है। क्योंकि सहित माने तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा ! रहित है। परन्तु है और रहित है। समझ में आया ? अरिहन्त को है ही नहीं; इसलिए रहित हैं। समझ में आया ? **कलत्यक्त (शरीररहित) है,...** कल अर्थात् शरीर। शरीर से रहित है। एक ओर समकिती भी शरीर रहित है। शरीर सहित माने तो मिथ्यादृष्टि है। परन्तु शरीरसहितपना पर्याय में है। दृष्टि में से छूट गया। समझ में आया ? कहा न वह ? बालिषानां। पुरुषार्थसिद्धि उपाय-१४ गाथा। आत्मा कर्म के निमित्त से उत्पन्न हुआ विचार और कर्म, शरीर आदि से असमाहितो-उससे तो रहित भगवान है। उससे रहित है और सहित माने, वह भव का बीज मिथ्यात्व है। आहाहा !

यहाँ तो कहते हैं सिद्ध कर्म रहित हैं। ऐई ! दृष्टि में ज्ञानी तो कर्म और राग से रहित ही है। परन्तु पर्याय में कमजोरी से जो उत्पन्न होता है, उसको ज्ञान में ज्ञेय जानने में आता है। यह सिद्ध को रहा नहीं। समझ में आया ? शरीर से रहित है। यह शरीर-मिट्टी। शरीर देखकर ही आत्मा मानता है और शरीर को ही आत्मा मानता है। और पर का शरीर देखकर भी उसमें सुख मानता है तो वह शरीर को ही आत्मा मानता है। समझ में आया ? आगे आयेगा। ९ गाथा में आयेगा। '**णियदेहसरिच्छं पिच्छिऊण परविग्गहं पयत्तेण**' अपने जैसा दूसरे का देह देखकर, ऐसी आकृति वह आत्मा। यह आत्मा का शरीर उसको मिला। आत्मा का शरीर है नहीं और यह मानता है कि आत्मा का शरीर। तो पर को आत्मा का शरीर माना है, उसने अपने शरीर को आत्मा माना और पर के आत्मा को शरीर सहित माना। आहाहा ! समझ में आया ?

पैसेवाला है, शरीरवाला है, कुटुम्ब-कबीलावाला है। ऐसा परमात्मा को माना तो वही बहिरात्मा है। मूलचन्दभाई ! क्या कहा ? पर का शरीर, लक्ष्मी आदि सहित उस आत्मा

को माना, वह शरीर को ही आत्मा मानता है। पर का आत्मा भी शरीर, वही आत्मा मानता है। परआत्मा को देखने से, शरीर अच्छा है तो बड़ा आत्मा! पैसा बहुत है, बड़ा आत्मा! आबरू बड़ी है-बहुत आत्मा! इन सबको आत्मा माना। शोभालालजी! आहाहा! जैसी दृष्टि अपने में है, देह, रागसहित ऐसे पर के आत्मा को देह, रागसहित मानना वह भी पर को आत्मा नहीं माना, पर को शरीर सहित माना, वह भी मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया?

विष्णुकुमार मुनि की बात रह गयी, भाई! विष्णुकुमार का दिन आज गिनने में आया है। विष्णुकुमार मुनि ने मुनियों की रक्षा की, वह भी व्यवहार का कथन है। उसका आयुष्य तो इतना ही था। परन्तु बाह्य में व्यवहार से ऐसे (कहने में आता है)। बलि मन्त्री था न? वह मार देता था। अग्नि लगाकर विघ्न करता था। मुनि को मालूम हुआ कि ओहो! गजब हुआ! मुनि तो ध्यान में रहते थे। सात दिन का राज माँग लिया था न? सात दिन। बलि दुष्ट मन्त्री। धर्मात्मा सन्त अपने आनन्द में रहते थे, उसको जला देने का भाव हुआ। आसपास यज्ञ लगाया, लकड़ी लगा दी। खबर पड़ी क्षुल्लक को, अरे! यह क्या हुआ? क्या है? मुनि के पास जाओ। विष्णुकुमार के पास लब्धि है। उनको तो मालूम भी नहीं था। लो! मुनि को मालूम भी नहीं कि मेरे में लब्धि है। दूसरे को मालूम पड़ा। मुनि ने कहा, जाओ! उसके पास लब्धि है। आहाहा! देखो! दरकार नहीं, लब्धि हुई या नहीं दरकार नहीं।

महाराज! आपको लब्धि है न! बचाओ मुनि को! दु:खी है। ७०० साधु। वे तो आनन्द में हैं, हों! संयोग प्रतिकूल हुआ। ऐसा वात्सल्यभाव धर्मी को आता है। महाराज! ७०० मुनि को जलाते हैं। आप जाओ, बचाव करो। आप में लब्धि है। हाथ लम्बा किया। ओहो! लब्धि है मेरे पास। लो। तब तो मालूम पड़ा। बाद में मालूम पड़ा। गये। हे बलि! तीन गज जमीन दे। महाराज! इतनी क्यों माँगी? इतनी बस है। देखो! माया कपट। मुनिपना चला गया। मुनिपना नहीं रहा। उनको ऐसा करना उचित नहीं, परन्तु इस प्रकार का विकल्प आया। मुनि जलते थे, ... तो ऐसा हुआ। ... ब्राह्मण का रूप लिया। समझ में आया? वह माया हुई। चारित्र का दोष था। चारित्र नहीं था, चारित्र छूट गया। परन्तु इतने वात्सल्यभाव की प्रशंसा करने में आयी है।

ऐसे भगवान आत्मा–बलि, उल्टा पड़ा है जो मन्त्री, वह जब सुलटा हुआ... जला था, राग–द्वेष और अज्ञान से जला हुआ था। बचाओ... बचाओ... बचाओ। अन्दर आत्मा में घुसा तो बच गया। समझ में आया? भगवान अनन्त बल का धनी प्रभु आत्मा, उसमें अन्दर गया। बचा लिया आत्मा को। आत्मा को आत्मा ने बचा लिया। वह तो बाहर का निमित्त था। समझ में आया? आज रक्षाबन्धन चलती है न। यह रक्षा की। (पर की) रक्षा किंचित् होती नहीं।

यहाँ तो एक समय में भगवान आत्मा पूर्ण रक्षित ही है। वह आता है न? समकित में आता है न? समकित के आठ आचार। नि:शंक आदि। अरक्षा। रक्षा नहीं। पूर्णानन्द का नाथ अपना स्वरूप, अपनी निर्मल पर्याय प्रगट हुई उसको रखता है और विशेष निर्मल पर्याय प्रगट करते हैं, वही अपना नाथ आत्मा और अपनी रक्षा आत्मा ने की। समझ में आया? योगक्षेम करे, उसे नाथ कहने में आता है। पत्नी का पति नाथ कहने में आता है न? क्योंकि जो चीज़ मिली है, उसकी रक्षा करे और नहीं मिली उसको मिला दे। ऐसे भगवान आत्मा अपना आनन्दस्वरूप का नाथ, भान हुआ कि मैं तो आनन्द हूँ, दु:ख नहीं, विकल्प नहीं, शरीर नहीं, कुछ नहीं मेरा। ऐसी दृष्टि हुई, उसकी रक्षा करते हैं और चारित्र, वीतरागता नहीं मिली तो प्राप्त करते हैं, उस आत्मा को अपना नाथ कहने में आया है। समझ में आया? कोई किसी की रक्षा कर सकता नहीं। आहाहा!

देखो न! कल एक गाय मर गयी। परसों शाम को ... तड़पती थी। कल नौ–साढ़े नौ बजे निकले, तब भी तड़पती थी। कौन सामने देखता है साता के उदय बिना? गाय... गाय। तड़पती थी चौबीस घण्टे। फिर कल दस बजे मर गयी। साढ़े नौ बजे निकले, तब तक तो तड़पती थी। ... आहाहा! वह दु:ख एकत्वबुद्धि का है। भगवान आत्मा तो सच्चिदानन्द निर्मलानन्द है। उसकी खबर नहीं। शरीर में वेदन आया, वह तो जड़ की पर्याय है। और थोड़ा राग आया, द्वेष आया, वह विकार है। उसमें एकत्वबुद्धि का उसे दु:ख है, संयोग का दु:ख नहीं। विकार ही प्रतिकूल संयोग है। बाह्य प्रतिकूल संयोग का दु:ख नहीं है। अपना आनन्द भगवान में विकार उत्पन्न हो, वही प्रतिकूल संयोग है। क्योंकि प्रतिकूल संयोगी भाव है। समझ में आया? उसमें एकाकार होकर वेदन करते–

करते... आहाहा! देह छूट गया।... चौबीस घण्टे कुछ नहीं, पानी नहीं, आहार नहीं, कुछ नहीं। यहाँ तो गद्दे-तकिये में सोना। थोड़ा रोग हो तो कितने ही लोग पूछने आये, लो! इसे कोई पूछनेवाला है?

मुमुक्षु : मालिक भी उसके पास नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : मालिक क्या आये? अब मरनेवाली है तो जो कुछ खर्च होगा मुफ्त में जाएगा। दवा देते हैं, ऐसा कोई कहता था। अन्दर कोई रोग हो गया था। आहाहा! इस प्रकार देह की एकत्वबुद्धि में अनन्त बार देह छोड़ा।

यहाँ कहते हैं, परमात्मा। अपना स्वरूप मोहरहित है, ऐसा अनुभव हुआ, वह तो समकित; और मल बिल्कुल छूट जाए, वह परमात्मा। समझ में आया? शरीररहित है। समकिती शरीररहित ही है। शरीर अजीव है। अजीव जीव में है नहीं। परन्तु सम्बन्धरूप जो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध था, उतना सम्बन्ध भी भगवान सिद्ध को छूट गया। समझ में आया?

अनीन्द्रिय (इन्द्रिय रहित) है,... सिद्ध। यहाँ आत्मा भी अनीन्द्रिय है। पहले आ गया, इन्द्रिय को अपना माने, वह तो बहिरात्मा है। परन्तु अभी इन्द्रियाँ-भाव इन्द्रिय, शरीर आदि का निमित्तरूप सम्बन्ध है। वह छूट गया। सिद्ध को अकेला अनीन्द्रिय भाव रह गया। समझ में आया? **अथवा अनिन्दित अर्थात् किसी प्रकार निन्दायुक्त नहीं है...** सिद्ध किसी भी प्रकार से अप्रशंसा के योग्य नहीं है, सर्व प्रकार से प्रशंसायोग्य हैं। समझ में आया? दो अर्थ किये। अनीन्द्रिय के दो अर्थ किये। अनीन्द्रिय, अनिन्दिय। सिद्ध है न? सिद्ध। कथंचित् परतंत्र और कथंचित् स्वतन्त्र है। नहीं तो अनेकान्त नहीं रहता, ऐसा लोग कहते हैं। ऐसा है ही नहीं। सिद्ध सर्व प्रकार से स्वतन्त्र है। वह कहते हैं, अनेकान्त नहीं रहता। कथंचित् परतन्त्र, कथंचित् स्वतन्त्र। अरे.. भगवान! कहाँ मेल है तेरा? स्वतन्त्र पूरा है और परतन्त्र किंचित् भी नहीं, उसका नाम अनेकान्त कहने में आता है। 'भणी भणी ने पाटले धूल वाणी', ऐसा कहते हैं न? स्लेट पर धूल डालते थे। धूल निशाल कहते थे। पहले शुरुआत में धूल निशाल में बैठाते थे। फिर पहली कक्षा में। धूली निशाल। पहला शब्द हम सीखे थे, 'सिद्धो वर्ण समाम्नाय'। यह शब्द आता है न उसमें? मोक्षमार्गप्रकाशक।

मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है या वर्ण की आम्नाय अनादि की है। पहला अक्षर यह दिया था। हमको मालूम है। सबसे पहले धूलीनिशाल में गये। छह-सात साल की उम्र होगी। छह-सात। पहले यह दिया। सिद्धो वर्णं समाम्नाय। क्या सिद्धो वर्णं? रट्टा लगाओ, याद करो। धूली निशाल में। सिद्धो वर्णं समाम्नाय। वर्ण की आम्नाय अनादि से सिद्ध है। उस वर्ण अक्षर का कोई कर्ता नहीं। समझ में आया? ॐ ध्वनि भगवान को छूटती है तो भगवान उस वाणी का कर्ता नहीं। आहाहा! यहाँ शरीररहित कहा न? वह तो शरीररहित ही है।... ये तो शरीर का निमित्तपना छूट गया, इस अपेक्षा से शरीररहित कहने में आया है।

केवल (केवलज्ञानमयी) है,... अकेली ज्ञान की मूर्ति, चैतन्यबिम्ब ओपित-शोभित। जैसे सुवर्ण गेरु लगाकर ओपित-शोभित होता है; वैसे सिद्ध भगवान चैतन्यरूपी पूर्ण सुवर्ण ऐसे अकेले शोभित हैं। कुछ रहा नहीं, अकेला आत्मा। आहाहा! **विशुद्धात्मा-जिसकी आत्मा का स्वरूप विशेषरूप से शुद्ध है,...** समकित में शुद्ध आत्मा हुआ, परन्तु ये तो पूर्ण शुद्ध है। **ज्ञान में ज्ञेयों के आकर झलकते हैं तो भी उनरूप नहीं होता...** क्या कहते हैं? ज्ञान में लोकालोक का ज्ञान होता है, परन्तु लोकालोकरूप ज्ञान होता नहीं। भगवान ज्ञान की पर्याय में लोकालोक जानने में आता है। परन्तु लोकालोक के ज्ञेयरूप वह ज्ञान हो गया नहीं। ज्ञान तो अपने में रहकर ज्ञानपर्याय जानती है। समझ में आया? **उनरूप नहीं होता है और न उनसे राग-द्वेष है,...** उनसे राग-द्वेष नहीं है, ऐसे कहा।

परमेष्ठी है-परमपद में स्थित है,... परमपद में टिकते हैं, इसलिए परमेष्ठी परमात्मा। **परम जिन है-सब कर्मों को जीत लिये हैं, शिवंकर है-भव्यजीवों को परम मंगल तथा मोक्ष को करता है,...** देखो! जो कोई भव्यजीव सिद्ध का शरण ले, ऐसा मैं हूँ—ऐसा माने, जाने, अनुभवे तो सिद्ध की शरण कहने में आता है। **मंगल तो मोक्ष को करता है, शाश्वता (अविनाशी) है, सिद्ध है-अपने स्वरूप की सिद्धि करके निर्वाणपद को प्राप्त हुआ है।** लो! ऐसे परमात्मा को परमात्मपर्याय कहने में आता है। बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा—तीन अवस्था कही। तीन में परमात्मा त्रिकाल आत्मा ही आदरणीय है। उसमें से दूसरी पर्याय छोड़ देना, ऐसा कहना है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-७

आगे भी यही उपदेश करते हैं –

आरुहवि अन्तरप्पा बहिरप्पा छंडिऊण तिविहेण।
झाइज्जइ परमप्पा उवइट्ठं जिणवरिंदेहिं।।७।।

आरुह्य अंतरात्मानं बहिरात्मानं त्यक्त्वा त्रिविधेन।
ध्यायते परमात्मा उपदिष्टं जिनवरेन्द्रैः।।७।।

हो अन्तरात्मारूढ़ त्रय-धा छोड़ बहिरातम दशा।
ध्याओ सदा परमात्मा ऐसा जिनेन्द्रों ने कहा।।७।।

***अर्थ* – बहिरात्मपन को मन वचन काय से छोड़कर अन्तरात्मा का आश्रय लेकर परमात्मा का ध्यान करो, यह जिनवरेन्द्र तीर्थंकर परमदेव ने उपदेश दिया है।**

***भावार्थ* – परमात्मा के ध्यान करने का उपदेश प्रधान करके कहा है इसी से मोक्ष पाते हैं।।७।।**

प्रवचन-६५, गाथा-७-९, बुधवार, श्रावण कृष्ण ३, दिनांक १९-०८-१९७०

यह अष्टपाहुड़, उसमें मोक्षपाहुड़ की सातवीं गाथा। मोक्ष कैसे होता है? बहुत संक्षेप में गाथा है।

आरुहवि अन्तरप्पा बहिरप्पा छंडिऊण तिविहेण।
झाइज्जइ परमप्पा उवइट्ठं जिणवरिंदेहिं।।७।।

सातवीं गाथा। जिनवरेन्द्र तीर्थंकर परमदेव ने यह उपदेश दिया है। आचार्य ने भगवान का नाम दिया है। जिनवरेन्द्र तीर्थंकरदेव परमदेव, उन्होंने ऐसा मोक्ष का उपाय कहा है।

अर्थ - बहिरात्मपन को मन-वचन-काय से छोड़कर... उसमें पहले अर्थ नास्ति

से किया। पाठ में '**आरुहवि अन्तरप्पा**' है। वास्तव में तो शब्दार्थ जो भी प्रकार से हो, वस्तु इस प्रकार है। अन्तरात्मा में, अन्तरात्मा अर्थात् राग विकल्प आदि से भेद करके, अन्तरात्मा की पर्याय द्वारा ध्रुव परमात्मा का ध्यान करना। समझ में आया?

फिर से, यहाँ पाठ ऐसे लिया है कि '**बहिरप्पा छंडिऊण**'। परन्तु चौथी गाथा आ गयी न? वैसी है। चौथी है, वैसी सातवीं है। चौथी आ गयी है। '**परो झाइज्जइ अंतोवाएण चयहि बहिरप्पा**।' चौथी गाथा में आया है। '**अंतोवाएण**'। अन्तरात्मा का उपाय करके बहिरात्मा को छोड़कर। समझ में आया? बहुत टूंका में... टूंका में क्या कहते हैं? संक्षेप में (कहते हैं)। पहले तो आत्मा क्या चीज़ है? पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न ऐसा भेदज्ञान करके अपनी अन्तरात्मा की पर्याय द्वारा ध्रुव का ध्यान कना। परमात्मा अपनी त्रिकाली स्वरूप, उसमें ध्यान करने से मोक्ष मिलता है। कहो, समझ में आया? दोपहर को चलता है। यह दूसरे प्रकार से भाषा है।

त्रिकाली ध्रुव चैतन्यबिम्ब ज्ञान; राग से तो भिन्न, परन्तु अपनी एक समय की पर्याय अन्तरात्मा राग से भिन्न हुआ। समझ में आया? अन्तरात्मा में जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई, उसके द्वारा ध्रुव का ध्यान करना। समझ में आया? लाख बात की यह बात है। पहले आत्मा कैसा है, ऐसा सुनकर, गुरुगम से विकल्प से निर्णय करे। सर्वज्ञ भगवान कहते हैं उस प्रकार का। अज्ञानी कहते हैं दूसरा आत्मा... आत्मा, वह आत्मा कहते हैं परन्तु उसने आत्मा को जाना नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर भगवान, जिन्होंने तीन काल-तीन लोक देखा, उन्होंने जो आत्मा देखा, वह आत्मा असंख्य प्रदेशी अनन्त गुण का धाम है और पुण्य-पाप के विकल्प से, कषाय अग्नि से भिन्न (देखा)। ऐसे भिन्न करके बहिरात्मा को छोड़कर अन्तरात्मा को प्रगट कर, बहिरात्मा को छोड़कर अर्थात् ग्रहणपूर्वक त्याग। त्यागपूर्वक ग्रहण नहीं। समझ में आया? उसमें क्या कहा? सेठ! उसमें क्या कहा? ग्रहणपूर्वक त्याग और त्यागपूर्वक ग्रहण नहीं, उसमें क्या कहा? पहले ग्रहण। अन्तर शुद्ध चैतन्य ध्रुव आनन्दकन्द परमात्मा सर्वज्ञ ने कहा ऐसा। गुरुगम से लक्ष्य करके, विकल्प से भिन्न करके। समझ में आया? ज्ञान की पर्याय राग से भिन्न किया। ध्येय तो उसमें द्रव्य ही था। समझ में आया? अन्तरात्मा प्रगट करने में ध्येय तो ध्रुव था। उसके आश्रय से अन्तरात्मा को ग्रहण किया, शुद्ध परिणति प्रगट की। समझ में आया?

मुमुक्षु : पुण्य-पाप के परिणाम फिर क्या चीज़ रही ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जहर रही। इस अमृत को पकड़ना और जहर को छोड़ना, ऐसा कहते हैं। जहर को छोड़कर, अमृत को पकड़ना, ऐसे नहीं। चीज़ जो है अस्ति महाप्रभु पूर्ण शुद्ध ध्रुव, उसको पकड़ करके। अर्थात् राग से भिन्न करके उसकी दृष्टि हुई (तो) अन्तरात्मा हुआ। और अन्तरात्मा के उपाय द्वारा ध्रुव का ध्यान करके। परमात्मा ध्रुव है त्रिकाल। उसमें एकाग्र होकर परमात्मा की पर्याय प्रगट करना। यह मोक्ष का बहुत संक्षेप में उपाय है। समझ में आया ? यह वस्तु ही ऐसी है, दूसरी हो सकती नहीं। देखो ! अर्थ में कैसा लिया है ? परन्तु ऐसे लेना।

अन्तरात्मा का आश्रय लेकर... पीछे है उसको पहले लेना। अन्तरात्मा का त्रिकाल भगवान पूर्ण शुद्ध चैतन्य अतीन्द्रिय अमृतरस का पिण्ड सागर भगवान, उसका आश्रय करके बहिरात्मा को मन, वचन, काया से छोड़कर। मन से भी छोड़कर। मन का विकल्प है उसको छोड़कर। आहाहा !

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ये ऐसे लिखने में आता है पुरा में है। पद्य में कथनशैली में अनेक प्रकार आये, नास्ति से भी आये, परन्तु उसका भाव है, वह तो अस्ति करे तब नास्ति होती है। समझ में आया ? महा सिद्धान्त भगवान पूर्ण। शून्य होना... शून्य होना... शून्य होना कहते हैं न सब लोग को ? तुम्हारा रजनीश कहता है। सन्त तारण का नाम दिया है। सन्त तारणस्वामी...

मुमुक्षु : एक भी सन्त को मानता नहीं, फिर...

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता नहीं, फिर नाम क्यों दिया ? उसका नाम दिया है।

मुमुक्षु : सब दुनिया में हो गये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो गये हैं। आचार्य हो गये हैं। सन्त तारणस्वामी भी कहते हैं। श्रद्धा तो उसकी नहीं, उसको तो मिथ्यादृष्टि मानते हैं। किसी का आधार देना (पड़ता है)। माने नहीं उसका आधार ? सन्त तारण तो अपन शुद्ध चैतन्यस्वरूप परमात्मा-अप्पा परमात्मस्वरूप है, उसका ध्यान करने से विकल्प से शून्य हो जाता है। वह शून्य है।

शोभालालजी! शून्य हो जाओ, शून्य हो जाओ, शून्य हो जाओ। जड़ हो जाए? समझ में आया? एकाग्र चिन्ता। चिन्ता निरोधो ध्यानं, ऐसा उन लोगों में है। अन्यमति सांख्य में है। अपने में ऐसा नहीं है। एकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानं। दोनों में बहुत अन्तर है। चिन्ता निरोधो ध्यानं। चिन्ता को रोकना, वह ध्यान। ऐसे नहीं, वह तो नास्ति से हुआ। एकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानं। पण्डितजी! एक अग्र मुख्य करके ध्यान करना, एकाग्र चिन्ता, उसमें चिन्ता रुक जाती है, उसका नाम ध्यान है। समझ में आया? थोड़े-थोड़े में बहुत अन्तर है। अन्तर है। वस्तु की मर्यादा ऐसी है।

कहते हैं, बहिरात्मा को अर्थात् विकल्प मेरा, मैं अल्पज्ञ हूँ, ऐसी जो बुद्धि-बहिरात्मबुद्धि है, जो बहिरतत्त्व है, वह अन्त:तत्त्व नहीं। समझ में आया? एक समय की पर्याय है, वह बहिरतत्त्व है। एक समय की पर्याय मैं हूँ, ऐसा मानना, वह भी बहिरात्मबुद्धि है। समझ में आया? आहाहा! और पुण्य का विकल्प भी मेरा है और उससे मुझे लाभ होगा, वह भी मिथ्यादृष्टिपना बहिरात्मा है। समझ में आया?

कहते हैं, **मन-वचन-काय से छोड़कर...** लो! समझ में आया? मन, वचन और काया से छोड़कर। शुभ विकल्प है, वह भी मन के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है। छोड़। छोड़, पहले कहा, ग्रहण कर भगवान को। समझ में आया? चिदानन्द भगवान... वह तो दोपहर को बहुत चलता है। वही बात यहाँ ली है। यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, वहाँ जयसेनाचार्य कहते हैं। समझ में आया? आचार्य के कथन में कहीं अन्तर नहीं है। कहते हैं, भगवान मन-वचन-काया से छोड़कर, हों! '**त्रिविधेन... त्रिविधेन**'। अरे! त्रिविध त्याग तो मुनि को होता है? नौ-नौ कोटि से त्याग तो मुनि को होता है? यह कहाँ पहले से सम्यग्दर्शन त्रिविध से त्याग किया। समझ में आया? विकल्प जो है, वह मन-वचन-काया से त्रिविध से छोड़ना। पहले दृष्टि में से तो सब छोड़ दे। बाद में अस्थिरता का त्याग करने में त्रिविध से प्रत्याख्यान करते हैं कि मैं मन, वचन, काया से अस्थिरता छोड़ता हूँ। अस्थिरता छोड़ता हूँ, स्थिरता करने को। स्थिरता होती है तो मन, वचन, काया के आश्रय से अस्थिरता उत्पन्न होती है, वह छूट जाती है। समझ में आया?

यहाँ भगवान आचार्य ने नाम लिया, देखो! समझ में आया? पहले में नाम नहीं था। समुच्चय अर्थ। '**तिपयारो सो अप्पा परमंतरबाहिरो हु देहीणं**' इतना था। '**तत्थ परो**

झाइज्जइ'। '**परो**' अर्थात् परमात्म त्रिकाली ध्रुव स्वरूप का ध्यान करना। '**अंतोवाएण**'। अन्तर उपाय से, अन्तर के ध्यान से। '**चयहि बहिरप्पा**'। छोड़कर। मन, वचन, काया से राग और विकल्प। बहिरात्मा को छोड़कर अन्तरात्मा के द्वारा परमात्मा का ध्यान करना। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले छोड़ना नहीं, पहले ग्रहण करना। अन्तर स्वरूप को ग्रहते हैं तो बहिरात्मभाव छूट जाते हैं। छोड़ना नहीं होता, वह तो नास्ति हुई। अस्ति के आश्रय बिना नास्ति होगी कैसे?

मुमुक्षु : दोनों का समकाल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रकाश हुआ तो अन्धकार नाश हुआ। अन्धकार का नाश करो तो प्रकाश आयेगा, ऐसा नहीं है। प्रकाश हुआ तो अन्धकार का नाश हो गया। छोड़ना पहले, ऐसे नहीं। उसमें तो दृष्टि पर के ऊपर, पर्यायबुद्धि पर जाती है। अन्तर है। मैं विकल्प को छोड़ूँ, राग को छोड़ूँ। छोड़ूँ को क्या कहते हैं? छोड़ूँ कहते हैं? ... आपकी हिन्दी भाषा है। विकल्प है, उसको मैं छोड़ूँ, ऐसा नहीं। वह तो उपदेश की पद्धति में ऐसा आ जाए। परन्तु मैं शुद्ध चिदानन्द आत्मा अखण्डानन्द हूँ, ऐसे राग का लक्ष्य छोड़कर स्वभाव का लक्ष्य करने से जो निर्मल पर्याय अन्तरात्मा में सम्यग्दर्शन होता है, तब राग की एकताबुद्धि छूट जाती है। स्वभाव की ओर एकता होती है तो राग की एकता छूट जाती है। राग की एकता छोड़ूँ, फिर स्वभाव की एकता करूँ, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा लगे कि मानों पर तो बराबर है। यहाँ छोड़ूँ और ग्रहण करूँ। ऐसे नहीं, वह तो कथन की पद्धति है। ग्रहण तो ऐसा आया।

अपनी दृष्टि में-श्रद्धा में राग का जो लक्ष्य था, भेद का जो लक्ष्य था, वह लक्ष्य आत्मा पर आया। बहुत संक्षेप में बात है। ध्रुव भगवान आत्मा पर जहाँ दृष्टि आयी, परिणमन निर्मल हुआ तो राग की एकता छूट गयी अथवा राग की एकता उत्पन्न होती नहीं।

मुमुक्षु : थोड़ा-सा अन्तर है, यदि ऐसा अन्तर नहीं समझे तो चलेगा कैसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं समझे तो नहीं चलेगा। अस्ति पर दृष्टि देने से नास्ति होगी,

यह सिद्धान्त है। स्वरूप के ग्रहणपूर्वक राग का त्याग हो जाता है, राग का त्याग करना पड़ता नहीं। वह तो पहले कहा न, भाई! ३४ गाथा, समयसार। आत्मा राग का नाश करनेवाला परमार्थ से है नहीं, नाममात्र है। आत्मा राग का नाश करता है, ऐसा कहना नाममात्र है। समझ में आया? समयसार है न?

मुमुक्षु : किसने कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अमृतचन्द्राचार्य ने कहा। कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा का अर्थ करके। ३४ (गाथा) देखो! भगवान ने कहा, वही कहते हैं। गाथा क्या कहते हैं? देखो!

'**यह भगवान ज्ञाता-द्रव्य (आत्मा)...** टीका है। अमृतचन्द्राचार्यदेव की ३४वीं गाथा (की टीका)।

सब भाव पर ही जान, प्रत्याख्यान भावों का करे,
इससे नियम से जानना कि, ज्ञान प्रत्याख्यान है॥३४॥

क्या कहते हैं? **यह भगवान ज्ञाता-द्रव्य (आत्मा) है, वह अन्य द्रव्य के स्वभाव से होनेवाले अन्य समस्त परभावों को छोड़कर, उनके अपने स्वभावभाव से व्याप्त न होने से...** क्या कहते हैं? राग में भगवान आत्मा व्याप्त होता ही नहीं। **अपने स्वभावभाव से व्याप्त न होने से...** भगवान आत्मा चिदानन्दस्वभाव की दृष्टि हुई, वह आत्मा राग से व्याप्त होता ही नहीं। राग में प्रसरता ही नहीं, राग उसकी पर्याय में आता ही नहीं। पर को **पररूप जानकर...** राग है, पर है, त्याज्य है। **जानकर, त्याग देता है। इसलिए जो पहले जानता है, वही बाद में त्याग करता है।** पहले जाने कि मेरे में राग है ही नहीं। जिसमें है नहीं, उसका आश्रय करने से राग छूटता है। राग तो राग में है और उसका लक्ष्य करने से राग छूटता है? आहाहा! अन्तर थोड़ा नहीं है, बड़ा अन्तर है उसमें। एक में पर्यायबुद्धि है, एक में द्रव्यबुद्धि है। समझ में आया? **अन्य तो कोई त्याग करनेवाला नहीं है...** देखो! **प्रत्याख्यान के (त्याग के) समय प्रत्याख्यान करनेयोग्य परभाव की उपाधिमात्र से प्रवर्तमान त्याग के कर्तृत्व का नाम...** आत्मा ने विकार का त्याग किया, वह तो नाममात्र कथन है। ऐसा है नहीं। कहते हैं, **परमार्थ से देखा जाए तो परभाव के त्यागकर्तृत्व का नाम अपने को नहीं है,...** आहाहा! जयसागरजी! जयकुमारजी! कहो, समझ में आया?

आहाहा! जयसागर है न कोई? कहो, समझ में आया?

कहते हैं कि भगवान आत्मा मिथ्यात्व और राग-द्वेष का त्याग करता है, वह तो कथनमात्र है, वस्तु ऐसी है नहीं। **स्वयं तो इस नाम से रहित है...** राग का नाश करने का नाम से तो भगवान आत्मा रहित है। आहाहा! **क्योंकि ज्ञानस्वभाव से स्वयं छूटा नहीं है,...** कभी ज्ञानस्वभाव से छूटा है ही नहीं। वह ज्ञान ज्ञान में लीन हुआ, वही प्रत्याख्यान है। प्रत्याख्यान कोई दूसरी चीज़ नहीं। आनन्दमूर्ति भगवान आत्मा का अनुभव हुआ कि ये आत्मा तो आनन्द और ज्ञानमूर्ति है। इस आनन्द और ज्ञान में लीनता हो जाए, निर्विकल्प वीतरागदशा (हो जाए), उसका नाम प्रत्याख्यान कहने में आता है। बाकी सब प्रत्याख्यान बिना एक के बिना का शून्य है। शून्य... शन्य। क्या कहते हैं? बिन्दी। एक बिना की बिन्दी। देखो!

मुमुक्षु : मुनियों के लिये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्याख्यान तो मुनि के लिये हैं। परन्तु उसकी चर्चा तो करे या नहीं पहले? चर्चा तो करे कि सम्यग्दृष्टि को संवर कैसे होता है? निर्जरा, संवर कैसे होती है, उसकी श्रद्धा तो करे या नहीं? ये श्रद्धा किये बिना सम्यग्दर्शन कहाँ से होगा?

भगवान, प्रत्याख्यान इसको कहते हैं कि अपना आनन्दस्वरूप का सम्यग्दर्शन में राग से भिन्न होकर अनुभव हुआ, कहते हैं कि फिर आत्मा राग का नाशकर्ता है, ऐसा कहना कथनमात्र-नाममात्र है। भगवान आत्मा में राग का नाश करना, ऐसी वस्तु है ही नहीं।

मुमुक्षु : अनादि राग... स्वभाव में...

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव की दृष्टि हुई और स्थिरता हुई, राग की उत्पत्ति नहीं होती है, उसको राग का नाश करते हैं—ऐसा कथन है। राग का नाश करना—ऐसा आत्मा में है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव में स्थिर होना, ज्ञान में स्थिर (होना)। बस, राग छूट गया। राग आत्मा ने छोड़ा, ऐसा है नहीं। सूक्ष्म बात है। समझ में आया? इसलिए तो पूरी टीका ली है। परभाव का त्याग कर्तापने का नाम अपने को नहीं है। आत्मा में राग का त्याग

करे, ऐसा वस्तु के स्वरूप में है नहीं। क्योंकि राग को ग्रहण किया ही नहीं, ऐसा कहते हैं। देखो न! पहले कहा न? ज्ञानस्वभाव से छूटा ही नहीं। ऐसा कहा न? भाई! छूटा नहीं, उसका अर्थ कि कभी राग ग्रहण किया ही नहीं। अपने ज्ञानानन्दस्वभाव में राग ग्रहण किया ही नहीं। आहाहा! ज्ञानस्वभाव में राग का कभी एकत्व हुआ ही नहीं। पहली मान्यता में था, वह मान्यता को बदल दी है। मैं तो ज्ञायक चिदानन्द आत्मा हूँ, ऐसी दृष्टि में ज्ञायक में लीन होना, ज्ञायक में लीन हो जाना, तो राग की उत्पत्ति होती नहीं, उसको राग का आत्मा ने नाश किया, वह व्यवहार कथन है, नामकथन है। वस्तु आत्मा नाश करता नहीं। हो जाता है, करता नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानानन्द स्थित कहा न? स्वरूप में स्थिर हो गया। ज्ञान, ज्ञान में रह गया। आनन्दमूर्ति प्रभु आनन्द में जम गया, वह प्रत्याख्यान। प्रत्याख्यान कोई दूसरी चीज़ नहीं है। ये हाथ जोड़े और विकल्प से प्रत्याख्यान किया, वह पच्चखाण नहीं है। वह तो अपच्चखाण है। समझ में आया?

मुमुक्षु : संस्कृत में...

पूज्य गुरुदेवश्री : संस्कृत में है, देखो! ३४। '**यतो हि द्रव्यांतरस्वभाव-भाविनोऽन्यानखिलानपि भावान् भगवज्ज्ञातृद्रव्यं स्वस्वभावभावाव्याप्यतया**' भगवान राग से व्याप्त हुआ ही नहीं। राग का कार्य अपनी पर्याय में कभी आया ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! '**परत्वेन ज्ञात्वा प्रत्याचष्टे**' राग पर है, अपना स्वरूप भिन्न है, ऐसा भान होने से राग छूट गया। '**ततो य एव पूर्वं जानाति स एव पश्चात्प्रत्याचष्टे न पुनरन्य**'। मैं राग छोड़ूँ, ऐसा नहीं। मैं तो आत्मा आनन्दस्वरूप आनन्द में लीन होता हूँ तो राग की उत्पत्ति नहीं होती। उसके पहले राग की उत्पत्ति थी। तब तक प्रत्याख्यान नहीं था। परन्तु जब स्वरूप में स्थिर हो गया, राग की उत्पत्ति हुई नहीं तो राग का नाश किया—ऐसा कथन करने में आता है। देखो!

'**निश्चित्य प्रत्याख्यानसमये प्रत्याख्येयोपाधिमात्रप्रर्तितकर्तृत्वव्यपदेशत्वेऽपि**' राग का नाश का कथन करने में आया है। '**परमार्थेनाव्यपदेश**' निश्चय से राग का नाश करता है, ऐसा आत्मा में घटित होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? समयसार, ३४वीं

गाथा। उसमें यह है। समयसार में तो समुद्र भरा है। ब्रह्माण्ड के भाव (भरे हैं)। आहा! भावों ब्रह्माण्डना भर्या। '**इसलिए प्रत्याख्यान ज्ञान ही है।** पण्डितजी! प्रत्याख्यान ज्ञान है। ज्ञान स्वरूप में स्थिरता हुई, वही प्रत्याख्यान है। आहाहा! लोगों को बाहर की चीज़ में इतनी भ्रमणा घुस गयी। विकल्प उठे, वह तो कषाय है और उसे तो आत्मा ने ग्रहण किया ही नहीं। क्योंकि आत्मा में वह परतत्त्व है ही नहीं। ग्रहण किया नहीं तो छोड़ना कहाँ रहा? छोड़ना कहनेमात्र का नामकथन है। आहाहा!

मुमुक्षु : घी के घड़े जैसा कथन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कथन है। घी का घड़ा होता नहीं। राग का नाश आत्मा कर सकता नहीं। ग्रहण कहाँ किया है तो नाश करे? पहले कहा न? ज्ञान अपने से छूटा ही नहीं; ज्ञान, ज्ञान में ही है—ऐसा भान हुआ तो ज्ञान ज्ञान में स्थिर हो गया, बस! राग की उत्पत्ति नहीं हुई तो राग का नाश किया, ऐसा कथन व्यवहार नामकथन से है। वस्तु में ऐसा है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ज्ञान ही प्रत्याख्यान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वही प्रत्याख्यान है, ज्ञान ही प्रत्याख्यान है। अर्थात् आत्मा स्वरूप में स्थिर हुआ, वीतरागभाव हुआ, वही प्रत्याख्यान है। प्रत्याख्यान कोई दूसरी चीज़ नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है।

यहाँ कहते हैं, **अन्तरात्मा का आश्रय लेकर...** आरूढ़ शब्द है न? '**आरुहवि**' आरूढ़ होकर। भगवान आत्मा में आरूढ़ होकर। मन-वचन-काया से विकल्प को छोड़कर, बहिरात्म एकत्वबुद्धि को (छोड़कर) **परमात्मा का ध्यान करो,...** भगवान पूर्णानन्दस्वरूप परम आत्मा परम स्वरूप। परमात्मा अर्थात् परम स्वरूप। त्रिकाली अप्पा सो परमप्पा। अपना परम स्वरूप ध्रुव का ध्यान करना। इस ध्यान से मुक्ति होगी। दूसरी कोई क्रियाकाण्ड से मुक्ति-बुक्ति होगी नहीं। मूलचन्दभाई! ऐसा है यह। **यह जिनवरेन्द्र...** जिनवरेन्द्र। लो! जिन, उसके भी वर—गणधर; उसके भी इन्द्र—तीर्थंकर। जिनवरेन्द्र तीर्थंकर परमदेव। परमदेव ने ऐसा **उपदेश किया है।** कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, भगवान का तो यह उपदेश है। त्रिलोकनाथ परमात्मा का यह उपदेश है।

भावार्थ - परमात्मा के ध्यान करने का उपदेश प्रधान करके कहा है... देखो! परमात्मा का ध्यान करने का उपदेश मुख्य करके कहा है, **उसी से मोक्ष पाते हैं।** इसके मुक्ति की कोई दूसरी क्रिया है नहीं।

गाथा-८

आगे बहिरात्मा की प्रवृत्ति कहते हैं -

बहिरत्थे फुरियमाणो इंदियदारेण [1]णियसरूवचुओ।
णियदेहं अप्पाणं अज्झवसदि मूढदिट्ठीओ ॥८॥

बहिरर्थे स्फुरितमनाः इन्द्रियद्वारेण निजस्वरूपच्युतः।
निजदेहं आत्मानं अध्यवस्यति मूढदृष्टिस्तु ॥८॥

बाह्यार्थ में स्फुरित मन स्व-रूप-च्युत अक्ष द्वार से।
जो मानता निज देह आतम मूढ़ बुद्धि जिन कहें॥८॥

अर्थ - मूढ़दृष्टि अज्ञानी मोही मिथ्यादृष्टि है, वह बाह्य पदार्थ धन, धान्य, कुटुम्ब आदि इष्ट पदार्थों में स्फुरित (तत्पर) मनवाला है तथा इन्द्रियों के द्वार से अपने स्वरूप से च्युत है और इन्द्रियों को ही आत्मा जानता है ऐसा होता हुआ अपने देह को ही आत्मा जानता है निश्चय करता है, इस प्रकार मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है।

भावार्थ - ऐसा बहिरात्मा का भाव है, उसको छोड़ना ॥८॥

गाथा-८ पर प्रवचन

आगे बहिरात्मा की प्रवृत्ति कहते हैं - अब बहिरात्मा की प्रवृत्ति-मान्यता की प्रवृत्ति क्या है, वह कहते हैं।

१. पाठान्तर - 'चुओ' के स्थान पर 'चओ'

बहिरत्थे फुरियमाणो इंदियदारेण णियसरूवचुओ।
णियदेहं अप्पाणं अज्झवसदि मूढदिट्ठीओ।।८।।

अर्थ - मूढ़दृष्टि अज्ञानी मोही मिथ्यादृष्टि... चार विशेषण दिये। समझ में आया? मूढ़दृष्टि। बेभान अज्ञानी। मोही—पर में सावधान। मिथ्या-विपरीत दृष्टि है जो। **बाह्य पदार्थ—धन, धान्य, कुटुम्ब आदि इष्ट पदार्थों में स्फुरित (-तत्पर) मनवाला है...** अज्ञानी के वीर्य की स्फुरणा बाह्य पदार्थ की ओर झुकती है, ऐसा कहते हैं। सेठ! ये पैसे कैसे आये। कहते हैं कि बाहर में पैसे में झुकता है, उसकी वीर्य स्फुरणा वह बहिरात्मा मूढ़ अज्ञानी है। चार विशेषण दिये। वस्तु के भान बिना मूढ़दृष्टि है, ज्ञान बिना अज्ञानी है, पर में सावधान है और मिथ्यादृष्टि-झूठी दृष्टि है। आहाहा! **बाह्य पदार्थ—धन, धान्य, कुटुम्ब आदि इष्ट पदार्थों में स्फुरित (-तत्पर) मनवाला है...** पर में वीर्य की स्फुरणा की तत्परता सावधानी है। वही मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। आहाहा! समझ में आया?

उसका अर्थ भगवान परमानन्दस्वरूप, उस ओर की सावधानी नहीं है, परन्तु विकल्प से लेकर परलक्ष्मी, आबरू जो बहिरचीज है, वीर्य की स्फुरणा, वीर्य की गति वहाँ चलती है। यह मैं हूँ, उससे मुझे लाभ है, यह चीज़ मेरी है, ऐसी वीर्य की स्फुरणा मूढ़ मिथ्यादृष्टि अनादि का... ऐ... पोपटभाई! ओहो! लक्ष्मी, लड़के, लड़कियाँ, हमारी लड़कियाँ बी.ए. पास हुई है, एम.ए. में पास हुई है, क्या है यह? मूढ़! तेरी लड़की कहाँ से आयी? ऐ... सेठ! मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : एम.ए. की पढ़ाई को समझा नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : एम.ए. की पढ़ाई किसको कहें? समझ में आया? हमारी लड़की ऐसी है। बोलते-बोलते... हमारी लड़की ऐसी है। लड़की कब तेरी थी? सुन न! उसमें वीर्य की स्फुरणा, उससे मैं कुछ अधिक हूँ, मेरी लड़की होशियार है, मेरा लड़का होशियार है, उससे मैं अधिक हूँ, वीर्य की स्फुरणा परगति में जाती है।

मुमुक्षु : मेरी लड़की तो होशियार ही हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़के कब थे? सुमनभाई कब लड़के थे? समझ में आया? ... कहते थे। मालूम है? यहाँ सुने, परन्तु लड़की नाम लेकर ऐसा कहे, मेरी लड़की ऐसी

है। कितनी तुझे हूँफ लेनी है ? मोरबीवाले।... हमारी लड़की। क्या है यह ? हमारा लड़का ऐसे पास हुआ। हमारे साले की बहू ऐसे पास हुई। साले की बहू। साला होता है न ? ये तो बना है। नाम नहीं देते। एक के साले की बहू थी, बड़ी हुई। मेरे साले की बहू। परन्तु क्या है तुझे ? रामजीभाई को खबर है। कहो, समझ में आया ? हमारे साले की बहू। ओहो ! क्या है तुझे ? साला कहाँ से आया ? उसकी बहू कहाँ से आयी ? तुझे उसका अभिमान कहा हुआ ? पोपटभाई ! पागल है, पागल। अरे ! आचार्य समाधिशतक में तो कहते हैं, ज्ञानी को भी विकल्प उठते हैं, वह पागलपन है। आहाहा ! (यहाँ) यह तो मिथ्यात्व का पागलपन। समझ में आया ? आहाहा ! समाधिशतक में है। पूज्यपादस्वामी। दिगम्बर सन्त अर्थात् .... कहाँ ले गये ? विकल्प उठता है उपदेश का, या दया, दान का विकल्प उठता है पागलपन है। भगवान वीतरागमूर्ति में यह क्या ? धन्नालालजी ! समाधिशतक में है। पूज्यपादस्वामी। उन्माद। उन्माद है। आहाहा !

प्रभु ! वीतरागस्वरूप से विराजमान नाथ चैतन्य, उसमें से राग का अंगारा उठना... देखो ! चारित्रदोष है, उसको अंगारा कहा, उन्माद कहा। यह तो बहिरात्म श्रद्धा में अन्तर है। नपुंसकता है। अपना भगवान आत्मा आनन्द का सागर प्रभु स्वयंभूरमण समुद्र अन्दर में डोलता है। तेरा प्रभु तेरे में डोले। समझ में आया ? ऐसा छोड़कर, क्या शब्द है ?

'बहिरत्थे फुरियमणो'। **'बहिरत्थे'**। अपना पदार्थ आनन्दस्वरूप के अलावा **'बहिरत्थे'**। जितने बाह्य पदार्थ-विकल्प, शरीर, वाणी, स्त्री, कुटुम्ब सबमें धन, कुटुम्ब आदि में **इष्ट पदार्थों में स्फुरित (-तत्पर) मनवाला है...** यहाँ मन तत्पर, एकाकार। आहाहा ! गद्दी पर बैठा हो, मुलायम गद्दी अथवा कुर्सी, ऊपर पंखा चल रहा हो, ऐसे करो, ऐसे करो... ओहोहो ! पागल तो कितना ! ... सेठ को पागल कहना ? आहाहा ! ऐसे बैठा हो,... चाय लाओ, अमुक लाओ। परिवार में साथ में बैठा हो। ओहो ! क्या बोलता हूँ, किसको कहता हूँ, कौन आया है, उसका कुछ भान ही नहीं।

कहते हैं, जिसका मन-वीर्य अपना निज पदार्थ के अलावा बाह्य पदार्थ की ओर स्फुरित तत्पर है, वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा ! संक्षेप में कितने शब्द डाले हैं ! **'बहिरत्थे फुरियमणो इंदियदारेण णियसरूवचुओ'**। दो बोल लिये। मन और इन्द्रियाँ। आहा ! भगवान ! मन द्वारा वीर्य की स्फुरणा, पर विकल्प आदि में, और शरीर, वाणी, मन, स्त्री,

कुटुम्ब, परिवार में, मकान में, वाणी में, शरीर की सुन्दरता में जिसकी वीर्य की गति पर में तत्पर है, वह बहिरात्मा है, वह मूढ़ है, अज्ञानी है, मोही है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा!

मुमुक्षु : नुकसान क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नुकसान कुछ नहीं, निगोद में जाने का लाभ होगा। लाभ होगा कहा न ? समझ में आया ? आहाहा! अपना निजानन्द प्रभु, उसका अनादर करके असातना करके, विरोध करके, अपने निजपरमात्मा के प्रति अनादर करके, एक विकल्प से लेकर बाह्य वस्तु का आदर किया, तत्पर हुआ, अपनी चीज़ का खून कर दिया, बड़ी हिंसा की। अर्थात् मैं परमानन्द पवित्र नहीं हूँ, मैं तो इतना राग और आस्रव, यह (मैं) हूँ। तो अपनी चीज़ का उसने निषेध कर दिया। ये नहीं, ऐसा नहीं, ये मैं। वह अपनी हिंसा की। अपनी चीज़ है, वह नहीं है, वह नहीं है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : स्व में सोता है, पर में जागता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जागता है-पर में जागता है। आता है न श्लोक ? सातवें अध्याय में। मोक्षपाहुड़ में। २२ है ? ३१ गाथा है, देखो! यह गाथा मोक्षमार्गप्रकाशक के सातवें अध्याय में आयी है। टोडरमलजी ने ली है। देखो, ३१। तीस और एक। पृष्ठ ३०७।

आगे कहते हैं कि जो व्यवहार में तत्पर है... देखो! यहाँ तत्पर आया। यहाँ तत्पर है न ? स्फुरित अर्थात्। कुदरती! ३१ गाथा। ये मोक्षप्राभृत चलता है न ? उसकी ३१वीं गाथा, टोडरमलजी ने सातवें अध्याय में आधार दिया है।

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणो कज्जे॥३१॥

जो योगी ध्यानी मुनि व्यवहार में सोता है... विकल्प से सो गया है **अपने स्वरूप के काम में जागता है...** अपना ज्ञानानन्द की ओर जागता है, राग से सो गया है। **और जो व्यवहार में जागता है, वह अपने आत्मकार्य में सोता है।** जो विकल्प, रागादि में तत्पर है और उसे अपना मानते हैं, वह अपने में जागृत नहीं है, सो गया है। आत्मकार्य में सोता है। आत्मकार्य में नींद लेता है, पर के कार्य में जागृत है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! जितना व्यवहार में तत्पर हो जाए। क्योंकि सम्यग्दृष्टि व्यवहार से मुक्त है। समझ में आया ?

विकल्पादि होते हैं, उससे भी सम्यग्दृष्टि ज्ञानी तो मुक्त है। अज्ञानी उससे सहित है, तत्पर है। तत्पर है, मन स्फुरित है।... समझ में आया? देखो!

मुनि के संसारी व्यवहार तो कुछ है नहीं और यदि है तो मुनि कैसा? मुनि को संसार का कोई व्यवहार लेना-देना हो तो मुनि कैसा? **वह तो पाखण्डी है।** लिखा है उसमें। लिखा है? **धर्म का व्यवहार संघ में रहना, महाव्रतादिक पालना ऐसे व्यवहार में भी तत्पर नहीं है,...** देखो! आहाहा! आया, परन्तु तत्पर नहीं है। यहाँ कहते हैं, तत्पर नहीं है। वह कहते हैं, पालते हैं। अरे! भगवान! वह तो निमित्त का कथन है। क्या कहते हैं? देखो! **धर्म का व्यवहार संघ में रहना, महाव्रतादिक पालना ऐसे व्यवहार में भी तत्पर नहीं है, सब प्रवृत्तियों की निवृत्ति करके ध्यान करता है...** महाव्रतादिक प्रवृत्ति है, राग है, विकल्प है, आस्रव है। आहाहा! बहुत गड़बड़। महाव्रत मोक्ष का मार्ग है, अभी ऐसा लिखा है। सोनगढ़वालों ने छहढाला में महाव्रत को प्रमाद कहा है, झूठी बात है। अभी रतनचन्दजी के लेख में आया है। छठे गुणस्थान में विकल्प उठा, वह प्रमाद है। उसका अभाव होता है, तब अप्रमाद होता है। समझ में आया? आहाहा!

सब प्रवृत्तियों की निवृत्ति करके ध्यान करता है, वह व्यवहार में सोता कहलाता है... विकल्प का क्या होता है, पर का क्या होता है, खबर नहीं। अपने स्वरूप में जागते हैं। आहाहा! **और अपने आत्मस्वरूप में लीन होकर देखता है, जानता है, वह अपने आत्मकार्य में जागता है। परन्तु जो इस व्यवहार में तत्पर है सावधान है, स्वरूप की दृष्टि नहीं है, वह व्यवहार में जागता हुआ कहलाता है।** जिसको स्वरूप की दृष्टि नहीं, ज्ञानानन्द मैं हूँ—ऐसा भान नहीं और राग में और पर में तत्पर है, वह बहिरात्मा है। आहाहा! समझ में आया?

तथा इन्द्रियों के द्वार से अपने स्वरूप से च्युत है... क्या कहते हैं? भगवान आत्मा तो अतीन्द्रिय है, उस ओर की दृष्टि तो है नहीं। तो उसका इन्द्रिय द्वारा लक्ष्य बाहर जाता है। उसकी ज्ञान की प्रवृत्ति इन्द्रिय द्वारा होती है। इन्द्रिय द्वारा जो होती है... देखो! **उसे आत्मा जानता है...** इन्द्रिय की प्रवृत्ति होती है, विकल्प उठा, वह आत्मा। अतीन्द्रिय आत्मा की तो खबर नहीं।...भाई! इसमें बहुत जिम्मेदारी है।

मुमुक्षु : अब तो बता तो कैसे...

पूज्य गुरुदेवश्री : ये कहते हैं न। आचार्य कहते हैं, देखो न! जिनवरदेव कहते हैं, ऐसा कहा। त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सो इन्द्र के पूजनीक। इच्छा बिना वाणी द्वारा भगवान ने ऐसा कहा, ऐसा व्यवहार से कहने में आया। आहाहा! समझ में आया?

इन्द्रियों को ही आत्मा मानता है, स्वरूप में च्युत है। ये पाँच इन्द्रियाँ, उस ओर की प्रवृत्ति है। वर्तमान ज्ञान की अवस्था में उस ओर की प्रवृत्ति है, अन्तर की तो है नहीं। बाह्य प्रवृत्ति में इन्द्रिय द्वारा जाता है, उसमें लीन हो जाता है। ओहो! मेरी प्रवृत्ति, मैंने ऐसा किया, मैंने ऐसा किया, मैंने ऐसा किया। इन्द्रिय द्वारा मन काम करता है ज्ञान तो ऐसा किया, ऐसा किया (मानता है)। मेरा कार्य, मैं ये करता हूँ, मैं बोलता हूँ, मैं भाषा करता हूँ, मैं समझता हूँ। लोग मेरे हैं, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार (मेरे हैं)। इन्द्रिय से तो वह दिखने में आता है, इन्द्रिय से आत्मा तो दिखने में आता नहीं। इन्द्रिय द्वारा आत्मा ही पर को अपना मानता है। इन्द्रिय को मानता है उसका अर्थ... वह अपने आ गया। इन्द्रिय का विषय, इन्द्रिय और विकल्प को अपना माने, वह सब इन्द्रिय को ही अपनी मानता है। आहाहा! ऐसा मानना। वास्तव में तो स्थूल हो तो होवे, ऐसा कोई कहता था। घर में रहना, व्यापार-धन्धा करना (और ऐसी मान्यता रखना)। कौन करता है? करे कौन? संकल्प—विकल्प तुझे होता है। बस! इसके अतिरिक्त तेरी मर्यादा में कुछ है नहीं। परन्तु वह संकल्प—विकल्प इन्द्रिय द्वारा करते हैं तो ये मैंने किया, ये मैंने किया, यह मैं हूँ। मैंने किया उसमें मैं हूँ। समझ में आया? यहाँ अस्तित्व जो महाप्रभु है उसके अस्तित्व से तो च्युत हुआ। कहते हैं न? देखो!

आत्मा **अपने स्वरूप में च्युत है और इन्द्रियों को ही आत्मा जानता है...** अथवा इन्द्रिय द्वारा जो देखने में आता है वही अपनी चीज़ है, ऐसा मानता है। समझ में आया? **ऐसा होता हुआ अपने देह को ही आत्मा जानता है...** शरीर को ही आत्मा जानता है। दूसरा कुछ रहा नहीं। वह सब शरीर ही है। राग कार्माणशरीर है, शरीर शरीर है, दिखने में जो चीज़ आवे, शरीर से दिखने में आवे, वह शरीर की चीज़ है। अपनी चीज़ नहीं। **निश्चय करता है... आत्मा जानता है निश्चय करता है, इस प्रकार मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है।** आहाहा!

भावार्थ - ऐसा बहिरात्मा का भाव है उसको छोड़ना। ये बहिरात्मा का भाव अन्तरात्मा होकर छोड़ना।

गाथा-९

आगे कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि अपनी देह के समान दूसरे की देह को देखकर उसको दूसरे की आत्मा मानता है –

णियदेहसरिच्छं* पिच्छिऊण परविग्गहं पयत्तेण।
अच्चेयणं पि गहियं झाइज्जइ परमभावेण।।९।।

निजदेहसदृशं दृष्ट्वा परविग्रहं प्रयत्नेन।
अचेतनं अपि गृहीतं ध्यायते परमभावेन।।९।।

यद्यपि अचेतन तथापि निज-देह-वत् पर-देह को।
आतम समझ मिथ्यात्व-युत बहु यत्न से ध्या उसी को।।९।।

अर्थ – मिथ्यादृष्टि पुरुष अपनी देह के समान दूसरे की देह को देखकर के यह देह अचेतन है तो भी मिथ्याभाव से आत्मभाव द्वारा बड़ा यत्न करके पर की आत्मा ध्याता है अर्थात् समझता है।

भावार्थ – बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्वकर्म के उदय से (उदय के वश होने से) मिथ्याभाव है, इसलिए वह अपनी देह को आत्मा जानता है वैसे ही पर की देह अचेतन है तो भी उसको पर की आत्मा मानता है (अर्थात् पर को भी देहात्मबुद्धि से मान रहा है और ऐसे मिथ्याभाव सहित ध्यान करता है) और उसमें बड़ा यत्न करता है इसलिए ऐसे भाव को छोड़ना – यह तात्पर्य है।।९।।

गाथा-९ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि अपनी देह के समान दूसरे की देह को देखकर... अपना देह ऐसा माना तो परदेह को ही आत्मा मानता है। स्त्री-पुत्र का देह... आहाहा! बहुत अच्छा तेरा शरीर। बहुत अच्छा तेरा अर्थात् उसका आत्मा का मानता है। उसका रूप,

* द्र 'सरित्छं' पाठान्तर 'सरिसं'

उसकी सुन्दरता, उसे खिलाये, पिलाये... आहाहा! ये सब आत्मा ही है। मणिभाई! सुनाई देता है या नहीं?

णियदेहसरिच्छं पिच्छिऊण परविग्गहं पयत्तेण।
अच्चेयणं पि गहियं झाइज्जइ परमभावेण।।९।।

अर्थ - मिथ्यादृष्टि पुरुष अपनी देह के समान दूसरे की देह को देख करके यह देह अचेतन है तो भी मिथ्याभाव से आत्मभाव द्वारा बड़ा यत्न करके पर की आत्मा ध्याता है... शरीर की सम्हाल करे, शरीर के साथ विषय लेने पर मानो यह मैं, यह शरीर मेरा। उसका शरीर ही आत्मा। आहाहा! समझ में आया? पर के शरीर को ही आत्मा मानता है। वह खाये-पीये तो आत्मा खाता-पीता है। छोटा लड़का हो उसे खिलाये। ... लड़का बैठा हो तो ...

मुमुक्षु : अपना बच्चा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका बच्चा कहाँ से आया? राग अपना नहीं तो बच्चा कहाँ से आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। बिल्कुल आवे नहीं। विकल्प आये, उसका ज्ञाता-दृष्टा है। स्वामीपना नहीं, उसका धनी नहीं और अपने में है नहीं। वह पर में हुआ है, अपने में नहीं। वह तो पर में एकाकार बुद्धि से करता है न? ज्ञान पर में एकाकार है, पहले से कहा। सम्यग्दृष्टि व्यवहार से मुक्त है। शादी करता है, देह की क्रिया होती है, उससे मुक्त है। देह की क्रिया होती है, उसे अपनी मानते नहीं। उसमें विकल्प आता है, वह अपने में है ऐसा मानते नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : विवाह करवानो भाव थाय?

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प आया है। भाव दूसरा नहीं। उस विकल्प भी अन्दर दृष्टि में त्याग है।

मुमुक्षु : प्रसंग में खड़ा है...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं खड़ा नहीं है, आत्मा में खड़ा है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणमन... राग में है ही नहीं, ज्ञानी राग में है ही नहीं। राग तो आस्रवतत्त्व है। उसमें आत्मा है ? ज्ञानी उसमें है ही नहीं। वह तो अपने ज्ञान में है। सूक्ष्म है, मूलचन्दभाई ! आहाहा !

आत्मा तो राग से रहित है, ऐसी भान, दृष्टि हुई, फिर ज्ञानी तो ज्ञान और आनन्द में ही है। वह राग में और पर की क्रिया में है नहीं। होती है तो हो, वह तो पर के कारण से होती है, अपने कारण से नहीं। यह मार्ग है। समझ में आया ? 'धार तरवारनी सोह्यली दोह्यली चौदमा जिन तणी चरणसेवा।' अनन्तनाथ भगवान आत्मा, उसकी सेवा अलौकिक ! तलवार की धार पर नाचे उससे अनन्तगुना पुरुषार्थ उसमें है। समझ में आया ?

यहाँ भगवान आचार्य कहते हैं, **मिथ्यादृष्टि पुरुष अपनी देह के समान दूसरे की देह को देख करके यह देह अचेतन है तो भी मिथ्याभाव से आत्मभाव द्वारा...** ये आत्मा है, ये आत्मा है। शरीर की चेष्टा, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब की (चेष्टा) अनुकूल देखे... ओहो !... मुझे अनुकूल है, ऐसी तत्परता अपने द्रव्यस्वभाव की दृष्टि-तत्परता छोड़कर पर में तत्परता करते हैं, वह आत्मभाव से च्युत हो गया है। **मिथ्याभाव से आत्मभाव द्वारा बड़ा यत्न करके पर की आत्मा ध्याता है...** शरीर ऐसा रहे तो ठीक, वह है सो मैं ही हूँ न, ऐसा कहते हैं न ? ऐई ! भीखाभाई ! हीराभाई जैसे पुत्र हो तो फिर... आहाहा ! कहाँ गये हीराभाई ! यहाँ कहते हैं, किसका पुत्र ? उसके शरीर को देखकर ऐसा देखा, उसका आत्मा। उसकी अनुकूलता देखे तो (अर्थात्) तेरी अनुकूलता वह मेरी अनुकूलता। ऐई ! आपका तो कोई पुत्र नहीं है, इसलिए स्त्री के ऊपर सब राग। कंचन और कामिनी सब उसी पर। समझ में आया ? आहाहा ! भगवान ! बापू ! प्रभु ! आहाहा !

शरीर की कोई भी चेष्टा आत्मा के अस्तित्व में कहाँ है ? और सामनेवाले के शरीर का अस्तित्व ... वह आत्मा में कहाँ है ? शरीर की चेष्टा ही आत्मा है। तुझे बहुत अच्छा बोलना आता है, हाँ ! तुझे बहुत अच्छा चलना आता है, हाँ ! ऐसा करके शरीर को ही आत्मा मानता है। आहाहा ! समझ में आया ? टीका में थोड़ा अलग अर्थ लिया है। परमभागेन है, भाई ! यहाँ है न ? **'भावेण', 'परमभावेण'** ज्ञानी की व्याख्या की। परम भाग करके। अपना देह, राग से परम भिन्न करके अपने आत्मा को ज्ञानी ध्याता है। अज्ञानी का अर्थ

लिया है। परमभागेन में से ज्ञानी लिया है। '**निजदेहसदृंश दृष्ट्वा परिविग्रहं प्रयत्नेन**' परदेह को ज्ञानी बराबर देह जानते हैं, उसका आत्मा उससे भिन्न है ऐसा जानते हैं। '**अचेतन अपि गृहीतं**' उसने अचेतन शरीर को ग्रहण किया है, चैतन्य भिन्न है। अचेतन है, ऐसा ज्ञानी जानते हैं। और '**ध्यायते परमभागेन**' शरीर से और पर से भिन्न करके अपने आत्मा का ध्यान करते हैं। परमभागेन। भाई! भागेन लिया है। परमभागेन-भिन्न करके। यहाँ '**परमभावेण**' लिया। अर्थात् मिथ्यादृष्टि की व्याख्या की। समझ में आया? परमभागेन अर्थात् परम भेदज्ञान करके, परम भेद करके। समझ में आया?

पर ओर का जो विकल्प, पुण्य है उससे भी भेद करके। अपना आत्मा ज्ञानानन्द को ज्ञानी ध्याते हैं-ध्यान करते हैं। उसका ध्यान करते हैं। उसका नाम अन्तरात्मा और उसका नाम मोक्ष का मार्ग।

भावार्थ - बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्वकर्म के उदय से (-उदय के वश होने से) मिथ्याभाव है, इसलिए वह अपनी देह को आत्मा जानता है, वैसे ही पर की देह अचेतन है तो भी उसको पर की आत्मा मानता है... ध्याता है अर्थात् उसका बहुत विचार करे कि उसका शरीर ऐसा रहे, पुत्र को ऐसे रहे तो, स्त्री का ऐसा रहे तो, कुटुम्ब का ऐसा रहे तो, मकान का ऐसा रहे। ध्यावे अर्थात् उसका ध्यान करे। तेरे ध्यान से छूट गया। नेमीदासभाई! उसके पास बहुत मकान है। क्या करना है? तीन मकान हैं बड़े-बड़े। विचार तो आये न कि इतना भाड़ा कमाये, इतना भाड़ा हो, अमुक हो। उसके प्रमाण में दस हजार की भाड़े की कमाई हो उसमें से दो-चार-पाँच हजार का खर्च करना. ... में से खर्च करना, पूँजी में से नहीं खर्च करना। वह पर का ध्यान करे, ऐसा कहते हैं। ऐ... ! मोहनभाई ! ये तो दृष्टान्त है, आपके अकेले का नहीं है, दूसरे सबका है न। आहाहा! ऐ... मणिभाई! प्रमुख थे, तब कितना करते थे? ये करना, वह करना, अमुक करना। अब पूरा हो गया। आहाहा! जितनी स्व ओर की सावधानी चाहिए, उतनी नहीं करके पर में सावधानी में होशियार आदमी को यहाँ बहिरात्मा कहते हैं। बहुत संक्षेप में (व्याख्या की है)।

उसमें बड़ा यत्न करता है इसलिए ऐसे भाव को छोड़ना (यह तात्पर्य है)। भगवान! पर में तत्परता विकल्प है। वह मेरा है और मैं कर सकता हूँ, ऐसी दृष्टि छोड़ना। और अन्तरात्मा की दृष्टि करना। समझ में आया? दसवीं (गाथा)।

गाथा-१०

आगे कहते हैं कि ऐसी ही मान्यता से पर मनुष्यादि में मोह की प्रवृत्ति होती है-

सपरज्झवसाएणं देहेसु य अविदिदत्थमप्पाणं।
सुयदाराईविसए मणुयाणं वड्ढए मोहो।।१०।।

स्वपराध्यवसायेन देहेषु च अविदितार्थमात्मानम्।
सुतदारादिविषये मनुजानां वर्द्धते मोहः।।१०।।

अविदित-पदार्थी स्व-पर अध्यवसाय से सब देह में।
आत्मत्व-धी से बड़ाता यह मोह पत्नि पुत्र में।।१०।।

अर्थ - इस प्रकार देह में स्व-पर के अध्यवसाय (निश्चय) के द्वारा मनुष्यों के सुत दारादिक जीवों में मोह की प्रवृत्ति करते हैं, कैसे हैं मनुष्य, जिनने पदार्थ का स्वरूप (अर्थात् आत्मा) नहीं जाना है - ऐसे हैं।

दूसरा अर्थ (इस प्रकार देह में स्व-पर के अध्यवसाय (निश्चय) के द्वारा जिन मनुष्यों ने पदार्थ के स्वरूप को नहीं जाना है, उनके सुत दारादिक जीवों में मोह की प्रवृत्ति होती है।) (भाषा परिवर्तनकार ने यह अर्थ लिखा है)

भावार्थ - जिन मनुष्यों ने जीव-अजीव पदार्थ का स्वरूप यथार्थ नहीं जाना, उनके देह में स्वपराध्यवसाय है। अपनी देह को अपनी आत्मा जानते हैं और पर की देह को पर की आत्मा जानते हैं, उनके पुत्र-स्त्री आदि कुटुम्बियों में मोह (ममत्व) होता है। जब ये जीव-अजीव के स्वरूप को जानें तब देह को अजीव मानें, आत्मा को अमूर्तिक चैतन्य जानें, अपनी आत्मा को अपनी मानें और पर की आत्मा को पर मानें, तब पर में ममत्व नहीं होता है। इसलिए जीवादिक पदार्थों का स्वरूप अच्छी तरह जानकर मोह नहीं करना - यह बतलाया है।।१०।।

गाथा-१० पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि ऐसी ही मान्यता से पर मनुष्यादि में मोह की प्रवृत्ति होती है- ऐसी मान्यता यहाँ है और दूसरा मनुष्यदेह मिले, उसमें भी ऐसा मोह प्रवर्तता है। ऐसे संस्कार लेकर गया। मरते-मरते भी सम्हाल करे कि पुत्र! बाद में ये करना, वह करना। कौन करे? तुझे क्या है? तुझे पाँच-दस लाख दिये हैं। उसमें से एक लाख अमुक जगह देना, अमुक को देना। मेरा नाम रखना। ध्यान रखना।

मुमुक्षु : दुनिया में प्रसिद्ध हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुनिया अर्थात् पागल। आहाहा! उसमें मेरा नाम रखना। एकदम दो लाख रुपये दे मत देना, हाँ! नाम अन्दर डालना। अरे..! नाम तो जड़ का है, तेरा नाम कहाँ से हो गया? कहाँ घूस गया तू नाम में? वह कहते हैं, पर में तत्परता रखनेवाला मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। शोभालालजी! ये दसवीं गाथा में कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-६६, गाथा-१० से १३, गुरुवार, श्रावण कृष्ण ४, दिनांक २०-०८-१९७०

ये मोक्षप्राभृत चलता है। दसवीं गाथा। बन्ध किसको होता है? क्योंकि मोक्ष के सामने बन्ध कहते हैं न? बन्धन होता है, वह मिथ्यात्व से बन्धन होता है, उसको मुक्ति होती नहीं। बहिरात्मा की बात चलती है। दसवीं गाथा। **आगे कहते हैं कि ऐसी ही मान्यता से पर मनुष्यादि में प्रवृत्ति होती है -**

सपरज्झवसाएणं देहेसु य अविदिदत्थमप्पाणं।
सुयदाराईविसए मणुयाणं वड्ढए मोहो।।१०।।

अर्थ - इस प्रकार देह में स्व-पर के अध्यवसाय (निश्चय)... देह, रागादि

आत्मा है, ऐसा जिसको अध्यवसाय वर्तता है। जो अपना तत्त्व ज्ञायकतत्त्व है, वह स्व है। उसमें राग, शरीर, वाणी, कुटुम्ब-कबीला आदि सब वस्तु मेरी है और वह ठीक हो तो मुझे ठीक, मैं उसकी सम्हाल कर सकता हूँ—ऐसा अध्यवसाय दो द्रव्य को एक मानने का मिथ्यात्व अध्यवसाय है। समझ में आया? **स्व-पर के अध्यवसाय (निश्चय) के द्वारा मनुष्यों के सुत, दारादिक जीवों में मोह प्रवर्तता है...** अपने ज्ञानानन्दस्वभाव की जिसको अन्तर्दृष्टि नहीं, अपने चैतन्यस्वभाव की खबर नहीं, वह रागादि, शरीर को अपना माने तो शरीरादि क्रिया, कुटुम्बादि में मोह प्रवर्ते बिना रहे नहीं। स्त्री, कुटुम्ब मेरे हैं, मैं उनका हूँ, ऐसा अभ्यन्तर में जीव में अजीव का अंश मिलाकर अथवा पर का अंश मिलाकर ऐसा मानता है कि वह मैं हूँ।

मुमुक्षु : देखने में तो आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या देखने में आता है? देखने में डालचन्दजी वहाँ रहा है, तुम्हारा आत्मा यहाँ है। कहाँ से आया? लड़का मेरा आया कहाँ से? ऐसा कहते हैं। जिसको स्व-पर की एकताबुद्धि है, उसको ऐसा आता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वह आत्मा भिन्न है, उसका शरीर भी भिन्न है। तुम्हारा शरीर भिन्न और आत्मा भिन्न है।

स्व-पर के अध्यवसाय... अपना और पर का एकरूप अध्यवसाय है। यहाँ मिथ्यात्व से बात ली है। मुक्ति क्यों नहीं होती है? कि मिथ्यात्वभाव के कारण उसको बन्धन होता है। पहली चीज़ यह है। बहिर-अपने आनन्दस्वरूप में वह चीज़ नहीं है। शुभ-अशुभराग, शरीर, स्त्री, कुटुम्ब परिवार अपने आत्मा में नहीं। उसको अपना मानता है, उसको ठीक हो तो मुझे ठीक पड़े, उसको अठीक हो तो मुझे अठीक लगे, ये सब स्व-पर की एकताबुद्धि का मिथ्या अध्यवसाय है।

मुमुक्षु : कथंचित् है और कथंचित् नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कथंचित् नहीं, बिल्कुल मिथ्यात्व है। सम्यग्दृष्टि को... भाई ने कल प्रश्न किया था कि सम्यग्दृष्टि क्या लड़के को नहीं खिलाते? शादी नहीं करवाते? नहीं। वह शब्द आया था न? तत्पर शब्द आया था। '**बहिरत्थे फुरियमणो**', '**बहिरत्थे फुरियमणो**' ऐसा आठवीं गाथा में आया था। उसकी तत्परता है। सूक्ष्म बात है। साधारण

फर्क में भी मिथ्यात्व कैसा है, यह बताते हैं। साधारण अन्तर समझते हो? मामूली। मामूली दिखता है परन्तु उसमें बड़ा मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? शरीराश्रित क्रिया। उपवासादि शरीराश्रित क्रिया है। उपदेशादि वाणी आश्रित क्रिया है। समझ में आया? परपदार्थ उसके कारण से रहा और बदलता है। ऐसा माने कि मेरे से ये वाणी होती है, मेरे से शरीर में उपवास हुआ, उपवास की क्रिया मेरे से शरीर में हुई, ये सब पर को एकत्व मानने का अध्यवसाय मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु : तो फिर किससे हुई है?

पूज्य गुरुदेवश्री : किससे हुई? जड़ से जड़ की पर्याय होती है। वह कहाँ आत्मा में है? समझ में आया? ये बन्धन की बात करते हैं। बहिरात्मा। ओहो! सूक्ष्म विकल्प है, वह भी बहिर चीज़ है। वह अपना मानता है, शरीर भी अपना मानता है। आस्रव को अपना माना तो शरीर को अपना माना तो परमात्मा और परशरीर को भी अपना माना। गहराई में उसकी मिठास रह जाती है। मिठास समझते हो?

मुमुक्षु : नहीं समझते।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिठास किसको कहते हैं, नहीं समझते? मिठास का हिन्दी में क्या अर्थ है? मिठास।

मुमुक्षु : अन्दर से प्रेम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अन्दर से प्रेम है। गहराई से प्रेम है। गहराई से प्रेम है। माने भले कि पुत्र मेरा नहीं, अजीव पर है, जीव पर है। समझ में आया?

सुत, दारादिक जीवों में मोह प्रवर्तता है... देखो! जिसको अपना माने, उसमें मोह प्रवर्ते बिना रहे नहीं। आहाहा! **कैसे हैं मनुष्य-जिसने पदार्थ का स्वरूप (अर्थात् आत्मा) का नहीं जाना है ऐसे हैं।** जिसने अविदित ... भगवान आत्मा क्या है, उसको जाना नहीं। शरीर, वाणी, आस्रव क्या है, उसको जाना नहीं। नौ तत्त्व जाने नहीं, ऐसा कहते हैं। बहुत संक्षेप में है। वह मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है न? सात तत्त्व की भूल। उसमें भी आता है, छहढाला में। छहढाला में आता है न? सात तत्त्व की भूल। उसमें नौ तत्त्व की भूल ली। वह यहाँ कहते हैं, '**अविदितार्थ**' जिसने पदार्थ जाना नहीं है। शरीर की

पर्याय शरीर से होती है, राग राग से होता है, मैं ज्ञायक भिन्न हूँ, ऐसा न जानकर ज्ञायक के साथ राग को मिलाकर शरीर की क्रिया मेरे से होती है और राग मेरी चीज़ है, वह '**अविदितार्थ**'। नहीं जाना है आत्मा, नहीं जाना आस्रव, नहीं जाना अजीव। समझ में आया? आहाहा! पाठ है न? देखो न! '**अविदिदत्थमप्पाणं**'। जिसने अपना स्वरूप क्या है, यह जाना नहीं और आस्रव, पुण्य-पाप का परिणाम (उसे भी जाना नहीं)। मैं पर को बचा सकता हूँ, पर की दया पाल सकता हूँ, वह भी पर की पर्याय को अपना माना। स्व-पर का एकत्व दृढ़ है। समझ में आया? सेठ! मैं पैसे दे सकता हूँ, मैं पैसे ले सकता हूँ।

मुमुक्षु : ये सब खोटी मान्यता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटी मान्यता है? समझ में आया? यह परद्रव्य के साथ स्वद्रव्य की एकताबुद्धि है। तब ऐसा अभिप्राय उत्पन्न होता है। मैंने पैसा लिया, मैंने आहार खाया, ऐसा हुआ, पथ्य आहार लिया तो मुझे निरोगता रहती है, अपथ्य आहार लिया तो रोग हो जाता है, सब स्व-पर की एकत्वबुद्धि का अध्यवसाय है। शोभालालजी! आहाहा!

जिसने (अर्थ नाम) पदार्थ का स्वरूप (अर्थात् आत्मा का स्वरूप) नहीं जाना है... भगवान आत्मा तो ज्ञायक चैतन्यस्वरूप है। उसमें विकल्प की गन्ध नहीं, वासना नहीं। भावपाहुड़ में कहीं पर आता है। समझ में आया? ऐसी गन्ध... गन्ध। भगवान आत्मा में राग की गन्ध नहीं। शरीर, वाणी, पर, कुटुम्ब आदि तो कहाँ रहा? आहाहा!

भावार्थ - जिन मनुष्यों ने जीव-अजीव पदार्थ का स्वरूप यथार्थ नहीं जाना... जिन मनुष्यों ने जीव-अजीव पदार्थ का स्वरूप यथार्थ नहीं जाना **उनके देह में स्वपरअध्यवसाय है**। उन्हें देह में स्व और पर की एकताबुद्धि है। शरीर से विषय ले तो मैं लेता हूँ। समझ में आया? वह शरीर की क्रिया होती है, वह मेरे-से होती है, वह स्व-पर का अध्यवसाय में लीन है। आहाहा! समझ में आया? मैं झूठ बोल सकता हूँ, मैं चोरी कर सकता हूँ, मैं शरीर से विषय ले सकता हूँ, ये सब बुद्धि स्व-पर की एकताबुद्धि का अध्यवसाय मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? बहुत संक्षेप में अविदित करके नौ तत्त्व की भूल है, ऐसा बताते हैं। एक भी तत्त्व को यथार्थ नहीं जाना। **अपनी देह को अपनी आत्मा जानते हैं...** अपनी देह को अपनी आत्मा जानता है।

मुमुक्षु : अपना देह हो गया न।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना देह (कहकर) समझाते हैं। ऐसा कहते हैं कि अपना देह, ऐसा शब्द आया न? अपना देह कहकर पहिचान करवाते हैं कि दूसरा देह नहीं, यह देह। देह अपना नहीं है। देह तो मिट्टी का पिण्ड है, जड़ है, ये तो अजीव का पिण्ड है। आहाहा! कुछ अनुकूलता देखकर प्रसन्न हो जाना, प्रतिकूलता देखकर नाराज हो जाना, यह दोनों बात स्व-पर की अध्यवसाय की एकत्वबुद्धि है। समझ में आया?

जीव-अजीव पदार्थ का स्वरूप यथार्थ नहीं जाना, उनके देह में स्वपर-अध्यवसाय है। अपनी देह को अपनी आत्मा जानते हैं और पर की देह को पर की आत्मा जानते हैं,... पर का देह ही आत्मा है, ऐसा मानते हैं। स्त्री का देह, कुटुम्ब, लड़के का देह। उसको सदा सरोगता ही रहती है, उसको निरोगता ही रहती है। वह उसे आत्मा मानता है। समझ में आया? पुण्य-पाप के फलरूप संयोग मिले, उसको ही आत्मा मानता है, ऐसा कहते हैं। वह तो परचीज़ है। लड़के को मिले या स्त्री को मिले... वह प्रसन्न हो तो मुझे ठीक।... या नहीं? स्त्री सुखी हो तो मैं सुखी। घर का सदस्य है न? किसके घर का सदस्य? घर का सदस्य दूर रहता है? समझ में आया?

मुमुक्षु : सुविधा मिलती रहती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुविधा मिलती रहती है, रसोई बना दे। समझे? खाना खाने बैठा हो और मक्खी आदि हो तो पंखा लगाये। सुविधा होती है। धूल की सुविधा है? समझ में आया? एकबार देखा था। वह आहार करता था। उसकी स्त्री मक्खी दाल में नहीं गिरे इसलिए पंखा (लगाती थी)। हवा के लिये नहीं। मक्खी इत्यादि हो तो पंखा लगाने बैठे। दाल में मक्खी नहीं गिरे। वह खाने में ध्यान रखे, वह मक्खी उड़ाये। जयकुमारजी! समकिती ऐसा करता है या नहीं? छह खण्ड का राज,चक्रवर्ती।

हमारे न्यालभाई ने लिखा है, छह खण्ड नहीं, वे तो अखण्ड को साधते थे। न्यालभाई सोगानी ने शब्द लिखा है। चक्रवर्ती छह खण्ड साधते हैं, ऐसा कहते हो तो ऐसा है नहीं। वे तो अखण्ड को साधते थे। आहाहा! समझ में आया? कहाँ लगा दिया उसने! देखो! सेठ! अखण्ड। भगवान अखण्ड चैतन्य। दोपहर को आयेगा। एक पंक्ति बाकी है

न ? छह खण्ड नहीं, अखण्ड को साधते थे। आहाहा ! लोगों को ऐसा दिखे (कि) ये स्त्री में पड़ा है, शादी करते हैं... अरे ! तुझे खबर नहीं, भाई ! जहाँ राग से मुक्त हुआ है तो देह से मुक्त है, सब राग से मुक्त है।

उदासीनो अहं। मैं तो सब परपदार्थ से उदासीन हूँ। मेरी चीज़ उसमें है नहीं। समझ में आया ? मेरा आसन तो मेरा स्वभाव है। उद-आसन। उदासीन। मेरा आसन लगा है चैतन्यमूर्ति में। वह मेरा आसन है, वह मेरा घर है और उसमें मैं लगा हूँ। छह खण्ड-बखण्ड चक्रवर्ती साधते नहीं थे। गजब बात ! समझ में आया ? वे समकिती थे। समझ में आया ? तीन ज्ञान था, भरत चक्रवर्ती को पीछे तीन ज्ञान हुए थे। मति, श्रुत और अवधि और जातिस्मरण हुआ था। विशेष निर्मलता। मति की, श्रुत की और अवधि की तीनों की निर्मलता विशेष हुई। गृहस्थाश्रम में है। भरतेश वैभव में आता है। भरतेश वैभव है न ? पुस्तक है न ? भरतेश वैभव देखा है ? पण्डितजी ! भरतेश वैभव। बनानेवाले कौन ? रत्नाकर कवि, उसने भरतेश वैभव बनाया है। कथा बहुत सुन्दर बनायी है। समझ में आया ? उसका महोत्सव नहीं हुआ तो थोड़ा खेद हो गया था। अरे ! ये क्या ? दूसरे का पुस्तक बनाया, उसका हाथी के होदे पर महोत्सव किया। उसके पुस्तक का नहीं किया। धर्म बदल दिया, चले गये दूसरे में। दुनिया मान दे तो तुझे धर्म रखना है ? दुनिया नहीं माने, निन्दा करे तो तुझे धर्म छोड़ना है ? क्या चीज़ है ? समझ में आया ? हमारी पसन्दगी नहीं... ऐसा आता है। छोड़ दिया धर्म को। अरे ! पूरी दुनिया छूट जाए, वज्रपात हो तो भी ज्ञानी अपनी दृष्टि से च्युत होता नहीं। आहाहा ! अपना चिदानन्दस्वभाव मेरे पास मैं हूँ। मेरे में कोई दूसरी चीज़ का अन्तर प्रवेश है नहीं और मेरा राग और परपदार्थ में प्रवेश है नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! वह द्वेष में एकत्व है। सम्यग्दृष्टि में दोनों में प्रवेश नहीं है। अपने आत्मा का राग में प्रवेश नहीं और राग का प्रवेश अपने में नहीं। तो शरीर में आत्मा का प्रवेश और शरीर का आत्मा में प्रवेश हो जाए, ऐसा तीन काल-तीन लोक में होता नहीं। आहा !

कहते हैं, **अपनी देह को अपनी आत्मा जानते हैं और पर की देह को पर की आत्मा जानते हैं,...** परदेह को आत्मा मानता है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार उसका देह वह आत्मा। देह छूट जाए तो अरे रे ! आत्मा मर गया। कौन मरे ? समझ में आया ? सूरज मरे ?

चन्द्र मरे ? क्या मरे ? कौन मरे ? किसकी काण माण्डना ? काण समझते हो ? मरने के बाद रोते हैं न ? क्या कहते हैं ? मृत्यु के बाद ओ... ओ... करके जाते हैं न ? शोक... शोक। शोक कहते हैं ? हमारे यहाँ मरने के बाद ओ.. ओ... करके सब जाते हैं। अपने तो अपनी काठियावाड़ी भाषा खबर है। मरते हैं तब रिश्तेदार आते हैं। उसे क्या कहते हैं ? शोक। आते हैं। किसका रुदन ? कौन मर गया ? कौन जीवे ?

सूर्य कभी मर गया ? शाम को अस्त होता है न ? कोई रोता है ? अरे ! सूरज चला गया, मर गया। सूर्योदय होता है, तब कोई प्रसन्न होता है। सूर्य मर गया था, अब जन्म हुआ। सूर्य तो वैसा का वैसा है। सम्यक्ज्ञान दीपिका में दृष्टान्त दिया है। सम्यक्ज्ञान दीपिका में धर्मदास क्षुल्लक ने (दृष्टान्त दिया है)।... अरे... भैया ! सूर्य मर जाए तो क्या करेगा ? तो चन्द्र तो है या नहीं ? चन्द्र मरे तो क्या करेगा ? नक्षत्र तो है या नहीं ? नक्षत्र मरे तो क्या करेगा ? तारा है या नहीं ? तारा मरेगा तो क्या करेगा ? हम तो है। ऐसा लिया है, सम्यक्ज्ञान दीपिका में। कौन मरे ? हम तो सदा त्रिकाल अविनाशी जीवन्त ज्योत है। शाश्वत् चिदानन्द जीवन्त ज्योत मैं हूँ। त्रिकाल जीवन्त ज्योत मेरी, मेरे में कोई क्षति आयी नहीं। अभाव तो कैसे हो, परन्तु क्षति भी हुई नहीं। आहाहा ! ये मार्ग ऐसा है, भैया !

मुमुक्षु : महाराज ! एक लड़का हो तो आनन्द।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक लड़का हो तो आनन्द। आपका लड़का है या नहीं ? लड़का तो है। ये हमारे नेमिदासभाई को लड़के नहीं हैं। लड़का अर्थात् क्या ? समझे ? वह हमारे आया था, ... आता है न ? लोग बोलते हैं, हम सुनते थे।... माँगता है।... इतना था परन्तु मुझे नहीं दिया। अरे ! ऐसा हुआ, वैसा हुआ।... दोपहर कथा में लोग आते हैं न ? अरे.. भगवान ! लड़के कौन ? लड़का-प्रजा तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र अपनी प्रजा है। आहाहा ! यह प्रजा। ये तो धूल में मुफ्त में सच्चा माना। वही लड़का प्रतिकूल हो जाए तो बाप को मार डाले।

मुमुक्षु : महाराज ! समझे नहीं, आपने क्या कहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ... नहीं समझे ? लड़का विरुद्ध हो जाए तो पिताजी को मार डाले। समझ में आया ? चुडा में ऐसा बना था। उसका पिता बैठा था, खाता था। उसके

लड़के को विरोध हो गया, कोई भी कारण से। तो भी तेल का कड़ाया चूल्हा पर रखा था। चूल्हा समझे ? तेल... तेल। उसको खबर नहीं थी। बाप को ऐसा लगा गर्म पानी होगा। वह खाना खा रहा था तो तेल की कढ़ाही उठाकर बाप पर डाल दिया। लो, ये लड़का। एक लड़का हो तो ठीक।

मुमुक्षु : उसमें उसने क्या किया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसने करने का भाव किया न ? मार डालने का। भाव किया या नहीं ? उसे पिता कहे, पिता। धूल में भी पिता माना नहीं। अनुकूलता दे तो भी क्या ? अनुकूलता तो उसको पूर्व पुण्य के कारण मिलती है। अनुकूलता क्या है उसमें ? अनुकूलता है क्या ?

मुमुक्षु : नाम चलता है आगे के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम चलता है, अज्ञान का। भगवान नाम बिना की चीज़ प्रभु, उसको नाम क्या ? समझ में आया ? ऐसे आत्मा का अनामी चीज़ का नाम रखना है ? आहा ! भटकने का अध्यवसाय एकत्व है, ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म भाव है, भगवान ! देखो !

उनके पुत्र... देखो ! **देह को पर की आत्मा जानते हैं, उनके पुत्र स्त्री आदि कुटुम्बियों में मोह (ममत्व) होता है।** उसे होता ही है। लड़का हैया का हार। तुझे देखकर तो खुश हो जाता हूँ। मूर्ख है बड़ा। पण्डितजी ! आहा ! देखो न ! कहा या नहीं ? अध्यवसाय दु:ख की एकताबुद्धि है। पुत्र देखकर खुशी, स्त्री देखकर खुशी (होता है)। आहाहा ! हमारा बेटा कर्मी जागा। बहुत पैसा लाते हो। ओहोहो ! लाख-लाख रुपये की कमाई महीने में। बहुत बड़ा कर्मी जागा ! कुल को उज्ज्वल किया। चार गति को उज्ज्वल किया। रखड़ने में। ऐई ! नेमिदासभाई ! लड़का नहीं तो कोई शोक नहीं है न ?

मुमुक्षु : नाम चढ़ाने के लिये गोद लेते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, गोद लेते हैं। पाँच-दस लाख हो तो गोद ले। उसके बदले पाँच-दस लाख खर्च के नाम पर खर्च करे तो कुछ पुण्य तो बँधे। ये तो मुफ्त में पाप में दिया। अध्यवसाय है कि मेरा नाम चढ़ेगा। आहाहा ! मूर्ख की कोई निशानी होती है ?

मुमुक्षु : ये बात मूर्खता की है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मूर्खता की है। समझ में आया ?

जब ये जीव-अजीव के स्वरूप को जाने तब देह को अजीव जाने,... देखो ! यह तो जड़ है। शरीर का प्रत्येक रोम जड़ है। सुन्दर दिखे आँख, सुन्दर दिखे नाक, सुन्दर दिखे शरीर... सब जड़ की पर्याय है। अन्दर माँस है। हड्डियों को खड़ी रखकर देखे। यह माँस आदि कीचड़ है। पंक-कीचड़ नहीं हो तो अकेली हड्डियों का पींजर दिखे। दूर भागे। एक बर्तन में उसका माँस निकालो, एक बर्तन में उसकी आंत निकालो, एक बर्तन में उसकी हड्डियाँ निकालो। तीनों भर दो, ऐसी यह चीज़ है। आहाहा ! भगवान पवित्रता का पिण्ड है, तो शरीर अशुचिता का पूर्ण घर है। उसे अपना मानना ! पूरे संसार को अपना माना, ऐसा कहते हैं, हों ! जो देह को अपना मानता है, वह पूरे संसार को अपना मानता है। संसार से उसे छूटना नहीं है। बहिरात्मा कहते हैं न ? यहाँ बहिरात्मा की व्याख्या है। भाई ! बहिरात्मा की बात है। मुक्ति के सिवा बन्धन किसको होता है, उसकी बात है। अधिकार मोक्ष का है। बन्धन बहिरात्मा को क्यों होता है ? यह कहते हैं।

आत्मा को अमूर्तिक चैतन्य जानें,... मैं तो रूप, रंग, गन्ध, स्पर्श बिना की चीज़, आनन्द का धाम मैं आत्मा हूँ। मेरे में वह नहीं और उसमें मैं नहीं। भेदज्ञान है, भगवान ! ये कोई साधारण बात से, बोलने से, शास्त्र पढ़ने से यह चीज़ आ नहीं जाती।

मुमुक्षु : शास्त्र पढ़ना या नहीं पढ़ना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पढ़ने का विकल्प हो तो पढ़े। पढ़ा वह कहाँ आत्मा की चीज़ है ? यहाँ तो यह कहते हैं। पर की पढ़ाई का ज्ञान मेरा है, वह भी बहिरात्मा है। वह बन्ध का कारण है, उसको अपना मानता है। आहाहा ! समझ में आया ? शास्त्र पढ़ने से जो ज्ञान हुआ, उस ज्ञान को अपना माने तो मिथ्यादृष्टि है। क्योंकि परलक्षीज्ञान बन्ध के कारणरूप ज्ञान को अपने अबद्धस्वभाव के साथ मिलाया। समझ में आया ? आहाहा ! सूक्ष्म अध्यवसाय...

भगवान ज्ञानानन्द चिदानन्दस्वरूप, उसमें परलक्ष्यी, परसत्तावलम्बी... आता है न ? रहस्यपूर्ण चिट्ठी में आता है। परसत्तावलम्बी ज्ञान को कभी मोक्षमार्ग कहते नहीं। आता

है ? मोक्षमार्गप्रकाशक में रहस्यपूर्ण चिट्ठी है न ? चिट्ठी... चिट्ठी। समझ में आया ? परमार्थ वचनिका। परमार्थ वचनिका है न ? बहुत बार पढ़ी है। पहली बार ... पढ़ी थी। मिलती नहीं थी। गुजराती हो गया, लो ! परमार्थ वचनिका, देखो ! **किसी प्रकार का ज्ञान ऐसा नहीं होता कि परसत्तावलम्बनशीली होकर मोक्षमार्ग साक्षात् कहे**। साक्षात् क्या ? वह निमित्त है। जो अपने स्वभाव का आश्रय करके अनुभव करे तो उस ज्ञान को निमित्त कहने में आता है। परन्तु ऐसा भान करे तो। उससे होता है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? परसत्तावलम्बी (ज्ञान को) मोक्षमार्ग साक्षात् कहे, ऐसा है नहीं। **अवस्थाप्रमाण परसत्तावलम्बक (ज्ञान) होता है**। समझ में आया ? जब तक पूर्ण वीतरागता न हो, तब तक ज्ञानी को भी अपने द्रव्य के आश्रय से सम्यग्ज्ञान हुआ, वह मोक्ष का मार्ग और उसके साथ परसत्तावलम्बी ज्ञान हुआ वह बन्ध का मार्ग। होता है, जैसे ज्ञानी को शुभभाव होता है, ऐसा कहना भी व्यवहार है। वैसे ज्ञानी को परसत्तावलम्बी ज्ञान अवस्थाप्रमाण में होता है परन्तु है बन्ध का कारण। समझ में आया ? परमार्थ वचनिका, बनारसीदास।

(परन्तु) परसत्तावलम्बी ज्ञान को परमार्थता नहीं कहता। धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि अपने ज्ञायकस्वभाव का अनुभव करके जो ज्ञान हुआ, उसको ज्ञान मानता है। परन्तु परसत्तावलम्बी ज्ञान को परमार्थ कहता नहीं। परमार्थ ज्ञान है, ऐसा नहीं है। उसको परमार्थ ज्ञान मानना, वह स्व और पर की एकताबुद्धि का मिथ्यात्वभाव है। आहाहा ! स्वसत्ता भगवान चैतन्यमूर्ति प्रभु, उसके आश्रय से जो ज्ञान हुआ, वह स्वसत्ता का स्व में है, ऐसा ज्ञान (हुआ), और परलक्ष्य से जो हुआ, वह परसत्ता का ज्ञान, पर में अस्तित्व है, अपने में नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्म है, ...भाई !

भगवान आत्मा आनन्द का कन्द ज्ञान की मूर्ति, उसका आश्रय करके जो ज्ञान हुआ वह अपना ज्ञान तो मोक्षमार्ग का अवयव है। वह तो अपने अस्तित्व में है, ऐसा मानना। और परलक्ष्य से जो उत्पन्न हुआ वह, वास्तव में अपने अस्तित्व में पर्याय में है ही नहीं। यह स्व-पर का एकत्व अध्यास, वह मिथ्यात्वभाव है। क्या पर ? पर ज्ञान। क्षयोपशम पर्याय जो परसत्तावलम्बी पर के लक्ष्य से हुई, उसको अपना मानना, अपना त्रिकाल अस्तित्व ज्ञायकभाव है, उससे उत्पन्न हुआ ज्ञान, उस ज्ञान को अपना मानना, वह एकत्व हो गया। ओहोहो ! ये तो उसका अन्तर का मार्ग है, भाई ! ये कोई बाहर से मिले और ...

से मिले, ऐसी चीज़ है नहीं। आचार्य को सूक्ष्म बात यह कहनी है। दृष्टान्त तो स्थूल लिया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : 'अविदिदत्थमप्पाणं' आत्मा को वास्तविक ज्ञान हुआ नहीं, ऐसा कहते हैं। अविदितपदार्थ। अविदितपदार्थ-नहीं जाना है पदार्थ जिसने, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

आत्मा को अमूर्तिक चैतन्य जाने, अपनी आत्मा को अपनी माने और पर की आत्मा को पर जानें, तब पर में ममत्व नहीं होता है। जिसमें अपना स्वरूप नहीं माने तो वह मेरा है, ऐसा कहाँ से आया? ऐसा कहते हैं। जिस भाव को अपना नहीं माना तो वह मेरा है, ऐसा उसमें आता नहीं। आहाहा! **इसलिए जीवादिक पदार्थ का स्वरूप अच्छी तरह जानकर मोह नहीं करना यह बतलाया है।** भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, भाई! तेरी चीज़ में नहीं उस चीज़ को अपना मानना, वह छोड़ दे। उसे छोड़ देने के लिये यह बात बतलाई है। समझ में आया?

गाथा-११

आगे कहते हैं कि मोहकर्म के उदय से (उदय में युक्त होने से) मिथ्याज्ञान और मिथ्याभाव होते हैं, उससे आगामी भव में भी यह मनुष्य देह को चाहता है -

मिच्छाणाणेसु रओ मिच्छाभावेण भाविओ संतो।
मोहोदएण पुणरवि अंगं [1]सं मण्णए मणुओ।।११।।

मिथ्याज्ञानेषु रतः मिथ्याभावेन भावितः सन्।
मोहोदयेन पुनरपि अंगं स्वं मन्यते मनुजः।।११।।

१. मुद्रित सं. प्रति में 'सं मण्णए' ऐसा प्राकृत पाठ है जिसका 'स्वं मन्यते' ऐसा संस्कृत पाठ है।

हो लीन मिथ्या ज्ञान में मिथ्यात्व से भावित हुआ।
पा देह माने स्वयं मोहोदय से जग में भटकता।।११।।

अर्थ – यह मनुष्य मोहकर्म के उदय से (उदय के वश होकर) मिथ्याज्ञान के द्वारा मिथ्याभाव से भाया हुआ फिर आगामी जन्म में इस अंग (देह) को अच्छा समझकर चाहता है।

भावार्थ – मोहकर्म की प्रकृति मिथ्यात्व के उदय से (उदय के वश होने से) ज्ञान भी मिथ्या होता है, परद्रव्य को अपना जानता है और उस मिथ्यात्व ही के द्वारा मिथ्या श्रद्धान होता है, उससे निरन्तर परद्रव्य में यह भावना रहती है कि यह मुझे सदा प्राप्त होवे, इससे यह प्राणी आगामी देह को भला जानकर चाहता है।।११।।

गाथा-११ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि मोहकर्म के उदय से (-उदय में युक्त होने से) मिथ्याज्ञान और मिथ्याभाव होते हैं, उससे आगामी भव में भी यह मनुष्य देह को चाहता है – देह अच्छा हो, ऐसा हो, वैसा हो, ऐसी चाहना रहे। गहराई में (ऐसा रहे कि) देह अच्छा होगा, मुझे ... होगा, ऐसी मिथ्यादृष्टि की भावना रहती है। जिसको वर्तमान में देह में एकत्वबुद्धि है, वह भविष्य में भी एकत्वबुद्धि में परदेह को चाहता है। आहाहा!

मिच्छाणाणेसु रओ मिच्छाभावेण भाविओ संतो।
मोहोदएण पुणरवि अंगं सं मण्णए मणुओ।।११।।

अर्थ – यह मनुष्य मोहकर्म के उदय से (उदय के वश होकर) मिथ्याज्ञान के द्वारा मिथ्याभाव से भाया हुआ फिर... झूठा ज्ञान, झूठी श्रद्धा, उससे झूठी भावना से भया हुआ **फिर आगामी जन्म में इस अंग (देह को) अच्छा मानकर चाहता है।** सन्मान करे। देह अच्छा मिला, अच्छा मिला। परभव में देह अच्छा मिले। अज्ञानी स्व-पर की एकत्वबुद्धिवाला भविष्य के देह का सन्मान करता है। आहाहा! समझ में आया? जन्म लेना, वह कलंक है। आहाहा! अज्ञानी जन्म में देह मिले उसका सन्मान करता है। मिथ्या अध्यवसाय है। समझ में आया? योगसार में आता है न? शर्मजनक जन्म टले। आहाहा! भगवान आत्मा, जिसमें

राग का अंश भी नहीं, उसको यह शरीर का लोचा प्राप्त हो, कलंक है। अज्ञानी उसका सन्मान करता है। समझ में आया ? ये सूक्ष्म अभिप्राय बतलाते हैं, हों! मोक्ष अधिकार है न।

मुमुक्षु : मोक्ष साधने के लिये तो साधन...

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल (नहीं), साधन-फाधन कैसा ? राग साधन नहीं तो शरीर साधन कैसा ? शरीर आद्यम खलु धर्म साधनम्, आता है। धूल में भी साधन नहीं है। ये वैद्य ऐसा लगा दे कि शरीर की स्फूर्ति रहे तो मन की स्फूर्ति रहे और मन की स्फूर्ति रहे तो ध्यान यथार्थ हो जाए। धूल में होता नहीं। समझ में आया ? तेरे आत्मा का चैतन्य विग्रह शरीर अन्दर में दृष्टि दे तो निरोगी हो जाए। आहाहा! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, **मोहकर्म के उदय से (उदय के वश होकर) मिथ्याज्ञान के द्वारा मिथ्याभाव से भाया हुआ फिर आगामी जन्म में अंग (देह)...** यह धूल-अंग। अच्छा भव मिला। आहाहा! देह का सन्मान करता है, भला मानता है।

भावार्थ - मोहकर्म की प्रकृति मिथ्यात्व के उदय से (-उदय के वश होने से) ज्ञान भी मिथ्या होता है,... प्रकृति में जुड़ने से, हों! कर्म से नहीं। **परद्रव्य को अपना जानता है और उस मिथ्यात्व ही के द्वारा मिथ्या श्रद्धान होता है, उससे निरन्तर परद्रव्य में यह भावना रहती है...** लो! ज्ञानी अपना द्रव्य पर से भिन्न मानता है तो अपने द्रव्य की भावना रहती है। अज्ञानी पर को अपना मानता है। तो जिसको अपना माने, उसकी वृद्धि चाहता है। समझ में आया ? **निरन्तर परद्रव्य में यह भावना रहती है कि यह मुझे सदा प्राप्त होवे,...** लड़का, देह ऐसे ही रहो, साता रहो। साता रहो वह तो जड़ की अवस्था हुई। समझ में आया ? ऐई! पोपटभाई! शरीर को ठीक रहो, बराबर साबुन (लगाओ)। दस रुपये का साबुन। पागलपन.. ... पागल जैसा लगे। उन्मत्त... उन्मत्त, हाँ! ... आहा! भगवान! ... चेष्टा जड़ की है, भगवान! आहा!

यहाँ आचार्य (कहते हैं), जिस बाह्य वस्तु को अपनी मानता है, वह ठीक रहे— ऐसी बुद्धि स्व-पर का एकत्व मिथ्यात्व है। और उसकी भावना वह रहती है। समझ में आया ? आहाहा! **इससे यह प्राणी आगामी देह को भला जानकर चाहता है।** लो!

मुमुक्षु : शरीर की सारी व्यवस्था छोड़ दे, फिर तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर की चेष्टा कौन छोड़े ? विकल्प से छूटे... ... कौन कर सकता है ? समझ में आया ? कितने बजे ? पौने नौ ?

यहाँ तो जो राग को भी अपना माने तो राग की भावना रहे। राग बढ़े तो ठीक। जिसको अपना माने, उसकी वृद्धि चाहे। दया, दान का विकल्प मेरा है, ऐसा माने तो दया, दान का विकल्प बहुत हो तो ठीक। ये सब एकत्वबुद्धि मिथ्यात्व की है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका ध्यान रखे ? कौन ध्यान रखे ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु शरीर तो सदा है, उसके जड़रूप सदा है, सदा है।

मुमुक्षु : शरीर ठीक नहीं रखे तो कुछ ध्यान तो रखना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी ध्यान रखने से ठीक नहीं रहेगा। वह तो उसकी पर्याय अनुसार रहेगा। समझ में आया ? ध्यान रखेंगे तो रहेगा, वह तो मिथ्यात्वभाव-दो की एकत्वबुद्धि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बहिरात्मा की सूक्ष्म एकत्वबुद्धि कहाँ होती है, यह बात करते हैं। समझ में आया ? बिल्कुल निराला भगवान, उसको पर का संग कहाँ ? राग का भी संग नहीं है तो शरीर का संग कहाँ ? ऐसे संग मानकर उसकी भावना रहे कि वह मेरी चीज़ है तो ठीक रहे तो ठीक। यह मान्यता मिथ्यात्व है। **यह प्राणी आगामी देह को भला जानकर चाहता है।** लो! अब मुनि कैसे हैं ? धर्मात्मा कैसा है ? (यह कहते हैं)। देखो!

गाथा-१२

आगे कहते हैं कि जो मुनि देह में निरपेक्ष है, देह को नहीं चाहता है, इसमें ममत्व नहीं करता है, वह निर्वाण को पाता है –

जो देहे णिरवेक्खो णिद्दंदो णिम्ममो णिरारंभो।
आदसहावे सुरओ जोई सो लहइ णिव्वाणं।।१२।।

यः देहे निरपेक्षः निर्द्वन्दः निर्ममः निरारंभः।
आत्मस्वभावे सुरतः योगी स लभते निर्वाणम् ।।१२।।

जो देह से निरपेक्ष निर्मम निरारम्भी द्वन्द्व बिन।
हो लीन आत्म–स्वभाव में पाता मुकति पद योगि वह।।१२।।

अर्थ **– जो योगी ध्यानी मुनि देह में निरपेक्ष है अर्थात् देह को नहीं चाहता है उदासीन है, निर्द्वन्द है–रागद्वेषरूप इच्छा अनिष्ट मान्यता से रहित है, निर्ममत्व है– देहादिक में 'यह मेरा' ऐसी बुद्धि से रहित है, निरारंभ है–इस शरीर के लिए तथा अन्य लौकिक प्रयोजन के लिए आरंभ से रहित है और आत्मस्वभाव में रत है, लीन है, निरन्तर स्वभाव की भावना सहित है, वह मुनि निर्वाण को प्राप्त करता है।**

भावार्थ **– जो बहिरात्मा के भाव को छोड़कर अन्तरात्मा बनकर परमात्मा में लीन होता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है। यह उपदेश बताया है ।।१२।।**

गाथा-१२ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो मुनि देह में निरपेक्ष है, देह को नहीं चाहता है, उसमें ममत्व नहीं करता है, वह निर्वाण को पाता है - (अज्ञानी) संसार में भटके, ये निर्वाण को पाते हैं।

जो देहे णिरवेक्खो णिद्दंदो णिम्ममो णिरारंभो।
आदसहावे सुरओ जोई सो लहइ णिव्वाणं ।।१२।।

आहाहा ! इसकी टीका करनेवाला कोई... जयसेनाचार्य...

अर्थ - जो योगी ध्यानी मुनि देह में निरपेक्ष है... जो कोई धर्मात्मा अपना देह नहीं मानते, मैं तो चैतन्यविग्रह देह हूँ, चैतन्यशरीर हूँ। मेरे में तो राग भी नहीं तो शरीर कहाँ आया ? **देह को नहीं चाहते हैं, उदासीन है, निर्द्वन्द है—राग-द्वेषरूप...** द्वन्द नहीं है। अनुकूलता में राग और प्रतिकूलता में द्वेष, मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया ? ये चीज़ अनुकूल है, ऐसा मानकर राग हुआ, वह मिथ्यात्वभाव है। कोई चीज़ अनुकूल है ही नहीं,

चीज़ तो ज्ञेय है। जाननेयोग्य ज्ञेय में दो भाग कर दिये—एक ठीक और एक अठीक। वह तो मिथ्यात्वभाव से किया है। समझ में आया?

निर्द्वन्द है—राग-द्वेषरूप इष्ट-अनिष्ट मान्यता से रहित है,... अनिष्ट मान्यता से रहित है। लो! **निर्ममत्व है-देहादिक में 'यह मेरा' ऐसी बुद्धि से रहित है, निरारम्भ है-इस शरीर के लिये तथा अन्य लौकिक प्रयोजन के लिये आरम्भ से रहित है...** मुनि तो आरम्भ से रहित है। उनके लिये आहार बनाया हो, परन्तु उसको लेते नहीं। चौका बनाकर ले, वह मुनि है नहीं। मुनि निरारम्भी (होते हैं)। ओहो! समझ में आया? कहाँ ले गये? देह को अपना नहीं मानते और अपने आत्मा का भान है, यहाँ तो कहते हैं कि उसका आरम्भ भी अपने में करते नहीं। उत्कृष्ट दशा हो गयी न! निरारम्भी।

और आत्मस्वभाव में रत है,... देखो! मुनि। समकिती से यहाँ बात करते हैं, परन्तु यहाँ मुनि की उत्कृष्ट बात करते हैं। आत्मविषे-आत्मस्वभाव चैतन्यमूर्ति में लीन हैं। **निरन्तर स्वभाव की भावना...** देखो! अज्ञानी पर की भावना करता था। राग हो तो ठीक, शरीर हो तो ठीक, पर हो तो ठीक, जिसको अपना मानता है, वह ठीक। ज्ञानी अपने आत्मस्वभाव को (अपना मानता है) तो उसकी भावना करते हैं। मैं एकाग्र होकर केवलज्ञान प्राप्त करूँ। अन्तर एकाग्र होकर शुक्लध्यान प्राप्त करूँ। ऐसी भावना धर्मी की है। **मुनि निर्वाण को प्राप्त करता है।** वह मुक्ति को पाते हैं। मोक्षमार्ग है न। मोक्षप्राभृत है न।

भावार्थ - जो बहिरात्मा के भाव को छोड़कर अन्तरात्मा बनकर... यह संक्षेप कर दिया। **परमात्मा में लीन होता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है। यह उपदेश बताया है।** लो! अब संक्षेप में व्याख्या करते हैं।

मुमुक्षु : जो निर्वाण मोक्षनिर्वाण पामे...

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्वाण अभी पाते हैं। ऐसा की निर्वाण पाते हैं, उसकी बात है, ऐसा कहते हैं। अभी निर्वाण है। ये सम्यग्दर्शन हुआ तो मुक्ति की शुरुआत हो गयी। कहो, समझ में आया? राग से मुक्त, स्वभाव से एकत्व (हुआ तो) मुक्ति हुई। स एव मुक्त, मुक्त एव। आता है न एक कलश में? नहीं? मुक्त एव आता है, कलश में आता है। सम्यग्दृष्टि मुक्त एव। मिथ्यात्व ही संसार और समकित मुक्ति। आहाहा! रागमात्र से जहाँ भिन्न हो

गया। स्वभाव तो अबन्ध है। अबन्धस्वभाव का भान हुआ तो मुक्ति हो गयी। मुक्त आत्मा दृष्टि में आया, मुक्ति हो गयी। पर्याय में थोड़ी मुक्ति बाकी है, वह क्रमशः होगी। समझ में आया? सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनिराज उत्कृष्ट मोक्ष का कारण है, वह बतलाते हैं। परन्तु समकिती को समझाते हैं। मिथ्यादृष्टि को समझाते हैं, सम्यग्दृष्टि मुक्त है। देह से निरपेक्ष है। सब शब्द उसको लागू पड़ते हैं। निर्द्वन्द है। अनुकूल-प्रतिकूल में ज्ञानी राग-द्वेष करते नहीं। निर्मम है-पर को अपना मानते नहीं। निरारम्भ है-राग के आरम्भ से रहित चैतन्यमूर्ति में दृष्टि है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी को कुछ नहीं होता। अज्ञानी भटकता है। अज्ञानी तो मिथ्यात्वभाव से भटकता है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई भी राग लाभकारक नहीं है। राग से अपने आत्मा को भिन्न करना, वह साधन।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म-फर्म नहीं। पहले अशुभराग टाले और शुभ रहे, ऐसी चीज़ नहीं है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ये तो समकिती के लिये है। उसको निर्वाण ही है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी देह को चाहता है, राग को चाहता है। वह अज्ञानी है। ज्ञानी को देह की चाहना नहीं। विकल्प आता है परन्तु विकल्प का विकल्प-प्रेम नहीं। राग का राग नहीं। ऐसी बात है। धर्मीजीव तो बिल्कुल विकल्प, शुभराग उससे भी भिन्न पड़ते

हैं, उसकी भावना नहीं करते हैं। राग की भावना करे तो दृष्टि मिथ्यात्व है। सम्यग्दृष्टि अपने ज्ञायकभाव की भावना करते हैं। ऐसी बात है। देखो! इसलिए स्पष्टीकरण करते हैं। तेरहवीं गाथा में स्पष्टीकरण करते हैं। स्वद्रव्य और परद्रव्य, दो ही बात।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : लाभ किसका? साधकभाव का। दूसरा कोई लाभ नहीं है। राग-फाग का लाभ है नहीं। राग तो जहर है, दुःख है। सूक्ष्म बात है, भाई! लोग ऐसा कहते हैं कि पहले अशुभ को टालना, फिर शुभ में आना। परन्तु किसको? जिसको शुभ-अशुभ राग की रुचि छूटकर अनुभव आत्मा का हुआ है, उसको पीछे अव्रत का भाव छोड़कर व्रत का विकल्प आता है। ऐसी बात है। आहाहा! सूक्ष्म बात है। देखो! वह संक्षेप में कहते हैं।

गाथा-१३

आगे बन्ध और मोक्ष के कारण का संक्षेपरूप आगम का वचन कहते हैं –

परदव्वरओ बज्झदि विरओ मुच्चेइ विविहकम्मेहिं।
ऐसो जिणउवदेसो [1]समासदो बंधमुक्खस्स ।।१३।।

परद्रव्यरतः बध्यते विरतः मुच्यते विविधकर्मभिः।
एषः जिनोपदेशः समासतः बंधमोक्षस्य ।।१३।।

पर-द्रव्य में रत बँधे छूटे विविध कर्मों से विरत।
यह बन्ध-मुक्ति विषय में संक्षिप्त जिन-उपदेश सत्।।१३।।

अर्थ **– जो जीव परद्रव्य में रत है, रागी है वह तो अनेक प्रकार के कर्मों से बंधता है, कर्मों का बन्ध करता है और जो परद्रव्य से विरत है-रागी नहीं है, वह अनेक प्रकार के कर्मों से छूटता है, यह बन्ध का और मोक्ष का संक्षेप में जिनदेव का उपदेश है।**

भावार्थ **– बन्ध-मोक्ष के कारण की कथनी अनेक प्रकार से है, उसका यह**

१. 'सदो' के स्थान पर 'सओ' पाठान्तर।

संक्षेप है – जो परद्रव्य से रागभाव तो बन्ध का कारण और विरागभाव मोक्ष का कारण है, इस प्रकार संक्षेप से जिनेन्द्र का उपदेश है।।१३।।

गाथा-१३ पर प्रवचन

आगे बन्ध और मोक्ष के कारण का संक्षेपरूप आगम का वचन कहते हैं- देखो! आगम का वचन संक्षेप से संक्षेप, थोड़े में थोड़ा। '**परदव्वरओ बज्झदि**'। ये शब्द।

परदव्वरओ बज्झदि विरओ मुच्चेइ विविहकम्मेहिं।
ऐसो जिणउवदेसो समासदो बंधमुक्खस्स।।१३।।

भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव का संक्षेप में बन्ध-मुक्ति का यह उपदेश है कि **जो जीव परद्रव्य में रत है, रागी है, वह तो अनेक प्रकार के कर्मों से बँधता है,...** देखो! कोई भी प्राणी राग परद्रव्य है, उस परद्रव्य में जिसे प्रीति है, उसे मिथ्यात्व का बन्धन होता है। '**परदव्वरओ बज्झदि**' मोक्ष अधिकार है। '**परदव्वरओ बज्झदि**' राग परद्रव्य है, उसमें रति करते हैं, वह मिथ्यात्व से बँधते हैं। ऐसा जिनवर का उपदेश है। देखो! है?

'**विरओ मुच्चेइ विविहकम्मेहिं**' परद्रव्य से विरक्त है। राग, विकल्प और निमित्त से विरक्त है, वह मुक्ति को पाते हैं। बहुत संक्षेप में कथन है। स्वद्रव्य के आश्रय से मुक्ति, परद्रव्य के आश्रय से बन्ध। चाहे तो भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा हो, परन्तु परद्रव्य का लक्ष्य आया, राग है। राग बन्ध का कारण है। कहो, धन्नालालजी! है या नहीं उसमें? देखो! गाथा है या नहीं? '**परदव्वरओ बज्झदि**' महा सिद्धान्त है, देखो! समझ में आया? '**परिणामादो बंधो मुक्खो जिणसासणे दिट्ठो**' भावपाहुड़ ११६ गाथा है न?

पावं हवइ असेसं पुण्णमसेसं च हवइ परिणामा।
परिणामादो बंधो मुक्खो जिणसासणे दिट्ठो।।११६।।

भावपाहुड़ की ११६ (गाथा)। परिणाम से बन्ध और परिणाम से मुक्ति। भगवान के शासन का सार। समझ में आया? है, वह लिखा है। '**जिणउवदेसो**' है न, ११३ गाथा में? वीतराग का उपदेश बारह अंग में ऐसा आया है कि '**परदव्वरओ बज्झदि**' अपने द्रव्य

के अतिरिक्त कोई परद्रव्य हो, सिद्ध भगवान हो, परन्तु उसका लक्ष्य करने से तो राग ही उत्पन्न होता है। समझ में आया?

अनेक प्रकार के कर्मों से बँधता है,... मिथ्यात्व का बन्ध करता है। **जो परद्रव्य से विरत है...** जिसको परद्रव्य का प्रेम नहीं और अपने द्रव्य का अनुभव, दृष्टि रुचि में प्रेम है, वह मुक्त होता है। बहुत संक्षेप में। देखो! '**समासदो**' '**समासतः**' **यह बन्ध का और मोक्ष का संक्षेप में जिनदेव का उपदेश है।** चाहे तो तीन लोक के नाथ समवसरण में विराजते हों, उनकी पूजा अनन्त बार की। सुना है? सम्यग्ज्ञान दीपिका में आता है। मणिरत्न के दीपक, कल्पवृक्ष के फूल से तीन लोक के नाथ समवसरण में सामने विराजते हो, जय भगवान! (करके) ऐसी आरती, पूजा अनन्त बार की। परन्तु वह तो शुभभाव, परद्रव्य के आश्रय से शुभभाव है, बन्ध का कारण है। सम्यग्ज्ञान दीपिका में लिया है। धर्मदास क्षुल्लक। समवसरण में अनन्त बार जाकर हीरा की थाली, मणिरत्न का दीपक, कल्पवृक्ष का फूल (लेकर) जय भगवान! जय भगवान! जय भगवान! (किया)। कहते हैं कि परद्रव्य के आश्रय से तो राग ही होता है, बन्धन होता है, ऐसा कहते हैं। जिनवर का संक्षेप उपदेश यह आया है। आहाहा! समझ में आया? '**विरओ मुच्चेइ**' एक ही सिद्धान्त। परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर चिदानन्द आत्मा में रक्त होता है और पर से विरक्त होता है। अपने में रक्त, पर से विरक्त। वह मुक्ति को पाते हैं। विशेष आयेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-६७, गाथा-१३ से १६, शुक्रवार, श्रावण कृष्ण ५, दिनांक २१-०८-१९७०

अष्टपाहुड़, मोक्ष अधिकार की १३वीं गाथा, उसका भावार्थ है। मोक्ष अधिकार है। संक्षेप में बहुत थोड़े संक्षेप में यहाँ १३वीं गाथा में सार कह दिया।

भावार्थ - बन्ध-मोक्ष के कारण की कथनी अनेक प्रकार से है... सिद्धान्त में-शास्त्र में बन्ध की कथनी और मोक्ष के कारण की कथनी अनेक प्रकार से है। **उसका यह संक्षेप है...** बहुत संक्षेप में सार है। **जो परद्रव्य से रागभाव तो बन्ध का कारण...** चाहे तो विकल्प हो, चाहे तो परमात्मा त्रिलोकनाथ हो, परन्तु परद्रव्य की ओर झुकाववाला राग बन्ध का कारण है। वीरचन्दभाई! वीतराग का... देखो! परद्रव्य के प्रति झुकाव का प्रेम बन्ध का कारण। संक्षेप में यह बात है। मोक्ष अधिकार है। चाहे तो तीर्थंकर हो, चाहे तो जिनवाणी हो, चाहे तो सम्मेदशिखर हो, चाहे तो स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, लक्ष्मी हो, वह परद्रव्य है। और परद्रव्य के झुकाव से तो राग और विकार ही उत्पन्न होता है।

मुमुक्षु : झुकाव अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : वलण। वलण अर्थात्? परसन्मुखता।

मुमुक्षु : परसन्मुखता अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर ओर की वृत्ति।

मुमुक्षु : ... अपेक्षा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परद्रव्य ओर की वृत्ति। चाहे (कोई भी) परद्रव्य हो, उसमें अपेक्षा कोई नहीं। बहुत संक्षेप में बन्ध और मोक्ष कहते हैं।

परद्रव्य के आश्रय से, लक्ष्य से राग उत्पन्न होता है, वह बन्ध का कारण है। **और विरागभाव मोक्ष का कारण है,...** पर से विराग अर्थात् पर से उपेक्षा करके अपना स्वद्रव्य चिदानन्द ध्रुवस्वरूप का आश्रय करके मोक्ष का कारण उत्पन्न होता है। आज पाँच मिनिट क्यों देर लगी? समझ में आया? बहुत संक्षेप में। बन्ध-परद्रव्य आश्रय विकल्प से बन्ध। व्यवहार आश्रय से बन्ध। व्यवहार पराश्रय से होता है और निश्चय स्वद्रव्य के आश्रय से

होता है। जितना परद्रव्य के आश्रय से दया पालना, व्रत, भक्ति, पूजा जिसमें परद्रव्य का लक्ष्य है, उसमें स्वद्रव्य का लक्ष्य है नहीं। समझ में आया? शोभालालजी! कठिन बात, भाई! सीधी बात है।

परद्रव्य का लक्ष्य करना, आश्रय करना (अलग बात है), ज्ञान करना अलग बात है। परन्तु परद्रव्य आश्रय झुककर जो राग उत्पन्न होता है, वह तो बन्ध का ही कारण है। चाहे तो परमेश्वर सर्वज्ञ समवसरण में विराजते हों और उनकी वाणी का आश्रय लो या भगवान के समवसरण में पूजा का आश्रय करो परन्तु वह सब राग है। समझ में आया? मोक्ष अधिकार है न। बहुत संक्षेप में कथन कर दिया। '**रत्तो बंधदि कम्मं**' आता है न? भाई! पुण्य-पाप अधिकार, समयसार (गाथा १५०)। '**रत्तो बंधदि कम्मं मुच्चदि जीवो विरागसंपत्तो**'। वह शब्द यहाँ है। यह भी कुन्दकुन्दाचार्य का है, वह भी कुन्दकुन्दाचार्य के (शब्द हैं)। समझ में आया?

अपना भगवान आत्मा स्वद्रव्य, उसकी व्याख्या दोपहर को आ गयी। यहाँ १८वीं गाथा में आयेगी। स्वद्रव्य किसको कहते हैं, वह आयेगा। स्वद्रव्य १८वीं गाथा में आयेगा। दोपहर को बहुत चला। स्वद्रव्य। आनन्दधाम ज्ञायक नित्य द्रव्यस्वभाव, उसके आश्रय से, उसमें लीन होने से ही मुक्ति होती है। सम्यग्दर्शन में मिथ्यात्व की मुक्ति भी स्वद्रव्य की लीनता से होती है। अव्रत और कषाय का त्याग भी स्वद्रव्य के लक्ष्य से, आश्रय से, लीनता से होता है। आहाहा! सेठ! **परद्रव्य से रागभाव तो बन्ध का कारण और विरागभाव मोक्ष का कारण है, इस प्रकार संक्षेप में जिनेन्द्र का उपदेश है।** त्रिलोकनाथ परमात्मा मोक्ष अधिकार में कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, कि यह तो वीतराग का ऐसा कहना है। नाम दिया न? '**रत्तो एसो जिणउवदेसो**।' यह तो जिन का-वीतराग का ऐसा उपदेश है। मेरे घर की कल्पना की बात नहीं है। समझ में आया? ओहोहो! **इस प्रकार संक्षेप में जिनेन्द्र का उपदेश है।**

गाथा-१४

आगे कहते हैं कि जो स्वद्रव्य में रत है, वह सम्यग्दृष्टि होता है और कर्मों का नाश करता हैह्न

सद्दव्वरओ सवणो सम्माइट्ठी हवेइ णियमेण।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ [1]दुट्ठट्ठकम्माइं।।१४।।

स्वद्रव्यरतः श्रमणः सम्यग्दृष्टि भवति नियमेन।
सम्यक्त्वपरिणतः पुनः [2]क्षपयति दुष्टाष्टकर्माणि।।१४।।

स्व-द्रव्य में रत श्रमण सम्यग्दृष्टि हैं ही नियम से।
सम्यक्त्व परिणत वर्तते दुष्टाष्ट कर्म सुक्षय करें।।१४।।

अर्थ – जो मुनि स्वद्रव्य अर्थात् अपनी आत्मा में रत है, रुचि सहित है, वह नियम से सम्यग्दृष्टि है और वह ही सम्यक्त्व भावरूप परिणमन करता हुआ दुष्ट आठ कर्मों का क्षय-नाश करता है।

भावार्थ ब यह भी कर्म के नाश करने का कारण संक्षेप कथन है। जो अपने स्वरूप की श्रद्धा, रुचि, प्रतीति से आचरण से युक्त है वह नियम से सम्यग्दृष्टि है, इस सम्यक्त्वभाव से परिणमन करता हुआ मुनि आठ कर्मों का नाश करके निर्वाण को प्राप्त करता है।।१४।।

गाथा-१४ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो स्वद्रव्य में रत है, वह सम्यग्दृष्टि होता है और कर्मों का नाश करता है –

सद्दव्वरओ सवणो सम्माइट्ठी हवेइ णियमेण।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माइं।।१४।।

१. मु.सं. प्रति में 'दुट्ठट्ठकम्माणि' पाठ है। २. मु. सं. प्रति में 'क्षिपते' ऐसा पाठ है।

प्रधानरूप से मुनि की बात है न। बिल्कुल आठ कर्म का नाश करते हैं। जो मुनि, परन्तु सम्यग्दृष्टि से लेना। जो कोई धर्मात्मा अपने स्वद्रव्य में अपने—आत्मा में रक्त है, शुभाशुभ विकल्प से रहित, शरीर और कर्म से रहित, एक समय की पर्याय से भी रहित ऐसा अपना स्वद्रव्य, उसमें रत है, रुचि सहित है, अन्तर स्वभाव की दृष्टि-रुचि है, **वह नियम से सम्यग्दृष्टि है...** वह निश्चय से सम्यग्दृष्टि है। सम्यग्दृष्टि की भी बहुत संक्षेप में व्याख्या (की है)। मोक्ष अधिकार है न!

जो कोई भगवान आत्मा अपना निज स्वद्रव्य त्रिकाली ध्रुव ज्ञायकभाव परमपारिणामिकभाव। दोपहर को बहुत चला। ३२० गाथा। उसमें अन्तर द्रव्यस्वभाव। पर्याय की भी रुचि नहीं, यहाँ तो कहते हैं। राग की रुचि नहीं, निमित्त की रुचि नहीं। समझ में आया? उपादान-निमित्त में एक कड़ी आती है न? निमित्त बन्ध का कारण है। उपादान -निमित्त में एक कड़ी आती है न? निमित्त बन्ध का कारण है। उपादान कहता है, तुम तो बन्ध का कारण हो। आता है? उसका अर्थ कि परद्रव्य का आश्रय करने से राग ही होता है और वह बन्ध का कारण है। उपादान-निमित्त में एक कड़ी है। भैया भगवतीदास।

मुमुक्षु : सुख किससे मिलता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख आत्मा से मिले। ... कहाँ मिलता है? भगवान आत्मा आनन्दधाम निराकुल अनाकुल शान्तिरस का सागर, अमृत का सरोवर भगवान, उसका आश्रय करने से, उसमें लीन होने से, उसमें रुचि करने से सम्यग्दर्शन होता है और उसमें लीन होने से चारित्र होता है। समझ में आया? यहाँ चारित्र से मुक्ति कहना है। सिद्धि। समझ में आया?

जो मुनि... अथवा धर्मात्मा... बहुत संक्षेप में बात है। **स्वद्रव्य अर्थात् अपने आत्मा में...** अपना आत्मा, भगवान का आत्मा नहीं, सिद्ध का आत्मा नहीं। वह परद्रव्य है। **रुचि सहित है...** अन्तर स्वभाव का ज्ञान करके रुचि (करके), यह आत्मा ध्रुव ज्ञायक शुद्ध है, ऐसी रुचि सहित है, वह निश्चय से सम्यग्दृष्टि है। देखो! यह सम्यग्दृष्टि की व्याख्या। व्यवहार समकित, व्यवहार समकित कहते हैं या नहीं? वह व्यवहार समकित ही नहीं, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। व्यवहार समकित तो राग को कहते हैं और राग तो बन्ध का कारण

है। आहाहा! समझ में आया? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा राग, वह तो राग है। राग परद्रव्य आश्रय का विकल्प उत्पन्न हुआ, वह राग तो बन्ध का कारण है। मूलचन्दभाई! वीतराग भगवान तो वीतरागता का प्रेरक है या नहीं? नहीं। वीतराग भगवान तो राग में निमित्त होते हैं, ऐसा कहते हैं। वीतराग का प्रेरक नहीं। सेठ! हाँ... हाँ... कैसे बोल दिया? आहाहा! बहुत संक्षेप में (कहते हैं)।

भगवान! व्यवहार आश्रय, पर आश्रय... उसमें प्रश्न उठा है कि निमित्त बन्ध का कारण है? हम बन्ध का कारण है, तुम तो नहीं हो न? निमित्त का आश्रय करते हैं तो बन्ध का कारण है। समझ में आया? वहाँ एक श्लोक है। ख्याल है। ४७ दोहे हैं न? इसमें है? (पद ३३)। तत्त्वमीमांसा में पीछे है।... 'उपादान कहै तू कहा, चहुँ गति में ले जाये'

उपादान कहै तू कहा, चहुँ गति में ले जाये;
तो प्रसादतैं जीव सब, दुःखी होंहिं रे भाय॥३३॥

तेरे प्रसाद से हम दुःखी हो रहे हैं। उसका अर्थ-निमित्त से नहीं, परन्तु निमित्त का आश्रय करते हैं तो राग उत्पन्न होकर दुःखी होता है। **उपादान कहता है—तू कौन? तू तो जीव को चारों गति में ले जाता है। निमित्ताधीन दृष्टि होने से फल चारों गति (में) परिभ्रमण करते हैं।** लो।

मुमुक्षु : समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं आया? अच्छा। कहते हैं कि जिसकी दृष्टि निमित्ताधीन है, चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र हो, परन्तु उसके आधीन दृष्टि है, उसमें तो राग ही उत्पन्न होता है। राग उत्पन्न होता है, वह दुःखी है और वह बन्ध का कारण है। दूसरी दृष्टि लें तो निमित्त से मुझे लाभ होगा, वह दृष्टि मिथ्यात्व है। सूक्ष्म बात है। समझ में आया? चाहे तो जिनवाणी हो, भगवान हो, परन्तु पर से मेरे में लाभ माना, तो स्वद्रव्य के आश्रय से लाभ का अभाव किया। समझ में आया? परद्रव्य के आश्रय से लाभ है... अरे! एक समय की पर्याय के आश्रय से लाभ है, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? वास्तव में तो पर्याय भी परद्रव्य है। वह कल कहा था। नियमसार की ५०वीं गाथा। एक समय की पर्याय भी त्रिकाली स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य है। एक समय की पर्याय का लक्ष्य करने से राग

उत्पन्न होता है। परद्रव्य का आश्रय करने से राग उत्पन्न होता है। ऐसे पर्याय का आश्रय करने से राग उत्पन्न होता है, बन्ध का कारण है। समझ में आया? कठिन बात, भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धभाव की पर्याय का आश्रय करने जाए तो राग होता है। क्योंकि वह खण्ड है, पर्याय अंश है। अंश का आश्रय करने से तो राग ही उत्पन्न होता है। चिमनभाई! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : एक समय की पर्याय का आश्रय कैसे होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : लक्ष्य करता है न। आश्रय क्या करे? लक्ष्य करता है न। यहाँ का लक्ष्य छोड़कर। पर्याय सन्मुख है न। अनादि से यही है। पर्यायबुद्धि अनादि से है। एक समय के अंश पर ही अपनी रुचि-दृष्टि अनादि से है। समझ में आया? पर्यायमूढ़ा परसमया, ऐसा शास्त्र में आया है।

मुमुक्षु : असंख्य समय का उपयोग है, एक समय की पर्याय में...

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय के उपयोग में दृष्टि जाती है। भले असंख्य (समय में) उपयोग लगे, उसमें क्या प्रश्न है? परन्तु एक समय में उसमें लक्ष्य जाता है। वह तो उपयोग असंख्य समय में काम करता है, परन्तु लक्ष्य जाता है एक समय में। समझ में आया?

कहै निमित्त जो दु:ख सहै, सो तुम हमहि लगाय;
सुखी कौनतैं होत है, ताको देहु बताय॥३४॥

हमारे ऊपर लक्ष्य है। हम दु:ख ही देते हैं। उसका अर्थ कि परद्रव्य के आश्रय जितना लक्ष्य जाता है, सब राग की उत्पत्ति का कारण है। एक समय की पर्याय पर अंश बुद्धि जाकर वहाँ अनादि से रुक जाता है। अनादि से। वह बौद्धमति है। समझ में आया? ऐसा नहीं हो तो द्रव्यबुद्धि होनी चाहिए। त्रिकाली ज्ञायकभाव की रुचि तो है नहीं। तो एक समय की पर्याय की रुचि है। अंश पर रुचि है और अंश को सारा आत्मा मानता है। समझ में आया? जिस सुख को तुम सुख कहते हो, वह सुख ही नहीं। वह संसारीसुख तो दु:ख

का मूल कारण है। सच्चा सुख तो अविनाशी आत्मा के भीतर है। आहाहा! देखो! उसकी भूल निकालते हैं। ... पण्डित थे न? उसकी भूल निकालते हैं। सब गड़बड़ की है। उपादान ने तो उटपटांग उत्तर दिया है। निमित्त का भाव बराबर है? उसके लिये बनाया है? निमित्त का निषेध करने के लिये तो बनाया है। लोग क्या करते हैं? लोग उसका विरोध नहीं करते।

मुमुक्षु : उसको तो पैसा दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा दे, मदद करे। पैसे दो। विरोध करे सोनगढ़ का—उसकी आत्मा का। सोनगढ़ का कौन विरोध करे?

मुमुक्षु : उनके विरुद्ध...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके विरुद्ध पड़ती है। बस, यह बात है। उसकी दृष्टि से विरुद्ध पड़ती है, इसलिए झूठा है। बनारसीदास को भी झूठा कहते हैं। सात श्लोक है न बनारसीदास के? देखो! उसने दृष्टान्त दिया है। 'एक चक्रसौं रथ चले।' गलत बात है। सूर्य में एक रथ अपने में है ही नहीं। उसने तो दृष्टान्त दिया है, सुन तो सही। आहाहा!

यहाँ कहते हैं जो कोई धर्मात्मा अपना भगवान द्रव्य... पर्याय नहीं, विकल्प नहीं, निमित्त नहीं। स्वद्रव्य अपने आत्मा में रुचिसहित है, अन्तर्मुख दृष्टि है, अन्तर्मुख दृष्टि से अपना आत्मा अपनी श्रद्धा में अपनाया है, वे निश्चय से सम्यग्दृष्टि है, वह सच्चा सम्यग्दृष्टि है। गाथा भी अच्छी ठीक आयी है।

और वह ही सम्यक्त्वभावरूप परिणमन करता हुआ... देखो! ऐसा समकित में पूर्ण ज्ञायकभाव ध्रुवभाव की दृष्टि हुई, वही समकितभाव से परिणमन करता हुआ। पूरी पर्याय में द्रव्य का पूर्ण आश्रय लेकर समकितभावरूप परिणमन करता हुआ **दुष्ट आठ कर्मों का क्षय-नाश करता है।** आठों कर्म का उसको नाश होता है। अपने स्वद्रव्य के आश्रय से सम्यक्त्व होता है और स्वद्रव्य आश्रित परिणमन करके आठ कर्म का नाश होता है। समझ में आया? आहाहा! देखो! यहाँ तो व्यवहार पराश्रित बन्ध का कारण कह दिया है। चाहे तो देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का विकल्प हो, चाहे तो सम्मेदशिखर की यात्रा का विकल्प हो। 'एक बार वंदे जो कोई' आता है या नहीं वह? परन्तु वह तो पर का आश्रय

भक्ति सम्मेदशिखर की लाख बार करे तो भी शुभभाव है। परद्रव्य की उत्पत्ति होती है। राग परद्रव्य है, आत्मा का द्रव्य है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ऐसी खरी बात यहीं सुनने मिलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बराबर है। पुराने व्यक्ति है न। ऐसी बात है ही नहीं। बहुत गड़बड़ करते हैं। आहाहा!

देखो! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, सम्यग्दर्शन निश्चय से उसको कहते हैं कि जो ज्ञायकभाव सकल निरावरण... कल अन्त में आया था न? जो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध (पारिणामिक) परमभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य। यह निज परमात्मद्रव्य, वह स्वद्रव्य। समझ में आया? उसकी रुचि, उसके सन्मुख होकर दृष्टि करना, वह सम्यग्दर्शन है। उससे स्वभाव का पूर्ण आश्रय करके परिणमन करना, वह मुक्ति का कारण है। समझ में आया? आहाहा!

सम्यक्त्वभावरूप परिणमन करता हुआ... ऐसा समकित अर्थात्? पूर्ण द्रव्य की प्रतीति अनुभव हुआ, ऐसा समकित के आश्रय से अर्थात् द्रव्य के आश्रय से **परिणमन करता हुआ दुष्ट आठ कर्मों का क्षय-नाश करता है।** दूसरा कोई उपाय है नहीं। इतने उपवास करना, इतना करना जाओ! कर्म खपेंगे। यह बात है ही नहीं। उप-वास। उप अर्थात् भगवान ज्ञायक निज द्रव्य के समीप बसना, अन्दर थम्भना, उसमें रमना, उसमें लीन होना, वही एक मुक्ति का उपाय और आठ कर्म के नाश का कारण है। बहुत सूक्ष्म बात। यह मार्ग है, मूलचन्दभाई!

भावार्थ - यह भी कर्म के नाश करने के कारण का संक्षेप कथन है। लो! यह भी संक्षेप कथन है। **जो अपने स्वरूप की श्रद्धा, रुचि, प्रतीति, आचरण से युक्त है...** पहले सम्यग्दर्शन में अपने स्वरूप की श्रद्धा, रुचि और प्रतीति और फिर स्वरूप में आचरण अर्थात् चारित्र। समझ में आया? भगवान निज परमात्मद्रव्य अपना, उसकी श्रद्धा-निर्विकल्प श्रद्धा, निर्विकल्प रुचि-पोषाण होना, प्रतीति वह सम्यग्दर्शन। और इसके अलावा आचरण—स्वरूप ज्ञायकभाव में स्थिर होना-आचरण-लीन होना, वह आचरण-चारित्र। उससे **युक्त है, वह नियम से सम्यग्दृष्टि है,...** निश्चय से सम्यग्दृष्टि है।

इस सम्यक्त्वभाव से परिणमन करता हुआ मुनि आठ कर्मों का नाश करके निर्वाण को प्राप्त करता है। लो! **इस सम्यक्त्वभाव से परिणमन...** परिणमन, हों! परिणमन कहते हैं, धारणा, ऐसा नहीं कि यह आत्मा त्रिकाली द्रव्य है, उसके आश्रय से समकित होता है, ऐसी धारणा—ज्ञान में धारणा वह नहीं। वस्तु जैसी पारिणामिकभाव सहज प्रभु है, ऐसा ही सहज पर्याय में परिणमना, उसरूप होना, वीतरागी पर्यायरूप परिणमन करना, वही एक मोक्ष का कारण है, आठ कर्म के नाश का कारण है। लो! बहुत संक्षेप में। कहा न पण्डितजी ने? यह कर्म का नाश करने का संक्षेप कथन है।

गाथा-१५

आगे कहते हैं कि जो परद्रव्य में रत है, वह मिथ्यादृष्टि होकर कर्मों को बाँधता है –

जो पुण परदव्वरओ मिच्छादिट्ठी हवेइ सो साहू।
मिच्छत्तपरिणदो पुण बज्झदि दुट्ठट्ठकम्मेहिं।।१५।।

यः पुनः परद्रव्यरतः मिथ्यादृष्टिः भवति सः साधु।
मिथ्यात्वपरिणतः पुनः बध्यते दुष्टाष्टकर्मभिः।।१५।।

पर–द्रव्य में रत श्रमण मिथ्यादृष्टि यह जिनवर कहें।
मिथ्यात्व परिणत वर्तते दुष्टाष्ट कर्मों से बँधें।।१५।।

अर्थ – पुनः अर्थात् फिर जो साधु परद्रव्य में रत है, रागी है, वह मिथ्यादृष्टि होता है और वह मिथ्यात्वभावरूप परिणमन करता हुआ दुष्ट अष्ट कर्मों से बंधता है।

भावार्थ – यह बन्ध के कारण का संक्षेप है। यहाँ साधु कहने से ऐसा बताया है कि जो बाह्य परिग्रह छोड़कर निर्ग्रन्थ हो जावे तो भी मिथ्यादृष्टि होता हुआ संसार के दुःख देनेवाले अष्ट कर्मों से बंधता है।।१५।।

गाथा-१५ पर प्रवचन

आगे कहते हैं जो परद्रव्य में रत है, वह मिथ्यादृष्टि होकर कर्मों को बाँधता है- उसके सामने (लिया)।

जो पुण परदव्वरओ मिच्छादिट्ठी हवेइ सो साहू।
मिच्छत्तपरिणदो पुण बज्झदि दुट्ठट्ठकम्मेहिं।।१५।।

देखो! '**साहू**' लिया है। दिगम्बर साधु है, नग्न साधु हो, अट्ठाईस मूलगुण पालता हो, वनवास में रहता हो, ऐसा साधु।

अर्थ - पुनः अर्थात् फिर जो साधु परद्रव्य में रत है,... वह भी जो विकल्प में और परद्रव्य के आश्रय से विकार में लीन है, वह मिथ्यादृष्टि है। कहो समझ में आया? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो' आता है या नहीं छहढाला में? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पर आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' साधु होकर दिगम्बर मुनि होकर द्रव्यलिंग धारण करके, अट्ठाईस मूलगुण, महाव्रत आदि का पालन करके भी विकल्प है उसमें लीन है, वह विकल्प मेरा है और परद्रव्य देव-गुरु-शास्त्र से मुझे लाभ होगा, ऐसे परद्रव्य में लीन है, (वह) मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? है या नहीं उसमें? भैया! पुस्तक नहीं रखा? पुस्तक नहीं होंगे। पुस्तक नहीं है, पुस्तक कहाँ मिलती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : आप छपवा दो महाराज।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन छपवाये? आहाहा! देखो! समझ में आया?

जो साधु परद्रव्य में रत है, रागी है... परन्तु व्याख्या उसकी ऐसी है कि एक समय की पर्याय में भी यदि रुचि और दृष्टि है, (तो) परद्रव्य में रागी है, मिथ्यादृष्टि है। शुद्ध पर्याय तो उसको नहीं है, परन्तु कुछ कितने गुणों की तो अनादि से शुद्ध पर्याय भी है। अस्तित्वगुण, वस्तुत्वगुण आदि की निर्मल (पर्याय) भी है। तो निर्मल कोई मोक्ष का कारण नहीं है। कुछ कितना गुण की निर्मल पर्याय है और कुछेक गुण की विकारी है। परन्तु एक समय के ज्ञान का क्षयोपशम का अंशरूप भाव, उसकी जिसको रुचि है, उसको अधिकपने

(मानता है), मैं बहुत समझा हूँ, मुझे ज्ञान बहुत हुआ है, ऐसे क्षयोपशम की पर्याय में अधिकपना मानकर वह परद्रव्य में रत मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया या नहीं? ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं।

कहते हैं, कुन्दकुन्दाचार्य और देव कहते हैं, हम तेरे लिये परद्रव्य हैं और भिन्न हैं। समझ में आया? एकबार वहाँ प्रश्न हुआ था, (संवत्) २०१० के वर्ष में। शिवलालभाई है या नहीं? शिवलाल वीरचन्द। नहीं आये। उनके पिताजी वीरचन्दभाई थे। (संवत्) २०१० के वर्ष। १६ वर्ष हुए। श्रीमद् के भक्त। सवेरे तीन घण्टे भक्ति करे। ऐसी बात आई... १६ वर्ष पहले की बात है। म्युनीसिपल्टी के मकान में। कहा, देव, गुरु और शास्त्र पर। और उसके आश्रय से आत्मा को कुछ लाभ होता नहीं। आहा! देव, गुरु पर? देव, गुरु तो शुद्ध है। ऐ... भाई! देव-गुरु पर? वह तो शुद्ध है। अरे! शुद्ध है परन्तु पर है। लाख बार पर है।

मुमुक्षु : गोम्मटसार में तो लिखा है, सम्यग्दर्शन का कारण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो निमित्त का कथन है। वेदना से समकित होता है, भगवान के दर्शन से होता है, देवऋद्धि से होता है। वह तो निमित्त की बात है। अपने आश्रय से हुआ तो उस अपेक्षा से कौन से निमित्त से लक्ष्य छूटा है, उसको बताना है।

मुमुक्षु : अर्थ करने में...

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थ करने से विकल्प बढ़ता है या उसकी दृष्टि में विपरीतता है, इसलिए ऐसा लगता है। क्या कहते हैं? समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं, शास्त्र में ऐसा आता है सर्वार्थसिद्धि में, देवऋद्धि से समकित पाते हैं। नरक में वेदना से समकित पाते हैं। वेदना तो अनन्त बार हुई। परन्तु उस ओर का पहले विकल्प था, उसे छोड़कर स्वद्रव्य का आश्रय किया, तब सम्यग्दर्शन हुआ, तब उसे निमित्त कहने में आया है। समझ में आया? यहाँ तो ना कहते हैं। वह सब तो परद्रव्य है। वेदना भी परद्रव्य है। जातिस्मरण से पाते हैं, ऐसा शास्त्र में आता है, लो! जातिस्मरण तो पर्याय है। निश्चय से अपने द्रव्य की अपेक्षा से वह परद्रव्य है। समझ में आया? आहाहा! कठिन बात। ऐ... भीखाभाई! क्या है इसमें?

मुमुक्षु : आपको क्या कहना? आपकी बात तो सत्य ही होवे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा ! परमात्मा कहते हैं, मैं कहाँ कहता हूँ। हमारे तो घर की बात है, परन्तु कल्पना की बात नहीं है। समझ में आया ? आहाहा !

कहते हैं, भगवान आत्मा जो कोई परद्रव्य में रत है, रागी है, (वह मिथ्यादृष्टि है)। कोई कहे कि राग तो दसवें गुणस्थान तक होता है। अरे ! सुन तो सही। यहाँ तो राग अर्थात् प्रीति, परद्रव्य की रुचि है कि ये देव, ये गुरु, ये शास्त्र मेरा कल्याण करेगा। और परद्रव्य के आश्रय से राग उत्पन्न होता है, उसमें प्रेम है कि यह राग मेरा साधन है। ऐसी रुचि को भगवान मिथ्यादृष्टि कहते हैं। ऐ ! नन्दकिशोरजी ! आपके विदिशा में ऐसा नहीं चले। एक-दो दिन आये उसमें क्या चले ?

मुमुक्षु : .... कभी नहीं चलने देंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : चले, अब क्यों नहीं चले ? हर जगह चलता है। राजेन्द्रकुमार आदि सब हैं न वहाँ ? कहो, समझ में आया ?

परद्रव्य में रत है, रागी है वह मिथ्यादृष्टि... आहाहा ! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि, हम तुम्हारे गुरु और मेरे में तेरी रुचि होकर तुझे लाभ होगा, ऐसा मानता है तो मिथ्यादृष्टि है। वह तो पंचास्तिकाय में आया है। नहीं आया ? १७० गाथा। देखो ! १७० है। कहते हैं, '**सपयत्थं तित्थयरं अभिगदबुद्धिस्स सुत्तरोइस्स। दूरतरं णिव्वाणं**'। धर्मी-समकिती जीव को भी अपने द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ है, उसको भी संयम तप सहित होने पर भी, नव पदार्थ और तीर्थंकर के प्रति जिसकी बुद्धि का जुड़ान वर्तता है, रुचि है। तीर्थंकर के प्रति पाठ है, हाँ ! '**तिर्थंकरम्**' देखो ! '**सपयत्थं**' नव पदार्थ और तीर्थंकर, सूत्र आगम की रुचि '**दूरतरं णिव्वाणं**'। उसको मोक्ष दूर है। क्योंकि वह राग है। समकिती को भी कहते हैं। यह समकिती की बात है। यहाँ मिथ्यादृष्टि की बात है, क्योंकि उसमें धर्म मानते हैं। सम्यग्दृष्टि मानते नहीं, परन्तु जब तक नव पदार्थ की रुचि का राग है, तीर्थंकर का राग है, आगम का प्रेम है, तब तक मुक्ति दूर है। १७०, पंचास्तिकाय। एक, सात और शून्य। आपके क्या कहते हैं ? एक सौ सत्तर।

संयम तथा तपयुक्त को भी दूरतर निर्वाण है,
सूत्रो, पदार्थों, जिनवरो प्रति चित्त में रुचि जो रहे ॥१७०॥

स्पष्ट है न। ये तो अस्थिरता की बात है। धर्मी को स्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ, परन्तु बाद में भी चारित्रमोह का राग, देव-गुरु-शास्त्र के प्रति प्रेम है और शास्त्र-आगम की आसक्ति की रुचि है, तब तक उसको मुक्ति नहीं होगी। वह आश्रय छोड़कर स्वभाव का आश्रय करते हैं तो मुक्ति होगी। आहाहा! समझ में आया? नौ तत्त्व पदार्थ। तीर्थंकर कहे कि हमारे प्रति आसक्ति (है तो) तुझे मुक्ति दूर है। चिमनभाई! नहीं तो लोग कहते हैं, मुँह के पास निवाला आये, वह अच्छा लगता है। कहते हैं या नहीं? आपमें क्या कहते हैं? मोढा आगळ कोणियो, कहते हैं। मुख के पास कवल-ग्रास, ऐसा आपकी भाषा में कहते हैं या नहीं? अपने मुँह के पास ग्रास किसको नहीं रुचे? भगवान कहते हैं कि हमारे ओर की रुचि भी तेरे राग को रोकनेवाली है। आहाहा! यह तो वीतरागमार्ग में ऐसा है। (अन्यमत में) ऐसा होता ही नहीं। दूसरा कहे, परमात्मा है। हमको मानो, तुम्हारा कल्याण होगा। हमारे साधु को आहार दो, तुम्हारा कल्याण (होगा); धूल भी नहीं होगा।

यहाँ तो कहते हैं कि हमारे सन्त साधु एक भवतारी ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य आदि, उनको आहार-पानी देने से परद्रव्य का आश्रय (होता है) तो राग ही होगा। संवर, निर्जरा नहीं होगी। नेमचन्दभाई! कठिन बात। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, अरे! तीर्थंकर कहते हैं कि हम जब तक छद्मस्थ हैं, मुनि हैं। हमें इस भव में मोक्ष जाना है, हमें आहार-पानी देने के भाववाले को भी शुभराग पुण्य होता है, संवर-निर्जरा नहीं होती। क्योंकि हम परद्रव्य हैं। डालचन्दजी! यह बात है। भगवान आत्मा... आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका कुछ नहीं। श्रीमद् को उनके समय का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव था, उस प्रकार से चला। समझ में आया? अपने तो यहाँ वीतराग की मर्यादा तक ले जाना है। अटकने की बात नहीं। जितना परद्रव्य में अटके, उतना संसार में भटके। एक सिद्धान्त है। १७० में कहा न? दूरतर निर्वाण। पदार्थ-नौ पदार्थ की श्रद्धा विकल्प है। तीर्थंकर की श्रद्धा राग है, परमागम का प्रेम राग है। जब तक इतना राग समकिती को भी (रहता है), द्रव्य के आश्रय से समकित हुआ है, परन्तु जब तक इतना राग रहेगा, तब तक मुक्ति दूर... दूर... दूर है। इस राग का अभाव करके वीतरागता प्रगट करेगा, तब उसे मुक्ति मिलेगी। 'ऐसा मार्ग वीतराग का कहा श्री वीतराग।'

मुमुक्षु : ऐसा राग आता तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आने का कहाँ प्रश्न है? आये तो बन्ध का कारण है, ऐसा कहते हैं। इसलिए तो स्पष्ट किया। आता है, इसलिए तो कहते हैं कि बन्ध का कारण है। आता है व्यवहार, बीच में आये बिना रहे नहीं, परन्तु है बन्ध का कारण। राग आये दूसरी बात है। आता है, इसलिए मिथ्यात्व है ऐसा नहीं। समझ में आया? परन्तु उससे मुझे परमार्थ धर्म होगा, (ऐसी मान्यता मिथ्यात्व है)।

मुमुक्षु : राग तो मिथ्यात्व है न, महाराज?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, राग मिथ्यात्व नहीं है। राग तो चारित्र का दोष है। समकिती को भी राग तो होता है। भगवान के प्रति इतना राग (होता है), परन्तु धर्मी उस राग को बन्ध का कारण समझते हैं। हेयबुद्धि से उसको राग आता है। समझ में आया?

कहते हैं, जो साधु होकर भी, द्रव्यलिंगी होकर भी पंच महाव्रत पालनेवाला भी, वनवास में रहनेवाला भी दिगम्बर साधु हजारों रानियों का त्याग करके वैराग्य से जंगल में रहता हो, परन्तु परद्रव्य में रागी है तो मिथ्यादृष्टि है। एक राग का कण भी उत्पन्न होता है, पंच महाव्रत का, उसमें जिसकी रुचि है, वह मुझे लाभदायक है, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि अज्ञानी की है। समझ में आया? है या नहीं उसमें?

और वह मिथ्यात्वभावरूप परिणमन करता हुआ... देखो! मिथ्यादृष्टि भी बाद में मिथ्यात्वभाव में ही परिणमता है। **परिणमन करता हुआ दुष्ट अष्ट कर्मों से बँधता है।** उसे तो मिथ्यादर्शनसहित, दर्शनमोहसहित आठ कर्म का बन्ध होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : आठ कर्म दुष्ट होते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दुष्ट है। आत्मस्वभाव से विरुद्ध है, इसलिए। दुष्ट का अर्थ इतना। चार गति में परिभ्रमण में निमित्त है न? आत्मा में शान्ति के लिये निमित्त है? इसलिए दुष्ट है। वास्तव में तो अपना राग परिणाम है, वही अनिष्ट है। उससे बन्धन हुआ, वह भी अनिष्ट है। समझ में आया? प्रवचनसार में ऐसा है। प्रवचनसार में ऐसा है। पुण्य-पाप का भाव, रागभाव अनिष्ट है और भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द इष्ट है। और उससे निर्मल पर्याय श्रद्धा-ज्ञान की उत्पत्ति हुई, वह इष्ट है। बाकी कोई धर्मी को इष्ट है नहीं।

ओहोहो ! **मिथ्यात्वभावरूप परिणमन करता हुआ दुष्ट अष्ट कर्मों से बँधता है।**

भावार्थ - यह बन्ध के कारण का संक्षेप है। देखो ! पण्डित जयचन्द्र। १३ वी में लिखा था। बन्ध और मोक्ष का संक्षेप कथन था। १४वीं में कर्म के नाश करने का संक्षेप कथन था। १४वीं में और ये १५वें में बन्ध का संक्षेप कथन है। गाथा बहुत ऊँची आयी ताकड़े। ताकड़े को क्या कहते हैं। समय पर।

यह बन्ध के कारण का संक्षेप है। यहाँ साधु कहने से ऐसा बताया है कि जो बाह्य परिग्रह छोड़कर... एक लंगोटी भी नहीं। पैसे तो कहाँ से हो ? ... किसका हो ? **बाह्य परिग्रह छोड़कर निर्ग्रन्थ हो जावे तो भी मिथ्यादृष्टि होता हुआ...** आहाहा ! एक समय की पर्याय में जिसको अनादि से रुचि पड़ी है, वही मिथ्यात्वभाव है। उस मिथ्यात्वभाव में पंच महाव्रत पाले, आदि हो, सब आठ कर्म बन्ध का कारण है। उसमें किंचित् भी संवर, निर्जरा का अंश है नहीं। **मिथ्यादृष्टि होता हुआ संसार के दुःख देनेवाले...** लो, ठीक ! ऐई ! सेठजी ! संसार के दुःख। दुष्ट कर्म कहा न ? **दुःख देनेवाले अष्ट कर्मों से बँधता है।** लो ! समझ में आया ? '**दुट्ठट्ठकम्मेहिं**'। दुष्ट का अर्थ किया। चार गति के दुःख देनेवाला है, इसलिए उसे दुष्ट कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

गाथा-१६

आगे कहते हैं कि परद्रव्य ही से दुर्गति होती है और स्वद्रव्य ही से सुगति होती है -

परदव्वादो दुग्गई सद्दव्वादो हु सुग्गई होइ।
इय णाऊण सदव्वे कुणह रई विरइ इयरम्मि ।।१६।।

परद्रव्यात् दुर्गतिः स्वद्रव्यात् स्फुटं सुगतिः भवति।
इति ज्ञात्वा स्वद्रव्ये कुरुत रतिं विरतिं इतरस्मिन् ।।१६।।

पर-द्रव्य से हो दुर्गति स्व-द्रव्य से होती सुगति।
यों जान स्व में रति करो पर-द्रव्य से करना विरति।।१६।।

अर्थ – परद्रव्य से दुर्गति होती है और स्वद्रव्य से सुगति होती है – यह स्पष्ट (प्रगट) जानो, इसलिए हे भव्यजीवों ! तुम इस प्रकार जानकर स्वद्रव्य में रति करो और अन्य जो परद्रव्य उनसे विरति करो।

भावार्थ – लोक में भी यह रीति है कि अपने द्रव्य से रति करके भोगता है वह तो सुख पाता है, उस पर कुछ आपत्ति नहीं आती है और परद्रव्य से प्रीति करके चाहे जैसे भोगता है, उसको दु:ख होता है, आपत्ति उठानी पड़ती है। इसलिए आचार्य ने संक्षेप में उपदेश दिया है कि अपने आत्मस्वभाव में रति करो इससे सुगति है, स्वर्गादिक भी इसी से होते हैं और मोक्ष भी इसी से होता है और परद्रव्य से प्रीति मत करो इससे दुर्गति होती है, संसार में भ्रमण होता है।

यहाँ कोई कहता है कि स्वद्रव्य में लीन होने से मोक्ष होता है और सुगति दुर्गति तो परद्रव्य की प्रीति से होती है ? उसको कहते हैं कि यह सत्य है, परन्तु यहाँ इस आशय से कहा है कि परद्रव्य से विरक्त होकर स्वद्रव्य में लीन होवे तब विशुद्धता बहुत होती है, उस विशुद्धता के निमित्त से शुभकर्म भी बंधते हैं और जब अत्यन्त विशुद्धता होती है तब कर्मों की निर्जरा होकर मोक्ष होता है इसलिए सुगति दुर्गति का होना कहा वह युक्त है, इस प्रकार जानना चाहिए।।१६।।

गाथा-१६ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि परद्रव्य ही से दुर्गति होती है और स्वद्रव्य ही से सुगति होती है - परद्रव्य से दुर्गति का अर्थ—परद्रव्य दुर्गति नहीं देता। परद्रव्य का आश्रय करने से विकार होता है, वह दुर्गति, आत्मा की गति नहीं। समझ में आया ?

परदव्वादो दुग्गई सद्दव्वादो हु सुग्गई होइ।
इय णाऊण सदव्वे कुणह रई विरइ इयरम्मि।।१६।।

'**परदव्वरओ**' शब्द तो पहले १३वीं गाथा में ले लिया था। '**परदव्वरओ**' आया था न ? १३वीं गाथा में। रक्त और विरक्त वहाँ ले लिया है। अब, रक्त-विरक्त दोनों निकालकर सीधे दो शब्द (लेते हैं)। समझ में आया ? १३वीं में लिया था न ? '**परदव्वरओ**' और

'**विरओ**'। रक्त-परद्रव्य में प्रेम—रुचि है, वह संसार है, मिथ्यात्व है। और उससे रुचि छोड़कर अपने स्वभाव का आश्रय, रुचि करे, वह समकित है। यहाँ १५ में भी लिया था। १४ में भी लिया था। '**सद्दव्वरओ**', '**सद्दव्वरओ**' ऐसा था। फिर १५वीं में '**परदव्वरओ**'। रक्त कहते थे, वह रक्त भी निकाल दिया। यहाँ तो '**परदव्वादो दुग्गई सद्दव्वादो हु सुग्गइ**।' गाथा चढ़ जाती है। समझ में आया?

परदव्वादो दुग्गई सद्दव्वादो हु सुग्गई होइ।
इय णाऊण सदव्वे कुणह रई विरह इयरम्मि॥१६॥

देखो! वहाँ डाला फिर से। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य संक्षेप में सारगर्भित (बात करते हैं)। लोग स्वाध्याय नहीं करते और स्वाध्याय करते हैं तो अपनी दृष्टि से करते हैं तो निकालते हैं कि देखो! उसमें है, देखो! उसमें है। यहाँ तो कहते हैं।

अर्थ - परद्रव्य से दुर्गति होती है... अपना भगवान आत्मा स्वद्रव्य की व्याख्या आयेगी, १८ में। उसको छोड़कर जितनी एक समय की पर्याय, पुण्य का विकल्प और निमित्त परद्रव्य है, उससे तो दुर्गति ही होती है। अपने स्वरूप में परिणमन की सुगति उसमें होती नहीं। ओहोहो! रागरूप परिणमना, वह दुर्गति है। जीव के स्वभाव की गति से विरुद्ध दुर्गति है। आहाहा!

मुमुक्षु : गृहस्थों को या मुनियों को?

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको। गृहस्थ और अगृहस्थ क्या है? चारित्र में अन्तर है, दृष्टि में अन्तर है किसी की? कहते हैं, प्रवचनसार में ऐसा लिखा है। गृहस्थों को शुभभाव मोक्ष का कारण है। वह तो चरणानुयोग में परम्परा देखकर कहा है। राग मोक्ष का कारण कैसा? साक्षात् कारण नहीं, परम्परा कारण नहीं। परन्तु उसको छोड़कर करेगा तो परम्परा कारण कहने में आयेगा। क्योंकि दृष्टि में छूटा है। समकिती राग से दृष्टि से तो मुक्त ही है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि तीर्थंकर गोत्र के भाव से भी मुक्त ही है। 'षोडशकारण भावना भावता जीव लहे केवल...' क्या कहते हैं न? दर्शनविशुद्ध भावना भावता सोलह तीर्थंकरपद होय। हमारे श्रीचन्दजी बहुत बोलते हैं। कहो, समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं, जितना परद्रव्याश्रित भाव है, उसमें यदि रुचि रह जाए तो मिथ्यात्व; नहीं तो राग है, वह बन्ध का कारण है। समझ में आया?

'सदव्वा हु सुग्गइ होइ' सुगति अर्थात् मुक्ति। उसमें थोड़ा अर्थ स्वर्ग मिलेगा (ऐसा है)। पाठ में सुगति मुक्ति की ही बात है। समझ में आया? यहाँ तो मोक्ष और बन्ध दो की बात है। स्वद्रव्य भगवान आत्मा शाश्वत् आनन्दधाम, ऐसा ध्रुव स्वद्रव्य, वही एक मुक्ति का कारण है, सुगति का वही कारण है। बीच में समकिती को राग थोड़ा रह जाता है, उसमें स्वर्ग भी आ जाओ। समकिती को ऐसा स्वर्ग बीच में आता है। **'इय णाऊण सदव्वे कुणह रई विरह इयरम्मि'। (-प्रगट) जानो...** ऐसा प्रगट जानो।

इसलिए हे भव्यजीवो! हे भव्यजीवो! आहाहा! सम्बोधन करते हैं। हे लायक जीवो! आहाहा! **तुम इस प्रकार जानकर...** ज्ञान करके **स्वद्रव्य में रति करो...** अपने द्रव्य की रुचि और लीनता करो। रुचि-सम्यग्दर्शन और लीनता, वह चारित्र। समझ में आया? बहुत गड़बड़ हो गयी न इसलिए सत्य बात बाहर आयी तो विरोध (करते हैं)। एकान्त है। व्यवहार से लाभ होता है, ऐसा तो कुछ कहते नहीं; निमित्त से लाभ होता है, ऐसा कहते नहीं। यहाँ भगवान न कहते हैं कि निमित्त और व्यवहार से तो बन्ध ही होता है, सुन न! ...भाई! तुम्हारे वहाँ चलता है। कोटडिया... कोटडिया? हो बेचारे। अमुक प्रकार की लायकात बिना यह बात बैठे नहीं। अन्तर में बैठनी चाहिए न। समझ में आया? जिसका संसार निकट अप हो, उसे यह बात बैठे।

मुमुक्षु : महाराज! आपका जो विरोध करते हैं, उनको आप भगवान आत्मा कहते हो!

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भगवान आत्मा है। भगवान है या नहीं? भगवान आत्मा। आत्मा तो भगवान ही है। पर्याय में भूल है। द्रव्य तो आत्मा है। पर्याय को यहाँ परद्रव्य गिनने में आयी। कोटडिया मोरबी जानेवाले हैं न? भाई! मोरबी का समाचार आया था कि यहाँ कपिल कोटडिया आनेवाला है, कैसे करना? बराबर वहाँ जाना। सामने जाना। उनको उतारने को अपने ऐसा नहीं समझना कि ये विरोध करता है, इसलिए (नहीं जाना)। मोरबी। उसे वैसा बैठा तो वैसा कहे। परन्तु जब ऐसा कहे कि मुझे मोरबी आना है और आपके घर उतरना है, मुझे मन्दिर का दर्शन करना है। विरोध नहीं करना, आदर करना। ऐसा कहा था। विरोध बहुत करते हैं, बहुत करते हैं। वहाँ से समाचार आया कि हमें क्या

करना ? सामने जाना। घर पर ले जाना, भोजन करवाना। मन्दिर में दर्शन करवाना, बिल्कुल विरोध करना नहीं। अपना काम नहीं। समझ में आया ? फूलचन्दभाई के वहाँ ठहरे थे। बहुत खुश हुए। ओहो ! फिर सब विरुद्ध का लिखे। नेमचन्दभाई !

यहाँ कहते हैं, स्वद्रव्य में रति करो और परद्रव्य में विरति करो। परद्रव्य से निवृत्त हो जाओ। स्वद्रव्य में प्रवृत्ति करो। बस, एक ही बात है। लोगों को बाहर के व्रत, तप आदि करो, उसमें धर्म मान लिया है, इसलिए लोग बेचारे... ऐसा मनुष्यदेह मिला और यदि यह नहीं समझेगा, भाई ! तेरा कहाँ जन्म होगा ? भाई ! समझ में आया ? बाहर में कोई शरण नहीं है। दुनिया ऐसा कहे आहाहा ! कि ये धर्मी है। बहुत उपवास करते हैं, बहुत व्रत पालता है। उसमें तुझे क्या ? वह कोई ... रखने जाना नहीं है कि हमारी इतनी इज्जत है। धूल में भी कहाँ इज्जत रह गयी। समझ में आया ?

यहाँ तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, कि परद्रव्य में विरति करो, भगवान ! आहाहा ! परद्रव्य से पीठ दो और स्वद्रव्य के सन्मुख हो जाओ। भीखाभाई ! ऐसी बात है। आहाहा ! गृहस्थों को ? अरे ! गृहस्थ अर्थात् समकिती की बात है। गृहस्थ में समकिती नहीं होता है ? समकिती को कहते हैं, भैया ! तेरे द्रव्य में लीन होओ, रुचि वहाँ करो, पर से रुचि हटा दे।

मुमुक्षु : मुनियों को कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि समकिती हो यहाँ कहते हैं। मिथ्यादृष्टि मुनि को कहते हैं न। यहाँ मिथ्यादृष्टि मुनि को कहा। समझ में आया ? मिथ्यादृष्टि मुनि कहा न ? १५वीं गाथा में। नाम धराया द्रव्यलिंगी, उसमें क्या हुआ ? समझ में आया ?

स्वद्रव्य में रति करो और अन्य जो परद्रव्य उनसे विरति करो। लो, भावार्थ आयेगा। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-६८, गाथा-१६ से १८, शनिवार, श्रावण कृष्ण ६, दिनांक २२-०८-१९७०

अष्टपाहुड़ चलता है, उसमें मोक्षपाहुड़ की १६वीं गाथा। मोक्ष अधिकार। गाथा फिर से लेते हैं।

परदव्वादो दुग्गई सद्दव्वादो हु सुग्गई होइ।
इय णाऊण सदव्वे कुणह रई विरह इयरम्मि॥१६॥

अर्थ - परद्रव्य से दुर्गति होती है... क्या कहते हैं? ये भगवान आत्मा अन्दर आनन्द सच्चिदानन्द ज्ञानानन्दस्वरूप है। उसके अतिरिक्त जितना अन्दर पुण्य-पाप का विकल्प राग है, ये शरीर है, कर्म है, वह सब परद्रव्य है, परवस्तु है। क्या समझ में आया? '**परदव्वादो दुग्गइ**' आत्मा... दोनों का स्पष्टीकरण करेंगे। परद्रव्य की व्याख्या १७ में है, स्वद्रव्य की व्याख्या १८ में है। यहाँ पहले सामान्य व्याख्या है। '**परदव्वादो दुग्गइ**' अपना आत्मा शुद्ध सच्चिदानन्द अनादि-अनन्त निर्मल आनन्दकन्द ध्रुवस्वरूप स्वद्रव्य, स्वस्वरूप, स्वआत्मा। और उसके अतिरिक्त जितना दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध का विकल्प वृत्तियाँ उठती हैं, वह सब परद्रव्य है। अपने में नहीं, अपनी चीज़ नहीं। समझ में आया? यह शरीरादि तो जड़ है। वह तो पर ही है। कर्म है जड़ है, वह अन्य ही है।

यहाँ तो आचार्य अपना शुद्ध चैतन्य ध्रुव ज्ञायकभाव, पूर्णानन्द अनादि-अनन्त एकरूप ऐसी जो अपनी चीज़ है, वह अपना स्वद्रव्य अर्थात् अपनी पूँजी अर्थात् अपना तत्त्व है। दरबार! बराबर है? ये शरीर-बरीर, लक्ष्मी-बक्ष्मी-धूल अपना द्रव्य नहीं। वह तो पर है, मिट्टी है, धूल है। लक्ष्मी परद्रव्य है, शरीर परद्रव्य है, परवस्तु है। वह तो ठीक परन्तु अन्दर में दया, दान, व्रत का विकल्प जो उठते हैं, वह भी निश्चय से तो परद्रव्य और परवस्तु ही है। आहाहा! अपनी हो तो छूटे नहीं, भिन्न होवे नहीं और भिन्न हो जाए, वह अपनी नहीं। तो जो शुभ और अशुभराग व्यवहार महाव्रत आदि का विकल्प, दया, दान का विकल्प भी वास्तव में परद्रव्य है। बाद में १७ में थोड़ा स्पष्टीकरण करेंगे।

परद्रव्य से दुर्गति होती है... राग, शरीर को अपना मानने से तो आत्मा की चार गति में भटकने की दुर्गति होगी। समझ में आया? चाहे तो पुण्यभाव हो, दया, दान, व्रत, भक्ति

शुभभाव, वह भी दुर्गति का कारण है। दुर्गति का अर्थ अपने स्वभाव में जाने में वह विघ्न करनेवाली चीज़ है। शोभलालजी! ये पैसे-बैसे का क्या करना? धूल है? यहाँ तो राग धूल है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? राग से पुण्य बँधे और पुण्य से धूल मिले। तो राग ही धूल है। अपनी चीज़ है नहीं। वह अपनी चीज़ नहीं, उसको अपनी मानकर उसमें रुचिकर रहता है, वह अपने स्वभाव की गति से विरुद्ध दुर्गति में जाता है। दुर्गति का अर्थ चार गति में भटकते हैं। चारों गति दुर्गति है। चाहे तो मनुष्यपना मिलो, चाहे तो स्वर्ग का देव हो, चाहे तो अरबोंपति धन के धनी धूल के हो, वह सब दुर्गति है। समझ में आया?

मुमुक्षु : कल्याण तो मनुष्यगति से ही होगा न।

पूज्य गुरुदेवश्री : मनुष्यगति से कल्याण होता ही नहीं, अपने से होता है। सेठ! कहाँ से लकड़ा (विपरीतता) डाला? कहाँ आया? समझ में आया? कल्याणस्वरूप भगवान आत्मा आनन्द और सच्चिदानन्द सत्, सत् अर्थात् त्रिकाल, चिद् अर्थात् ज्ञान और आनन्द, त्रिकाल आनन्द और ज्ञान की मूर्ति अविनाशी वस्तु आत्मा है, उसकी दृष्टि करने से कल्याण होता है। कल्याण अपनी दशा से होता है। कल्याण राग और दया, दान, व्रत के विकल्प से या मनुष्यगति से नहीं होता। मनुष्यगति से कल्याण नहीं होता है। मनुष्यगति तो परद्रव्य है, उदयभाव है, परद्रव्य है। सूक्ष्म बात है, भगवान! उसकी चीज़ क्या है, उसे उसने कभी सुनी नहीं, समझा नहीं। ऐसे के ऐसे चार गति में जन्म-मरण करके मर गया अनन्त बार। समझ में आया? मर गया चार गति में। चैतन्य जीवन क्या है, उसका पता ही नहीं, खबर नहीं।

कहते हैं, परद्रव्य से तो दुर्गति होती है। आहाहा! समझ में आया? और स्वद्रव्य से सुगति होती है। स्वद्रव्य भगवान आत्मा ज्ञान का पुंज, चैतन्य का पुंज, वीतरागस्वभाव रागरहित जिनबिम्ब वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा, उसी से सुगति होती है। स्वभाव आत्मा आनन्दकन्द प्रभु है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र में लीन होने से आत्मा की सुगति अर्थात् मुक्ति होती है। समझ में आया? '**इय णाऊण**' **यह स्पष्ट (प्रगट) जानो,...** ऐसा है न? प्रगट जानो। '**हु**' शब्द है न? '**हु**'।

इसलिए हे भव्यजीवो! हे भव्य जीवो! **तुम इस प्रकार जानकर स्वद्रव्य में रति**

करो... भगवान आत्मा आनन्द का धाम अतीन्द्रिय सुख का सागर, अतीन्द्रिय सुख का सागर आत्मा है। तुम्हारा सागर नहीं। उसमें लीन, अतीन्द्रिय आनन्द में लीन। श्रद्धा से लीन, ज्ञान से लीन, चारित्र से लीन, उससे तेरी सुगति होगी। जन्म-मरण के अन्त का यह उपाय है। दूसरा कोई उपाय है नहीं। समझ में आया? आहाहा! **जानकर स्वद्रव्य में रति करो और अन्य जो परद्रव्य उनसे विरति करो**। रागादि से मुक्त हो। नास्ति करो, आत्मा में रागादि है ही नहीं। भगवान आत्मा ज्ञानानन्द चैतन्यबिम्ब में दृष्टि करो, रागादि से नास्ति करो। रागादि विकल्प तेरी चीज़ नहीं। उससे मैं नास्ति अर्थात् रहित हूँ। पर से विरक्त हो, स्व में रक्त हो। राग विकल्प दया, दान से भी विरक्त हो और स्वद्रव्य में रक्त हो। तो सुगति होगी। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : इसमें तो कुछ भी नहीं रहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ भी नहीं रहा? भगवान पूरा रहा न। चैतन्यपुंज प्रभु ज्ञान का सागर है, आनन्द का दरिया है। भान कहाँ है? समझ में आया? बड़ा समुद्र हो और आँख के सामने एक तिनका ऐसा रखो तो पूरा समुद्र नहीं दिखे। दिखेगा? उसी प्रकार भगवान आत्मा पुण्य और पाप का विकल्प का पिण्ड की आड़ में, रुचि की आड़ में भगवान दिखता नहीं। सर्वस्व है, वह दिखता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वह भजन में भी आता है। 'तरणा ओथे डुंगर रे, डुंगर कोई देखे नहीं' तरणा ओथे-तरणा अर्थात् तिनका, घास का तिनका। 'तरणा ओथे डुंगर रे... डुंगर कोई देखे नहीं' बड़ा पर्वत हो परन्तु तिनका आँख में आड़े आ गया तो नहीं दिखेगा। वैसे भगवान आत्मा पुण्य-पाप का विकल्प अर्थात् राग की वासना के प्रेम में भगवान राग से भिन्न चिदानन्दस्वरूप उसको दिखने में आता नहीं। समझ में आया? पोपटभाई! ये पुत्र आदि तो दूर रह गये, आपके पैसे दूर रह गये। पचास-पचास लाख, साठ-साठ लाख, धूल लाख... आँकड़ा गिनना है, वह कहाँ अपने बाप के थे? उसके बाप का भी नहीं है, वह तो जड़ का है, पुद्गल का है। ये सब सेठ हैं। जुगराजजी को बड़े पैसेवाले कहते हैं, लोग कहते हैं। पैसेवाला अर्थात् जड़वाला। जड़ का मालिक। जड़ का मालिक होवे, वह जड़ है। भैंस का मालिक पाडा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दृष्टान्त बराबर समझ में नहीं आया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : बराबर समझ में नहीं आया ? अच्छा ! जो भैंस होती है या नहीं ? भैंस होती है, उसका धनी कौन है ? आदमी या पाडा ? वैसे लक्ष्मी मालिक हो वह जड़ है। लक्ष्मी जड़ है तो उसका स्वामी होता है, वह जड़ है।

मुमुक्षु : चेतन जड़ हो जाए ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है न। जड़ कहाँ से हो ? मैं जड़ का स्वामी हूँ। सहजानन्द भगवान... स्वस्वामीसम्बन्ध आता है या नहीं ? अपने आत्मा में ऐसी एक शक्ति अनादि-अनन्त पड़ी है – स्वस्वामीसम्बन्ध शक्ति, स्वस्वामीसम्बन्ध गुण। अपना आनन्द आदि स्व उसका मैं स्वामी। अपना सच्चिदानन्दस्वरूप वह मेरा स्व। स्व अर्थात् मेरी पूँजी, पूँजी अर्थात् मेरा धन, उसका मैं स्वामी हूँ। ऐसा उसमें अनादि-अनन्त गुण है। उसे छोड़कर शुभराग दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध का स्वामी होता है, वह अचेतन है। वह जड़ को अपना माननेवाला जड़ है। आहाहा ! समझ में आया ?

चैतन्यप्रकाश का पुंज प्रभु, जैसे सूर्य आदि रजकण के प्रकाश का पुंज है तो उस प्रकाश का भी प्रकाश करनेवाला भगवान चैतन्यमूर्ति आत्मा, अपने को छोड़कर अपने में नहीं है, ऐसी चीज़ को अपनी मानता है तो वह जड़ है, ऐसा कहते हैं आत्मा। अचेतन है, व्यवहार आत्मा है, निश्चय आत्मा है नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? परद्रव्य से विरक्ति करो।

भावार्थ – लोक में भी यह रीति है कि अपने द्रव्य से रति करके अपना ही भोगता है, वह तो सुख पाता है,... संसार में भी ऐसा है कि लोग अपनी पूँजी हो, वह करे तो लौकिक सज्जन के हिसाब से ठीक कहने में आता है।

मुमुक्षु : यहाँ तो सुख पाता है, ऐसा लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुख अर्थात् ये दुनिया का सुख। धूल सुख है। सुख कहाँ है ? लोग मूढ़ जीव मानते हैं न। जुगराजजी ! पैसे में सुख मानते हैं। जुगराजजी सुखी हैं, ऐसा लोग कहते हैं। पागल की अस्पताल में सब पागल ही होते हैं। समझ में आया ? पागल की प्रशंसा पागल करे। ऐ... सेठ ! ये सब सेठ। पचास लाख, साठ लाख, सत्तर लाख

आँकड़े भरे हैं। धूल में भी नहीं है। सेठ! आहाहा! भगवान! तुझे तेरी खबर नहीं। तेरे में तो आनन्द और ज्ञान की अनन्त लक्ष्मी पड़ी है। अनन्त-अनन्त बेहद आनन्द और ज्ञान। शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... अविकारी शान्तरस है, वह तेरी चीज़ है। समझ में आया? बड़ी भूल हो गयी अनादि से, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : भूल निकाल दीजिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन निकाले? जिसने की, वह निकाले या दूसरा निकाले? भूल किसने की है? उसने भूल की है तो वह निकाले। दूसरा निकाल दे?

मुमुक्षु : कांटा हो, वह दूसरा निकाल देता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कांटा भी निकालता नहीं। कांटा अपने से निकलता है। कांटा (दूसरे से) निकलता नहीं। वह तो निमित्त से कहने में आता है। कांट अपने से निकलता है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, लोक में जैसे अपनी चीज़ को भोगते हैं तो सुख पाता है। अर्थात् प्रतिकूलता विघ्न बाहर में न दिखे। **उस पर कुछ आपत्ति नहीं आती है...** साहूकार, अपनी लक्ष्मी हो तो उसे बाह्य जेल आदि की आपत्ति आती नहीं। **और परद्रव्य से प्रीति करके चाहे जैसे लेकर...** देखो! जैसे-तैसे अर्थात् चोरी करके, जैसे-तैसे उठाकर अन्याय से परद्रव्य से प्रीति की। परपदार्थ—ये शरीर मिट्टी-धूल... समझ में आया? यह तो मिट्टी-धूल है, राख है। जलकर राख होती है। यह तो राख है, ये कहाँ आत्मा है?

भगवान आत्मा दृष्टा तो अन्दर भिन्न है। ज्ञाता प्रभु देह से भिन्न है। ऐसे अपने को नहीं मानकर **परद्रव्य से प्रीति करके चाहे जैसे...** देखो! चोर जैसा लिया। चोरी करके ले, माया करके ले, गुप्त करके ले। **उसके दुःख होता है, आपत्ति उठानी पड़ती है।** पुलिस पकड़े तो उसको जेल में जाना पड़े। **इसलिए आचार्य ने संक्षेप में उपदेश दिया...** लो, संक्षेप शब्द बहुत आता है, भाई! सब गाथा में संक्षेप (आता है)।

अपने आत्मस्वभाव में रति करो... भगवान! आहाहा! तेरा स्वभाव तो तेरे पास ही है। आनन्द है, ज्ञान है, शान्ति है, वीतरागता है, निर्दोषता है... ऐसी अनन्त-अनन्त शक्ति तेरे स्वभाव में बेहद अपरिमित स्वभाव पड़ा है, उसमें प्रीति करो, रति करो, लीन हो, प्रेम

करो। उसमें लीनता से लिपट जाओ–अन्तर में एकाकार हो जाओ। मूलचन्दभाई! ऐसी बात है। **रति करो, इससे सुगति है, स्वर्गादिक भी इसी से होते हैं...** देखो! मोक्ष भी उससे होगा और बीच में जब तक पूर्णता न हो, तब विकल्प आयेगा तो उस विकल्प से, राग से, पुण्य से स्वर्ग मिलेगा। स्वर्ग में से निकलकर मनुष्य होकर पूर्णानन्द की प्राप्ति तुझे होगी। अपने द्रव्य के आश्रय से लाभ होगा, बाकी लाभ है नहीं। आहाहा! मोक्ष भी इसी से होगा। शुभभाव बाकी रह जाए, स्वभाव सन्मुख चिदानन्द भगवान की दृष्टि, ज्ञान और लीनता, तो लीनता में थोड़ी कमी रह जाए तो उसके कारण से–राग से स्वर्ग मिले। और जितनी लीनता हुई, उससे शुद्धता प्रगट हो और क्रमशः उससे मोक्ष होगा। बाकी पर से स्वर्ग यथार्थ मिलता नहीं।

मुमुक्षु : मनुष्यगति में अपेक्षा...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, अपेक्षा नहीं। मनुष्यगति दुर्गति है। उसमें प्रीति करना, यह दुर्गति है। मनुष्यगति उदयभाव है। उदयभाव है, वह परभाव है, अपना स्वभाव नहीं। परभाव से आत्मा को लाभ होता है, यह मान्यता मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु : वज्रनाराचसंहनन ?

पूज्य गुरुदेवश्री : संहनन जड़ है। जड़ से आत्मा को ज्ञान होता है ? शरीर मजबूत हो उससे होता है ? वह तो परद्रव्य है। परद्रव्य में प्रीति करने से तो दुर्गति होगी। आहाहा! यह तो बहुत संक्षेप में—बहुत थोड़े में कह दिया। आहाहा!

परद्रव्य से प्रीति मत करो इससे दुर्गति होती है, संसार में भ्रमण होता है। राग में, मनुष्यगति में मुझे लाभ होगा, मनुष्यगति हो तो मुझे मोक्ष होगा, ऐसी प्रीति करने से दुर्गति होगी। मूलचन्दभाई! ऐसा तो सुना नहीं। कितने वर्ष निकाले ? ये सब दिगम्बर के सेठ कहलाते हैं। सेठ! ये तो बड़े बादशाह कहलाते हैं। बुन्देलखण्ड का बादशाह! बुन्देलखण्ड का राजा कहलाते हैं। बादशाह राजा से बड़ा... धूल में भी कुछ नहीं है। गिरवी रख सकता है बादशाहपना ? मर जाना है। यहाँ से जाना है तो क्या इज्जत गिरवी रखी जाती है ? धूल में भी काम नहीं आती। समझ में आया ?

भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप अविनाशी तत्त्व अनादि–अनन्त आनन्द का

धाम, उसमें एकाग्र होने से आत्मा की मुक्ति होती है। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं, तीन लोक के नाथ तीर्थंकर परद्रव्य है। परद्रव्य में प्रीति करने से राग होगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐ... शोभालालजी! तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा हो, परन्तु अपने से पर है। उस परद्रव्य में प्रीति करने से राग होगा और राग से बन्ध होगा और दुर्गति होगी। दुर्गति का अर्थ अपना कल्याण नहीं हुआ और आत्मा में एकाग्रता नहीं हुई। ये सब दुर्गति है, चार गति। आहाहा! कठिन बात, भाई!

यहाँ कोई कहता है कि स्वद्रव्य में लीन होने से मोक्ष होता है और सुगति-दुर्गति तो परद्रव्य की प्रतीति से होती है? आपने तो ऐसा कहा कि अपना भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब चैतन्यप्रकाश का पुंज आनन्दस्वभाव में लीन होने से मुक्ति और स्वर्ग होता है, ऐसा आपने कहा। हमें तो ऐसा लगता है कि अपने स्वभाव में लीन होने से मुक्ति होगी और अपने अतिरिक्त परद्रव्य में प्रीति होने से स्वर्ग, नरकादि मिलेगा। और आप तो कहते हो अपने स्वभाव की प्रीति करने से स्वर्ग मिलेगा। यह आप क्या कहते हो? समझ में आया?

उसको कहते हैं - यह सत्य है... तेरी बात तो सत्य है। इस अपेक्षा से **परन्तु यहाँ इस आशय से कहा है...** एक आशय से कहा है। क्या? **परद्रव्य से विरक्त होकर स्वद्रव्य में लीन होवे...** भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्दस्वरूप, उसमें जो अन्तर में एकाग्र हो और उसमें जो विशुद्धता हो, शुभभाव बीच में आ जाए, अभी पूर्ण वीतरागता पूर्ण परमात्मा नहीं हो तो, तो **विशुद्धता के निमित्त से शुभकर्म भी बँधते हैं...** तीर्थंकरगोत्र बँध जाए। समझ में आया? हो, उसमें क्या? **अत्यन्त विशुद्धता होती है, तब कर्मों की निर्जरा होकर...** विशुद्धता का अर्थ शुद्धता, हों! अन्दर निर्मलानन्द पवित्र प्रभु, राग से रहित शुद्धता की वृद्धि हो, उसमें कर्म का नाश होता है और थोड़ा राग रह जाए, स्वभाव में एकाग्र होते-होते एकाग्रता की कमी में थोड़ा राग हो तो उससे स्वर्ग मिल जाए। कहो, समझ में आया? **इसलिए सुगति-दुर्गति होना कहा, यह युक्त है, इस प्रकार जानना चाहिए।** अब उसका स्पष्टीकरण करते हैं। अब, परद्रव्य किसको कहते हैं और स्वद्रव्य किसको कहते हैं, उसका स्पष्टीकरण। यह तो सामान्य बात की।

गाथा-१७

आगे शिष्य पूछता है कि परद्रव्य कैसा है? उसका उत्तर आचार्य कहते हैं –

आदसहावादण्णं सच्चित्ताचित्तमिस्सियं हवदि।
तं परदव्वं भणियं अवितत्थं सव्वदरिसीहिं।।१७।।

आत्मस्वभावादन्यत् सचित्ताचित्तमिश्रितं भवति।
तत् परद्रव्यं भणितं अवितत्थं सर्वदर्शिभिः।।१७।।

जो भिन्न आत्म-स्वभाव से सच्चित्ताचित्त रु मिश्र हैं।
वे सभी हैं पर-द्रव्य यह सत्यार्थ जिनवर ने कहे।।१७।।

अर्थ **– आत्मस्वभाव से अन्य सचित्त जो स्त्री, पुत्रादिक, जीवसहित वस्तु तथा अचित्त, धन, धान्य, हिरण्य सुवर्णादिक अचेतन वस्तु और मिश्र आभूषणादि सहित मनुष्य तथा कुटुम्बसहित गृहादिक ये सब परद्रव्य हैं, इस प्रकार जिसने जीवादिक पदार्थों का स्वरूप नहीं जाना उसको समझाने के लिए सर्वदर्शी सर्वज्ञ भगवान ने कहा है अथवा 'अवितत्थं' अर्थात् सत्यार्थ कहा है।**

भावार्थ **– अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा सिवाय अन्य चेतन अचेतन मिश्र वस्तु हैं, वे सब ही परद्रव्य हैं, इस प्रकार अज्ञानी को समझाने के लिए सर्वज्ञदेव ने कहा है।।१७।।**

गाथा-१७ पर प्रवचन

आगे शिष्य पूछता है कि परद्रव्य कैसा है? आप किसको परद्रव्य कहते हो? परवस्तु आप किसको कहते हो? **उसका उत्तर आचार्य कहते हैं** –

आदसहावादण्णं सच्चित्ताचित्तमिस्सियं हवदि।
तं परदव्वं भणियं अवितत्थं सव्वदरिसीहिं।।१७।।

भगवान ने कहा, त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ ने कहा।

अर्थ - आत्मस्वभाव से अन्य सचित्त तो स्त्री, पुत्रादिक... स्पष्टीकरण किया है न? भाई! २० गाथा, समयसार। मूल पाठ २० का। सचित्त-अचित्त। १९ में थोड़ा है। २०वीं गाथा में सचित्त-अचित्त-मिश्र है न? समझ में आया? १९ में तो दृष्टान्त दिया है। २० है न? '**सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा**' वही शब्द यहाँ लिया। कुन्दकुन्दाचार्य का २०वीं गाथा का शब्द है, कुन्दकुन्दाचार्य का वही शब्द यह है। उसकी टीका में और परमात्मप्रकाश में यह सचित्त-अचित्त युक्त लिया है। सचित्त अर्थात् गृहस्थ की अपेक्षा से स्त्री-पुत्र आदि। अचित्त (अर्थात्) ये दागीना... दागीना को क्या कहते हैं? जेवर... जेवर। जेवर, कपड़ा आदि ये अचित्त, वह परद्रव्य। मुनि की अपेक्षा से, चारित्र की अपेक्षा से जब लेते हैं तो उसको सचित्त शिष्य आदि, अचेत उपकरण। मुझे तो उसमें से निकालना था। उसमें यह है। साधुपने में वस्त्र आदि नहीं होते, यह इसमें से निकालना है। समयसार में नहीं है, वस्त्र आदि साधु को नहीं होते, ऐसा नहीं है। यहाँ अन्दर है।

सचित्त, साधु को सचित्त शिष्य आदि। अचित्त उपकरण। कमण्डल, पिच्छी, पुस्तक। वस्त्रादि उसको होता ही नहीं। समझ में आया? यह तो पहले जीव अधिकार में ऐसा लिया है। साधु है, उसको अचित्त परद्रव्य हो तो मोरपिच्छी, कमण्डल और पुस्तक (होता है)। सचित्त में शिष्य। परन्तु है वह परद्रव्य। समझ में आया? और मिश्र हो तो साधु उपकरण सहित उसका शिष्य और उपकरण सहित मिश्र परद्रव्य। निश्चय से परद्रव्य लो तो पुण्य-पाप, दया, दान का विकल्प सचित्त राग परद्रव्य है। समझ में आया? संस्कृत में है। जयसेनाचार्य की टीका में। परमात्मप्रकाश की गाथा वहाँ रखी है। दोनों डाला है। वे लोग कहते हैं, समयसार में नहीं है। उसे जो जँचता है, वह लेता है। क्या काम है तुझे?...

सचित्त, देखो! सचित्त अचित्त मिश्रं। तीन बोल है न यहाँ? तो गृहस्थ की अपेक्षा से सचित्त स्त्री आदि, अचित्त सुवर्ण आदि। ये आपकी धूल। सोना आदि। मिश्र आभूषण आदि, स्त्री आदि। आभरणसहित स्त्री मिश्र। तपोधन अपेक्षा सचित्त छात्र-शिष्य आदि। अचित्त पिच्छी, कमण्डल, पुस्तक आदि। यहाँ तो मुझे... साधु इसमें से निकलता है या नहीं? वस्त्रपात्र बिना के साधु। इसमें से निकलता है। कितने ही कहते हैं, समयसार में

ऐसी चीज़ नहीं है। समझे ? दूसरे ने दूसरा ही कहा है, कुन्दकुन्दाचार्य ने नहीं कहा है। अरे... भगवान! सुन तो सही।

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य ने प्रवचनसार में कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह नहीं, यहाँ तो समयसार... प्रवचनसार नहीं, हमें तो समयसार (में चाहिए) । समयसार में यह कहा है। समझ में आया ? साधु को संयोगरूप हो तो सचित्त-शिष्य आदि, अचित्त पुस्तक, कमण्डल और पिच्छी। बस, इसके अतिरिक्त उसको (और) कुछ नहीं होता है। है तो परद्रव्य। परन्तु उसमें भी यदि अपनत्व माने तो दुर्गति है। समझ में आया ? और सचित्त रागादि। रागादि सचित्त है। दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम, वह सचित्त परद्रव्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : पिच्छी, कमण्डल, पुस्तक आदि, आदि में क्या कहना चाहते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आदि में हाथ में डोरी आदि हो, ... हो। बाँधी हो। कपड़ा आदि नहीं होता। मकान हो। कोई मकान में ठहरते हैं न ? जंगल में रहते हैं। पेड़ के नीचे रहते हैं। बाह्य चीज़ हो वह, दूसरी चीज़ नहीं। यहाँ तो दूसरा कहना है।

यहाँ तो राग और पुण्य-पाप के विकल्प को यहाँ सचित्त परद्रव्य कहने में आया है। उसमें जिसकी प्रीति और रुचि है, वह दुर्गति में जाता है। ऐ... पण्डितजी! कठिन बात। देखो! सचित्त रागादि। रागादि अर्थात् राग, द्वेष इत्यादि। अचित्त पुद्गलादि परद्रव्य। पुद्गल आदि जड़ पाँच पदार्थ। मिश्र-गुणस्थान जीव, मार्गणा आदि परिणत संसारीजीव स्वरूप। मिश्र। गुणस्थान और जीवस्थानरूप परिणमित हुआ। पर्याय दृष्टिवाला है न ? पर्याय में परिणमता है। वह मिश्र है। वह सब परद्रव्य है। आहाहा! समझ में आया ?

आत्मस्वभाव से अन्य जो सचित्त। स्त्री, शिष्य और राग। ये सब परद्रव्य। आहाहा! **अचित्त—धन, धान्य, हिरण्य, सुवर्णादिक...** धन, अनाज, चाँदी, सुवर्ण और पुद्गलादि सब अचेतन है। ये सब परद्रव्य है, अपना नहीं है। अपना कहते हैं न ? जुगराजजी! हमारे पास है, ऐसा कहते हैं। मुम्बई में... क्या कहते हैं ? मार्केट। मुम्बई में जुगराजजी की मार्केट है। पन्द्रह दुकान है। लोग बातें करते हैं। कपड़ा मार्केट धूल की है। उसकी कहाँ है ? दरबार तो आपके यहाँ आये होंगे। देखने को कभी आये हैं या नहीं मुम्बई में ? नहीं आये ?

उसकी मार्केट वहाँ है न। समझ में आया? उसकी मार्केट। मार्केट मार्केट की है। जुगराजजी की कहाँ से आयी?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : माने तो क्या पागल माने तो पागल की हो जाए? उसकी हो जाए? समझ में आया? पागल का एक दृष्टान्त दिया है न। मोक्षमार्गप्रकाशक में दिया है। एक पागल था। नदी होती है न? नदी के किनारे बैठता था। पागल नदी के किनारे बैठा था। उसमें एक राजा आया। दस बजे राजा निकला। हाथी, घोड़ा (सब आये)। दस बजे पानी था नदी में। पड़ाव डाला। तो पागल कहे, ये सब मेरे राजा आये, ये मेरी रानी आयी, ये मेरे हाथी आये। वह सब भोजन करके, पानी पीकर शाम चार बजे चले गये। (पागल ने) पूछा, कहाँ जा रहे हो? अरे! पागल लगता है। ये सब मेरे हैं। मेरी इजाजत बिना जाते हैं? परन्तु मूर्ख तेरे कहाँ थे? वे तो उसके कारण आये थे। वह तो अपने रास्ते चलते आये थे। वैसे स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, शरीर रास्ते पर चलते-चलते तेरे समीप आ गये हैं। तेरा कहाँ है? समझ में आया? ऐ... भीखाभाई! बराबर होगा? हीराभाई भी वैसे होंगे? वह तो परपदार्थ का बदलना होते... होते... होते... ऐसी स्थिति में वह आया है। तेरा कहाँ से आ गया? आहाहा! पोपटभाई!

यहाँ कहते हैं, सचित्त स्त्री आदि, रागादि सब वस्तु। और अचित्त—धन, धान्य और सब पुद्गल। मिश्र—आभूषणादिसहित मनुष्य अथवा मिश्र में गुणस्थान आदि लिया, देखो सूक्ष्मरूप से। आहाहा! राग सहित जीव का स्थान और गुणस्थान के चौदह भेद हैं न? मिथ्यात्व आदि। वह सब मिश्र है, वह वास्तविक स्वद्रव्य नहीं, परद्रव्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : दानादि?

पूज्य गुरुदेवश्री : दानादि का भाव राग है, सचित्त परिग्रह है, परद्रव्य। सचित्त। राग है न।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दूसरी बात है। राग अचेतन है, ज्ञायक की अपेक्षा से। परन्तु पर की अपेक्षा से आत्मा में होता है, इसलिए सचित्त कहने में आता है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अचित्त में पुद्गलादि सब। आभरण, अलंकार, जेवर, पुद्गल आदि सब अचित्त।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो मिश्र में गया। शरीर और आत्मा। आत्मा, आत्मा में गया। शरीरसहित अचेतन में गया।

मुमुक्षु : अचेतन में धन...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सब लेना है। धन, धान्य। धन है भले। धन है, धान्य है। दोनों अचित्त है। धन भी अचित्त मिट्टी। गाय, भैंस नहीं। वह दूसरे में गया। धन तो अकेला पैसा-लक्ष्मी। वह दूसरी चीज़। गाय, भैंस में आत्मा है पर, वह आत्मा और शरीर है पर। मिश्र हुआ वह पर। शरीरसहित आत्मा है न? वह पर मिश्र में गया। यह अकेला धन अचेतन लेना और वह मिश्र में लेना। शरीरसहित आत्मा वह तो मिश्र लेना। जीव गुणस्थान सहित आत्मा मिश्र लेना। वह अकेला अचेतन में जाता नहीं। अचेतन जड़ पर है। वह तो मानता है कि हमारा है। हम उसका स्वामी है, हम उसकी रक्षा करते हैं। कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। परद्रव्य में स्थिति रुचि अपना मानकर रक्षा करते हैं नहीं। कहो, सेठ! ब्याज पैदा करता है। पहले आठ आना था, अब बढ़ गया। डेढ़ टका। ऐसा सुना है। हमें क्या है? आठ आना, छह आना पहले ब्याज था। अब डेढ़ टका ब्याज। अच्छे-अच्छे गृहस्थ लेते हैं। कहते हैं, वह सब जड़ है, अचेतन है, परद्रव्य है। लो! सर्व परद्रव्य, देखो! सर्व परद्रव्य। अचित्त परद्रव्य, मिश्र परद्रव्य, सचित्त परद्रव्य।

मुमुक्षु : राग भी परद्रव्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग भी परद्रव्य कहा न। इसलिए तो सिद्धान्त में आया। आहाहा! सिद्धान्त तो ऐसा आता है न कलश में? मेरे तो सब परद्रव्य है। आहाहा!

भगवान कहते हैं, देखो! '**तं परदव्वं भणियं**।' भगवान ने इसको परद्रव्य कहा है और उसे अपना मानना, उसकी सम्हाल हम कर सकते हैं, पर की रक्षा हम कर सकते हैं, वह सब परद्रव्य का स्वामी मूढ़ दुर्गति में जानेवाला है, ऐसा कहते हैं। ऐ... पोपटभाई!

क्या करना इसमें ? पैसे को फेंक देना ? फेंके कौन ? वह तो परचीज़ है। परचीज़ जानी हो, वहाँ जाए और रहनी हो, वहाँ रहे। अपने से ... किया ऐसा है नहीं। ऐसा जाने।

जीवादिक पदार्थों का स्वरूप नहीं जाना... जो परद्रव्य को अपना जाने, उसने जीवादि परद्रव्य का स्वरूप नहीं जाना। **उसको समझाने के लिये सर्वदर्शी सर्वज्ञ भगवान ने कहा है...** देखो ! '**भणियं**' है न ? कुन्दकुन्दाचार्य भी... त्रिलोकनाथ, जिसको एक समय के सूक्ष्म काल में तीन लोक का तीन काल का ज्ञान था, ऐसे भगवान की वाणी इच्छा बिना निकली, उसमें ऐसा कहा है। परद्रव्य में प्रीति, रीति, रुचि, लीनता करनेवाला दुर्गति जाएगा, ऐसा भगवान त्रिलोकनाथ की वाणी में आया है। आहाहा ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : चाहते तो बहुत हैं, परन्तु अपनवत्व छूटता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, झूठ बात है। इतना कारण चाहे और फल नहीं आवे, ऐसा होता ही नहीं। उसके अन्दर गहराई में गन्ध बैठी है, वासना बैठी है। राग मेरा है, स्त्री मेरी है, शरीर मेरा, कुटुम्ब मेरा—ऐसी गन्ध बैठी है। समझ में आया ? शीशा होता है न ? शीशा (बोतल) घासतेल का। घासतेल समझते हो ? घासतेल। अन्दर में ऐसा... घासतेल तो निकल जाए, (लेकिन) पानी से साफ करे तो अन्दर से गन्ध न जाए। अन्दर गहराई में ... होता है न ? उसको तो तेजाब डाले, लोहे का हथियार करके, कपड़ा करके साफ करे तो साफ होता है, नहीं तो गन्ध रह जाती है। समझ में आया ? आहाहा !

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... अन्दर बराबर साफ करना। अन्दर ... में चिपक जाता है। घासतेल कहते हैं न ? केरोसीन। अन्दर बहुत रहता है, साफ नहीं होता। तेजाब डालकर (सार्फ करना पड़ता है)। ऐसे भगवान आत्मा को अपनी चीज़ की अन्दर में अनादि से खबर नहीं। गहराई में उसको राग की गन्ध रह जाती है। राग विकल्प मेरा है और विकल्प से मुझे लाभ है, ऐसी मिथ्यात्व की गन्ध रह जाती है। आहा ! समझ में आया ? उसने **जीवादिक पदार्थों का स्वरूप नहीं जाना, उसको समझाने के लिये सर्वदर्शी सर्वज्ञ भगवान ने कहा है अथवा '*अवितत्थं*' अर्थात् सत्यार्थ कहा है। '*अवितत्थं*'** शब्द पड़ा है न ? '**अवितत्थं**।' भगवान ने सत्य कहा है। १७वीं गाथा। '**अवितत्थं**' सत्य कहा है।

त्रिलोकनाथ परमात्मा ने अपना आत्मा शुद्ध आनन्द सिवा, जितना विकल्प से लेकर सब वस्तु परद्रव्य कही गयी है। परद्रव्य कही है। फिर सचित्त, अचित्त हो या मिश्र हो, जो भी हो परद्रव्य है और अपना मानना, अपनी रक्षा करना... समझ में आया? वह अपना मानना दुर्गति मिथ्यात्व का कारण है। समझ में आया? ऐसा त्रिलोकनाथ भगवान ने यथातथ्य कहा है, सत्य कहा है, ऐसा कहते हैं। आचार्य कहते हैं, देखो!

भावार्थ - अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा सिवाय... देखो! **अन्य चेतन, अचेतन, मिश्र...** चेतन रह गया, एक शब्द रह गया। **अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा सिवाय...** सिवाय तो इसमें आता है, हिन्दी में आता है। चेतन, अचेतन, मिश्र तीनों **वे सब ही परद्रव्य हैं,...** लो! ठीक। स्पष्टीकरण कर दिया। **इस प्रकार अज्ञानी को समझाने के लिये सर्वज्ञदेव ने कहा है।** लो! ओहो!

यहाँ नियमसार में ५०वीं गाथा में तो पर्याय को परद्रव्य कह दिया है। शुद्धपर्याय को भी परद्रव्य कह दिया है क्योंकि अपना त्रिकाली द्रव्य वह भूतार्थ अपना द्रव्य है। आहाहा! वह अब कहेंगे, लो! अब स्वद्रव्य किसको कहते हैं, वह परद्रव्य की व्याख्या हुई। अब स्वद्रव्य किसको कहते हैं? भगवान आत्मा स्वद्रव्य किसको कहते हैं?

गाथा-१८

आगे कहते हैं कि आत्मस्वभाव स्वद्रव्य कहा वह इस प्रकार है -

दुट्ठट्ठकम्मरहियं अणोवमं णाणविग्गहं णिच्चं।
सुद्धं जिणेहिं कहियं अप्पाणं हवदि सद्दव्वं।।१८।।

दुष्टादुष्टकर्मरहितं अनुपमं ज्ञानविग्रहं नित्यम्।
शुद्धं जिनैः भणितं आत्मा भवति स्वद्रव्यम्।।१८।।

दुष्टाष्ट कर्म-रहित अनूपम ज्ञान-विग्रह नित्य है।
स्व-द्रव्य है यह शुद्ध आतम कहा जिनवर देव ने।।१८।।

अर्थ – संसार के दु:ख देनेवाले ज्ञानावरणादिक दुष्ट अष्टकर्मों से रहित और जिसको किसी की उपमा नहीं ऐसा अनुपम, जिसका ज्ञान ही शरीर है और जिसका नाश नहीं है ऐसा अविनाशी नित्य है और शुद्ध अर्थात् विकाररहित केवलज्ञानमयी आत्मा जिन भगवान् सर्वज्ञ ने कहा है वह ही स्वद्रव्य है।

भावार्थ – ज्ञानानन्दमय, अमूर्तिक, ज्ञानमूर्ति अपनी आत्मा है, वही एक स्वद्रव्य है, अन्य सब चेतन, अचेतन, मिश्र परद्रव्य हैं।।१८।।

गाथा-१८ पर प्रवचन

अब कहते हैं कि आत्मस्वभाव स्वद्रव्य कहा, वह इस प्रकार है -

दुट्ठट्ठकम्मरहियं अणोवमं णाणविग्गहं णिच्चं।
सुद्धं जिणेहिं कहियं अप्पाणं हवदि सद्दव्वं।।१८।।

अर्थ - संसार के दुःख देनेवाले ज्ञानावरणादिक दुष्ट आठ कर्मों से (भगवान आत्मा तो) रहित... सर्व निरावरण। भगवान वस्तु जो चैतन्यद्रव्य है, वह तो निरावरण (है)। आठ कर्म उसमें है नहीं। आठ कर्म कर्म में रहे, अजीव में रहे। अपने जीवस्वरूप में वह है नहीं। देखो! आत्मा किसको कहते हैं? अथवा स्वलक्ष्मीवाला अपना द्रव्य-पदार्थ किसको कहते हैं? दुष्ट संसार दुःख देनेवाला। आत्मा आनन्द का देनेवाला तो कर्म दुःख का देनेवाला, ऐसे लिया। ज्ञानावरणादि अष्ट कर्म से रहित **और जिसको किसी की उपमा नहीं ऐसा अनुपम,...** आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्द निर्मलानन्द प्रभु, उसको किसकी उपमा दे सके? उसकी उपमा उसको। ऐसा जीव शान्त आनन्दरस का भण्डार, अनन्त ज्ञान और आनन्द का धाम, उसको किसकी उपमा? उपमा बिना की चीज़, आठ कर्म बिना की चीज़ को स्वद्रव्य कहते हैं।

और ज्ञान ही शरीर है... निषेध नहीं किया। पहले ऐसा कहा कि आठ कर्म रहित भगवान अन्दर है, उसकी उपमा क्या? उपमा दे सके नहीं। चीज़ क्या? ज्ञान ही शरीर है। चैतन्य, वही उसका शरीर है। यह जड़ शरीर नहीं। यह तो मिट्टी-धूल है।

मुमुक्षु : चैतन्यशरीर कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी, अब।

मुमुक्षु : सिद्धों का होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्ध यहाँ (अन्दर आत्मा) है। आत्मा का चैतन्यशरीर है। चैतन्यबिम्ब प्रभु ज्ञानस्वभाव उसका वह शरीर है। उसका स्वरूप कहो या शरीर कहो। यह तो शरीर तो मिट्टी का है। समझ में आया? देखो! उसमें विकल्प भी नहीं लिया। पुण्य-पाप की वृत्ति भी नहीं ली, उसे तो परद्रव्य में डाल दिया है। आहाहा!

स्वद्रव्य शरीरविग्रह-ज्ञान ही है, ऐसा शब्द पड़ा है न? '**णाणविगग्हं णिच्चं**'। क्या कहते हैं? त्रिकाल नित्य ज्ञानशरीर जिसका है, वह आत्मा। यहाँ तो नित्य त्रिकाल आत्मा लिया है, भाई! एक समय की पर्याय को छोड़कर। आहाहा! है... है... है... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान अनादि-अनन्त अविनाशी अनुत्पत्ति और अविनाश, ऐसा भगवान अकेला चैतन्यशरीर बिम्ब है। चैतन्य उसका शरीर है। राग और कर्म और शरीर, वह तो अचेतन पर में गया। अपना है नहीं। ऐसे आत्मा को अन्दर जानना और मानना, लीन होना, वह कल्याण का मार्ग है। समझ में आया?

'**णाणविगग्हं**' ज्ञान ही है विग्रह जिसका।... **जिसका नाश नहीं है, ऐसा अविनाशी नित्य है...** आहा! अपने आ गया। सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध (परम) पारिणामिक परमभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य। उसकी व्याख्या यहाँ है। समझ में आया? अन्तिम पंक्ति आयी थी न परसों? सकल निरावरण। भगवान त्रिकाल निरावरण ध्रुव वस्तु पड़ी है, अखण्ड है, एक है। प्रत्यक्ष प्रतिभासमय ध्रुव है। ध्रुव चीज़ ही प्रत्यक्ष प्रतिभासमय है। पर्याय से नहीं। प्रत्यक्ष प्रतिभासमय चीज़ त्रिकाली है। और अविनश्वर है। उसका कभी नाश नहीं होता। ऐसा शुद्ध परम शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण, शुद्ध सहज भाव लक्षणवाला निज परमात्मद्रव्य, अपना परमात्मस्वरूप अपना द्रव्य, उसको यहाँ आत्मा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ऐसे आत्मा को अनुभव में नहीं लिया है?

पूज्य गुरुदेवश्री : कभी दृष्टि में नहीं लिया। अनन्त काल हुआ, साधु हुआ, नग्न हुआ, अट्ठाईस मूलगुण पाले, हजारों रानियों को छोड़ा परन्तु यह अन्दर शल्य रहा। राग की

करणी करता हूँ, वह मेरा साधन है। समझ में आया? बाहर का शल्य अन्दर रह गया। अन्दर की दृष्टि पड़ी नहीं।

जिसका नाश नहीं है ऐसा अविनाशी नित्य है... ध्रुव नित्य प्रभु। स्वद्रव्य किसको कहते हैं? भाषा कैसी है! नित्य को स्वद्रव्य कहते हैं, पर्याय को नहीं। ऐसा कहा। आहाहा! समझ में आया? चाहे तो समयसार देखो, चाहे तो अष्टपाहुड़ देखो। चारों ओर एक ही चीज़ है, उसमें दूसरा कोई फेरफार होता नहीं। **अविनाशी नित्य है और शुद्ध अर्थात् विकाररहित...** शुद्ध शब्द है न? '**णिच्चं सुद्धं**'। शुद्ध वस्तु, नित्य शुद्ध, ध्रुव शुद्ध, अविनाशी शुद्ध अकेला ज्ञायकभाव, उसको यहाँ स्वद्रव्य कहने में आता है। समझ में आया? उस स्वद्रव्य की दृष्टि अन्दर में करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन धर्म का मार्ग है। बाकी सब थोथे थोथा है। समझ में आया?

शुद्ध अर्थात् विकाररहित केवलज्ञानमयी आत्मा... केवल-अकेला ज्ञानमय आत्मा। केवल अर्थात् केवलज्ञान पर्याय नहीं। अकेला ज्ञानमय स्वरूप, चिद्रस। ज्ञान जिसका सत्त्व ... ऐसा आत्मा, वह स्वद्रव्य। देखो! अपनी पूँजी वह एक है। ऐसे स्वद्रव्य में लीन होना, रुचि करना, प्रीति करना, प्रेम करना, लीन होना, वह आत्मा की शोभा और धर्म है। उससे आत्मा शोभायमान होता है। बाकी बाहर की धूल से, ऐसा पैसा और बड़ा बँगला बनाया... समझ में आया? पाँच-पाँच लाख का और दस-दस लाख का हजीरा... हजीरा... हजीरा। लोटिया वोरा का (दफ करते हैं, उसको हजीरा कहते हैं)। ये सब भान बिना के वोरा ही है न। हजीरा में पड़े हैं। आहा! ऐई! सेठ! सेठ को छह लाख का हजीरा है। छह लाख का सागर में संगमरमर का मकान है। छह लाख! धूल में है नहीं। वह तो संगमरमर जड़ का है, सेठ का कहाँ से आया?

मुमुक्षु : आपको धूल क्यों नजर में आ रही है?

पूज्य गुरुदेवश्री : तो क्या है? अमृत है? क्या वह चेतन है? क्या वह आत्मा है? क्या उसमें आत्मा है? क्या वास्तविक सम्बन्ध है? आहाहा!

मुमुक्षु : साथ में आता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : साथ में आता नहीं, अभी नहीं है। साथ में तो बाद में। साथ में

आता नहीं, वह तो बाद में। यह तो अभी उसमें नहीं है और उसका नहीं है। वह बात चलती है।

मुमुक्षु : अत्यन्त अभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल अत्यन्त अभाव। राग और स्वभाव के बीच अत्यन्त अभाव है। आहाहा! भगवान आनन्दधाम प्रभु और विकल्प उठते हैं दया, दान का, उस विकल्प और स्वभाव के बीच अत्यन्त अभाव है। समझ में आया?

केवलज्ञानमयी आत्मा जिन भगवान सर्वज्ञ ने कहा है... देखो! अकेली ज्ञान की मूर्ति, ज्ञान की चैतन्यमूर्ति। जैसे स्फटिक की मूर्ति हो, वैसे चैतन्यरूपी स्फटिक की मूर्ति भगवान आत्मा है। उसका नाम भगवान सर्वज्ञदेव ने स्वद्रव्य कहा है। और स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, उसका हजीरा-मकान तो बहुत दूर रह गये। वह तो पर है। उसके कारण आये और उसके कारण जाए। उसके कारण आये हैं, आपके कारण से नहीं। समझ में आया? उसकी मुद्दत पूरी होगी तो चला जाएगा। और वह पड़े रहेंगे और स्वयं चला जाएगा। है क्या धूल में? आहाहा!

कहते हैं, **जिन भगवान सर्वज्ञ ने कहा है, वह ही स्वद्रव्य है।** है? उसमें ऐसा लम्बा अर्थ नहीं है, संक्षेप है। पाठ में है न। पाठ में है न। '**सुद्धं जिणेहिं कहियं अप्पाणां हवदि सद्दव्वं**' वहाँ भी ऐसा कहा है, २०वीं गाथा में ऐसा कहा है। सब कहकर स्वद्रव्य यह है। सब सचित्त, अचित्त, मिश्र। २०वीं गाथा में टीका में स्वद्रव्य लिया है। ये सचित्त, अचित्त, मिश्र शब्द आता है न? वह सब पर है। स्वद्रव्य अकेला ज्ञानानन्दस्वभाव भगवान।

मुमुक्षु : पर्याय भी नहीं ली।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं पर्याय नहीं। क्योंकि श्रद्धा-ज्ञान करना है पर्याय में। वस्तु जो है, वह अविनाशी है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान करना है। पर्याय की श्रद्धा करनी नहीं है, पर्याय तो श्रद्धा करनेवाली है। किसकी? द्रव्य की। समझ में आया? आहाहा!

भावार्थ - ज्ञानानन्दमय, अमूर्तिक, ज्ञानमूर्ति अपनी आत्मा है, वही एक स्वद्रव्य है,... बहुत संक्षेप में (लिया है)। ज्ञानानन्दमय अमूर्तिक। आनन्द और ज्ञान दो लिये। मूल

पाठ में ज्ञान कहा था न। ज्ञानानन्दमय-वह तो ज्ञान और आनन्द, ऐसा चैतन्य। अमूर्तिक ज्ञानमूर्ति। ज्ञानमूर्ति अर्थात् ज्ञानस्वरूप अपना आत्मा है। लो, ओहोहो! राग-द्वेष, दोष आत्मा नहीं, वह तो परद्रव्य है। समझ में आया? आहाहा! **अन्य सब चेतन, अचेतन, मिश्र परद्रव्य है।** चेतन, अचेतन और मिश्र तीनों परद्रव्य हैं। ऐसे अपने स्वद्रव्य को पहिचानकर अपने में रुचि से और स्थिरता से लीन होना, वह मोक्षमार्ग। और परद्रव्य में प्रीति और रुचि छोड़ देना। वह भी यहाँ प्रीति, रुचि हो तो पर की रुचि छूट जाती है। पर से विरक्त होना और स्व में लीन होना, वही आत्मा का कल्याण का मोक्ष का मार्ग है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१९

आगे कहते हैं कि जो ऐसे निजद्रव्य का ध्यान करते हैं, वे निर्वाण को पाते हैं –

जे झायंति सदव्वं परदव्वपरम्मुहा दु सुचरित्ता।
ते जिणवराण मग्गे अणुलग्गा लहहिं णिव्वाणं।।१९।।

ये ध्यायंति स्वद्रव्यं परद्रव्य पराङ्मुखास्तु सुचरित्राः।
ते जिनवराणां मार्गे अनुलग्नाः लभते निर्वाणम्।।१९।।

पर-द्रव्य-विमुख सुचरित्री स्व-द्रव्य जो ध्याते सदा।
जिन-मार्ग से संलग्न हो वे मोक्ष पाते सर्वदा।।१९।।

अर्थ **– जो मुनि परद्रव्य से पराङ्मुख होकर स्वद्रव्य जो निज आत्मद्रव्य का ध्यान करते हैं, वे प्रगट सुचरित्रा अर्थात् निर्दोष चारित्रयुक्त होते हुए जिनवर तीर्थंकरों के मार्ग का अनुलग्न (अनुसंधान, अनुसरण) करते हुए निर्वाण को प्राप्त करते हैं।**

भावार्थ **– परद्रव्य का त्याग कर जो अपने स्वरूप का ध्यान करते हैं वे निश्चय चारित्ररूप होकर जिनमार्ग में लगते हैं, वे मोक्ष को प्राप्त करते हैं।।१९।।**

प्रवचन-६९, गाथा-१९ से २१, रविवार, श्रावण कृष्ण ८, दिनांक २३-०८-१९७०

अष्टपाहुड़ में मोक्षपाहुड़ चलता है। १९वीं गाथा। **आगे कहते हैं कि जो ऐसे निजद्रव्य का ध्यान करते हैं, वे निर्वाण पाते हैं** -

जे झायंति सदव्वं परदव्वपरम्मुहा दु सुचरित्ता।
ते जिणवराण मग्गे अणुलग्गा लहहिं णिव्वाणं।।१९।।

जो कोई धर्मात्मा **परद्रव्य से पराङ्मुख होकर...** वहाँ पराङ्मुख चाहिए, दु:ख नहीं। क्या कहते हैं? बहुत संक्षेप में अधिकार, मोक्ष के अधिकार में आया है। जो कोई मुनि-धर्मात्मा **परद्रव्य से पराङ्मुख...** विकल्प रागमात्र से, सब परद्रव्य है, उससे पराङ्मुख। समझ में आया? सिद्ध भी परद्रव्य है। वह भी आया है, परमात्मप्रकाश में। सिद्ध भी परद्रव्य है। ये सचित्त, अचित्त, मिश्र में आत्मा सचित्त। सिद्ध सचित्त परद्रव्य है। समझ में आया? और रागादि परद्रव्य है। परद्रव्य से पराङ्मुख होकर, परद्रव्य को पीठ देकर, परद्रव्य की उपेक्षा करके। ... वहाँ से बात ली है। पाठ में तो '**जे झायंति सदव्वं परदव्वपरम्ममुहा**'। पहले अस्ति लेकर नास्ति (कही)। परन्तु इसमें समझाया है।

अनादि से विकल्प अथवा भेद अथवा निमित्त, यह सब परद्रव्य है। परद्रव्य से; जिसको कल्याण करना हो, उसे परद्रव्य से विमुख होना, विमुख होना और स्वद्रव्य के सन्मुख होना। बहुत संक्षिप्त बात। संक्षेप में स्वद्रव्य **जो निज आत्मद्रव्य का ध्यान करते हैं...** पहले १७-१८ (गाथा में) व्याख्या हो गयी है। १७ में वह आया कि परद्रव्य किसको कहते हैं। सचित्त, अचित्त, मिश्र विकल्प से लेकर सब परद्रव्य। और स्वद्रव्य किसको कहते हैं? कि केवलज्ञानमय पिण्ड स्व अनुपम आनन्दकन्द आत्मा, वह स्वद्रव्य। स्ववस्तु। स्ववस्तु के सन्मुख होकर, विकल्प आदि, सिद्ध आदि परद्रव्य से विमुख होकर-पराङ्मुख होकर अपने आत्मा की दृष्टि सम्यक् करते हैं, वह पहली स्वद्रव्य सन्मुख की व्याख्या।

बाद में, स्वरूप की रमणता में जिसकी लीनता चारित्र हुआ हो, **जिनवर तीर्थंकरों के मार्ग का अनुलग्न (अनुसन्धान, अनुसरण) करते हुए...** वह जिनवर अर्थात् त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के मार्ग में अनुलग्न-लगा है। वीतराग के मार्ग में लगा है। क्या कहा, समझ

में आया ? अपना जो निजद्रव्य है, शुद्ध अभेद अखण्ड सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध (परम)पारिणामिक परमभावलक्षण, ऐसा निज परमात्मद्रव्य। वह व्याख्या तो हो गयी। समझ में आया ? निजद्रव्य अपनी चीज़ किसको कहते हैं ? जो वस्तु भगवान आत्मा सकल निरावरण, आवरण जिसमें बिल्कुल है नहीं। और अखण्ड भेद नहीं, ऐसी अखण्ड वस्तु। खण्ड नहीं है, ऐसा कहा। अखण्ड कहने के बाद एक कहा अस्ति से। खण्ड नहीं, अखण्ड। वह कहा था।

चक्रवर्ती छह खण्ड को साधते हैं, ऐसा नहीं। चक्रवर्ती का आत्मा समकिती अखण्ड को साधता है। समझ में आया ? छह खण्ड नहीं साधते थे, समकिती थे। भरत चक्रवर्ती सम्यग्दृष्टि जीव था। छह खण्ड उसने साधा ही नहीं। आहाहा! विकल्प और छह खण्ड से पराङ्मुख होकर, अपना निज जो अखण्ड द्रव्य है, उसको साधते थे। समझ में आया ? ९६ हजार स्त्रियाँ (थी)। फिर कहते हैं, क्या साधते थे ? अपना अखण्ड भगवान एकरूप... एकरूप सामान्य ध्रुव, ऐसा प्रत्यक्ष प्रतिभासमय त्रिकाल, त्रिकाल प्रतिभासमय जो स्वयं। पर्याय में प्रतिभास होता है, वह दूसरी चीज़। वह चीज़ ही प्रत्यक्ष प्रतिभासमय है। प्रतिभासमय है। ऐसी वस्तु अविनश्वर। नित्य यहाँ विशेषण है। १८ में भी यह विशेषण है—नित्य। नित्यं और शुद्धं। आठ कर्म से रहित अनुपम भगवान आत्मा स्वद्रव्य, उसकी उपमा क्या है ? पूर्णानन्द सहजानन्द प्रभु अपना स्वभाव, शक्ति का पिण्ड जो द्रव्य, वह नित्यं ज्ञानविग्रहं है। ज्ञान जिसका शरीर है। राग-फाग उसमें है नहीं, तीन काल-तीन लोक में। अकेला ज्ञानविग्रहं, ज्ञानविग्रहं। ज्ञानशरीर चैतन्यशरीर चैतन्यबिम्ब शुद्ध बिल्कुल पवित्र और नित्य। ऐसा '**अप्पाणां हवदि सद्दव्वं**' ऐसे द्रव्य को आत्मा का स्वद्रव्य जिनेश्वर ने कहा है। है न ? पाठ है। जिनेश्वर ने कहा है। १८वीं गाथा में आया है ? '**सुद्धं जिणेहिं कहियं अप्पाणां हवदि सद्दव्वं**'। १८वीं गाथा। १८ में है। समझ में आया ?

एक समय की पर्याय भी अपना स्वद्रव्य नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। चन्दुभाई! पर्याय भी स्वद्रव्य नहीं। नित्य ध्रुव शुद्ध है, वह स्वद्रव्य। आहाहा! ऐसे स्वद्रव्य को जिनेश्वर का तीर्थंकर का मार्ग कहो। वही तीर्थंकर का मार्ग है। परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा का वह मार्ग है कि स्वद्रव्य में अन्तर में एकाकार होकर अपने स्वरूप का आराधन करना, वह

जिनवर तीर्थंकर का मार्ग है। समझ में आया ? बीच में विकल्प आदि शुभराग व्यवहार हो, वह जिनमार्ग नहीं। (वह तो) रागमार्ग है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ... कभी काम आ जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, बिल्कुल काम नहीं आता। जानने के लिये काम आता है। १२वीं गाथा में शब्द है। किसी को किसी काल में प्रयोजनवान है, ऐसा है। १२वीं गाथा के उपोद्‌घात। ऐई ! सेठ ! धन्नालालजी अन्दर से निकालते हैं। कोई-कोई को व्यवहार कोई काल में प्रयोजनवान है, ऐसा कहा। उसका अर्थ-सम्यग्दृष्टि जब तक पूर्ण वीतरागता प्राप्त न हो, जब तक अपने स्वभाव का आश्रय लिया है। जाना हुआ प्रयोजनवान है। आदरणीय हुआ, किया हुआ प्रयोजनवान है, ऐसे नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! जाना हुआ से भी विशेष ... जाना हुआ ऐसा नहीं। तो ? भूतकाल हो जाता है। वर्तमान जनाया हुआ। ... संस्कृत में पण्डित जयचन्द्र ने लिखा है न, जाना हुआ, तो वैसा का वैसा पण्डितजी ने रखा है। उस वक्त तो ऐसा था न कि फेरफार नहीं करना। राजमल की टीका है, वह तो राजमल की बनायी है। यहाँ से छपी तो उसकी टीका की। कहो ! ये राजमल की टीका सोनगढ़ से छपी है, उसमें नौ तत्त्व के अनुभव को मिथ्यात्व कहते हैं। वह पंक्ति झूठी है। लेकिन हमारा है कि उसका है ? झूठा ठहराया, देखो !

बनारसीदास ने ये लिया है। उसमें से बनारसीदास ने बनाया है न ? तो बनारसीदास ने वह लिया। अभी वह देखा था। अभी, हाँ ! है या नहीं ? उसमें है तो इसमें है या नहीं ? इसको झूठा ठहराते हो, इतना कहा था। छठा श्लोक है न छठा ? (समयसार नाटक, जीवद्वार ६)। देखो, उसमें लिखा है। '**शुद्धनय निहचै अकेलौ आपु चिदानन्द,...**' समझ में आया ? '**शुद्धनय निहचै अकेलौ आपु चिदानन्द,**' ये जो नौ तत्त्व का अनुभव मिथ्यात्व है, उस श्लोक का यह पद है। उसको झूठा ठहराते हैं। यहाँ से छपा है। परन्तु शब्द किसका है ? वह तो उसका है—राजमल का है। राजमल को जैनधर्म का मर्मी बनारसीदास ने कहा। लोगों को अपनी दृष्टि में सत्य क्या है, वह बैठता नहीं तो कोई भी बोले, वह झूठा है।

शुद्धनय निहचै अकेलौ आपु चिदानन्द,
अपनै ही गुन परजायकौं गहतु है।

पूरन विग्यानघन सो है विवहारमाहिं,
नव तत्त्वरूपी पंच दर्वमैं रहतु है।

नव तत्त्व में रहता है, वह अनादि संसार का मिथ्यात्वभाव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? नव तत्त्व में संवर, निर्जरा, मोक्ष शुद्ध नहीं लेना। उसके योग्य जो संवर, निर्जरा गिनने में आयी है, जिस-जिस गुणस्थान के योग्य ... इतना उसको व्यवहार संवर कहा। वह प्रकृति समय-समय में इतनी निर्जर जाती, उसको निर्जरा गिनने में आया। एकदेश बन्ध का अभाव है, सम्यक्‌सहित की बात नहीं, परन्तु पूर्ण बन्ध न हो और थोड़े बन्ध का अभाव हो, उसको मोक्ष गिनकर नव तत्त्व का अनुभव मिथ्यादृष्टि करते हैं। पण्डितजी! नव तत्त्व के अनुभव को मिथ्यात्व कहा। उसको झूठा ठहराते हैं। विभाव परिणति। एकान्त विभाव परिणति, ऐसे वहाँ लेना है। समझ में आया? स्वभाव का आश्रय लेकर शुद्ध परिणति हो और बाद में नौ तत्त्व की विभाव परिणति हो तो उसको जाननेयोग्य है। जाना हुआ प्रयोजनवान है। परन्तु आत्मद्रव्य का आश्रय बिल्कुल नहीं और अकेले नौ तत्त्व का भंग भेदरूप परिणमन है, वह एकान्त विभाव परिणमन मिथ्यात्व का है। समझ में आया?

ज्ञानी को भी नौ तत्त्व का भेद रह जाता है। परन्तु उसने स्वद्रव्य का आश्रय लिया है और शुद्ध आश्रय से संवर, निर्जरा प्रगट किये हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र स्वद्रव्य के आश्रय से प्रगट किया है। परन्तु पूर्ण वीतरागता नहीं है तो नौ तत्त्व के विकल्प की व्यवहारश्रद्धा उसमें आती है, वह जाननेयोग्य है, आदरने योग्य नहीं। और ये जो कहा है, वह तो अकेले चैतन्य को छोड़कर एक समय की चैतन्य की पर्याय, अजीव, आस्रव, बन्ध का अनुभव, उस नौ तत्त्व के अनुभव को मिथ्यादृष्टि कहा है। समझ में आया? धन्नालालजी!

मुमुक्षु : संवर, निर्जरा, मोक्ष क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न? ये संवर, निर्जरा नहीं। जितनी मिथ्यात्व में अमुक प्रकति को, सबको सर्वथा नहीं आती, कोई प्रकृति तो नहीं आती है, उतनी अपेक्षा से वहाँ संवर व्यवहार कहा। व्यवहारसंवर अर्थात् यथार्थ संवर नहीं। और एक समय का कर्म जो उदय आता है, वह खिर जाता है। खिर जाता है, इस अपेक्षा से निर्जरा गिनने में आयी है।

और अकाम निर्जरा भी होती है या नहीं ? अथवा विपाक निर्जरा होती है या नहीं ? सबको होती है। और मोक्ष क्या ? एक अंश उस गुणस्थान योग्य अमुक-अमुक प्रकृति का बन्ध नहीं होता है, उस अपेक्षा से उसको व्यवहारमोक्ष अर्थात् यथार्थ मोक्ष नहीं, व्यवहारमोक्ष (कहा गया है)। व्यवहार कहा न ? देखो! '**विग्यानघन सो है विवहारमाहि, नव तत्त्वरूपी...**' परन्तु '**पंच दर्व नव तत्त्व न्यारे जीव न्यारौ लखै।**' लखै आया, देखो! पण्डितजी! लखै अर्थात् जाने। लिखना कहाँ है ? पत्र कहाँ लिखना है।

'**नव तत्त्वरूपी पंच दर्व में रहतु है...**' ऐसा होने पर भी '**पंच दर्व नव तत्त्व न्यारे जीव न्यारौ लखै, सम्यक्‌दरस यहै और न गहतु है।**' उसका नाम सम्यग्दर्शन। एक आत्मा ग्रहता है, दूसरा ग्रहता नहीं। समझ में आया ? ये तो आज सवेरे देखा था। राजमल को झूठा ठहराते हैं तो राजमल की टीका अनुसार किया होगा। '**सम्यक्‌दरस जोई आतम सरूप सोई, मेरे घट प्रगटो बनारसी कहतु है।**' ... आया है। जैन गजट है, जैन गजट पत्र। पण्डितजी को देखने दिया है। जैन गजट आया है न कल ? उसमें आया है। हमारे पण्डितजी पूछते थे कहाँ है। पढ़ने को देना। ऐई! जैन गजट। स्पष्ट करना उसमें क्या ? कोई कुछ कहे उसे पढ़ने में क्या हरकत है ? चाहे कुछ भी कहे। उसकी बुद्धि से वह कहे, उसमें क्या है ? 'जामें जितनी बुद्धि है उतनो दिये बताय, वांको बुरो न मानीये और कहाँ से लाये ?' और कहाँ से लाये ? समझ में आया ? कोई द्वेष करने की कोई चीज़ नहीं। वह भी एक आत्मा है, आत्मा है। भगवान है, वह भी भगवान तीन लोक का नाथ है। पर्यय में भूल है तो रुलते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : विरोध करनेवाले को तीन लोक का नाथ कहते हो!

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन लोक का नाथ है। केवलज्ञान का कन्द है। केवलज्ञान में कमी है उसमें ? ऐसी अनन्त केवलज्ञान की पर्याय ज्ञानगुण में पड़ी है। भले अभव्य हो। कल रात्रि को कहा था न ? समझ में आया ? अभव्य को भी पाँच आवरण है। तीन ही आवरण है ? मति, श्रुत और अवधि तीन ही आवरण है ? यह तो हमारे (संवत्) १९८५ के वर्ष में प्रश्न हुआ। ४१ वर्ष हुए। चालीस और एक। ४१ वर्ष पहले सम्प्रदाय में बहुत चर्चा हुई थी। एक आदमी कहे कि नहीं, अभव्य को तीन ही आवरण होता है। तीन

आवरण होता है, कहाँ लिखा है शास्त्र में ? अभव्य को पाँच आवरण होता है। मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, कैवल्य। तो मन:पर्यय, केवल आवरण है तो उसमें मन:पर्यय शक्ति और केवलज्ञान शक्ति है या नहीं ? हमारे साथ विरोध नहीं करे। हमारी प्रतिष्ठा बहुत थी न सम्प्रदाय में भी। दीक्षा बहुत थोड़ी थी उस समय। पचास-पचास साल की दीक्षावाले बोले नहीं। कानजी मुनि कहे सुनो, ऐसा कहे। देखो ! क्या कहा है ? न्याय से कहो। दूसरी बात एक ओर रही। द्रव्यसंग्रह की शक्ति की व्यक्ति एक ओर रखो।

अभव्य जीव को ज्ञानावरणी की पाँच प्रकृति है या तीन है ? बस, इतना प्रश्न। पाँच है तो क्या आया ? केवलज्ञानावरणी है निमित्त में तो अन्दर केवलज्ञानशक्ति है तो पर्याय को रोकने में निमित्त कहने में आता है। अभव्य में भी केवलज्ञानशक्ति है। मन:पर्ययज्ञान प्रगट होने की भी शक्ति है। समझ में आया ? यह तो ४१ साल पहले की चर्चा है। चालीस और एक। सुन्दर वोरा का उपाश्रय, वढवाण। तब स्थानकवासी साधु बहुत बैठे थे। हमारी दीक्षा तो छोटी थी, परन्तु हमारी प्रतिष्ठा बहुत थी। वह कुछ कहते हैं, सुनो ! कहा, अभव्य को पाँच आवरण है या नहीं ? अभव्य को तीन आवरण कहाँ लिखा है ? हो कहाँ से ?

दूसरा प्रश्न आया। दो प्रश्न की चर्चा की थी। उसमें लिखा था, अभव्य को मोहनीय प्रकृति की २६ प्रकृति है। भव्य मोक्ष जानेवाला नहीं उसको २७ है, और मोक्ष जानेवाले को भव्य को अनादि की २८ है। दो चर्चा हुई थी। कहा, यह बात झूठी है। ४१ वर्ष पहले की बात है। चालीस और एक। समझ में आया ? यह समझ में नहीं आयेगा, थोड़ा सूक्ष्म है। चारित्रमोहनीय की २५ प्रकृति है न ? और तीन है दर्शनमोहनीय की। २८ है या नहीं ? तो उसने ऐसा लिखा था कि २८ प्रकृति सत्ता में किसको होती है ? जो भव्य को मोक्ष होने के योग्य है, उसको होती है। कहा, झूठी बात है। ४१ साल पहले की बात है। कहा, ऐसा है नहीं। बोले नहीं। सुनो ! कानजीस्वामी क्या कहते हैं... समाज उसका नहीं माने। इतनी हमारी प्रतिष्ठा थी। पचास-पचास साल की दीक्षावाला बोले तो गलत, कानजीस्वामी क्या कहते हैं ? बस। वह कहे तो बाकी सब झूठ। इतनी छाप थी। ये सब पलट गया न। वेश सब पलट गया तो भड़क गये।

भव्य जीव जो मोक्ष जानेवाला है, उसको भी अनादि से २६ प्रकृति ही है। जब

सम्यग्दर्शन प्राप्त करेगा, तब २६ की २८ होगी। मिथ्यात्व के तीन टुकड़े होंगे। अनादि से सत्ता में है ही नहीं। वह कहे, मोक्ष जानेवाले को है। बिल्कुल झूठ बात। और भव्य मोक्ष नहीं जानेवाले को २७ है। समकित मोहनीय नहीं, ऐसे। ये भी झूठ है, कहा। अनादि भव्य जीव की सत्ता में सम्यग्दर्शन पाये बिना मोहनीय की २६ प्रकृति सत्ता में है। समझ में आया? अभव्य को भी २६ है, और भव्य को भी २६ है। पण्डितजी! मुझे तो पहले से बहुत बात अन्दर से आती थी। हम पढ़े कहाँ हैं। कहा, ऐसे नहीं, ऐसी बात है नहीं।

यहाँ कहते हैं, देखो! भगवान आत्मा नौ तत्त्वरूप अनादि से परिणमित हुआ है। यह विभावपरिणति मिथ्यात्वभाव है। उससे अलग उसमें भी अलग आया न? इसमें अलग आया न? भाई! बनारसीदास में। नौ तत्त्व से अलग। अलग अर्थात् एक द्रव्य भगवान आत्मा पूर्ण द्रव्य शुद्ध शुद्ध ध्रुव। यहाँ तो ध्रुव को ही स्वद्रव्य कहने में आया है। '**झायंति सदव्वं**।' भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, एक स्वद्रव्य का ध्यान करो, लगाओ ध्यान। इसके अतिरिक्त सबका ध्यान छोड़ दे। निमित्त का ध्यान, भगवान का ध्यान, विकल्प का ध्यान, एक समय की पर्याय का ध्यान छोड़ दे। समझ में आया? कल्याण करना हो तो। कैसा मार्ग है? स्वद्रव्य में अनुलग्न होना और परद्रव्य से पराङ्मुख जिनवर तीर्थंकर के मार्ग से अनुलग्न है। वह जीव वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने कहे मार्ग में लीन है। भगवान ने ऐसा कहा है। कहो, समझ में आया? आचार्य आधार देते हैं। हम अकेले नहीं कहते। '**जिणवराण मग्गे**', '**जिणवराण मग्गे**'। भगवान वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, उसका स्वद्रव्य में लगनी करना, वह जिनवर का मार्ग है। तो यह परमेश्वर वीतरागदेव का मार्ग है। लगा हुआ, **निर्वाण को प्राप्त करते हैं**। उसका मोक्ष होगा। ऐसे स्वद्रव्य में सन्मुख होकर पर से पराङ्मुख होकर दृष्टि करने से और बाद में स्वसन्मुख में लीनता करने से उस जीव को निश्चय से मुक्ति होगी, होगी और होगी। मूलचन्दभाई! व्यवहार व्रत-फ्रत से मुक्ति नहीं होगी, ऐसा कहते हैं।

भावार्थ - परद्रव्य का त्याग कर... उपदेश की शैली कैसी आवे? परद्रव्य ये राग है, मैं छोड़ता हूँ, ऐसा है? कल वह आया था। अपोहक। आत्मा राग का त्याग, अभावस्वभाववाला है, राग का अभावस्वभाववाला है। राग का त्याग करना आत्मा में है नहीं। राग है नहीं तो राग का त्याग करना आत्मा में कहाँ आया? आहाहा! यहाँ तो कथन

उपदेश की शैली ऐसी आती है तो... यह व्यवहारनय का कथन है कि परद्रव्य का त्यागकर। उसका अर्थ परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर। वह भी अभी नास्ति का कथन है। स्वद्रव्य में जहाँ दृष्टि लगायी तो परद्रव्य से लक्ष्य छूट गया। पण्डितजी! आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई! यह तो त्रिकाल मार्ग परमेश्वर जिनवरदेव का है। आत्मा जिनवरस्वरूप ही है। 'जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म, कर्म कटे जिनवचन से, यही जिनमार्ग का मर्म।' जिनवचन में जो यह भाव कहा, उस भाव से कर्म कटते हैं। अकेले उपवास आदि करे, अमुक करे, लंघन करे उससे कर्म बिल्कुल कटते नहीं, ऐसा कहते हैं। लंघन... लंघन। ऐई! मूलचन्दभाई!

भगवान आत्मा शुद्ध ध्रुव आनन्द का धाम स्वद्रव्य, उसमें लगा हुआ जिनवर का वह ध्यान करता है अथवा जिनवर का मार्ग ध्याता है। निश्चय चारित्र होय, अब उसमें स्वद्रव्य की दृष्टि सन्मुख होकर हुई, बाद में स्वद्रव्य में लीनता करते, स्वरूप में चारित्र रमणता, चरना, रमना, स्वरूप में आनन्द में रमना, लीन होना, उससे जिनमार्ग में लगा है। ऐसे वीतरागमार्ग में जो लगा है, **वे मोक्ष को प्राप्त करते हैं**। कितने ही कहते हैं, करो-करो, एक दिन बेड़ा पार हो जाएगा। व्रत करो, तप करो—ऐसा करते-करते एकबार बेड़ा पार हो जाएगा। उसके सामने कहते हैं, ऐसे बेड़ा पार नहीं होगा। सारी जिन्दगी चली जाएगी। समझ में आया? करते रहो, कुछ करते रहो। उपवास करो, व्रत करो, त्याग करो, ऐसा करते हो तो एक दिन कल्याण हो जाएगा। भगवान ना कहते हैं, ऐसे कल्याण नहीं होगा, वह तो संसार का मार्ग है। आत्मा अन्दर विकल्प से रहित निर्विकल्प आनन्दकन्द को ध्येय बनाकर, दृष्टि बनाकर लीन होना, यह एक ही जिनवर का मार्ग है। इसमें व्यवहार का निषेध हुआ। व्यवहार मोक्षमार्ग का निषेध हुआ।

मुमुक्षु : चारित्र लेते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र कैसा? वह कहते हैं। वह भी आया है, इसमें भी आया था। उनको चारित्र नहीं लेना है। जैन सन्देशवाला कहता है, सिद्ध में चारित्र नहीं। क्योंकि उसका वह भगत है। हम तो सिद्ध में चारित्र मानते हैं, वह नहीं माने उसमें हमें क्या है? अरे! सिद्ध में चारित्र है। क्योंकि चारित्र त्रिकाली शक्ति-गुण आत्मा का है। जैसा दर्शनगुण

त्रिकाली। नियमसार में आया है, नियमसार में आया है न? भाई! अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त अन्तर बेहद अविचल चारित्रस्वरूप, त्रिकाल चारित्रस्वरूप है। आत्मा, हों! अन्दर त्रिकाल ध्रुव में चारित्र पड़ा है। नियमसार में है। कहाँ है नियमसार? नहीं है? यह नियमसार है न? १५वीं गाथा में लेंगे। देखो, आया।

सहज शुद्ध निश्चय से अनादि-अनन्त भगवान अमूर्त, अतीन्द्रियस्वभाववाले और शुद्ध ऐसे अनन्त ज्ञान... अन्तर त्रिकाल। **सहज दर्शन-सहज चारित्र...** त्रिकाल और **सहज परमवीतराग सुखात्मक....** सहज वीतराग आनन्दस्वरूप। १५वीं गाथा है। यह **शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप...** है। यह शुद्धअन्तःतत्त्वस्वरूप है। उसके साथ रहनेवाली पर्याय को कारणपर्याय गिनी है। बहुत सूक्ष्म है। यहाँ तो चारित्र अपेक्षा से बात लेनी है। भगवान आत्मा में अनादि-अनन्त सहज शुद्धचारित्र पड़ा है, ध्रुवरूप पड़ा है। उसका आश्रय करके सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और अनन्त आनन्द आदि प्रगट हो तो पर्याय में भी चारित्रगुण की पर्याय सिद्ध में भी है। ऐई! हुकमचन्दजी! पढ़ा है या नहीं उसमें? उसमें कल भी विरोध आया है। ये लोग नहीं मानते, इसलिए यह (कहते हैं)। अरे! भगवान! क्या करते हो तुम? चारित्र की कौन ना कहता है? अन्दर में स्वरूपाचरण चारित्र है, वह पहला चारित्र है। सम्यग्दर्शन होने पर अन्दर अनन्तानुबन्धी का अभाव (हुआ) और स्वरूपाचरण स्थिर हुआ, उसका नाम चारित्र का अंश है। ऐसा स्वरूप का चारित्र प्रगट हुए बिना उग्र चारित्र होता नहीं। लोगों को वीतराग तत्त्व क्या कहते हैं, मार्ग की खबर नहीं है। कहीं के कहीं घुस गये मिथ्यात्व के पोषण में। पोषण करे मिथ्यात्व का और माने कि हम कुछ मार्ग में लगे हैं। सहज चारित्र, है न? वह तो बहुत जगह आया है। दो-तीन जगह है।

स्वाभाविक भगवान वीतरागस्वरूपी चारित्र है। वीतरागबिम्ब आत्मा भगवान है। ज्ञानबिम्ब कहो ज्ञान से, दर्शनबिम्ब कहो दर्शन से, चारित्र कहो वीतराग से। एक-एक शक्ति से परिपूर्ण भगवान पड़ा है। स्वद्रव्य का अन्तर ध्यान, ध्येय में लेकर उसमें दृष्टि करना, अनुभव करना, वह सम्यग्दर्शन। पीछे स्वरूप में विशेष लीन होना, वह चारित्र। इस चारित्र को प्राप्त करनेवाला अल्प काल में निर्वाण को प्राप्त होता है। ये चारित्र, हों! लोग माने, वह चारित्र कहाँ है, वह तो अचारित्र है। और उस अचारित्र का भी ठिकाना कहाँ है? पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प का भी ठिकाना कहाँ है। समझ में आया? यहाँ

तो वीतराग ने कहे हुए मार्ग में लगे, लगे शब्द तो आपमें आता है न? लगा हुआ, निश्चयचारित्र में लगे, वह मोक्ष पावे। अन्तर में भगवान को ध्येय बनाकर लीन हो, वह मोक्ष पावे। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात कितनी स्पष्ट, कितनी चोक्खी, कितनी निःसन्देह! समझ में आया? उसमें गड़बड़ करते हैं। वह १९ हुई। अब २०।

गाथा-२०

आगे कहते हैं कि जिनमार्ग में लगा हुआ योगी शुद्धात्मा का ध्यान कर मोक्ष को प्राप्त करता है तो क्या उससे स्वर्ग नहीं प्राप्त कर सकता है ? अवश्य ही प्राप्त कर सकता है –

जिणवरमएण जोई झाणे झाएह सुद्धमप्पाणं।
जेण लहइ णिव्वाणं ण लहइ किं तेण सुरलोयं ।।२०।।

जिनवरमतेन योगी ध्याने ध्यायति शुद्धमात्मानम्।
येन लभते निर्वाणं न लभते किं तेन सुरलोकम् ।।२०।।

जिनदेव मत से शुद्ध आतम योगि ध्याते ध्यान में।
उससे मिले निर्वाण तब क्या स्वर्ग नहिं उससे मिले?।।२०।।

अर्थ **– योगी ध्यानी मुनि है, वह जिनवर भगवान के मत से शुद्ध आत्मा को ध्यान में ध्याता है, उससे निर्वाण को प्राप्त करता है तो उससे क्या स्वर्गलोक नहीं प्राप्त कर सकते हैं? अवश्य ही प्राप्त करते हैं।**

भावार्थ **– कोई जानता होगा कि जो जिनमार्ग में लगकर आत्मा का ध्यान करता है, वह मोक्ष को प्राप्त करता है और स्वर्ग तो इससे होता नहीं है, उसको कहा है कि जिनमार्ग में प्रवर्तनेवाला शुद्ध आत्मा का ध्यान कर मोक्ष प्राप्त करता ही है तो उससे स्वर्गलोक क्या कठिन है? यह तो इसके मार्ग में ही है।।२०।।**

गाथा-२० पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जिनमार्ग में लगा हुआ योगी शुद्धात्मा का ध्यान कर मोक्ष को प्राप्त करता है, तो क्या उससे स्वर्ग नहीं प्राप्त कर सकता है ? सौ खांडी अनाज पके, वहाँ सौ भरोटा घास का नहीं होता ? घास तो साथ में होगी ही। समझ में आया ? घास कहते हैं न ? क्या कहते हैं ? सौ खांडी... क्या कहते हैं ? खांडी... खांडी। सौ खांडी अनाज पके, उसको सौ गाड़ी तिनका तो होता ही है। समझ में आया ? ऐसे जहाँ आत्मा का आनन्दधाम भगवान की दृष्टि और लीनता करते हैं, उसको तो शुभविकल्प बीच में आता है। उस शुभविकल्प में पुण्य बन्ध जाए और स्वर्ग में जाए। अज्ञानी तो शुभविकल्प से स्वर्ग में जाए, उसकी कोई महत्ता नहीं है, ऐसा कहते हैं। धर्मी अपने आनन्दस्वरूप में रमता हुआ राग बाकी रह गया, उसे स्वर्ग आया, वह तो अन्दर में बीच में आये बिना रहता नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य भी अभी स्वर्ग में हैं। लो, यह कहते हैं, वह कुन्दकुन्दाचार्य अभी स्वर्ग में हैं। वैमानिक में हैं। क्योंकि स्वरूप का आराधन किया परन्तु बीच में राग बाकी रह गया। समझ में आया ?

पद्मनन्दि आचार्य में आलोचना में आया न ? आलोचना पढ़ते हैं न संवत्सरी में ? आलोचना की आखिरी गाथा में ऐसा कहा है। श्लोक पढ़ा है या नहीं ? हमें तो स्वर्ग में जाना पड़गा, दूसरी कोई चीज़ है नहीं। अनुभव है, संवर-निर्जरा है, चारित्र है, वीतरागता तीन कषाय का अभाव है, परन्तु अभी विकल्प का सर्वथा नाश होकर केवलज्ञान नहीं है तो स्वर्ग में जाना पड़ेगा। तो पहले से कहते हैं, हे नाथ ! हमें तीन लोक का राज हो तो भी हमें तो तिनके समान है। तीन लोक का राज तो बीच में स्वर्ग मिलेगा उसे लक्ष्य में लेकर बात कही है। समझ में आया ? आलोचना अधिकार है। पद्मनन्दि पंचविंशति नौवा अधिकार है। अधिकार २६ हैं परन्तु नाम २५ है। पद्मनन्दि पंचविंशति। उसका नौंवा आलोचना का अधिकार है।... उसमें कहा कि हे नाथ ! तीन लोक का राज हो तो हमारे लिये सड़ा हुआ तिनका, कचरे का ढ़ेर है। ऐसे हेयबुद्धि करके, आनन्द का अनुभव करके, राग आया है, (उसकी) हेयबुद्धि करके जाते हैं, यहाँ भी फल आयेगा (तो) हमारे लिये हेय है। वह स्वर्ग भी हमारे लिये हेय है, उपादेय नहीं है।

मुमुक्षु : वस्तु जैसी है, वैसी जाननी चाहिए, स्वर्ग और घास ?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वर्ग घास है, क्या कहै ? अनाज पका, आत्मा के आश्रय से जो शुद्धता प्रगट हुई, वही अनाज है। तृण समान है। तिनका। समझ में आया ? यहाँ है न ? भाई ! अलियाबाळा ? बाजरा देखा था। उस दिन हमने देखा था। उन लोगों को बहुत महिमा है। जाना हो, उस दिन पूरी ट्रेन आयी थी। १५०० लोगों की। हमें दूसरे दिन जामनगर जाना था। (संवत्) १९९० में राजकोट से गये थे न। १५०० लोगों की ट्रेन पाँच कोस आयी। गाँव में तो ओहो ! एक आदमी इतना बाजरा लेकर आया था। बड़ा डुण्डा, हों ! बाजरे का। दो हाथ लम्बा। बाजरी... बाजरी... बाजरी।

उसी प्रकार यहाँ भगवान कहते हैं कि जहाँ अलौकिक माल पकता है, आत्मा के आश्रय से शान्ति, आनन्द का कन्द वह तो बाजरी है। उसमें छोटा राडा आता है, राडा कहते हैं न ? दाने का सरिया होता है न ? क्या कहते हैं उस चीज़ को ? आपकी भाषा मालूम नहीं। डुण्डा का अन्दर का। डुण्डा तो हुआ। बाजरी जिसमें होती है, वह चीज़ अन्दर में है न ? वह बहुत छोटा था, बहुत छोटा। और दाने बहुत थे। वैसे यहाँ सम्यग्दृष्टि को दाने बहुत पकते हैं। और बीच में राग रह जाता है तो वैमानिक देवलोक में जाना पड़ता है। वैमानिक के अतिरिक्त अन्य जगह जाते नहीं। समझ में आया ?....

जिनमार्ग में लगा हुआ योगी शुद्धातमा का ध्यान कर मोक्ष को प्राप्त करता है, तो क्या उससे स्वर्ग नहीं प्राप्त कर सकता है ? बीच में स्वर्ग तो आयेगा। धर्मशाला। समझ में आया ?

जिणवरमएण जोई झाणे झाएह सुद्धमप्पाणं।
जेण लहइ णिव्वाणं ण लहइ किं तेण सुरलोयं ।।२०।।

भाषा देखो न ! कुन्दकुन्दाचार्य।

अर्थ - योगी ध्यानी मुनि... अपने ध्येय को पकड़कर आत्मा का ध्यान करते हैं। समकिती से लेकर मुनि। समकिती भी अपना ध्रुव का ध्यान करते हैं। भगवान का ध्यान करते हैं, वह तो विकल्प हुआ। पंच परमेष्ठी। रात्रि में प्रश्न हुआ था, पंच परमेष्ठी को वन्दन करने से क्या होता है ? होता है शुभभाव, पुण्य; धर्म नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

मुमुक्षु : व्यवहारधर्म होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहारधर्म का अर्थ सच्चा धर्म नहीं। व्यवहारधर्म का अर्थ सच्चा धर्म नहीं। खोटा धर्म होता है। खोटा धर्म कहो या पुण्य कहो या शुभभाव कहो। ऐसी बात है।

मुमुक्षु : खोटा सिक्का चला तो गिरफ्तार हो जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ खोटा सिक्का नहीं, आत्मा के स्वभाव सहित शुभभाव है। ऐसा वह व्यवहारधर्म कहने में आता है। निश्चय से वह पुण्य है। समकिती को भी आता है, मुनि को भी आता है। कहा न, कुन्दकुन्दाचार्य अभी स्वर्ग में है। समझ में आया? वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर मोक्ष में जायेंगे। राग बाकी रह गया। पंचम काल के मुनि को मोक्ष होवे नहीं। इतना पुरुषार्थ अन्दर में जमे, उतनी ताकत नहीं है। तो पुरुषार्थ की कमी से ऐसा शुभभाव बीच में आता है।

योगी ध्यानी मुनि है, वह जिनवर भगवान के मत से... देखो! वीतराग परमात्मा के अभिप्राय से **शुद्ध आत्मा को ध्यान में ध्याता है...** दूसरे अज्ञानी सर्वज्ञ के अतिरिक्त कहे वह नहीं। परमेश्वर जिनवरदेव ने जो आत्मा कहा, वह आत्मा। बाकी दूसरे वेदान्त आदि आत्मा कहते हैं, वैशेषिक आत्मा कहते हैं, वह आत्मा नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर जिनवरदेव ने जो अनन्त आत्मा देखे, वह आत्मा जो आत्मा भगवान कहते हैं, जो रागरहित आत्मा (है)। राग आस्रव है, वह आत्मा नहीं। राग तो अनात्मा है। रागरहित भगवान पूर्णानन्द स्वरूप। **जिनवर भगवान के मत से शुद्ध आत्मा को ध्यान में ध्याता है...** उसको ध्येय बनाकर उसका ध्यान करे। ध्याता है, कहा है न? ध्याता है। बालक माता को धावता है या नहीं? उसमें क्या धावता है? दूध उसमें लेता है। ऐसे आत्मा के ध्यान में क्या निकलता है? आनन्द को धावते हैं। धर्मी आनन्द को धावते हैं। आहाहा! आनन्द को पीते हैं। चूसता है या नहीं? बालक उसकी माता का दूध पीता है या नहीं? वैसे यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा आनन्द से भरा है, उसमें दृष्टि एकाग्र होने से आनन्द को चूसता है, आनन्द को पीता है। आहा!

मुमुक्षु : आनन्द और शान्तरस...

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द और शान्तरस एक ही है। शान्तरस तो अकषाय स्वभाव की अपेक्षा से कहा। सुख की अपेक्षा से आनन्द कहा। शान्तरस अकषाय स्वभाव की

अपेक्षा से कहा, चारित्र की अपेक्षा से और आनन्द सुख की अपेक्षा से कहा। दोनों गुण भिन्न-भिन्न है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **आत्मा को ध्यान में ध्याता है...** चूसता है। निर्विकल्प रस पीजिए। आहाहा! समझ में आया?

आशा औरन की क्या कीजे, आशा औरन की क्या कीजे,
निर्विकल्प रस पीजे, आशा औरन की क्या कीजे?

किसकी आशा करना? विकल्प की भी आशा नहीं। आ जाओ, अन्दर आओ तो। मैं तो आनन्दधाम चिदानन्द हूँ। सम्यग्दृष्टि उसको ध्याते हैं, चूसते हैं और ध्यावते हैं। आहाहा! समझ में आया? भारी धर्म भाई ऐसा! वे लोग कहते हैं, नीचे ध्यान होता नहीं। नियमसार में कहते हैं कि धर्मध्यान नहीं हो तो वह बहिरात्मा है, ऐसा कहते हैं। धर्मध्यान नहीं हो तो बहिरात्मा है। समकिती को हमेशा धर्मध्यान रहता है। आहाहा! समझ में आया?

उससे निर्वाण को प्राप्त करता है, तो उससे क्या स्वर्गलोक नहीं प्राप्त कर सकते हैं? अवश्य ही प्राप्त करते हैं।

भावार्थ – **कोई जानता होगा कि जो जिनमार्ग में लगकर आत्मा का ध्यान करता है, वह मोक्ष को प्राप्त करता है और स्वर्ग तो इससे होता नहीं है,...** उससे स्वर्ग नहीं होता, ऐसा कहे। अरे! स्वर्ग तो बीच में तिनका छिलका है। जहाँ अनाज पके, वहाँ अन्दर कसदार दाना है या नहीं? छिलका ऊपर होता है या नहीं?

मुमुक्षु : ... कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी याद आया? छिलका दूसरा निकलता है। दाना जो ऊपर होता है न? ... दाना, और दाने के ऊपर जो पतली फोतरी है, वह छिलका है। वह पुण्य। और अन्दर दल है, वह पवित्रता। समझ में आया? इनकी भाषा हमको मालूम नहीं। अभी हिन्दी में चलता है न। समझ में आया?

कहते हैं, जिनमार्ग में लगकर आत्मा को ध्याता है, उससे स्वर्ग नहीं होता। **उसको कहा है कि जिनमार्ग में प्रवर्तनेवाला शुद्ध आत्मा का ध्यान कर मोक्ष प्राप्त करता ही है, तो उससे स्वर्गलोक क्या कठिन है?** सौ रुपया देने की शक्ति है, उसकी पाँच रुपया

देने की शक्ति नहीं है ? समकिती को बीच में स्वर्ग तो सहज ही आये बिना रहता नहीं। क्योंकि उसे बन्ध ही वैमानिक का पड़ता है। समझ में आया ? स्वर्ग में समकिती हो तो वह मनुष्य में आता है। मनुष्य में और तिर्यंच में समकिती हो तो वह वैमानिक में जाता है। इसके अतिरिक्त उसकी अन्य गति नहीं होती। समझ में आया ? मनुष्य और तिर्यंच हो तो समकिती वैमानिक स्वर्ग में ही जाते हैं। और देव और नारकी समकिती हो तो मनुष्य में आते हैं। समझ में आया ? यहाँ तो स्वर्ग की बात है। मुनि धर्मात्मा है न। पंचम काल में मोक्ष तो है नहीं। उतने पुरुषार्थ की कमी है। अपने कारण से, हों ! काल के कारण नहीं। काल के कारण नहीं, अपनी पर्याय के कारण से।

कहते हैं, उसको स्वर्गलोक कहाँ कठिन है ? **वह तो उसके मार्ग में ही है।** वह तो बीच में धर्मशाला आयेगी। आहाहा ! सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा अपने स्वरूप के ध्यान से संवर, निर्जरा तो प्रगट करते हैं। बीच में भक्ति, पूजा आदि का विकल्प आ जाता है तो उससे उसको स्वर्ग के वैमानिक का आयुष्य बँध जाता है। उसमें क्या है ? वह तो साधारण चीज़ है। अब कहते हैं, दृष्टान्त देते हैं। २१।

गाथा-२१

आगे इस अर्थ को दृष्टान्त द्वारा दृढ़ करते हैं -

जो जाइ जोयणसयं दियहेणेक्केण लेवि गुरुभारं।
सो किं कोसद्धं पि हु ण सक्कए जाउ भुवणयले ।।२१।।

यः याति योजनशतं दिवसेनैकेने लात्वा गुरुभारम्।
स किं क्रोशार्द्धमपि स्फुटं न शक्नोति यातु भुवनतले ।।२१।।

बहु भार ले जो एक दिन में गमन सौ योजन करे।
वह भुवन-तल पर क्यों नहीं क्रोशार्ध प्रमिति जा सके?।।२१।।

अर्थ - जो पुरुष बड़ा भार लेकर एक दिन में सौ योजन चला जावे, वह इस पृथ्वी तल पर आधा कोश क्या न चला जावे? यही प्रगट-स्पष्ट जानो।

भावार्थ – जो पुरुष बड़ा भार लेकर एक दिन में सौ योजन चले, उसके आधा कोश चलना तो अत्यन्त सुगम हुआ, ऐसे ही जिनमार्ग से मोक्ष पावे तो स्वर्ग पाना तो अत्यन्त सुगम है।।२१।।

गाथा-२१ पर प्रवचन

आगे इस अर्थ को दृष्टान्त द्वारा दृढ़ करते हैं –

जो जाइ जोयणसयं दियहेणेक्केण लेवि गुरुभारं।
सो किं कोसद्धं पि हु ण सक्कए जाउ भुवणयले।।२१।।

अर्थ – जो पुरुष बड़ा भार लेकर एक दिन में सौ योजन चला जावे... देखो! एक दिन में बड़ा भार उठाकर सौ योजन जाए, **वह इस पृथ्वीतल पर आधा कोश क्या न चला जाए?** आठ कोस कैसे नहीं जावे? बड़ा भार लेकर एक दिन में सौ योजन चला जावे। सौ योजन। तो पृथ्वीतल पर लिखा है न? आठ कोस कैसे न जाए? **यह प्रगट-स्पष्ट जानो।** जाएगा। उसमें क्या है?

वैसे जिसको मोक्षमार्ग प्रगट हुआ है, मोक्ष तो होगा ही, परन्तु बीच में पुण्य ऐसा आयेगा कि स्वर्ग आदि मिले और अन्त में तीर्थंकर आदि होकर मोक्ष जाएगा। समझ में आया? ऐसा भाव समकिती को आता है। ऐसा पुण्य अज्ञानी को नहीं होता। समझ में आया? जैसा शुभभाव समकिती की भूमिका में होता है, ऐसा भाव-शुभभाव मिथ्यादृष्टि की भूमिका में नहीं होता। समझ में आया?

एक बार श्रीमद् ने कहा है। श्रीमद् का ... बहुत था न। एक बार पत्र लिखा है। पत्र में है। यह देह मिला, उसमें ... यही नहीं मिला हो तो भविष्य में तो अपूर्व देह मिलेगा। अनन्त काल में नहीं मिला, ऐसा मिलेगा। समझ में आया? देखो न, मोक्ष जाना, यह निश्चित है। एक भव करके मोक्ष जाना है। समझ में आया? ... दूसरी तो कोई स्पृहा नहीं है। फिर भी पूर्व उपार्जन की हुई ... यह जो देह मिला, वह पूर्व में कभी नहीं मिला हो तो भविष्य काल में प्राप्त होगा नहीं। ऐसी देह अब नहीं मिलेगी। ... यह देह, भविष्य में अब इस जाति के परमाणु नहीं मिलेंगे। आहाहा! समझ में आया? सम्यक् भान में जो कोई विकल्प

आया, उससे जो पुण्यबन्ध होता है, वैसा मिथ्यादृष्टि को होता नहीं। ...

भावार्थ - जो पुरुष बड़ा भार लेकर एक दिन में सौ योजन चले, उसके आधा कोश चलना तो अत्यन्त सुगम हुआ, ऐसे ही जिनमार्ग में मोक्ष पावे तो स्वर्ग पाना तो अत्यन्त सुगम है। पुण्य तो उसकी दासी है, उसके पैर की रज है। समझ में आया? धर्मात्मा को पुण्य चाहिए नहीं, परन्तु उसका पुण्य ऐसा बँधेगा, दुनिया से दूसरी जाति का पुण्य बँधेगा, ऐसा कहते हैं। सातिशय पुण्य उस प्रकार का। शरीर पहले कोई भी मिला, परन्तु समकित होने के बाद उसको शरीर मिले, अनन्त काल में ऐसा परमाणु और ऐसा भाव नहीं था, वैसा मिलेगा। समझ में आया?

यहाँ तो ऐसा आत्मा जिसको ध्यान में सम्यग्दर्शन हुआ और शान्ति भी हुई, परन्तु थोड़ा विकल्प रहेगा तो स्वर्ग तो सुगमरूप से मिलेगा। अज्ञानी को तो अकाम निर्जरा करके मिले, वह कोई मिला नहीं। ... समझे? **अत्यन्त सुगम है।** स्वर्ग तो बीच में धूल है। आहाहा! कहीं जाना हो, अच्छे मार्ग में धूल तो थोड़ी आये न? आहाहा! देखो! मोक्ष अधिकार, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य, अष्टपाहुड़। नियमसार उनका कहा हुआ है, यह अष्टपाहुड़ उनका कहा नहीं है, ऐसा है? कोई ऐसा कहता है, समयसार बड़ा अच्छा है। हमें एक ही बस है। दूसरा पुस्तक नहीं। दूसरे पुस्तक में उसने ही लिखा है, मुनि को पुस्तक, कमण्डल, पिच्छी तीन ही चीज़ होती है। जयसेनाचार्य की टीका, समयसार की। दूसरा कुछ होता ही नहीं मुनि को। समयसार में लिखा है। समयसार में है? वस्त्रसहित है, वह मुनि है, ऐसा लिखा है? पढ़े नहीं, समझे नहीं, बस, हमें समयसार बराबर है। वस्त्रसहित मुनि को नहीं मानना वह आपकी झूठ बात है। अरे! वस्त्रसहित मुनि तीन काल में होता ही नहीं। सुन तो सही। ऐसी वीतरागी दशा प्रगट हुई, उसको वस्त्र लेने का विकल्प दुःखरूप लगता है। अनुकूलता के लिये नहीं। वह विकल्प ही दुःखरूप है। आहाहा! मार्ग की ... नहीं। वीतराग का मार्ग है। ये कोई पक्ष का (मार्ग) नहीं है।

कहते हैं, बहुत भार लेकर बहुत काल तक चले, एक दिन में। तो आधा कोश चलना क्या है? स्वर्ग तो बीच में आयेगा ही। इसका अन्य दृष्टान्त कहते हैं। उसका दूसरा दृष्टान्त कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-२२

आगे इसी अर्थ का दृष्टान्त कहते हैं –

जो कोडिए ण जिप्पइ सुहडो संगामएहिं सव्वेहिं।
सो किं जिप्पइ इक्किं णरेण संगामए सुहडो।।२२।।

यः कोट्या न जीयते सुभटः संग्रामकैः सर्वैः।
स किं जीयते एकेन नरेण संग्रामे सुभटः।।२२।।

जो सभी युद्धों में करोड़ों सुभट को भी जीतता।
वह एक रण में एक योद्धा को नहीं क्या जीतता?।।२२।।

अर्थ – जो कोई सुभट संग्राम में सब ही संग्राम के करनेवालों के साथ करोड़ मनुष्यों को भी सुगमता से जीते वह सुभट एक मनुष्य को क्या न जीते ? अवश्य ही जीते।

भावार्थ – जो जिनमार्ग में प्रवर्ते वह कर्म का नाश करे ही, तो क्या स्वर्ग के रोकनेवाले एक पापकर्म का नाश न करे ? अवश्य ही करे।।२२।।

प्रवचन-७०, गाथा-२२ से २४, सोमवार, श्रावण कृष्ण ८, दिनांक २४-०८-१९७०

अष्टपाहुड़ में से मोक्षपाहुड़ का व्याख्यान चलता है। २१ गाथा हुई। २२। २१ गाथा में दृष्टान्त लिया है, वैसा दूसरा दृष्टान्त २२ में देते हैं। क्या कहते हैं कि जिसको एक दिन में सौ योजन चलने की शक्ति है, वह क्या साधारण आधा कोस नहीं चल सकता? आधा कोस चलना, वह तो साधारण बात है।

वैसे भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द ज्ञानस्वरूप है ऐसा अनुभव, निश्चय-निर्णय सम्यक् हुआ, उसको तो मोक्ष होगा। स्वभाव सन्मुख के अनुभव से, स्थिरता से मोक्ष होगा, परन्तु बीच में उसको स्वर्ग मिलना तो साधारण बात है, ऐसा कहते हैं। वैमानिक देव हो, वह तो साधारण बात है। सौ कलथी से अनाज होता है, सौ खांडी, तो सौ गाड़ी उसको घास

तो होता ही है। घास कहते हैं न? उतना तो साधारण होता ही है। परन्तु कृषिकार की दृष्टि घास पर नहीं है। कृषिकार की दृष्टि अनाज पके उस पर दृष्टि है। अनाज पके, उस पर दृष्टि है। घास पर दृष्टि नहीं है। वैसे धर्मी जीव अपना आत्मा शुद्ध चैतन्यवस्तु है, जिसकी दृष्टि करने से आत्मा को शान्ति मिले, आनन्द का अनुभव हो, ऐसे धर्मात्मा को मुक्ति मिलनी तो सहज है। एकाध-दो भव में मुक्ति होगी। बीच में स्वर्ग का भाव आता है और स्वर्ग में जाते हैं, वह तो साधारण बात है। वह दृष्टान्त दिया।

उसमें यह सिद्धान्त यह है कि सम्यक् आत्मा की दृष्टि हुई, उसको अशुभभाव भी आता है। समझ में आया? विषयकषाय का भाव आता है, परन्तु जब तक शुभभाव नहीं हो, तब तक आयुष्य नहीं बँधेगा। क्या कहा? सम्यग्दृष्टि को आत्मा का भान है। मैं शुद्ध चैतन्य आनन्द हूँ। मेरे में कोई विकल्पमात्र है नहीं। मैं ऐसी चीज़ हूँ, ऐसी दृष्टि जिसको हुई, उसको कहते हैं, जब तक केवलज्ञान नहीं हो, तब तक उसको शुभ-अशुभभाव आता है, परन्तु जब तक अशुभभाव हो तो परलोक का आयुष्य नहीं बँधेगा। ऐसा नियम है। क्या कहा, समझ में आया? उसको जब शुभभाव आयेगा, तब परलोक का आयुष्य का बन्ध होगा। समझ में आया? '...'! ऐसा है।

साधारण सदाचार लौकिक नीति से सज्जन जीवन व्यतीत करते हैं, उसको भी पुण्यबन्ध होकर स्वर्ग मिले, वह तो साधारण चीज़ है, ऐसा कहते हैं। परन्तु ध्यानी को ध्यान में सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ और उससे ध्यान से मुक्ति मिलती है और ध्यान के काल में कमी रहती है तो ऐसा शुभभाव आता है तो उससे वैमानिक स्वर्ग का आयुष्य बँध जाता है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि (को) इतना अन्तर दृष्टि का जोर है, जिसको लड़ाई का पाप का भाव भी आता है, फिर भी उस समय आयुष्य नहीं बँधेगा। पण्डितजी! लड़ाई में हो। भले कषायभाव है। उससे दृष्टि से तो मुक्त है। समझ में आया? परन्तु जब तक लड़ाई का, विषयवासना का अशुभभाव है, उसमें परभव का आयुष्य नहीं बँधेगा। समझ में आया? इतना आत्मा की दृष्टि के जोर के कारण ऐसा अशुभभाव होने पर भी, थोड़ा कर्मबन्ध हो, परन्तु अशुभभाव में आयुष्य नहीं बँधेगा। अगले भव का आयुष्य तो जब शुभभाव आयेगा, तब वैमानिक आदि का आयुष्य बन्ध होगा। ऐसा सहज स्वरूप का सिद्धान्त का और तत्त्व का नियम है। समझ में आया? गोदिकाजी! पैसा-बैसा तो बीच

में धूल है। समकिती को जो पैसा मिले, सामग्री मिले, चक्रवर्ती का राज (मिले), वह तो साधारण धूल है, घासफूस है।

जहाँ अनाज पकता है, आत्मा आनन्दस्वरूप भगवान शुद्ध चिदानन्द, ऐसा परमस्वभाव का आश्रय लिया, महाभगवान का आश्रय लिया, उसको भगवान होने में देर नहीं, परन्तु थोड़ी देर लगे तो बीच में शुभभाव आयेगा तो वैमानिक का आयुष्य, मनुष्य का बँधेगा। मनुष्य और तिर्यंच। नारकी और देव हो, उसको भी सम्यग्दर्शन है, उसको भी भोगादि की वासना में आयुष्य नहीं बँधेगा। उसको भी जब शुभभाव होगा, तब मनुष्य का आयुष्य बँधेगा। नरक का जीव नारकी सम्यग्दृष्टि है।

श्रेणिक राजा पहली नरक में गये। पहले आयुष्य बँध गया था। साधु की असातना की, बड़ी असातना की। समझ में आया? सातवीं नरक का आयुष्य बँध गया। पीछे सम्यग्दर्शन पाया है और सातवीं नरक की स्थिति छेदकर तिरासी हजार वर्ष की रह गयी। अभी पहली नरक में है। परन्तु अभी वहाँ अशुभभाव भी है। परन्तु जब शुभभाव होगा तो यहाँ तीर्थंकर होनेवाले हैं तो शुभभाव में मनुष्य का आयुष्य बँधेगा। समझ में आया? ... ऐसी चीज़ है। साधारण शुभ तो सज्जन को साधारण सज्जन को नीति का जीवन होता है... समझ में आया? परस्त्री का त्याग, साधारण माँस, शराब का त्याग, वह तो साधारण जनता नैतिक जीवन में वह तो होता है। समझ में आया? शराब नहीं, माँस नहीं, परस्त्री नहीं। सज्जन पुरुषों को लौकिक सज्जनता में भी वह नहीं होता। तो कहते हैं कि वह भी जब शुभभाव में स्वर्ग आदि प्राप्त करते हैं तो धर्मात्मा की बात क्या करनी? समझ में आया? जिसको भगवान आत्मा का अन्दर में शरण मिला है। आहाहा!

अकेला व्यवहार सदाचरण करनेवाला वह भी पुण्यबन्ध करके जब स्वर्ग में जाता है, तो निश्चय अपना सदाचरण—सत्स्वरूप भगवान आत्मा, उसमें दृष्टि, ज्ञान और आचरण करनेवाला उसको मुक्ति तो होगी, होगी और होगी। परन्तु बीच में बाकी एकाध भव हो तो बीच में स्वर्ग का और मनुष्य का आयुष्य बँधेगा, शुभभाव हो तो। अशुभभाव में बँधेगा नहीं। अशुभभाव से नामकर्म आदि कर्म बँधेगा, आयुष्य नहीं बँधेगा। नामकर्म आदि बन्ध हो, आयुष्य नहीं बँधेगा।... तो नहीं है, परन्तु आयुष्य नहीं बँधेगा, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। गति का बन्ध हो। समकिती को अशुभभाव होता है, गति आदि का बन्ध हो, परन्तु आयुष्य का

बन्ध नहीं होता। आयुष्य तो जब शुभभाव, अनुभव दृष्टिपूर्वक जहाँ शुभभाव आया तो आयुष्य बँधेगा। वैमानिक स्वर्ग में चले जाएगा। समझ में आया ? वह बात यहाँ कहते हैं।

जिसको एक दिन में सौ योजन चलने की शक्ति है तो एक दिन में आधा कोस नहीं चले ? वैसे जिसकी मोक्ष लेने की ताकत है, उसमें पाप नाश करके स्वर्ग नहीं मिले, ऐसा होता नहीं। स्वर्ग मिले ही मिले। २२वीं गाथा। दूसरा दृष्टान्त।

जो कोडिए ण जिप्पइ सुहडो संगामएहिं सव्वेहिं।
सो किं जिप्पइ इक्किं णरेण संगामए सुहडो ।।२२।।

श्रीमद् का एक दृष्टान्त याद आ गया। श्रीमद् राजचन्द्र थे न ? आत्मज्ञानी थे। गृहस्थाश्रम में थे। सच्चे मोती का व्यापार करते थे। लड़का, स्त्री थे। समकिती ज्ञानी थे। एक बार मोती का सौदा किया। धन्धा सादे मोती का सौदा किया था परन्तु जिसके साथ मोती का धन्धा किया था, उसका ऊँचा मोती का पडीका था ? पडीका समझे ? पुड़िया। उसने बड़ी कीमत की पुड़िया थी, वह श्रीमद् को दे दी। और जिसका सौदा था, वह पड़ी रही। घर जाकर श्रीमद् ने देखा, ओहो ! लाखों की कीमतवाला। ये क्या ? इस मोती का व्यापार उसके साथ नहीं किया था। यह चीज़ कहाँ आ गयी ? ऐसे ही बन्द करके रख दिया। उतने में वह आया। अरे... भाई ! हमारी ऐसी (मोती की पुड़िया है) । अरे... भाई ! ये रहे मोती। अपने बीच इस मोती का व्यापार था। साधारण कीमत का व्यापार था। लाओ पुड़िया, यह पुड़िया ले जाओ। समझ में आया ? नीति का जीवन तो समकिती को साधारण होता है। समझ में आया ? जिसका अन्तर लोकोत्तर जीवन जागृत हुआ, उसका लौकिक व्यवहार का नैतिक जीवन तो साधारण होता है उसमें। शोभालालजी ! लाखों रुपये के मोती की पुड़िया थी, वैसी की वैसी रख दी। वह बेचारा चिल्लाने लगा। अरे ! सेठ साहब ! अपने जिसका सौदा किया था, वह पुड़िया रह गयी है। हमारी ऊँची कीमत की पुड़िया यहाँ है। भाई ! ये रही, भाई ! मैंने खोलकर देखा तो लगा हमारा यह नहीं है, ले जाओ। वह तो ताज्जुब हो गया। आहाहा ! ये कौन है ? ये कोई देवपुरुष है ? जिसको लाखों की कीमत उसके घर में आ गयी। भाई ! ये अपना व्यापार नहीं था, भाई ! भगवानजीभाई ! सम्यग्दृष्टि की लौकिक नीति भी अलौकिक दूसरी जाति की होती है। समझ में आया ? उसको परस्त्री का त्याग, माँस, शराब, भोजन का (त्याग होता है) । अभक्ष्य का त्याग तो साधारण नैतिक में आता है। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं।

जो कोडिए ण जिप्पइ सुहडो संगामएहिं सव्वेहिं।
सो किं जिप्पइ इक्किं णरेण संगामए सुहडो।।२२।।

अर्थ - जो कोई सुभट संग्राम में सब ही संग्राम के करनेवालों के साथ करोड़ मनुष्यों को भी सुगमता से जीते, वह सुभट एक मनुष्य को क्या न जीते? जो करोड़ सुभट को जीतता है, वह एक को क्यों न जीते? समझ में आया? ... जब ले गये थे न? चालीस वर्ष पहले। सेठ को खबर नहीं होगी। कहाँ गये नेमिदासभाई? आपके गाँव में पोरबन्दर में कहा था। यह दृष्टान्त देकर कहा था। यह क्या है? पाँच पाण्डव का अर्थ है, पाँच इन्द्रियाँ। तो इन्द्रिय से आत्मा का पता नहीं लगता था। वह तो अतीन्द्रिय आत्मा-भगवान आत्मा है। वह तो अतीन्द्रिय निर्विकल्प परिणति द्वारा हाथ लगेगा। इसके अतिरिक्त हाथ लगेगा नहीं। एक कृष्ण ही उसको जीत सकता है।'कर्म कृषे सो कृष्ण कहिये, निजपद रमे सो राम कहिये।' अपने स्वरूप में रमे, आनन्दस्वरूप भगवान। कर्म कृषे-दर्शनमोह, चारित्रमोह आदि का नाश कर दे, उसका नाम कृष्ण अर्थात् आत्मा कहने में आता है।

कहते हैं कि जो आत्मा अपनी जागृति में आया, वह तो अल्पकाल में केवलज्ञान पाकर मोक्ष लेगा, लोगा और लेगा ही। वह एक सुभट को नहीं जीते? करोड़ को जीते, वह एक को नहीं जीते? वैसे कहते हैं कि **जो जिनमार्ग में प्रवर्ते, वह कर्म का नाश करे ही,...** वह तो करेगा ही। आहा! **तो क्या स्वर्ग के रोकनेवाले एक पापकर्म का नाश न करे?** तो स्वर्ग को रोकनेवाला जो पाप है, उसका नाश नहीं कर सके? आहाहा! समझ में आया? वह तो एक-दो भव करना बाकी हो तो स्वर्ग में ही जाएगा। और स्वर्ग में से निकलकर उत्तम महा राजकुल आदि में, अरबोंपति सेठ के कुल में उसका जन्म होगा। धर्मी का अन्य जगह जन्म होगा नहीं। समझ में आया? रत्नकरण्ड श्रावकाचार में आता है। छह ऋद्धि के नाम आते हैं। छह में उत्तम को प्राप्त होता है। समझ में आया?

ऐसे आचार्य महाराज कहते हैं, अरे! जिसने विकल्पमात्र छेदकर भगवान की-आत्मा की प्राप्ति की, उसको स्वर्ग मिलना तो साधारण बात है। स्वर्ग-फर्ग क्या? उसकी कोई कीमत है नहीं।

गाथा-२३

आगे कहते हैं कि स्वर्ग तो तप से (शुभरागरूपी तप द्वारा) सब ही प्राप्त करते हैं, परन्तु ध्यान के योग से स्वर्ग प्राप्त करते हैं वे उस ध्यान के योग से मोक्ष भी प्राप्त करते हैं –

सग्गं तवेण सव्वो वि पावए तहिं वि झाणजोएण।
जो पावइ सो पावइ परलोए सासयं सोक्खं।।२३।।

स्वर्गं तपसा सर्वः अपि प्राप्नोति किन्तु ध्यानयोगेन।
यः प्राप्नोति सः प्राप्नोति परलोके शाश्वतं सौख्यम्।।२३।।

नित सभी तप से स्वर्ग पाते परन्तु ध्यान–योग से।
पाता वही पाता है शाश्वत सौख्य भी पर–लोक में।।२३।।

अर्थ – शुभरागरूपी तप द्वारा स्वर्ग तो सब ही पाते हैं तथापि जो ध्यान के योग से स्वर्ग पाते हैं, वे ही ध्यान के योग से परलोक में शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ – कायक्लेशादिक तप तो सब ही मत के धारक करते हैं, वे तपस्वी मन्दकषाय के निमित्त से सब ही स्वर्ग को प्राप्त करते हैं, परन्तु जो ध्यान के द्वारा स्वर्ग प्राप्त करते हैं, वे जिनमार्ग में कहे हुए ध्यान के योग से परलोक में जिसमें शाश्वत सुख है – ऐसे निर्वाण को प्राप्त करते हैं।।२३।।

गाथा-२३ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि स्वर्ग तो तप से (शुभरागरूपी तप द्वारा) सब ही प्राप्त करते हैं, परन्तु ध्यान के योग से स्वर्ग प्राप्त करते हैं, वे उस ध्यान के योग से मोक्ष भी प्राप्त करते हैं - देखो! आचार्य (कहते हैं)।

सग्गं तवेण सव्वो वि पावए तहिं वि झाणजोएण।
जो पावइ सो पावइ परलोए सासयं सोक्खं।।२३।।

अर्थ - शुभरागरूपी तप द्वारा स्वर्ग तो सब ही पाते हैं... मिथ्यादृष्टि जैन और मिथ्यादृष्टि अन्य, वह तो साधारण स्वर्ग तो अनन्त बार मिला और स्वर्ग को पाते हैं। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पै आतमज्ञान बिन लेश (सुख न पायो)' ऐसा मिथ्यादृष्टि जैन में दिगम्बर साधु होकर, दृष्टि जिसकी पुण्य-पाप की रुचि में पड़ी है, आत्मा के ध्यान की रुचि का अभाव है, ऐसा दिगम्बर जैन साधु मिथ्यादृष्टि और अजैन साधु, बाबा आदि, वह भी शुभभाव से स्वर्ग को पाते हैं। उससे क्या?

तथापि जो ध्यान के योग से स्वर्ग को पाते है... देखो! अपना चैतन्यप्रभु ध्येय में लेकर जहाँ दृष्टि में ध्यान में आया, सम्यग्दृष्टि के ध्यान का विषय है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन ध्यान में उत्पन्न होता है। बाहर से उत्पन्न नहीं होता। समझ में आया? २३ गाथा। २३ में है। समझ में आया? द्रव्यसंग्रह में आता है न? द्रव्यसंग्रह में ४७वीं गाथा। चालीस और सात। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।**' द्रव्यसंग्रह में। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' निश्चय और व्यवहार दोनों मोक्षमार्ग ध्यान में प्राप्त होता है। उसका अर्थ क्या? अपना आत्मा अन्दर में ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान का भेद भूलकर जहाँ अन्तर में ध्येय में ध्यान लग गया, ध्येय में ध्यान लग गया। समझ में आया? उस ध्यान में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की प्राप्ति पर्याय में होती है। साथ में थोड़ा विकल्प बाकी रह गया, वह भी व्यवहारमोक्षमार्ग की प्राप्ति ध्यान में है, ऐसा कहने में आता है। द्रव्यसंग्रह की ४७ गाथा, चार और सात। सैंतालीस कहते हैं? क्या कहते हैं? सैंतालीस। समझ में आया?

भगवान आत्मा प्राप्त होता है तो ध्यान में प्राप्त होता है। शास्त्र का ज्ञान आदि तो बाह्य निमित्त है। वह तो बताते हैं कि ऐसा करना चाहिए, इतना। हमारा भी लक्ष्य छोड़कर गहराई में उतर जाना। पर्याय जो है, तलवा... तलवा अन्दर में (है, वहाँ ले जाना)।

मुमुक्षु : कैसे उतरना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं न। दर्पण का ऊपर का भाग है, दर्पण की सपाटी, दर्पण का तल कहते हैं न? पुरुषार्थसिद्धि उपाय। दर्पणतल ऐव। उसका अर्थ कि दर्पण का जो ऊपर का सपाट भाग है, वह तो उसकी पर्याय-अवस्था है और सपाटी के पीछे सारा दल है, यह तल है और वह दल है। दर्पणऐव आता है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में आता

है, अपने यहाँ बात चल गयी है। समझ में आया? दर्पण की ऊपर की सपाटी के तल में केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। उसमें लोकालोक पर्याय में जानने में आते हैं। और सपाटी के अन्दर जो दल दर्पण का मूल है, वह उसका द्रव्य कहने में आता है। वह दल पर्याय को छूता नहीं।

मुमुक्षु : यही बात जरा कठिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन है। मार्ग तो ऐसा है, भगवान! आहा! क्या करें? मार्ग की चीज़ कोई अलौकिक है। समझ में आया? और जैनदर्शन के अतिरिक्त यह बात कहीं है नहीं। उसमें भी दिगम्बर दर्शन के अतिरिक्त अन्य जगह यह बात है नहीं। समझ में आया?

ये भगवान आत्मा... जिसको दल की दृष्टि हुई, ऐसा कहते हैं। ऐसा ध्यान जिसका लगा, उस ध्यान में मुक्ति भी होगी और बीच में राग रहेगा, उसका स्वर्ग मिलना बराबर है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि स्वर्ग से फिर मनुष्य होकर मोक्ष में जाएगा। अज्ञानी को अकेला स्वर्ग मिलता है परन्तु वहाँ से निकलकर पशु और नरक में जाते हैं। समझ में आया? दर्पण का जो दल है, सपाटी की एक समय की अवस्था, दर्पण की एक समय की ऊपर की भूमिका, उसके तल में सब लोकालोक का ज्ञान होता है। केवलज्ञान और लोकालोक का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध पर्याय के साथ है, दल के साथ नहीं। इस दल को जिसने पकड़ा,... समझ में आया? ध्यान में जहाँ वस्तुद्रव्य आयी तो कहते हैं कि ध्यान से मुक्ति तो होगी, परन्तु ध्यानवाले को स्वर्ग मिले, वह स्वर्ग यथार्थ कहने में आता है कि जिस स्वर्ग के बाद मुक्ति होगी। अज्ञानी को व्रत, तप करके साधारण स्वर्ग मिलता है, शुभभाव करके स्वर्ग में जाता है, वह तो वहाँ से निकलकर पशु होकर, मनुष्य होकर नरक, निगोद में चला जाएगा। भव का अभाव तो है नहीं। भव का अभाव स्वभावस्वरूप तो ख्याल में आया नहीं। जिसमें भव नहीं है और भव का भाव नहीं है। आहाहा!

भव नहीं और भव का भाव जिसमें नहीं, ऐसा भगवान आत्मा... यहाँ कहते हैं कि जो ध्यान में लिया (तो) **ध्यान के योग से स्वर्ग पाते हैं...** आहाहा! उसमें दृष्टि अनुभव किया और उसमें घोलन चलता है। स्थिरता उपयोग नहीं जमे, तब तक घोलन चलता है कि ऐसा है, ऐसा है। इस घोलन के विकल्प का जो पुण्य है, वह तो साधारण स्वर्ग में जाएगा ही, कहते हैं। समझ में आया? देखो न! आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य क्या कहते हैं?

शुभभाव है न। दूसरा शुभभाव दूसरी जाति का (होता है)। अन्तर्मुख होकर दृष्टि तो हुई, फिर घोलन चलता है, बारम्बार यह... यह... यह... (उसे) पकड़ने को। जब तक पकड़ नहीं सके तब तक विकल्प का भाव है। उस विकल्प के भाव में भगवान की भक्ति, चरणानुयोग का अभ्यास, उससे भी यह शुभभाव कोई दूसरी जाति का है। समझ में आया? उससे तो स्वर्ग मिले और भविष्य में राजादि के स्वरूप में अवतार लेकर, तीर्थंकर या चक्रवर्ती आदि होकर मोक्ष में जाएगा। समझ में आया? उसका स्वर्ग मिलना यथार्थ है, ऐसा कहते हैं। लिखा है न? देखो! '**पावइ सो पावइ परलोए सासयं सोक्खं**'। देखो! **ध्यान के योग से स्वर्ग पाते हैं, वे ही ध्यान के योग से परलोक में शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं।** ध्यान की धारा एकाग्रता चली है, जो बाकी भाग रह गया (तो) स्वर्ग में गये, वहाँ से निकलकर मनुष्य में कुन्दकुन्दाचार्य आदि सन्त, अमृतचन्द्राचार्य आदि, पद्मप्रभमलधारी, पद्मनन्दि आचार्य सब एकावतारी—एक भव में मुक्ति में जानेवाले हैं, हों! ये सन्त पुकार करके यहाँ से जाते हैं, अरे! स्वर्ग मिलेगा। हेय... हेय... हेय। वहाँ स्वर्ग में उसको अभी हेय की दृष्टि वर्तती है। वहाँ से मनुष्य होकर, मनुष्यगति हेय, अपना स्वभाव उपादेय, उसमें रमकर वहाँ से केवलज्ञान पाकर मोक्ष चले जायेंगे। समझ में आया? यहाँ तो समकिती हो तो भी स्वर्ग में जाते हैं, यह तो मुनि की बात की। सम्यग्दृष्टि वैमानिक में ही जाते हैं, अन्य जगह जाते नहीं। समझ में आया?

श्रीमद् में कितने ही लोग कहते हैं, श्रीमद् राजचन्द्र देह छोड़कर महाविदेह में गये हैं। झूठ है। मिथ्यादृष्टि (हो, वह) महाविदेह में जाए। मनुष्य मरकर मनुष्य हो तो मिथ्यादृष्टि होता है। समझ में आया? परन्तु लोगों को मालूम नहीं, तत्त्व क्या है, वीतरागमार्ग क्या है। जिसके ऊपर स्टेम्प लगा, वह तो सीधा महाविदेह में गये हैं। क्षायिक समकित हुआ और महाविदेह में गये। वहाँ केवलज्ञान प्राप्त कर विचरते हैं। सब झूठी बात है। समझ में आया? ... अरे...! सर्वार्थसिद्धि में अभी नहीं होते। समकिती क्या, मुनि भी सर्वार्थसिद्धि में नहीं जाते। कुन्दकुन्दाचार्य का वचन है। ... इसमें ही आता है न? इसी में आता है। साधक लोकान्तिक देव आदि में जा सकते हैं, सर्वार्थसिद्धि में नहीं जा सके। ऐई! भगवानदासजी! समझ में आया? क्या? ऐ... शोभालालजी! ये आपको क्यों कहा? उसमें लिखा है कि सर्वार्थसिद्ध में गये हैं। नहीं जा सकते। आप जैसे सेठ वहाँ बैठते हैं न। ...

उसमें लिखा है। सर्वार्थसिद्ध में जा सके ही नहीं। पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें... उसमें आता है न? कहीं आता है न? ७७ गाथा। मोक्ष अधिकार। आचार्य ने खुद ने डाला है। देखो, ७७। '**अज्ज वि तिरयणसुद्धि अप्पा झाएवि लहहिं इंदत्तं**' ७७ वीं गाथा है, मोक्षप्राभृत ७७। दो सात।

अज्ज वि तिरयणसुद्धि अप्पा झाएवि लहहिं इंदत्तं।
लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति॥७७॥

अभी इस पंचम काल में भी जो मुनि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्धता युक्त होते हैं, वे आत्मा का ध्यान कर इन्द्रपद अथवा लोकान्तिक देवपद को प्राप्त करते हैं... गाथा के पाठ में है। पाठ में है, देखो! है? '**अप्पा झाएवि लहहिं इंदत्तं।**' ७७-दो सात। मोक्षपाहुड़। मोक्षपाहुड़ की ७७, अपने चलता है उसकी ७७वीं गाथा। यह चलता है वह अधिकार। देखो! '**अज्ज वि तिरयणसुद्धि।**' इस काल में भी अर्थात् भगवान कुन्दकुन्दाचार्य थे तब, उस काल में भी कहते हैं, '**अप्पा झाएवि लहहिं इंदत्तं।**' आत्मा का ध्यान करनेवाला अभी इन्द्र में जा सकता है और '**लोयंतियदेवत्तं**' लोकान्तिक देव में जाते हैं। लोकान्तिक देव एक भव करनेवाला है। ये काल स्थिति है। जघन्य, थोड़ी और उत्कृष्ट ... आठ सागरोपम की स्थिति लोकान्तिक देव की है। समझ में आया? वहाँ से निकलकर (मोक्ष जायेंगे)। एक भवतारी है। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, आज भी अपने आत्मा का ध्यान करनेवाला, दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अनुभववाला मुनि इन्द्र में जाता है अथवा लोकान्तिक में जाता है। '**तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति**'। वहाँ से छूटकर मोक्ष में जाते हैं। देखो! अपनी बात करते हैं। नाम नहीं डाले, परन्तु बात ऐसी है। समझ में आया? '**इंदत्तं**'। इन्द्रपना पावे। ... जैसे देव हो। पहले, दूसरे देवलोक में भी हो सके, लोकान्तिक में भी हो सके। **अथवा लोकान्तिक देवपद को प्राप्त करते हैं और वहाँ से चयकर निर्वाण को प्राप्त होते हैं।**

भावार्थ - कोई कहते हैं कि अभी इस पंचम काल में जिनसूत्र में मोक्ष होना कहा नहीं, इसलिए ध्यान करना तो निष्फल खेद है,... अभी ध्यान नहीं है, ऐसा कहते हैं न अभी? भाई! ... अभी अनुभव नहीं होता, हमारी आगम अनुसार श्रद्धा है। आगम उपलब्धि होती है। अभी अजमेर में बनाया न? ज्ञानसागर साधु थे न। अभी तो आगम की

श्रद्धा वह श्रद्धा है, अभी अनुभव की श्रद्धा नहीं होती। आगम के आधार से श्रद्धा, वह श्रद्धा ही नहीं, यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! पर के आधार से ज्ञान है, वह ज्ञान ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : तो क्या है वह?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या है? मिथ्याभाव है। शास्त्र के ज्ञान से हुई श्रद्धा, वह मिथ्याश्रद्धा है। वह सम्यक् श्रद्धा नहीं। सम्यक् श्रद्धा और ज्ञान, द्रव्य में से उत्पन्न होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात लोगों को (सुनने नहीं मिलती)। भगवान आत्मा में ज्ञान की पर्याय में विशेष क्षयोपशम नहीं हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। अपने द्रव्य की अन्तर्दृष्टि से जो ज्ञान हुआ, वही ज्ञान विज्ञान कहने में आता है और वह ज्ञान मोक्ष का कारण है। समझ में आया? अकेले शास्त्र का ज्ञान परालम्बी ज्ञान बन्ध का कारण है। आहाहा! बन्ध का कारण नहीं हो तो शास्त्रज्ञान नौ पूर्व और ग्यारह अंग का अनन्त बार किया। संवर, निर्जरा एक अंश भी नहीं हुए। उसका अर्थ यह है कि वह बन्ध का कारण है। आहाहा! कठिन बात, भाई! यह मार्ग तो भगवान का है, बापू! भगवान अर्थात् तुम, हों! आहाहा! हें! जिनवर का मार्ग है, भाई! जिणवर मएणं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, भाई! आहाहा! जहाँ तुझे जाना है, वह चीज़ कोई अलौकिक है। उस अलौकिक को पकड़े बिना, अनुभव बिना ज्ञान और श्रद्धा सच्ची होती नहीं। आहाहा! जैनदर्शन का मार्ग यहाँ से शुरु होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : जब तक तो आगमज्ञान करना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है। करना चाहिए का अर्थ क्या? कि है। उसमें कोई सम्यग्दर्शन उससे होगा, ऐसा है नहीं। कठिन बात।

मुमुक्षु : जब तक में क्या बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : जब तक का अर्थ-शास्त्र का ज्ञान जब तक करते हैं और आत्मा का नहीं करते, तब तक सम्यग्ज्ञान नहीं है। शास्त्र का ज्ञान करता है, परन्तु जब तक आत्मा का अन्दर लक्ष्य से ज्ञान नहीं करे, तब तक सच्चा ज्ञान नहीं है। यहाँ कहाँ बात गुप्त रखी है। खुल्ली कर दी है, भगवान! समझ में आया? विशेष ज्ञान क्षयोपशम नहीं हो, समझने

की शक्ति भी नहीं हो, उससे विज्ञान नहीं है, ऐसा है नहीं। और दूसरे को समझने की शक्ति ग्यारह अंग, नौ पूर्व पढ़ा; इसलिए ज्ञान है—ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : सब खत्म किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब खत्म ही है। आहा! कल प्रश्न किया था न? क्या बाकी रह जाता है? ऐसा सूक्ष्म रह जाता है कि अन्दर में क्षयोपशमज्ञान कुछ हुआ तो मुझे कुछ हुआ, मैं कुछ अधिक हुआ, वही दृष्टि मिथ्यात्व है। बाह्य उघाड़ का अधिकपना दृष्टि में भासे, वह दृष्टि अन्दर में नहीं जा सके। आहाहा! ऐ... मणिभाई! आपके सोमचन्दभाई नहीं आये। बड़े भाई आये हैं न? आये हैं। ... कहो, समझ में आया? देखो!

यहाँ कहते हैं, २३ गाथा का भावार्थ। **कायक्लेशादिक तप तो सब ही मत के धारक करते हैं,...** देखो। है? २३ गाथा का भावार्थ। वह सब कायक्लेश है। उपवास करना, ऊणोदरी करना, रसत्याग करना, फलाना करना, वह सब कायक्लेश है। आत्मा के सम्यग्दर्शन बिना वह सब राग का बोझ है। कहते हैं, ऐसा **कायक्लेशादिक तप तो सब ही मत के धारक करते हैं, वे तपस्वी मन्दकषाय के निमित्त से सब ही स्वर्ग को प्राप्त करते हैं,...** मिथ्यादृष्टि जैन दिगम्बर साधु नौवें ग्रैवेयक तक जाता है। कषाय मन्द है, परन्तु दृष्टि मिथ्यात्व है। उसमें क्या हुआ? उसमें कोई लाभ नहीं है। वहाँ से मनुष्यभव पायेगा, मनुष्य में से पशु होगा, पशु में से नरक में जाएगा। परम्परा चार गति है। ऐसी चीज़ है। समझ में आया? ये कोई पक्ष का मार्ग नहीं है। यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है।

मुमुक्षु : निरपेक्ष।

पूज्य गुरुदेवश्री : निरपेक्ष। यहाँ तो शास्त्रज्ञान की अपेक्षा बिना सम्यग्दर्शन होता है। गोदिकाजी! कठिन बात। मार्ग ऐसा है, भैया! यह तो चैतन्यमार्ग, जिसे हीरा अन्दर सराण पर चढ़ा है। करोड़ों रुपये का हीरा होता है न? सराण पर चढ़ाते हैं न? क्या कहते हैं? इन्हें मालूम होगा न। नीलमणि... न? पन्ना... पन्ना। पन्ना की चोंच निकालते हैं न। ये तो भगवान आत्मा चिदानन्दस्वरूप पूर्णानन्द का नाथ, कहते हैं कि उसकी जहाँ दृष्टि हुई, उसमें जो पुण्यभाव रह गया, उससे स्वर्ग बराबर है। क्योंकि बाद में मनुष्य होकर मोक्ष में जाएगा। ये स्वर्ग धूल मिला, अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया, उसमें है क्या? नन्दकिशोरजी!

सदाचार–समकित बिना भी लोग लौकिक सदाचार व्यवहार करते हैं या नहीं ? समझ में आया ? एक साधु था। बाबा। जवान साधु, हों! जवान। अन्यमति का जवान साधु था। लंगोटी पहनता था। स्नान करने गया तालाब में। लंगोटी निकालकर स्नान किया। परन्तु धुन में लंगोटी पहनना भूल गया। और गाँव में एक होटल है। कांप में होटल है। केशू भगत की होटल में आ गया। आओ महाराज! अरे! महाराज! लंगोटी भूल गये तुम। लंगोटी पहननी भूल गया। भैया! मैं लंगोटी भूल गया, श्रीकृष्ण को नहीं भूलता हूँ। उस प्रकार की धुन तो होती है न, भाई! जवान मनुष्य हो! अरे! भगत। केशू भगत था। अपने यहाँ लींबड़ीवाले पोपटभाई आते हैं न ? उनके बड़े भाई थे न। उनकी कांप में होटल थी। अरे! महाराज! आप चाय पीने आये, परन्तु लंगोटी ? अरे! भगतजी! मैं लंगोटी तालाब के किनारे भूल गया। वह भूल गया, परन्तु मैं कृष्ण को नहीं भूलता। ऐसी धुन लगती है। नग्नपना का भी भान नहीं। परन्तु वह तो मन्द कषाय है, उसमें आत्मा कहाँ आया ? ऐसी कोई विशेषता उसमें नहीं है। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि आत्मा की दृष्टि और ज्ञान–भानवाला ९६ हजार स्त्री की भोग ले तो भी वह संवर, निर्जरा की दशा में है। समझ में आया ? उस समय भी राग से विरक्त बुद्धि अन्दर में है। वह दृष्टिवन्त धर्मात्मा स्वर्ग में जाए, वह स्वर्ग सही, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! क्या कहते हैं ? देखो! कुन्दकुन्दाचार्य पक्षपात रहित की परम्परा सर्वज्ञ के पन्थ को प्रसिद्ध करते हैं, मार्ग यह है। मानो, न मानो, समझो, न समझो, मार्ग यह है। **तपस्वी मन्दकषाय के निमित्त से सब ही स्वर्ग को प्राप्त करते हैं।**

एक साधु तो ऐसा था, भाई! ... क्या कहते हैं ? बालू। रेती का नेरु उसमें बैठा था। वहाँ पानी आया। पानी में वह गया तो भी खबर नहीं पड़ी। कितने ही दूर गया बाद में अरे..! ये क्या ? मुझे तो खबर ही नहीं। परन्तु वह सब मन्द कषाय की बात है। वह सम्यग्दृष्टि नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : मन्द कषाय भी ऐसी जाति की होती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी जाति की होती है। जिससे स्वर्ग मिला, उसमें क्या हुआ ? धूल हुई ?

यहाँ तो भगवान आचार्य कहते हैं, **कायक्लेशादिक तप तो सब ही मत के धारक करते हैं, वे तपस्वी मन्दकषाय के निमित्त से सब ही स्वर्ग को प्राप्त करते हैं, परन्तु जो ध्यान के द्वारा स्वर्ग प्राप्त करते हैं, वे जिनमार्ग में कहे हुए...** वैसा ध्यान, हों ! ऐसे ही कोई पुण्य का कोई रह जाए, ऐसा नहीं। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव को... समझ में आया ? जो मार्ग कहा, वह मार्ग तो आत्मा की दृष्टि करके, ध्यान करके शुभभाव से स्वर्ग में जाते हैं। **परलोक में जिसमें शाश्वत् सुख है ऐसे निर्वाण को प्राप्त करते हैं।** स्वर्ग में से निकलकर मनुष्य होकर केवलज्ञान पायेगा, मोक्ष जाएगा। वह (अज्ञानी) स्वर्ग में से निकलकर नरकादि, पशु आदि में जाएगा। इतना अन्तर है। इसलिए वह स्वर्ग स्वर्ग नहीं है। समझ में आया ? अन्यमति में नग्न साधु होते हैं। वहाँ आये थे। नग्न साधु। हम जंगल जाने निकले थे। चलो, उसके पास जाते हैं। अन्यमति का नग्न साधु था। हम जंगल बाहर जाते थे। साधु ने कहा, आईये।... दिखते थे न। (संवत्) १९८० की बात है। ४६ वर्ष पहले की बात है। साधु ने कहा, आईये। ये क्या है ? पूछा। कुछ भान नहीं। नग्न फिरे और राख लगाये। मूढ़ जैसे।

यहाँ तो कहते हैं, जहाँ अन्दर में से विवेक प्रगट हुआ है... आहाहा ! 'लागी लगन हमारी जिनराज सुजस सुण्यो' आता है या नहीं ? 'काहू के कहे कबहू न छूटे लोकलाज सब डारी, जैसे अमली अमल करत समय लाग रही ज्युं खुमारी, लागी लगन हमारी' मैं चैतन्यमूर्ति हूँ, मैं ज्ञान, आनन्द हूँ। ऐसी लगनी लगी, 'लागी लगन हमारी जिनराज सुजस सुण्यो मैं...' आत्मा का गाना गाया, वह सुजस मैंने सुना और मेरी दृष्टि खुल गयी। और मैं जैसे 'अमली अमल करत समय' क्या कहते हैं ? अफीम ... अफीम। अफीम आदि पीते हैं और अमल चढ़ता है। वैसे हमें अमल चढ़ गया है। 'लाग रही ज्युं खुमारी, जिनराज सुजस सुण्यो मैं।' ऐसा धर्मीजीव सम्यग्दृष्टि को स्वर्ग मिले, वह स्वर्ग के बाद मुक्ति होगी। अज्ञानी को स्वर्ग आदि मिलता है, उसकी कोई कीमत है नहीं।

गाथा-२४

आगे ध्यान के योग से मोक्ष प्राप्त करते हैं, इस दृष्टान्त को दार्ष्टान्त द्वारा दृढ़ करते हैं–

अइसोहणजोएणं सुद्धं हेमं हवेइ जह तह य।
कालाईलद्धीए अप्पा परमप्पओ हवदि।।२४।।

अतिशोभनयोगेनं शुद्धं हेमं भवति यथा तथा च।
कालादिलब्ध्या आत्मा परमात्मा भवति।।२४।।

ज्यों तीव्र शोधन–योग से ही शुद्ध होता स्वर्ण है।
त्यों आतमा परमात्मा कालादि लब्धि से बने।।२४।।

अर्थ – जैसे सुवर्ण पाषाण सोधने की सामग्री के सम्बन्ध से शुद्ध स्वर्ण हो जाता है, वैसे ही काल आदि लब्धि जो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप सामग्री की प्राप्ति से यह आत्मा कर्म के संयोग से अशुद्ध है वही परमात्मा हो जाता है।।२४।।

भावार्थ सुगम है।

गाथा-२४ पर प्रवचन

आगे ध्यान के योग से मोक्ष को प्राप्त करते हैं, उसको दृष्टान्त द्वारा दृढ़ करते हैं- आचार्य दृढान्त देकर (दृढ़ करते हैं)।

अइसोहणजोएणं सुद्धं हेमं हवेइ जह तह य।
कालाईलद्धीए अप्पा परमप्पओ हवदि।।२४।।

देखो! कुन्दकुन्दाचार्य ने कालादि लब्धि लिखा है। धन्नालालजी! कितने ही काललब्धि को नहीं मानते। ये रतनचन्दजी हैं न? नहीं मानते। काललब्धि नहीं। अर्धपुद्गलपरावर्तन संसार रहे, तब समकित होता है, ऐसा नहीं। किसी भी समय अर्धपुद्गल हो जाए। ऐसी बात नहीं, झूठी बात है। उसमें लिया है। सर्वार्थसिद्ध में लिया है।

पूज्यपादस्वामी। करणलब्धि है, भवलब्धि है। वह तो उसमें से लिया है। उसमें लिया है उसको झूठा ठहराया है। राजमल्ल में है न? यत्नसाध्य नहीं, सहजसाध्य है। उसका अर्थ अकेला पुरुषार्थ नहीं है, ऐसा अर्थ है। अकेल सहज स्वरूप का साधन करता है तो साध्य होता है। अकेले पुरुषार्थ को अलग करे तो ... हो गया। बहुत वर्ष पहले पंचाध्यायी पढ़ा था। पंचाध्यायी तो संवत् १९८२ के वर्ष में देखा। १९८२-८२ पंचाध्यायी। १९८३ के वर्ष में हम अर्थ करते थे। समझ में आया? अकेला पुरुषार्थ काम नहीं आता। स्वभाव, पुरुषार्थ, कर्म का अभाव, भवितव्यता, नियति एक समय में पाँचों होते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : अकेला पुरुषार्थ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला पुरुषार्थ-यह वीर्य है। मैं पुरुषार्थ करूँ, द्रव्य में अनन्त गुण का पिण्ड है, उसकी दृष्टि तो नहीं करता और अकेला वीर्य-पुरुषार्थ गुण पर दृष्टि देता है। जयकुमारजी! ऐसा वहाँ है, हों! पंचाध्यायी में ऐसा है। पुरुषार्थ से नहीं होता, अकेले पुरुषार्थ से नहीं होता, ऐसा पाठ वहाँ है। उसका अर्थ एकान्त है। वस्तु भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध चैतन्य है, उसमें पुरुषार्थ स्वभाव में जम गया तो काललब्धि, निमित्त, कर्म का अभाव पाँचों एक समय में होते हैं।

वह आचार्य यहाँ कहते हैं। '**अप्पा परमप्पओ हवदि**।' ऐ... सेठ! '**अप्पा परमप्पओ हवदि**।' है? कहाँ है? २४ में अन्तिम पद। '**अप्पा परमप्पओ हवदि**।' आत्मा परमात्मा होता है। तारणस्वामी ने बहुत लिखा है। अप्पा परमअप्पा-आत्मा ही परमात्मा है। दूसरा परमात्मा मुझसे दूर मेरा परमात्मा है नहीं। आहाहा!

अर्थ : जैसे सुवर्ण-पाषाण शोधने की सामग्री के सम्बन्ध से शुद्ध सुवर्ण हो जाता है... शुद्ध सुवर्ण हो जाता है। **वैसे ही काल आदि लब्धि जो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावरूप सामग्री...** द्रव्य की सामग्री, क्षेत्र की सामग्री, स्वकाल की सामग्री और उस प्रकार के शुद्धभाव की सामग्री। समझ में आया? इष्टोपदेश में लिया है। कालादि लब्धि इष्टोपदेश में है। परन्तु काललब्धि का ज्ञान किसको होता है? अपने स्वभाव सन्मुख हुआ और भान हुआ, तब काललब्धि, भवितव्यता का ज्ञान उसको सच्चा होता है। अकेली काललब्धि, काललब्धि पर्याय में ले तो उसको काललब्धि का ज्ञान भी सच्चा होता नहीं। समझ में आया? कठिन मार्ग, भाई! आहाहा!

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। उसमें भाव के साथ, हों! उस प्रकार के शुद्धभाव की सामग्री। स्वभाव सन्मुख के शुद्धभाव की सामग्री। क्षेत्र भी वह, द्रव्य भी वह और काल भी वह। ऐसी सामग्री प्राप्त कर **यह आत्मा कर्म के संयोग से अशुद्ध है, वही परमात्मा हो जाता है।** सुवर्ण को जैसे तेरह वान, चौदह वान होता है न? आपका तो धन्धा है या नहीं? सोने का धन्धा है। सरकार के दबाव में कालाबाजार करना पड़ता है, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो किसी का दबाव ही नहीं, ऐसा भगवान आत्मा है।

कहते हैं, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूपी सामग्री। जब भाव की शुद्धता केवलज्ञान प्राप्त करने की योग्यता हो, तब सब सामग्री निमित्त की उसके पास मिलती है, मिलती है और मिलती ही है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : क्षेत्र भी वह?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षेत्र भी वह। क्षेत्र होता है न? यहाँ पंचम काल है, यहाँ मोक्ष नहीं होता। ... क्षेत्र भी वह, द्रव्य भी ऐसा संहनन मजबूत। और अपने द्रव्य की योग्यता भी शुद्धभाव की हो। और स्वकाल हो। अपने स्वकाल में केवलज्ञान प्राप्त करने का अथवा मोक्षमार्ग प्राप्त करने का स्वकाल हो। वह सब सामग्री मिलती है तो एक समय में एक है, वहाँ पाँचों हैं।

मुमुक्षु : यहाँ तो सुकाल ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ सुकाल ही है, दुष्काल है कहाँ? यहाँ १५-२० वर्ष से सुकाल था। यहाँ तो आत्मा में सुकाल ही है। समझ में आया?

कहते हैं कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप सामग्री प्राप्त कर **यह आत्मा कर्म के संयोग से अशुद्ध है...** सुवर्ण जैसे कथीर और तांबे के संयोग से अशुद्ध है। वैसे भगवान आत्मा कर्म के निमित्त के आश्रय से अशुद्ध है। ऐसी सामग्री मिलने से शुद्धभाव (प्राप्त करता है)। द्रव्य, क्षेत्र, काल भी ऐसा ही होता है तो केवलज्ञान की लब्धि प्राप्त होती है। उसको जरूर मोक्ष होता है। समझ में आया? ... समझ में आया? कालादिलब्धि है। कभी ऐसा शब्द भी आ जाए। एकान्त काल नहीं। पुरुषार्थ, काल सब है न? गोम्मटसार में है। गोम्मटसार में। अकेला काल नहीं, अकेला स्वभाव नहीं, अकेला पुरुषार्थ नहीं, अकेला

निमित्त नहीं, अकेली भवितव्यता नहीं। पाँचों एक समय में (होते हैं)। भगवान आत्मा अपने स्वभाव में जहाँ ... वहाँ पाँचों सामग्री समवाय की होती है। कमी होती नहीं। मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। एक कारण है वहाँ सब कारण है ही। उसमें लिखा है। मिलते ही हैं। एक कारण के साथ दूसरा कारण मिले, तब ही कारण कहने में आता है।

अपना स्वभाव परमानन्द प्रभु, उसकी अन्तर्दृष्टि और ज्ञान हो, तब सब सामग्री साथ में है ही। बाहर कोई सामग्री खोजने जाना नहीं है। आता है न वह? प्रवचनसार १६वीं गाथा। स्वयंभू-आत्मा अपने से ही प्राप्त होता है। बाह्य की सामग्री खोजने में वृथा क्लेश क्यों करते हो? ऐसा आता है। अपने स्वयंभू, भगवान स्वयंभू अपने से प्राप्त होता है। कोई निमित्त से या विकल्प से प्राप्त होता नहीं। ऐसा आत्मा जब तक पूर्णता न हो, तब तक स्वर्ग में जाएगा, पूर्ण सामग्री मिलेगी तो मोक्ष में जाएगा। समझ में आया? अब थोड़ी दूसरी बात करते हैं। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-७१, गाथा-२५-२६, बुधवार, श्रावण कृष्ण १०, दिनांक २६-०८-१९७०

अष्टपाहुड़ में मोक्षपाहुड़ चलता है। उसमें २४वीं गाथा हो गयी। देखो, उसमें २४ में क्या कहा? जैसे सुवर्ण अग्नि से तप्त करने में आये तो सुवर्ण शुद्ध होता है। सुवर्ण... सुवर्ण। वैसे आत्मा अपना स्वरूप का भान हुआ है, उसके बाद की बात है, हों! समझ में आया? शुद्ध चैतन्यवस्तु, मैं निर्विकल्प परमानन्दस्वरूप हूँ, ऐसी दृष्टि हुई बाद में कहते हैं कि कालादिलब्धि प्राप्त (होकर) आत्मा में से परमात्मा होता है। समझ में आया? **काल आदि लब्धि जो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भावरूप सामग्री की प्राप्ति से...** उसमें काल तो उस समय प्राप्त होनेवाली दशा है। भाव भी वह है। स्वभाव सन्मुख हुआ, वह भाव है। चैतन्य ज्ञायकस्वभाव आनन्द, उसका आराधन करना है। कोई काल का आराधना नहीं (करना) है। समझ में आया? कालादिलब्धि तो आती है। उस समय दृष्टि क्या पर्याय पर

रखनी है ? द्रव्य जो चैतन्य भगवान पूर्णानन्दस्वरूप पर दृष्टि रखने से भाव शुद्ध जब पूर्ण केवलज्ञान प्राप्ति का भाव आता है, तब काललब्धि भी साथ में है तो मोक्ष उसको होता है। समझ में आया ?

कल बात की थी। बहुत वर्ष पहले वह चर्चा हुई थी। समझ में आया ? ४२ वर्ष— ४० और २। बहुत चर्चा हुई थी। दामनगर में एक सेठ था। वह ऐसा ही कहते थे, जब काल पकेगा तब होगा, जब काल पकेगा तब होगा। आत्मा पुरुषार्थ क्या करे ? समझ में आया ? यहाँ दामनगर है। छोटा है। वह बहुत कहते थे। वहाँ हमारा चौमासा संघवी के उपाश्रय में था, वह कहते थे। उस समय हम द्रव्यसंग्रह पढ़ते थे। कल बताया था न दोपहर को ? वही पृष्ठ पढ़ते थे। उसी समय काल हेय है, आत्मा उपादेय आराधन करनेयोग्य भाव है। पोपटभाई ! वहाँ वह बात करते थे और मैं वही पढ़ता था। वही एक अधिकार। काल से मुक्ति होती है, बराबर है। परन्तु काल तो हेय है। अपना आनन्दस्वरूप भगवान उपादेय है। उपादेय का अर्थ दृष्टि वहाँ करके उसका सत्कार अथवा आदर करना, स्वभाव का आश्रय करना वह आत्मा उपादेय (किया, ऐसा) कहने में आता है। पण्डितजी !

वस्तु आत्मा अन्दर है। जिसको अन्तर में रुचि जमी, स्वभाव की रुचि जमी, उसको तो रुचि का ही पुरुषार्थ होता है। समझ में आया ? रुचि अनुयायी वीर्य, आता है या नहीं ? श्वेताम्बर में एक शब्द आता है। देवचन्दजी का। रुचि अनुयायी वीर्य। जिसकी रुचि हो, उस ओर पुरुषार्थ गति करता है। जिसकी जरूरत लगे, उस ओर पुरुषार्थ हुए बिना रहे नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : काल पके, तब हो जाएगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु काल कब पकेगा ? मोक्षमार्गप्रकाशक में आया है न ? काललब्धि कोई दूसरी चीज़ नहीं है। जिस समय जो भाव होनेवाला है, वह नियत और वह काल अपने पुरुषार्थ से होता है।

मुमुक्षु : तो क्या करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव सन्मुख पुरुषार्थ करना, वह करना। क्या करना (क्या) ? समझ में आया ? अन्तर में वस्तु चिदानन्दस्वरूप सहजानन्दमूर्ति आत्मा है, उसका पहले

शास्त्र से, गुरुगम से ज्ञान करके स्वभाव-सन्मुख ढलना, अन्तर्मुख होना, वह करना। उसमें पाँचों समवाय प्राप्त हो जाते हैं।

मुमुक्षु : आज सब बात देना।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तिम दिन है। आप तो रहनेवाले हो या नहीं? कल गुजराती में होगा। कल से गुजराती में होगा। समझ में आया?

मुमुक्षु : आज समझा दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन समझाये? आत्मा समझनेवाला है, वह उसको समझा दे। आत्मा अपना गुरु है, आत्मा अपना देव है, आत्मा अपना तीर्थ है, आत्मा अपना सिद्ध समान शक्तिवान परमात्मा है। समझ में आया? वह कोई बाहर से मिलनेवाली चीज़ नहीं है। अन्तर्मुख होकर, कहते हैं कि अपने स्वभाव का साधन करते है, उसमें पाँचों लब्धियाँ प्राप्त होती हैं। कालादि जो कहते हैं वह। अब २५वीं कहते हैं।

गाथा-२५

आगे कहते हैं कि संसार में व्रत, तप से स्वर्ग होता है, वह व्रत तप भला है, परन्तु अव्रतादिक से नरकादिक गति होती है, वह अव्रतादिक श्रेष्ठ नहीं हैं ह्र

वर वयतवेहि सग्गो मा दुक्खं होउ णिरइ इयरेहिं।
छायातवट्ठियाणं पडिवालंताण गुरुभेयं।।२५।।

वरं व्रततपोभिः स्वर्गः मा दुःखं भवतु नरके इतरैः।
छायातपस्थितानां प्रतिपालयतां गुरुभेदः।।२५।।

नित श्रेष्ठ है व्रत तपों से दिव पर न उल्टे से नरक।
ज्यों धूप छाया स्थ प्रतिपालक में अन्तर है महत्।।२५।।

अर्थ **– व्रत और तप से स्वर्ग होता है वह श्रेष्ठ है, परन्तु अव्रत और अतप से**

प्राणी को नरकगति में दुःख होता है वह मत होवे, श्रेष्ठ नहीं है। छाया और आतप में बैठनेवाले के प्रतिपालक कारणों में बड़ा भेद है।

***भावार्थ* – जैसे छाया का कारण तो वृक्षादिक हैं, इनकी छाया में जो बैठे वह सुख पावे और आताप का कारण सूर्य, अग्नि आदिक हैं, इनके निमित्त से आताप होता है जो उसमें बैठता है, वह दुःख को प्राप्त करता है, इस प्रकार इनमें बड़ा भेद है, इस प्रकार ही जो व्रत, तप का आचरण करता है, वह स्वर्ग के सुख को प्राप्त करता है और जो इनका आचरण नहीं करता है, विषय–कषायादिक का सेवन करता है, वह नरक के दुःख को प्राप्त करता है, इस प्रकार इनमें बड़ा भेद है। इसलिए यहाँ कहने का यह आशय है कि जब तक निर्वाण न हो तब तक व्रत–तप आदि में प्रवर्तना श्रेष्ठ है, इससे सांसारिक सुख की प्राप्ति है और निर्वाण के साधने में भी ये सहकारी हैं। विषय–कषायादिक की प्रवृत्ति का फल तो केवल नरकादिक के दुःख हैं, उन दुःखों के कारणों का सेवन करना यह तो बड़ी भूल है, इस प्रकार जानना चाहिए।।२५।।**

गाथा–२५ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि संसार में व्रत, तप से स्वर्ग होता है, वह व्रत, तप भला है परन्तु अव्रतादिक से नरकादिक गति होती है, वह अव्रतादिक श्रेष्ठ नहीं है – सम्यग्दृष्टि की बात है, हों! सम्यग्दृष्टि बिना व्रतादि है, वह तो व्रत है ही नहीं। यहाँ तो आचार्य ऐसा फरमाते हैं कि आत्मा का भान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ परन्तु बाद में स्वरूप में थोड़ी स्थिरता करके व्रतादि का शुभभाव होता है तो उससे स्वर्ग मिलता है। परन्तु यदि अकेला पाप का भाव करे। समझ में आया? तो उससे दुःख के स्थान में जाना पड़े। समकिती तो नरक में जाते नहीं।

वह तो कल, परसों कहा था न? सम्यग्दृष्टि को अपना चैतन्यस्वरूप शुद्ध आनन्द का दृष्टि में भान है, उस कारण से, उसको अशुभभाव तो आता है परन्तु अशुभभाव में भविष्य के आयुष्य का बन्ध नहीं होता। समझ में आया? लेश्या में आता है न? पण्डितजी! लेश्या। २६ भाग लेश्या के आते हैं न? उसमें बीच–बीच में आयुष्य बँधता है। ये तो आधार माँगते थे, (इसलिए कहा)।

मुमुक्षु : ... मार्गणा में आता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है, वह तो आता है। लेश्या के २६ भाग आते हैं न ? उसमें बीच में आयुष्य बँधता है, आता है। न्याय से ऐसा है। सम्यग्दर्शन जहाँ आत्मा का भान हुआ, बाद में भविष्य का बन्ध तो एक वैमानिक का (होता है), और नारकी एवं देव को मनुष्य का (बन्ध होता है), इसके अतिरिक्त बन्ध होता नहीं। समझ में आया ? वह पशु में नहीं जाए, नरक में नहीं जाए, स्त्री नहीं होवे, नपुंसक नहीं हो। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष में भी न जाए। आहाहा !

भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप, उसके अन्दर सम्पदा का भान हुआ, (वहाँ) क्या बाकी रहा ? स्थिरता बाकी है। समझ में आया ? वह अनन्त पुरुषार्थ है। समकित से भी चारित्र में अनन्त पुरुषार्थ है परन्तु वह पुरुषार्थ कदाचित् नहीं जमे, नहीं हो सके तो कहते हैं कि समकिती को थोड़ी शान्ति प्रगट करके व्रतादि के विकल्प में आना कि जिससे पुण्यबन्ध होकर स्वर्ग में जाए। ऐसी बात है यहाँ।

वर वयतवेहि सग्गो मा दुक्खं होउ णिरइ इयरेहिं।
छायातवट्ठियाणं पडिवालंताण गुरुभेयं ।।२५।।

अर्थ : व्रत और तप से स्वर्ग होता है, वह श्रेष्ठ है,... पंचम गुणस्थान में या मुनि में अपने स्वरूप की स्थिरता जमती है, तब उसमें पंच महाव्रत आदि का भाव मुनि को होता है, श्रावक को भी बारह व्रत का भाव (होता है)। उस व्रत का फल तो पुण्य है। व्रत शुभभाव है। उसका फल कोई संवर, निर्जरा नहीं। समकिती को, हों ! समझ में आया ? शुभभाव आस्रव है, पुण्य है, बन्ध का कारण है। यहाँ आचार्य इतना लेते हैं कि **परन्तु अव्रत और अतप से प्राणी को नरकगति में दुःख होता है, वह मत होवे,...** वास्तव में तो सम्यग्दृष्टि पहली नरक का आयुष्य बँधा हो तो नरक में जा सकता है। समझ में आया ? जैसे श्रेणिक राजा। पहली नरक का आयुष्य बँध गया परन्तु बाद में उसको पंचम गुणस्थान योग्य दशा आती नहीं। समझ में आया ? तो उसको उस गति में जाना ही पड़े। यहाँ साधारण अशुभ उपयोग नहीं करना और सम्यग्दर्शनसहित शुभ उपयोग में आना, इतनी बात समझने को ऐसा कहते हैं। शुभ उपयोग से स्वर्ग भला है, परन्तु अशुभ उपयोग से

नीच गति में जाना, वह ठीक नहीं है। बस, इतनी बात है। समझ में आया? जब तक शुद्ध उपयोग नहीं हो, केवलज्ञान की प्राप्ति का कारण शुद्ध उपयोग नहीं हो, दृष्टि में शुद्ध दृष्टि होने पर भी एकदम शुद्ध उपयोग जो केवलज्ञान का कारण, ऐसा नहीं हो, तब तक सम्यग्दृष्टि को भी व्रत, तप का शुभभाव आता है, उससे स्वर्ग मिलता है।

छाया और आतप में बैठनेवाले के प्रतिपालक कारणों में बड़ा भेद है। देखो! दोनों पुरुष को सिद्धपुर जाना है। बीच में एक पुरुष चलते-चलते छाया में बैठता है और एक पुरुष चलते-चलते धूप में बैठता है। धूप में बैठकर भी विचार, लक्ष्य तो वहीं जाने का है और छाया में बैठकर भी लक्ष्य तो शुद्धोपयोग प्राप्त कर मुक्ति में जाने का है। परन्तु छाया में बैठनेवाले को प्रतिकूल संयोग नहीं है। आताप में बैठनेवाला धूप में है, इतना कष्ट है, इतनी बात है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन आत्मा के अनुभवसहित निर्विकल्प आत्मा का भान हुआ, भगवान पूर्णानन्द का नाथ, साक्षात् परमात्मा स्वयं निज स्वरूप से सिद्ध समान सदा पद मेरो। मेरा पद तो सिद्ध समान ही मैं हूँ। ऐसी दृष्टि जम जाए, बाद में कदाचित् पूर्ण शुद्ध उपयोग जल्दी नहीं आये तो बीच में व्रत और तप का शुभभाव करना, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। समझ में आया? इष्टोपदेश में ऐसी गाथा है।

मुमुक्षु : यही तो हम चाहते थे, ईजाजत तो मिले व्रत, तप की।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु सम्यग्दर्शन सहित कहते हैं। अकेला व्रत, तप तो लंघन है। क्या है? वह तो बालतप है। उसकी यहाँ बात है ही नहीं। वह तो मूर्खतापूर्ण तप और मूर्खतापूर्ण व्रत है। समयसार में बालतप कहा है न? सर्वज्ञ बालतप कहते हैं। यहाँ तो सम्यग्दर्शन की महिमा, उसमें शुद्धोपयोग की महिमा गाते हैं। शुद्ध उपयोग सम्यग्दृष्टि को भी कभी-कभी आता है। समझ में आया? और पंचम गुणस्थानवाले श्रावक को भी कभी-कभी सामायिक आदि ध्यान में हो, (तब) शुद्ध उपयोग आता है। सम्यग्दर्शन है इस कारण से।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़ा।

मुमुक्षु : कितने समय?

पूज्य गुरुदेवश्री : समय नहीं, है तो असंख्य समय। असंख्य समय आता है, परन्तु थोड़ा, बहुत थोड़ा आता है। क्योंकि छठवें गुणस्थान की स्थिति पौन सेकेण्ड के अन्दर है। सप्तम की उससे आधी है। यहाँ भी थोड़ा है। यहाँ चौथे-पाँचवें में थोड़ा है, बस, इतना कहना है।

मुमुक्षु : कितने काल बाद आता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कई बार तुरन्त आ जाए, कई बार दो-चार महीने के बाद भी आ जाए। कई बार एक महीने में बहुत बार भी आ जाए। उसका कोई नियम नहीं है।

मुमुक्षु : नरक आयु का बन्ध तो हो गया है और वर्तमान ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... नहीं। सम्यग्दृष्टि है, नरक आयु का बन्ध पड़ा हो तो उसको आगे बढ़ने का पंचम गुणस्थान नहीं आयेगा। दूसरा समकिती है, उसको पंचम-छठा गुणस्थान आ सकता है, इतना अन्तर है। समझ में आया ? जैसे श्रेणिक राजा। नरक का आयु बँध गया। अभी उसको पंचम गुणस्थान नहीं आयेगा। मुनिपना नहीं आयेगा। जिसको आयुष्य बँधा नहीं, ऐसा समकिती जीव है, वह आगे बढ़कर केवलज्ञान भी उस भव में ले सकता है। समझ में आया ? आहाहा ! अरे ! तीर्थंकरगोत्र बँध जाओ, समकिती को, पंचम गुणस्थान को, छठवें में तो उस भव में केवल नहीं ले सकते। पण्डितजी ! समझ में आया ? दूसरा भव उसको करना ही पड़ेगा।

मुमुक्षु : तो दो कल्याणक के तीर्थंकर होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : होते हैं, वह तो महाविदेह में। यहाँ तो पंच कल्याणक की बात है। वह तो महाविदेह में दो कल्याणक ... उस भव में तीर्थंकर नया बँधता है। महाविदेहक्षेत्र में पूर्व में तीर्थंकरगोत्र बाँधकर नहीं आया हो ऐसा भी कोई जीव सम्यग्दर्शन पाकर तीर्थंकरगोत्र का नया बन्ध उस भव में करता है। उस भव में ही केवलज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। महाविदेह में। भरतक्षेत्र में नहीं होते। भगवान वहाँ विराजते हैं। ऐसा कोई जीव हो, तीर्थंकरगोत्र बँधा न हो, जन्म हुआ और सम्यग्दर्शन पाया, ज्ञान हुआ, बाद में तीर्थंकरगोत्र कोई चौथे गुणस्थान में, कोई पंचम में, कोई छठे में बाँधते हैं। कोई दीक्षा लेने के बाद बाँधते हैं। तो दो कल्याणक रह गये। दीक्षा लेने के पहले (बाँधता हो) तो दीक्षा, केवलज्ञान और

निर्वाण, तीन कल्याणक होते हैं। और यही दीक्षा के बाद (बाँधे) तो केवलज्ञान और निर्वाण दो होते हैं। उस भव में बाँधे और उस भव में केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। शास्त्र में आता है। ऐ... पोपटभाई!

भगवान आत्मा चैतन्य का नाथ विराजता है। अनन्त आनन्द की खान प्रभु महाप्रभु है न। वहीं के वहीं तीर्थंकरगोत्र बँधे। मैं तो यहाँ कहता हूँ। एक बार पाँच कल्याणकवाला तीर्थंकरगोत्र यहाँ बँध जाए तो उस भव में केवलज्ञान नहीं होगा। समझ में आया? बन्ध हुआ न? तो उसको स्वर्ग में जाना पड़ेगा। समझ में आया? बन्ध है न।... का बन्ध और उसके साथ तीर्थंकरगोत्र का बन्ध। समझ में आया? भगवान आत्मा अबन्धस्वरूपी प्रभु, उसमें गति का या तीर्थंकरगोत्र का बन्ध पड़ जाए तो भव करना पड़ेगा। और वह बन्ध नहीं हो तो उसी भव में भी केवलज्ञान प्राप्तकर मोक्ष जाएगा। समझ में आया?

भावार्थ : कहते हैं, **जैसे छाया का कारण तो वृक्षादिक हैं...** चलते-चलते शुद्ध उपयोग आया नहीं। जैसे दो आदमी चलते थे। एक जाकर वृक्ष के नीचे बैठ गया और अपने तीसरे आदमी को मिलना था। समझ में आया? दूसरा आदमी चलकर धूप में बैठ गया। तीसरे को मिलना था। दोनों को। परन्तु एक छाया में बैठा और एक आतप में बैठा। ऐसे आत्मा में केवलज्ञान प्राप्त होने का शुद्ध उपयोगरूपी चीज़ ... प्राप्त करना है तो समकिती को वही करना है। समझ में आया? शुद्ध उपयोग कभी-कभी आता है, परन्तु वह शुद्ध उपयोग ऐसा हो कि शुद्धोपयोग के कारण उस भव में केवलज्ञान हो जाए। ऐसे शुद्धोपयोग की राह देखते हैं। वाट को क्या कहते हैं? उसकी राह देखते हैं। हमारे में वाट कहते हैं। इन्तजार। जो छाया में बैठा है, उसको भी विचार तो शुद्धोपयोग का ही लाना है, आताप में बैठा है, उसको भी शुद्धोपयोग ही लाना है। अशुभभाव में है, उसको भी शुद्ध उपयोग ही लाना है और शुभभाव में है उसको भी शुद्ध उपयोग ही लाना है। परन्तु अशुभ की तुलना शुभ में है, वह छाया में है और अशुभ में है, वह दु:ख में है। इतनी बात की है पाठ में। समझ में आया?

जैसे छाया का कारण तो वृक्षादिक हैं... वृक्षादिक या कोई बड़ा मकान हो, छाया हो। बड़ा मकान हो, (उसकी) छाया हो तो नीचे बैठ जाए। ऊपर चद्दर हो तो नीचे बैठ

जाए। **उनकी छाया में जो बैठे वह सुख पावे...** सुख पावे का अर्थ बाह्य अनुकूलता की बात है, हों! आत्मा की बात यहाँ नहीं है।

मुमुक्षु : वेदन तो ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वेदन तो आत्मा का है ही। परन्तु शुद्ध उपयोग नहीं है, तब तक छाया में शुभ उपयोग आता है, इतनी बात है। शुद्ध उपयोग नहीं है, तब तक शुभ उपयोग में आता है, वह छाया में बैठा है। उसमें पुण्य बँधेगा और स्वर्ग में जाएगा।

मुमुक्षु : उस समय छाया का वेदन तो करता होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : छाया के वेदन की बात यहाँ नहीं है। ये तो साता में है, वहाँ दु:ख नहीं है। लौकिक की अनुकूलता का सुख, उतनी बात है। यहाँ तो दृष्टान्त है।

सम्यग्दृष्टि को अपना अनुभव होने पर भी जब तक शुद्ध उपयोग केवलज्ञान प्राप्त करने का नहीं आये, तब तक अशुभ से बचने को शुभ उसको करना ठीक है। इतना। समझ में आया? अशुभ से बचने को, दुर्गति न हो अथवा भविष्य में दु:ख में का स्थान न हो, उस कारण उसको शुभभाव सम्यग्दर्शनसहित ऐसा सहज आता है। समझ में आया? उससे स्वर्ग मिलता है।

और आताप का कारण सूर्य, अग्नि आदिक हैं... सूर्य और अग्नि आदि हो। अग्नि जलती हो, वहाँ बैठ जाना। **इनके निमित्त से आताप होता है, जो उसमें बैठता है, वह दु:ख को प्राप्त करता है, इस प्रकार इनमें बड़ा भेद है, इस प्रकार ही जो व्रत, तप का आचरण करता है, वह स्वर्ग के सुख को प्राप्त करता है...** सम्यग्दृष्टि आत्मा का भानसहित, उसकी बात है, हों! अकेला व्रत, तप तो अनन्त बार किया। उसकी यहाँ बात है ही नहीं। आहाहा! थोड़ा पुरुषार्थ अन्दर शुभभाव में जाता है। वास्तव में तो व्रत का शुभभाव आता है, उसमें तो शान्ति और स्थिरता बढ़ता है, तब व्रत का शुभभाव आता है। समझ में आया? अकेला शुभभाव आता है, ऐसा है? चौथे गुणस्थान में शुभभाव है और व्रत, तप है—ऐसा है? समझ में आया? क्या कहा समझ में आया? चौथे गुणस्थान में है और वहाँ व्रत, तप करता है, ऐसा है? चौथे तो व्रत, तप होते ही नहीं। वह तो अविरत सम्यग्दृष्टि है। पंचम गुणस्थान या छठे गुणस्थान में आते हैं, शान्ति और स्थिरता बढ़ गयी

है, उसमें ऐसा व्रत, तप का शुभभाव हो तो उसे पुण्य बन्ध होगा और स्वर्ग में जाएगा। इतनी बात है। समझ में आया? व्रत, तप का विकल्प कौन सी भूमिका में होता है? चारित्र की स्थिरता अन्दर आयी है, अन्दर आनन्द की लहर जगी है। आहाहा! चौथे गुणस्थान से पंचम गुणस्थान में आनन्द की वृद्धि हुई है और उससे भी छठे गुणस्थान में आनन्द की वृद्धि हुई है। समझ में आया? प्रतिमा में भी जो एक प्रतिमा से ग्यारह प्रतिमा है, उसमें भी एक प्रतिमा में जो स्थिरता का अंश है, उससे दूसरी प्रतिमा में विशेष स्थिरता का अंश है। समझ में आया? अकेली प्रतिमा का विकल्प वह नहीं।

मुमुक्षु : सामान्य व्रत, तप की बात नहीं है?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्रत, तप समकिती के।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ... है न। पहले से नरक आयु बन्ध गया हो तो जाए। और बहुत पाप बढ़ जाए, परिणाम बदल जाए तो नरक में जाए। ऐसा आता है न? प्रवचनसार में नहीं आता है? प्रवचनसार में ऐसा आता है कि मुनि समकिती चारित्र आराधन करके कोई भवनपति व्यन्तर में जाते हैं। ऐसा आता है। शुरुआत में आता है? समझ में आया? क्यों? अन्दर परिणाम में विराधक हो जाए। ये तो समकिती की बात है। समकित बिना की कोई गिनती ही नहीं। समकित बिना के व्रत, तप की बात ही नहीं है। वह तो है नहीं, ऐसा तो अनन्त बार किया। शुद्ध उपयोग की राह कौन देखता है? जिसको शुद्ध उपयोग का अनुभव हुआ है वह। शुद्ध उपयोग की राह देखता है न? इन्तजार। राह... राह। राह देखते हैं। किसकी? जिसको आनन्द का शुद्ध उपयोग का अनुभव हुआ है, वह शुद्ध उपयोग उग्रपने आये, उसकी राह देखते हैं। ऐसी बात है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन बदल भी जाए, बहुत खराब परिणाम करे तो। नरक योग आ जाए तो सम्यग्दर्शन चला भी जाए। समझ में आया? इसलिए उसे बचाने को कहते हैं। बात ऐसी है।

सामान्य व्रत, तप तो अनन्त बार किया, उसमें क्या हुआ? शुद्ध उपयोग की दृष्टि है नहीं। शुद्ध उपयोग की राह देखना, वह तो उसके पास है नहीं। जो चीज़ देखी नहीं, उसकी राह क्या? खबर नहीं। वह तो अनन्त बार किया है, उसमें है क्या? नौवीं ग्रैवेयक

गया तो इतनी शुभोपयोग की क्रिया (से गया) । अभी तो ऐसा शुभोपयोग किसी को होता भी नहीं। मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्ट शुभोपयोग नौवीं ग्रैवेयक जानेवाला का था, ऐसा शुभोपयोग अभी किसी का होता ही नहीं। समकिती का भी ऐसा शुभोपयोग होता नहीं। मुनि को होता नहीं ऐसा। सच्चा मुनि हो तो भी ऐसा शुभोपयोग अभी नहीं होता। ऐसा शुभोपयोग किया। शुक्ललेश्या। स्वर्ग में गया, उसमें क्या हुआ ? उसकी बात यहाँ है नहीं। समझ में आया ?

यहाँ तो सम्यग्दर्शनसहित अनुभव आत्मा का हुआ है, वही अनुभव की उग्रता चाहते हैं। शुद्धोपयोग लाने की। जब तक शुद्धोपयोग न हो तो उसको अशुभ नहीं करके शुभ में आना। स्वरूप में स्थिरता भी बढ़े और शुभभाव से पुण्य बँधे। यह बात है। समझ में आया ? यहाँ तो उपदेश के वाक्य ऐसे ही आते हैं न।

जो व्रत, तप का आचरण करता है, वह स्वर्ग के सुख को प्राप्त करता है और जो इनका आचरण नहीं करता है, विषय-कषायादिक का सेवन करता है, वह नरक के दु:ख को प्राप्त करता है... अथवा भविष्य में नरक जैसा दु:ख पावे। **इस प्रकार इनमें बड़ा भेद है।** इष्टोपदेश में यह श्लोक आया है। पूज्यपादस्वामी का इष्टोपदेश का तीसरा श्लोक। यह श्लोक है। इष्टोपदेश में है। मित्र की राह देखनी है। मित्र कौन है ? शुद्धोपयोग। समझ में आया ? अशुभ उपयोगवाला भी मित्र की राह देखता है और शुभ उपयोगवाला भी मित्र की राह देखता है। शुद्धोपयोगरूपी मित्र। आहाहा !

यहाँ तो इतना कहते हैं, भगवान स्वरूप की दृष्टि तुझे हुई। ऐसा उग्र अनुभव लाने का, शुद्धोपयोग बहुत रहे ऐसा लाने का भाव है, उसकी राह है, परन्तु उसमें आ सके नहीं तो अशुभ से बचने को ऐसा व्रत और तप का शुभभाव हो। जिससे पुण्य बँध जाए। और सम्यग्दर्शनसहित स्वर्ग में चले जाए। और पाप बाँधकर नीचे चला जाए। उसमें दु:ख होता है, इतनी बात है।

इसलिए यहाँ कहने का यह आशय है कि जब तक निर्वाण न हो... देखो ! है न ? **इसलिए यहाँ कहने का यह आशय है कि जब तक निर्वाण न हो...** किसको ? समकिती को निर्वाण नहीं हो। अज्ञानी को निर्वाण है कहाँ ? **जब तक व्रत-तप आदिक में प्रवर्तना श्रेष्ठ है, इससे सांसारिक सुख की प्राप्ति होती है...** प्रतिकूलता में नहीं आये। है तो वह भी

दु:ख, वहाँ सुख तो है ही नहीं। यहाँ तो प्रतिकूलता की तीव्रता की अपेक्षा से स्वर्ग का सुख कहने में आया है। सुख कहाँ धूल में है ? सुख तो आत्मा में है। यहाँ तो व्यवहार से अशुभ से बचने को सम्यग्दृष्टि जीव को उपदेश ऐसा कहते हैं। उपदेश का वाक्य ऐसा होता है। वहाँ तो सहज होता है।

निर्वाण के साधने में भी ये सहकारी हैं। देखो ! सम्यग्दर्शन तो है, सम्यग्ज्ञान है, सम्यक्चारित्र है। निर्वाण में शुभोपयोग निमित्तरूपी सहकारी कारण है। उपादान कारण तो अन्दर अपनी शुद्ध परिणति है, वह है। समझ में आया ? मोक्ष की शुद्धपरिणति मोक्ष का साक्षात् कारण है। परन्तु उसको शुभभाव राग की मन्दता सहकारी साथ में निमित्तरूप है, सहकारी कारण कहने में आता है। परन्तु किसको सहकारी ? जहाँ चीज़ ही नहीं है, सम्यग्दर्शन और भान नहीं है, उसे सहकारी कहाँ से आया ? समझ में आया ?

मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है न ? निमित्त को देखकर, उसको सहकारी देखकर व्यवहार समकित कहने में आया है। आया है न सातवें अध्याय में ? उभयावलम्बी, उसमें आया है। सम्यग्दर्शन तो निर्विकल्प अपना अनुभव वही है। परन्तु साथ में देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नवतत्त्व का विकल्प निमित्तरूप सहकारी कारण देखकर व्यवहार उपचार से उसको व्यवहार समकित कहने में आया है। (समकित) है नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : कहाँ लिखा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ लिखा है ? यहाँ तो बहुत बार हो गया है, यहाँ कोई नया नहीं है।

मुमुक्षु : यहाँ तो पक्का होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बराबर है। देखो ! **अन्तरंग में आपने तो निर्धार करके यथावत् निश्चयव्यवहार मोक्षमार्ग को पहिचाना नहीं, जिन आज्ञा मानकर निश्चय-व्यवहाररूप मोक्षमार्ग दो प्रकार मानते हैं। सो मोक्षमार्ग दो नहीं है,...** मोक्षमार्ग दो नहीं है। है ? **मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार है। जहाँ सच्चे मोक्षमार्ग को मोक्षमार्ग निरूपण किया जाए सो निश्चय मोक्षमार्ग है और जहाँ जो मोक्षमार्ग तो है नहीं परन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त है व सहचारी है, उसे उपचार से मोक्षमार्ग कहा जाए, सो व्यवहारमोक्षमार्ग है,...**

मुमुक्षु : सहकारी नहीं, सहचारी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सहचारी, साथ में है। सहचारी अर्थात् साथ में रहनेवाला। साथ-साथ राग होता है। ऐसा शुभभाव देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, ऐसा पंच महाव्रत आदि का विकल्प हो तो उसको व्यवहारचारित्र कहते हैं। श्रद्धा का विकल्प को व्यवहारसमकित कहते हैं। वस्तु ऐसी नहीं है।

क्योंकि निश्चयव्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है। वह तो साथ में होता है। **सच्चा निरूपण, सो निश्चय; उपचार निरूपण, सो व्यवहार; इसलिए निरूपण अपेक्षा दो प्रकार मोक्षमार्ग जानना।** समझ में आया? एक निश्चयमोक्षमार्ग और एक व्यवहारमोक्षमार्ग, ऐसे दो नहीं है। भाषा ऐसी ली है। **(किन्तु) एक निश्चयमोक्षमार्ग है, दूसरा एक व्यवहारमोक्षमार्ग है...** ऐसा नहीं है। दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्यात्व है। दो मोक्षमार्ग मानना ही मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! टोडरमलजी ने कितनी स्पष्टता की है, देखो!

तथा निश्चयव्यवहार दोनों को उपादेय मानता है... निश्चयमोक्षमार्ग अपने आश्रय से दर्शन, ज्ञान, चारित्र हुआ, वह भी आदरणीय है और व्यवहारमोक्षमार्ग को भी उपादेय मानते हैं। मूढ़ है। उभयाभासी। वह भी आदरणीय है, व्यवहार भी आदरणीय है, व्यवहार भी उपादेय है। देखो!

मुमुक्षु : अनेकान्त है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनेकान्त ऐसे है ही नहीं। निश्चय एक आदरणीय है और व्यवहार आदरणीय नहीं है। उसका नाम अनेकान्त है। समझ में आया?

निश्चयव्यवहार दोनों को उपादेय मानता है, वह भी भ्रम है, क्योंकि निश्चय-व्यवहार का स्वरूप तो परस्पर विरोधसहित है। निश्चय का स्वरूप शुद्ध है, व्यवहार का स्वरूप अशुद्ध है। राग विरुद्ध है। विरुद्ध में दोनों उपादेय कहाँ से आयेगा? दोनों अंगीकार करनेयोग्य है, ऐसा है नहीं। कितना स्पष्टीकरण है, देखो! व्यवहार अभूतार्थ है। देखो, ११वीं गाथा ली। समयसार में कहा, व्यवहार अभूतार्थ है। कोई अपेक्षा से व्यवहार अभूतार्थ है। व्यवहार सत्य स्वरूप का निरूपण करता नहीं। **किसी अपेक्षा उपचार से अन्यथा निरूपण करता है।** व्यवहारमोक्षमार्ग मोक्षमार्ग है ही नहीं। कहना अर्थात् व्यवहार।

मोक्षमार्ग तो एक ही है। भगवान आत्मा अपना पवित्र पन्थ-मार्ग जो ध्रुव स्वभाव, उस पन्थ में जो चलता है, गति करते हैं, वह एक ही मोक्षमार्ग है। समझ में आया? बीच में उस व्यवहार का आरोप किया, वह तो साथ में सहचर देखकर उपचार से व्यवहार कहा। वस्तु ऐसी है नहीं। दोनों आदरणीय है, निश्चयमोक्षमार्ग भी अंगीकार करनेयोग्य है, व्यवहार भी अंगीकार करना, ऐसा है नहीं। व्यवहारमोक्षमार्ग बन्धमार्ग है। बन्धमार्ग किसी भी प्रकार से आदरणीय हो सकता नहीं। समझ में आया? बहुत स्पष्टीकरण किया है।

मुमुक्षु : आपने तो अनुभव किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हमें तो बहुत वर्ष से अन्दर से है। समझ में आया? मार्ग ऐसा है।

अन्तर चीज़ वस्तु पूर्ण चीज़ पड़ी है। उस ओर झुकने से जो श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति उत्पन्न होती है, वह एक ही मार्ग है। अपने पहले आ गया न। '**परदव्वादो दुग्गइ सदव्वादो हु सुग्गइ होइ।**' उसमें क्या कहा? १६वीं गाथा में आया न? १६ में आया। देखो! '**परदव्वादो दुग्गइ सदव्वादो हु सुग्गइ होइ।**' जितना परद्रव्य के आश्रय से उत्पन्न होनेवाला शुभराग है, वह दुर्गति का कारण है। दुर्गति का अर्थ आत्मा की गति का कारण नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धा, वह दुर्गति है, राग है। होता है, परन्तु वह राग अपने द्रव्य के आश्रय से नहीं है, इसलिए अपनी गति नहीं। राग की गति विभाव गति है। बन्ध के भाव में वह भाव आता है। ज्ञानी बन्धभाव में है नहीं, परन्तु बन्धभाव बन्धभाव में आता है और अबन्ध परिणाम में ज्ञानी है। ज्ञानपरिणाम भी चलता है और बन्ध परिणाम भी चलता है। फिर भी बन्ध बन्ध में है, ज्ञान ज्ञान में है। आहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

सांसारिक सुख की प्राप्ति है और निर्वाण के साधने में भी ये सहकारी हैं। लो, निर्वाण के साधन में सहकारी है। निर्वाण का साधन तो करते हैं। स्वआश्रय दृष्टि, ज्ञान है, उसको यह व्यवहार शुभभाव सहकारी-सहचारी कहने में आता है। समझ में आया? **विषय-कषायादिक की प्रवृत्ति का फल तो केवल नरकादिक के दुःख है, उन दुःखों के कारणों का सेवन करना, यह तो बड़ी भूल है,...** बस, इतनी बात है। यह तो उसे

शुभभाव में लाने का उपदेश है। सहज उसको आता है, जब आता है तो, आये बिना रहता नहीं। अशुभ की तुलना में शुभ में दुःख संसार का का नहीं है। सांसारिक सुख लौकिक छाया की अपेक्षा से कहा है। वह भी व्यवहार कथन है। समझ में आया ?

योगसार में तो कहा है, समकिती का नरकगति का बन्ध भी नाश करने के लिये है। है श्लोक ? क्या है ? ... योगसार। भले जाए नरक में। दुर्गति में जाए तो हरकत नहीं, दोष नहीं। समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि कदाचित् नरक आदि दूसरी गति में जाओ, खिर जाता है, खिर जाता है। पहले आयुष्य बँधा हो तो। बन्धन खिर जाता है। समझ में आया ? आहाहा ! ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु, कहा है। स्वभाव का जोर दिया है। भोग का परिणाम पाप है। समझ में आया ? आहाहा ! परन्तु स्वभाव सन्मुख का जोर—आदर है और राग का आदर नहीं है, इस अपेक्षा से निर्जरा कहने में आयी है। समझ में आया ? वीतरागमार्ग अन्तर का स्वद्रव्य का आश्रय वह वीतरागमार्ग है। जितना परद्रव्य का आश्रय है, वह वीतरागमार्ग नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

गाथा-२६

आगे कहते हैं कि संसार में रहे तबतक व्रत, तप पालना श्रेष्ठ कहा, परन्तु जो संसार से निकलना चाहे वह आत्मा का ध्यान करे –

जो इच्छइ णिस्सरिदुं [1]संसारमहण्णवाउ रुंद्दाओ।
कम्मिंधणाण डहणं सो झायइ अप्पयं सुद्धं।।२६।।

यः इच्छति निःसर्त्तुं संसारमहार्णवात् रुद्रात्।
कर्मेन्धनानां दहनं सः ध्यायति आत्मानं शुद्धम्।।२६।।

संसार-सागर रुद्र से यदि चाहते हो निस्सरण।
तो कर्म-इंधन दहन-कर शुद्धात्मा का ध्यान कर।।२६।।

१. मुद्रित सं. प्रति में 'संसारमहण्णवस्स रुद्दस्स' ऐसा पाठ है जिसकी संस्कृत 'संसारमहार्णवस्य रुद्रस्य' ऐसी है।

अर्थ – जो जीव रुद्र अर्थात् बड़े विस्ताररूप संसाररूपी समुद्र उससे निकलना चाहता है, वह जीव कर्मरूपी ईंधन को दहन करनेवाले शुद्ध आत्मा के ध्यान को करता है।

***भावार्थ* – निर्वाण की प्राप्ति कर्म का नाश हो तब होती है और कर्म का नाश शुद्धात्मा के ध्यान से होता है, अत: जो संसार से निकलकर मोक्ष को चाहे वह शुद्ध आत्मा, जो कि कर्ममल से रहित अनन्त चतुष्टयसहित (निज निश्चय) परमात्मा है, उसका ध्यान करता है। मोक्ष का उपाय इसके बिना अन्य नहीं है।।२६।।**

गाथा-२६ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि संसार में रहे तब तक व्रत, तप पालना श्रेष्ठ कहा, परन्तु जो संसार से निकलना चाहे, वह आत्मा का ध्यान करे :- जिसको उसमें निकलना हो, वह तो शुद्ध उपयोग का ध्यान लगाओ। उसको शुभ की भी जरूरत नहीं। देखो! बात तो पहले की। परन्तु उसमें से एकदम जल्दी निकलना हो तो आत्मा का ध्यान करो। लगाओ ध्यान। शुभ उपयोग भी छोड़ दो। समझ में आया? वीतराग मार्ग है, भाई! अलौकिक मार्ग है। साधारण कायर को तो कठिन लगे। कायर को प्रतिकूल, आता है न? 'वचनामृत वीतराग के परमशान्त रस मूल, औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।' कायर को प्रतिकूल। कायर... कायर। ऐसा मार्ग! समझ में आया? मास्टर! रणे चड्या रजपूत छूपे नहीं। समझ में आया? मोक्षमार्ग में जो चढ़ा, वह पीछे हटता नहीं। अफरमार्गी। जिस मार्ग में चढ़ा उस मार्ग से वापस आता नहीं। आहाहा! ऐसा वीतराग का मार्ग, जिसमें शुभभाव भी बन्ध का कारण जहर है। आहा! ऐसा सुनकर लोग कायर हो जाते हैं। अरे! ये! समझ में आया?

कहते हैं, जिसको सम्यग्दर्शनसहित एकदम जल्दी मोक्ष लेना हो, उसको आत्मा का ध्यान करना। समझ में आया? ऐसा कहते हैं, हों! सम्यग्दर्शनसहित पहले पाप से पुण्य ठीक है, जिससे स्वर्ग आदि मिले। इतनी बात। परन्तु जिसको एकदम निर्वाण की प्राप्ति करनी है, उग्र प्रयत्न है, वह आत्मा का ध्यान लगाये। तीर को निशाने पर लगाओ। वह पहले आ गया न? मतिज्ञानरूपी धनुष, श्रुतज्ञानरूपी बाण। समझ में आया? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप श्रुतज्ञानरूपी डोरी, मतिज्ञानरूपी धनुष, श्रुतज्ञानरूपी डोरी और सम्यग्दर्शन-

ज्ञानरूपी बाण लगाओ ध्रुव पर। वह पहले बोधपाहुड़ में आ गया है। समझ में आया? तेरा निशाना फिरे नहीं। समझ में आया? जहाँ बाण मारना है तो निशाना तो निश्चित करता है या नहीं? या ऐसे ही जहाँ-तहाँ मार देता है? जहाँ-तहाँ बाण मारता है? निशाना लगाता है। ऐसे तेरा निशाना सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का निशाना ध्रुव (पर लगाना है)। समझ में आया?

जो इच्छइ णिस्सरिदुं संसारमहण्णवाउ रुंद्दाओ।
कम्मिंधणाण डहणं सो झायइ अप्पयं सुद्धं।।२६।।

व्रत, तप से तो शुभभाव होगा, स्वर्ग में बन्ध में जाना पड़ेगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? परन्तु संसार से छूटने की जिसकी भावना है...

अर्थ :- जो जीव रुद्र अर्थात् बड़े विस्ताररूप संसाररूपी समुद्र से... चौरासी के अवतार में कहीं पता नहीं लगे। मनुष्यपना कब पावे, ऐसा मनुष्यपना पाने के बाद भी आर्य क्षेत्र मिलना, निरोग शरीर होना, आयुष्य का लम्बा होना, वीतराग की वाणी सुनने मिलनी और सुनने के बाद श्रद्धा होनी बहुत दुर्लभ है। समझ में आया? राजपाट मिलना, वह दुर्लभ नहीं था, वह तो अनन्त बार मिला। वीतराग की निश्चल शुद्ध वाणी मिलना महादुर्लभ है। समझ में आया? और जिसका लक्ष्य करना है, ऐसे प्रभु का ध्येय करना तो महादुर्लभ है। समझ में आया?

मुमुक्षु : हमको तो सुलभ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए काम करना—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? जहाज किनारे आया। पोरबन्दर में ऐसा हुआ था। है नेमिदासभाई? खजूर का वाडिया खजूर होता है न? वह किनारे लाया। वहाँ ऐसा पानी आया... पूरे समुद्र में। दरबार के मकान के पास। ... खजूर का बड़ा जहाज भरा हुआ किनारे पर आ गया। सवेरे ... खजूर का वाडिया होता है न? समाप्त हो गया। पानी का ऐसा प्रवाह आया कि जहाज को ले गया। सब खजूर नीचे पानी में चले गये। ऐसे किनारे आये जहाज, जल्दी काम कर ले, नहीं तो ... पवन वायो... आहाहा! समझ में आया?

कल आया था न? रजनीश का... धर्म तो कहाँ रहा? स्त्री और पुरुष नग्न। ... समझ में आया? जैतपुर का दृष्टान्त नहीं दिया था? जैतपुर। काठी... काठी। सुना है? यहाँ

जैतपुर है न ? जैतपुर। एक चाम्पा काठी लड़का छोटा परन्तु इतना पुण्य लेकर आया था। डेढ़ वर्ष की उम्र थी। वर्ष–डेढ़ वर्ष की उम्र वह चाम्पा बैठा था। वर्ष–डेढ़ वर्ष की उम्र होगी। करीब इतनी होगी। एक दिन बैठा था। उसके पिता ने उसकी माता को संकेत किया, मजाक की। लड़का ऐसा करके मुँह फेर दिया। डेढ़ वर्ष का होगा।... उसके पिता ने माता की थोड़ी मजाक की। ऐसा किया... और उसकी माता अन्दर चली गयी। जलकर मर गयी। ऐसी तो आर्यता थी। अरे! चाम्पा... यह हमारा ... नहीं। अन्दर जाकर मर गयी। देखो! इतना तो छोटी उम्र में ऐसा था। समझ में आया ? वह कहा था। बाद में एक चारण आया। जहाँ चारण रहता था, उस गाँव में उस राजा को लड़का नहीं था। वह चारण यहाँ आया, चाम्पा के पिता के पास। उसके पिता को खुश कर दिया। माँग... माँग। अरे! चाम्पा! मैं माँगूगा तो तुझे देना पड़ेगा। माँग। आप हमारे गाँव में आओ। चाँपा के पिता को कहा। वहाँ शादी करबा दूँगा। हमें चाम्पा जैसा लड़का देखना है। हमारे राजा को लड़का नहीं। चाम्पा जैसा हमें लड़का चाहिए, ऐसा चाहिए।

वह कहता है, चलो भैया! मैंने वचन दे दिया है। मैं क्या कहूँ ? चलो। रास्ते में बात की। अरे! भाई! हमें ले जाकर क्या करेगा तू ? काठियाणी से शादी करवायेगा, हमें लड़का चाहिए। काठियाणी चाम्पा की माँ कहाँ से होगी ? जो ऐसी नजर करने पर मर गयी, उसकी कोख में चाम्पा होता है। बेर के पेड़ पर आम होते हैं क्या ? समझ में आया ? बोरडी को क्या कहते हैं ? बेर... बेर। बेर के पेड़ आम होते हैं क्या ? चाम्पा की माँ कहाँ से लाओगे ? और चाम्पा कहाँ से लाओगे ? इतनी छोटी उम्र में थोड़ी मजाक की तो मुँह फेर लिया। वह चाम्पा कहाँ से लाओगे ? और उसकी माँ कहाँ से लाओगे ? वहाँ (सम्बन्ध) नहीं होगा। वापस आ गये। समझ में आया ? चाम्पा और उसकी माँ ऐसी।

ऐसी आर्यता तो लौकिक में भी जो धर्म नहीं समझा था, उसे भी थी। ऐसी आर्यदेश की नीति नैतिकता थी ऐसी थी, भाई! ये जीवन! आहाहा! किस कुल में हम आये, किसकी कोख में हम आये, मेरी माता कौन, मेरे पिता कौन ? कोख लज्जित होगी, माता लज्जित होगी। दूसरी चीज़ हमें नहीं होती। समझ में आया ? ऐसे तो नीति के सज्जनता के जीवन थे। लोकोत्तर धर्म की बात तो क्या करनी ? आहाहा! डालचन्द्रजी! यहाँ जैतपुर है न ? ऐसा कोई पुण्य लेकर आया था। छोटी उम्र में ऐसी आँखें।

मुमुक्षु : महाराज! हिन्दीवाले तो कुछ नहीं समझे।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं समझे? दृष्टान्त तो दिया। चाम्पा नाम का लड़का था। हिन्दी में तो कहा। गुजराती में कहाँ कहा? चाम्पा नाम का एक लड़का थ। वर्ष, डेढ़ वर्ष का। और छोटी उम्र से वह इतनी तीक्ष्ण बुद्धिवाला था। उसकी आँख में झलके, ऐसे बड़े पुरुष की भाँति। वह बैठा था। वर्ष-डेढ़ वर्ष होगा। उसके पिता ने माता की कुछ मजाक की। मजाक की और लड़के ने मुख घुमा लिया। उसकी माता को ऐसा लगा के बेटे ने मेरी मजाक देख ली। रसोई में जाकर जलकर मर गयी। पति-पत्नी हो तो मजाक हो जाती है। परन्तु छोटा लड़का मुख घुमा लेता है, ये मुझे देखनेयोग्य नहीं है। मर गयी अन्दर। बाद में कहा न? दूसरा एक गाँव था। उसका दरबार था, उसको लड़का नहीं था। वहाँ का जो चारण था, वह यहाँ आया, चाम्पा के पिता के पास। उसके बाप को प्रसन्न कर दिया। माँग, माँग। चाम्पा, मैं माँगूगा, परन्तु तुझे देना मुश्किल पड़ेगा। क्या माँगना है? माँग तू। तुम हमारे राज में आओ। ओहो! क्या करेगा? काठियाणी के साथ शादी करवाऊँगा। हमें तेरा लड़क चाहिए। चाम्पा जैसा लड़का हमें चाहिए। अरे! ... मैंने वचन दिया है तो मैं तो आऊँगा। परन्तु चाम्पा कहाँ से लाओगे? और चाम्पा की माँ कहाँ से लाओगे? चाम्पा की माँ की कोख में चाम्पा होता है। दूसरी काठियाणी की कोख में चाम्पा नहीं होता। ऐसी स्त्री कहाँ से आयेगी? उसकी माँ तो वही होगी। कहाँ से ऐसी माता लाये कि जिसकी कोख में ऐसा लड़का औरा लड़का भी ऐसा की जो मेरी मजाक देखकर ऐसा मुख फेर लिया। ओहोहो! समझ में आया? आहाहा!

ऐसे भगवान की ओर नजर करने पर... समझे? व्यवहार से पीठ देनेवाला आत्मा मोक्ष जाने के लिये पात्र है। व्यवहार से पीठ दे। नजर नहीं। हमारे आत्मस्वभाव के आश्रय के अतिरिक्त किसका आश्रय नहीं। ऐसा मोक्षमार्ग करनेवाला कहाँ से लाओगे? समझ में आया? ...! कहो, धन्नालालजी! ऐसी बात है।

निर्वाण की प्राप्ति करने का जिसका विचार है, **वह जीव कर्मरूपी ईंधन को दहन करनेवाले शुद्ध आत्मा का ध्यान करता है।** पीठ दे, व्यवहार को, विकल्प को पीठ दे। छोड़ दे। वहाँ नजर मत कर। आहाहा! समझ में आया? 'वचनामृत वीतराग के परम

शान्तरस मूल, औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।' ऐसा मार्ग होगा ? अरे ! ऐसा मार्ग करके अनन्त मोक्ष में चले गये। समझ में आया ? बनिय ऐं... ऐं... करे। ऐं... ऐं... करनेवाले का यह मार्ग है ? पण्डितजी ! **कर्मरूपी ईंधन को दहन करनेवाले शुद्ध आत्मा...** आहाहा ! जहाँ बाण मारा, वहीं बाण मार। दूसरा ध्यान नहीं। समझ में आया ? जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उसकी प्रशंसा न रहे, अनुमोदनन रहे। हेय करके स्वभाव पर ध्यान लगा दे। आहाहा ! यदि महा रुद्र संसार से निकलना हो तो। समझ में आया ? भावार्थ कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-७२, गाथा-२६ से २८, गुरुवार, श्रावण कृष्ण ११, दिनांक २७-०८-१९७०

२६वीं गाथा का भावार्थ। आज गुजराती। मोक्षपाहुड़ की २६वीं गाथा चलती है। उसका भावार्थ।

भावार्थ :- निर्वाण की प्राप्ति कर्म का नाश हो, तब होती है... मोक्ष की प्राप्ति कर्म का नाश हो, तब होती है। इसका अर्थ कि आत्मा में अशुद्धता पर्याय में है। समझ में आया ? वास्तव में तो वह कर्म है। जड़कर्म तो एक निमित्तरूप दूसरी चीज़ है। वह कहीं दूसरी चीज़ आत्मा को स्पर्श नहीं करती, स्पर्श नहीं करती। परन्तु आत्मा शुद्ध पवित्र द्रव्यस्वभाव की पर्याय में-अवस्था में अशुद्धता है। अशुद्धता न हो तो आनन्द का अनुभव प्रगट व्यक्तरूप से होना चाहिए।

कहते हैं कि **निर्वाण की प्राप्ति कर्म का नाश हो, तब होती है...** मुक्ति अशुद्धता के भाव का नाश हो, तब शुद्ध की प्राप्ति होती है। **और कर्म का नाश शुद्धात्मा के ध्यान से होता है...** तब उस अशुद्धता के भाव का नाश, वह आत्मा के पवित्र ध्यान से होता है। समझ में आया ? आत्मा, एक समय की पर्याय में जो अशुद्ध है, वह तो अनादि की पर्यायदृष्टि है—अज्ञानदृष्टि है। अब उस अशुद्धता का जिसे नाश करना हो, उसे क्या करना ? कि एक समय की जो अशुद्धता है, उसके अतिरिक्त का त्रिकाली स्वभाव, अतीन्द्रिय आनन्द का

सागर भगवान, उस अतीन्द्रिय आनन्द की ओर का इसे ध्यान करना। समझ में आया? जैसे राग, पुण्य-पाप के अशुद्धभाव का ध्यान अनादि का है। उसे विकार को ध्येय करके, विकार का ध्यान इसे अनन्त काल से निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक जैन दिगम्बर नग्न साधु, दिगम्बर द्रव्यलिंगी (होकर गया), उसने भी ध्यान तो किया है। राग का। अशुद्धता, पुण्य-पाप के विकल्प का ध्यान, वह संसार और उस अशुद्धता का जिसे नाश करना हो, उसे त्रिकाल शुद्ध भगवान आत्मा **शुद्धात्मा के ध्यान से होता है...** वह अशुद्धता, मिथ्यात्व, राग-द्वेष, दु:खरूप दशा, वह आनन्दमूर्ति भगवान का अन्तर ध्यान करने से अशुद्धता का नाश होता है। दूसरे कोई क्रियाकाण्ड से नहीं होता। समझ में आया? व्रत, नियम, दया, दान आदि, वह तो सब पुण्यबन्ध का कारण है। पुण्यबन्ध के कारण से कहीं बन्धन का नाश नहीं होता।

शुद्धात्मा के ध्यान से होता है... जरा बात तो सूक्ष्म-संक्षेप ली है। पहले इसे विकल्प में निर्णय करना चाहिए कि वस्तु शुद्ध आनन्द का धाम है, जिसमें ध्यान लगाने से आनन्द आवे, ऐसी वह चीज़ मैं हूँ। ऐसा इसे पहले विकल्प अर्थात् रागमिश्रित विचार में ऐसा इसे निर्णय करना चाहिए। पश्चात् उसे विकल्प का भी निर्णय छोड़कर... समझ में आया? शुद्धात्मा का ध्यान (करे)। अरे! भाई! कोई कहे कि ध्यान तो ऊपर होता है।

मुमुक्षु : यह ... अनादि का ध्यान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान तो अनादि का ऐसा है राग में। इसे आत्मा का ध्यान करना। बात गुलाँट खाती है। सूक्ष्म बात है। पर्यायबुद्धि में एक समय की अवस्था की बुद्धि में एक समय के अंश का ध्यान अर्थात् ध्येय बनाकर उसकी एकाग्रता है। सूक्ष्म बात। एक समय की प्रगट अवस्था को अपना पूरा स्वरूप मानकर, उसे ध्येय बनाकर, उसका ध्यान अनादि का अज्ञानी को है। अब उस ध्यान का नाश करना हो तो शुद्धात्मा का ध्यान (करना)। शुद्ध वस्तु पवित्र धाम, उसमें दृष्टि लगाकर उसमें एकाकार होना, उस ध्यान से अशुद्ध दु:खरूप ऐसी संसारदशा का नाश होगा। पोपटभाई!

मुमुक्षु : सच्चा ध्यान वह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटा ध्यान यह संसार का। खोटा ध्यान करके कहीं पर का नहीं

करता। राग और द्वेष विकल्प में एकाग्रता, वह खोटा ध्यान। और स्वभाव चैतन्यमूर्ति ज्ञायक प्रभु पूर्णानन्द का नाथ वह मैं पूर्ण परमात्मा हूँ—ऐसी अन्तर्दृष्टि रखकर उसमें एकाग्र होना, वह ध्यान। समझ में आया?

वह क्या कहलाता है यह? यह ध्यान क्या? ध्यान अर्थात् यह आत्मा। उसका ध्यान पर के ऊपर है, उसे स्व में ध्यान करना, वह उसका उपाय है। ध्यान तो इसे आता है। समझ में आया? हें! आता है या नहीं? बराबर विचार में रुक जाए तो कुछ खबर भी नहीं पड़े। बाहर की खबर नहीं पड़े। क्या कहा?

मुमुक्षु : बाहर में...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह संसार का ध्यान बारम्बार आता है। यह किसकी बात चलती है? संसार के ध्यान की बात चलती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : प्रभु आत्मा का बारम्बार...

पूज्य गुरुदेवश्री : बारम्बार इसने अभ्यास कब किया है? अभ्यास किया नहीं परन्तु अन्तर झुकाव करना, वह ठीक है और पुण्य-पाप में झुकाव, उसमें पुण्य-पाप की धुन लगाना, वह तो बन्ध का कारण है। समझ में आया? पुण्य-पाप के शुभाशुभभाव में तो आत्मा घिर गया है। उसका ध्यान करे, वह तो अनादि संसार से कर रहा है। समझ में आया? चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प, वह भी राग और उसका ध्यान वह आर्तध्यान है। समझ में आया? उसमें आत्मा की शान्ति के प्राण पीड़ित होते हैं। आहाहा! ऐई! मनसुखभाई! परन्तु ऐसा कब करना? समय मिले नहीं, अब क्या करना?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव में भी सुनते हैं, तब तो इसे सुनने में आता है या नहीं? सुनता है, तब यहाँ शुभभाव है न?

अब यहाँ तो कहते हैं कि वह शुभभाव तो तुझे अनन्त बार आया और उसका ध्यान भी किया, संकल्प-विकल्प। परन्तु उन संकल्प-विकल्परहित आत्मा है। जो संकल्प-विकल्प को कभी स्पर्शा ही नहीं, स्पर्शा ही नहीं। आहाहा! बाहर की चीज़ को तो कहीं स्पर्शा ही नहीं। समझ में आया? यहाँ शरीर और आत्मा इकट्ठा दिखता है परन्तु शरीर को

आत्मा स्पर्शा नहीं है। शरीर आत्मा को स्पर्शा नहीं है, आत्मा शरीर को स्पर्शा नहीं। परमात्मप्रकाश में एक स्पष्ट श्लोक है। समझ में आया? परमात्मप्रकाश में शरीर को आत्मा स्पर्शा नहीं और आत्मा को शरीर स्पर्शा नहीं।

मुमुक्षु : कार्मणशरीर को तो स्पर्श है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कार्मणशरीर है, वह जड़ है और यह तो चैतन्य है। मिट्टी, वह तो रूपी है और भगवान अरूपी है। कार्मणशरीर तो रूपी, जड़, मिट्टी, स्थूल। उसे कैसे स्पर्शे? यहाँ तो शुभ और अशुभ संकल्प-विकल्प है, उसे द्रव्यस्वभाव छूता ही नहीं, स्पर्शा ही नहीं। सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : शरीर को कुछ लगे तो दु:ख नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होता। आत्मा को कहाँ होता है? शरीर के कारण से नहीं होता। शरीर मेरा, ऐसी ममता के कारण से होता है। शरीर के कारण से नहीं, शरीर तो जड़ की अवस्था है। वह तो जड़ की अवस्था है। शरीर-मिट्टी की अवस्था है। मिट्टी की अवस्था में कुछ हो, उसमें चैतन्य की अवस्था में कुछ होगा?

मुमुक्षु : शरीर को आहार की आवश्यकता तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : आवश्यक किसका था? वह तो आनेवाला हो, तब आता है। यह तो नहीं बात कहते कि खानेवाले का नाम दाने-दाने पर है। तुम्हारे कहावत है कुछ? क्या है?

मुमुक्षु : दाने-दाने पर लिखा है खानेवाले का नाम।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह। खानेवाले की दाने-दाने पर मोहर लगी है। इसका अर्थ कि जो रजकण शरीर के संयोग में आनेवाले हैं, वे आनेवाले हैं। इसके विकल्प से आवे और उन्हें यह सम्हाल करे तो आवे, ऐसी वस्तु नहीं है। और जो परमाणु यहाँ तक आये, परन्तु अन्दर में नहीं जानेवाले हों तो यहाँ से निकल जायेंगे।

मुमुक्षु : पेट में जाकर निकल जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो पेट में जाकर भी उल्टी हो जाएगी। क्योंकि जितना काल

एक समय वहाँ रहने का, वे ऐसे रहेंगे। वे तेरे कारण से नहीं है। सेठ!

मुमुक्षु : ममता कैसे छूटे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं। वृक्ष को पकड़ रखे... यह दृष्टान्त नहीं दिया था ?

मुमुक्षु : विवेक जैसी कुछ आवश्यकता होती है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ धूल भी आवश्यकता नहीं। किसकी आवश्यकता ? विवेक किसे कहे ? राग से भिन्न होकर अपने स्वभाव की सम्हाल करना, वह विवेक है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : आवश्यकता हो इसलिए आवे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आता कहाँ है ? यह तो आवश्यकता ही नहीं। किसकी आवश्यकता ? भगवान तो नियमसार में कहते हैं, '**जं कज्जं तं णियमं**' नियम से करनेयोग्य हो तो वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह आवश्यक है।

मुमुक्षु : मुख्य आवश्यक वही है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : वही आवश्यक है। अन्य आवश्यक नहीं, उसे आवश्यक कहना। समझ में आया ? सूक्ष्म बात, भाई! जन्म-मरण के दु:ख से छूटना। यह दु:ख है, वह जन्म-मरण का दु:ख नहीं परन्तु भ्रमणा का दु:ख है। जन्म-मरण तो परवस्तु है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका नाम समाधि। समझे बिना बैठे ऐसे का ऐसा करके। कुम्भक और रेचक (करे), धूल भी हाथ नहीं आता वहाँ। ऐसा श्वास करे और अमुक करे। वह तो सब मूढ़ हो जानेवाले हैं।

चैतन्य भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, जिसे भगवान, आत्मा कहते हैं। पुण्य-पाप को आत्मा कहे, प्रभु ? उसे तो आस्रव कहे, उसे तो अजीव (कहे)। इसके स्वभाव में शुद्धता परिपूर्ण है, उसका ध्यान करे तो **संसार से निकलकर मोक्ष को चाहे, वह शुद्ध आत्मा जो कि कर्ममल से रहित अनन्त चतुष्टय सहित (निज निश्चय) परमात्मा है, उसका ध्यान करता है**। देखो! उदयभाव में से निकलना हो, संसार अर्थात् उदयभाव, राग-द्वेष,

पुण्य-पाप गति, वह संसार। संसार, वह कहीं आत्मा की पर्याय से दूर नहीं होता, है नहीं। कहते हैं, उस संसार से निकलना हो, अहो! भगवान आत्मा राग और पुण्य के परिणाम में एकमेक उदयभाव अपने में मान कर रहा है, वह संसार है। समझ में आया? उस संसार से निकलना हो तो भगवान आत्मा पवित्र-शुद्ध को ध्येय बनाकर उसका ध्यान करना, उस ध्यान में अशुद्धता का नाश होता है। दूसरी कोई रीति है नहीं। समझ में आया? रात्रि में कोई पूछता था न? व्याख्यान हुए, यह सब क्लासें चलीं, फिर प्रश्न था कि हमें क्या समझना?

बात यह है कि यह वस्तु अन्दर है। एक समय की प्रगट अवस्था व्यक्तरूप से भासित होती है, उसके अतिरिक्त एक पर्याय के पीछे अनन्त स्वभाव का सागर बड़ा पर्वत / डुंगर पड़ा है। समझ में आया? क्या हो? जो रीति है, वह रीति पकड़ने में न आवे और धर्म हो, माने, अनन्त काल से माना है। यहाँ तो कहते हैं, **संसार से निकलकर मोक्ष को चाहे...** ऐसी बात है न? उदयभाव में से निकलकर छूटना चाहे। आहाहा! **कर्ममल से रहित अनन्त चतुष्टय सहित (निज निश्चय) परमात्मा है, उसका ध्यान करता है...** अरे! मैं अनन्त-अनन्त....

मुमुक्षु : परमात्मा...

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा परमात्मा ही है। पर्याय में पामरता, वस्तु में प्रभुता।

मुमुक्षु : अनन्त चतुष्टय...

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाल। त्रिकाल अनन्त चतुष्टयसहित है। समझ में आया?

यह बात अपने को अन्तर में बैठना चाहिए। समझ में आया? ऐसी की ऐसी भाषा आवे, उसमें कुछ नहीं है। वस्तुस्वरूप ऐसा है, ऐसा अन्तर भाव में बैठना चाहिए। धारणा में आया कि ऐसा है, वह कोई वस्तु नहीं। समझ में आया? आत्मा शुद्ध है, उपादेय है, पवित्र है, अनन्त चतुष्टय—ज्ञान अनन्त, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य—ऐसा है, वह लक्ष्य में-धारणा में आया, वह कोई चीज़ नहीं है। दृष्टि में तो विषय आया नहीं। समझ में आया? बेहद अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त दर्शन, अनन्त वीतराग शान्ति, ऐसा वह आत्मभाव, उसका ध्यान करना। आहाहा!

मोक्ष का उपाय इसके बिना अन्य नहीं है। है ? देखो! **उसका ध्यान करता है। मोक्ष का उपाय इसके बिना अन्य नहीं है।** दूसरा कोई उपाय नहीं है। दया, दान, व्रत, और भक्ति, पूजा, वह सब कुछ मोक्ष का उपाय नहीं है। वह तो बन्ध का उपाय है। आहाहा! कठिन काम। भाव में यह बात, ज्ञान में यह बात भासित होना चाहिए। समझ में आया ? किसी भी उपाय द्वारा यह आत्मा यह चीज़ है, ऐसा ज्ञान में भासित होना चाहिए। भासित हुए बिना उसका ध्यान नहीं हो सकता।

मुमुक्षु : कोई उपाय नहीं है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष के उपाय बिना अन्य कोई उपाय नहीं है। यह दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा सम्मेदशिखर की, शत्रुंजय की यात्रा, ५-५, १०-१०, ५० लाख खर्च करे एक-एक मन्दिर में, वह कोई मोक्ष का उपाय नहीं है। आहाहा

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... अर्थात् ? किसी को नहीं, फिर क्या ? किसी को उसके द्वारा मोक्ष नहीं होता। वह विकल्प है, राग है, वह तो अज्ञानभाव है। अज्ञानभाव से ज्ञानभाव प्रगट होता है ? आहाहा! बहुत संक्षेप में कहा है न ?

'**ध्यायति आत्मानं शुद्धम्**' '**झायइ अप्पयं सुद्धं**' आहाहा! '**कम्मिंधणाण डहणं**' कर्मरूपी ईंधन अर्थात् लकड़ी को जलाने के लिये यह आत्मा एक ही उपाय है, तीन काल-तीन लोक में। वस्तु को ध्यान में ध्येय बनाकर उसमें स्थिर होना। आता है या नहीं ? ४७ गाथा में कहा है। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' द्रव्यसंग्रह में, लो! नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती कहते हैं। ४७ गाथा। चार और सात। तुम्हारे सैंतालीस कहते हैं न ? '**दुविहं पि मोक्खहेउं**' समझ में आया ? क्या है यह ? द्रव्यसंग्रह। द्रव्यसंग्रह यहाँ नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ज्ञान में भासित होना वह...

पूज्य गुरुदेवश्री : भास अर्थात् ज्ञान का भास दूसरा होने का है ? ज्ञान में यह वस्तु है, ऐसा ख्याल में आना चाहिए। भासित होना चाहिए अर्थात् ख्याल में आना चाहिए कि ज्ञेय बनाना चाहिए, वह तो सब एक ही है। यह तो इसे करना है या कोई करा दे ? आहाहा!

मुमुक्षु : भासित होना चाहिए, अनुभव करना एक ही बात है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भास्यमान में पहले भाव में ख्याल आना चाहिए, पश्चात् अनुभव करना, वह ध्यान है। आहाहा! 'शुद्धता विचारे ध्यावे शुद्धता में केली करे' आता है न? अमृतधारा बरसे। राग के, विकल्प के ध्यान में जहर धारा बरसती है। आहाहा! समझ में आया? दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम में तो जहर धारा बरसती है। अरे... अरे!

यह भगवान आत्मा रागरहित वस्तु के स्वरूप में अत्यन्त आनन्द और शुद्धता पड़ी है, उसका अन्तर ध्यान लगाना। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह भी एक ध्यान की ही पर्याय है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन अर्थात् ऐसे मानना-बानना ऐसा नहीं। अन्तर वस्तु में एकाग्र होना, वह ध्यान। दूसरे विकल्प छूट जाना। स्वरूप शुद्धता में केलि-आनन्द करे... आहाहा! इसका नाम मोक्ष का उपाय है। समझ में आया? इसके बिना दूसरा मोक्ष का उपाय नहीं है।

मुमुक्षु : स्वरूप सन्मुख केलि आनन्दधाम।

पूज्य गुरुदेवश्री : केलि आनन्दधाम, आनन्दस्वरूप है। आनन्द का वेदन, वही ध्यान है। समझ में आया?

गाथा-२७

आगे आत्मा का ध्यान करने की विधि बताते हैं -

सव्वे कसाय मोत्तुं गारवमयरायदोसवामोहं।
लोयववहारविरदो अप्पा झाएह झाणत्थो।।२७।।

सर्वान् कषायान् मुक्त्वा गारवमदरागदोषव्यामोहम्।
लोकव्यवहारविरतः आत्मानं ध्यायति ध्यानस्थः।।२७।।

मद राग दोष विमोह गारव सब कषायें छोड़कर।
ध्यानस्थ ध्याता आतमा व्यवहार जग से हो विरत।।२७।।

अर्थ – मुनि सब कषायों को छोड़कर तथा गारव, मद, राग, द्वेष तथा मोह इनको छोड़कर और लोकव्यवहार से विरक्त होकर ध्यान में स्थित हुआ आत्मा का ध्यान करता है।।२७।।

भावार्थ – मुनि आत्मा का ध्यान ऐसा होकर करे – प्रथम तो क्रोध, मान, माया, लोभ इन सब कषायों को छोड़े, गारव को छोड़े, मद जाति आदि के भेद से आठ प्रकार का है, उसको छोड़े, राग–द्वेष छोड़े और लोकव्यवहार जो संघ में रहने में परस्पर विनयाचार, वैयावृत्त्य, धर्मोपदेश पढ़ना–पढ़ाना है, उसको भी छोड़े, ध्यान में स्थित हो जावे – इस प्रकार आत्मा का ध्यान करे।

यदि कोई पूछे कि सब कषायों को छोड़ना कहा है उसमें तो सब गारव मदादिक आ गये फिर इनको भिन्न–भिन्न क्यों कहे? उसका समाधान इस प्रकार है कि ये सब कषायों में तो गर्भित हैं, किन्तु विशेषरूप से बतलाने के लिए भिन्न–भिन्न कहे हैं। कषाय की प्रवृत्ति इस प्रकार है – जो अपने लिए अनिष्ट हो उससे क्रोध करे, अन्य को नीचा मानकर मान करे, किसी कार्य निमित्त कपट करे, आहारादिक में लोभ करे। यह गारव है वह रस, ऋद्धि और सात ऐसे तीन प्रकार का है ये यद्यपि मानकषाय में गर्भित हैं तो भी प्रमाद की बहुलता इनमें है, इसलिए भिन्नरूप से कहे हैं।

मद–जाति, लाभ, कुल, रूप, तप, बल, विद्या, ऐश्वर्य – इनका होता है, वह न करे। राग–द्वेष प्रीति–अप्रीति को कहते हैं, किसी से प्रीति करना किसी से अप्रीति करना – इस प्रकार लक्षण के भेद से भेद करके कहा। मोह नाम पर से ममत्वभाव का है, संसार का ममत्व तो मुनि के है ही नहीं, परन्तु धर्मानुराग से शिष्य आदि में ममत्व का व्यवहार है, वह भी छोड़े। इस प्रकार भेद विवक्षा से भिन्न–भिन्न कहे हैं, ये ध्यान के घातक भाव हैं इनको छोड़े बिना ध्यान होता नहीं है, इसलिए जैसे ध्यान हो वैसे करे।।२७।।

गाथा–२७ पर प्रवचन

आगे आत्मा का ध्यान करने की विधि बताते हैं :- अब विधि बताते हैं।

सव्वे कसाय मोत्तुं गारवमयरायदोसवामोहं।
लोयववहारविरदो अप्पा झाएह झाणत्थो।।२७।।

मुनि की प्रधानता से कथन है। मोक्ष मुनि को होता है न? इसलिए उनकी मुख्य बात है।

अर्थ :- मुनि सब कषायों को छोड़कर गारव, मद, राग, द्वेष तथा मोह इनको छोड़कर... ये सर्व कषाय में आते हैं, परन्तु इनका विशेष खोलते हैं। **लोकव्यवहार से विरक्त होकर...** आहाहा! लोकव्यवहार अर्थात्? धन्धा-परिपाटी वह नहीं। गुरु के निकट रहकर, सम्प्रदाय में रहकर दूसरे साधु के साथ विनय आदि करना, वह सब व्यवहार है। वह लोकिक व्यवहार है। उस व्यवहार को छोड़कर। आहाहा! भारी काम!

मुमुक्षु : ... धन्धा-व्यापार नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : अब यह तो कहीं धूल में रहा। धन्धा कौन करे? पाप के परिणाम करे, पर का क्या करे? ऐई! पोपटभाई! क्या कहते हैं? मनसुखभाई! .... एक को भेजा वहाँ भटकने उस ओर परदेश में। दो जनें यहाँ हैं। तीन जनें। दो जनें, ऐसा था कुछ।

मुमुक्षु : ... कहीं सोनगढ़ में थोड़े मिले?

पूज्य गुरुदेवश्री : माल तो आत्मा में मिलता है। बाहर में धूल भी नहीं और कोई ला सकता नहीं। आहाहा! ऐई! नेमिदासभाई!

कहते हैं, **लोकव्यवहार से विरक्त होकर ध्यान में स्थित हुआ...** यह विधि।

भावार्थ :- मुनि आत्मा का ध्यान ऐसा होकर करे—प्रथम तो क्रोध, मान, माया, लोभ इन सब कषायों को छोड़े,... पाठ में भी है, देखो! '**सव्वे कसाय**' सर्व कषाय तो बारहवें में छूटे, ग्यारहवें (गुणस्थान) में छूटे। अब सुन न! यहाँ तो पाठ ऐसा है। सर्व कषाय छूटे तो ग्यारहवें और बारहवें में ध्यान कहलाये?

यहाँ तो दृष्टि में से विकल्प को छोड़ा, उसने सब कषाय छोड़े। यह छोड़े छूटे हुए ही पड़े हैं। यह कहीं इसके हैं नहीं। धर्मी के यह विकल्प है, वे धर्मी के नहीं। जड़ के हैं। समझ में आया? आहाहा! प्रथम तो सर्व कषाय छोड़े, ऐसा है न? मूल पाठ में तो ऐसा है। सर्व कषाय छोड़कर। इसका अर्थ ऐसा करते हैं कि सब कषाय छूटे, तब ध्यान होता है। तो बात तो ऐसी ही है परन्तु उसका अर्थ—पुण्य-पाप के विकल्प-कषाय है, वह सब कषाय, उसे छोड़े, तब आत्मा का ध्यान होता है। आहाहा! समझ में आया? भारी करने

का ... भारी भाई यह। इसलिए लोगों को चढ़ा दिया न सर्वत्र। व्रत करो, महाव्रत करो, अणुव्रत करो। महाव्रत पालो और अणुव्रत का उपदेश दो।

मुमुक्षु : वह कोई बुरी चीज़ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प तो बुरी चीज़ है। यहाँ आयेगा महाव्रत लेकर। परन्तु वह तो स्वभाव का अनुभव हो, उसमें आनन्द की स्थिरता महाव्रत के काल में हो, उसे ऐसे महाव्रत के विकल्प व्यवहार से होते हैं। निश्चय व्रत तो स्वरूप में रमणता, उसे निश्चय महाव्रत कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आनन्द में रमे, उसे निश्चय व्रत कहते हैं। महाव्रत के परिणाम, वह तो विकल्प राग है, जहर है, दु:ख है। प्रसन्न हो। आवे न? महापुरुषों ने किये। महाव्रत कैसे किये? स्वयं बड़े हैं। उसे एकदेश व्रत कहा है। महाव्रत को एकदेश व्रत कहा है। एकदेश का अर्थ एक अंश राग घटा है, इतनी अपेक्षा से। बाकी स्वयं राग है। सर्वदेश तो आत्मा आनन्द का अनुभव करके आनन्द में जम जाए। जम—घट्ट कहते हैं न? घट्ट हो जाए जमकर। आहाहा! उसे वास्तव में भगवान सच्चे महाव्रत (कहते हैं)। विधि की खबर नहीं होती और अविधि से करने जाए। यह शब्द पड़े हैं न? **ध्यान करने की विधि बताते हैं।** यह विधि है। दूसरी विधि करने जाए तो मिलेगा नहीं।

मुमुक्षु : कोई चीज़ पहले नहीं की, फिर कोई नयी मिले, उसमें आनन्द आता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तो आनन्दमय मिले, उसमें आत्मा को आनन्द आवे न। नया मिला न। अनादि की दृष्टि राग-द्वेष ... आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : गारव...

पूज्य गुरुदेवश्री : अभिमान। आयेगा कलश।

इन सब कषायों को छोड़े, गारव को छोड़े,... यह आगे आयेगा। रस, ऋद्धि, साता गारव। मान में आ जाता है परन्तु यह विशेष—खास है, इसलिए पृथक् किये। इसमें रस, ऋद्धि और साता तीन लिये हैं न? उसमें और शब्दगारव, ऐसा लिया। शब्दगारव। अच्छी भाषा हो, कण्ठ हो, बोलना आता हो। भक्तामर प्रणत मौलि मणिप्रभानां... ऐसी

आवाज-ध्वनि आवे ऐसे मानो। सिंह-सिंह। सिंह मानो मलपता हो, ऐसी भाषा आवे। ऐसी भाषा का अभिमान हो।

मुमुक्षु : ऊँचा स्वर।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊँचा स्वर धूल का। वह तो जड़ है। आहाहा! समझ में आया? यह कण्ठ का अभिमान। उसमें ऐसा आता है, भाई! देखो! उसमें होगा। उसमें शब्दगारव होगा। उसमें शब्दगारव। है? बस यह। यहाँ रस आता है। रस, ऋद्धि, साता। वहाँ शब्दगारव लिया है। शब्द का अभिमान। मेरी भाषा कैसी! मोती के दाने जैसी भाषा। स्पष्ट भाषा। ऊंहूं... हूं... ऐसी नहीं। स्पष्ट भाषा। ऐई! पोपटभाई! दस-दस हजार लोगों में भी मैं... यह क्या कहलाता है तुम्हारे? माईक बिना बोलूँ तो दस हजार सुनें। ऐसी मेरी भाषा। भाषा तेरी न? तू जड़ हो गया। शोभालालजी! भाषा। कण्ठ की मिठास।

एक महिला नहीं थी कोई? सरोजनी नायडू। महिला। बोले तो ऐसे टोकरी मानो। टोकरी होती है न पीतल की। झनझनाहट बजे कण्ठ। परन्तु वह तो मिट्टी जड़ है। कर्म की पर्याय बाजा में से आवाज निकलती है या नहीं? इसी प्रकार यह बाजा है, ... है जड़। आहाहा!

मुमुक्षु : सुननेवाले को लाभ मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुननेवाले को लाभ उसके कारण से मिलता है। कहीं भाषा से नहीं मिलता। यह अपने स्वभाव पर लक्ष्य करे तो लाभ मिलता है। तब भाषा को निमित्त कहा जाता है। ऐसा है। सब बातें बहुत फेरफार। आहाहा! लोगों को तो ऐसा लगता है कि अपन दूसरे को उपदेश दें तो धर्म पावे तो अपने को कुछ लाभ मिले।

मुमुक्षु : कितने प्रतिशत?

पूज्य गुरुदेवश्री : दसवें प्रतिशत। दसवाँ भाग आवे, कहते हैं या नहीं कुछ? आता है।

मुमुक्षु : यह जमीन हमारी है। तुम थोड़ा धर्म करो तो दसवाँ भाग हमें मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में आता है। जो कुछ पैसा हो, उसका

दसवाँ भाग दान में देना। कम में कम, हों! ऐसे छठवाँ भाग देना, ऐसा कहते हैं। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा की टीका में है।

मुमुक्षु : रुपये में से या ब्याज में से?

पूज्य गुरुदेवश्री : आमदनी में से दे तो भी बहुत, लो न! पूँजी में तो एक ओर रहा। ऐई! भगवानजी भाई! आमदनी होती हो न पाँच लाख, उसमें से छठा भाग दे तो भी बहुत।

मुमुक्षु : ... सेठ कहते हैं...

पूज्य गुरुदेवश्री : जाये... तो करो भाग। वास्तव में भाग हो तो जो अपने पास पूँजी हो, उसका भाग देना चाहिए। धर्म में छठा भाग। थोड़े में थोड़ा दसवाँ भाग, ऐसा लिखा है। स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में (लिखा है)। ऐई! सेठ! इतना अधिक कहाँ से दे? वे लड़के इनकार करते हैं।

मुमुक्षु : ... न्याय उपार्जित ...

पूज्य गुरुदेवश्री : न्याय उपार्जित हो या अन्याय उपार्जित हो। ... घिसाने में क्या बाधा है? कहो, समझ में आया? चाहे जो हो नहीं। वह तो जड़ की पर्याय है। उसके प्रति ममत्व घटाना, वह अपने परिणाम की बात है। समझ में आया? तथापि वह परिणाम धर्म नहीं है।

मुमुक्षु : आप धर्म नहीं कहते, इसलिए हमारा मन नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : मन नहीं होता। दूसरी अपेक्षा से खर्च है। धर्म मनवाते हैं, वहाँ लाखों-करोड़ों खर्च करते हैं। ऐई! चन्द्रकान्तजी! लो! क्योंकि उस मुसलमान का अभी एक बड़ा होता है, मुम्बई में। ढाई करोड़ का। वोरा का होता है। लोटिया वोरा। है न? बड़ा मकान ढाई करोड़ का बड़ा। चालीस लाख का तो एक संगमरमर लाये हैं।

मुमुक्षु : कब्र पर, हों!

पूज्य गुरुदेवश्री : कब्र पर ही होगा न! अन्यत्र कहाँ होगा? मुर्दे के ऊपर ही होवे न। यहाँ तो ऐसा कहना है कि वहाँ ऐसा होता है। और यह हमारे वजुभाई वहाँ जा आये हैं, बनारस में बड़ा पचास लाख का। क्या कहलाता है तुम्हारे? मानसमन्दिर। हमारे चन्द्रकान्तभाई

कहे कि ऐसे-ऐसे होवे न, अपने क्यों मन्दिर छोटा होता है? ऐसा। बड़ा मन्दिर बनाना, अच्छा करना। यह दोनों मित्र हैं न। कहाँ गये दरबार? वहाँ बैठे हैं साथ में? आहाहा!

कहते हैं, अरे! जगत के धन्धे यह सब छोड़कर अरे! **मद जाति आदि के भेद से आठ प्रकार का...** मद रहेगा, तब तक आत्मा की ओर झुकाव नहीं होगा। यह ऐसा कहते हैं। **राग-द्वेष छोड़े और लोकव्यवहार जो संघ में रहने में परस्पर विनयाचार,...** देखो! धर्मी समकिती धर्मात्मा है, साधु आत्मध्यानी है परन्तु सम्प्रदाय में दूसरे ज्ञानी-ध्यानी भी है। परन्तु सम्प्रदाय में रहने से एक-दूसरे का विनय तो करना पड़े। वह भी व्यवहार है।

मुमुक्षु : लोकव्यवहार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह राग, वह लौकिकव्यवहार है न। आहाहा!

यह संघ, सच्चा संघ, हों! साधु-सन्त धर्मात्मा। भावलिंगी मुनि के संघ में रहना, परन्तु बड़े का विनय करना पड़े, थोड़ा विचार चलता हो ध्यान में कुछ, उसमें आवे, खड़े होना पड़े। ऐसा सब विकल्प का व्यवहार छोड़, ध्यान करना हो तो—ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? यह विधि है, ऐसा इसे निर्णय तो करना पड़ेगा न? आहाहा! देखो! **संघ में रहने में परस्पर...** परस्पर है न? **विनयाचार, वैयावृत्य,...** देखो! साधु को कुछ रोग हो तो वैयावृत्य में रहे, पैर दबाना पड़े। यह सब शुभभाव की उपाधि आयी।

मुमुक्षु : यह उपाधि है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहते हैं? वह भाव छोड़कर ध्यान में लग जा, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ... तो भूमिका अनुसार होवे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे, वह अलग बात है। होवे, वह अलग। परन्तु वह हो, उसे छोड़कर ध्यान करना, इसे अन्दर में जाना, ऐसा कहते हैं। प्रवचनसार में आया है। नहीं आया? मुनि के वैयावृत्त का काल है। इसका अर्थ क्या? उस प्रकार का उसे शुभभाव हो और ऐसे मुनि रोग में हों, इसलिए उसका काल ही राग में है, ऐसा कहते हैं। इसलिए उसे आगे दूसरा होता नहीं। ध्यान करने जाए तो नहीं कर सके। उसे भाव आया है। साथ में

मुनि हों, धर्मात्मा है, उल्टी होती है, दस्त होते हैं। समझ में आया? वह राग ऐसा, राग का-वैयावृत्त का काल है, तथापि वह बात हेयबुद्धि से है। आहाहा! ऐसी बात! वीतरागमार्ग ऐसा सूक्ष्म है।

ऐसे दूसरे को धर्म का उपदेश करें तो अपने को लाभ हो। श्रीमद् में आता है। एक भी जीव को धर्म प्राप्त करावे तो तीर्थंकरगोत्र बाँधे। तो वह सामनेवाला प्रसन्न हो जाए। आहाहा! क्या कहाँ परन्तु उन्होंने? दूसरा धर्म पावे और उसमें इसका विकल्पादि निमित्त हो तो तीर्थंकरगोत्र बाँधे अर्थात् यह बन्ध में पड़े और दूसरा भव बढ़े, ऐसा उसमें कहा।

मुमुक्षु : परन्तु प्रभु आपने तो पहले कहा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई प्राप्त नहीं कराता। कौन प्राप्त करावे? आहाहा! मार्ग ऐसा है, भाई! वीतरागमार्ग है। किसी की स्पृहा, किसी की अपेक्षा इस मार्ग में नहीं है। ऐसी बात है, भाई! आहाहा! चौरासी के अवतार में आकुलता के दुःख, प्रभु! अब सहे नहीं जाते। ऐसा तो आया नहीं था? कल भक्ति में आया नहीं था? परसों। दुःखड़ा सहा नहीं जाता। यह राग-द्वेष की आकुलता अब सही नहीं जाती। राग-द्वेष की आकुलता, हों! यह दुःख। आहाहा! दुःख के घेरे में घिर गया है। अरे! इसे तार-तार, इसे उगार। दया कर तेरी, ऐसा कहते हैं। यह कठिन मार्ग है, भाई! ऊँची-ऊँची बातें।

अरे! सच्चे संघ में रहने से भी विनय का आचार करना पड़े, वैयावृत्य का भाव आवे, **धर्मोपदेश,...** आवे। आहाहा! वह भी राग है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्थितिकरण। अपने को स्थितिकरण। पर को कौन स्थिति करे? वह तो विकल्प आया हो तो व्यवहार कहलाये। वह सब समझने जैसी बात है। स्थिति अपने में अन्दर स्थिति करना, वह स्थितिकरण है। वह तो उसके कारण से समझे। उसकी योग्यता होगी तो समझेगा। वह कहीं तेरे उपदेश से समझे, ऐसा है वह? समझ में आया? ऐसा जोर देना नहीं भाषा में, कहते हैं। अपने यह भाषा की, इसलिए समझ जाए, ऐसा करना नहीं। राग से रंग जाएगा। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : तेरी ज्ञान की पर्याय तुझसे होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दूसरे से हो किससे ? परिणमन है या नहीं उसका ? गुण है, उसका परिणमन होगा या नहीं ? परिणमन बिना का गुण रहेगा ? बस, परिणमन उससे होता है। पर से क्या हो ? आहाहा ! दुनिया में से सिर ऊँचा करके अन्दर में जाना, इसकी बात है भाई यह तो। हें ! दुनिया के साथ समरूपता रखनी हो तो वहाँ मिलान नहीं खायेगा, ऐसा कहते हैं। क्या हो ?

ध्यान में स्थित हो जावे, इस प्रकार आत्मा का ध्यान करे। लो ! **सब कषायों का छोड़ना कहा है, उसमें तो सब गारव महदादिक आ गये...** यह और भिन्न कहाँ किया ? ऐसा कहते हैं। **इनको भिन्न-भिन्न क्यों कहे ? उसका समाधान इस प्रकार है कि ये सब कषायों में तो गर्भित हैं किन्तु विशेषरूप से लिये भिन्न-भिन्न कहे हैं।** भिन्न-भिन्न उसकी विशेषता बतायी गयी।

कषाय की प्रवृत्ति इस प्रकार है जो अपने लिये अनिष्ट हो उससे क्रोध करे,... ठीक न लगे तो इसे अरुचि हो। यह अनिष्ट में द्वेष-क्रोध करे। **अन्य को नीचा मानकर मान करे,...** अपने से दूसरे को हल्का मानकर मान करे। आहाहा ! समझ में आया ? **किसी कार्य निमित्त कपट करे, आहारादिक में लोभ करे।** आहार ऐसा हो तो ठीक। यह मीठा आहार दिया, अमुक। यह सब लोभ।

यह गारव है वह रस, ऋद्धि और साता... लो ! तीन भिन्न किये। रसगारव, ऋद्धिगारव, सातागारव। **मान कषाय में गर्भित हैं तो भी प्रमाद की बहुलता इनमें है...** गारव में प्रमाद की विशेषता है। इसलिए इन गारव को भिन्न किया गया है। मद प्रमाद में होता है। लो ! इसका स्पष्टीकरण फिर विशेष नहीं किया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मान में गर्भित है। परन्तु अर्थ में ही विशेष है। इसमें प्रमाद विशेष है। रस अच्छा हो, साता शरीर की अनुकूल हो और अभिमान आ जाए, वह सब प्रमाद की विशेषता है। समझ में आया ? ऋद्धि। दुनिया मानती हो, पूजा करती हो, खम्मा-खम्मा। उस ऋद्धि का गारव अभिमान हो जाए तो मर जाए। समझ में आया ? यह तो 'धार तलवार की सोह्यली दोह्यली चौदवें जिनतणी चरणसेवा, धार पर नाचता देख बाजीगरा, सेवना धार

पर रहे न देवा' भगवान की आज्ञा का मार्ग, उसकी सेवना में रहना, देव का काम नहीं कहते हैं। समझ में आया?

मद-जाति,... जाति का मद, लो! माता पक्ष का। **कुल,...** मद पिता पक्ष का। **लाभ,...** मद। आहाहा! हमारे तो ५०-५० लाख महीने में पैदा होते हैं और हमारे लड़के ऐसे कर्मी जगे हैं। पैसा की तो धारा बरसती है। समझ में आया? ऐ! यह सब अभिमान। पर की चीज़ की अधिकता मानकर आत्मा को नीचा करना, यह बड़ा महानुकसान का कारण है। समझ में आया? आहाहा! देह छूटने के काल में ऐसे श्वास लेता हो, सब खड़े हों। इसका पूर्व का पुण्य वहाँ क्या काम करे? पुण्य बदला। शरीर में रोग आता है। आहाहा! करोड़, दो करोड़ पैसा, लड़के छह-छह उठानेवाले।

मुमुक्षु : चार ही होते हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : चार और फिर एक सामने अग्नि लेकर और पीछे पूणा लेकर। छह व्यक्ति होते हैं। मुम्बई में नहीं होते। मुम्बई की बात नहीं है। यह तो हमारे गाँव की बात है। हमारे उमराला में हो वहाँ। हमारे यहाँ अर्थी निकलती है न? ननामी। चार नारियल हों, भाई! हमारे यहाँ यह रिवाज है। वहाँ दरवाजा है न दरवाजा? दरवाजे में नीचे उतारे अर्थी। वहाँ फोड़े।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा कि अब आना नहीं भाईसाहब फिर से। गाँव में आना नहीं। ऐसा। हमारे दरवाजा है न बड़ा? उमराला में बड़ा। दो बड़े दरवाजे हैं। एक दरवाजे में ... एक दरवाज में गढ़। बाहर अर्थी उतारे नीचे। ठाठडी समझते हो? ननामी। क्या कहते हैं? ठाठडी। चार नारियल होते हैं न? उन्हें फोड़े। पालखी कहो मुर्दे को बैठाने की। ऐसा कि मरकर आना नहीं अब जीमने। वहीं का वहीं रहना अब। भूत होकर आना नहीं। पहले तो रिवाज हो, उसे बाहर निकाले न घर में से, तो मुँह में पावली रखे। पाव रुपया नहीं? भाईसाहेब आना नहीं अब, हों! इस रुपये के लिये। हमारे लड़के ... सब। उसे छूने दे नहीं। दो ओर हो न लकड़ियाँ? क्या कहलाते हैं? बारसाख। ऐसे छूने देना नहीं। तो छूकर और वापस आवे नहीं भूत होकर। यह दुनिया। देखो! इसके लड़के और यह इसके... यह सब

ठगों की टोली है, ऐसा कहते हैं। नियमसार में है। नियमसार में है कि यह ठगों की टोली मिली है तुझे सब। ऐ शोभालालजी! पुत्र, स्त्री, लड़के, बहू। बापूजी! बापूजी! मार डाले बापूजी कहकर। ठगों की टोलियाँ सब एकत्रित हुई है। लुटेरे तुझे लूटते हैं और तू प्रसन्न होता है। ठीक बापू, ठीक बापू।

मुमुक्षु : ठग मण्डली।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठग मण्डली। पाठ है। नियमसार में है। नियमसार है, उसमें कलश है। किस पृष्ठ पर होगा, यह खबर नहीं। कहाँ है? इस नियमसार में नहीं? इस ओर है। ठगों की टोली परन्तु अब यह कुछ अपने को सब याद होता है? यहाँ है। कितनीवीं? १९६। यह आया १९६। किसने कहा?

स्वयं किये हुए कर्म के फलानुबन्ध को स्वयं भोगने के लिये तू अकेला जन्म में तथा मृत्यु में प्रवेश करता है... जन्म में अकेला। कोई नहीं होता। मृत्यु में अकेला कोई नहीं होता। शरीर के... **दूसरे कोई (स्त्री, पुत्र, मित्रादिक) सुख-दुःख के प्रकारों में बिल्कुल सहायभूत नहीं होते। अपनी आजीविका के लिये (मात्र अपने स्वार्थ के लिये स्त्री, पुत्र, मित्रादिक) ठगों की टोली तुझे मिली है।**

मुमुक्षु : स्त्री-कुटुम्ब को क्यों लिया?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब देखो, देखो! सुमनभाई के लिये ऐसा कहा है। वह आठ-आठ हजार का वेतन लावे, बापूजी के पैर दबावे तो भी? सोमदव, पण्डितदेव हो गये हैं। सोमदेव पण्डित का श्लोक है। नियमसार। १०१ गाथा का श्लोक है। १०१ गाथा। उसमें श्लोक।

मुमुक्षु : प्रत्याख्यान अधिकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्याख्यान, हाँ, यह निश्चयप्रत्याख्यान। देखो!

अपनी आजीविका के लिये (मात्र अपने स्वार्थ के लिये स्त्री, पुत्र, मित्रादिक) ठगों की टोली तुझे मिली है। स्त्री, पुत्र, मित्र सब। हाँ भाई! हाँ भाई! तुम तो होशियार, हों! मार डाले ऐसा करके। फूलकर फूल का डोडा चढ़ जाए सिर पर। मर गया है, ऐसे अभिमान करके। उसमें तेरे आत्मा में क्या आया? ऐई! मनसुखभाई! ठीक यह तुम्हारे

टोली आयी है यह। ये चार भाई हैं। कहो, समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : उसमें रच-पच गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : रच-पच गया। वह कहे, बापूजी! आहाहा! वहाँ जबाव में भी ऐसा, बापूजी! हं। हाँ। क्या है परन्तु यह? कौन बापू? कौन राग? क्या बापा? संकल्प-विकल्प के साथ तुझे कुछ सम्बन्ध नहीं है। तो फिर इस टोली के साथ तुझे कहाँ सम्बन्ध आया? समझ में आया? संकल्प और विकल्प भी मेरे माननेवाले मिथ्यात्व को सेवन करते हैं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **राग-द्वेष, प्रीति-अप्रीति को कहते हैं, किसी से प्रतीति करना, किसी से अप्रीति करना, इस प्रकार लक्षण के भेद से भेद करके कहा।** है न? लक्षण के विशेष से यह बोलकर भेद करके कहे। **मोह नाम पर से ममत्वभाव का है, संसार का ममत्व तो मुनि के है ही नहीं, परन्तु धर्मानुराग से शिष्य आदि में ममत्व का व्यवहार है, वह भी छोड़े।** शिष्य अच्छे जगेंगे, शिष्य अच्छे होंगे। तुझे क्या काम है अब शिष्य अच्छा।

मुमुक्षु : धर्म की प्रभावना हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म की प्रभावना अन्दर में होती होगी या बाहर में होती होगी? आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह शुभराग। शिष्य धर्मात्मा हो और शिष्य मुनि? मुनि-मुनि धर्मात्मा। यह शिष्य बड़ा अच्छा होगा। और आत्मा का कल्याण करेगा। समकिती, ज्ञानी, धर्मात्मा शिष्य। उसकी ममता छोड़। वह भी विकल्प है। वह तेरे ध्यान में दखल करनेवाला है। आहाहा! यह तो मोक्ष की बात है न? छूटना है। किससे? सर्वथा विकल्प से-भेद से छूटना, इसका नाम मोक्ष।

मुमुक्षु : ठगमण्डली...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब ठगमण्डली है। आहाहा! दो व्यक्ति हों, पुत्र-पुत्री न हों, उसे तो बहुत बड़ा ठग मिले। उसे तो स्त्री के ऊपर ऐसा आहाहा! स्त्री को पति के ऊपर आहाहा! सब राग ढोला एक के ऊपर।

मुमुक्षु : परस्पर।

पूज्य गुरुदेवश्री : ... होय नहीं। लड़का हो, स्त्री हो तब तो भाग राग थोड़ा यह ले, यह ले। भाग पाड़े राग में। यह तो अकेला राग। आहाहा! कहते हैं, भाई! तेरा वीतरागस्वरूप मसल जाता है। मलिन हो जाता है, प्रभु! इस विकल्प को छोड़कर स्वरूप सन्मुख में आ जा तो वहाँ तेरा ध्यान हो सकेगा। नहीं तो इसमें अटकेगा तो इसमें ध्यान नहीं हो सकेगा। ऐई! भीखाभाई! कठिन बात इसमें।

शिष्य आदि में ममत्व का व्यवहार है, वह भी छोड़े। धर्मात्मा शिष्य हो, सन्त हो, ज्ञानी हो वे भी मेरे शिष्य अच्छे थे। यह अच्छे हैं। अब अच्छे-बुरे तेरे थे ही कब? शिष्य ही जीव को नहीं होते न! समझ में आया? **इस प्रकार भेद-विवक्षा से भिन्न-भिन्न कहे हैं, ये ध्यान के घातक भाव हैं,...** आहाहा! **इनको छोड़े बिना ध्यान होता नहीं है, इसलिए जैसे ध्यान हो वैसे करे।** लो! जैसे आत्मा में एकाग्र हुआ जाए, तद्नुसार कर। ऐसा कहते हैं। बाहर की वृत्ति में अटके नहीं। काम बहुत कठिन। ऐई! मनसुख!

गाथा-२८

आगे इसी को विशेषरूप से कहते हैं –

मिच्छत्तं अण्णाणं पावं पुण्णं चएवि तिविहेण।
मोणव्वएण जोई जोयत्थो जोयए अप्पा।।२८।।

मिथ्यात्वं अज्ञानं पापं पुण्यं त्यक्त्वा त्रिविधेन।
मौनव्रतेन योगी योगस्थः द्योतयति आत्मानम्।।२८।।

मिथ्यात्व को अज्ञान पुण्य रु पाप को तज त्रिधा से।
योगस्थ योगी आतमा ध्याता सदा व्रत मौन से।।२८।।

अर्थ – योगी ध्यानी मुनि है, वह मिथ्यात्व, अज्ञान, पाप–पुण्य इनको मन–वचन–काय से छोड़कर मौनव्रत के द्वारा ध्यान में स्थित होकर आत्मा का ध्यान करता है।

भावार्थ – कई अन्यमती योगी ध्यानी कहलाते हैं, इसलिए जैनलिंगी भी किसी द्रव्यलिंग के धारण करने से ध्यानी माना जाय तो उसके निषेध के निमित्त इस प्रकार कहा है कि मिथ्यात्व और अज्ञान को छोड़कर आत्मा के स्वरूप को यथार्थ जानकर सम्यक् श्रद्धान तो जिसने नहीं किया, उसके मिथ्यात्व, अज्ञान तो लगा रहा तब ध्यान किसका हो तथा पुण्य–पाप दोनों बंधस्वरूप हैं, इनमें प्रीति अप्रीति रहती है, जबतक मोक्ष का स्वरूप भी जाना नहीं है, तब ध्यान किसका हो और (सम्यक् प्रकार स्वरूप गुप्त स्व–अस्ति में ठहकर) मन–वचन–काय की प्रवृत्ति छोड़कर मौन न करे तो एकाग्रता कैसे हो? इसलिए मिथ्यात्व, अज्ञान, पुण्य, पाप, मन, वचन, काय की प्रवृत्ति छोड़ना ही ध्यान में युक्त कहा है। इस प्रकार आत्मा का ध्यान करने से मोक्ष होता है।।२८।।

गाथा–२८ पर प्रवचन

आगे इसी को विशेषरूप से कहते हैं :-

मिच्छत्तं अण्णाणं पावं पुण्णं चएवि तिविहेण।
मोणव्वएण जोई जोयत्थो जोयए अप्पा।।२८।।

पहले यह छोड़... यह छोड़... कहते हैं। आहाहा!

अर्थ :- योगी... अर्थात् धर्मात्मा। **ध्यानी...** अर्थात् अन्तर स्वरूप में एकाग्र होनेवाले **वह मिथ्यात्व, अज्ञान,...** पहला मिथ्यात्व और अज्ञान छोड़ना। तत्पश्चात् दूसरी बात। मिथ्यात्व और अज्ञान छोड़े बिना मुनि हो, वे सब भटक मरनेवाले हैं, ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। समझ में आया? आहाहा! उस महिला ने लिखा है न बेचारी ने? अरे! हमारे देश को ऐसे आचार्य नहीं होओ। ऐसा लिखा है। रजनीश के प्रति। हे प्रभु! हमारे देश को ऐसे व्यभि चार्वाक जैसे से बचाना, नाथ! ऐसे आचार्य मिले। ऐई! यह तुम्हारे। भगवानदास ... हाँ,

परन्तु तारणस्वामी में जन्मा है न वह ? परन्तु वह कोई हमारे पन्थ में थे, वह इनकार किया जाए ? पहले वहाँ थे। वहाँ भी सब मदद की है न। डालचन्दजी ने किसकी मदद की ?

मुमुक्षु : ... अभी करते होंगे...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वे कहते थे। अभी तो पुण्य बहुत अधिक है। बेचारी एक महिला ने पुकार किया है, हों! महिला उसकी भगत थी। अरे! भगवान! ऐसे से देश को बचाना। चार्वाक का अवतार नास्तिक... स्त्री-पुरुष नग्न घूमें और लाईट को धीमी करनी पड़े। अर र र! ऐसी कोई सज्जनता की रीति और धर्म के नाम से। शोभालालजी! बहुत हो गया। बहुत हो गया।

मुमुक्षु : यह तो सर्वथा लोकजात नहीं सब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : लोकजात सब। कल दृष्टान्त नहीं दिया था उसे चांपा का ? ऐसे नीतिवान। यहाँ तक था भाई उसमें। ... दरबार का था। लोग हों ऐसे। परन्तु परस्त्री का इतना अधिक त्याग मस्तिष्क में। समझ में आया ? यह ... आड़ा आया हो तो इस नारियल का पानी पिलावे। वह... लेकर बैठे। ... बहिन को। फिर खाये। ऐसा आता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ऐसी कोई सिद्धि थी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, सिद्धि नहीं। वह ... परस्त्री के त्याग की नीति, वे काठी लोग होते हैं। यह सुना है। यह नागरभाई तो नरोत्तमभाई ... ... गुजर गया तब ऐसा बोला था, नागरभाई के यहाँ समढियाला। बापू! यह तेरा पुत्र जाता है, हों! परन्तु तेरे पुत्र ने परस्त्री को कल्पना में-सपने में दुःखी नहीं किया। संकल्प आया नहीं। नरोत्तमभाई। यह ऐसा मनुष्य लौकिक में अर्थात् नीतिवान। नागरभाई के पुत्र समढियाला। नागरभाई ऐसे थे। जवान। बापू! तुम्हारा पुत्र जाता है। परन्तु यह मन में विकल्प लाया नहीं। ऐसी तो नीति होवे न जीवन की। वह तो लौकिक जीवन है। यह तो लोकोत्तर जीवन में आत्मा का ध्यान करना, यह बात चलती है। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-७३, गाथा-२९-३०, शनिवार, श्रावण कृष्ण १३, दिनांक १३-१२-१९७०

अष्टपाहुड़ में मोक्षपाहुड़। २८वीं गाथा।

मिच्छत्तं अण्णाणं पावं पुण्णं चएवि तिविहेण।
मोणव्वएण जोई जोयत्थो जोयए अप्पा ।।२८।।

मोक्ष का अधिकार है न? मोक्ष का कारण क्या? यह बात कहते हैं।

अर्थ :- योगी ध्यानी मुनि है... अर्थात् कि आत्मा के मोक्ष के लिये ध्यान करनेवाला। **वह मिथ्यात्व, अज्ञान, पाप-पुण्य इनको मन-वचन-काय से छोड़कर...** मिथ्यात्व, अज्ञान, अचारित्र में पुण्य और पाप तथा योग में मन-वचन और काया, इन सबको छोड़कर अन्तर में मौनव्रत करके... मौनव्रत अर्थात्? अन्तर में। ऐसे मौनव्रत बाहर से ले, वह नहीं। **ध्यान में स्थित होकर आत्मा का ध्यान करता है।** भगवान परमब्रह्म स्वरूप, आनन्द सत्-सत् परमात्मस्वरूप आत्मा का अन्तर (ध्यान करे)। मिथ्यात्व और अज्ञान का त्याग करे, उसे ध्यान होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ... व्रतादि हों परन्तु जिसने मिथ्यात्व और अज्ञान छोड़े नहीं, उसे किसी प्रकार से ध्यान... हो नहीं सकता। वह ध्यान करने जाए तो किसका करे? मिथ्यात्व और अज्ञान तो पड़ा है। ऐसा कहते हैं। कहते हैं न हमारे किसका ध्यान करना? परन्तु यह मिथ्यात्व गये बिना किसका ध्यान करना, यह तुझे खबर कहाँ से पड़ेगी? समझ में आया?

भावार्थ :- कई अन्यमति योगी ध्यानी कहलाते हैं,... देखो! जैन के अतिरिक्त अन्य में योगी और ध्यानी कहावे, हों! है नहीं। कहलाते हैं कि हम ध्यानी हैं, हम योगी हैं। **इसलिए जैनलिंगी भी किसी द्रव्यलिंग के धारण करने से ध्यानी माना जाये...** जैन में भी कोई द्रव्यलिंगी नग्नपना, पंच महाव्रतादि ... यह द्रव्यलिंग। **उसके निषेध के निमित्त इस प्रकार कहा है...** खाली द्रव्यलिंगपना मिथ्यात्व और अज्ञान टले बिना ध्यान में ... ऐसा नहीं। समझ में आया? पंच महाव्रत के परिणाम, समिति-गुप्ति के विकल्प राग, वह मिथ्यात्व और अज्ञान टले बिना वह राग कहीं तुझे आत्मा में एकाग्र होने में मदद करे, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

मिथ्यात्व और अज्ञान को छोड़कर आत्मा के स्वरूप को यथार्थ जानकर सम्यक् श्रद्धान तो जिसने नहीं किया... वस्तु अखण्ड अभेद सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा वह। ऐसी चीज़ को जानकर मिथ्यात्व और अज्ञान का नाश जिसने नहीं किया, उसे ध्यान क्या ? उसे व्रत क्या ? और उसे चारित्र क्या ? वह कुछ हो नहीं सकता। समझ में आया ? जैन में भी अभी कितने ही यहाँ का चला न तो निश्चय की बात सुनकर ... ध्यान करो अपने। ध्यान किसका ? जो चीज़ है वह तो श्रद्धान में-अनुभव में तो आयी नहीं। समझ में आया ?

मिथ्यात्व और अज्ञान को छोड़कर आत्मा के स्वरूप को यथार्थ जानकर सम्यक् श्रद्धान तो जिसने नहीं किया, उसके मिथ्यात्व-अज्ञान तो लगा रहा, तब ध्यान किसका हो... सूक्ष्म बात है। सूक्ष्म अभिप्राय में भी राग का भाग वह मेरा है, वह मुझे लाभदायक है और यह करता हूँ, वह मुझे ठीक है, ऐसा मिथ्यात्वभाव और अज्ञानभाव तो ऐसा है। उसे आत्मा के ओर की एकाग्रता का ध्यान नहीं हो सकता। समझ में आया ? यह ईश्वरकर्ता माननेवाले सब अद्वैत है और एक है, ऐसा माननेवाले, वे सब मिथ्यादृष्टि अज्ञानी हैं। हम ध्यान में बैठते हैं, ध्यान करते हैं, वह सब एक बिना के शून्य हैं। वस्तु है परमात्मा अलौकिक दिव्यस्वरूप सच्चिदानन्द भगवान, उसका तो जिसे ज्ञान, स्व का हुआ नहीं। अन्तर की श्रद्धा यह आत्मा पवित्रधाम... है ऐसी श्रद्धा भी जिसे अन्तर में-अनुभव में हुई नहीं, वह किसका ध्यान करे ? **तब ध्यान किसका हो...** बराबर है ? लो, इस मोक्षमार्ग में यह लिखा है मोक्ष का। जिसे अभी एकान्त बुद्धि है—द्रव्य ही माने, पर्याय न माने, पर्याय माने, द्रव्य न माने, सब एक है ऐसा माने और पंच महाव्रतादि के विकल्प जो हैं, वह मुझे लाभदायक हैं, ऐसा माने तब तक तो मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। ऐ... सेठ!

मुमुक्षु : पंच महाव्रत का राग...

पूज्य गुरुदेवश्री : राग, वह आस्रव है। वृत्ति उठती है न ? वृत्ति उठती है। इस जीव को न मारूँ, इस जीव को दुःख न दूँ, सत्य बोलूँ, शरीर से ब्रह्मचर्य पालन करूँ, चोरी न करूँ, परिग्रह लंगोटी भी न रखूँ, ऐसी तो वृत्ति उठती है। वृत्ति है, वह तो राग है, आस्रव है। समझ में आया ? जिसे आस्रवतत्त्व से ज्ञायकतत्त्व भिन्न श्रद्धा और ज्ञान में

आया नहीं, वह उसकी ओर के झुकाव का ध्यान किस प्रकार करेगा? ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

वास्तविक मिथ्यात्व शल्य है, वह गया नहीं। आता है न तत्त्वार्थसूत्र में? निःशल्यो व्रती। व्रती हो वह निःशल्य हो, उसे मिथ्यात्व शल्य होता नहीं। मिथ्यात्वशल्य हो, और व्रती हो तो वह व्रती है नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ध्यान करो। ॐ का ध्यान करो, ॐ जप जपो अथवा विकल्प से शून्य हो जाओ, शून्य हो जाओ। परन्तु शून्य क्या हो? वस्तु क्या है? सच्चिदानन्द अस्तितत्त्व, महाअस्ति तत्त्व चैतन्य ज्ञायकबिम्ब प्रभु की तो श्रद्धा और ज्ञान की खबर नहीं और फिर कहे करो ध्यान। वहाँ राग का ध्यान है। आहाहा! समझ में आया? विकल्प में राग है, उसका ध्यान है, आर्तध्यान है।

आता है न? बारह प्रकार के तप अनन्त बार किये और ध्यान भी आया है। ध्यान का अर्थ—अन्तर में एकाग्र होना। परन्तु अन्तर वस्तु क्या है? जिस प्रकार सर्वज्ञ परमेश्वर ने कही, इस प्रकार आत्मा का अन्दर ज्ञान हुआ नहीं, श्रद्धा हुई नहीं। फिर ध्यान किसका करना? ध्येय किसे लक्ष्य में लेना? लक्ष्य में लेनेयोग्य जो चीज़ है, उसकी दृष्टि और उसका ज्ञान हुआ नहीं। उसे ज्ञान और श्रद्धा बिना किसका ध्यान करना? राग में? समझ में आया? ... सर्वज्ञ से विरुद्धवाले मत हैं, उन मत के अभिप्रायवाले ध्यान करने बैठें, वे किसका ध्यान करे? वस्तु की तो खबर नहीं। समझ में आया? कहाँ बाण मारना, उस निशान की तो खबर नहीं। किसे ध्येय करके स्थिर होना, इसकी खबर नहीं। समझ में आया? देखो! यह अभी प्रयोग करते हैं न? रजनीश। दाँत निकालना (खिलखिलाना)... यह वह क्या है परन्तु? ऐसा ढोंग? ऐ सेठ! तुम्हारे सम्प्रदाय में था वह।

मुमुक्षु : प्रसन्न करने...

पूज्य गुरुदेवश्री : पुराने थे, ऐसा कहते हैं। शून्य होओ, शून्य होओ। ध्यान करो। किसका ध्यान? पागल का? पागल का? पागल जैसे दाँत निकाले। आये थे न लड़के? ... लोग, महिलायें।

मुमुक्षु : सबको...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... नहीं उसे यह बात उसे यह भान नहीं कि यह चीज़ क्या है

और इस चीज़ की प्राप्ति कैसे हो। खबर नहीं, इसलिए उल्टे मार्ग–रास्ते चढ़ गया। और लोग ऐसे मिलें, ऐसे पाँच सौ–पाँच सौ मनुष्य, महिलायें और आदमी।... ओहोहो! शिविर निकाला है। दीक्षार्थी होना।

मुमुक्षु : योग सिखाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : योग? योग... योग अन्दर। योग अर्थात्? योग अर्थात् जुड़ान। परन्तु किसके साथ जुड़ान? चीज़ क्या है, इसकी तो खबर नहीं। योग का अर्थ आता है अपने नियमसार में। नियमसार में योग आता है। वैसे तो शास्त्र में एक–एक बात आती है। नियमसार में कहते हैं कि योग अर्थात् क्या? जिसके साथ जुड़ान करना। जुड़ान किसके साथ करना? वस्तु की तो खबर नहीं। समझ में आया?

अखण्ड परिपूर्ण शुद्ध द्रव्य ज्ञायकभाव परमानन्द की मूर्ति अनन्त–अनन्त आनन्द का धाम ऐसा निज परमात्मा। आया है न? ३२० गाथा। ३२०। सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध (परम) पारिणामिक परमभाव लक्षण ऐसा शुद्ध निज आत्मद्रव्य निज आत्मद्रव्य, निज परमात्मद्रव्य, निज परमात्मद्रव्य। एक बार आये थे। शोभालालजी! ३२०। अन्तिम, अन्तिम लाईन। निज परमात्मद्रव्य भगवान अकेला अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द पूर्णानन्द का नाथ ऐसी अन्तर्दृष्टि और ज्ञान हुआ नहीं, वह ध्यान करने बैठे, वह किसका करेगा? आकाश के फूल जैसा ध्यान होगा उसे, ऐसा कहते हैं। वास्तविक आत्मा और वास्तविक आत्मा का स्वभाव जाने बिना और श्रद्धा किये बिना, अन्तर जाने बिना और श्रद्धा किये बिना, हों! **ध्यान किसका हो...** एक बोल हुआ।

मिथ्यात्व और अज्ञान छोड़े बिना अपना निज स्वभाव भगवान आत्मा अनन्त अपरिमित ज्ञान, अनन्त अपार श्रद्धास्वभाव, हों! त्रिकाल। अनन्त अखण्ड आनन्द, अनन्त बेहद जिसका वीर्य, ऐसा जो स्वभाव भगवान आत्मा, वह द्रव्य और गुण से पूरा है, ऐसा अन्तर ज्ञान पर्याय में, श्रद्धा में आया नहीं, वह किस ओर झुककर किसका ध्यान करेगा? किस ओर झुकाव करके किसे पकड़ेगा? समझ में आया? मोक्ष अधिकार है न।

मुमुक्षु : ध्यान में विचार...

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले विचार होता है, वह ध्यान नहीं है। ध्यान में तो निर्विकल्प

अनुभव होना, वह ध्यान है। सेठ! यह जरा सूक्ष्म बात है। राग के विकल्प छूटकर आत्मा निर्विकल्प आनन्दमूर्ति है, उसका आश्रय करने से निर्विकल्प पर्याय प्रगट होती है, निर्विकल्प आनन्द का स्वरूप प्रगट हो, वह ध्यान है। सूक्ष्म बात है। विकल्प से और विचार से भी प्राप्त होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह तो ... बात है।

यह तो मोक्षप्राभृत की बात है। मोक्ष अर्थात् परमानन्द की प्राप्ति। मोक्ष अर्थात् कहीं मोक्ष ... चीज़ नहीं है। अनन्त-अनन्त आनन्द, अनन्त बेहद ज्ञान, अनन्त बेहद दर्शन, अनन्त वीर्य आदि अनन्त गुण की शक्तिरूप भगवान आत्मा की व्यक्ततारूप पूर्णता का नाम मोक्ष। उस मोक्ष के लिये मिथ्यात्व और अज्ञान टले बिना मोक्ष का मार्ग ध्यान में आ नहीं सकता। समझ में आया? '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' ४७ गाथा है। द्रव्यसंग्रह। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा**' ध्यान में दोनों मोक्षमार्ग पाते हैं। ध्यान की तो खबर नहीं होती, ध्यान किसका करना? कौन है, इसकी खबर नहीं होती। समझ में आया? एक बात।

दूसरी बात। मिथ्यात्व और अज्ञान टले बिना स्वस्वरूप की दृष्टि और ध्यान नहीं हो सकते। एक बात। दूसरी बात चारित्र में पुण्य और पाप। जो मिथ्यात्व था, वह अज्ञान था और यह पुण्य और पाप अचारित्र। कहते हैं, **दोनों बन्धस्वरूप हैं...** पुण्य और पाप दोनों बन्धस्वरूप है। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, नामस्मरण, भगवान की भक्ति, भगवान को वन्दन करना, सिद्ध भक्ति इत्यादि, वह सब विकल्प और राग है। वह पुण्य है। समझ में आया? वह पुण्य और पाप, हिंसा, झूठ, चोरी, विषय, भोग, वासना, वह पाप। दोनों पुण्य और पाप, वह बन्धस्वरूप है। उसे जब तक न छोड़े, तब तक उसे आत्मा का ध्यान नहीं हो सकता। दृष्टि में से, हों! समझ में आया? पुण्य का, पाप का प्रेम रहे, तब तक पुण्य-पाप से रहित आत्मा का ध्यान नहीं कर सकता। ऐसा कहते हैं। कठिन मार्ग, भाई!

पुण्य-पाप दोनों बन्धस्वरूप हैं... ऐई प्रकाशदासजी! यह पंच महाव्रत के परिणाम, वह पुण्य है- ऐसा कहते हैं, बन्धस्वरूप है। कठिन बात! भगवान चैतन्य साहेबा निर्विकल्प आनन्द का कन्द, उसमें से पंच महाव्रत के विकल्प उठें, वह भी आस्रव और बन्ध का कारण है। आहाहा! सुना था अभी तक? सुना था पहले अभी तक? आहाहा! हमारे हीराजी महाराज थे।... हम साधु हैं, ऐसा कहे। हमारे ऐसा हो। यह बेचारे बहुत... यह वस्तु

... हमारे सम्प्रदाय के गुरु थे न ? हीराजी महाराज। बहुत शान्त, कषाय मन्द, ब्रह्मचारी और खानदान के ऊँचे, लौकिक में। उन्हें अन्दर में ... अरे ! हम साधु हैं, हमारे यह नहीं होता। उन्हें अन्दर से ऐसा होता है, हों ! परन्तु वस्तु की खबर नहीं होती। समझ में आया ? आहाहा ! (संवत्) १९७० में ... ... १९७० की दीक्षा हुई न ? दीक्षा होकर जाना था। जूनागढ़। उसमें ... विवाद बहुत बड़ा हुआ। मूलचन्दजी ... ऐसा बोले एक बार। मेरी दीक्षा अभी पन्द्रह दिन की थी। यह अपने को यह नहीं शोभता, हों ! ऐसा कहे। अपन ऐसा करेंगे तो अपने को कहेगा कौन ? परन्तु यह चीज़ नहीं। अपन ऐसा करेंगे तो अपने को कहेगा कौन ? परन्तु इस चीज़ की खबर नहीं। समझ में आया ? निर्दोष आहार-पानी ले। ... टुकड़ा भी न ले। उनकी क्रिया बहुत कठोर - सख्त क्रिया। परन्तु वह क्रिया मिथ्यात्व और अज्ञान के नाश बिना वह क्रिया किस गिनती में ? समझ में आया ? यह तो अभव्य भी ऐसी क्रिया तो करता है। समझ में आया ?

कहते हैं कि पुण्य और पाप बन्धस्वरूप है। आहाहा ! अव्रत का भाव, वह पापस्वरूप है और पंच महाव्रत का भाव, वह पुण्यस्वरूप है। दोनों बन्धस्वरूप है। आहाहा ! उसका प्रेम और रुचि जब तक है, तब तक स्वभाव-सन्मुख नहीं हो सकेगा। इसलिए कहते हैं, मिथ्यात्व, अज्ञान टालकर फिर भी पुण्य-पाप का प्रेम टालकर, पुण्य-पाप की रुचि टालकर और स्वभाव का ध्यान हो सकेगा। नहीं तो स्वभाव का ध्यान नहीं हो सकेगा। समझ में आया ?

इनमें प्रीति-अप्रीति रहती है,... पुण्य में प्रेम और पाप में अप्रेम रहे, **जब तक मोक्ष का स्वरूप भी जाना नहीं है...** ऊपर है। गुजराती है गुजराती। गुजराती है। ऐई ! प्रकाशदासजी ! यह बहुत ऊँचा है। पढ़े तो सही। २८वीं गाथा है न। २८ गाथा। समझ में आया ? पुण्य में प्रेम और पाप में द्वेष। आहाहा ! शुभराग, दया, दान, व्रत, पूजा, नामस्मरण इत्यादि ऐसे पुण्य में प्रेम रहे तो पाप में उसे द्वेष होता है। समझ में आया ? **जब तक मोक्ष का स्वरूप भी जाना नहीं है...** जिसे पुण्य का प्रेम है, उसने मोक्ष का स्वरूप जाना नहीं। आहाहा ! ... सब अर्थ ... चलता है। गाथा में ... ... समझ में आया ?

एक तो मिथ्यात्व और अज्ञान के स्वरूप को जाने बिना और उसे छोड़े बिना आत्मा सन्मुख झुकाव नहीं हो सकेगा। पुण्य के प्रेमवाले को आत्मा का अन्तर झुकाव नहीं हो

सकेगा। क्योंकि जहाँ प्रेम है, वहाँ उसका ध्येय है और वहाँ उसकी रुचि जाती है। रुचि अनुयायी वीर्य। जिसे शुभराग का प्रेम है, उसकी रुचि अनुयायी वीर्य। उसका पुरुषार्थ वहाँ काम करता है। मिथ्यात्व में, राग में काम करेगा, आत्मा में काम नहीं कर सकेगा। आहाहा! समझ में आया?

जब तक मोक्ष का स्वरूप भी जाना नहीं है, तब ध्यान किसका हो... आहाहा! अन्तर में रुचि में पोषाण, पुण्य का पोषाण है, धन्धे में पुण्य का पोषाण व्यापार, यह व्यवहार है न वह सब? यह व्यवहार-धन्धा सब कहलाता है। यह व्यवहार-पुण्य के परिणाम में जिसे पोषाण हैं, प्रेम है, उसे आत्मा का प्रेम और आत्मा की ध्यानदशा नहीं लगती। आहाहा! समझ में आया? वह अन्तरस्वरूप सन्मुख की रुचि करके अन्तर एकाग्र नहीं हो सकेगा। आहाहा! **जाना नहीं है, तब ध्यान किसका हो...** अर्थ भी बहुत सरस किया है।

तीसरा बोल। **मन-वचन की प्रवृत्ति छोड़कर मौन न करे...** अन्दर में विकल्प के मन-वचन-काया की ओर के विकल्प छोड़कर अन्तर में स्थिर होना न चाहे, तब तक उसे ध्यान नहीं हो सकता। मन की-वचन की प्रवृत्ति... प्रवृत्ति... प्रवृत्ति... प्रवृत्ति... प्रवृत्ति... प्रवृत्ति... प्रवृत्ति... बिना उसे सुहायेगा नहीं। कोई मन से कुछ बोलना, कुछ पढ़ना, कुछ यह करना... यह करना... ऐसी प्रवृत्ति मन-वचन-काया की जिसे रुचती है, सुहाती है। जिसे प्रवृत्ति का रस लगा है, वह निवृत्ति करके आत्मा का ध्यान नहीं कर सकेगा। भीखाभाई! ऐसी बात है।

मन-वचन की प्रवृत्ति छोड़कर मौन न करे तो एकाग्रता कैसे हो? समझ में आया? जिसे दूसरे के साथ बातें किये बिना सुहावे नहीं, अकेले रहना सुहावे नहीं, वह अकेला आत्मा, उसमें ध्यान में क्या कर सकेगा? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **इसलिए मिथ्यात्व, अज्ञान, पुण्य, पाप, मन, वचन, काय की प्रवृत्ति छोड़ना ही ध्यान में युक्त कहा है,...** लो! आहाहा! जवाबदारी बड़ी है। जवाबदारी नहीं, वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समझ में आया? हल्का (निर्भार) भगवान आत्मा पुण्य और पाप के विकल्परहित उस हल्की चीज़ के ध्यान में पुण्य का और पाप का बोझा लगे। समझ में आया? भार लगे। है न यह? पंच महाव्रत का भार रहता है। आत्मा के भान बिना पंच महाव्रत के भाव क्लेश-

क्लेश हैं, वह तो राग है। पंच महाव्रत के परिणाम क्लेश हैं, राग है। आहाहा! निर्जरा अधिकार में आता है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं न! इसलिए तो यह कहा जाता है। यह तुम लोग ... आये हो न।... यह सर्वत्र चलता है।... श्रद्धा यही थी। समझ में आया? यह सम्प्रदाय में भी क्रियाकाण्ड ... परन्तु यह नहीं। अकेला क्रियाकाण्ड। हीराजी महाराज ... पाँच-पाँच कोस का विहार करके आवे। स्वयं खुद आहार लेने जाए। मारवाड़ के। पाली... पाली। ... रोटी के लिये। ऐसे के ऐसे ... कोरे कोरा ... सम्प्रदाय की दृष्टि परन्तु ... तत्त्व की बात तो थी ही कहाँ? उन्हें बात कान में नहीं पड़ी थी। ऐसे हीराजी महाराज अर्थात् हीर। हिन्दुस्तान का हीरा और हीरा अर्थात् हीर बाकी सूत के फालका। सूत के फालका। क्या है यह? खबर है या नहीं? उनके ... परन्तु ... बहुत न माने परन्तु उनके पिता के गुरु। इनके पिता के गुरु। सर्प ... डसकर आये थे, इनके पिता को सर्प ने काट लिया। ... हीराजी महाराज के पास आये ... ऐसी छाप। कठिन नहीं हो मूल तो। ऐसी बहुत छाप थी। वचनसिद्धि जैसी छाप, हों! सर्प बड़ा ... एकदम बड़ा ... भाई! बहुत शान्ति से बोले।... नहीं। सर्प काटा नहीं।... हिम्मतभाई के पिता। यहाँ नहीं बैठते थे? ऐसी छाप थी। सर्प बहुत कठोर सर्प दुकान में से।... निकला हुआ। काटा नहीं। इतनी छाप।... वाला था। महाराज!... मुम्बई जाऊँ।... ऐसी छाप थी।

यह धर्म की बात कान में नहीं पड़ी। यह तुम्हारे पंच महाव्रत के विकल्प राग है, पुण्य है, बन्ध का कारण है, जहर है और जड़ की क्रिया आत्मा नहीं कर सकता, यह बात कान में पड़ी नहीं थी। ऐसा महँगा धर्म है, भाई! यह तो दुर्लभता की अपेक्षा से बात चलती है, हों! समझ में आया? ४६-४६ वर्ष दीक्षा पालन की। चार और छह वर्ष = छियालीस वर्ष। ४८, ५८ वर्ष में जंगल में रास्ते में देह छोड़ दिया।

मुमुक्षु : आपने नहीं...

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ कब भान था यहाँ का? परन्तु यह चार वर्ष की दीक्षा। ७० और ७४। १९७४ में तो गुजर गये। यहाँ तो वे कहते, यह मानते। दूसरा था कब? १९७४ में गुजर गये। बहुत वर्ष। कितने वर्ष हुए? ५२। परन्तु ५२ वर्ष। आहाहा!

यह तो भगवान अन्तर में से जागकर उठा हो, उसे खबर पड़े। किसी की अपेक्षा जिसे नहीं, ऐसी यह बात है। समझ में आया? भगवान आत्मा, कहते हैं कि जिसे पुण्य का, पाप का प्रेम जीवन में है और जिसे मिथ्यात्व का शल्य सूक्ष्मरूप से रह गया है, वह आत्मा की ओर का झुकाव नहीं कर सकता। चाहे तो जैन मुनि साधु हो, अट्ठाईस मूलगुण निरतिचार पाले। वह तो अभी (है नहीं) समझ में आया? व्यवहार का भी ठिकाना नहीं। प्राण जाए तो उसके लिये बनाया हुआ आहार न ले, तो भी कहते हैं उसमें धर्म माना, वह धर्म है, (यह मान्यता) वह मिथ्यात्व का बड़े पाप का शल्य है। गोदिकाजी! आहाहा!

मिथ्यात्व, अज्ञान, पुण्य, पाप, मन, वचन, काय की प्रवृत्ति छोड़ना ही ध्यान में युक्त कहा है, इस प्रकार आत्मा का ध्यान करने से मोक्ष होता है। लो! ऐसा भगवान आत्मा पहले जानकर, श्रद्धा करके पश्चात् उसका ध्यान हो सकता है।... समकित ऐसा होता है स्वभावसन्मुख का ध्यान करे तो भी सम्यग्दर्शन... माने। समकित ... निर्विकल्प समकित का ध्येय भगवान आत्मा, ऐसा अन्तर के झुकाव में ... समकित पा जाए। समझ में आया?

गाथा-२९

आगे ध्यान करनेवाला मौन धारण करके रहता है वह क्या विचार करता है, यह कहते हैं –

जं मया दिस्सदे रूवं तं ण जाणादि सव्वहा।
जाणगं दिस्सदे [१]णेव तम्हा जंपेमि केण हं।।२९।।

यत् मया दृश्यते रूपं तत् न जानाति सर्वथा।
ज्ञायकं दृश्यते न तत् तस्मात् जल्पामि केन अहम्।।२९।।

जो रूप दिखता है मुझे वह सर्वथा नहिं जानता।
जो जानता दिखता नहीं बोलूँ कहो किससे कहाँ?।।२९।।

१. पाठान्तरः – णं तं, णंत।

अर्थ – **जिस रूप को मैं देखता हूँ वह रूप मूर्तिक वस्तु है, जड़ है, अचेतन है, सब प्रकार से कुछ भी जानता नहीं है और मैं ज्ञायक हूँ, अमूर्तिक हूँ। यह तो जड़ अचेतन है, सब प्रकार से कुछ भी जानता नहीं है, इसलिए मैं किससे बोलूँ ?**

भावार्थ – **यदि दूसरा कोई परस्पर बात करनेवाला हो तब परस्पर बोलना संभव है, किन्तु आत्मा तो अमूर्तिक है उसको वचन बोलना नहीं है और जो रूपी पुद्गल है वह अचेतन है, किसी को जानता नहीं, देखता नहीं। इसलिए ध्यान करनेवाला विचारता है कि मैं किससे बोलूँ ? इसलिए मेरे मौन है।।२९।।**

गाथा-२९ पर प्रवचन

आगे ध्यान करनेवाला मौन धारण करके कहता है, वह क्या विचार करता है,... ध्यान करनेवाला मौनरूप से बैठता है, कैसा विचार करके रहता है ? समाधिशतक में भी ऐसा है। समाधिशतक की गाथा १८ और यहाँ २९। समाधिशतक, पूज्यपादस्वामी (कृत)। उसमें यह गाथा आयी है।

जं मया दिस्सदे रूवं तं ण जाणादि सव्वहा।
जाणगं दिस्सदे णेव तम्हा जंपेमि केण हं।।२९।।

अर्थ :- जिस रूप को मैं देखता... जिसे मैं देखता हूँ, वह तो जड़ है। मैं किसके साथ बात करूँ ? भगवान अरूपी चैतन्य है, वह तो दिखता नहीं। समझ में आया ? परन्तु यह विकल्प ही कहाँ है कि सुनकर मैं ... रहूँ ? समझ में आया ? भीखाभाई ! ऐसी क्रीड़ा है। **जिस रूप को मैं देखता हूँ, वह रूप मूर्तिक वस्तु है, जड़ है, अचेतन है, सब प्रकार से कुछ भी जानता नहीं है...** शरीर और वाणी, वह तो बेचारे जड़ हैं। वह कुछ जानते नहीं। मैं किसे सुनाऊँ ? समझ में आया ?

कुछ भी जानता नहीं है और मैं ज्ञायक हूँ, अमूर्तिक हूँ। यह तो जड़-अचेतन है, सब प्रकार से कुछ भी जानता नहीं है, इसलिए मैं किससे बोलूँ ? मैं तो ज्ञायक हूँ। और सामने अन्तर आत्मा भी ज्ञायक है। ज्ञायक वस्तु सुनती नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? यह सुनने का जैसे विकल्प है और सुनता है, वह आत्मा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में

आया? आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने गजब काम किया है! सिद्ध को नीचे उतारा है... वहाँ। एक बार... आहाहा!

रामचन्द्रजी लेते हैं न? रामचन्द्रजी ने ऐसी बात की। रामचन्द्रजी छोटे थे, तब झरोखे में बैठे थे। बैठे-बैठे चन्द्र के सामने देखते हैं। ऐसा करते हैं और रोते हैं। वह नीचे नहीं उतरता, इसलिए रोते हैं। कहते हैं ... रामचन्द्रजी ... ... लड़के का ... नहीं। लड़के को ... नहीं। यह काम मेरा है नहीं? क्या है देखो। यह विकल्प ... है रामचन्द्रजी चरमशरीरी हैं। अन्तिम देह है। उन्हें मोक्ष जाना है यह देह छोड़कर। ... रोते क्यों हैं? मूल तो खेलते-खेलते चन्द्र देखा न, ... चन्द्र समझे? आता है न? ... माँ मुझे चन्द्रमा ... ... जेब में डालो। ऐसे देखे तो। ... बैठे ... दर्पण में चन्द्र आ गया। ... यहाँ से लिया। ... सिद्ध के थे। यह भगवान पूर्णानन्द की पवित्रता मेरे ... समझ में आया? ... बड़े पुरुष की क्रीड़ा है न? आहाहा! ... मोक्ष पाकर मुक्त हो जायेंगे। समझ में आया? ... रोते थे।

इसी प्रकार जिसे मोक्ष की झंखना होती है... आहाहा! पूर्णानन्द ... सिद्ध, वह सिद्ध जैसे, उन्हें उपमा क्या है? ऐसी जिसे अन्तर में भावना जगती है, वह सिद्धपना अन्तर में उतारना चाहता है। वह सिद्ध ही है। सिद्ध समान सदा पद मेरो। आहाहा! ... 'सिद्ध समान सदा...' मैं तो नाथ प्रभु चैतन्य भगवान त्रिकाली हूँ। समझ में आया? कहते हैं कि मैं किसे यह बात करूँ? सुननेवाले दूसरे जड़, कोई सुनता नहीं ... वह तो जाननेवाला अन्दर पड़ा है। समझ में आया? और मैं ... यह और मेरा आत्मा जो अन्दर है वह तो ... नहीं। और वाणी निकलती है, वह कहीं आत्मा की नहीं है। समझ में आया?

मैं ज्ञायक हूँ, अमूर्तिक हूँ। यह तो जड़-अचेतन है, सब प्रकार से कुछ भी जानता नहीं है,... आहाहा! वह विकल्प उठता है न सुननेवाले को, वह विकल्प कुछ जानता नहीं। ... कुछ जानता नहीं। आहाहा! समझ में आया? पूज्यपादस्वामी की गाथा... कुन्दकुन्दाचार्य के बहुत भाव लिये। बहुत बीज कुन्दकुन्दाचार्य में से निकलते हैं। समर्थ आचार्य। क्षयोपशम इतना और ... ... पार करने की पद्धति ... ... समझ में आया? **इसलिए मैं किससे बोलूँ?**

भावार्थ :- यदि दूसरा कोई परस्पर बात करनेवाला हो, तब परस्पर बोलना

सम्भव है,... मेरे जैसा दूसरा ज्ञानस्वरूपी हो तो उसके साथ बोलूँ। ज्ञानस्वरूपी ... ही है। वह बोलता नहीं। और बोलूँ, वह मैं आत्मा नहीं। ... विकल्परूपी ... पर का किसके साथ मैं बात करूँ? ऐसा। उपदेश में भी विकल्प उठे और विकल्प कर्मबन्ध का कारण है। आहाहा! और सुननेवाले को भी विकल्प सुने वह भी बन्ध का कारण है। ऐसा यह कहते हैं। अब इसका ... बतलाना है। समझ में आया? **आत्मा तो अमूर्तिक है, उसको वचन बोलना नहीं है...** भगवान अरूपी, वचन उसके हैं नहीं। वचन तो जड़ के हैं। **और जो रूपी पुद्गल है, वह अचेतन है, किसी को जानता नहीं देखता नहीं।** पुद्गल तो जानता-देखता नहीं, किसे कहूँ? और आत्मा अमूर्तिक में वचन नहीं। **इसलिए ध्यान करनेवाला कहता है कि मैं किससे बोलूँ? इसलिए मेरे मौन है।** इस अपेक्षा से, हों! मौन करके ध्यान में आने के लिये यह है। यों ही बात में मौन करे वह कुछ ... नहीं। समझ में आया? यह तो वाणी, वाणी के कारण से मौन रही। उसके बदले मैं मौन रहा, यह मिथ्यात्व का अभिप्राय हुआ। समझ में आया? यह तो अन्तर में दूसरे को समझाने में विकल्प न आवे और राग का ... इसलिए ... यह भावना है।

गाथा-३०

आगे कहते हैं कि इस प्रकार ध्यान करने से सब कर्मों के आस्रव का निरोध करके संचित कर्मों का नाश करता है –

सव्वासवणिरोहेण कम्मं खवदि संचिदं।
जोयत्थो जाणए जोई जिणदेवेण भासियं।।३०।।

सर्वास्रवनिरोधेन कर्म क्षपयति संचितम्।
योगस्थः जानाति योगी जिनदेवेन भाषितम्।।३०।।

सब आस्रवों के रोध से संचित करम का क्षय करे।
योगस्थ योगी जानता बस सहज ऐसा जिन कहें।।३०।।

अर्थ – योग ध्यान में स्थित होता हुआ योगी मुनि सब कर्मों के आस्रव का निरोध करके संवरयुक्त होकर पहिले के बाँधे हुए कर्म जो संचयरूप हैं, उनका क्षय करता है, इस प्रकार जिनदेव ने कहा है, वह जानो।

भावार्थ – ध्यान से कर्म का आस्रव रुकता है इससे आगामी बंध नहीं होता है और पूर्व संचित कर्मों की निर्जरा होती है तब केवलज्ञान उत्पन्न करके मोक्ष प्राप्त होता है, यह आत्मा के ध्यान का माहात्म्य है।।३०।।

गाथा-३० पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि इस प्रकार ध्यान करने से सब कर्मों के आस्रव का निरोध करके... ऐसा भगवान आत्मा का ध्यान ... करके तो **संचित कर्मों का नाश करता है:-**

सव्वासवणिरोहेण कम्मं खवदि संचिदं।
जोयत्थो जाणए जोई जिणदेवेण भासियं।।३०।।

आहाहा! जहाँ हो वहाँ जिनदेव... जिनदेव... जिनदेव... इनके आत्मा में वीतरागदेव बैठे हैं। जिनदेव, ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा! विकल्परहित हो गये, अकेला वीतरागस्वभाव। जो वीतरागस्वभाव था, वह रह गया। ऐसे जिनदेव ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा! समझ में आया?

अर्थ :- योग ध्यान में स्थित हुआ योगी मुनि सब कर्मों के आस्रव का निरोध करके संवरयुक्त होकर... पुण्य-पाप के विकल्प को रोककर स्वरूप में ध्यान करता है, उसे आस्रव नहीं आता। आता नहीं परन्तु वह **पहिले बाँधे हुए कर्म जो संचयरूप हैं, उनका क्षय करता है,...** तालाब में नया पानी आवे नहीं, पुराना पानी सूख जाए। तालाब होता न? तालाब। उसमें छिद्र रोके, छिद्र तो पानी आवे नहीं। और है वह... तो ... सूख जाए वहाँ ... कारण से ... होता है ... इसी तरह भगवान आत्मा में अन्तर्मुख दृष्टि के ध्यान में रहा, छिद्र रुक गये, नये आस्रव आने का रुक गया। आहाहा! समझ में आया?

पहिले बाँधे हुए कर्म जो संचयरूप हैं, उनका क्षय करता है, इस प्रकार जिनदेव

ने कहा है, वह जानो। भगवान वीतरागदेव परमात्मा ऐसा कहते हैं। देखो! अब इसमें कहाँ दूसरे की प्रवृत्ति ... समझ में आया? यह करता हूँ... यह करता हूँ... यह करता हूँ... ऐसे ... गहरे... गहरे... गहरे... उतरता जाता है। ... में गहरे उतरते नहीं। ऐसा कहते हैं। भगवान अन्दर निर्विकल्प आनन्द का धाम, ... वेदी, ... चिन्तामणि रत्न समान भगवान परमात्मा स्वयं है। आहाहा!

कहते हैं कि जिनदेव ने ऐसा कहा है कि ऐसे स्वभाव का ध्यान करे अर्थात् कि जिस स्वभाव में राग नहीं, उसे पकड़े। राग नहीं; इसलिए नये आवरण आवे नहीं; पुराने खिर जायें, निर्जरा हो जाये। अकेला आत्मा रह जाये। आहाहा! मोक्ष है न! अकेला आत्मा। पूर्णानन्द ... ध्यान करे, इसलिए आवरण न आवे और पुराने कर्म हैं, वे ध्यान करने से खिर जायें। अकेला रह जाये पूर्णानन्द प्रभु सच्चिदानन्द प्रभु। जैसे बर्फ की शिला शीतल है बर्फ-बर्फ। ... शान्त अविकारी स्वभाव का रस ... वह रह जाये। आहाहा! विकल्प की ... सब शान्त हो जाये। निर्विकल्प ध्यान में आने पर विकल्प शान्त हो जाये।

भावार्थ :- ध्यान से कर्म का आस्रव रुकता है, इससे आगामी बन्ध नहीं होता है और पूर्व संचित कर्मों की निर्जरा होती है, तब केवलज्ञान उत्पन्न करके... लो! ध्यान ही केवलज्ञान को उपजाने का कारण? सब क्रिया-ब्रिया बीच में व्यवहार की कहते हैं, व्यवहार मोक्षमार्ग कहाँ गया? इनकार किया। व्यवहार, मोक्षमार्ग है ही नहीं। वह बन्ध का मार्ग है। छोड़ उस विकल्प को, कहते हैं। आहाहा! **केवलज्ञान उत्पन्न करके मोक्ष प्राप्त होता है, यह आत्मा के ध्यान का माहात्म्य है।** अब यह गाथा। यह गाथा आती है कहीं? मोक्षमार्गप्रकाशक, सातवें अध्याय में टोडरमलजी ने इस गाथा का आधार दिया है। समझ में आया? यह गाथा है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ३१। यह मोक्षमार्गप्रकाशक में है। कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा है। देखो! मोक्षपाहुड़ है न? ... ... जो व्यवहार में सोता है। **सोता है, वह अपने स्वरूप के काम में जागता है...** यह विकल्प आदि ... अपने में जागृत होता है। व्यवहार के विकल्प में से ... अपने ... जागकर व्यवहार में जगता है, वह ... व्यवहारनय स्वद्रव्य

परद्रव्य को और उनके भावों को तथा कारण-कार्य को किसी को किसी में मिलाकर व्यवहारनय निरूपण करता है। ऐसे श्रद्धान से मिथ्यात्व ... होता है। मोक्षमार्गप्रकाशक सातवाँ अध्याय। व्यवहारनय ... है। और उनके भावों को। शुभभाव से ऐसा होता है। कारण-कार्य को। व्यवहारनय के कारण से निश्चय होता है।... व्यवहारनय का कथन ... श्रद्धान, वह मिथ्यात्व है, इसलिए उसका त्याग करना। जितने व्यवहार के कथन हैं, उन्हें मानना कि सच्चा है, वह छोड़ देना। आहाहा! समझ में आया?

निश्चयनय।... किसी को किसी में मिलाता नहीं। और वैसे ही श्रद्धान से समकित होता है, इसलिए उसका श्रद्धान करना। शास्त्र में आता है कि व्यवहाररत्नत्रय साधन है और निश्चय साध्य है, यह श्रद्धा छोड़ देना। व्यवहार सम्यग्दर्शन मोक्ष का मार्ग ... आता है न? ... ऐसा कहते हैं। उसमें जो कारण कहा है, वह श्रद्धा छोड़ना। यह ... है नहीं। आहाहा! कथन की पद्धति ही कोई अलौकिक है। समझ में आया?

कहते हैं, मुनि व्यवहार में सोते हैं, वे अपने स्वरूप में जागते हैं। विकल्प से छूटकर वे व्यवहार में सो गये हैं, अन्ध हो गया। स्वरूप में जगता है। अपने निजस्वरूप में जगता है, वह व्यवहार में सो गया है और व्यवहार में जगता है, वह विकल्प में तत्पर होता है, दया, दान, व्रत, भक्ति में तत्पर हो, वह आत्मा की जागृति में सो गया है। आहाहा! समझ में आया? इसका भावार्थ आयेगा.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-३१

आगे कहते हैं कि जो व्यवहार में तत्पर है, उसके यह ध्यान नहीं होता है –

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणो कज्जे।।३१।।

यः सुप्तः व्यवहारे सः योगी जागर्ति स्वकार्ये।
यः जागर्ति व्यवहारे सः सुप्तः आत्मनः कार्ये।।३१।।

जो सुप्त है व्यवहार में वह जागता स्व कार्य में।
जो जागता व्यवहार में वह सो रहा स्व कार्य में।।३१।।

अर्थ – जो योगी ध्यानी मुनि व्यवहार में सोता है, वह अपने स्वरूप के कार्य में जागता है और जो व्यवहार में जागता है, वह अपने आत्मकार्य में सोता है।

भावार्थ – मुनि के संसारी व्यवहार तो कुछ है नहीं और यदि है तो मुनि कैसा? वह तो पाखंडी है। धर्म का व्यवहार संघ में रहना, महाव्रतादिक पालना ऐसे व्यवहार में भी तत्पर नहीं है, सब प्रवृत्तियों की निवृत्ति करके ध्यान करता है, वह व्यवहार में सोता हुआ कहलाता है और अपने आत्मस्वरूप में लीन होकर देखता है, जानता है, वह अपने आत्मकार्य में जागता है, परन्तु जो इस व्यवहार में तत्पर है, सावधान है, स्वरूप की दृष्टि नहीं है, वह व्यवहार में जागता हुआ कहलाता है।।३१।।

प्रवचन-७४, गाथा-३१ से ३३, रविवार, श्रावण कृष्ण १४, दिनांक २९-०८-१९७०

अष्टप्राभृत की ३१ वीं गाथा है।

अर्थ :- जो योगी ध्यानी मुनि व्यवहार में सोता है... यह गाथा अपने मोक्षमार्गप्रकाशक में आ गयी है। कल थोड़ा चला था। कल बात हुई थी। (जो) व्यवहार में सोता है, **वह अपने स्वरूप के काम में जागता है...** अर्थात् धर्मात्मा को लौकिक व्यवहार तो होता नहीं। मात्र धर्म का व्यवहार जो पंच महाव्रत का पालन, संघ में रहकर विनयादि का करना, ऐसा

जो संघ का व्यवहार है, वह भी विकल्प और राग है। आहाहा! मोक्ष का कारण, वह कोई विकल्प, वह कारण नहीं है। व्यवहार में जो सोते हैं।

भावार्थ :- मुनि के संसारी व्यवहार तो कुछ है नहीं और यदि है तो मुनि कैसा ? वह तो पाखण्डी है। लिखा न ? पाखण्डी लिखा है। सेठ! लौकिक व्यवहार हो, उसे मुनि कहना कैसा ? उसे मुनि नहीं कहा जाता। **धर्म का व्यवहार संघ में रहना, महाव्रतादिक पालना-ऐसे व्यवहार में भी तत्पर नहीं है;...** आहाहा! धर्मी तो स्वस्वभाव में आश्रय में तत्पर है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। चैतन्य ज्ञायकमूर्ति परमानन्द परमात्म निजस्वरूप, उसमें तत्पर होता है। व्यवहार हो, उसमें तत्पर नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : अपने स्वभाव में तत्पर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पंच महाव्रत के विकल्प, वैयावृत्य, विनय, संघ का व्यवहार जो शास्त्र में कहा, उसमें यह विकल्प आवे, उसमें तत्पर नहीं। क्योंकि वह तो राग है। आहाहा! बन्ध का कारण है और मोक्ष के मार्गी तो स्वभाव में तत्पर हैं। बहुत सूक्ष्म बात है।

चैतन्यमूर्ति ज्ञायक का आश्रय करके जो शुद्धता प्रगटे, वह मोक्ष का कारण है। पंच महाव्रत आदि विकल्प, अट्ठाईस मूलगुण आदि विकल्प, वह भी मोक्ष का कारण नहीं। इसमें है यह श्लोक। समझ में आया ? यह गाथा बहुत ऊँची है। इसका मोक्षमार्गप्रकाशक में आधार दिया। कल कहा था न यह ? सुनाई देता है न बराबर ? २५५ (पृष्ठ)। देखो! जो व्यवहार में सोता है, वह योगी अपने कार्य में जागता है। इसका अर्थ क्या ? जो धर्मात्मा पंच महाव्रत के विकल्प, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प, विनय, वैयावृत्य आदि उसकी जिसे तत्परता नहीं। वह विकल्प है, राग है, पुण्यबन्ध का कारण है। वह कहीं मोक्ष का मार्ग नहीं है।

मुमुक्षु : संवर-निर्जरा नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : संवर-निर्जरा नहीं, परन्तु बन्ध का मार्ग है। ऐसी बात है। बीच में आता अवश्य है, परन्तु उसमें जागता नहीं, सोता है। आहाहा!

विकल्प भगवान की भक्ति का आवे। यह पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण यह। यह भी रागभाग कषाय है। और कषायभाव, वह कहीं मोक्ष का कारण नहीं है। यह जो

व्यवहार में सोता है अर्थात् कि जिसे व्यवहार के विकल्प की दरकार नहीं और अपने कार्य में जागता है। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वभाव, उस ओर में जिसकी जागृति है। दृष्टि ध्रुव पर पड़ी है, इससे धर्मात्मा की जागृति स्वभाव-सन्मुख होती है। विभाव-सन्मुख होती नहीं। आहाहा! बहुत मार्ग (कठिन है)।

और जो व्यवहार में जागता है, वह अपने आत्मकार्य में सोता है। अर्थात्? जो कोई पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण राग में तत्पर है, उसमें लीन है, वह आत्मा के स्वभाव में सोता है। आहाहा! आत्मा के स्वभाव की जागृति की उसे खबर नहीं है। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, बारह व्रत, वैयावृत्य, सेवा, विनय, इन सब विकल्पों में जो तत्पर अर्थात् जागृत है, उसमें लीन है, वह आत्मा के स्वभावकार्य में सोता है। समझ में आया? देखो! मोक्ष अधिकार में यह गाथा। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं, जो कोई व्यवहार में तत्पर हैं, वे अपने कार्य में सो गये हैं। आहाहा! यह वीतराग ने कहा, वैसा व्यवहार, हों! पंच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, अपवास आदि की क्रिया जो विकल्प की है, उसमें जो कोई जागता है अर्थात् तत्पर है, वह अपने कार्य में सोता है। आहाहा! भारी काम।

मुमुक्षु : शुभराग नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभराग ही विपरीतता है, ऐसा यहाँ कहते हैं। धर्मी शुभराग में तत्पर नहीं होता। आवे सही परन्तु तत्पर नहीं, उसका आश्रय नहीं, उसका आदर नहीं। सूक्ष्म बात है। दरबार!

यहाँ तो मोक्ष का मार्ग कहना है न? मोक्ष का मार्ग कहीं पर के आश्रय से विकल्प से नहीं होता। वह तो बन्धमार्ग है। चाहे तो अट्ठाईस मूलगुण पाले, पंच महाव्रत पाले, विनय, वैयावृत्य आदि जितनी क्रिया कही, बारह प्रकार के तप, वह सब शुभ विकल्प और बन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : अब तो पर्व चालू हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तो क्या है? पर्व चालू हो या न हुआ, मार्ग तो यह है। पर्व के दिन में भी मार्ग है और दूसरे दिन में भी यह मार्ग है। मार्ग कोई दूसरा नहीं है। ऐसा कि

पर्व के दिन चालू हुए, इसलिए कुछ दूसरा व्यवहारधर्म होगा या नहीं कुछ? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, व्यवहार में जागता है, वह अपने कार्य में सोता है। इसलिए व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर... आहाहा! जितने व्यवहार के कथन जैनशास्त्र में व्यवहार के आये हों, उनका श्रद्धान छोड़कर। आहाहा! यह धर्म है, मोक्ष का मार्ग है, यह श्रद्धा छोड़ दे। समझ में आया? निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है। स्वभाव के आश्रय की जितनी बात हो, वह आश्रय करनेयोग्य है। समझ में आया? उपदेश देना मुनि को वह भी विकल्प है, उसे बन्ध का कारण है, ऐसा कहते हैं। शोभालालजी!

मुमुक्षु : आशीर्वाद देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आशीर्वाद देते हैं। अभी इसे स्वयं को खबर नहीं होती कि मैं कौन हूँ और किसका आशीर्वाद दे? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, जो कोई निश्चय की श्रद्धा करनेयोग्य है। भगवान ने कहा हुआ जितना व्यवहार समिति, गुप्ति, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण, विनय, वैयावृत्य, यह शास्त्र के स्वाध्याय का विकल्प... समझ में आया? उन सबकी श्रद्धा छोड़नेयोग्य है। उससे मेरा कल्याण होगा, ऐसा है नहीं। आहाहा! कठिन मार्ग, भाई!

मुमुक्षु : .... दूसरा कोई उपाय नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपाय नहीं। मार्ग दूसरा है नहीं।

अब व्यवहार की व्याख्या करते हैं। व्यवहारनय स्वद्रव्य-परद्रव्य को मिलाकर बात करता है। जैसे कि ज्ञानावरणी से ज्ञान रुकता है, ऐसा व्यवहारनय कहता है, तो ऐसी श्रद्धा करे तो झूठी श्रद्धा है। समझ में आया? गुरु से ज्ञान होता है, ऐसा व्यवहारनय कहता है। वह श्रद्धा छोड़नेयोग्य है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : पहले तो करे, फिर छोड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो कहते हैं कि पहले-बाद में है ही नहीं। पहले तो स्वभाव का आश्रय करना, यह पहला है। ऐसी बात है। मार्ग बहुत सूक्ष्म है। लोग अपनी दृष्टि से मानते हैं, वह मार्ग दूसरा प्रकार है, भाई! भगवान चिदानन्द प्रभु!

यहाँ तो कहते हैं कि पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति, आहार लाकर खाना, ऐसे विकल्प

वह सब पुण्यबन्ध का कारण; मोक्ष का मार्ग नहीं है। ऐसी बात शास्त्र में आयी हो कि यह व्यवहार यह व्यवहार यह यह, तो वह श्रद्धा छोड़नेयोग्य है। भगवान ने कहा व्यवहार, उसकी श्रद्धा छोड़नेयोग्य है। श्रद्धा। कि वह धर्म है और मुक्ति का मार्ग है, ऐसा है नहीं। आहाहा! व्यवहारनय स्वद्रव्य-परद्रव्य को मिलाकर बात करता है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर सके, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को मदद कर सके, एक द्रव्य से दूसरे द्रव्य को नुकसान हो, एक द्रव्य से दूसरे द्रव्य को लाभ हो, ऐसे व्यवहारनय के कथन आते हैं। इन व्यवहारनय के कथनों की श्रद्धा छोड़नेयोग्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले व्यवहारनय का ज्ञान कराना और फिर छोड़ना।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान पहले से यह ही है। छोड़ने के लिये बतलाया है वह। समझ में आया? व्यवहार बतलाते हैं, वह छोड़ने के लिये ही बतलाते हैं। आदरने के लिये बतलाते हैं, ऐसा है नहीं। आठवीं गाथा में आ गया। व्यवहारनय आत्मा को भेद पाड़कर समझाता है कि आत्मा ज्ञान-दर्शन-चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। ऐसा व्यवहार से मुनि जगत को समझाने में आते हैं, परन्तु वह व्यवहार कहनेवाले को और सुननेवाले को अनुसरण करनेयोग्य नहीं है। यह आठवीं गाथा में है। समझ में आया? व्यवहार से निश्चय समझाते हैं। परन्तु वह व्यवहार अंगीकार करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! काम बहुत कठिन।

स्वद्रव्य-परद्रव्य को मिलाकर बात करे। तीर्थंकर की वाणी से आत्मा को लाभ होता है, ज्ञान होता है, ऐसे व्यवहारनय के कथन कहते हैं। वह श्रद्धा छोड़नेयोग्य है। ऐई! सेठ! फिर यह वाणी के पुस्तक से ज्ञान होता है, यह कहाँ है यहाँ? ऐ! सेठ! इसके घर में कहाँ है वहाँ? माना है वह। यह जिनवाणी है, इसमें से अपने को ज्ञान मिलेगा। मूर्ति में से नहीं मिलेगा। ज्ञान वाणी में से (मिलता है); इसलिए वाणी अपने को पूज्य है। दोनों बात सच्ची नहीं हैं। मूर्ति में से भी ज्ञान मिले, ऐसा नहीं है और वाणी में से भी मिले, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है जरा। इन्होंने बहुत स्पष्ट किया है।

मुमुक्षु : सुनने से...

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनने से उसे विकल्प होता है। उसे ख्याल में आवे इसकी अपनी योग्यता का। क्या योग्यता का? अर्थात् जिस प्रमाण क्षयोपशम है, ऐसा ख्याल आवे। परन्तु वह वास्तविक ज्ञान नहीं है। आहाहा! बहुत बात ऐसी है।

पंच महाव्रत और यह तो कहीं रह गये। परन्तु एक द्रव्य से दूसरे द्रव्य को मिलाकर बात करे (कि) इससे ऐसा होता है, भगवान की वाणी से अनन्त तिर गये। समझ में आया? महाविदेह में भगवान विराजते हैं, इसलिए वहाँ इसका यदि जन्म हो तो इसे लाभ हो, यह सब बातें व्यवहार की छोड़नेयोग्य है। ऐई! वजुभाई!

मुमुक्षु : कठिन लगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन लगे या न लगे। मार्ग तो ऐसा है।

मुमुक्षु : शास्त्र ज्ञान नहीं...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आयेगा आगे। ... शास्त्र कुछ जानते नहीं, वह तो जड़ है, अजीव है। जैसे मूर्ति अजीव है, वैसे शास्त्र अजीव है। अजीव में कुछ तेरा ज्ञान और श्रद्धा वहाँ भरे नहीं हैं। यह तो आ गया नहीं अपने? दोपहर को नहीं आता? ... पर में कुछ तेरे घर का है नहीं। दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह कहीं पर में नहीं है। समझ में आया? आहाहा! भारी कठिन बात। ऐई! भीखाभाई! वे चिल्लाहट मचाते हैं न। लो! स्त्री का विषय और भगवान की वाणी का विषय दोनों में अन्तर है न? अन्तर है। कौन इनकार करता है? परन्तु अन्तर है का अर्थ एक में अशुभराग (है, एक में शुभराग है)। बाकी परविषय रूप से दोनों समान हैं। समझ में आया?

व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर निश्चय का श्रद्धान करना योग्य है। व्यवहारनय एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य में मिलाकर लाभ-नुकसान की बात करता है, वह श्रद्धा छोड़नेयोग्य है। भगवानजीभाई! ऐई! सेठ! तुम्हारे अधिक वहाँ उस चैत्यालय में वे पुस्तकें रखी हैं न तो उनकी पूजा करो। उससे ज्ञान मिलेगा, उसमें ज्ञान भरा है जड़ में।

मुमुक्षु : भगवान में अपने में है, वह ज्ञान यहाँ काम नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान का केवलज्ञान भगवान के पास हो तो सामने लक्ष्य वहाँ जाए तो राग होता है। उसका ज्ञान तो यहाँ है अन्दर में। समझ में आया?

एक भाव को दूसरे भाव में मिलाकर बात करता है। राग से जीव को सम्यग्दर्शन होता है, व्यवहार से जीव को निश्चय होता है। एक भाव को दूसरे भाव में मिलाकर व्यवहारनय बात करे, वह बात श्रद्धा करनेयोग्य नहीं है। अरे! समझ में आया? व्यवहार

हेतु है, उसे व्यवहार कारण है और आता है न? छहढाला में। नियत का हेतु। मिलावट के कथन हैं। व्यवहार निश्चय का हेतु, यह व्यवहार का कथन। एक भाव को दूसरे भाव में मिलाकर बात करता है, इसलिए वह श्रद्धा करनेयोग्य नहीं है। ओहोहो! समझ में आया? एक भाव और दूसरे का भाव। कर्म का उदय जड़ का है। वह आत्मा को राग करावे, यह श्रद्धा छोड़नेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। कर्म का उदय जड़ है। आत्मा के राग को जड़ करावे, एक भाव दूसरे भाव को करावे, मिलाकर बात करे, वह व्यवहारश्रद्धा छोड़नेयोग्य है। कहो, समझ में आया इसमें? मनसुखभाई ने चोका लगा दिया। कहो, समझ में आया? आहाहा! भारी बात।

टोडरमलजी ने, यह व्यवहार में सोता है और निश्चय में जागता है, उसमें से यह सब निकाला। आहाहा! भगवान! जितना पर का आश्रय, बारह प्रकार के तप, अनशन और ऊनोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रस परित्याग, विनय, वैयावृत्य, सज्झाय, ध्यान, विकल्प यह सब व्यवहार है, वह बन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : सम्पूर्ण स्पष्टीकरण किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात ही ऐसी है। देखो! मोक्षमार्गप्रकाशक में है। पढ़ा है न तुमने? परन्तु कहाँ खबर है।

मुमुक्षु : क्या आया यह कहाँ खबर है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। क्या आया, इसकी कुछ खबर नहीं। क्या सिद्ध किया, समझ में आया? मोक्षमार्गप्रकाशक देखा है या नहीं? इतना बराबर ख्याल में नहीं आया। कहो, समझ में आया? आहाहा!

कारण-कार्य किसी का किसी में मिलाकर निरूपण करता है। निमित्त कारण से उपादान में लाभ होता है। समझ में आया? ऐसे एक कारण से दूसरे कारण का कार्य होता है, ऐसा व्यवहारनय का कथन है। यह श्रद्धा करे तो मिथ्यात्व है। यह श्रद्धा छोड़नेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? देखा! **इसलिए ऐसे श्रद्धान से मिथ्यात्व है, इसलिए उसका त्याग करना।** यह इसमें है, मोक्षमार्गप्रकाशक में। यहाँ...

भावार्थ :- मुनि के संसारी व्यवहार तो कुछ है नहीं... गाथा ३१। **और यदि है तो**

मुनि कैसा ? वह तो पाखण्डी है। पाखण्डी है। आहाहा! वस्त्र-पात्र रखे, पैसा रखे या पैसा दूसरे को रखने का कहे या हमारे लिये पैसा खर्च करना, यह पैसा अब तुम रखना। यह सब पाखण्डी हैं। मिथ्यात्व को सेवन करनेवाले और व्यवहार की बाहर की क्रियाओं में स्वयं अनुमोदन देनेवाले। समझ में आया ? यहाँ तो **धर्म का व्यवहार संघ में रहना,...** धर्म का जो व्यवहार है—संघ में रहना, वह व्यवहार विकल्प रहना पड़े तो, बड़े हों उसमें आदर करना पड़े, स्वयं ध्यान में ऐसे लगता हो, उसमें आये हों तो क्या करना इसे ? समझ में आया ? आदर करना पड़े, जाये तो छोड़ने जाना पड़े। इन सब विकल्पों का जाल खड़ा होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

संघ में रहना, महाव्रतादिक पालना- पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण और पाँच समिति और तीन गुप्ति तथा बारह प्रकार का व्यवहार तप पालना, **ऐसे व्यवहार में भी तत्पर नहीं है;...** धर्मी को यह व्यवहार छोड़नेयोग्य है। उसमें कोई तत्पर नहीं हो सकता। आहाहा! कठिन बातें। **सब प्रवृत्तियों की निवृत्ति करके ध्यान करता है...** बाहर की प्रवृत्ति का विकल्प छोड़कर अन्तर के आत्मा का आश्रय करता है। समकिती हो या श्रावक हो, मुनि हो अन्तर का आश्रय करता है, उतना मोक्षमार्ग है। उसमें समकिती के लिये और दूसरा है, शुभभाव उसे परम्परा मोक्ष का कारण कहा, इसलिए उससे होता है, यह व्यवहारनय के कथन हैं, वह छोड़नेयोग्य है। आहाहा! **और अपने आत्मस्वरूप में लीन होकर देखता है,...** कहो, समझ में आया ? किसे देखता है ? ऐई! अपने को। आहाहा!

मुमुक्षु : सच्चा ध्यान यह।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका नाम आत्मज्ञान। अपना निजस्वरूप शुद्ध आनन्दस्वरूप पूर्णभाव स्वभावस्वरूप को देखे और जाने, वह स्व का आश्रय करे। इससे उसे कल्याण और मोक्ष का मार्ग उद्भव होता है। आहाहा! भारी कठिन। अभी के लोगों को व्यवहार में-व्यवहार में... व्यवहार का लोप (होता है)। तो यह क्या कहा ? क्या कहते हैं यह ? यह मोक्षप्राभृत में आचार्य स्वयं कहते हैं। व्यवहार में सोता है, वह निश्चय में जागता है। व्यवहार में जागता है, वह निश्चय में सो गया है। ऐसा कहते हैं। यह भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तो कहते हैं। ऐई! मलूकचन्दजी! तो फिर व्यवहार करना या नहीं करना हमारे ? यह प्रश्न कहाँ ? यह जबरदस्ती अन्दर में विकल्प आये बिना रहता नहीं, परन्तु वह बन्ध का कारण

है, आदरनेयोग्य नहीं है, ऐसा कहते हैं। काम बहुत (कठिन)। समझ में आया?

आत्मस्वरूप में लीन होकर देखता है, जानता है, वह अपने आत्मकार्य में जागता है.... परसन्मुख का लक्ष्य, परद्रव्य की ओर का आश्रय छोड़कर स्वद्रव्य के आश्रय के ध्येय में लगे, वह निश्चय का आश्रय करे, उसे मोक्ष का मार्ग है। कहो, समझ में आया? आहाहा! स्वाध्याय को तो शास्त्र में तप कहा है। वह तो व्यवहार की बात है। निश्चयस्वाध्याय स्वस्वाध्याय ज्ञायकभाव का अन्दर स्वाध्याय करना-अन्दर में रहना, वह निश्चयस्वाध्याय है। जेठमलजी! लो, यह बात है। आहाहा! ऐसा लगे कि यह सोनगढ़वाले व्यवहार का लोप करते हैं। ऐई! शान्तिभाई! भगवान क्या कहते हैं यह?

मुमुक्षु : परन्तु भगवान लोप करने का तो कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भगवान लोप करने का कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। व्यवहार में सो जा, जाग नहीं, ऐसा तो यहाँ कहते हैं। किसका वचन लेना है? आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, व्यवहार में सो जा, सो जा, तत्परता छोड़ दे। भगवान आत्मा में तत्परता कर, यह मार्ग है वीतराग का। आहाहा! समझ में आया?

अपने आत्मकार्य में जागता है परन्तु जो इस व्यवहार में तत्पर है... जो कोई व्यवहार में पूरे दिन (तत्पर है)। वह तो यह खाना, यह पीना, यह पढ़ना, यह लेना, यह देना, यह पालन करूँ, यह गर्म पानी ऐसा हो, अमुक यह हो... आहाहा! **इस व्यवहार में तत्पर है-सावधान है, स्वरूप की दृष्टि नहीं है...** उसे भगवान आत्मा की स्वरूपस्वभाव स्वरूप अर्थात् स्वभाव की दृष्टि नहीं है। आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं। उसमें बोले सही। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो। समझ में आया? मानना नहीं उनका।

कहते हैं, **व्यवहार में तत्पर है-सावधान है, स्वरूप की दृष्टि नहीं है, वह व्यवहार में जागता हुआ कहलाता है।** बराबर संसार में जागता भटकने के लिये है, कहते हैं। आहाहा! सम्यग्ज्ञानदीपिका में लिया है कि पर को देखने के लिये अन्ध हो जा। अन्ध बन जा। पर को देखने में तुझे क्या लाभ है? आहाहा! भारी बात। और स्व को देखने में स्वसन्मुख आँख कर। हमारों आँखें बना। चैतन्य अन्तर है। वह मार्ग है।

आचार्य स्वयं कहते हैं, जो व्यवहार में तत्पर और सावधान है, व्यवहार में जो पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण में अभी सावधान और लवलीन है, उसे **स्वरूप की दृष्टि नहीं है...** उसे स्वरूप की दृष्टि नहीं। उसमें नहीं आता, हों! उसमें तो अकेला पाठ है। भक्तिवाला हो तो यहाँ विवाद हो। वहाँ तो श्रीमद् की भक्ति करना, गुरु की भक्ति करना और गुरु की भक्ति से कल्याण होगा, ऐसा मानना हो। उसे यह सब विवाद। ऐई! सेठ!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कहते हैं कि समय में सब अस्थिर (होता है)। तो यहाँ सब हो गया। धर्म में झगड़ा न हो। एक होय तीन काल में परमार्थ का पन्थ। परमार्थ के पन्थ में दो-तीन भाग नहीं हो सकते। समझ में आया? कहते हैं कि जितने व्यवहार में तत्पर हैं, वे सब स्वरूप की दृष्टिरहित व्यवहार में जागनेवाले मिथ्यादृष्टि हैं। कपूरचन्दजी! यह ऐसी बात है। ऐसी बात है।

गाथा-३२

आगे यह कहते हैं कि योगी पूर्वोक्त कथन को जान के व्यवहार को छोड़कर आत्मकार्य करता है –

इय जाणिऊण जोई ववहारं चयइ सव्वहा सव्वं।
झायइ परमप्पाणं जह भणियं [1]जिणवरिंदेहिं।।३२।।

इति ज्ञात्वा योगी व्यवहारं त्यजति सर्वथा सर्वम्।
ध्यायति परमात्मानं यथा भणितं जिनवरेन्द्रैः।।३२।।

यों जान योगी सर्वथा व्यवहार सकल सदा तजें।
ध्याते सदा परमात्मा को सभी जिनवर यों कहें।।३२।।

अर्थ – **इस प्रकार पूर्वोक्त कथन को जानकर योगी ध्यानी मुनि है, वह सर्व**

१. पाठान्तरः – जिणवरिंदेण।

व्यवहार को सब प्रकार से ही छोड़ देता है और परमात्मा का ध्यान करता है – जैसे जिनवरेन्द्र तीर्थंकर सर्वज्ञदेव ने कहा है, वैसे ही परमात्मा का ध्यान करता है।

भावार्थ **– सर्वथा सर्व व्यवहार को छोड़ना कहा, उसका आशय इस प्रकार है कि लोकव्यवहार तथा धर्मव्यवहार सब ही छोड़ने पर ध्यान होता है, इसलिए जैसे जिनदेव ने कहा है, वैसे ही परमात्मा का ध्यान करना। अन्यमती परमात्मा का स्वरूप अनेक प्रकार से अन्यथा कहते हैं, उसके ध्यान का भी वे अन्यथा उपदेश करते हैं, उसका निषेध किया है। जिनदेव ने परमात्मा का तथा ध्यान का स्वरूप कहा वह सत्यार्थ है, प्रमाणभूत है, वैसे ही जो योगीश्वर करते हैं, वे ही निर्वाण को प्राप्त करते हैं।।३२।।**

गाथा-३२ पर प्रवचन

आगे यह कहते हैं कि योगी पूर्वोक्त कथन को जान के व्यवहार को छोड़कर आत्मकार्य करता है :-

इय जाणिऊण जोई ववहारं चयइ सव्वहा सव्वं।
झायइ परमप्पाणं जह भणियं जिणवरिंदेहिं।।३२।।

देखो! लोगों को गहरे-गहरे ऐसा रहा करता है कि अपने कुछ दूसरे को समझावें, दूसरे को कहें तो उसमें कुछ भी लाभ होगा। यह दृष्टि मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। ऐई! सेठ! दूसरे कुछ समझें तो उसमें कुछ भातु मिले या नहीं थोड़ा समझानेवाले को? ऐई! वजुभाई! क्या हाँ किया? पाथेय-वाथेय मिले नहीं थोड़ा? भातु समझते हो? भातु समझते हो या नहीं? ... एक गाँव से दूसरे गाँव जाये तो देते हैं न? ढेबरा और मैसूर। भाई! हमको कुछ भातु दो, ऐसा कहे। ऐई! खबर है न? तुम्हें खबर है। उठे तब कहे कि कुछ प्रत्याख्यान करो, भातु दो। हम उठते हैं, चार महीने तुम्हें समझाया। अब हम जाते हैं, हमको कुछ भातु डालो। करो त्याग-प्रत्याख्यान यह हमारा भातु। ठीक! आहाहा!

पर के त्यागादि करे, राग की मन्दता आदि कोई (करे), उसमें तुझे क्या लाभ है? आहाहा! भारी काम, भाई! वीतराग के मार्ग की दृष्टि का पन्थ पकड़ना अलौकिक है। आहाहा! चारित्रदोष दूसरी बात है और श्रद्धा का दोष महापाप का, दूसरी बात है। उसकी

तो लोगों को खबर नहीं। चारित्रदोष हो तो उस दोष को कहे कि इसने यह दोष किया, इसने यह दोष किया, यह किया। परन्तु श्रद्धा का दोष मार डाला अनन्त काल से। निगोद में गति जाने का श्रद्धा का दोष है। उसकी तो इसे कीमत है नहीं।

कहते हैं,

इय जाणिऊण जोई ववहारं चयइ सव्वहा सव्वं।
झायइ परमप्पाणं जह भणियं जिणवरिंदेहिं।।३२।।

देखो न! आचार्य स्वयं कहते हैं। परन्तु आधार देते हैं, जिनवरदेव ऐसा कहते हैं, भाई! '**जिणवरिंदेहिं**' जिन, वर और इन्द्र। जिन के वर—गणधर और उनके इन्द्र तीर्थंकर। तीर्थंकरदेव ऐसा फरमाते हैं। '**जिणवरिंदेहिं**'।

अर्थ :- इस प्रकार पूर्वोक्त कथन को जानकर योगी ध्यानी मुनि... अर्थात् अपने निजस्वरूप में योग अर्थात् जुड़ान करनेवाले, अपना ज्ञायकस्वभाव, उसमें जिसकी जुड़ान दृष्टि है। जुड़ान समझते हो? जुड़ान समझते हो? जुड़ना। जुड़ना बराबर है। उसमें जुड़ना। भगवान पूर्णानन्द प्रभु में जुड़ना, उसका नाम योग। वह योग, वह ध्यान और ध्यान का करनेवाला, वह योगी। समझ में आया? **योगी ध्यानी मुनि है, वह सर्व व्यवहार को सब प्रकार से ही छोड़ देता है...** व्यवहार को सब प्रकार से। '**सव्वहा सव्वं**' ऐसा शब्द है। सर्वथा प्रकार सर्व व्यवहार। सर्वथा प्रकार सर्व व्यवहार। व्यवहार कौन सा? यह जैन का कहा हुआ वीतराग का, हों! वह व्यवहार।

मुमुक्षु : सर्वथा प्रकार जैन में?

पूज्य गुरुदेवश्री : जैन में सर्वथा प्रकार से सर्व व्यवहार सब छोड़नेयोग्य है। आहाहा! देखो, कथंचित् व्यवहार आदरणीय और कथंचित् निश्चय आदरणीय, ऐसा इसमें नहीं कहा।

मुमुक्षु : परन्तु मुनि की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि की, श्रावक और समकित की बात एक ही होती है। समकित में दो अन्तर और कहाँ से हो? समझ में आया? व्यवहार हो, अलग बात है और व्यवहार आदरणीय लाभदायक है, यह अलग बात है। समझ में आया? वे तो ऐसा कहते

हैं कि व्यवहार से लाभ हो तो तुमने व्यवहार माना कहलाये। व्यवहार है-है करके (कहते हो)। परन्तु है, इतनी ही बात है। उससे कुछ भी लाभ होता है, (ऐसा माने वह) मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? व्यवहार-निश्चय एक चीज़ हो जाएगी। दो सत्ता एक हो गयी। मलिनभाव और निर्मलभाव। व्यवहार मलिनभाव है। भगवान का आश्रय, चैतन्य का आश्रय तो निर्मलभाव है। मलिन और निर्मल एक हो गया। व्यवहार से होता है, ऐसा है नहीं। बहुत सूक्ष्म काम। शास्त्र में ऐसी भाषा आवे। देखा न कल? सम्यग्ज्ञानदीपिका में। आचार्य के कथन हाथी के बाहर के दाँत जैसे हैं। अन्दर का मर्म तो ज्ञानी जाने। उसके हृदय में क्या था, वह ज्ञानी जाने, ऐसा कहते हैं। चबाने के दूसरे और खाने के दूसरे।

मुमुक्षु : आचार्यों को खोटा सिद्ध किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटा सिद्ध नहीं किया। आचार्य को कहना का जो आशय है, उसे न समझे तो बाहर के कथनमात्र को पकड़े तो आचार्य के हृदय को समझा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : आठवें गुणस्थान में सब छोड़ देता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन छोड़ता है। चौथे गुणस्थान में सब व्यवहार छूटे, तब दृष्टि सच्ची होती है। समझ में आया? आठवें में छूटे। परन्तु पहली दृष्टि में न छोड़े, वहाँ तक इसे सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! देखो! **वह सर्व व्यवहार को सब प्रकार से ही छोड़ देता है...**

मुमुक्षु : यह सातवें की बात होगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे की बात है, दृष्टि की बात है। और आगे फिर साधु को भी विकल्प आवे, वह छोड़नेयोग्य है, इतनी बात। इसलिए सर्वथा '**सव्वं**' शब्द का अर्थ पूरा नहीं आया। व्यवहार सर्व प्रकार से छोड़े इतना है। सर्व प्रकार है न? सर्व प्रकार। सर्वथा और सर्व प्रकार, ऐसा। जितने प्रकार के व्यवहार हैं, वे सब छोड़नेयोग्य हैं, ऐसा यहाँ सिद्धान्त है। समझ में आया? उसमें ऐसा आवे, शास्त्र लिखना जिससे ज्ञान का लाभ हो, ज्ञान की निर्जरा हो, लिखना, वाँचना, दूसरों को देना। यह सब व्यवहार के कथन हैं, सुन न! समझ में आया? आता है या नहीं? पद्मनन्दि में आवे, वहाँ अधिकार आता है। सर्वत्र

आता है। वह तो सब व्यवहार के कथन हैं। शास्त्र पढ़ाना, लिखाना इससे लाभ होगा। वह तो परद्रव्य की क्रिया है। शोभालालजी! आहाहा! समझ में आया या नहीं? यह पुस्तक-बुस्तक लिखकर रखी है न वहाँ मल्हारगढ़ में। कहो, समझ में आया?

यहाँ तो सर्वथा सर्व व्यवहार, यह भावार्थ में आता है, भाई! भावार्थ में स्पष्ट आता है। उसमें इतना ही आता है। **परमात्मा को ध्यान करता है** - आहाहा! कौन परमात्मा? यह अपना निज परमात्मद्रव्य। अपने आ गया। भगवान पूर्णानन्द का नाथ निर्विकल्प स्वभाव पूर्ण स्वरूप परम आनन्द और ज्ञान और शान्ति का बेमिसाल ऐसा परमात्मा अर्थात् परमस्वरूप को ध्यावे। समझ में आया? कैसे ध्यावे?

जैसे जिनवरेन्द्र तीर्थंकर सर्वज्ञदेव ने कहा है, वैसे ही परमात्मा का ध्यान करता है। अन्यमति ने-अज्ञानी ने कहा, ऐसा ध्यान करना... ऐसा ध्यान करना, ऐसा नहीं। समझ में आया? जिनवरदेव ने जो आत्मा कहा, पूर्ण केवलज्ञान में देखा, अनन्त गुण का एकरूप स्वभाव, उसकी अनन्त पर्याय, ऐसा जो भगवान आत्मा, उसका ध्यान करना। आहाहा! मोक्ष अधिकार है या नहीं? मोक्षप्राभृत है न? तो उसमें तो ऊँची ही बात आवे न? मोक्ष के मार्ग की आवे। अब भावार्थ में आता है, देखो!

भावार्थ :- सर्वथा सर्व व्यवहार को छोड़ना कहा,... सर्वथा और सर्व व्यवहार को छोड़ना कहा। उसके भान बिना अनादि से अज्ञानरूप ऐसे राग-द्वेष और मिथ्यात्वभावरूप होता है, वह दु:खी है।

मुमुक्षु : सब दु:खी है परन्तु पैसावाला होवे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसावाला कब था? धूलवाला? ऐई! सेठ! समझ में आया? आत्मा अनादि से दु:खी है। यह सब सेठ, ऐसे अधिकारी यह सब दु:खी हैं। अकेले दु:ख के पर्वत में सिर फोड़े हैं। छबीलभाई! क्यों? कि भगवान आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है, चैतन्यपिण्ड चैतन्य का स्कन्ध है। चैतन्य का स्कन्ध है। जैसे यह रजकणों का स्कन्ध पिण्ड है शरीरादि, वैसे आत्मा चैतन्य का स्कन्ध है। यह अनेक द्रव्य हैं, वह एक द्रव्य है। वह ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा अनादि से अपने आनन्दस्वरूप और ज्ञान को भूलकर अज्ञानरूप से राग-द्वेष को परिणमता है। अपने स्वरूप के भान बिना अज्ञानरूप से राग-

द्वेष और मोहरूप होता है। समझ में आया? समझ में आया?

सर्वथा सर्व व्यवहार को... किसी भी प्रकार का विकल्प जो उठे, वह सब छोड़नेयोग्य है, ऐसी दृष्टि कर और छोड़कर फिर स्थिर हो, ऐसा कहते हैं। आहाहा! संघ सम्मेलन करो, उसमें से अपने को लाभ होगा, सबका भाईचारा बढ़ाओ, वात्सल्य करो, अमुक करो। अरे! भगवान! क्या करे? वात्सल्य किसके साथ करना है? समझ में आया? एक ही संगठन होओ। साधर्मियों का संगठन करो। ऐई! सेठ! सेठ ने बहुत इकट्ठे किये स्वाध्याय करने के लिये। क्या कहलाते हैं? सभा इकट्ठी करने को। किया है न? सेठ ने सब किया है। कहो, समझ में आया? ऐसी बात है।

मुमुक्षु : आवे...

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे वह अलग बात है परन्तु छोड़नेयोग्य है। उसमें लाभ नहीं। यह तो उसमें लाभ मानता है। ऐसा करेंगे तो लाभ होगा और ऐसा करेंगे तो लाभ होगा। संगठन हो, अधिक मनुष्य इकट्ठे हों तो बहुत अच्छी पुष्टि मिले एक-दूसरे की। एक-दूसरे को धूल भी मिले नहीं, यहाँ तो कहते हैं। शोभालालजी! मार्ग बहुत अलग प्रकार का। दुनिया से अलग प्रकार है, भाई यह तो। आहाहा!

सर्वथा सर्व व्यवहार को छोड़ना कहा, उसका आशय इस प्रकार है कि - लोकव्यवहार तथा धर्मव्यवहार सब ही छोड़ने पर ध्यान होता है, इसलिए जैसे जिनदेव ने कहा है, वैसे ही परमात्मा का ध्यान करना। अन्यमती परमात्मा का स्वरूप अनेक प्रकार से अन्यथा कहते हैं... कोई परमात्मा कर्ता है, कोई परमात्मा सर्व व्यापक है, कोई परमात्मा कुछ है। अनेक प्रकार से अज्ञानी बात करते हैं। उसे छोड़कर **उसके ध्यान का भी वे अन्यथा उपदेश करते हैं...** ध्यान का ऐसा करो, त्राटक करो, अमुक करो, ढीकना करो। आहाहा! देखो न! यह अभी कहता है न रजनीश। **उसका निषेध किया है।**

जिनदेव ने परमात्मा का तथा ध्यान का स्वरूप कहा, वह सत्यार्थ है,... दो बात। परमेश्वर केवलज्ञानी परमात्मा ने जो आत्मा कहा, वह आत्मा और उसका ध्यान जिस विधि से कहा, वह ध्यान। दो, वस्तु और वस्तु का ध्यान। भगवान ने कहा, वह आत्मा और वह ध्यान। अज्ञानी अनेक प्रकार की कल्पना करावे, करे, वह ध्यान और उसका आत्मा सच्चा नहीं। ध्यान भी खोटा और उसका आत्मा भी खोटा। **ध्यान का स्वरूप कहा वह**

सत्यार्थ है, प्रमाणभूत है... भगवान परमेश्वर ने जो केवलज्ञान में जो देखा और जो आत्मा को कहा, ऐसा आत्मा परमानन्दस्वरूप महाचिन्तामणि भगवान आत्मा, उसका ध्यान एकाग्र, वह ध्यान। कोई ऐसा करना, वैसा करना, अमुक करना। कहते हैं न अभी वे भी बहुत? मुद्रा और अमुकवाले ध्यान। आता है। संस्कार और अमुक नहीं कहते? ... घण्टेश्वर क्या कहते हैं वे? घण्टाकर्ण। घण्टाकर्ण आता है न? मन्त्र। सब गप्प-गप्प है। ऐसा कहते हैं, घण्टाकर्ण आवे। बहुत बड़ा महोत्सव करते हैं, फिर वह घण्टाकर्ण करे, इसलिए बस, आत्मा को ऐसा हो जाए... आत्मा ऐसा हो जाए। धूल भी नहीं हो, सुन न। भगवान ने जो घण्ट बजाया आत्मा का, वह घण्टाकर्ण है। बाकी सब थोथे। ऐसा करे, ऐसे प्रसन्न करे, देव को ऐसे प्रसन्न करना। समझ में आया?

मुमुक्षु : देव रूठे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : रूठे हैं। यहाँ कहते हैं कि जिनदेव ने कहा, वह आत्मा और जिनदेव ने कहा, उस स्वरूप का ध्यान, इसके अतिरिक्त दूसरी बात एक भी सच्ची नहीं है। **वैसे ही जो योगीश्वर करते हैं, वे ही निर्वाण को प्राप्त करते हैं।** लो!

गाथा-३३

आगे जिनदेव ने जैसे ध्यान-अध्ययन की प्रवृत्ति कही है, वैसे ही उपदेश करते हैं -

पंचमहव्वयजुत्तो पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु।
रयणत्तयसंजुत्तो झाणज्झयणं सया कुणह।।३३।।

पंचमहाव्रतयुक्तः पंचसु समितिषु तिसृषु गुप्तिषु।
रत्नत्रयसंयुक्तः ध्यानाध्ययनं सदा कुरु।।३३।।

नित पाँच समिति तीन गुप्ति में महाव्रत पाँच-युत।
रत्नत्रयी संपन्न हो अब करो ध्यान रु अध्ययन।।३३।।

अर्थ – आचार्य कहते हैं कि जो पाँच महाव्रतयुक्त हो गया तथा पाँच समिति व तीन गुप्तियों से युक्त हो गया और सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्ररूपी रत्नत्रय से संयुक्त हो गया – ऐसे बनकर हे मुनिजनों! तुम ध्यान और अध्ययन–शास्त्र के अभ्यास को सदा करो।

भावार्थ – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्याग ये पाँच महाव्रत, ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण, प्रतिष्ठापना ये पाँच समिति और मन, वचन, काय के निग्रहरूप तीन गुप्ति यह तेरह प्रकार का चारित्र जिनदेव ने कहा है, उससे युक्त हो और निश्चय व्यवहाररूप, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र कहा है इनसे युक्त होकर ध्यान और अध्ययन करने का उपदेश है। इनमें भी प्रधान तो ध्यान ही है और यदि इसमें मन न रुके तो शास्त्र के अभ्यास में मन को लगावे, यह भी ध्यानतुल्य ही है, क्योंकि शास्त्र में परमात्मा के स्वरूप का निर्णय है, सो यह ध्यान का ही अंग है।।३३।।

गाथा-३३ पर प्रवचन

आगे जिनदेव ने ऐसे ध्यान अध्ययन की प्रवृत्ति कही है, वैसे ही उपदेश करते हैं :- अब निश्चयसहित उसका–धर्मी का व्यवहार कैसा होता है, यह बात करते हैं।

पंचमहव्वयजुत्तो पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु।
रयणत्तयसंजुत्तो झाणज्झयणं सया कुणह।।३३।।

अर्थ :- आचार्य कहते हैं कि जो पाँच महाव्रत युक्त हो गया... मुनि की बात है न मुख्य? आत्मा सम्यग्दर्शन–सम्यग्ज्ञान–सम्यक्चारित्र, यह आत्मा के तीन आश्रय लेकर उसमें पंच महाव्रत का विकल्प होता है, वहाँ चारित्र की उग्रता अन्दर स्थिरता होती है, ऐसा बतलाना है। उसे व्यवहार पंच महाव्रत का विकल्प होता है। निश्चय से पंच महाव्रत तो स्वरूप में एकाकार होना, वह है। अहिंसा—राग की उत्पत्ति न होकर वीतरागभाव की उत्पत्ति हो, वह अहिंसा। सत्य—भगवान अन्दर से जागे वीतरागता के भाव लेकर, उसका नाम सत्य। एक विकल्प भी न आदरने दे और अकेले स्वरूप का ग्रहण करे, वह चोरी का त्याग। अकेला ब्रह्मानन्द भगवान आत्मा, उसमें लीन हो, वह ब्रह्मचर्य। आहाहा!

और त्रिकाल स्वरूप को पकड़े, वह उसका निज परिग्रह। निर्जरा अधिकार में आता है। अपना परिग्रह है। आत्मा अपना परिग्रह है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे पंच महाव्रत निश्चयसहित और विकल्प भी उसे हो। चारित्र की दशा बतलानी है न? पाँच समिति। देखकर चलना, निर्दोष आहारादि व्यवहार और समिति निश्चय। आत्मा में सम्यक् प्रकार से शुद्ध की परिणति, वह समिति। आत्मा में शुद्ध स्वभाव का ध्यान करके शुद्ध परिणति जो जगे, उसे यहाँ समिति कहा जाता है। तीन गुप्ति—मन, वचन और काया, विकल्प से गोपकर स्वरूप में स्थिर हो।

और, **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी रत्नत्रय से संयुक्त हो...** देखो! अकेले पंच महाव्रत और समिति-गुप्ति नहीं, ऐसा कहते हैं। जिसमें भगवान परमानन्द प्रभु का अन्तरदर्शन, अन्तरदर्शन, उसका अन्तरज्ञान और अन्तर रमणता-चारित्र, उस **रत्नत्रय से संयुक्त हो गया...** ऐसा स्थिरतावाला साधु हो, उसे ध्यान एकदम जमे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मुनि को तो छठवें गुणस्थान में हो और सातवें में तुरन्त अन्तर्मुहूर्त में आवे, उसे सच्चे मुनि कहते हैं। सातवाँ तो हजारों बार आवे। उसे ध्यान तो हजारों बार एक अन्तर्मुहूर्त में आवे। समझ में आया? निद्रा तो एक थोड़ी। आता है न छहढाला में? पिछली रात्रि में थोड़ी। एक करवट से सोवे। वह तो पौन सेकेण्ड के अन्दर निद्रा होती है। अकेली निद्रा, एकदम जागृत हो जाए। सातवाँ गुणस्थान आवे। उसे मुनि कहा जाता है। वह मुनि रत्नत्रयसहित है।

ऐसे बनकर हे मुनिजनों! आचार्य महाराज कहते हैं। '**सया कुणह**' शब्द लिया है न? '**झाणज्झयणं सया कुणह**' आहाहा! **हे मुनिजनों!** तुम आत्मा का ध्यान लगाओ और उसमें स्थिर न रह सको तो **शास्त्र के अभ्यास को सदा करो**। शास्त्र का अभ्यास किसलिए? समझ में आया? ध्यान और अध्ययन दो है मुनि को। तीसरा कुछ होता नहीं।

भावार्थ :- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्याग—ये पाँच महाव्रत,... हिंसा का त्याग, झूठ का त्याग, चोरी का त्याग, विषय का त्याग, परिग्रह-लंगोटी का त्याग। बाहर। **ईर्या, भाषा, ऐषणा, आदाननिक्षेपण, प्रतिष्ठापना—ये पाँच समिति...** देखकर चलना, विचारकर बोलना, निर्दोष—उनके लिये बनाया हुआ आहार न लेना, देखकर आदाननिक्षेप—लेना-रखना यत्न से। समिति में अन्तर है। ... ऐसा आता है न

श्वेताम्बर में ? यहाँ तो आदाननिक्षेपण इतना ही। क्योंकि ... बर्तन नहीं होते फिर भण्ड उपकरण चौथी समिति, यह आवे। '**आयाण मंडमत निरवेवण**' बर्तन को लेने-रखने में यत्न करना। परन्तु बर्तन मुनि को होते ही नहीं। आहार हाथ में लेते हैं, ... जाये। देखो! दो में समिति में अन्तर है। श्वेताम्बर में में '**आयाण मंडमत निरवेवण**' समिति है, ऐसा है। आयाणभंडमत। लेना, भण्ड अर्थात् बर्तन लेना-रखना, उसमें ध्यान रखकर लेना। यहाँ कहते हैं, बर्तन-फर्तन नहीं। कोई भी मोरपिच्छी या ऐसा हो तो लेने-रखने में ध्यान रखना, बस। आदाननिक्षेपणा। सब बात में अन्तर है।

प्रतिष्ठापना... रखना, रखना या छोड़ना। कफ, मैल, पसीना (होवे तो) ध्यान करके यत्न से छोड़ना। ऐसा होता है। समझ में आया ? यह पाँच समिति। **और मन, वचन, काय के निग्रहरूप तीन गुप्ति—यह तेरह प्रकार का चारित्र जिनदेव ने कहा है, उससे युक्त हो...** आहाहा! सम्यग्ज्ञानदीपिका में कहते हैं, भाई! सम्यग्ज्ञानदीपिका में। अरे! मुनि एक और तेरह प्रकार का चारित्र! (मुनि एक और) बाईस परीषह! मुनि एक और बारह प्रकार की भावना! मुनि एक और बारह प्रकार का तप! व्यवहार की बातें सब ऐसी होती हैं। अन्दर में स्वरूप में आश्रय करना और वीतरागता प्रगट करना एक ही मार्ग। उसमें यह बारह और तेरह ऐसे भेद पाड़ने जाए तो विकल्प उठे। समझ में आया ?

यहाँ तो वहाँ तक लिया है। बाईस परीषह और अग्नि और उष्णता जैसे एक है, वैसे आत्मा और बाईस परीषह एक नहीं है। आहाहा! वहाँ तो यहाँ तक लिया है। समझ में आया ? बारह प्रकार का तप, अग्नि और उष्णता एक है, वैसे आत्मा और बारह प्रकार के तप एक नहीं हैं। आहाहा! बारह प्रकार की भावना और आत्मा दोनों एक नहीं है। भावना बारह प्रकार की, वह तो विकल्प उठता है। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार....

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे। परन्तु मूल भावना तो अन्दर एकाग्रता है, वह है। समझ में आया ? यह दस प्रकार का धर्म। लो! इसकी बात है। यह दस प्रकार का आयेगा न ? दसलक्षणी पर्व। उस शनिवार से। दसलक्षणी पर्व उस शनिवार से। यह शनिवार और वह शनिवार। दसधर्म मुनि एक और दस प्रकार का धर्म! यह कहाँ से आया ? ऐसे भेद में मुनि तन्मय नहीं, ऐसा कहते हैं। बहुत सूक्ष्म बात है। भगवान आत्मा में एकाकार हो, पवित्र

स्वरूप में लीनता हो, वह सब दशा इसे एकाकारता एकपना उत्पन्न करे। ऐसे भेद-बेद उसमें है नहीं। ऐसा लेना है। आहाहा! तेरह प्रकार का चारित्र। लो! मुनि एक और तेरह प्रकार का चारित्र कहाँ से? वह तो विकल्प की बात है। व्यवहार का ज्ञान कराते हैं।

निश्चय-व्यवहाररूप, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहा है... लो! निश्चय समकित, निश्चय ज्ञान, निश्चय चारित्र आत्मा के आश्रय से हो वह; और व्यवहार देव, गुरु, शास्त्र के आश्रय से हो, वह विकल्प। **इनसे युक्त होकर ध्यान और अध्ययन करने का उपदेश है।** लो! ध्यान और अध्ययन का उपदेश। **इनमें भी प्रधान तो ध्यान ही है...** मूल तो स्वरूप, आनन्दस्वरूप का ध्यान लगाना, वही कर्तव्य है। मुनि को दूसरा कर्तव्य है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : अट्ठाईस मूलगुण का पालन कहाँ गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : गया वह व्यवहार में। छोड़ने में। वह छोड़नेयोग्य है।

शास्त्र के अभ्यास में मन को लगावे... देखा! उसमें न स्थिर हो, आत्मा के स्वरूप में स्थिर न रह सके, **तो शास्त्र के अभ्यास में मन को लगावे, यह भी ध्यानतुल्य ही है, क्योंकि शास्त्र में परमात्मा के स्वरूप का निर्णय है...** ऐसा। शास्त्र में तो परमात्मा का स्वरूप ऐसा अभेद है, अखण्ड है, ऐसा निर्णय है न? इसलिए ऐसा कि विकल्प में भी वह विचार करके उसका निर्णय अभेद में ले जाए। **सो यह ध्यान का ही अंग है।** शास्त्र का अध्ययन। मुनि को दो ही कर्तव्य होते हैं। तीसरा नहीं हो सकता।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-३४

आगे कहते हैं कि जो रत्नत्रय की आराधना करता है, वह जीव आराधक ही है–

रयणत्तयमाराहं जीवो आराहओ मुणेयव्वो।
आराहणविहाणं तस्स फलं केवलं णाणं।।३४।।

रत्नत्रयमाराधयन् जीवः आराधकः ज्ञातव्यः।
आराधनाविधानं तस्य फलं केवलं ज्ञानम्।।३४।।

आराधना करता रतनत्रय जीव आराधक कहा।
आराधना सु विधान का फल जानना सर्वज्ञता।।३४।।

अर्थ – रत्नत्रय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की आराधना करते हुए जीव को आराधक जानना और आराधना के विधान का फल केवलज्ञान है।

भावार्थ – जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना करता है, वह केवलज्ञान को प्राप्त करता है, वह जिनमार्ग में प्रसिद्ध है।।३४।।

प्रवचन-७५, गाथा-३४ से ३७, रविवार, श्रावण कृष्ण १४, दिनांक ३०-०८-१९७०

यह अष्टपाहुड़, मोक्षपाहुड़ की गाथा ३४।

आगे कहते हैं कि जो रत्नत्रय की आराधना करता है, वह जीव आराधक ही है :- ऊपर की लाईन है। क्या कहा? मोक्ष के मार्ग की बात है न? मोक्षप्राभृत। तो मोक्ष किसे होता है? कि जीव रत्नत्रय को आराधे, वह आराधक है। वह मोक्ष के मार्ग में है। गाथा।

रयणत्तयमाराहं जीवो आराहओ मुणेयव्वो।
आराहणविहाणं तस्स फलं केवलं णाणं।।३४।।

क्या कहते हैं? देखो!

अर्थ :- रत्नत्रय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना करते हुए जीव को... जीव कर्ता है। जीव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का आराधन करता है। आराधक जीव आराधना दर्शन-ज्ञान-चारित्र की (करता है)। निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प स्वसंवेदनज्ञान और रागरहित चारित्र। जीव कर्ता होकर अपने गुण को आराधता है। वह गुण को आराधता है अर्थात् गुणी को ही आराधता है। यह भेद से बात की है। समझ में आया? **आराधक जानना...** वह मोक्ष के मार्ग में है।

और आराधना के विधान... वह आराधना की विधि है। आत्मा के दर्शन-ज्ञान-चारित्र को आराधे, वह आराधना की विधि की पद्धति है। कोई पंच महाव्रत के विकल्प को आराधे या निमित्त को आराधे, वह मार्ग में नहीं है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, प्रवीणभाई! निवृत्ति लेकर यह समझनेयोग्य बात है। ऐई! देखो! तीन बातें कीं। आराधक, आराधनेयोग्य और आराधना का फल। समझ में आया? रत्नत्रय, उसे आराधता जीव अर्थात् जीव आराधक। आराधना किसकी करे? सेवा किसकी करे? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की।

भगवान आत्मा आराधक, मोक्ष के मार्ग को सेवन करनेवाला। किसकी सेवा करे? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की। आत्मा परिपूर्ण ध्रुव शुद्ध। इसका स्पष्टीकरण करेंगे। जीव कैसा है, यह ३५वीं गाथा में कहेंगे। यहाँ तो जीव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो वीतरागी पर्याय है, उसे आराधता है, सेवन करता है, आराधन कर्ता जीव है, वह आराधता है दर्शन-ज्ञान-चारित्र को। गुणी, गुण को आराधता है, ऐसा भेद से कथन किया है। समझ में आया? बाकी गुणी और गुण अभेद है। समझ में आया? परन्तु यहाँ भेद से कथन किया है।

जीव वस्तु भगवान आत्मा। वह अपने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र (की आराधना करता है।) यह तो मोक्ष के मार्ग का अधिकार है, इसलिए बहुत संक्षिप्त में, संक्षिप्त में सार है। यह पंच महाव्रत के विकल्प और दया, दान, व्रत को आराधना, वह मोक्ष के मार्ग में नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? दीपचन्दजी! क्या है? सत्य क्या? यह भी साधु होनेवाले थे, हों! प्रकाशदासजी कहाँ गये? वहाँ बैठे? यह साधु होनेवाले थे दीपचन्दजी। दिगम्बर साधु, हों! तुम स्थानकवासी साधु होनेवाले थे। ये दिगम्बर साधु होनेवाले थे।

मुमुक्षु : कोई होने के नहीं थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु होने का विकल्प-भाव था। यह होने के नहीं थे। होने के हों तो हुए बिना रहे नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि साधु किसे कहना? कैसे द्रव्य को वह आराधे-साधे? समझ में आया? कैसे द्रव्य को अर्थात् किस वस्तु को आराधे-सेवन करे, उसे साधु कहें? कहते हैं कि **रत्नत्रय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना करते हुए...** भाषा ऐसी है न? भाई! गुण की पर्याय को आराधते हुए। परन्तु उस पर्याय का धारक गुण है, गुणी है। गुणी को आराधते हुए ऐसी दशा होती है, इसलिए इसे आराधते हैं, ऐसा कहा जाता है। कथन की भाषा क्या करना? इन्हें बात करनी है कि जीव क्या करे? कि पुण्य-पाप की क्रिया और राग की क्रिया को आराधे? कहते हैं, नहीं। उसे सेवन करे? नहीं। तब किसे (आराधे)? ऐसा। समझ में आया?

भगवान आत्मा चैतन्यद्रव्य, वह कर्ता है, करनेवाला है, आराधनेवाला है। किसकी आराधना (करता है)? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की। उस विधि से उसका फल क्या? उसका फल केवलज्ञान। यहाँ मोक्ष लेना है न? आहाहा! समझ में आया? यह तो धीरज की बात है। यह कहीं एकदम दौड़कर, कूदकर जाए और बाहर किया और यह किया और वह किया, यह मार्ग नहीं है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली! कहते हैं कि भगवान आत्मा स्वयं अपने गुण को आराधे। यहाँ पर्याय भले (कही) परन्तु वह गुण कहा जाता है। समझ में आया? आराधनेवाला अर्थात् अन्तर्दृष्टि में चैतन्य स्वयं दृष्टि में लिया है। आहाहा! मूल तो आराधक आत्मा है। परन्तु यहाँ गुणी से (बात की है)। उसे उन रागादि का आराधन करना नहीं, निमित्त का आराधन करना नहीं, इस अपेक्षा से उसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र का आराधकपना कहा गया है। आहाहा! दोष को आराधना नहीं। समझ में आया? तथा एक समय की पर्याय को आराधना है, ऐसा कहने में आशय कि गुण और गुणी अभेद है, ऐसा अभेद करके गुण को आराधता है। आराधता है गुणी को। समझ में आया? ऐसी बात। भगवान - यह तो कैसा है, यह ३५ गाथा में कहेंगे। अनादि वस्तु कैसी है वह। ऐसा जो आत्मा निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। निश्चय। व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह आराधना का कारण नहीं है और उस आराधना का फल केवलज्ञान नहीं है, ऐसा कहते

हैं। **और आराधना के विधान...** है। यह विधि है, यह पद्धति है। जिसे मोक्ष की पर्याय, सिद्ध की दशा प्रगट करनी है, सिद्धदशा कहो या केवलज्ञान कहो। केवलज्ञान आया न? जिसे केवलज्ञान, परमात्मदशा, मोक्षदशा जिसे प्रगट करनी है, ऐसे जीव को अपने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। स्वयं है तो अनन्त गुण सम्पन्न, यह बाद में कहेंगे। परन्तु उसे आराधने का मोक्षमार्ग दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। समझ में आया?

भावार्थ :- जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की आराधना करता है, वह केवलज्ञान को प्राप्त करता है, वह जिनमार्ग में प्रसिद्ध है। बहुत संक्षिप्त और बहुत संक्षेप। भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और पूर्ण केवलज्ञान का घन है, वह आत्मा। ऐसे आत्मा को उसके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का आराधना, सेवन करना है। देखो! आया था न पहले दूसरी गाथा में? भाई! '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण।**' दूसरी गाथा में। समयसार (में)। जीव स्वयं अपने दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थिर होता है। समयसार की दूसरी गाथा। '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण।**' उसका अर्थ कि भगवान आत्मा गुण के स्वभाव से भरपूर गुणी, वह गुण को आराधता है, ऐसा कहने पर वह आत्मा को आराधता है। आहाहा! धर्मी का, मोक्ष का मार्ग वह विकल्प और पंच महाव्रत राग और उसे आराधे, वह मार्ग नहीं है। ऐई! प्रकाशदासजी! यह पाँच महाव्रत हों, तब तुम याद आते हो। आहाहा!

भगवान आत्मा कहाँ इसमें खोट है और न्यूनता है? परिपूर्ण आनन्द, ज्ञान और शान्ति से भरपूर है। ऐसा आत्मा अपने गुण को आराधे, ऐसा कहते हैं। वह राग को और पुण्य को और निमित्त को सेवन नहीं करता, आराधता नहीं। आहाहा! गजब बात! यहाँ तो कहते हैं कि व्यवहारमोक्षमार्ग को जीव सेवन नहीं करता। यहाँ तो निश्चयमोक्षमार्ग आत्मा के सन्मुख होकर अन्तर की निर्विकल्प श्रद्धा, विकल्परहित आत्मा की निर्विकल्प श्रद्धा, उसका निर्विकल्प स्वसंवेदन चैतन्य के सन्मुख का ज्ञान और चैतन्य स्वभावसन्मुख की स्थिरता—आत्मा में चरना, रमना, जमना, उसका नाम चारित्र। लो, इसका नाम चारित्र। समझ में आया? यह पाँच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण को चारित्र कहते हैं, वह चारित्र नहीं। चारित्र तो स्वस्वभाव में रमे, पूर्णानन्द का नाथ आत्मा अपने में रमे, टिके और लीन हो, उसे चारित्र कहते हैं। यह लोग उसे सिद्ध करते हैं—पंच महाव्रत को सेवन करो, करो,

अंगीकार करो। तुम्हारा कल्याण हो जाएगा। निगोद में जाएगा। मिथ्यात्व को सेवन करते हुए उसका फल तो निगोद है। आहाहा!

मुमुक्षु : कहते हैं कि सोनगढ़ के भाईयों को चारित्र प्रगट नहीं करना...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे वह स्वतन्त्र है। भाई! इसे क्या कहा जाता है? उसे जो बात कल्पना में आवे, वह कहे। दूसरा क्या कहे? उसे वस्तु की स्थिति की खबर नहीं होती। चारित्र किसे कहना? भगवान! चारित्र तो स्वरूप में रमना, वह चारित्र है। परन्तु वह चारित्र कब होगा? पहले व्यवहार करे या आत्मा की दृष्टि करे तब?

मुमुक्षु : उसकी दृष्टि करे, तब होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब व्यवहार की बातें। ऐसा है नहीं। व्यवहार बोलता है ऐसा।

मुमुक्षु : बाहर शुद्धि करे तो अन्तर शुद्धि हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। अन्तर स्वरूप की शुद्धि करे तब आत्मा का कल्याण होता है, ऐसा कहते हैं। बाहर की शुद्धि कौन करता था? इसके लिये तो यहाँ इतने तीन बोल रखे हैं। '**रयणत्तयमाराहं जीवो**' है न? रत्नत्रय का आराधक जीव और '**आराहओ**' उसे आराधक कहा जाता है। उसे पंच महाव्रत पाले और अमुक, ऐसा कहा नहीं यहाँ।

मुमुक्षु : उसे आराधक व्यवहार से कहा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार आराधक अर्थात्? निश्चय विराधक। वह वस्तु में है नहीं न, फिर वह प्रश्न कहाँ यह? पंच महाव्रत के, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प वह तो राग है, विभाव है। विभाव के साथ तन्मय होकर अध्यास किया है कि यह मेरे हैं। वस्तु में है नहीं। मान्यता से खड़ा किया है कि यह विभाव मैं हूँ।

मुमुक्षु : मुनि को भी राग होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्हें राग नहीं। राग कैसा? समकिती को राग नहीं न, प्रश्न कहाँ है?

मुमुक्षु : आहार लेने किसलिए जाते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं नहीं जाते। वे तो जानते, देखते और स्थिर होते हैं, यह उनकी क्रिया है। आहाहा! समझ में आया? आहार लेने जाए कौन? ले कौन? खाये कौन? दे कौन? आहाहा!

मुमुक्षु : मुनि उपदेश देते हैं, शास्त्र लिखते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई देता नहीं, लेता नहीं। सब व्यवहार की बातें हैं। लिखे कौन? बोले कौन? जो बोले, वह दूसरा और लिखे, वह दूसरा। वह आत्मा नहीं। आहाहा!

यह आहार का विकल्प उठा, उसे जाननेवाला, वह आत्मा। विकल्प, वह आत्मा नहीं। बोलनेवाला आत्मा नहीं। बोला जाए, उसका ज्ञान करनेवाला वह आत्मा। चलने की क्रिया, वह आत्मा की नहीं। चलने की क्रिया होती है, उसे अपने में उसके अवलम्बन बिना जाने, उसका नाम आत्मा। ऐसा मार्ग है, भाई! खबर ही नहीं होती जहाँ लक्ष्य में नहीं कि क्या मार्ग है। वह किसे निशान बिना कहाँ निशान मारना, इसकी तो खबर नहीं। ऐसे का ऐसे हाथ में बन्दूक लेकर आवे, वह तुम्हारे... पुलिस थी न पुलिस? क्या कहलाता है पुलिस सुप्रीटेन्डेन्ट। बनिया है परन्तु सिखाता होगा वह ऐसे मारना और ऐसे मारना।

मुमुक्षु : सूचना दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सूचना दे क्या? पुलिस सुप्रीटेन्डेन्ट थे न वे सब। फौजदार के बड़े ऊपरी थे। हें! हाँ ऐसे मारो और वैसे मारो। और रखते न तुम?

मुमुक्षु : रिवॉल्वर।

पूज्य गुरुदेवश्री : रिवॉल्वर। और वह रखते थे क्या कहलाता है वह? कारतूस। पट्टे में कारतूस रखे। वह बनिया था। आहाहा! यह तो उस जगत के, यह सब व्यवहार के वेश है सब। भगवान का-आत्मा का वेश तो निर्मल चारित्र का दर्शन-ज्ञानसहित का आराधन, वह आत्मा का वेश है। आहाहा! समझ में आया?

वह जिनमार्ग में प्रसिद्ध है। ऐसा और लिखा। समझे न? '**तस्स फलं केवलं णाणं।**' अर्थात् क्या? कि जैनमार्ग में जो आत्मा कहा और उसके दर्शन-ज्ञान-चारित्र भगवान ने कहा, उसका आराधन करे, उसे जैनमार्ग में केवलज्ञान होता है, ऐसा प्रसिद्ध है। दूसरे को केवलज्ञान और मोक्ष हो, ऐसा नहीं है। ऐसा कहना चाहते हैं। जैनमार्ग में

प्रसिद्ध है अर्थात् वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने आत्मा कहा, उसके जो गुण कहे, उनका सेवन जिसने किया, अर्थात् गुण का सेवन अर्थात् द्रव्य का। गुण-गुणी अभेद। उसका सेवन करनेवाले को जैनमार्ग में केवलज्ञान प्राप्त होता है, ऐसा जो कहा है, वह प्रसिद्ध है। वह कहीं गुप्त बात नहीं है। वह जगत में प्रसिद्ध है। जैनमार्ग ऐसा सेवन करे, उसे केवलज्ञान होता ही है, ऐसा वीतरागमार्ग में प्रसिद्ध है। समझ में आया? पंच महाव्रत की क्रिया, राग की क्रिया को सेवन करे, वह केवलज्ञान पाता है, ऐसा जैनमार्ग में प्रसिद्ध नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : बाकी का मार्ग उल्टा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : बाकी के सब उल्टे। एक-एक। यह वेदान्त और फेदान्त को। सौ में सौ प्रतिशत उल्टा। एक ही आत्मा और सर्व व्यापक आत्मा और शुद्ध-बुद्ध अनन्त अखण्ड आनन्द एक ही, पर्याय-फर्याय अवस्था का बदलना है नहीं।

मुमुक्षु : अवस्था कहाँ अपनी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय इसकी है। नहीं, किसने कहा? किसने कहा पर्याय इसकी नहीं? वह तो द्रव्य में नहीं। परन्तु पर्याय की पर्याय में नहीं? समझ में आया? अन्तर तो यह किया है न, उस द्रव्य में पर्याय नहीं तो कहे पूरी पर्याय ही नहीं। पर्याय नहीं तो मोक्ष का मार्ग और मोक्ष और सिद्ध सब पर्याय है। समझ में आया? पर्याय अर्थात् अवस्था। द्रव्य में, ध्रुव में क्या हो? ध्रुव में मोक्ष भी नहीं, मोक्ष का मार्ग भी नहीं, बन्ध नहीं, बन्ध की पर्याय नहीं। ध्रुव तो त्रिकाल वस्तु है। परन्तु वह ध्रुव में नहीं, परन्तु पर्याय में है या नहीं? पर्याय प्रमाण का विषय उसका प्रमाण करे तब पर्याय उसकी है। कहीं जड़ की नहीं, पर की नहीं और पर्याय बिना का वह द्रव्य नहीं। समझ में आया? आहाहा! पर्याय बिना का अर्थात्? वह ध्रुव तो पर्याय बिना का है, परन्तु पर्याय वहाँ नहीं, ऐसा वह ध्रुव नहीं, ऐसा। पर्याय वहाँ नहीं ही, ऐसा ध्रुव नहीं।

मुमुक्षु : पर्याय तो सबको हो, उसमें जीव को क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव को और सबको ऐसा है। द्रव्य है और साथ में पर्याय है। पर्याय में ही मोक्षमार्ग और मोक्ष होता है। अन्यत्र कहीं नहीं हो सकता। इसलिए ऐसा कहते हैं न आराधना, वह पर्याय है और उसका फल भी पर्याय है।

गाथा-३५

आगे कहते हैं कि शुद्धात्मा है, वह केवलज्ञान है और केवलज्ञान है, वह शुद्धात्मा है –

सिद्धो सुद्धो आदा सव्वण्हू सव्वलोयदरिसी य।
सो जिणवरेहिं भणिओ जाण तुमं केवलं णाणं।।३५।।

सिद्धः शुद्धः आत्मा सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च।
सः जिनवरैः भणितः जानीहि त्वं केवलं ज्ञानं।।३५।।

है सिद्ध आतम शुद्ध है सर्वज्ञ सबदर्शी यही।
वह ज्ञान केवल जानना तुम जिनवरों ने यह कही।।३५।।

अर्थ – आत्मा को जिनवर सर्वज्ञदेव ने ऐसा कहा है कि सिद्ध है – किसी से उत्पन्न नहीं हुआ है, स्वयंसिद्ध है, शुद्ध है, कर्ममल से रहित है, सर्वज्ञ है – सब लोकालोक को जानता है और सर्वदर्शी है – सब लोक-अलोक को देखता है, इस प्रकार आत्मा है, वह हे मुने! उसे ही तू केवलज्ञान जान अथवा उस केवलज्ञान को ही आत्मा जान। आत्मा में और ज्ञान में कुछ प्रदेशभेद नहीं है, गुण-गुणी भेद है, वह गौण है। यह आराधना का फल पहिले केवलज्ञान कहा, वही है।।३५।।

गाथा-३५ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि शुद्धात्मा है, वह केवलज्ञान है और केवलज्ञान है, वह शुद्धात्मा है :- अब त्रिकाल की बात करते हैं, हों!

सिद्धो सुद्धो आदा सव्वण्हू सव्वलोयदरिसी य।
सो जिणवरेहिं भणिओ जाण तुमं केवलं णाणं।।३५।।

यह ज्ञान और आत्मा एक गिनकर केवल आत्मा है, ऐसा मान, कहते हैं। अकेला ज्ञान, वह आत्मा। ऐसा।

अर्थ :- आत्मा जिनवर सर्वज्ञदेव ने ऐसा कहा है,... भगवान आत्मा परमेश्वर वीतरागदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की वाणी में आत्मा ऐसा आया है। **कैसा है ? सिद्ध है-किसी से उत्पन्न नहीं हुआ है...** अथवा अपने शुद्धस्वभाव की उपलब्धिसहित ही त्रिकाल है। समझ में आया ? मुक्ति है न ? मुक्ति आत्मा की प्राप्ति है। आत्मा की उपलब्धि। परन्तु यहाँ द्रव्य शुद्ध स्वभाव की उपलब्धि से ही सिद्ध त्रिकाल है। समझ में आया ? **किसी से उत्पन्न नहीं हुआ है...** वस्तु नहीं है, ऐसा नहीं है, निपजी नहीं है। वस्तु ही है उसमें। सिद्धपद की प्राप्ति अर्थात् आत्मा की उपलब्धि पर्याय में, यहाँ द्रव्य में स्वयं ही उपलब्धि, ध्रुव में गुण की उपलब्धिवाला ही यह आत्मा है। समझ में आया ? आहाहा !

भगवान आत्मा पूर्ण सिद्ध की जो पर्याय है, ऐसा ही यहाँ गुण से उपलब्धरूप त्रिकाल आत्मा है। उसे आत्मा कहते हैं। जिसके पूर्ण गुण के प्राप्तवाला भगवान, उसका आश्रय करने से पर्याय में पूर्ण गुण की उपलब्धिरूप मुक्ति प्राप्त होती है। समझ में आया इसमें ? यह मोक्षप्राभृत है, भाई ! मोक्ष का सार। आहाहा !

जिनवरदेव ने भगवान आत्मा को सिद्ध कहा है। अर्थात् ? **स्वयंसिद्ध है,...** उसका कोई कर्ता नहीं। परन्तु वह सिद्ध ही है। अपने स्वभाव की प्राप्ति से वह सिद्ध / साबित ही है। समझ में आया ? देखो ! ऐसा एक-एक आत्मा है। ऐसा भगवान जिनवर ने कहा है। जिनवर के अतिरिक्त दूसरा आत्मा ऐसा कोई कह नहीं सकता। केवलज्ञानी भगवान ने देखा ऐसा। बाकी केवलज्ञान बिना बातें करे, वे सब कल्पित बातें करनेवाले हैं। समझ में आया ? अनन्त गुण की प्राप्ति स्वरूप ही आत्मा है, ऐसा कहते हैं। उसकी पर्याय में प्राप्त जो गुण है, वे पर्याय में प्राप्त हों, उसका नाम मुक्ति। आहाहा ! शोभालालजी ! बहुत सूक्ष्म ! बहुत सूक्ष्म ! कथा वार्ता होवे (तो समझ में आये)। यह भगवान की ही कथा है। यह भागवत कथा है। परमेश्वर वीतराग त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने कही हुई यह कथा है।

भाई ! तू आत्मा है न, नाथ ! तुझमें जितने गुण, सब गुणों की प्राप्तिवाला तू है। गुण कहीं बाहर से नहीं आते। अर्थात् गुण बाहर से नहीं आते, अनन्त गुण के पिण्ड की प्राप्तिवाला तेरा तत्त्व है। आहाहा ! समझ में आया ? स्वयंसिद्ध है। स्वयंसिद्ध ही है, उसके गुण अनादि के। वस्तु तो स्वयंसिद्ध है परन्तु उसके ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि अनन्त गुण स्वयंसिद्ध है। वे कहीं से लाना है और कहीं से उपजते हैं, ऐसा है नहीं।

शुद्ध है, कर्ममल से रहित है,... भावकर्म और द्रव्यकर्म आत्मा में है नहीं। आहाहा! त्रिकाल ऐसा है, ऐसा कहते हैं। त्रिकाल ऐसा है तो पर्याय में ऐसा हो जाता है। पर्याय अर्थात् सिद्धदशा, ऐसा। समझ में आया? इसे ऐसा आत्मा दृष्टि में आना, इसका नाम सम्यग्दर्शन। फिर तुरन्त ही कहेंगे। समझ में आया? '**जं जाइण तं णाणं जं पिच्छइ तं च दसणं णेयं**' ३७ गाथा में कहेंगे। ३६ में आराधन कहकर ३७ में कहेंगे। कहो, समझ में आया?

कैसा है यह भगवान-यह आत्मा? शुद्ध है। उसमें विकल्प का भाग नहीं और कर्म के रजकण भगवान आत्मा में नहीं। वस्तु में है नहीं। आहाहा! कब? अभी। समझ में आया? आहाहा! कर्म के रजकण और पुण्य-पाप के विकल्प—भावकर्म से तो रहित है। ऐसा यह आत्मा अन्दर में विराजमान है। ऐसे आत्मा की दृष्टि और ज्ञान करना, उसमें रमणता करना, इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। यों ही अज्ञानी आत्मा-आत्मा करे और बातें करे, वह आत्मा नहीं। इससे यहाँ आचार्य कहते हैं। '**जिणवरेहिं भणिओ**' ऐसा कहा न? वीतराग परमेश्वर केवलज्ञानी भगवान ने आत्मा ऐसा देखा है और कहा है। भाई! तू ऐसा आत्मा है। अनादि का ऐसा है। शुद्ध है, हों! आहाहा! तू मुक्तस्वरूप ही है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यहाँ यह आता है। **सर्वज्ञ है,...** लो। तेरा स्वभाव सर्वज्ञ है। आहाहा! पर्याय में सर्वज्ञ होता है न? वह मुक्ति। परन्तु वह सर्वज्ञ है तो उसमें से सर्वज्ञ पर्याय प्राप्त होती है। आहाहा! समझ में आया? **सर्वज्ञ है-सब लोकालोक को जानता है...** ऐसा उसका स्वभाव है। 'सर्वज्ञ सर्वदर्शी' आता है न पुण्य-पाप (अधिकार) में? निज अपराध के अज्ञान के कारण से उसकी खबर नहीं पड़ती। ढँक गया है। स्वरूप तो सर्वज्ञ पूर्ण चैतन्यघन है। तीन काल-तीन लोक को जाने, उससे अनन्तगुणा लोकालोक और काल हो, जिसे जानने, सर्व को जानने का स्वभाव है। ऐसा उसका अनादि द्रव्य में गुणस्वभाव ऐसा है, तो उसका आश्रय लेने से पर्याय में उतना ही गुण अनन्त सर्वज्ञ प्रगट होता है। ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? भारी कठिन! द्रव्य, गुण और पर्याय का ज्ञान नहीं और उसमें फिर यह उलझन मनुष्य को खड़ी हो। तेरी पर्याय तेरे गुण में से, द्रव्य में से आती है। ऐसा यहाँ कहते हैं। पर्याय कहीं राग में से आवे और निमित्त में से आवे, बाहर से आवे - ऐसा है नहीं। समझ में आया?

सर्वज्ञ **सब लोकालोक को जानता है और सर्वदर्शी है-सब लोक-अलोक को देखता है,...** वह तो ज्ञाता और दृष्टा ही उसका त्रिकाल स्वभाव है। समझ में आया? राग में अटकना या राग को करना, यह उसका स्वभाव नहीं है। आहाहा! एक-एक आत्मा ऐसा है, ऐसा कहते हैं। सब होकर आत्मा सर्वज्ञ है, ऐसा नहीं। **सब लोक-अलोक को देखता है, इस प्रकार आत्मा है...** ऐसा आत्मा है। उसका अस्तित्व ही इतना है, ऐसा कहते हैं। आत्मा का अस्तित्व, सत्ता अस्तित्व ही इतना है कि जो स्वयंसिद्ध गुण से प्राप्त है। राग और कर्म के मल से रहित है। सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है, ऐसा आत्मा ही अनादि से है। आहाहा! इस आत्मा की कुछ खबर नहीं होती और करो यह व्रत और करो महाव्रत और करो क्रिया। समझ में आया? भटकने के रास्ते हैं।

मुमुक्षु : ...सार्थकता हुई न?

पूज्य गुरुदेवश्री : सार्थकता भटकने की होती है। मोक्ष की सार्थकता नहीं होती। आत्मा में जो गुण है, उन्हें आराधकर, सेवन कर पर्याय प्रगट करना, उसमें सार्थकता है। आहाहा! परन्तु आत्मा कैसा और कहाँ है और कौन, इसकी तो खबर नहीं होती। इसकी तो बातें भी नहीं मिलती। यह करो, यह छोड़ो, यह लो और यह लो। जो इसमें नहीं, उसकी भांगजड़ बड़ी। समझ में आया?

वह हे मुने! ऐसा आत्मा, हे मुनि! **उस ही को तू केवलज्ञान जान...** वह केवलज्ञान का पिण्ड ही आत्मा है, ऐसा जान। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान का पिण्ड उसमें है। ज्ञान का ही पिण्ड है। लो, यह और क्या बात याद आ गयी? यह आटे का पिण्ड बाँधते हैं न? लोई रोटी बनाते हैं न उसमें से? उस लोई में से इतना निकाले वह। क्या कहलाता है तुम्हारे? गोळणुं। हमारे गोळणुं कहते हैं उसमें से टुकड़े निकाले, कुछ बेलन में से रोटी नहीं होती।

मुमुक्षु : बेलन बिना भी नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : बेलन बिना ही होती है। रोटी है वस्तु है लोई, उसमें से होती है। इसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त आनन्द और केवलज्ञान का पिण्ड है, उसमें से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होकर केवलज्ञान होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह तो टुकड़ा है, साधकभाव एक छोटा टुकड़ा है और केवलज्ञान एक टुकड़ा है अनन्त ज्ञान के

समक्ष। केवलज्ञान। आहाहा! कटको समझ में आता है? टुकड़ा है थोड़ा छोटा। आहाहा! यह केवलज्ञानमय है। वस्तु स्पष्ट गुणगुणी अभेद है। समझ में आया?

उस ही को तू केवलज्ञान जान अथवा उस केवलज्ञान ही को आत्मा जान। ऐसा गुणगुणी अभेद लेना। उसे केवलज्ञानमय भगवान आत्मा और या वह केवलज्ञानस्वरूपी आत्मा। उस केवलज्ञान को आत्मा जान। राग को, पुण्य को, निमित्त को तू आत्मा न जान। आहाहा! समझ में आया? यह दया, दान और व्रत के विकल्प उठते हैं न? कहते हैं, उन्हें आत्मा न जान। पर्याय में भी न जान। गुण में तो वे है नहीं। आहाहा! **उस ही को तू केवलज्ञान जान अथवा उस केवलज्ञान ही को आत्मा जान।** गुण-गुणी का अभेद।

आत्मा में और ज्ञान में कुछ प्रदेशभेद नहीं है,... क्षेत्रभेद नहीं। आत्मा और ज्ञान दो एक ही क्षेत्र में एक ही प्रदेश में है। यहाँ गुण-गुणी की भेद से व्याख्या की है। **गुण-गुणी भेद है, वह गौण है।** देखो! गुणी त्रिकाल और यह गुण, ऐसा भेद भी गौण है। अभेद ही है, गुण वह आत्मा, बस। गुण, वह आत्मा। भारी बातें भाई यह। समझ में आया? वर बिना की बारात। भगवान आत्मा नहीं हो और फिर जोड़ दी बारात। व्रत किये और अपवास किये।

मुमुक्षु : उससे जैनपने की पहिचान होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जैनपना उससे पहिचाना जाता है, होता है? यह तो जैन ऐसा कहते हैं। जैनपने की पहिचान तो वीतरागभाव से होती है। सेठ थोड़ा पूर्व का पक्ष करते हैं। समझने के लिये करते हैं, हों! ऐसा कि यह सब पहिचान ऐसे चलती थी, तो तत्प्रमाण पहिचान होवे न? धूल भी नहीं होती, ऐसा कहते हैं। सेठ! छोटाभाई ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भगवान! वीतरागमार्ग की पहिचान वीतरागभाव से होती है। वीतरागभाव की पहिचान राग से होगी? और रागादि जो है महाव्रत का विकल्प, वह भी निमित्त, नैमित्तिक को प्रसिद्ध करता है, भाई! यह नैमित्तिक अन्दर वीतरागदशा है, उसे प्रसिद्ध करता है। राग, राग को प्रसिद्ध नहीं करता। आहाहा! यह पंच महाव्रत के विकल्प हैं, तो पीछे एक आत्मा आनन्दकन्दवाला शुद्ध परिणमनवाला है, ऐसी प्रतीति करता है। यह है उसे, हों! अकेले महाव्रत-फहाव्रत क्या करे? अन्दर कुछ है नहीं और प्रसिद्ध किसे करे? नैमित्तिक वस्तु नहीं, वहाँ निमित्त किसे प्रसिद्ध करे? अकेले पंच महाव्रत के और अट्ठाईस मूलगुण के विकल्पों से प्रसिद्ध किसे करे? वह तो स्वयं को प्रसिद्ध करता है कि मैं राग हूँ। समझ में

आया ? परन्तु पीछे ऐसी दशावाले को ऐसे अट्ठाईस मूलगुण या पंच महाव्रत के विकल्प हों, वह व्यवहाररूप से। वह व्यवहार स्वयं अपने को प्रसिद्ध नहीं करता, निश्चय को प्रसिद्ध करता है कि अन्दर में एक आराधक जीव—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का आराधक जीव है, ऐसा प्रसिद्ध करता है। समझ में आया ? आहाहा!

मुमुक्षु : पट्टावाला दरबार को प्रसिद्ध करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पट्टावाला हो तो होता है। पीतल का डालते हैं या नहीं पट्टा। यह अमुक दरबार का वह है यह। पट्टावाला लगता है या नहीं ? ऐई! आहाहा! हमारे वे वांकानेर में आये थे, हम ९१ में। तुम्हारे दरबार आये थे। तुम थे ? तुम थे व्याख्यान में ? परन्तु बहुत लोग। दरबार और उनका पुत्र दोनों आये थे। फिर भाई मोहनभाई पीए। क्या कहलाता है ? पुलिस सुप्रीटेन्डन्ट। एम.पी. साहेब। कहे, खड़े-खड़े रहो दरवाजे के पास। क्या बड़ा राजा आया है ? पुलिस के पास खड़ा रहे सामने दरवाजे के पास। पुराना था न निवास ? वांकानेर का। अब तो नया हुआ। उपाश्रय। वहाँ वे दरवाजे के पास खड़े रहते। लोग खचाखच। दरबार स्वयं आये और उनका लड़का आया। परन्तु वह ऐसा बतलाता है सामने कि अन्दर दरबार है, नहीं तो यह सामने व्यक्ति खड़ा रहे, ऐसा पुलिस सुप्रीटेन्डेन्ट खड़ा रहे नहीं। ऐई! छगनभाई! वह भी वहाँ पुलिस सुप्रीटेन्डेन्ट थे न ? वे स्वयं छोटे थे। यह तो बड़े थे, हों! समझ में आया ? परन्तु यह बड़ा प्रसिद्ध किसे करता है ? कि इनका राजा या सरदार कौन है, उसे प्रसिद्ध करता है। इसी प्रकार पंच महाव्रत के विकल्प और निमित्त-नैमित्तिक दशा अन्दर में नैमित्तिक हो, उसे यह निमित्त प्रसिद्ध करता है। परन्तु जहाँ नैमित्तिक नहीं, वहाँ निमित्त किसे प्रसिद्ध करे ? समझ में आया ? आहाहा!

कहते हैं कि **आत्मा में और ज्ञान में कुछ प्रदेशभेद नहीं है, गुण-गुणी भेद है, वह गौण है।** प्रदेशभेद नहीं। परन्तु आत्मा गुणी और केवलज्ञान आदि गुण त्रिकाल, उस भेद का यहाँ काम नहीं है, कहते हैं। वह तो गौण है। मात्र ज्ञान वह आत्मा, ऐसा बताकर अभेद को बताना है। **यह आराधना का फल पहिले केवलज्ञान कहा, वही है।** लो! ऐसे केवलज्ञान का ऐसा स्वरूप है, वह उसे आराधता है। **यह आराधना का फल पहिले केवलज्ञान कहा, वही है।** उसका फल केवलज्ञान है। ऐसा आत्मा अन्दर आराधे, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से, उसे केवलज्ञान-मोक्ष होता है।

गाथा-३६

आगे कहते हैं कि जो योगी जिनदेव के मत से रत्नत्रय की आराधना करता है, वह आत्मा का ध्यान करता है –

रयणत्तयं पि जोई आराहइ जो हु जिणवरमएण।
सो झायदि अप्पाणं परिहरइ परं ण संदेहो।।३६।।

रत्नत्रयमपि योगी आराधयति यः स्फुटं जिनवरमतेन।
सः ध्यायति आत्मानं परिहरति परं न सन्देहः।।३६।।

जो योगि आराधे रतनत्रय प्रगट जिनवर मार्ग से।
वह आतमा ध्याता तजे पर रंच नहिं सन्देह है।।३६।।

अर्थ – जो योगी ध्यानी मुनि जिनेश्वरदेव के मत की आज्ञा से रत्नत्रय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की निश्चय से आराधना करता है, वह प्रगट रूप से आत्मा का ही ध्यान करता है, क्योंकि रत्नत्रय आत्मा का गुण है और गुण-गुणी में भेद नहीं है। रत्नत्रय की आराधना है, वह आत्मा की ही आराधना है, वह ही परद्रव्य को छोड़ता है, इसमें सन्देह नहीं है।।३६।।

भावार्थ – सुगम है।।३६।।

गाथा-३६ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो योगी जिनदेव के मत से रत्नत्रय की आराधना करता है, वह आत्मा का ध्यान करता है :- गुण को सेवन करे, वह गुणी को सेवन करता है, ऐसा कहते हैं। ३६-३६।

रयणत्तयं पि जोई आराहइ जो हु जिणवरमएण।
सो झायदि अप्पाणं परिहरइ परं ण संदेहो।।३६।।

मोक्ष के अधिकार में जिनवर के अभिप्राय से जिनवर के मत में। अन्यत्र कहीं होता

नहीं। यह कहते हैं कि रत्नत्रय को आराधे, वह आत्मा को ही आराधता है। ऐसा आराधकपना करे, वह राग को छोड़ देता है। राग छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। संसार छूट जाए और मोक्ष हो, इसमें सन्देह नहीं है, ऐसा कहते हैं।

अर्थ :- जो योगी ध्यानी मुनि जिनेश्वरदेव के मत की आज्ञा से... परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव की आज्ञा द्वारा **रत्नत्रय-सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की निश्चय से आराधना करता है...** लो! आहाहा! भगवान ने कहा हुआ आत्मा और भगवान ने कहा ऐसा दर्शन, ज्ञान और चारित्र, उसे जो आराधता है, निश्चय से आराधता है। वास्तव में आराधक। ऐसा। अर्थात् क्या ? उसके ख्याल में है कि ऐसा आराधनेयोग्य और अमुक, ऐसा नहीं। आराधता है, अन्तर में सेवन करता है। आहाहा! जिसका परिणमन दर्शन-ज्ञान-चारित्र का (हुआ है)। द्रव्य के आधार से, द्रव्य के आश्रय से जिसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वीतरागी निश्चय अवश्य कर्तव्यरूप पर्याय प्रगट हुई है, उसे यहाँ आराधक कहा जाता है। समझ में आया ?

आत्मा का ही ध्यान करता है,... लो! वह स्वयं प्रगटरूप से आत्मा का ही ध्यान करता है, ऐसा कहते हैं। रत्नत्रय को सेवन करे वह आत्मा को ही सेवन करता है। क्योंकि रत्नत्रय की पर्याय, वह आत्मा की है। समझ में आया ? आहाहा! थोड़े-थोड़े शब्दों में... जो कोई भगवान आत्मा ऊपर कहा वैसा, उसे जो सेवन करे, आराधे, वही रत्नत्रय को आराधता है और रत्नत्रय को आराधता है, वह आत्मा को आराधता है। यह देव की सेवा नहीं करता ? देव-देवी की आराधना ? वह आराधना देव-देवी की (नहीं), वह देव स्वयं भगवान, उसकी आराधना। समझ में आया ? आहाहा! बाहर की धमाल-घनघनाहट के कारण यह सूझ नहीं पड़ती।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : देव-देवी का आराधन करते हैं न कितने ही मूढ़। मन्त्र-बन्त्र करते हो और पुण्य हो तो दिखाई दे। उसमें क्या है धूल ? देव स्वयं दुर्गति के दुःखी हैं। आहाहा! समझ में आया ? यह क्षेत्रपाल और... ऐई! दीपचन्दजी! तुम्हारे यहाँ क्षेत्रपाल का बहुत होता है। बहुत हैं। एक तो आधा पत्थर होगा। वीतराग के मार्ग का रक्षक, वीतराग के रक्षक देव हों। अपना मार्ग स्वयं से रक्षक है। रखे कौन दूसरा ? पत्थर और बड़ा हरा

ऐसे करके बड़ा ऐसे चोपड़े सिन्दूर। पहले उसके पास चावल रखे, फिर भगवान के पास जाये। ऐसे के ऐसे मूढ़ जीव। उनके गाँव कहीं अलग होंगे?

तीन लोक के नाथ वीतराग की मूर्ति / प्रतिमा, वह तो वीतरागपने में स्थिर न रह सके, तब ऐसा शुभभाव होता है। इतनी बात है। उसके बदले बैठे क्षेत्रपाल और बैठी पद्मावती। देवी के बड़े मन्दिर और उसकी आरती उतरे। यह जैनमार्ग के अन्दर...

मुमुक्षु : .... करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब करे देवी-देवला का। श्वेताम्बर में बहुत आता है। आराधक और उपग्रह। नव ग्रह। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि इस देव को आराध, भाई! आहाहा! यह जिनवर की प्रतिमा का आराधन, वह भी एक शुभभाव है। वह निश्चय आराधन नहीं। आहाहा! गजब काम!

जो कोई भगवान आत्मा के दर्शन, ज्ञान, चारित्र की वीतरागी पर्याय को सेवन करता है, आराधता है, वह प्रगटरूप से आत्मा को ही ध्याता है। वह आत्मा का ही ध्यान है। **क्योंकि रत्नत्रय आत्मा का गुण है...** लो! वह रत्नत्रय आत्मा की पर्याय है। **गुण-गुणी में भेद नहीं है।** गुण-गुणी में भेद है नहीं। **रत्नत्रय की आराधना है, वह आत्मा की ही आराधना है। वह ही परद्रव्य को छोड़ता है...** लो! क्या कहते हैं? देखो! यह मोक्ष का अधिकार है न? भगवान आत्मा अपने पवित्र गुणों का भण्डार, उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान को आराधे, वह आत्मा को आराधे, वह विकल्प आदि परद्रव्य को छोड़ दे। परद्रव्य आदि छूट जाते हैं। पाठ तो ऐसा लिया जाए न? समझ में आया? '**परिहरइ परं ण संदेहो**।' स्व की आराधना में विकल्प का भाव नहीं रहता। परिहरि अर्थात् छूट जाता है। निःसन्देह छूट जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? है? '**सो झायदि अप्पाणं परिहरइ परं ण संदेहो**।'

अपने आया था पहले। '**परदव्वादो दुग्गइ सदव्वा हु सुग्गइ होइ**।' १६वीं गाथा। भारी कठिन काम। देव-गुरु कहते हैं कि हमारे ऊपर लक्ष्य होगा, तब तक तुझे राग होगा, तुझे आत्मा की गति नहीं होगी। ऐसा वीतरागमार्ग है। आहाहा! समझ में आया? '**परदव्वादो दुग्गइ सदव्वा हु सुग्गइ होइ**। चैतन्य भगवान अनन्त गुण का नाथ, उसकी सेवा करे उसे

सुगति होती है। शोभालालजी! समवसरण की सेवा करे तो कहते हैं राग, वह परद्रव्य है, विकल्प है। आहाहा! वीतरागमार्ग में वह होता है। दूसरे को मुख के सामने ग्रास किसे न रुचे? ऐसा कहते हैं। यह तो कहे नहीं। हमें आराधो, हमारा नाम ले तो भी राग है। आत्मा का आराधन नहीं।

मुमुक्षु : बहुत बात की खबर न हो इसलिए...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह तो खबर न हो, इसलिए तो यह कहते हैं। समझ में आया? बीच में पूर्ण वीतराग न हो, तब ऐसा भाव आवे, हो, परन्तु वह कहीं मोक्ष का मार्ग है, ऐसा नहीं है। जिसे साधक में निमित्त कहा, वह बाधक है। आहाहा! वीतरागमार्ग ऐसा है, भाई! यह तो त्रिकाल प्रसिद्ध है। उसमें आता है न? सिद्ध प्रसिद्धं। स्तुति में आता है न, पूजा में? सिद्ध तो प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार ऐसा आराधन करे उसे केवलज्ञान तो प्रसिद्ध है। सिद्ध भी उसमें प्रसिद्ध है और उसे रागादि परद्रव्य छूट जाते हैं। छूट जाए, बन्ध रहे नहीं। अबन्धस्वभावी भगवान की श्रद्धा-ज्ञान और आराधना से, बन्धभाव-राग रहे नहीं, अकेला आत्मा सिद्धपद को पायेगा, ऐसा कहते हैं। परद्रव्य का विकल्प न रहे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह ही परद्रव्य को छोड़ता है, इसमें सन्देह नहीं है। स्व चैतन्यमूर्ति गुण और गुणी अभेद ऐसे स्वद्रव्य की सेवा करे, उसे परद्रव्य की राग की, विकल्प की सेवा छूट जाती है। समझ में आया?

भावार्थ :- सुगम है। ऐसा कर दिया। अर्थ नहीं किया।

गाथा-३७

पहिले पूछा था कि आत्मा में रत्नत्रय कैसे है, इसका उत्तर अब आचार्य कहते हैं–

जं जाणइ तं णाणं जं पिच्छइ तं च दंसणं णेयं।
तं चारित्तं भणियं परिहारो पुण्णपावाणं ।।३७।।

यत् जानाति तत् ज्ञानं यत्पश्यति तच्च दर्शनं ज्ञेयम्।
तत् चारित्रं भणितं परिहारः पुण्यपापानाम्।।३७।।

जो जानता वह ज्ञान जानो देखता दर्शन कहा।
परिहार पुण्य रु पाप का चारित्र जिनवर ने कहा।।३७।।

अर्थ – जो जाने वह ज्ञान है, जो देखे वह दर्शन है और जो पुण्य तथा पाप का परिहार है, वह चारित्र है, इस प्रकार जानना चाहिए।

भावार्थ – यहाँ जाननेवाला तथा देखनेवाला और त्यागनेवाला दर्शन, ज्ञान, चारित्र को कहा ये तो गुणी के गुण हैं, ये कर्ता नहीं होते हैं, इसलिए जानन, देखन, त्यागन क्रिया का कर्ता आत्मा है, इसलिए ये तीनों आत्मा ही हैं, गुण-गुणी में प्रदेशभेद नहीं होता है। इस प्रकार रत्नत्रय है, वह आत्मा ही है – इस प्रकार जानना।।३७।।

गाथा-३७ पर प्रवचन

पहिले पूछा था कि आत्मा में रत्नत्रय कैसे है, उसका उत्तर अब आचार्य कहते हैं :- यह रत्नत्रय कहना किसे? आपने अभी तक कहा कि रत्नत्रय की सेवा, वह आत्मा की सेवा और उसका फल केवलज्ञान। परन्तु अब कहना किसे रत्नत्रय? यह व्याख्या तो आयी नहीं। समझ में आया? **पहिले पूछा...** पूछा, हों! उसे जवाब देते हैं, ऐसा कहते हैं। ऐई! माल लेने दुकान में आया हो, उसे माल देते हैं। घर देने जाता नहीं। पूछता है, महाराज! तुमने यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र की सेवना, यह आत्मा की सेवना, उसका ध्यान वह आत्मा का ध्यान, उसका फल वह केवलज्ञान, उसका फल वह परद्रव्य का छूट जाना। परन्तु वह है क्या चीज़? रत्नत्रय... रत्नत्रय पुकारते हो परन्तु कहा किसे जाता है?

जं जाणइ तं णाणं जं पिच्छइ तं च दंसणं णेयं।
तं चारित्तं भणियं परिहारो पुण्णपावाणं।।३७।।

अर्थ :- जो जाने वह ज्ञान है,... भगवान ज्ञानस्वरूपी को जाने, वह ज्ञान। उसे जाने, वह ज्ञान। शास्त्र को जाने और पर को जाने, वह ज्ञान नहीं—ऐसा यहाँ कहते हैं। पण्डितजी!

आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसे जाने, वह ज्ञान। यह तुम्हारा सब ... अमुक, वह ज्ञान नहीं, वह सब कुज्ञान, अज्ञान। वह भटकने का ज्ञान। ऐ... चन्दुभाई! ये हमारे इंजीनियर थे। वांकानेर।

मुमुक्षु : वह अज्ञान में आवे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञान। यह शास्त्र का पठन, आत्मज्ञान बिना का, वह अज्ञान। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं न कि तू केवलज्ञान का पिण्ड है न। तो उसमें से ज्ञान का कण आवे पर्याय, वह ज्ञान। आहाहा! विधि की खबर नहीं होती, वह किसे सेवन करे और किसे छोड़े ? समझ में आया ? **जो जाने वह ज्ञान है,...** उसमें जान शब्द आ गया। जाने, वह ज्ञान। **जो देखे वह दर्शन... 'जाणइ तं णाणं'** है न ? किसे जानना ? आत्मा को। कैसा आत्मा ? पूर्व में कहा ऐसा। आहाहा! ३५ गाथा में आ गया। दृष्टि को पलटा डाल, ऐसा कहते हैं। दृष्टान्त दिया था न उस दर्पण का ? दर्पण हाथ में परन्तु पीछे के भाग में देखे लकड़ी में। दिखाई दे ? सुलटा कर डाले तो दिखाई दे ऐसा दर्पण। इसी प्रकार अनादि का आत्मा सन्मुख देखने का नहीं, पर के सन्मुख देखने के लिये... जहाँ आत्मा नहीं उसमें देखे, राग को देखे, शरीर को देखे, उसे देखे। परन्तु क्या है ? वहाँ कहाँ आत्मा था ?

मुमुक्षु : संसार दिखाई दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो यथार्थरूप से संसार भी जानने में न आवे। समझ में आया ?

मुमुक्षु : आत्मा सन्मुख होना अर्थात् क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर्मुख होना वह। दर्पण होता है या नहीं ?

मुमुक्षु : वह दर्पण ख्याल में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ख्याल में आता है, परन्तु यह ... यह तो दृष्टान्त है। आत्मा की पर्याय जो ऐसे झुकी हुई है, उसको पीठ देकर अन्यत्र जाता है। वह पर्याय अन्दर झुका। आहाहा! समझ में आया ? दर्पण का भाग जो उल्टा है, दिखता है। उसमें ... दिखता है। उसी प्रकार राग और पर को देखने में आत्मा नहीं दिखेगा। आहाहा! ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : प्रथा ही उल्टी चली है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उल्टी चली है। बाहर का यह और यह... यह और यह... राग को देख, शरीर को देख, उसे देख, इसे देख, परन्तु वहाँ कहाँ आत्मा था, उसे देखे?

मुमुक्षु : अनादि काल से यही किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसने यही किया है। इसीलिए तो यह कहते हैं। चिमनभाई! अभी तो बाहर से निवृत्त नहीं होता। उसमें यह कहाँ से वापस? यह हो तो वापस अन्दर में जाना, वह निवृत्त नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उल्टी दृष्टि है इसलिए। पर में प्रेम स्वयं करता है। कौन करता है? कोई दूसरा करता है? पर का प्रेम करता है तो यहाँ पीठ होती है, यहाँ प्रेम करे वहाँ उसकी पीठ मिलती है जा। मेरे स्वभाव में रागादि कोई चीज़ नहीं है। मैं तो अकेला ज्ञान और आनन्द का सागर हूँ। ऐसी अन्दर दृष्टि होने पर उसे जाना, वह ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? और देखे वह दर्शन। देखना अर्थात् श्रद्धा करना। जैसा भगवान आत्मा है, वैसा प्रतीति में आना, इसका नाम समकित। आत्मा की श्रद्धा करना, वह समकित। समझ में आया? तत्त्वरुचि लेंगे, परन्तु उस तत्त्व में आत्मा पहला तत्त्व। आत्मा अकेला पवित्र का पिण्ड, केवलज्ञान का कन्द, उसके सन्मुख की प्रतीति, उसके सन्मुख की श्रद्धा को समकित कहते हैं। उसे जानने को ज्ञान कहते हैं। यह पहिचान देते हैं तीन रत्न की।

मुमुक्षु : दर्शन वह देखना नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह देखना, वह श्रद्धा है।

जो पुण्य तथा पाप का परिहार है, वह चारित्र है,... लो! यह महाव्रत और अव्रत के विकल्प का अभाव, इसका नाम चारित्र। कहो, समझ में आया? दीपचन्दजी! वहाँ क्या नग्न होकर पंच महाव्रत के घोटाले करता है। नग्न साधु हो जानेवाले थे, खबर है? एक दूसरे हैं दिल्लीवाले शान्तिभाई हैं। वे भी दिगम्बर साधु हो जानेवाले थे। रह गये। किसे कहना साधु? आत्मा किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती और किसे साधना, इसकी खबर नहीं होती और साधु! साधना है तो आत्मा। राग साधना है? निमित्त साधना है? ऐसा आत्मा। उसमें जो स्थिर हो, पुण्य-पाप का परिहार करे, वह चारित्र। **इस प्रकार का जानना चाहिए।** विशेष बात करेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-७६, गाथा-३७ से ३९, सोमवार, श्रावण कृष्ण १५, दिनांक ३१-०८-१९७०

मोक्षपाहुड़, गाथा-३७ का भावार्थ। ऐसा अन्दर अर्थ में आया था न, **जो जाने, वह ज्ञान है,...** तो कहते हैं कि **जो जाने, वह ज्ञान है,...** तो ज्ञान जाननेवाला है। है न? **जो जाने वह ज्ञान है, जो देखे वह दर्शन है और जो पुण्य तथा पाप का परिहार है, वह चारित्र है,...** ऐसा जो कहा, उसका अर्थ ऐसा लेना।

भावार्थ :- यहाँ जाननेवाला तथा देखनेवाला और त्यागनेवाला दर्शन, ज्ञान, चारित्र को कहा... क्या कहते हैं? जाननेवाला, दर्शनवाला, देखनेवाला और त्याग करनेवाला, उसे ज्ञान, दर्शन और चारित्र कहा। परन्तु **ये तो गुणी के गुण हैं,...** जाननेवाली पर्याय, श्रद्धा करनेवाली पर्याय, पुण्य-पाप के विकल्प के त्यागरूप चारित्र की पर्याय, वह तो पर्याय है। **ये कर्ता नहीं होते हैं...** पर्याय कर्ता नहीं हो सकती। अर्थात् कि जानना, वह जाननेवाला गुण स्वयं जानने का कर्ता नहीं। जानना, वह आत्मा जाने, इसलिए आत्मा उसका कर्ता है। क्या कहा और?

मुमुक्षु : जीव न करे और पर्याय करे ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी यहाँ यह बात नहीं है। अभी गुण-गुणी पर्याय... यहाँ पर्याय को कर्ता कहा। जाने, वह ज्ञान; श्रद्धा करे, वह समकित; पुण्य-पाप के परिणामरहित, चारित्र त्याग-पुण्य-पाप का त्याग, वह चारित्र। बहुत संक्षिप्त व्याख्या। तब कहते हैं, परन्तु यह ज्ञान-दर्शन-चारित्र पर्याय है, वह कर्ता है। अमरचन्दभाई! पर्याय कर्ता नहीं होती अभी यहाँ ऐसा सिद्ध करना है। अभी वह बात ३२० की गाथा याद करे, वह यहाँ काम नहीं आती। ऐई! वजुभाई! जहाँ जिस अपेक्षा से कहा, वहाँ उसे समझना चाहिए न! सब जगह समान लगा दे तब तो यह कथन की पद्धति है, वह सब बदल जाए। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि यह मोक्ष के मार्ग तीन। जानना, श्रद्धा करना और पुण्य-पाप के परिणाम का त्याग, ऐसा चारित्र, इसका नाम मोक्ष का मार्ग। यहाँ तो कहते हैं कि जाने वह ज्ञान, श्रद्धा करे, वह समकित और पुण्य-पाप का परिहार करे, वह चारित्र। उसमें तो इसकी पर्याय जाने, तब तो पर्याय कर्ता हुई। समझ में आया? यहाँ यह नहीं लेना। पहले

आराधक में आ गया न कि आराधक करनेवाला जीव। ऐसा आया था न? ३४ गाथा में। आराधक। सम्यग्दर्शन-ज्ञान शुद्ध पर्याय उसका आराधक, आराधक—आराधना करनेवाला जीव। आराधना की पर्याय, उस आराधना की विधि और आराधना का फल, वह केवलज्ञान। समझ में आया? पाठ में तो ऐसी शैली चली आती है। पाठ में ऐसा कहा—जाने, वह ज्ञान की पर्याय जाने किसी ने कहा है, परन्तु वहाँ पहले चला आया है। कर्ता जीव है। जानने की पर्याय का कर्ता जीव है। श्रद्धा करने की पर्याय का कर्ता जीव है। पुण्य और पाप के त्यागरूप परिणमन चारित्र का कर्ता जीव है। समझ में आया?

गुणी के गुण हैं, ये कर्ता नहीं होते हैं... सूक्ष्म है, सेठ! क्या कहा उसमें, यह समझ में नहीं आता। हाँ... हाँ करे, ऐसा नहीं चलता। आत्मा वस्तु, उसमें ज्ञान-दर्शन-आनन्द वह त्रिकाली गुण, उसकी अभी बात नहीं है। अभी उसके परिणमन की बात है। आत्मा अपने को जाने—ऐसा जो ज्ञान, वह ज्ञान जाने, श्रद्धा समकितरूप, पुण्य-पाप का त्याग चारित्ररूप, वहाँ तीन पर्याय का कर्ता सिद्ध किया है। पाठ की ध्वनि तो ऐसी है, परन्तु मूल कहने का आश्रय पर्याय कर्ता नहीं यहाँ लेना। समझ में आया? ३२० गाथा में पर्याय पर्याय की कर्ता, द्रव्य पर्याय का कर्ता नहीं। तो वापस यह मिलान नहीं खाये। ३४ गाथा, वहाँ पर्याय आराधना की करनेवाली, आत्मा आराधना का करनेवाला नहीं। ऐई! 'जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही।' जहाँ-जहाँ जिस अपेक्षा से है, उसे उस प्रकार से समझना चाहिए। समझ में आया?

मुमुक्षु : पर्याय का दाता जीव नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किस अपेक्षा से? यह दूसरी अपेक्षा से। पर्याय का अस्तित्व सत् है। इसलिए उसका सत् द्रव्य दाता नहीं है। वह तो अत्यन्त दो सत् को भिन्न करके एक सत् दूसरे सत् का कर्ता नहीं है, ऐसी बात वहाँ है।

जहाँ पंचास्तिकाय आदि में कहा कि पर्याय बिना का द्रव्य नहीं होता। लो! द्रव्य बिना की पर्याय नहीं होती। यह पंचास्तिकाय में मूल पाठ कुन्दकुन्दाचार्य का है। समझ में आया? वहाँ पर्याय और द्रव्य को दो सामान्य और विशेष को एक गिनकर सामान्य विशेष बिना का होता नहीं, ध्रुव है वह पर्याय बिना का होता नहीं - ऐसा कहते हैं और पर्याय जो है, वह ध्रुव बिना होती नहीं। आहाहा!

और प्रवचनसार में ऐसा कहा है कि उत्पाद की पर्याय का कर्ता व्यय नहीं। अमरचन्दभाई! आत्मा, सम्यग्दर्शन की पर्याय जो होती है, उस पर्याय का कर्ता... समझ में आया? ध्रुव नहीं। वहाँ ऐसा आया है। उस पर्याय का कर्ता पूर्व की पर्याय का व्यय हुआ, वह नहीं। और मिथ्यात्व की पर्याय का व्यय हुआ, उसका कर्ता उत्पाद नहीं। प्रत्येक पर्याय और प्रत्येक ध्रुव स्वतन्त्र अपने-अपने भाव में अस्तित्व रखते हैं। गजब बात, भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु : कठिन पड़े ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठिन पड़े, ऐसा है परन्तु... ऐई! अमरचन्दभाई! समझना ही पड़ेगा। वहाँ बाहर के सब थोथा में कुछ है नहीं। वहाँ सब पत्थर है। वहाँ पुण्य-पाप के भाव वे पत्थर हैं-जड़—अचेतन (हैं)। उनमें कुछ है नहीं। यहाँ तो तीन की बात की। पुण्य-पाप के परिहाररूपी चारित्र लिया है न? समझ में आया?

कहते हैं, कदाचित् पण्डित जयचन्द्रजी ने ऐसा अर्थ किया होता तो? ऐसा। पाठ में ज्ञान-ज्ञान का कर्ता, दर्शन-दर्शन का कर्ता, चारित्र-चारित्र का कर्ता हो और अर्थ में पण्डित जयचन्द्रजी ने ऐसा लिखा होता तो? प्रश्न उठता है। ऐई! खीमचन्दभाई! एक प्रश्न ऐसा उठे तो? नहीं, यह लेख है, वह पूर्वापर के सम्बन्धवाला लेख है। क्योंकि पहले से चला आता है ३४ गाथा में से। आराधक जीव कहा है। आराधना का कर्ता। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय का कर्ता, आराधना करनेवाला जीव कहा है। पर्याय, पर्याय की आराधक है; पर्याय, पर्याय की कर्ता है - ऐसा कहा नहीं। ऐसा कहा? कहा है, कहा नहीं क्या? ऐसा कहा नहीं वहाँ। समझ में आया?

देखो न! ३६ में क्या कहा? '**रयणत्तयं पि जोई आराहइ जो हु जिणवरमएण।**' है न? **जो योगी ध्यानी मुनि जिनेश्वरदेव के मत की आज्ञा से रत्नत्रय-सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की निश्चय से आराधना करता है, वह प्रगटरूप से आत्मा का ही ध्यान करता है,...** पाठ ही है यह। ऐई! क्या कहा, समझ में आया? उसे कर्ता बतलाना है। वहाँ पर्याय का कर्ता दो अंश भिन्न है, ऐसा बतलाना है।... सब जगह एक जगह सब ले ऐसे बात का मिलान नहीं खाता। समझ में आया?

प्रवचनसार में तो ऐसा कहा है कि पर्याय कर्ता द्रव्य की। द्रव्य कार्य और पर्याय कर्ता। लो, ऐसा लिया है। वह तो साबित करने के लिये। द्रव्य का शुद्धपना साबित करने के लिये पर्याय कर्ता और उसके कारण द्रव्य सिद्ध होता है कि यह द्रव्य है। ऐई! देवानुप्रिया! ऐसी सब बातें हैं।

मुमुक्षु : इसमें कौन सी बात मानना?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब बात मानना। जिसे अपेक्षा से कही है वह। कौन सी बात मानना अर्थात् क्या? जो जिस अपेक्षा से जहाँ कहा, वह उस अपेक्षा से बराबर जानना चाहिए। उसमें कोई विरोध नहीं है। समझ में आया? इसमें आया। पाठ तो पर्याय पर्याय की कर्ता है। इसमें तो फिर और अर्थ में पण्डित जयचन्द्रजी ने द्रव्य कहाँ से डाला? वह तो ३६ गाथा में से चला आता है, इसलिए डाला। समझ में आया? ऊपर आया था न ३६ में? '**रयणत्तयं पि जोई आराहइ**' मुनि, धर्मात्मा '**जिणवरमएण।**' वीतराग के अभिप्राय के दर्शन से तीन रत्न को आराधे। '**सो झायदि अप्पाणं**' इन तीन रत्न को आराधे, वह आत्मा को आराधे, ऐसा कहते हैं। है न उसमें? देवीलालजी! क्या है उसमें? गजब भाई! एक ओर पढ़े वैसा सोगानी का। हमारे तो कुछ आराधना नहीं और करना नहीं। केवलज्ञान भी करना नहीं, मोक्षमार्ग भी करना नहीं। हम तो जहाँ हैं... एक ओर ऐसा आवे। हमारे केवलज्ञान भी करना नहीं, निर्विकल्पता भी करना नहीं। ऐई! किस अपेक्षा से बात है? करना... करना... करना... ऐसा जो बुद्धि का विकल्प है करना, ऐसा वहाँ नहीं। समझ में आया? ऐई! चिमनभाई! ऐसा अटपटा है, भाई!

मुमुक्षु : सब सम्बन्ध बैठाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब बात समुचित है। कहीं किसी जगह अर्थ नहीं खाती। समझ में आया?

मुमुक्षु : हमें तो इसमें से एकाधा कोई सत्य लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक साथ सब सत् है, सत् की अपेक्षा से। ऐई! आहाहा!

यहाँ अपने ३२० में ऐसा आया, लो! मोक्ष के मार्ग के परिणाम का कर्ता ध्रुव नहीं है। अमरचन्दभाई! ३२० गाथा, जयसेनाचार्य (कृत टीका) की वाँचन हो गयी बहुत अभी। बारह व्याख्यान हो गये।

मुमुक्षु : उसमें तो आप बहुत जोर देते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : जिस समय जो हो, उसका जोर दिया जाए न ? ३२० गाथा में भगवान आत्मा ध्रुव तो सामान्यरूप से एकरूप सदृश्य है। उसमें पर्याय का कर्ता वह कैसे होगा ? वह परिणमता कहाँ है ? ऐसा। ध्रुव, वह परिणमता कहाँ है ? उसकी परिणमन की पर्याय का कर्ता परिणमन है, ध्रुव नहीं। आहाहा ! दोनों ऐसे भिन्न किये हैं। परन्तु जब दो को एकरूप से गिनना है... समझ में आया ?

मुमुक्षु : भिन्न जानना या...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जिस अपेक्षा से है, वैसा गिनना। समयसार की दूसरी गाथा में शुरुआत की। '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**'। ज्ञान-दर्शन, उसमें स्थित है, ऐसा नहीं लिया, ऐसा लिया। शुरुआत वहाँ से की है। परन्तु उसका अर्थ तो यही होता है। जीव राग में, पुण्य में, निमित्त में स्थित न होकर पर्याय में स्थित हो, इसका अर्थ कि द्रव्य का आश्रय है, इसलिए पर्याय में स्थित है। समझ में आया ? गजब ! गजब ! ऐई ! सुजानमलजी ! बराबर है ? यह सब समझने में... व्रत, तप करे, उसमें कुछ समझने का रहता है ? व्रत-तप कर डाले आठ दिन के अपवास पर्यूषण के दस दिन के दस लक्षणी।

मुमुक्षु : कागज में लिखा जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : कागज में भी लिखा जाये, देखो ! भाई कहते हैं। हमारे घर में महिलाओं ने आठ अपवास किये थे, उनका यह महोत्सव है, इसलिए पधारना। आपके कारण शोभा होगी। भगवानजीभाई ! ऐसा लिखे। आहाहा ! बापू ! मार्ग जो है, वह है, भाई !

यहाँ कहते हैं कि **दर्शन, ज्ञान, चारित्र को कहा...** जाननेवाला ज्ञान, श्रद्धा करनेवाला समकित, पुण्य-पाप के त्यागवाला चारित्र। तो वह तो पर्याय और पर्याय की कर्ता सिद्ध की है, भाषा ऐसी देखो तो। परन्तु वास्तव में तो **यह गुणी के गुण हैं,...** गुण शब्द से यहाँ पर्याय, हों ! **ये कर्ता नहीं होते हैं, इसलिए जानन, देखन, त्यागन क्रिया का कर्ता आत्मा है,...** यह जानने की पर्याय सम्यक्, उसमें उसका कर्ता आत्मा है। राग और निमित्त उस पर्याय के कर्ता नहीं हैं, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। क्या कहा, समझ में आया ? आत्मा का ज्ञान उस ज्ञान को ज्ञान करे, ऐसा कैसे बने ? ऐसा कहते हैं। उस ज्ञान की पर्याय को आत्मा

करे। क्योंकि आत्मा पर दृष्टि जाने से जो ज्ञान की पर्याय होती है, उसे आत्मा करे। उसे विकल्प राग, निमित्त करते नहीं, ऐसा सिद्ध करना है।

मुमुक्षु : पर्याय है और पर्याय भी करती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय भी करती नहीं यहाँ तो। द्रव्य करता है पर्याय, फिर ऐसा करती है न। परिणमन द्रव्य करता है, ऐसा कहते हैं। द्रवति इति द्रव्यं। द्रव्य स्वयं ही पर्यायरूप द्रवता है, ऐसा यहाँ कहते हैं। ऐई! अमरचन्दभाई!

मुमुक्षु : सूक्ष्म हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म नहीं। वहाँ आगे वस्तु स्वयं सामान्य द्रव्य है, उसका भेद पाड़कर कहा है कि द्रव्य परिणमता है। अंशरूप परिणमता है, यह भेद से कथन है। और अभेद अकेला सामान्य हो, वह स्वयं ही कैसे परिणमे? पूरा सामान्य ध्रुव कैसे परिणमे? समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म है, पोपटभाई!

आत्मा ऐसा द्रव्य वह पूरा ध्रुव, उस ध्रुव अपेक्षा से लो तो उसमें एक अंशरूप परिणमन ऐसा उसमें-अभेद में कहाँ है? ऐसा। परन्तु जब परिणमन और पर्याय वहाँ से ही द्रवती है, ऐसा सिद्ध करना है, तब अंश उसमें उस काल में उस प्रकार का अंश था सामान्य में भिन्नरूप से, सामान्य एकरूप है, उसमें एक अंश था, वह अंश स्वयं इसरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञानरूप परिणमता है। थोड़ा सूक्ष्म तो अवश्य है। थोड़ा सूक्ष्म, हों! बहुत सूक्ष्म नहीं।

मुमुक्षु : यह भी मोक्षमार्ग का कथन और वह भी मोक्ष के मार्ग का कथन।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी मोक्षमार्ग का कथन है। वहाँ अभेद से कथन है, यहाँ भेद से कथन है। समझ में आया?

इसलिए जानन, देखन, त्यागन क्रिया का कर्ता आत्मा है,... इसलिए जानने की क्रिया सम्यक्, हों! श्रद्धा करने की क्रिया सम्यग्दर्शन की क्रिया, सम्यग्दर्शन की क्रिया और पुण्य-पाप के विकल्परहित चारित्र के परिणमन की क्रिया, उसका कर्ता आत्मा है। समझ में आया? आहाहा! साधारण लोग बेचारे अपवास, व्रत करके मर जाए। उन्हें तो यह कुछ समझे नहीं कि क्या है यह? रचपच गये उसमें अनन्त काल से। समझ में आया?

वस्तु प्रभु चैतन्यमूर्ति द्रव्य कर्ता हो, ऐसा कहते हैं। पर्याय कर्ता कैसे हो? क्योंकि

द्रव्य सामान्य स्वभाव जो है, उसमें से पर्याय परिणमती है, इसलिए वह कर्ता और पर्याय उसका कार्य। पर्याय कर्ता और पर्याय का कार्य, वह तो एकदम पर्याय सिद्ध करनी हो सीधे, (तब ऐसा कहा जाता है)। आहाहा! गजब बात, भाई! यह सम्यग्ज्ञान की पर्याय स्वयं कर्ता, स्वयं कर्म, षट्कारक एक समय की पर्याय में लागू पड़ते हैं। अकेली पर्याय को सिद्ध करना हो द्रव्य की अपेक्षा बिना तो एक समय की पर्याय में षट्कारक लागू पड़ते हैं। आहाहा! भारी कठिन मार्ग।

विकार है, एक समय का विकार, उस एक समय के विकार में षट्कारक लागू पड़ते हैं। द्रव्य-गुण की अपेक्षा बिना, निमित्त की अपेक्षा बिना और पहले तथा बाद की पर्याय की अपेक्षा बिना। ऐसा ही वस्तु का स्वरूप जब सिद्ध (करना हो), अंश और अंशी से भिन्न सिद्ध करना है, अपेक्षा लेकर इस सामान्य का यह अंश है, ऐसा भेद डालकर उसका परिणमन करे। द्रवति इति द्रव्यं। द्रवे, वह द्रव्य। पहले सीखे छह गुण में। द्रव्यत्व का कार्य (क्या)? कि द्रवे, परिणमे। षट्गुण में आता है लड़कों को। लड़कों ... है न? समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों एकरूप नहीं होते, ऐसी अपेक्षा से द्रव्य, वह द्रव्य और पर्याय, वह पर्या। परन्तु द्रवता है द्रव्य, ऐसा सिद्ध करना है। ऐसी कहीं से भी पर्याय? अध्धर से आती है कहीं से? समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ... पर्याय को और ध्रुव को कोई सम्बन्ध नहीं? आपने कहा, ध्रुव को पूरा अकेला ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला ही है। ज्ञानप्रधान कथन में वह वस्तु जानने में ऐसी आवे। दृष्टिप्रधान उत्कृष्ट कथन में द्रव्य, वह द्रव्य और पर्याय, वह पर्याय। पर्याय का कर्ता द्रव्य नहीं और द्रव्य का कर्ता पर्याय नहीं। ऐसा जानना चाहिए न उसे? समझ में आया? आहाहा! ऐसे कुछ वेदान्त में भाग होंगे? दरबार! बिना भान के कूटे और फिर जाए। वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है।

ये तीनों आत्मा ही है,... देखो! **तीनों आत्मा ही है,...** ऐसा लेना है न? आत्मा का

मोक्षमार्ग, वह आत्मा ही है - ऐसा यहाँ सिद्ध करना है न ? समझ में आया ? यह कहा न ? दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह पर्याय है, अवस्था है, दशा है। वस्तु त्रिकाल है। अब वह त्रिकाल वस्तु है, उसमें जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता, वह पर्याय है, हालत है। तो पर्याय पर्याय की कर्ता, यह अभी सिद्ध नहीं करना है। पर्याय का कर्ता द्रव्य है। द्रव्य पर्याय को करता है। समझ में आया ? क्यों ? कि वे तीनों एक हैं। दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय, वह आत्मा ही है। ऐसा यहाँ सिद्ध करना है न ? पर्याय है, वह आत्मा है। वह पर्याय कोई परवस्तु है, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? नहीं आते थे वे दाढ़ीवाले ? वे कहते थे न ? भोपालवाले। पर्याय तो अभी सिद्ध में भी... ?

मुमुक्षु : पीछा नहीं छोड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पीछा नहीं छोड़ा। पर्याय, पर्याय में सिद्ध को है या नहीं ? सिद्ध को भी पर्याय, पर्याय में है। पर्याय बिना अकेला द्रव्य सामान्य कूटस्थ रहे ? द्रव्य कैसा वह ? सिद्ध को भी पर्याय है। तब वह बोले थे कि लो, अभी पर्याय ने सिद्ध को छोड़ा नहीं ? कुछ खबर ही नहीं होती। अन्ध-अन्ध... ऐई ! शोभालालजी ! भोपाल में रहते हैं न ? खबर नहीं होती। या गाँधी की लाईन में लौकिक में चढ़ गये हों। उनके भाषण लगे हों। कुछ न कुछ लगा हो, उसमें यह जैनदर्शन वीतराग का तत्त्व ऐसा सूक्ष्म, उसे समझने के लिये बहुत योग्यता चाहिए। यह सब दुनिया के काम करना, यह करना और वह करना, दुनिया का सुधार करना। धूल भी नहीं करता। करे कौन ? समझ में आया ?

ये तीनों आत्मा ही है,... सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो मोक्ष का मार्ग, वह वीतरागी पर्याय, वह द्रव्य के आश्रय से प्रगट हुई, वह आत्मा ही है - ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। वह कहीं अनात्मा नहीं। पुण्य-पाप के विकल्प हैं, वे अनात्मा हैं। और इसके अतिरिक्त दूसरे सब आत्मायें और शरीर सब अनात्मा है। समझ में आया ? परन्तु यह तीन आत्मा ही है। **गुण-गुणी में कोई प्रदेशभेद नहीं होता है।** प्रदेशभेद-क्षेत्रभेद नहीं है। क्या कहते हैं ?

वस्तु भगवान आत्मा और उसकी यह पर्याय, उनके प्रदेशभेद नहीं हैं। और एक ओर विवाद चले मुम्बई में कि पर्याय और द्रव्य के सर्वथा भेद है। ऐई ! किस अपेक्षा से वहाँ बात है ? यहाँ किस अपेक्षा से बात है ? समझ में आया ? यहाँ तो कहते हैं कि पर से भिन्न करके उसकी पर्याय वह द्रव्य है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया ? पर से

भिन्न करके और उसकी पर्याय उसकी है, वह आत्मा है, ऐसा सिद्ध करना है और उसके प्रदेश भी उसमें वे हैं। लो!

उपयोग के (संवर) अधिकार में समयसार में तो ऐसा भी आया कि विकार के परिणाम के प्रदेश भिन्न हैं। कहाँ भिन्न होंगे? असंख्य प्रदेशी दल है, शुद्ध दल वह वस्तु। उसके प्रदेश के अंश में जितनी अशुद्धता उत्पन्न होती है, वे प्रदेश भिन्न। शुद्ध और अशुद्ध के प्रदेश भिन्न। असंख्य का एक अंश जो है, वह इस प्रदेश के शुद्ध के धाम से अशुद्ध का प्रदेश भिन्न है, ऐसा वहाँ कहा है। समझ में आया? वहाँ आगे अशुद्धता और शुद्धता को अत्यन्त भिन्न करना है और एक समय की पर्याय, निर्मल पर्याय और द्रव्य भी भिन्न है, ऐसा सिद्ध करना हो, तब एक समय की पर्याय को भी परद्रव्य कहकर स्वद्रव्य से भिन्न है, (ऐसा कहते हैं)। यह अपेक्षा से तो उसके अंश भी हैं, भले असंख्य में का भाग। परन्तु उन असंख्य में के भाग का अंश वह पर्याय का क्षेत्र है और यह गुणी का पूरा क्षेत्र है, दोनों अत्यन्त भिन्न हैं। इसमें कहाँ वह?

हमारे फावाभाई कहते, सवेरे कुछ सुनते हैं, वहाँ दोपहर में दूसरा आवे, उसमें क्या निर्णय करना? सवेरे कुछ आवे कि ऐसा है। राग, उसे आत्मा करे। आत्मा करे, जड़ करे नहीं। दोपहर में कहे कि राग आत्मा करे तो मिथ्यादृष्टि हो। अरे! अरे! ऐई! किस अपेक्षा से? पर्याय में विकार जीव की पर्याय में होता है। कहीं पर के कारण और पर में नहीं होता। इस अपेक्षा से। परन्तु फिर जब द्रव्यदृष्टि हुई, स्वभाव का भान हुआ कि मैं तो ज्ञानानन्द हूँ, वह आत्मा रागरूप परिणमनेवाला नहीं। समझ में आया? वस्तु की दृष्टि होने पर ज्ञान-दर्शन-आनन्दस्वरूप हूँ, ऐसा होने पर विकार का परिणमन समकिती को है ही नहीं, ऐसा सिद्ध किया न दोपहर में? समझ में आया? दोपहर में आया नहीं, क्या कहलाता है? '**चरित्तदंसणणाण**' नहीं विषय में, नहीं कर्म में, नहीं काया में। मोह भी नहीं और दोष भी नहीं, वहाँ ऐसा दोनों सिद्ध किये हैं। गुण है आत्मा में, दोष है उसकी पर्याय में। कोई यह गुण-दोष पर के हैं, ऐसा है नहीं। यह तो भाई! शान्ति से, धीरज से अभ्यास करे तो समझ में आये ऐसा है। एकदम कहीं ऊपर-ऊपर से लड्डू खा जाना नहीं है।

मुमुक्षु : अभ्यास करना, वह तो परवस्तु है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात भी सच्ची है। परन्तु बात यह आये बिना रहती नहीं। एक

न्याय से स्वभाव का लक्ष्य और दृष्टि रखकर जिसकी दृष्टि स्वभाव पर जमी है, वह वाँचन, पठन, मनन करे, तो भी तब तक बढ़े नहीं। उसके कारण से नहीं, हों! इसलिए कहीं बन्ध का कारण है, वह तो विकल्प की अपेक्षा से लिया। परन्तु उस समय ज्ञायक की दृष्टि का जोर वर्तता है, इसलिए उसे वाँचन, पठन काल में शुद्धि बढ़ती है।

मुमुक्षु : ... परन्तु वाँचन करने की क्या आवश्यकता है ? वह तो परपदार्थ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इतना लक्ष्य आये बिना रहता नहीं। व्यवहार से। शास्त्र क्या कहते हैं, कैसा तत्त्व है, यह परलक्ष्यी ज्ञान हुए बिना स्व में आयेगा कहाँ से ? तथापि उसके कारण से नहीं आता। अरे! कुछ इसके ख्याल में... अरे! ऐसी बात है, बापू! यह तो पचाने की बात है। वाँचन एकदम... यह सुने नहीं और कुछ नहीं फिर तो उसका अर्थ कि इसे अभी स्वभाव को समझने की दरकार हुई नहीं। तथापि समझता है...

मुमुक्षु : दृष्टि के जोर में कुछ आता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभी तो दृष्टि के जोर में भी दृष्टि हो तब न ? और दृष्टि हुई कब तो फिर ? रागादि के विकल्प आवे तो भी दृष्टि के ध्येय के कारण सुधार होता जाता है। देखो! आचार्य ने पहले नहीं कहा ? अमृतचन्द्राचार्य ने, हमको पर्याय में आत्मा की अशुद्धि है। वह यह टीका करते हुए शुद्धि हो जाओ। आता है ?

मुमुक्षु : तीसरा कलश रखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो, तीसरा कलश है। टीका करते हुए तो विकल्प है। हमारा उस समय भी ध्येय में द्रव्य तैरता है। द्रव्य है, वह शुद्ध है, वह अभेद है, उसकी दृष्टि के काल में यह टीका का विकल्प भले हो, परन्तु उसके काल में हमारी शुद्धि बढ़ जाएगी। उसके काल में। उसके कारण नहीं। ऐई! अरे! गजब!

मुमुक्षु : मिलान बराबर खाता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिलान बराबर खाता है चारों ओर से।

मुमुक्षु : ज्ञान में से ज्ञान आवे न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान में से ज्ञान आवे, ऐसा भी कहना परन्तु ज्ञान में से ज्ञान न आवे, परन्तु पर्याय में से पर्याय आवे, द्रव्य में से नहीं, यह भी एक बात है। ऐई!

यहाँ तो राग और निमित्त से धर्म की पर्याय नहीं होती, यह सिद्ध करना है। मोक्ष का मार्ग वह व्यवहार, विकल्प, दया, दान में से नहीं आता, निमित्त में से नहीं आता। उसकी पर्याय द्रव्य में से आवे और मोक्षमार्ग प्रगट होता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! एक ओर कहे, वाँचना और सुनना, यह विकल्प है और नुकसान का कारण है। ऐसा कहा है न भाई ने भी ? न्यालभाई ने। है न ऐसा ? तथा एक ओर लिखे आचार्यों के शब्द-शब्द पढ़ते हुए आनन्द की बूँद झरती है।

मुमुक्षु : तो फिर पढ़ा क्यों ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पढ़ने के लक्ष्य में दृष्टि का जोर पड़ा है, उसके लक्ष्य से उसके भाव में शुद्धता बढ़ती है, ऐसा कहना है। आहाहा! ऐई! वजुभाई! देखो! वीतराग का मार्ग है, ऐसा मार्ग अन्यत्र वह शैली नहीं हो सकती।

मुमुक्षु : अलौकिक बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अलौकिक बात है। अनोखी बात है।

आत्मा ही है, गुण-गुणी में कोई प्रदेशभेद नहीं होता है। यहाँ पर्याय और द्रव्य में प्रदेश भेद नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। **इस प्रकार रत्नत्रय है, वह आत्मा ही है, इस प्रकार जानना।** यह रत्नत्रय की पर्याय, वह द्रव्य है, ऐसा जानना। वह राग है और निमित्त है और परद्रव्य है, ऐसा जानना नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : एक समय की पर्याय में पूरा आत्मा ज्ञात हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पूरा आत्मा है न, उससे पूरा आत्मा ज्ञात होता है या नहीं ? श्रद्धा में पूरा आत्मा स्वीकृत, होता है, ज्ञान में पूरा ज्ञेय पकड़ में आता है। पूरे द्रव्य में स्थिरता होती है, लो! आहाहा! समझ में आया ? थोड़ा सूक्ष्म अवश्य पड़ गया। बहुत बोल आ गये।

गाथा-३८

आगे इसी अर्थ को अन्य प्रकार से कहते हैं –

तच्चरुई सम्मत्तं तच्चग्गहणं च हवइ सण्णाणं।
चारित्तं परिहारो परूवियं जिणवरिंदेहिं।।३८।।

तत्त्वरुचिः सम्यक्त्वं तत्त्वग्रहणं च भवति संज्ञानम्।
चारित्रं परिहारः प्रजल्पितं जिनवरेन्द्रैः।।३८।।

है तत्त्व-रुचि सम्यक्त्व सम्यग्ज्ञान तत्त्व-ग्रहण कहा।
परिहार है चारित्र ऐसा जिनवरेन्द्रों ने कहा।।३८।।

अर्थ – तत्त्वरुचि सम्यक्त्व है, तत्त्व का ग्रहण सम्यग्ज्ञान है, परिहार चारित्र है, इस प्रकार जिनवरेन्द्र तीर्थंकर सर्वज्ञदेव ने कहा है।

भावार्थ – जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष – इन तत्त्वों का श्रद्धान रुचि प्रतीति सम्यग्दर्शन है, इन ही को जानना सम्यग्ज्ञान है और परद्रव्य के परिहारसंबंधी क्रिया की निवृत्ति चारित्र है, इस प्रकार जिनेश्वरदेव ने कहा है, इनको निश्चय व्यवहारनय से आगम के अनुसार साधना।।३८।।

गाथा-३८ पर प्रवचन

अब ३८। शान्ति से, धीरज से, पक्ष छोड़कर सत्य क्या है, यह समझना चाहे तो सब बात समझ में आये ऐसी है। न समझ में आये ऐसी कोई बात है नहीं। **इसी अर्थ को अन्य प्रकार से कहते हैं** :- देखो!

तच्चरुई सम्मत्तं तच्चग्गहणं च हवइ सण्णाणं।
चारित्तं परिहारो परूवियं जिणवरिंदेहिं।।३८।।

जिनवर ने कहा है, देखो!

अर्थ :- तत्त्वरुचि सम्यक्त्व है,... सच्ची तत्त्व की श्रद्धा की बात है, हों! तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शन, उसे यहाँ वर्णन करते हैं। है निश्चय समकित। समझ में आया? उमास्वामी ने यह कहा न? तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्, वह निश्चय समकित है। उसे यहाँ लिया है। **तत्त्वरुचि सम्यक्त्व है,...** नीचे कहेंगे कि **इनको निश्चय-व्यवहारनय से आगम के अनुसार साधना**। अन्तिम शब्द कहेंगे भावार्थ में।

तत्त्व का ग्रहण सम्यग्ज्ञान है,... ग्रहण का अर्थ जानना। सातों तत्त्व जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष, ऐसा **तत्त्व का ग्रहण सम्यग्ज्ञान है,...** समझ में आया? कहते हैं न शब्द में इसमें? भावार्थ में। जीव, अजीव, आस्रव, फिर बन्ध है, संवर, निर्जरा वापस बन्ध है। कदाचित् डाला है। यह आस्रव के बाद का बन्ध निकाल डालना। क्योंकि वहाँ आस्रव के बाद तो अपने संवर आया है न? संवर-निर्जरा आया है न? पश्चात् बन्ध, पश्चात् मोक्ष ऐसा आया है न? समयसार में। यह शैली ली है। दो जगह बन्ध है न, इसलिए खोटा है। ऐसा।

मुमुक्षु : दूसरा बन्ध निकाल दिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पहला बन्ध निकाल डालना। समयसार के हिसाब से। तत्त्वार्थसूत्र...

कहते हैं, तत्त्व का ज्ञान, वह सम्यक्। ग्रहण शब्द से ज्ञान। देखो! ग्रहण शब्द आया है यहाँ। जैसे सात तत्त्व भगवान ने कहे, उन्हें उस रीति से श्रद्धना, वह सम्यग्दर्शन है और उस तत्त्व का उस प्रकार से ज्ञान करना, वह सम्यग्ज्ञान है और परिहार, वह चारित्र। उसने अर्थ में किया है पाप का परिहार, वह चारित्र। परन्तु यहाँ तो पुण्य-पाप का पहले से सबमें चला आता है।

मुमुक्षु : पुण्य-पाप दोनों पाप ही हैं न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उन्हें ऐसा नहीं कहना। पुण्य-पाप चले आते हैं पहले से। पहले कहा न पुण्य-पाप छोड़कर। ३७ गाथा में ही कहा। '**परिहारो पुण्णपावाणं**।' पुण्य और पाप दोनों विकल्प छूटे, तब चारित्र होता है। आहाहा! लोगों को मानो बड़ा मेरु उठाना हो, ऐसा लगता है। वस्तु का उसे स्वयं को अभ्यास नहीं होता और वास्तविक तत्त्व सर्वज्ञ

ने कहा वह क्या है, उसका ज्ञान नहीं होता, इसलिए फिर गड़बड़-गड़बड़ हुए बिना रहती नहीं। और पहला सम्यग्दर्शन है, उसकी तो खबर नहीं होती और उसके बिना व्रत, तप और सब करे, तो यह उलझन खड़ी होती है सब। समझ में आया? मार्ग ऐसा है। कहेंगे, स्पष्टीकरण करेंगे।

और, **परिहार...** पुण्य और पाप का परिहार। शुभ-अशुभराग का त्याग, इसका नाम चारित्र। पाँच महाव्रत के विकल्प तो राग है, वह चारित्र नहीं। ऐई! प्रकाशदासजी! है इसमें? पुण्य-पाप के विकल्प का त्याग। महाव्रत का विकल्प, वह राग पुण्य है। अव्रत का भाव, वह पाप है। दोनों विकल्प का अभाव, वह चारित्र है। समझ में आया? **इस प्रकार जिनवरेन्द्र तीर्थंकर सर्वज्ञदेव ने कहा है।** लो! '**जिणवरिंदेहिं परूवियं**' '**प्रजल्पितं**' भगवान की वाणी में ऐसा आया है, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, लो! '**जिणवरिंदेहिं**' गणधर के भी इन्द्र ऐसे वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा, जिन्हें वीतरागता, रागरहित अकेली परिणमित हुई है। ऐसे जिनवर ने वाणी द्वारा ऐसा कहा है। क्या करे? वाणी द्वारा भगवान ने कहा, और वापस भगवान कर्ता वाणी के हो गये! देखो! कहा है न? भगवान ने कहा है या नहीं?

मुमुक्षु : दूसरा कौन कहे?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! कौन कहे? यह तो यहाँ निमित्त से कथन है। वाणी, वाणी को कहे। आत्मा वाणी करे?

मुमुक्षु : उसमें ही आया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो प्रजल्पितं-भगवान बोले हैं, यह तो निमित्त से कथन है। उसमें बोलने में निमित्त किसका था, यह बताने को ऐसी भाषा आती है। विवाद करे, वाद-विवाद करे तो पार पड़े, ऐसा नहीं है। वास्तविक रीति से भगवान ने वाणी की है। परन्तु वाणी तेरी जड़, जड़ की वाणी आत्मा करे? उपदेश आत्मा दे? उपदेश की क्रिया तो जड़ की है? परन्तु उपदेश में निमित्तरूप से कौन था, उसका ज्ञान कराने के लिये यह भाषा कही गयी है। दूसरा क्या हो?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्यत्र कहीं है ही नहीं। दिगम्बर शास्त्र अर्थात् अनादि सनातन शास्त्र। वीतराग का केवली का कहा हुआ मार्ग वह कोई सम्प्रदाय नहीं है। दिगम्बर, वह कोई सम्प्रदाय पक्ष नहीं है। अनादि सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा ने कहा हुआ, देखा हुआ, जाना हुआ मार्ग है। समझ में आया? ऐसी बात स्पष्ट इसके अतिरिक्त अन्यत्र नहीं हो सकती। पक्ष की बात नहीं है। वस्तु का स्वरूप यह है। आहाहा!

इस प्रकार जिनवरेन्द्र तीर्थंकर सर्वज्ञदेव ने कहा है। सर्वज्ञदेव ने कहा है। ऐसा हिन्दी में तो ऐसा ही आवे न! सर्वज्ञदेव ने कहा है, ऐसा।

भावार्थ :- जीव, अजीव, आस्त्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन तत्त्वों का श्रद्धान रुचि प्रतीति सम्यग्दर्शन है,... लो! अभेद की दृष्टि वह सम्यग्दर्शन, नव तत्त्व के भेद की दृष्टि, वह व्यवहार सम्यग्दर्शन। ऐसा निश्चय-व्यवहार समझ लेना। नीचे अन्त में इसका अर्थ करेंगे। और **श्रद्धान रुचि प्रतीति...** ऐसे तीनों लिये हैं न? सम्यग्दर्शन। निश्चय स्वभाव ज्ञायकभाव की दृष्टि हुई, वहाँ जीव-अजीव आदि पर्यायें उसमें नहीं, ऐसा ज्ञान साथ में होता है, इसलिए सातों का ज्ञान और सातों की श्रद्धा निर्विकल्परूप से हुई, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन कहा जाता है।

इन्हीं का जानना सम्यग्ज्ञान है... सात तत्त्व का अभेदरूप से जो ज्ञान करना, उसका नाम सम्यग्ज्ञान। और सात तत्त्व का भेदरूप ज्ञान करना, वह व्यवहार सम्यग्ज्ञान। कहो, समझ में आया? **और परद्रव्य के परिहार सम्बन्धी क्रिया की निवृत्ति चारित्र है;...** परद्रव्य के लक्ष्य से जितने विकल्प उठें—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, वे सब विकल्प राग। उनकी क्रिया से निवृत्ति। बाह्य-अभ्यन्तर क्रिया का निरोध। आता है? वहाँ चारित्र की व्याख्या में आता है। प्रवेशिका—जैन सिद्धान्त प्रवेशिका, बाह्य-अभ्यन्तर क्रिया का निरोध, वह चारित्र। जड़ की क्रिया नहीं और अभ्यन्तर में विकल्प नहीं। उनसे रहित आत्मा का वीतरागी परिणमन, उसे भगवान ने निश्चयचारित्र कहा है। उसकी भूमिका में पंच महाव्रत के जो विकल्प होते हैं, उन्हें व्यवहार कहा जाता है। ऐसा हो उसे। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय नहीं, उसके पंच महाव्रत तो उसे व्यवहारचारित्र भी नहीं कहे जाते। व्यवहाराभास है। समझ में आया?

मुमुक्षु : व्यवहार प्रमाण हो तो व्यवहाराभास कहा जाता है या व्यवहार से विरुद्ध हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से विरुद्ध किसका हो? निश्चय दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो, उसके योग्य पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प हों, उसे व्यवहार से व्यवहार होवे तो उसे व्यवहार कहा जाता है। आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं और वहाँ पंच महाव्रत हैं, उसे व्यवहार नहीं कहा जाता। वह व्यवहाराभास है परन्तु यह दूसरे जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना के गृहीत मिथ्यादृष्टि के महाव्रत आदि तो व्यवहाराभास भी नहीं है।

मुमुक्षु : क्रियाकाण्ड का लोप हो जाएगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रियाकाण्ड थे कब? लोप ही हो गया है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : निरोध, विकल्प का निरोध। राग है, विकल्प आस्रव है, पंच महाव्रत आस्रव है, उसका निरोध। स्व के आश्रय से निरोध होना, वह चारित्र है। आहाहा! समझ में आया? एक भी बात की खबर न हो और फिर आचार्य, साधु नाम धरावे और बात चले तब ऐई! इसका ऐसा होता है। परन्तु बापू! यह तो वस्तु का स्वरूप कहा जाता है, भाई! तेरे परिणाम का जवाबदार तू है। यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है। उसमें दूसरा क्या हो?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी है। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। समझ में आया?

इन्हीं को जानना सम्यग्ज्ञान है और परद्रव्य के परिहार सम्बन्धी क्रिया की निवृत्ति चारित्र है; इस प्रकार जिनेश्वरदेव ने कहा है,... जिनवरदेव परमात्मा वीतराग देव ने ऐसा कहा है। ऐसा तो कुन्दकुन्दाचार्य वीतरागदेव का आश्रय लेकर बात करते हैं। देखो! भगवान ने ऐसा कहा है, भाई! वीतरागदेव ऐसा कहते हैं। आहाहा! **इनको निश्चय-व्यवहारनय से आगम के अनुसार साधना।** स्वभाव के आश्रय से जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र (हुए), वे सच्चे ज्ञान-दर्शन और पर के लक्ष्य से जितना व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान हो, वह व्यवहार, पुण्यबन्ध का कारण। ऐसा इसे जानना चाहिए। अकेला निश्चय न हो और व्यवहार हो, ऐसा नहीं हो सकता। जहाँ निश्चय आत्मा का भान-अनुभव है, दर्शन है, चारित्र है, वहाँ व्यवहार विकल्प हो, उसे व्यवहार कहा जाता है। इतनी बात है।

गाथा-३९

आगे सम्यग्दर्शन को प्रधान कर कहते हैं –

दंसणसुद्धो सुद्धो दंसणसुद्धो लहेइ णिव्वाणं।
दंसणविहीणपुरिसो ण लहइ तं इच्छिय लाहं।।३९।।

दर्शनशुद्धः शुद्धः दर्शनशुद्धः लभते निर्वाणम्।
दर्शनविहीनपुरुषः न लभते तं इष्टं लाभम्।।३९।।

वह शुद्ध दर्शन शुद्ध जो हो मोक्ष दर्शन शुद्ध को।
दर्शन विहीन पुरुष नहीं पाता है इच्छित लाभ को।।३९।।

अर्थ – जो पुरुष दर्शन से शुद्ध है, वह ही शुद्ध है, क्योंकि जिसका दर्शन शुद्ध है, वही निर्वाण को पाता है जो पुरुष सम्यग्दर्शन से रहित है, वह पुरुष ईप्सित लाभ अर्थात् मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता है।

भावार्थ – लोक में प्रसिद्ध है कि कोई पुरुष कोई वस्तु चाहे और उसकी रुचि प्रतीति श्रद्धा न हो तो उसकी प्राप्ति नहीं होती है, इसलिए सम्यग्दर्शन ही निर्वाण की प्राप्ति में प्रधान है।।३९।।

गाथा-३९ पर प्रवचन

आगे सम्यग्दर्शन को प्रधान कर कहते हैं :- सम्यग्दर्शन मूल चीज़ है, इसके बिना सब बिना एक के शून्य कोरे कागज हैं। यह अपने चौका है।

दंसणसुद्धो सुद्धो दंसणसुद्धो लहेइ णिव्वाणं।
दंसणविहीणपुरिसो ण लहइ तं इच्छिय लाहं।।३९।।

कहते हैं कि इच्छा करे बड़ी-बड़ी मोक्ष की, संवर की, निर्जरा की – उससे क्या? सम्यग्दर्शन बिना इसे कुछ भी लाभ नहीं होता।

अर्थ :- जो पुरुष दर्शन से शुद्ध है, वह ही शुद्ध है,... वस्तु परमात्मा, निज परमात्म द्रव्य के अन्तर में सन्मुख होकर दृष्टि निश्चय प्रगट होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है और सम्यग्दर्शन से शुद्ध चीज़ को शुद्ध कहने में... देखो विशिष्टता! कहा न उसमें? छठी गाथा में। पर का लक्ष्य छोड़कर चैतन्य की सेवा करे, उसे शुद्ध कहा जाता है। वह द्रव्य, हों! आहाहा! तब शुद्ध कहा जाता है। दृष्टि में आया नहीं, ज्ञेय बना नहीं और शुद्ध कहाँ से लाया? कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ दर्शन के ऊपर जोर देना है। **जो पुरुष दर्शन से शुद्ध है, वह ही शुद्ध है,...** वह शुद्ध है। द्रव्य में तो शुद्ध है परन्तु दर्शन से शुद्ध, वही पवित्र शुद्ध है। पर्याय में भी वही पवित्र और शुद्ध है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भारी सूक्ष्म! साधारण लोगों को मस्तिष्क में बोझा पड़े। बोझा ऐसा नहीं, यह तो हल्का हो, ऐसी बात है। हें! वस्तु की दरकार नहीं करे (तो क्या हो?) महाप्रभु चैतन्य चमत्कारी पदार्थ, जिसके चमत्कार की बातें दुनिया में वाणी में न कही जाए, ऐसी चीज़ है, कहते हैं। ऐसा भगवान आत्मा, उसकी अन्तर्मुख की दृष्टि शुद्ध सम्यग्दर्शन, वही शुद्ध और पवित्र है। आहाहा! रत्नकरण्ड श्रावकाचार में नहीं आया? चाण्डाल। मातंगदेव भस्म से जैसे अग्नि ढँकी हुई हो, वह अग्नि है। इसी प्रकार चाण्डाल का शरीर हो, नीच कुल में अवतार हो, काला-कुबड़ा शरीर हो, कण्ठ बैठ गया हो, नाक ... हो, कान टूटे हुए हों, आँख में फूला पड़ा हो... आहाहा! परन्तु कहते हैं कि उस चाण्डाल को भी सम्यग्दर्शन है तो गणधरदेव उसे देव कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? है न यह श्लोक?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। यहाँ डाला है यह। संस्कृत टीका में है। दंसण सुद्धो सुद्धो। इसमें क्यों नहीं? उसमें है। होना तो चाहिए। दंसण शुद्धो। हाँ है। 'सम्यग्दर्शन में शुद्ध चण्डाल को भी गणधरादिदेव भस्म के भीतर छिपे अंगारे के समान अभ्यन्तर तेज से युक्त देव कहते हैं।' **सम्यग्दर्शन से शुद्ध चण्डाल... 'दंसणसुद्धो सुद्धो दंसणसुद्धो लहेइ णिव्वाणं।'** चण्डाल का शरीर हो। गणधरादिदेव... उसे गणधरदेव 'भस्म के भीतर छीपे अंगारे के समान अभ्यन्तर तेज से युक्त देव कहते हैं।' अकेले सम्यग्दर्शन के माहात्म्य की

बात है। आहाहा! सम्यग्दर्शन, वह कुछ नहीं। चारित्र आवे तो सम्यग्दर्शन कहलावे। तो इसका फल (आवे)। अब सुन न!

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्षमार्ग है वह। सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। कहा न? देवा देवं। ऐसे देवा शब्द है न? देवा अर्थात् गणधरदेव। देवं। ... देव गणधरदेव उसे-सम्यग्दृष्टि को, चण्डाल हो परन्तु निर्विकल्प सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ है... आहाहा! उसे गणधरदेव देव कहते हैं। और फिर आती है न गाथा दूसरी उसमें? अष्टपाहुड़ की गाथा में टीका में रत्नकरण्ड श्रावकाचार की गाथा-टीका है। रत्नकरण्ड श्रावकाचार का आधार दिया है। दूसरा आया है न उसमें? गृहस्थ... समकित दृष्टि हो तो गृहस्थाश्रम में भी मोक्षमार्ग है। परन्तु मिथ्यादृष्टि राग को धर्म माने और पुण्य की क्रिया को धर्म माने, वह अणगार भी मिथ्यादृष्टि संसारी है। समझ में आया? आहाहा!

यह यहाँ आचार्य कहते हैं, '**दंसणसुद्धो सुद्धो' जो पुरुष दर्शन से शुद्ध है, वह ही शुद्ध है, क्योंकि जिसका दर्शन शुद्ध है, वही निर्वाण को पाता है...** सम्यग्दर्शन शुद्धवाला, दूज होगी है, वह पूर्णिमा हुए बिना नहीं रहेगी। आहाहा! समझ में आया? **जो पुरुष सम्यग्दर्शन से रहित है, वह पुरुष ईप्सित लाभ अर्थात् मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता है।** उसकी भावना कि हमारे तो मोक्ष करना है। इस भाव से मोक्ष करना है। परन्तु अभी सम्यग्दर्शन के भान बिना मोक्ष कहाँ से होगा? संवर, निर्जरा, जहाँ हुई नहीं। हम तो मोक्ष की अभिलाषा रखते हैं कि इस महाव्रत का फल हम मोक्ष चाहते हैं। समझ में आया? परन्तु मिथ्यादृष्टि, तुझे सम्यग्दर्शन नहीं और तेरी अभिलाषा कहाँ से प्राप्त होगी? हम तो महाव्रत पालते हैं, अणुव्रत पालते हैं तो उसमें से हमारे मोक्ष ही चाहिए है। ऐसी अभिलाषा रखनेवाले मिथ्यादृष्टि को भी मोक्ष नहीं मिलेगा। लाभ नहीं मिलेगा, विचारा हुआ लाभ नहीं मिलेगा। कुछ का कुछ होगा। भूतड़ा-बूतड़ा देव होगा। ऐई! प्रकाशदासजी! आहाहा! चैतन्य भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ पूर्ण ब्रह्म परमात्मा स्वयं, उसकी अन्दर निर्विकल्प दृष्टि हुई नहीं और इच्छित लाभ किसी प्रकार का संवर, निर्जरा और मोक्ष मिलता नहीं। विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-७७, गाथा-३९ से ४१, मंगलवार, भाद्रशुक्ल १, दिनांक ०१-०८-१९७०

यह मोक्षपाहुड़, इसकी ३९वीं गाथा। अपने यहाँ स्वाध्याय मन्दिर में चकला है। '**दंसणसुद्धो सुद्धो**' क्या कहते हैं? जो पुरुष दर्शन से शुद्ध है, वह शुद्ध है। जिसे सम्यग्दर्शन ही नहीं, उसके ज्ञान और बाहर की सभी क्रियायें निरर्थक हैं। उसका नग्नपना, उसके अट्ठाईस मूलगुण सम्यग्दर्शन बिना सब निरर्थक हैं। ऐसी शुद्धता उसे होती नहीं। **जो पुरुष दर्शन से शुद्ध है...** आत्मा परिपूर्ण अखण्ड निर्विकल्प प्रतीति का अन्दर अनुभव में हो, वह सम्यग्दर्शन, उससे ही आत्मा शुद्ध कहा जाता है। समझ में आया?

जिसका दर्शन शुद्ध है, वही निर्वाण को पाता है... जिसका सम्यग्दर्शन शुद्ध है, परिपूर्ण आत्मा सम्यग्दर्शन में-प्रतीति में लिया है, वह शुद्ध है और उस शुद्ध के कारण वह निर्वाण को प्राप्त करता है। समझ में आया? **और...** अर्थात् वळी अर्थात् **जो पुरुष सम्यग्दर्शन से रहित है...** जिसे आत्मा निर्विकल्प शुद्ध प्रतीति में अनुभव में आया नहीं और बाह्य क्रियायें लाख, करोड़, अरब, नग्नमुनि और अट्ठाईस मूलगुण पाले तो उसे कुछ भी **इच्छित लाभ...** इच्छित लाभ **मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता है**। हमारे तो मोक्ष ही चाहिए। परन्तु मोक्ष के भान बिना? यह सम्यग्दर्शन जैनदर्शन का एकड़ा है।

अभी सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में हो, वह त्यागी हो सम्यग्दर्शन के भानसहित, तो भी उस सम्यग्दर्शन से ही शुद्धि है। दूसरा पंच महाव्रत आदि अट्ठाईस मूलगुण विकल्प से उसकी शुद्धि नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **जो पुरुष सम्यग्दर्शन से रहित है, वह पुरुष ईच्छित लाभ...** अभिलाषित लाभ **मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता है**। संसार में भटकेगा। द्रव्यलिंग मुनिव्रत धारे... 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान...' अर्थात् सम्यग्दर्शन बिना आत्मा के आनन्द का स्वाद नहीं आया तो उसे पर का स्वाद छूटा नहीं। राग का भोग अन्दर विकल्प का... समझ में आया? विकल्प जो राग है, मन्दराग वह भी मेरा है, ऐसा जो अभिप्राय, उसमें अकेला दुःख का वेदन है। चाहे तो अट्ठाईस मूलगुण पालन करे, नग्नरूप से रहे, हजारों रानियाँ छोड़कर जंगल में रहे परन्तु वह राग की क्रिया और देह की क्रिया मेरी है और राग के विकल्प से मुझे लाभ होगा, ऐसा जहाँ दृष्टि में मिथ्यात्वभाव में राग का ही अनुभव है, वह दुःख का

अनुभव है। समझ में आया? चाहे तो पंच महाव्रत के परिणाम पाले, परन्तु वह दु:ख का अनुभव है, दु:ख है। क्योंकि वृत्ति का उत्थान है कि इसकी दया पालूँ, दूसरे को न मारूँ, ब्रह्मचर्य (पालन करूँ), वह सब वृत्ति का उत्थान है। वह वृत्ति, वह कषाय अग्नि है। समझ में आया? कठिन मार्ग, भाई! यह जैनदर्शन का अलग मार्ग है। दर्शनशुद्धि, वह शुद्धि। है न अपने यहाँ? स्वाध्यायमन्दिर में है? एक चौका है। ऐई! सेठ! है देखा चकला? बड़ा चकला है। आहाहा!

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जो आत्मा कहा, वह आत्मा दया, दान, पूजा, भक्ति के विकल्प से रहित है और अनन्त आनन्द और ज्ञान की शान्ति से सहित है। ऐसे आत्मा की अनुभूति होना, ऐसे आत्मा का अनुभव होना, उस ज्ञानस्वभाव की अनुभूति होना, उसे आत्मा की अनुभूति कहो। उसमें जो प्रतीति-सम्यग्दर्शन वर्तता है, वही शुद्धता के कारण से शुद्ध है। अमरचन्दभाई! आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शनरहित चाहे तो जैन साधु दिगम्बर होओ, श्रावक होओ, अनेक प्रकार के बारह व्रत और अट्ठाईस मूलगुण पालन करे परन्तु उसे मोक्ष नहीं मिलता। चार गति भटकने की मिलेगी। समझ में आया?

मुमुक्षु : संथारा करे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। संथारा करे तो मर जायेगा, चार गति में भटकेगा। संथारा किसे कहना? जिसे राग की क्रिया के विकल्प से आत्मा भिन्न है, ऐसा भान नहीं, वह संथारा दो-दो महीने का करे। उसमें किया है।... सब चल निकले थे फिर। संथारा किया था। खबर है? क्षमापना सब। क्या हुआ परन्तु संथारा? संथारा समझे? सल्लेखना मरण। कुछ भान नहीं होता और आहार-पानी छोड़कर... ऐसा तो अनन्त बार किया है। नौवें ग्रैवेयक में गया, तब दो-दो महीने सल्लेखना, चार-चार दिन तक आहार नहीं, पानी की बूँद नहीं और शुक्ललेश्या। ऐसी क्रिया अनन्त बार की परन्तु सम्यग्दर्शन बिना यह चार गति में भटकने के लिये हुई। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तुमको ठिकाना नहीं, इसीलिए दूसरे का तुमको ठीक लगता है। ऐसा यहाँ कहते हैं। अन्दर मिथ्यात्व का आदर है और समकित का त्याग है। सेठ!

समकित का त्याग है वहाँ। राग का त्याग करूँ और इसका त्याग करूँ, ऐसी दृष्टि है, वहाँ मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? पर का त्याग करूँ और अमुक को ग्रहण करूँ, शुभराग को ग्रहण करूँ और अशुभराग को छोड़ूँ, यह सामग्री प्रतिकूल, उसको छोड़ूँ और अनुकूल ऐसे अपवास आदि करूँ, यह सब भाव मिथ्यात्वभाव है। क्योंकि इस विकल्प की क्रिया को स्वयं धर्मक्रिया मानता है। कहो, सेठ! क्या है? स्वयं यह छोड़ सके नहीं। इसकी अपेक्षा कुछ छोड़कर बैठे वे तो अच्छे होंगे न कुछ? ऐसा कहते हैं। ऐई! शोभालालजी! आहाहा! भाई! भगवान का यह महा वाक्य है।

देखो! **भावार्थ :- लोक में प्रसिद्ध है कि कोई पुरुष कोई वस्तु चाहे और उसकी रुचि प्रतीति श्रद्धा न हो तो उसकी प्राप्ति नहीं होती है,...** इच्छा करे, क्या काम आवे? जो वस्तु चाहिए है, उसकी रुचि, श्रद्धा ज्ञान तो नहीं। **इसलिए सम्यग्दर्शन ही निर्वाण की प्राप्ति में प्रधान है।** देखो! समझ में आया? सम्यग्दर्शन के बाद चारित्र तो अलौकिक बात है। समझ में आया? परन्तु पहले सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं होता। जो वस्तु मुक्त है, उस पूर्ण स्वभाव से प्राप्ति और राग से मुक्त है। ऐसा जो मुक्तस्वरूप आत्मा है। राग के विकल्प से मुक्तस्वरूप आत्मा है। ऐसे परमानन्दरूपी मुक्ति की प्रतीति, रुचि नहीं तो उसे मुक्ति का मार्ग मिला नहीं तो मुक्ति नहीं होती।

कोई पुरुष कोई वस्तु चाहे और उसकी रुचि प्रतीति श्रद्धा न हो... मोक्ष तो अकेला ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव, उसका नाम मोक्ष है। मोक्ष अर्थात् कि राग और विकल्प बिना की चीज़, ऐसे आत्मा की जहाँ प्रतीति, रुचि और श्रद्धा नहीं, उसे धर्म नहीं होता और उसे मोक्ष नहीं मिलता। समझ में आया? कहा नहीं था कल? चण्डाल, सम्यग्दृष्टि चण्डाल... आया था न उसमें?

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मातंग देहजम् देवा देवं, गणधर भी उसे देव कहते हैं। चण्डाल। एकदम काला शरीर, नाक छोटी, कुँवारा हो, स्त्री हो तो सन्तानरहित हो, कुछ नहीं हो परन्तु यदि सम्यग्दर्शन हो... भगवान आत्मा... आहाहा! जिसे अनुभव में आत्मा आया, वह अनुभव में आत्मा आया, उसे बाकी क्या रहा? एक चारित्र की स्थिरता बाकी।

परन्तु उसे चारित्र आने का और मुक्ति होने की है। आहाहा! समझ में आया? ...भाई! सम्यग्दर्शन बिना सब थोथा है, ऐकड़ा बिना के शून्य। संसार फलेगा और निगोद में जाएगा। भारी कठिन, भाई!

इसलिए सम्यग्दर्शन ही... ऐसा है न? जैनदर्शन में वीतरागमार्ग में सम्यग्दर्शन ही मुक्ति की प्राप्ति में मुख्य है। प्रधान, प्रधान अर्थात् मुख्य है। प्रधान अर्थात्? वह राजा और प्रधान, ऐसा नहीं। प्रधान अर्थात् यहाँ मुख्य है। जैन वस्तु में आत्मा जिसे आत्मा परमानन्दस्वरूप प्रभु... समझ में आया? अकेला आत्मा। एक समय की पर्याय की रुचि छोड़कर। आहाहा! समझ में आया? त्रिकाल ज्ञायकभाव। भले यहाँ तत्त्वार्थश्रद्धान कहेंगे आगे। उमास्वामी की शैली है न ... तो उसमें यह आ जाता है। त्रिकाल भगवान आत्मा ध्रुव का ध्येय करके जो सम्यग्दर्शन होता है, उसमें उसकी सात पर्यायें उसमें नहीं, ऐसा उसमें ज्ञान आ जाता है। यह अस्ति-नास्ति की श्रद्धा वहाँ हो जाती है। समझ में आया? गजब बातें। भाई! अब ४० (वीं गाथा में) कहेंगे।

गाथा-४०

आगे कहते हैं कि ऐसे सम्यग्दर्शन को ग्रहण करने का उपदेश सार है, उसको जो मानता है, वह सम्यक्त्व है –

इय उवएसं सारं जरमरणहरं खु मण्णए जं तु।
तं सम्मत्तं भणियं सवणाणं सावयाणं पि।।४०।।

इति उपदेशं सारं जरामरणहरं स्फुटं मन्यते यत्तु।
तत् सम्यक्त्वं भणितं श्रमणानां श्रावकाणामपि।।४०।।

उपदेश का यह सार जर-मृत्यु-हरण जो मानता।
वह श्रमण श्रावक सभी का ही मानना समकित कहा।।४०।।

अर्थ – **इस प्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का उपदेश सार है, जो जरा व मरण**

को हरनेवाला है, इसको जो मानता है, श्रद्धान करता है, वह ही सम्यक्त्व कहा है। वह मुनियों को तथा श्रावकों को सभी को कहा है, इसलिए सम्यक्त्वपूर्वक ज्ञान चारित्र को अंगीकार करो।

भावार्थ **– जीव के जितने भाव हैं, उनमें सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र सार है, उत्तम हैं, जीव के हित हैं और इनमें भी सम्यग्दर्शन प्रधान है, क्योंकि इसके बिना ज्ञान, चारित्र भी मिथ्या कहलाते हैं, इसलिए सम्यग्दर्शन को प्रधान जानकर पहिले अंगीकार करना, यह उपदेश मुनि तथा श्रावक सभी को है।।४०।।**

गाथा-४० पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि ऐसा सम्यग्दर्शन को ग्रहण करने का उपदेश सार है,... यह उपदेश सार है देखो, भाई! वे कहे कि सम्यग्दर्शन... परन्तु सम्यग्दर्शन का उपदेश ही सार है। आहाहा! इसके बिना चारित्र और व्रत, नियम और उपदेश देना, वह सब असार है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : अन्तर्दृष्टि....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर्दृष्टि वस्तु क्या है, उसकी प्रतीति और अनुभव बिना क्या? आहाहा! देखो न, क्या कहते हैं? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, देखो! **उसको जो मानता है, वह सम्यक्त्व है।** देखो!

इय उवएसं सारं जरमरणहरं खु मण्णए जं तु।
तं सम्मत्तं भणियं सवणाणं सावयाणं पि।।४०।।

यह कुन्दकुन्दाचार्य का वचन! सम्यग्दर्शन का उपदेश इस जगत में मुख्य और सार है। वह जरा-मरण को हरनेवाला है। वह सम्यग्दर्शन। ऐसा जो कोई मानता है... आहाहा! समझ में आया? उसे समकित कहा वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने (कहा)। किसे? श्रमण और श्रावक को दोनों को। श्रमण हो या श्रावक हो। ऐसा जिसे सम्यग्दर्शन हो, वह उपदेश में और भाव में सार वस्तु है। देखो! श्रावक का नाम आया है अन्दर। आहाहा!

अर्थ - इस प्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का उपदेश सार है,... ऐसा कि

सम्यग्दर्शनसहित ज्ञान-चारित्र का उपदेश, वह सार है। **जो जरा व मरण को हरनेवाला है,...** उसे जन्म-जरा-मरण रहेंगे नहीं। आहाहा! क्योंकि भगवान आत्मा विकल्प अर्थात् राग के भाव बिना की चीज़ अर्थात् भव और भव के भाव बिना की चीज़, उसका जहाँ भान हुआ, उसे भव नहीं हो सकते। समझ में आया? भगवान चैतन्य साहेब पूर्णानन्द का नाथ... आहाहा! कल्पबेली, कामकुम्भ, कल्पवृक्ष समान ऐसा भगवान आत्मा अत्यन्त वीतराग के भाव से भरपूर, उसमें से अंकुर फूटे तो वीतराग के फूटे। वहाँ कोई पुण्य-पाप के विकल्प फूटे, ऐसा भाव जीव को नहीं है।

मेंढ़क भी सम्यग्दृष्टि हो तो कहते हैं, अल्प काल में मुक्ति पायेगा। और मनुष्य होकर पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण जैन ने कहा हुआ व्यवहार, जिनवर ने ... व्यवहार कहा, उसे पाले तो उसे मुक्ति होगी नहीं। आहाहा! भारी कठिन काम।... कहते हैं, चारित्र बिना मुक्ति? परन्तु चारित्र बिना मुक्ति तीन काल में नहीं होगी। परन्तु कौन सा चारित्र? यह आत्मा का सम्यक् अनुभव होकर उसमें-आनन्द में लीन हो। अतीन्द्रिय आनन्द की उग्र स्वसंवेदन आनन्ददशा प्रगट हो, उसका नाम चारित्र है। चरना। किसमें चरना? यह पशु चारा चरते हैं या नहीं? उसी प्रकार आत्मा में आनन्द को चरे, अनुभव करे, उत्कृष्टरूप से आनन्द को अनुभव करे, चरे, उसे चारित्र कहते हैं। पण्डितजी! गजब! शरीर की क्रिया या राग की क्रिया वह हमारा चारित्र है। बापू! चारित्र की व्याख्या (तुझे खबर नहीं है)। सम्यग्दर्शन के पुरुषार्थ से चारित्र का पुरुषार्थ अनन्तगुणा ऊँचा है। परन्तु उसमें सम्यग्दर्शन न हो तो वह सब व्यर्थ है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह जैनदर्शन का ट्रेड मार्ग है। दंसण सुद्धो सुद्धो। क्योंकि आत्मा पवित्र और शुद्ध चैतन्यघन का अनुभव में प्रतीति, वह दंसण शुद्धि से शुद्ध होता है। क्योंकि शुद्ध स्वयं वस्तु शुद्ध है। ऐसे शुद्ध की श्रद्धा का अनुभव, वह सम्यग्दर्शन, वह शुद्ध है। पर्याय से शुद्ध है, ऐसा कहते हैं और उसे निर्वाण-मुक्ति नजदीक में है।

श्रेणिक राजा। राज छोड़ नहीं सके, भोग छोड़ नहीं सके। समझ में आया? परन्तु क्षायिक समकित प्रगट किया। पहले क्षयोपशम समकित हुआ, क्षायिक हुआ, तीर्थंकरगोत्र बाँधा। नरक की गति बँध गयी थी (तो) नरक में जाना पड़ा परन्तु वे वहाँ आनन्द में हैं

समकिती। आहाहा! वे नरकगति में नहीं। आहाहा! अमरचन्दभाई! वह तो आनन्द की दशा में हैं। परगति और राग में ज्ञानी है नहीं। आहाहा! गजब बात! समझ में आया?

इसको जो मानता है, श्रद्धान करता है, वह ही सम्यक्त्व कहा है। क्या कहते हैं? भगवान आत्मा पूर्ण पवित्र शुद्ध आनन्दघन... (धर्मदास क्षुल्लक का) स्वात्मानुभव मनन में यह लिया है। कल बात की थी न? सात तत्त्व में जीव एक तत्त्व और छह अजीव हैं। ऐई! जीव नहीं, रास्ते में कहा था। कहा था न? एक भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, वह जीव द्रव्य है। एक समय की पर्याय भी जीवद्रव्य नहीं। मोक्ष की पर्याय भी जीवद्रव्य नहीं। आहाहा! तदुपरान्त तो वहाँ तक उन्होंने कहा कि जीव और अजीव को सूर्य और अन्धकार की भाँति भिन्नता है। आहाहा! वस्तु जो है चैतन्य द्रव्य ज्ञायकभाव, उसमें वह पुण्य-पाप-आस्रव-बन्ध तो नहीं परन्तु संवर-निर्जरा-मोक्ष एक समय की पर्याय उसमें नहीं। आहाहा! उसे तो परद्रव्य कह दिया। ऐई!

अकेला चैतन्य आनन्द के झूले में चढ़ा हुआ प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द के झूले में... हिलोळा समझे? झूला। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ भगवान का अनुभव होकर प्रतीति हुई तो अतीन्द्रिय आनन्द के झूले में झूलता है, उसे दुःख नहीं है, उसे संसार नहीं है, उसे व्यवहार नहीं है। धर्म का व्यवहार, हों! लौकिक व्यवहार की बात भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, ऐसा जो अन्दर आत्मा पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... प्रभु को जन्म-जरा-मरण का हरनेवाला माने और ऐसी श्रद्धा करे, ऐसा अनुभव करे, चह निश्चित निर्वाण को प्राप्त करेगा और उसे समकित कहा गया है। यह तो कहे, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, (वह) समकित। ऐई! प्रकाशदासजी! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करो, तुम्हारे समकित है। अब पंच महाव्रत ले लो तो चारित्र हो जाए। अरे रे! कुकर्म किये है न! जैनमार्ग में पूरा तत्त्व क्या है, वह पड़ा रहा। वर बिना की बारात (जोड़ दी)। समझ में आया?

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या लिया है? अज्ञान लिया। क्या लिया है? लिया क्या? अज्ञान लिया है। आहाहा! समझ में आया? लेना कहाँ है और छोड़ना कहाँ है? जो है, उसमें रहना

है। आहाहा! सेठ! सूक्ष्म बात है। पूर्ण वस्तु जहाँ पड़ी है, उसमें लेना कहाँ है और छोड़ना कहाँ है, और छोड़ना कहाँ है? आहाहा! ऐसे पूर्ण स्वभाव का अनुभव और उसमें प्रतीति होना, कहते हैं कि ऐसा जो माने कि इससे जन्म-मरण नष्ट होगा। ऐसा माननेवाला समकिती है।

वह मुनियों को तथा श्रावकों को सभी को कहा है... देखो! श्रावक नाम धरानेवाले हों या मुनि नाम धरानेवाले हों। सबके लिये यह समकित की बात पहली की है। समझ में आया? मूल बात रह गयी। ऊपर के डालियाँ और पत्ते तोड़ने लगे। मूल सुरक्षित उनका। वृक्ष की डालियाँ-पत्ते समझे न? पत्ते। जड़ सुरक्षित तो महीने में वापस उग जायेंगे, पल्लवित हो जायेंगे। जिसका मूल छेदा, उसके पत्ते पन्द्रह दिन में सूख जायेंगे। इसी प्रकार जिसने आत्मा पूर्णानन्द का नाथ जिसने प्रतीति और अनुभव में लिया, उसने संसार को छेद डाला है। थोड़े काल राग-द्वेष रहेगा, उसे स्वरूप की स्थिरता द्वारा टाल देगा और परमात्मा हो जायेगा। आहाहा!

मुनियों को तथा श्रावकों को सभी को कहा है... भगवान ने। श्रावक के लिये दूसरा रास्ता हो पुण्य का, दया, दान और व्रत का। मुनि के लिये दूसरा, ऐसा है कुछ? आता है न प्रवचनसार में? श्रावक को... प्रश्न बहुत चलता है बाहर से। देखो! शुभभाव से परम्परा से उसे मोक्ष होता है। शुभभाव से मोक्ष होता है, वहाँ तो ऐसा लिया है। श्रावक को शुभभाव से ही मोक्ष होता है। ऐसा। इसका अर्थ क्या? शुभभाव से होता है अर्थात्? उसके अभाव से होता है, ऐसा। समझ में आया? क्या हो? लुटा है आत्मा को अनादि का। लुटा है और मानता है कि मुझे सम्पदा मिली है। कुछ बाहर से यह हुआ और वहाँ लुटाया है अन्दर श्रद्धा में तो। और मानता है कि मुझे कुछ लाभ हुआ। ऐसा जो अनादि से स्वयं अपने को ठगता आता है।

इसलिए सम्यक्त्वपूर्वक ज्ञान-चारित्र को अंगीकार करो। सम्यग्दर्शनपूर्वक सम्यग्ज्ञान और सम्यक्स्वरूप में रमणता अलौकिक है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को भी मुक्ति होगी परन्तु चारित्र प्राप्त होने के बाद होगी। चारित्र प्राप्त हुए बिना मुक्ति नहीं होगी। परन्तु चारित्र कौन सा? अन्तर के आनन्द में झूले, आनन्द की मौज में प्रचुर स्वसंवेदन।

समझ में आया ? आनन्द की लहर में चढ़ता, आनन्द का उफान (आवे)... क्या कहलाता है तुम्हारे समुद्र को ? ज्वार-ज्वार। ज्वार-बाढ़ कहते हैं न ? आवे। जाये उसकी बात नहीं। आवे। अन्दर से आनन्द का उफान (आवे)।

गन्ने का रस होता है न ? शेरडी-गन्ना। तृषा लगी हो, गर्मी का दिन हो। ११८ (डिग्री) धूप बाहर हो। समझ में आया ? भावनगर से यहाँ चमारडी है। छह कोस रास्ते में वृक्ष नहीं है, पानी नहीं है, कुछ नहीं है। हम चले हैं एक बार। वृक्ष नहीं, पानी नहीं। अकेला खार, भाई ! खारा। एक ओर धांधणी है धांधणी। दूर रह जाए, दूर। बहुत खारा। समुद्र दूर। वृक्ष नहीं, पत्ता नहीं। एक साधु निकला था तो मर गया उसमें। क्योंकि ऐसी तृषा लगी और गर्मी के दिन, वृक्ष की छाया नहीं। अकेली खारी जमीन। हम एक बार निकले थे। (संवत्) १९७७ के वर्ष की बात है। कमळेज से। भावनगर से कमळेज और कमळेज से चमारडी, छह कोस।... था न ? व्यक्ति जवान कमळेज का था। छह कोस, हों ! परन्तु तब तो जवान अवस्था न ? १९७७ की बात है। कितने वर्ष हुए ? ४९। ४९ वर्ष हुए। ३१ वर्ष की उम्र में। छह कोस तो चलें... ...

मुमुक्षु : रास्ता भूले नहीं हों।

पूज्य गुरुदेवश्री : रास्ता गाड़ा का था। भूलने का क्या ? रास्ता ही गाड़ा का था। कहीं दूसरा रास्ता ही नहीं न। वृक्ष-पत्ते नहीं मिलें कहीं। एक मन्दिरमार्गी साधु बेचारा निकला था। खबर नहीं उसे और रास्ते में तृषा (लगी)।... और मर गया। इसलिए क्या कहा ? आहाहा ! कहते हैं कि सम्यग्दर्शन बिना ऐसी सब उज्जड में जाकर चाहे जितने परीषह सहन करे, उसमें आत्मा में कुछ भी लाभ नहीं है। आहाहा ! देखो !

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सार हैं... देखो ! **जीव के जितने भाव हैं, उनमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सार हैं, उत्तम हैं, जीव के हित हैं,...** तीन बोल लिये। **और इनमें भी सम्यग्दर्शन प्रधान है...** तीन में भी सम्यग्दर्शन मुख्य है। आहाहा ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : गन्ने के रस का...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गन्ने के रस की है। ठीक याद किया। गन्ने का रस... वहाँ गन्ने का रस मिलता है, ऐसा मेरा कहना है। उसमें गन्ने का रस मिले तो आहाहा ! गटक-

गटक पीवे। घूंटडे समझते हो ? गटक-गटक। हमारी तो तब छोटी उम्र थी, इसलिए करते थे। सायंकालीन भोजन ही, वहाँ पालन करें। छह कोस के बाद। 'कमलेज' से निकले 'चमारडी'। बनिया का घर।... भाई का। पानी छह कोस बाद पीना। सूर्यास्त पूर्व भोजन पालने का बाद में हो। उसमें कोई... हो, ... जिसे तृषा लगी हो और ऐसे में उसे... आहाहा!

पालीताणा दरबार थे। मानसिंह, माधवसिंह के पिता। वहाँ ... जंगल में अगल-बगल में। मरने की तैयारी। रास्ते में... राजा। दो-तीन लाख के आसामी थे। उस समय दो-तीन लाख के। अभी ... मरने में खून सूखता है न ? गुड़ का पानी चाहिए, गुड़ मिले नहीं। आहाहा! रास्ते में ऐसा हो गया। नहीं देते अन्त में गुड़ का पानी ? फिर खोजते-खोजते एक पडियो था। ... रहता था। वह तम्बाकू पीता था। उस तम्बाकू का गुड़ था थोड़ा। तम्बाकू का गुड़। उससे कहा, लाओ भाई! दरबार को चाहिए है। तम्बाकू में चमड़े में रखे न वह ? एक में तम्बाकू और एक में गुड़। चमड़े की कोथली हो। चमड़े की लम्बी कोथली होती है। बजरियो। एक में बजर भरी हो और एक में गुड़ भरा हो। देखा है न सब। वह बेचारा एक था और उसके पास थोड़ा गुड़ था। तम्बाकू में डालकर खाने का। तो वे जा चढ़े कि दरबार को अभी ... है। थोड़ा गुड़ दो। गुड़ दिया और पानी दिया। हो गया। मर जाने की तैयारी।... मर गये दरबार। ऐई! परन्तु प्रसन्न हो गया वह गुड़ मिला इसलिए। गोळ समझते हो या नहीं ? गुड़।

इसी प्रकार आत्मा के अन्दर जंगल में चौरासी के अवतार में भटकता है और जहाँ आत्मा का भान होता है, वहाँ आनन्द का स्वाद और आनन्द का उफान आता है। वह आनन्द का उफान। उसे चारित्र होता है। आहाहा! उसे तो सातवाँ और छठवाँ, सातवाँ और छठवाँ (गुणस्थान) आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... दु:ख और परीषह है कहाँ जगत में ? मैं ही एक आनन्दमय आत्मा हूँ, दूसरी चीज़ ही नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? ऐसे आनन्द ज्ञान, दर्शन और चारित्र तीन में भी समकित मुख्य है। देखो!

इनमें भी सम्यग्दर्शन प्रधान है... आहाहा! जहाँ आनन्द के अनुभव की शुरुआत होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन होने पर अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद की शुरुआत होती है। इसके बिना तीन में सम्यग्दर्शन बिना सब कोई प्रधान-मुख्य है नहीं। **क्योंकि इसके बिना ज्ञान, चारित्र भी मिथ्या कहलाते हैं,...** लो! इसके बिना ज्ञान और

चारित्र, शास्त्र का पठन और पंच महाव्रत के विकल्प, अट्ठाईस मूलगुण, नग्नपना, वह सब वृथा अंक बिना के शून्य हैं। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए सम्यग्दर्शन को प्रधान जानकर पहिले अंगीकार करना,... पहले में पहले यह चीज़ अंगीकार करो, बाकी फिर दूसरी बात। पोपटभाई! दान और अमुक और अमुक... उसमें पहले यह करो, कहते हैं। ऐई! दान न देना, ऐसा नहीं, हों! कहो, समझ में आया? सेठ! ऐसा कि अपने संग्रह कर रखो। क्योंकि पहले सम्यग्दर्शन अपने करना है। क्योंकि राग को मन्द करना, उससे सम्यग्दर्शन होगा नहीं। इसलिए अपने... राग मन्द हो परन्तु वह सम्यग्दर्शन का उपाय नहीं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन का उपाय तो भगवान... और जहाँ आत्मा निर्विकल्प—रागरहित चीज़ का भान हो, वहाँ आगे राग घटे बिना रहता नहीं। राग अनन्तानुबन्धी तो नाश होता है परन्तु दूसरा भी राग का रस घट जाता है। समझ में आया?

इसलिए सम्यग्दर्शन को प्रधान जानकर पहिले अंगीकार करना, यह उपदेश मुनि तथा श्रावक सभी को हैं। लो! सबको। मिथ्यादृष्टि हो, उसे भी यह कहते हैं। पहले सम्यग्दर्शन कर, पहली बात यह कर। पश्चात् दूसरी बात। समझ में आया? भगवान आत्मा ध्रुव की सम्हाल कर। समझ में आया? आहाहा! बहुत अच्छी गाथा आयी। ३९ और ४०। यह मोक्षप्राभृत है न? मोक्ष का मार्ग यहाँ से शुरु होता है। आहाहा!

पर्यायबुद्धि उड़ा दे। चाहे तो क्षयोपशम ज्ञान का एक समय का उघाड़ हो, परन्तु वह रुचि छोड़ दे। राग की रुचि तो छोड़ दे परन्तु क्षयोपशम ज्ञान में उघाड़ हुआ ग्यारह अंग, नौ पूर्व का, वह ज्ञान नहीं है। उसकी रुचि छोड़ दे। आहाहा! शास्त्र के पठन का उघाड़ की रुचि छोड़ दे। आहाहा! भगवान ज्ञान का पिण्ड प्रभु वह तो ज्ञानकन्द है। ज्ञान का दल है वह। वे दल नहीं? दल के लड्डू होते हैं या नहीं? दल के लड्डू होते हैं। हमारे काठियावाड़ में पहले होते थे। अब नहीं होते। पहले होते थे। दल के लड्डू बनाते थे। दल-दल के बनाते थे। यह आत्मा चैतन्य का दल है। यह दल का लड्डू है। समझ में आया? इसके लिये तू अनुभव कर और श्रद्धा कर। इससे पहले ... यह है, फिर दूसरी बात। जानपना कम-ज्यादा हो, उसकी बाद में बात। समझ में आया? यह वस्तु अकेली भगवान आत्मा... आहाहा!

गाथा-४१

आगे सम्यग्ज्ञान का स्वरूप कहते हैं –

जीवाजीवविहत्ती जोई जाणेइ जिणवरमएण।
तं सण्णाणं भणियं अवियत्थं सव्वदरसीहिं।।४१।।

जीवाजीवविभक्तिं योगी जानाति जिनवरमतेन।
तत् संज्ञानं भणितं अवितथं सर्वदर्शिभिः।।४१।।

अजीव जीव विभाग योगी जानता जिन–मार्ग से।
वह ज्ञान सम्यक् सत्य यह ही कहा जिनवर देव ने।।४१।।

अर्थ – जो योगी मुनि जीव अजीव पदार्थ के भेद जिनवर के मत से जानता है वह सम्यग्ज्ञान है ऐसा सर्वदर्शी–सबको देखनेवाले सर्वज्ञदेव ने कहा है, अतः वह ही सत्यार्थ है, अन्य छद्मस्थ का कहा हुआ सत्यार्थ नहीं है, असत्यार्थ है, सर्वज्ञ का कहा हुआ ही सत्यार्थ है।

भावार्थ – सर्वज्ञदेव ने जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये जाति अपेक्षा छह द्रव्य कहे हैं। (संख्या अपेक्षा अनन्त, अनन्तानन्त, एक और असंख्यात एक, एक हैं।) इनमें जीव को दर्शन–ज्ञानमयी चेतनास्वरूप कहा है, वह सदा अमूर्तिक है अर्थात् स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण से रहित है। पुद्गल आदि पाँच द्रव्यों को अजीव कहे हैं, ये अचेतन हैं, जड़ हैं। इनमें पुद्गल स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, शब्दसहित मूर्तिक (रूपी) है, इन्द्रियगोचर है, अन्य अमूर्तिक हैं। आकाश आदि चार तो जैसे है वैसे ही रहते हैं। जीव और पुद्गल का अनादिसंबन्ध है।

छद्मस्थ के इन्द्रियगोचर पुद्गलस्कन्ध है, उनको ग्रहण करके जीव राग–द्वेष–मोहरूप परिणमन करता है, शरीरादि को अपना मानता है तथा इष्ट–अनिष्ट मानकर राग–द्वेषरूप होता है, इससे नवीन पुद्गल कर्मरूप होकर बन्ध को प्राप्त होता है, यह निमित्त–नैमित्तिक भाव है, इस प्रकार यह जीव अज्ञानी होता हुआ जीव–पुद्गल के भेद को न जानकर मिथ्याज्ञानी होता है। इसलिए आचार्य कहते हैं कि जिनदेव के मत से जीव–अजीव का भेद जानकर सम्यग्दर्शन का स्वरूप जानना। इस प्रकार जिनदेव ने

कहा वह ही सत्यार्थ है, प्रमाण नय के द्वारा ऐसे ही सिद्ध होता है, इसलिए जिनदेव सर्वज्ञ ने सब वस्तु को प्रत्यक्ष देखकर कहा है।

अन्यमती छद्मस्थ हैं, इन्होंने अपनी बुद्धि में आया वैसे ही कल्पना करके कहा है, वह प्रमाण सिद्ध नहीं है। इनमें कई वेदान्ती तो एक ब्रह्ममात्र कहते हैं, अन्य कुछ वस्तुभूत नहीं है, मायारूप अवस्तु है, ऐसा मानते हैं। कई नैयायिक, वैशेषिक जीव को सर्वथा नित्य सर्वगत कहते हैं, जीव के और ज्ञान गुण के सर्वथा भेद मानते हैं और अन्य कार्यमात्र है, उनको ईश्वर करता है इस प्रकार मानते हैं। कई सांख्यमती पुरुष को उदासीन चैतन्यस्वरूप मानकर सर्वथा अकर्ता मानते हैं, ज्ञान को प्रधान का धर्म मानते हैं।

कई बौद्धमती सर्व वस्तु को क्षणिक मानते हैं, सर्वथा अनित्य मानते हैं, इनमें भी अनेक मतभेद हैं, कई विज्ञानमात्र तत्त्व मानते हैं, कई सर्वथा शून्य मानते हैं, कोई अन्य प्रकार मानते हैं। मीमांसक कर्मकांडमात्र ही तत्त्व मानते हैं, जीव को अणुमात्र मानते हैं तो भी कुछ परमार्थ नित्य वस्तु नहीं है इत्यादि मानते हैं। चार्वाकमती जीव को तत्त्व नहीं मानते हैं, पंचभूतों से जीव की उत्पत्ति मानते हैं।

इत्यादि बुद्धिकल्पित तत्त्व मानकर परस्पर में विवाद करते हैं, वह युक्त ही है, वस्तु का पूर्णरूप दीखता नहीं है, तब जैसे अन्धे हस्ती का विवाद करते हैं, वैसे विवाद ही होता है, इसलिए जिनदेव सर्वज्ञ ने ही वस्तु का पूर्णरूप देखा है, वही कहा है। यह प्रमाण और नयों के द्वारा अनेकान्तरूप सिद्ध होता है। इनकी चर्चा हेतुवाद के जैन के न्याय-शास्त्रों से जानी जाती है, इसलिए यह उपदेश है, जिनमत में जीवाजीव का स्वरूप सत्यार्थ कहा है, उसको जानना सम्यग्ज्ञान है, इसप्रकार जानकर जिनदेव की आज्ञा मानकर सम्यग्ज्ञान को अंगीकार करना, इसी से सम्यक्चारित्र की प्राप्ति होती है, ऐसे जानना।

गाथा-४१ पर प्रवचन

आगे सम्यग्ज्ञान का स्वरूप कहते हैं :- दर्शन की प्रधानता की, अब सम्यग्ज्ञान उसके साथ कैसा होता है, उसकी बात करते हैं। सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान किस

जाति का, किसे कहना, उसकी व्याख्या करते हैं।

जीवाजीवविहत्ती जोई जाणेइ जिणवरमएण।
तं सण्णाणं भणियं अवियत्थं सव्वदरसीहिं।।४१।।

जहाँ हो वहाँ '**जिनवरमतेन**' '**जिनवरमतेन**' डालते हैं। वीतराग के मार्ग के अन्दर जो कहा, उसे तू जान। अन्यमतियों ने जो कुछ कहा, उसमें कुछ है नहीं। परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग के मत और अभिप्राय से जो मार्ग है, उसे जान। समझ में आया? '**सम्मत्तं भणियं**' था ४० में। यहाँ '**सण्णाणं भणियं**' सत्यार्थ भगवान ऐसे सर्वदर्शी ने यह कहा है।

अर्थ :- जो योगी मुनि जीव-अजीव पदार्थ के भेद जिनवर के मत से जानता है... देखो! जीव और अजीव दो को जाने, उसमें सब सातों ही, नव तत्त्व आ जाते हैं। **जो योगी मुनि जीव-अजीव पदार्थ के भेद...** हों! भिन्न। ऐसा। दो भिन्न, ऐसा जाने। यह जिनवर के मत से। परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर देवाधिदेव ने जो कहा, उस अभिप्राय से। अज्ञानी तो बहुत प्रकार के कहते हैं, वह नहीं। **वह सम्यग्ज्ञान है...** उसे सम्यग्ज्ञान-मोक्ष का मार्ग **ऐसा सर्वदर्शी-सबको देखनेवाले सर्वज्ञदेव ने कहा है...** सर्वदर्शी भगवान ने उसे सम्यग्ज्ञान कहा है। जीव-अजीव के भेद भिन्न... भिन्न... भिन्न... ऐसा। जीव और अजीव दो भिन्न। इसलिए आ गया इसमें। पुण्य-पाप और आस्रव-बन्ध भी जीव से भिन्न और वास्तव में जीवद्रव्य से संवर-निर्जरा पर्याय की, एक समय की पर्याय भी भिन्न। आहाहा! समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्यदेव तीसरे नाम में आये हैं। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो, तथापि वे कहते हैं। इसे लोगों ने स्वयं ही डाला, तथापि स्वयं कहते हैं कि सर्वज्ञ जिनवर कहते हैं, उस मत से तू सम्यग्ज्ञान को जान। आहाहा! समझ में आया?

वह ही सत्यार्थ है,... लो! '**अवियत्थं**' '**अवियत्थं**' सत्य है। **अन्य छद्मस्थ का कहा हुआ सत्यार्थ नहीं है, असत्यार्थ है,...** अज्ञानियों ने कल्पना करके एक ही आत्मा, या अकेला पुद्गल ही है, जीव और अजीव दो द्रव्य ही है, दूसरी कोई पर्यायें नहीं, ऐसा जो अज्ञानी ने कहा हो, वह सब बात झूठी है। **छद्मस्थ का कहा हुआ सत्यार्थ नहीं है,**

असत्यार्थ है,... गणधर आदि छद्मस्थ कहते हैं न ? परन्तु वे घर का कहाँ कहते हैं ? वे तो केवली कहते हैं, वह कहते हैं। समझ में आया ? यहाँ छद्मस्थ अर्थात् अज्ञानी। ज्ञानी छद्मस्थ कहे वह तो केवली ने कहा हुआ, वही कहते हैं। भगवान ऐसा कहते हैं और भगवान ने कहा हुआ, यह ऐसा है। समझ में आया ?

सर्वज्ञ का कहा हुआ सत्यार्थ है। भगवान ने कहा वह सत्यार्थ इसके ज्ञान में आना चाहिए। त्वमेव सत्यं... ऐसा नहीं। इसके ज्ञान में आना चाहिए। भगवान ने कहा वह सच्चा। भगवान ने क्या कहा, इसकी खबर बिना तुझे सच्चा कहाँ से आया ? जीव और अजीव, राग और आत्मा दोनों अत्यन्त भिन्न। समझ में आया ? महाव्रत का विकल्प और आत्मा अत्यन्त भिन्न। ऐई ! प्रकाशदासजी ! महाव्रत चारित्र हो गया और यहाँ कहे भिन्न। यह कहाँ से आया ? इतना बड़ा अन्तर ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा ही है। जैसे सूर्य से अन्धकार भिन्न है, वैसे भगवान आत्मा से पंच महाव्रत के विकल्प भी अत्यन्त भिन्न हैं। उसकी यह चीज़ ही नहीं है, उसमें यह है ही नहीं, ऐसा भेदज्ञान कर, कहते हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : यहाँ छद्मस्थ अर्थात् अज्ञानी लेना न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी मिथ्यादृष्टि छद्मस्थ है न। उसे यहाँ ... ज्ञानी छद्मस्थ है, वह तो केवली का कहा हुआ कहता है। यहाँ कहा पहले आया। गणधर आदि समकिती कहते हैं, वह सब केवलज्ञान का कहा हुआ कहते हैं। वह कहीं अपनी कल्पना का (नहीं कहते)। यह अज्ञानी छद्मस्थ अपनी कल्पना से करे, वह बात सत्य नहीं हो सकती। कहो, समझ में आया ? ... है न यह स्थानकवासी साधु, तो भी माने वेदान्त। एक ही आत्मा। सर्वज्ञ के अतिरिक्त मानी हुई बात सब झूठी है। समझ में आया ? ऐसे वेश में पड़े हों, उनका भी चलता है। सबकी गाड़ी चलती है। त्वमेव सत्य नहीं चलता समझे बिना का, ऐसा कहा। भगवान कहते हैं वह सच्चा। परन्तु क्या कहा उन्होंने ? इसका कुछ भान नहीं होता और सच्चा कहाँ से आया ? उसके भाव का भासन तो है नहीं कि यह राग है, यह स्वभाव है। भाव बिना भगवान ने कहा है, वह सच्चा, इसे कहाँ से आया ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ बोले। त्वमेव सत्यं... पहले उसका भान है और फिर कोई सूक्ष्म बात हो तो भगवान ने... .... आगम के शास्त्र से भी पार कोई चीज़ ऐसी हो। केवलज्ञानी ही जान सकें तो भगवान ने कहा वह सच्चा। यह तो मूल जो वस्तु सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में भगवान कहे वह सच्चा। भान बिना कहाँ से सच्चा हो गया? समझ में आया?

आनन्दघनजी ने कहा था एकबार। आनन्दघनजी ने भगवान की स्तुति की है। 'मनडुं किनही न लागे हो, कुंथु जिन मनडुं किनही न लागे।' भगवान! 'मनडुं दुराराध्य तें वश आण्युं... मनडुं दुराराध्य तें वश आण्युं, ते आगमथी मति आंणु आनंदघन प्रभु मारूं आणो तो साचुं करीने जाणुं।' मैं निर्विकल्प होऊँ, तब जानूँ कि तुम्हें मैंने आराधा है। मुझे भान (हुए) बिना तुम्हें आराध, यह किस प्रकार मैं जानूँ? समझ में आया? 'आनंदघन प्रभु मारूँ आणो तो साचुं करीने जाणुं।' अमरचन्दभाई! आहाहा! राग का विकल्प और भगवान निर्विकल्प प्रभु, दो का भेदज्ञान करके मन को जीतना, वह मैं जीतूँ, तब मुझे खबर पड़े कि यह बराबर है। समझ में आया? आहाहा!

यह **सर्वज्ञ का कहा हुआ ही सत्यार्थ है।**

भावार्थ :- सर्वज्ञदेव ने जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये जाति अपेक्षा छह द्रव्य कहे हैं। भगवान के ज्ञान में छह द्रव्य जाति से आये हैं। संख्या से अनन्त। एक ही आत्मा नहीं परन्तु अनन्त आत्मायें। अनन्त आत्मायें, प्रत्येक परमात्मस्वरूप ऐसे अनन्त आत्मा, उससे अनन्तगुणे परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्म, अधर्म और आकाश। यह छह द्रव्य। **इनमें जीव को दर्शन-ज्ञानमयी चेतनास्वरूप कहा है,...** लो! भगवान कौन है आत्मा? कि यह दर्शन और ज्ञान चेतनास्वरूप है। वह कहीं दया, दान, व्रत और विकल्प स्वरूप और शरीर की क्रियास्वरूप है नहीं।

जीव को दर्शन-ज्ञानमयी चेतनास्वरूप कहा है,... भगवान तो। अकेला जानना, देखना, ऐसी चेतना, उस स्वरूप भगवान आत्मा है। पुण्य, पाप, आस्रव और बन्धवाला आत्मा है ही नहीं। आहाहा! देखो! अनादि की ... समझ में आया? **यह सदा अमूर्तिक**

है... भगवान आत्मा जानने-देखने का स्वभाव तो अमूर्तिक है। उसमें कुछ रंग, गन्ध, (रस) स्पर्श नहीं है। **अर्थात् स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण से रहित है। पुद्गल आदि पाँच द्रव्यों को अजीव कहे हैं, ये अचेतन हैं।** लो! पाँच द्रव्य। **जड़ हैं। इनमें पुद्गल स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, शब्दसहित मूर्तिक (रूपी) हैं,...** लो! पुद्गल स्पर्श, रस, रंग और शब्द ये सब पुद्गल शब्दसहित है। आत्मा शब्दसहित नहीं। आहाहा!

इन्द्रियगोचर है,... पुद्गल तो। **अन्य अमूर्तिक हैं। आकाश आदि चार तो जैसे हैं, वैसे ही रहते हैं।** धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल। और **जीव और पुद्गल के अनादि सम्बन्ध है। छद्मस्थ के इन्द्रियगोचर पुद्गलस्कन्ध हैं, उनको ग्रहण करके...** ग्रहण करके अर्थात् प्रेम करके। **राग-द्वेष-मोहरूप परिणमन करता है...** अज्ञानी पुद्गल का लक्ष्य करके राग-द्वेष और मोहरूप परिणमता है। **शरीरादि को अपना मानता है।** शरीर को, वाणी को अपनी मानता है। अपना शरीर है न? मेरा शरीर है न? वह तेरा कहाँ से? वह तो जड़ का है, मिट्टी का है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य कब किया है तूने? पुण्य करने का स्वभाव कहाँ है इसका? अज्ञानभाव से किया है और अज्ञानभाव से यह मिला और अज्ञानभाव से किया। पुण्य करने का स्वभाव जीव में नहीं है। वह तो दर्शन और ज्ञानचेतना स्वरूप है। भान नहीं था और माना था, वह कहीं चेतनास्वरूप को जाना नहीं था। समझ में आया? कठिन बातें, भाई!

जानकर हाथ में दीपक लेकर कुएँ में गिरता है। गिरे कुएँ में। आहाहा! उसे खबर नहीं कि मैं एक चैतन्य दीपक, प्रकाश की मूर्ति हूँ। मेरे प्रकाश में जगत की पूरी चीज़ें प्रकाशित तो हुई एकसाथ, परन्तु एक समय में ज्ञात हो जाए, ऐसा प्रकाश का पुंज, पुंज / पिण्ड मैं हूँ। इसके अतिरिक्त यह सब पुद्गल आदि ग्रहण करके, लक्ष्य में लेकर, राग-द्वेष और मोहरूप होता है। शरीर को आत्मा मानता है। शरीर, देह, स्त्री, पुत्र, परिवार यह हमारे... हमारे... हमारे। धूल में भी तेरे नहीं, सुन न! यह लड़के हमारे। यह पैसा हमने इकट्ठा किया है। हमारे पिता कुछ छोड़कर नहीं गये थे, हमने यह सब बाहुबल से इकट्ठा किया है। बाहु के बल से किया है। धूल भी नहीं किया। बाहें कहाँ तेरी थीं? आहाहा! ऐई!

पोपटभाई ! पोपटभाई कहाँ तुम्हारे पिता कुछ छोड़ गये थे ? इन्होंने इकट्ठा किया है न, ऐसा कहते हैं न लोग ? पोपटभाई के बापू के पास कहाँ था ? यह सब ५०-५० लाख, ६०-६० लाख इसके पिता के पास कहाँ थे ? यह ...भाई यह तो साधारण थे। इनके पिता थे ३० रुपये वेतन मिलता था।... उनका मस्तिष्क अस्थिर था। ३० रुपये वेतन। फिर ऐसा कहे, हम होशियार हुए, बराबर आया हमें, इसलिए हमें इकट्ठा करना आया। मिथ्यात्व इकट्ठा किया है। पोपटभाई ! तेरे पिता के पास था यह सब ?

शरीरादि को अपना मानता है... है न ? आपा-आपा माने। आपो कहलाये न ? **तथा इष्ट-अनिष्ट मानकर राग-द्वेषरूप होता है।** लो ! यह ठीक है और अठीक। अरे ! ठीक-अठीक था कब जगत में ? अकेला जाननेवाला-देखनेवाला। जगत में ठीक-अठीक कोई चीज़ है नहीं। ज्ञेय है। आत्मा ज्ञाता और वह ज्ञेय है। जाननेवाला। बाकी कोई ठीक-अठीक चीज़ जगत में है नहीं। अज्ञानी ठीक-अठीक मानकर मिथ्यात्वभाव से, मिथ्यात्व और राग-द्वेष को उत्पन्न करता है।

इससे नवीन पुद्गल कर्मरूप होकर बन्ध को प्राप्त होता है, यह निमित्त-नैमित्तिक भाव है,... मोहभाव करे, राग-द्वेष (करे) और कर्म अपने आप बँधे और कर्म का उदय हो और आत्मा अपनेआप विकार करे, ऐसा नैमित्तिक भाव है, लो। **इस प्रकार यह जीव अज्ञानी होता हुआ जीव-पुद्गल के भेद को न जानकर...** ऐसा है न पाठ में ? '**जीवाजीवविहत्ती**' विभक्त-भेद, ऐसा न जानकर। मूल पाठ में है। आहाहा ! **भेद को न जानकर मिथ्याज्ञानी होता है।** भेद तो जानता नहीं। मैं कौन और यह कौन ? आहाहा ! पंच महाव्रत का विकल्प उठे, वह आत्मा का नहीं; वह राग है, विकार है और दुःख है, अजीव है। यह अजीव और जीव का ज्ञान नहीं, वह मिथ्याज्ञानी है।

इसलिए आचार्य कहते हैं कि जिनदेव के मत से जीव-अजीव का भेद जानकर... भगवान के अभिप्राय से जीव-अजीव की भिन्नता जानकर **सम्यग्दर्शन का स्वरूप जानना।** सम्यग्ज्ञान बराबर भेदज्ञान करके करना। यह भेदज्ञान, वह ज्ञान, हों ! ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। राग और शरीर से आत्मा का भेदपना, वह ज्ञान, वह ज्ञान। **इस प्रकार जिनदेव ने कहा, वह ही सत्यार्थ है। प्रमाण-नय के द्वारा ऐसे ही सिद्ध होता है...** भगवान ने कहा तत्प्रमाण और निश्चय-व्यवहार से ऐसी पद्धति की बात साबित होती है। **इसलिए**

जिनदेव सर्वज्ञ सब वस्तु को प्रत्यक्ष देखकर कहा है। लो! **अन्यमती छद्मस्थ हैं, इन्होंने अपनी बुद्धि में आया वैसे ही कल्पना करके कहा है...** अज्ञानी ने। **वह प्रमाणसिद्ध नहीं है। इनमें कई वेदान्ती तो एक ब्रह्ममात्र कहते हैं,...** कल्पना है अज्ञानी की। समझ में आया? सुधरे हुओं में अभी यह बहुत चला है। एक ब्रह्म, अद्वैत। बस। दूसरा कुछ नहीं। अज्ञानियों ने कल्पना से ऐसा मनाया है।

मुमुक्षु : इसने माना किस प्रकार?

पूज्य गुरुदेवश्री : माना अज्ञानी ने। यह तो कहते हैं।

वेदान्ती तो एक ब्रह्ममात्र कहते हैं, अन्य कुछ वस्तुभूत नहीं है मायारूप अवस्तु है... फिर माया कहते हैं परन्तु वापस अवस्तु। समझ में आया? **कई नैयायिक, वैशेषिक जीव को सर्वथा नित्य सर्वगत कहते हैं,...** लो! कितने ही तो पूरा व्यापक कहते हैं। **जीव के और ज्ञानगुण के सर्वथा भेद मानते हैं...** कितने यह गुणी-गुण अत्यन्त भिन्न, ऐसा कितने ही मानते हैं, वह मूढ़ अपनी कल्पना से कहता है। **सर्वथा भेद मानते हैं और अन्य कार्यमात्र हैं, उनको ईश्वर कहते हैं,...** ऐसा माने। यह सब करे वह ईश्वर करता है, भाई! अपने कहाँ; कर्ता-हर्ता ईश्वर है—ऐसा अज्ञानी मूढ़ मानता है। समझ में आया? ऐई! अज्ञानियों ने अपनी कल्पना से यह सब माना है। यह सम्यग्ज्ञान नहीं, मिथ्याज्ञान है।

कई सांख्यमती पुरुष को उदासीन चैतन्यस्वरूप मानकर सर्वथा अकर्ता मानते हैं,... लो! आत्मा बिल्कुल राग का भी कर्ता नहीं और पर्याय का कर्ता नहीं, ऐसा मानते हैं। **ज्ञान को प्रधान का धर्म मानते है।** इस ज्ञान को रजो, सत्व, तमो इसका गुण मानते हैं। आता है रजो, सत्व, तमो, इसका यह ज्ञान धर्म है। ज्ञान आत्मा का धर्म नहीं, ऐसा अज्ञानी अपनी कल्पना से अनेक प्रकार से कहता है। **कई बौद्धमती सर्व वस्तु को क्षणिक मानते हैं, सर्वथा अनित्य मानते हैं, इनमें भी अनेक मतभेद हैं, कई विज्ञानमात्र तत्त्व मानते हैं, कई सर्वथा शून्य मानते हैं, कोई अन्य प्रकार मानते हैं। मीमांसक कर्मकाण्डमात्र ही तत्त्व मानते हैं,...** लो! कुछ कर्मकाण्ड करना, वही तत्त्व है। बाकी ज्ञानमात्र तत्त्व दूसरा है नहीं। ऐसा **जीव को अणुमात्र मानते हैं तो भी कुछ परमार्थ नित्य वस्तु नहीं है-इत्यादि मानते हैं।** लो! इत्यादि... इत्यादि... कहेंगे अब। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-७८, गाथा-४१ से ४३, बुधवार, भाद्रशुक्ल २, दिनांक ०२-०९-१९७०

मोक्षपाहुड़, गाथा ४१। जिनवर भगवन्त ने कहे हुए जीव और अजीव इन दो में नौ तत्त्व को समाहित कर दिया। दो का भेदज्ञान करके सच्चा तत्त्वज्ञान प्रगट करना और भगवान ने कहे हुए तत्त्व जीव-अजीव वही सच्चे हैं। अन्यमति ने अनेक प्रकार के कहे, वे सत्य नहीं हैं। यहाँ तक आया है, देखो!

चार्वाकमती जीव को तत्त्व नहीं मानते हैं,... कितने ही नास्तिक हैं, वे तो जीव मानते नहीं। **पंच भूतों से जीव की उत्पत्ति मानते हैं। इत्यादि बुद्धिकल्पित तत्त्व मानकर परस्पर में विवाद करते हैं, वह युक्त ही है-वस्तु का पूर्णस्वरूप दिखता नहीं है, तब जैसे अन्धे हस्ती का विवाद करते हैं...** हाथी... हाथी। एक पूँछ को हाथी माने। एक-एक अंग को माने। पूरा हाथी तो देखा नहीं। अन्धे एक-एक को पकड़कर मानते हैं, उसी प्रकार अज्ञानी आत्मा का वास्तविक पूर्ण स्वरूप सर्वज्ञ ने देखा, ऐसा उसे जानने में नहीं है, इसलिए कल्पित मानकर ऐसा आत्मा होगा, छोटा होगा, बड़ा होगा, व्यापक होगा। एक व्यक्ति तो कहे, यहाँ आया था न? आणुमात्र होगा। छोटे में छोटा इतना ही आत्मा होता है। एक और कहे सर्व व्यापक होता है। वे सब मिथ्यादृष्टि अपनी कल्पना से तत्त्व को वर्णन किया है।

वैसे विवाद ही होता है, इसलिए जिनदेव सर्वज्ञ ने वस्तु का पूर्णरूप देखा है... देखो! '**जिणवरमएण**' शब्द था न अन्दर? '**जिणवरमएण**' जिनवर परमेश्वर ने (देखा) सर्वज्ञस्वभाव आत्मा का है। यह आत्मा है, इसका स्वभाव ही सर्वज्ञ है। इसलिए जिसने अनादि अनन्त काल से जिसे सर्वज्ञपद प्रगट हुआ है। सर्वज्ञशक्ति भी अनादि की है और सर्वज्ञ की व्यक्ति भी अनादि की है जगत में। समझ में आया? ऐसे सर्वज्ञ ने यह सर्वज्ञस्वरूप आत्मा, ऐसी अनन्त आत्मायें, उससे अनन्तगुणे परमाणु भगवान ने देखे हैं, उसका प्रमाण-नय से **अनेकान्तरूप सिद्ध होता है**। द्रव्य-पर्याय स्वरूप सिद्ध है। एक-एक द्रव्य और एक-एक पर्याय नय का विषय है, वह भी वहाँ जिनवर मार्ग में साबित होता है।

इनकी चर्चा हेतुवाद के जैन के न्याय-शास्त्रों से जानी जाती है, इसलिए यह

उपदेश है-जिनमत में जीवाजीव का स्वरूप सत्यार्थ कहा है... 'अवियत्थं' शब्द पड़ा है न? '**अवियत्थं**' वीतरागमार्ग सर्वज्ञ परमेश्वर ने जीव का, अजीव का स्वरूप बराबर कहा है। जैसा है वैसा जानकर कहा है। **उसको जानना सम्यग्ज्ञान है, इस प्रकार जानकर जिनदेव की आज्ञा मानकर सम्यग्ज्ञान को अंगीकार करना,...** दर्शन की व्याख्या आयी थी। यह सम्यग्ज्ञान की है। ४० में सम्यग्दर्शन की कही कि सम्यग्दर्शन इस जगत में सार है। फिर ४१ में ज्ञान की आयी। अब ४२ में चारित्र की आती है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक चारित्र होता है, उसे मोक्ष का मार्ग कहा जाता है। यह चारित्र की व्याख्या कहेंगे।

गाथा-४२

आगे सम्यक्चारित्र का स्वरूप कहते हैं –

जं जाणिऊण जोई परिहारं कुणइ पुण्णपावाणं।
तं चारित्तं भणियं अवियप्प कम्मरहिएहिं।।४२।।

यत् ज्ञात्वा योगी परिहारं करोति पुण्यपापानाम्।
तत् चारित्रं भणितं अविकल्पं कर्मरहितैः।।४२।।

जो जान योगी त्याग करता पुण्य एवं पाप का।
चारित्र वह अविकल्प ऐसा कर्म विरहित ने कहा।।४२।।

अर्थ – योगी ध्यानी मुनि उस पूर्वोक्त जीवाजीव के भेदरूप सत्यार्थ सम्यग्ज्ञान को जानकर पुण्य तथा पाप इन दोनों का परिहार करता है, त्याग करता है, वह चारित्र है, जो निर्विकल्प है अर्थात् प्रवृत्तिरूपक्रिया के विकल्पों से रहित है, वह चारित्र घातिकर्म से रहित ऐसे सर्वज्ञदेव ने कहा है।

भावार्थ – चारित्र निश्चय-व्यवहार के भेद से दो भेदरूप है, महाव्रत-समिति-गुप्ति के भेद से कहा है, वह व्यवहार है। इसमें प्रवृत्तिरूप क्रिया शुभकर्मरूप बन्ध करती है और इन क्रियाओं में जितने अंश निवृत्ति है (अर्थात् उसी समय स्वाश्रयरूप आंशिक

निश्चय-वीतराग भाव है) उसका फल बन्ध नहीं है, उसका फल कर्म की एकदेश निर्जरा है। सब कर्मों से रहित अपने आत्मस्वरूप में लीन होना वह निश्चय चारित्र है, इसका फल कर्म का नाश ही है, वह पुण्य-पाप के परिहाररूप निर्विकल्प है। पाप का तो त्याग मुनि के है ही और पुण्य का त्याग इस प्रकार है -

शुभक्रिया का फल पुण्यकर्म का बन्ध है, उसकी वांछा नहीं है ,बन्ध के नाश का उपाय निर्विकल्प निश्चय चारित्र का प्रधान उद्यम है। इस प्रकार यहाँ निर्विकल्प अर्थात् पुण्य-पाप से रहित ऐसा निश्चय चारित्र कहा है। चौदहवें गुणस्थान के अन्त समय में पूर्ण चारित्र होता है, उसमें लगते ही मोक्ष होता है - ऐसा सिद्धान्त है।।४२।।

गाथा-४२ पर प्रवचन

४२ गाथा।

जं जाणिऊण जोई परिहारं कुणइ पुण्णपावाणं।
तं चारित्तं भणियं अवियप्प कम्मरहिएहिं।।४२।।

ज्ञान के साथ मिलाया।

देखो! अज्ञानी चारित्र किसे-किसे मानता है? कोई पंच महाव्रत के विकल्प को चारित्र मानता है, कोई दया-दान के भाव को चारित्र मानता है। यह सब चारित्र की व्याख्या अत्यन्त झूठी है। समझ में आया?

अर्थ :- योगी ध्यानी मुनि उस पूर्वोक्त जीवाजीव के भेदरूप सत्यार्थ सम्यग्ज्ञान को... देखो! उसके साथ मिलाया। पहला तो राग और अजीव से मेरी चीज़ भिन्न है, ऐसा जिसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुआ है परन्तु पुण्य और पाप के भाव अभी वर्तते हैं। इसीलिए कहते हैं कि जिसे **उस पूर्वोक्त जीवाजीव के भेदरूप सत्यार्थ सम्यग्ज्ञान को जानकर...** उन्हें बराबर जानकर भगवान आत्मा निर्मलानन्द शुद्ध पूर्ण है; दया, दान, व्रत के विकल्प वह आस्रव और राग है; कर्म, शरीर और वाणी, वह अजीव है। इस प्रकार अजीव, आस्रव और आत्मा का भेदज्ञान करके फिर उसे चारित्र लेना। वह चारित्र अर्थात् क्या? यह कहते हैं।

पुण्य तथा पाप इन दोनों का परिहार करता है, त्याग करता है, वह चारित्र है,... शुभ और अशुभराग, उससे रहित आत्मा के आनन्द के स्वरूप का ज्ञान और श्रद्धा है, उसमें-आनन्द में स्थिरता करना, इसका नाम चारित्र है। कहो, समझ में आया? **पुण्य तथा पाप इन दोनों का परिहार करता है, त्याग करता है, वह चारित्र है,... घातिकर्म से रहित ऐसे सर्वज्ञदेव ने कहा है।** लो! किसने कहा है यह? '**भणियं**' भगवान ने कहा है। सर्वज्ञ परमात्मा ने यह चारित्र कहा है। ज्ञानक्रियाभ्याम् मोक्ष। वह ज्ञान कौन? कि विकल्प जो राग, उससे भिन्न आत्मा का ज्ञान, वह ज्ञान और रागरहित स्वरूप में स्थिरता, वह क्रिया और वह चारित्र। समझ में आया? यह भगवान, जिसने चार कर्म का नाश करके सर्वज्ञदेव प्रगट हुए, उन्होंने ऐसा चारित्र कहा है। अज्ञानी दूसरे प्रकार से चारित्र मानते हैं, ऐसा कहते हैं।

उसमें भी ऐसा कहा था न कि पूरे उपदेश का सार समकित लेना। श्रमण और श्रावक दोनों को। ४१ में ऐसा कहा वीतरागदेव ने जीव-अजीव की व्याख्या जो की, ऐसा उसे भेदज्ञान करना, यहाँ कहते हैं, वीतरागदेव ने चारित्र जिसे कहा, वह चारित्र अंगीकार करना। अपना आत्मा राग के विकल्परहित शुद्ध आनन्द और ज्ञान का स्वभाव है। रात्रि में कहा था कि जैसे आकाश का अन्त नहीं, काल का अन्त नहीं, वैसे आत्मा के एक-एक गुण के भाव का अन्त नहीं। समझ में आया? क्षेत्र का अन्त है कहीं आकाश का? कि अब आकाश नहीं। इसी प्रकार काल का कहीं आदि है कि यह काल यहाँ से शुरु होता है? अनन्त... अनन्त... अनन्त... इस प्रकार जैसे काल का छोर नहीं, अन्त नहीं, क्षेत्र का अन्त नहीं; वैसे भगवान आत्मा के ज्ञानगुण के स्वभाव का अन्त नहीं। ऐसा अनन्त ज्ञानस्वभाव आत्मा में पड़ा है। समझ में आया? ऐसा अनन्त आनन्दस्वभाव आत्मा में पड़ा है। ऐसा अनन्त श्रद्धास्वभाव आत्मा में पड़ा है। ऐसा एक-एक गुण अनन्त है, भाव अनन्त है। बहुत सूक्ष्म बात है।

क्षेत्र असंख्यप्रदेशी शरीर प्रमाण भले हो। क्षेत्र की महत्ता नहीं है। उसके स्वभाव में गहरे... गहरे... गहरे... गम्भीरता, गहरे... गहरे... गहरे... उतरने पर वर्तमान पर्याय को गहरे-गहरे झुकाने पर अनन्त स्वभाव को पकड़े, इसका नाम सम्यग्दर्शन और ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? और पश्चात् चारित्र। आहाहा! वह तो अलौकिक बात है! पुण्य-पाप के विकल्पों से रहित स्वरूप की रमणता की दशा। वैरागी जीव माता के पास

जब आज्ञा माँगते हैं, आठ-आठ वर्ष के बालक, हों! हे माँ! मुझे कहीं चैन नहीं पड़ता, मेरे आनन्द के अतिरिक्त, माँ! मैं तो अब वन में चला जाता हूँ। आहाहा! जहाँ मनुष्यों का पगरव नहीं। जहाँ मनुष्य का रास्ता नहीं। माता! मुझे आज्ञा दे। हमारा आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसका हमें भान है, हमें उसका ज्ञान हुआ है परन्तु हमारे अब अन्तर रमणता के लिये माता! वनवास में हम जायेंगे। वहाँ अकेले आत्मा को साधेंगे। सेठ!

मुमुक्षु : वनवास में मिलता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वनवास में जाकर मिले यहाँ से। वहाँ कहाँ मिले वनवास में तो ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़का, दीक्षित होता है न, दीक्षित ? तो उसकी माँ को कहता है। शास्त्र में बहुत आता है। श्वेताम्बर में एक मृगा पुत्र (आता) है। जिसके घर में मणिरत्न की टाईल्स। लादी समझे ? यह पत्थर। मणिरत्न की टाईल्स और बत्तीस कन्या राजा की रानी-पुत्रियाँ बड़ी। ऐसा वैराग्य हुआ। ऐसा शास्त्र में आता है। आदिपुराण में दूसरे प्रकार से आता है। सब बहुत (आता है)। सुकुमाल स्वामी आदि एक-एक मुनि। ऐसे वैराग्य होता है अन्दर में। तो कहते हैं, माता! आज्ञा दे। 'क्षण रे न रखूँ रे इस संसार में... मारी मोही रे अब नहीं रे रखूँ इस संसार में।' ऐसे रोम खड़े हो जायें, ऐसी वैराग्य की बात उसकी माँ को करता है। माँ की आँख में से आँसू बहते जाते हैं। बेटा! चला जा, भाई! रास्ता तो यह है। तुझे और मेरे दोनों को। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करे ? रास्ते सब हैं। सिंह का रास्ता होगा वहाँ चलते होंगे। सिंह के लिये रास्ता किया होगा वन में जाने का ?

मुमुक्षु : सड़क बनायी होगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : सड़क की होगी वहाँ। मुनि तो अन्दर से प्रस्फुटित प्याला होता है। आहाहा! मुनि अर्थात् क्या दशा! परमेश्वर। चलते परमेश्वर। आहाहा! जिसे व्रत के, अव्रत के विकल्पों से रहित चारित्र जिसे अन्तर में प्रगट हुआ है। वे तो आनन्द की लहर करते हैं। समझ में आया ? पोपटभाई! वहाँ खाने-पीने में और मजा करने में रहते-रहते

कल्याण हो, ऐसा नहीं है, यह कहते हैं। उन्हें आत्मा का दर्शन और ज्ञान प्रगट होने के पश्चात् भी पुण्य-पाप का त्याग किया। भाषा तो क्या (आवे) ? उपदेश तो ऐसा ही आवे न ? बाकी स्वरूप में स्थिर होना, उसमें पुण्य-पाप का त्याग हो जाता है। समझ में आया ?

वह माता के पास आज्ञा लेते-लते... अपने आता है न भाई ? प्रवचनसार चरणानुयोग (सूचक चूलिका) अन्तिम अधिकार। माता-पिता के निकट आज्ञा माँगता है। प्रवचनसार, तीसरा अधिकार। माता ! तू इस शरीर की माता, हों ! इस आत्मा की नहीं। माँ ! मुझे आज्ञा दे। हमारी अनुभूति, आत्मा की अनुभूति माता के पास जाना चाहते हैं। आहाहा ! हमें जो आनन्द का नाथ ऐसा जो हमें अनुभव में आया है, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर अन्दर डोलता है, प्रभु ! वह हमें ज्ञान में, श्रद्धा में, अनुभव में आया है। प्रभु माता ! अब आज्ञा दे। हम अन्तरस्वरूप में स्थिर होना चाहते हैं। प्रवचनसार, तीसरे भाग में आता है। पत्नी को कहता है कि हे शरीर को रमानेवाली ! शरीर को रमानेवाली। मुझे रमानेवाली नहीं, मैं तो आत्मा हूँ। आज्ञा दे। मेरी अनुभूति की पत्नी मेरी अनुभूति। आहाहा ! यह तो दर्शन-ज्ञानसहित की बात है, हों ! हाँ, इसलिए पहले दर्शन-ज्ञान की व्याख्या कर गये। समझ में आया ? सन्धि करके फिर चारित्र की बात है। आहाहा ! धन्य अवतार ! जिसे केवलज्ञान ऐसे हाथ में-हथेली में वर्तता है, ऐसी चारित्रदशा ! कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि भाई ! वह चारित्र '**जं जाणिऊण**' ऐसा। सम्यग्दर्शन-ज्ञान में बराबर आत्मा को पहिचानकर, आत्मा का अनुभव करके, भाई ! यह पुण्य और पाप को छोड़। आहाहा ! यह दया, दान, व्रत का विकल्प भी आस्रव है।

मुमुक्षु : सब बात बहुत कठिन लगती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बापू ! मार्ग तो यह है, भाई ! आहाहा ! इसके चार गति के दुःख इसने भोगे हैं, इसकी खबर नहीं। दुःख अर्थात् प्रतिकूलता, वह नहीं। आकुलता, वह दुःख है। प्रतिकूलता से दुःखी, ऐसा नहीं। स्वर्ग में भी आत्मा दुःखी है। आहाहा ! क्यों ? आनन्दस्वरूप में से हटकर उस अनुकूलता की वासना में जहाँ ऐसे आता है, वह अग्नि का दाह है, वह दुःख है, वह दुःख है। समझ में आया ?

कहते हैं, आहाहा ! '**अवियप्पं कम्मरहिएहिं**' जिसे सर्वज्ञपना प्रगट हुआ था, ऐसे परमात्मा ने चारित्र की यह व्याख्या की है। लोग यह बाहर से लगावे व्रत, तप और त्याग।

भाई ! यह तो सब विकल्प की वृत्तियाँ हैं। वह वृत्ति का उत्थान है, भाई ! वह तो वृत्ति आस्रव है। वह संवर धर्म नहीं। आहाहा !

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु, परन्तु वस्तु ही ऐसी है न ? वस्तु ही ऐसी आनन्दमूर्ति प्रभु में स्थिर होना, वह चारित्र है। यह व्रत, तप, और यह करूँ और वह करूँ, वह तो सब विकल्पों का, वृत्तियों का उत्थान राग और दु:ख है। समझ में आया ?

यह राजा के राजकुँवर भी चले जाते हैं। अन्दर से वैराग्य होता है आत्मा का भान, पश्चात् चारित्र के लिये (जंगल में चले जाते हैं)। रानियाँ चोटियाँ खींचे। सोने के रंग जैसी जिन रानियों का शरीर चन्दन, कोमल और अरे ! सुगन्ध मारती हो और भ्रमर (उनके अगल-बगल) घूमा करते हों। अरे ! हमारा आनन्द का नाथ जहाँ भ्रमर आत्मा वहाँ घूमता है, वह हमारा चारित्र है। यह माँस और हड्डियाँ... आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी क्रियाओं में, वासना में भगवान ! मैं अनन्त बार रुक गया। ऐसा कहते हैं। मेरे स्वरूप के आनन्द में मैं आया नहीं। समझ में आया ?

कहते हैं कि देव का परिहार। यह किसने कहा चारित्र ? **घातिकर्म से रहित ऐसे सर्वज्ञदेव ने कहा है।** आहाहा ! यह वस्तु का स्वरूप ऐसा है, वहाँ अब लोग ऐसा कहें कि लो, ऐसा चारित्र नहीं होता, उसे चारित्र नहीं मानते। यह क्रियायें सब करे, उसे चारित्र न माने। बापू ! मार्ग यह नहीं, भाई ! यह तो वस्तु का स्वभाव है, वह मार्ग है। दुनिया मानकर बैठे और न माने, तब (ऐसा कहे कि) उसे मानते नहीं, देव-गुरु को मानते नहीं। कहाँ माने ? भगवान स्वतन्त्र है, भाई ! समझ में आया ? आहाहा !

चारित्र अर्थात् आत्मा के आनन्द का जिसे स्वाद आया है। वह अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया है सम्यग्दर्शन और ज्ञान में। उस स्वाद को विशेष लेने के लिये स्थिर होना, उसका नाम चारित्र है। आहाहा ! ऐई ! प्रकाशदासजी ! क्या हो गया चारित्र में ? आनन्द का नाथ आनन्द का पिण्ड प्रभु है। अतीन्द्रिय आनन्द का सागर आत्मा है। सेठ ! शोभालालजी ! यह तुम्हारा सागर आया। आहाहा !

कहा नहीं ? आकाश और काल का अन्त कहाँ ? भगवान ! वह अन्त नहीं, उसे

जाननेवाले के भाव का अन्त क्या? आहाहा! '**णाणसहावाधियं मुणदि आदं**' राग के विकल्प से भिन्न भगवान, ऐसे पूर्णानन्द के नाथ को पकड़कर जिसने आनन्द का वेदन किया है, वह आनन्द के उग्र वेदन के लिये पुण्य और पाप को छोड़कर स्थिर हो तो आनन्द की उग्रता आवे, ऐसा कहते हैं। पण्डितजी! आहाहा! भाई! यह तो तेरा मार्ग ही यह है न, नाथ! दूसरा कोई मार्ग कहे, उससे क्या हो? उससे सत्य कहीं असत्य हो जाएगा? समझ में आया? अनन्त बार ऐसे दु:ख में पीड़ित होकर अकेला मरा, अकेला जन्मा। कोई सहायक नहीं था साथ में। जन्मते समय था कोई सहायक? मरते हुए?

मुमुक्षु : अभी कौन है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी कौन है? परन्तु यह तो जन्म-मरण के उस समय में ऐसा। 'काढो काढो रे इसे सब कहे। मानो जन्मा ही नहीं था।' देह छूट जाए। बड़ा कमा-कमाकर पाप करके मर गया, सब करके, सब छोड़कर। निकालो, झट निकालो, झट निकालो। पोपटभाई! जल्दी करो। नहीं तो जीवांत पड़ेंगे, और ऐसा कहे। सम्मूर्च्छन, भगवान कहते हैं कि लम्बा काल ... परन्तु झट निकालो। ऐई! सेठ! यह बँगला-बँगला पड़े रहेंगे, हों! आहाहा!

मुमुक्षु : पड़े ही हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पड़े ही हैं उसमें। वे कहाँ घुस गये थे यहाँ? आहाहा!

जिसे जरा भी क्षण भी चैन नहीं पड़ता आत्मा के अतिरिक्त, वह जीव विकल्प का त्याग करके स्वरूप में रमते हैं, उसे चारित्र कहा जाता है। उसे चारित्र, भगवान त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने (चारित्र कहा है)। कहा न? **वह चारित्र घातिकर्म से रहित ऐसे सर्वज्ञदेव ने कहा है।** आहाहा! अभी उसकी श्रद्धा तो करे कि चारित्र ऐसा होता है। समझ में आया?

कैसी है निर्विकल्प प्रवृत्तिरूप क्रिया? **अर्थात् प्रवृत्तिरूप क्रिया के विकल्पों से रहित है...** लो! '**अवियप्पं**' है न? वह चारित्र कैसा है? कि विकल्परहित है। दया, दान, व्रत के विकल्प से रहित चारित्र है। चारित्र नौ तत्त्व में अभी संवर-निर्जरा किसे कहना, उसकी श्रद्धा की खबर न हो। वह तो चारित्र संवर-निर्जरा। इस तत्त्व की खबर न हो और ऐसी श्रद्धा हो जाये। समझ में आया? निर्विकल्प प्रवृत्तिरूप क्रिया। यह समिति, यह पालन

करूँ, इसे न मारूँ, इसका यह करूँ, इसका ध्यान रखूँ, यह सब प्रवृत्तिरूप विकल्प है, वह तो राग है। उन **विकल्पों से रहित है...** आहाहा! कितनी बात! भाई! तब इस चारित्र बिना तेरी मुक्ति कहीं है नहीं। क्योंकि चारित्र अर्थात् स्वरूप में रमणता, रमणता होने पर अस्थिरता नाश हो जाती है। ऐसा इसे श्रद्धा में लेना चाहिए न? समझ में आया? चारित्र ऐसा कहलाये, उसे कहा जाये। आगे कहेंगे। ४२ चलती है न यह? ४३ में कहेंगे। दर्शन की व्याख्या कर गये, ज्ञान की (की), यह चारित्र की। फिर कहेंगे कि शक्ति न हो तो गड़बड़ करना नहीं। श्रद्धा तो सच्ची ऐसी रखना। समझ में आया? यह कहेंगे अभी। फिर आता है, हों! अब इसका भावार्थ ४२ गाथा का।

भावार्थ :- चारित्र निश्चयव्यवहार के भेद से दो भेदरूप है, महाव्रत-समिति-गुप्ति के भेद से कहा है, वह व्यवहार (विकल्प) है। यह तो व्यवहारचारित्र पुण्यबन्ध का कारण। पंच महाव्रत समिति, गुप्ति भेद किया, वह तो व्यवहार है। **इसमें प्रवृत्तिरूप क्रिया शुभकर्मरूप बन्ध करती है...** वह तो पुण्य के बन्ध का कारण है। वह चारित्र है नहीं। इसमें स्पष्टीकरण अधिक नहीं है। पाठ में है न? '**अवियप्पं**' इसका स्पष्टीकरण किया है। पंच महाव्रत के परिणाम, पाँच समिति, गुप्ति, वह तो विकल्प-राग का अंश है, वह तो बन्ध का कारण है। वह सच्चा चारित्र नहीं है।

शुभकर्म बन्ध करती है और इन क्रियाओं में जितने अंश निवृत्ति है, उसका फल बन्ध नहीं है,... अशुभ में, वह शुभ हुआ, उसमें अशुभ है न उतने अंश में बन्ध नहीं होता। **उसका फल कर्म की एकदेश निर्जरा है। सब कर्मों से रहित अपने आत्मस्वरूप में लीन होना, वह निश्चयचारित्र है,...** वह तो शुभ में से लिया अकेला। शुभभाव में जितना अशुभ राग टला है, उतनी उसे निर्जरा पड़ती है। समझ में आया? परन्तु वास्तविक निर्जरा का चारित्र... ऐसा कहते हैं **अपने आत्मस्वरूप में लीन होना, वह निश्चयचारित्र है।** आनन्दस्वरूप भगवान में लवलीन हो जाना आनन्द में... आहाहा! आनन्द... आनन्द अतीन्द्रिय आनन्द में अन्तर (में) जाना, स्थिरता होना, वह चारित्र। **इसका फल कर्म का नाश...** लो! इसका फल सब पुण्य-पाप दोनों का नाश है। कहो, समझ में आया?

यह पुण्य-पाप के परिहाररूप निर्विकल्प है। लो! यह चारित्र तो दया, दान, व्रत के विकल्प से रहित, उसे चारित्र कहा जाता है। **पाप का तो त्याग मुनि के है ही और पुण्य**

का त्याग इस प्रकार है – शुभक्रिया का फल पुण्यकर्म का बन्ध है... देखो! यह महाव्रतादि क्रिया शुभ परिणाम, उसका फल तो बन्ध है। **उसकी वांछा नहीं है, बन्ध के नाश का उपाय निर्विकल्प निश्चयचारित्र का प्रधान उद्यम है?** इस बन्ध के नाश का उपाय स्वरूप में रमणता-चारित्र, वह उपाय है। आहाहा! समझ में आया? **चौदहवें गुणस्थान के अन्त समय में पूर्ण चारित्र होता है, उससे लगता ही मोक्ष होता है, ऐसा सिद्धान्त है।** लो!

गाथा-४३

आगे कहते हैं कि इस प्रकार रत्नत्रयसहित होकर तप संयम समिति को पालते हुए शुद्धात्मा का ध्यान करनेवाला मुनि निर्वाण को प्राप्त करता है –

जो रयणत्तयजुत्तो कुणइ तवं संजदो ससत्तीए।
सो पावइ परमपयं झायंतो अप्पयं सुद्धं।।४३।।

य: रत्नत्रययुक्त: करोति तप: संयत: स्वशक्त्या।
स: प्राप्नोति परमपदं ध्यायन् आत्मानं शुद्धम्।।४३।।

जो रतनत्रय संयुक्त संयत यथा-शक्ति तप करे।
वह शुद्ध आतम ध्यान करता परम पद को प्राप्त है।।४३।।

अर्थ – जो मुनि रत्नत्रयसंयुक्त होता हुआ संयमी बनकर अपनी शक्ति के अनुसार तप करता है, वह शुद्ध आत्मा का ध्यान करता हुआ परमपद निर्वाण को प्राप्त करता है।

भावार्थ – जो मुनि संयमी, पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, यह तेरह प्रकार का चारित्र वही प्रवृत्तिरूप व्यवहार चारित्र संयम है, उसको अंगीकार करके और पूर्वोक्त प्रकार निश्चयचारित्र से युक्त होकर अपनी शक्ति के अनुसार उपवास कायक्लेशादि बाह्य तप करता है, वह मुनि अंतरंग तप ध्यान के द्वारा शुद्ध आत्मा का एकाग्रचित्त करके ध्यान करता हुआ निर्वाण को प्राप्त करता है।।४३।।

(नोंध – जो छठवें गुणस्थान के योग्य स्वाश्रयरूप निश्चय रत्नत्रय सहित है उसी को व्यवहार संयम और व्रतादि को व्यवहार चारित्र माना है।)

गाथा-४३ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि इस प्रकार रत्नत्रयसहित होकर... देखो! **तप संयम समिति को पालते हुए शुद्धात्मा का ध्यान करनेवाला मुनि निर्वाण को प्राप्त करता है :-** पहले दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहा। अब साथ में तप मिलाते हैं।

जो रयणत्तयजुत्तो कुणइ तवं संजदो ससत्तीए।
सो पावइ परमपयं झायंतो अप्पयं सुद्धं।।४३।।

देखो! तीन मिलाकर उपरान्त बात करते हैं अब। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र।

अर्थ :- जो मुनि रत्नत्रयसंयुक्त होता हुआ संयमी बनकर अपनी शक्ति के अनुसार तप करता है.... शक्ति। शक्ति तप त्यागः, आता है न? षोडश (कारण) भावना में। तीर्थंकरपना सोलह प्रकार (कारण) से बँधता है। उसमें आता है शक्ति तप त्यागः। शक्ति से हठ करके करे, वह मार्ग नहीं। सहज स्वभाव में आनन्द में लहर हो, तत्प्रमाण शक्ति से तप, त्याग करे। हठ से अन्दर दुःख होता है, क्लेश लगता है, अरुचि (होती है), वह तो आर्तध्यान है। समझ में आया?

अपनी शक्ति के अनुसार तप करता है... शक्ति प्रमाण तप करे। **वह शुद्ध आत्मा का ध्यान करता हुआ परमपद निर्वाण को प्राप्त करता है।** लो! यह अन्दर संस्कृत में श्लोक है अथवा नियमसार में है, भाई! नियमसार १५४ (गाथा है) और उन्होंने एक दूसरा श्लोक संस्कृत में लिया है। संस्कृत में श्लोक है। ४३ गाथा में श्लोक है। है इसमें।

'जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केइ तं च सद्दहइ।
सद्दहमाणो जीवो पावइ अजरामरं ठाणं॥

(संस्कृत टीका में श्लोक)

है ? है इसमें ? '**जं सक्कइ तं कीरइं**' शक्तिप्रमाण करना। हठ से करने जायेगा तो मिथ्यात्व होगा और पाप का बन्धन होगा, ऐसा कहते हैं। लोग कहते हैं न कि क्यों नहीं ले सकते चारित्र ? क्यों अमुक ? बापू ! वह चारित्र बाहर से ले, वह कोई चारित्र है ? सहज आनन्द में अन्दर उग्र पुरुषार्थ से सहज शक्ति प्रमाण वीतरागता प्रगटे, उसका नाम चारित्र है। समझ में आया ? '**जं सक्कइ तं कीरइं**' शक्ति प्रमाण करना। '**जं च ण सक्केइ तं च सद्दहइ**' न कर सके तो उसकी श्रद्धा बराबर रखना। श्रद्धा में गड़बड़ करना नहीं कि नहीं, ऐसा भी पंचम काल में चारित्रमोह के उदय का जोर हो तो उसका चारित्र ढीला भी हो, अमुक भी हो। ऐसे श्रद्धा का नाश नहीं करना। श्रद्धा में तो जैसा है, वैसा रखना। समझ में आया ?

पंचम काल के प्राणी हैं, संहनन कमजोर है तो उसे ऐसा चारित्र भगवान ने कहा, ऐसा न हो तो यह व्रत आदि पाले तो भी अन्दर लाभ होता है, ऐसा मानना नहीं। यह तेरी श्रद्धा मिथ्यादृष्टि की है। समझ में आया ? '**सद्दहमाणो जीवो**' वास्तविक श्रद्धा रखनेवाला जीव '**पावइ अजरामरे ठाणं**' जिसमें जरा-मरण नहीं, ऐसे मोक्षपद को पाता है। सच्ची श्रद्धा करनेवाला मोक्षपद को पायेगा परन्तु श्रद्धा में गड़बड़ करेगा, वह मिथ्यात्व को पाकर निगोद में जायेगा। कहो, समझ में आया ? यह पंचम काल में भगवान ने कहा ऐसा चारित्र अभी नहीं होता, संहनन नहीं होता। नहीं होता तो न हो भले, उससे क्या ? न हो तो कहीं खोटे में मानना है ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों ओर से भ्रष्ट है। '**अतो भ्रष्ट ततो भ्रष्ट**' गृहस्थाश्रम में रहे, उसे साधुपना है नहीं। आहाहा ! मार्ग ऐसा है।

कहा था न ? (संवत्) १९९० के वर्ष का। एक स्थानकवासी के साधु थे। हम साथ में उतरे थे। चोटीला। बहुत वृद्ध थे। ५५ वर्ष की तब दीक्षा थी। बाद में भी ७५ वर्ष की दीक्षा थी। उनके साथ बात हुई। देखो ! ज्ञानक्रियाभ्याम मोक्ष कहा है। तब तो सम्प्रदाय में थे। वह ज्ञानक्रिया यह नहीं, कहा। कौन सा ज्ञान ? ज्ञान आत्मा का और क्रिया स्वरूप में स्थिर होना, वह (क्रिया)। ज्ञान आत्मा का और पंच महाव्रत के परिणाम क्रिया और

बाहर की प्रवृत्ति क्रिया, दो होकर मोक्ष, ऐसा नहीं है। हाँ, बात तो सच्ची लगती है। स्वीकार किया था। सम्प्रदाय में स्थानकवासी साधु थे। समझ में आया? स्वीकार किया। बात तो सच्ची लगती है। ऐसा व्रत क्यों नहीं करते इस प्रकार का? न करे तो क्या करना? कहा, मार्ग तो यह है। समझ में आया? स्थानकवासी के वृद्ध साधु थे। परन्तु उन्हें अन्दर में ऐसा था कि बात तो सच्ची लगती है।

मैंने तो दो बातें की थीं। एक मूर्ति की की थी। सिद्धान्त में मूर्ति है। उसमें थे सही न इसलिए। बाहर में कहा जाए कहीं? यह बात निकलने पर निकली। दो बातें की थीं। दूसरी बात ९० में ज्येष्ठ महीने में चोटीला में। शास्त्र में प्रतिमा है। सिद्धान्त भगवान के शास्त्र में प्रतिमा है। उसकी पूजा, भक्ति का भाव शास्त्र में है। बात सत्य लगती है। मुझे भी शंका तो हो गयी थी। क्या शंका? शास्त्र में प्रतिमा तो है। परन्तु गुरु पढ़े हुए, शिष्य पढ़े हुए यदि जानेंगे तो यह मूर्ति इसमें है तो हमको नहीं मानेंगे। ऐसा बेचारे बोले थे। ज्ञानक्रियाभ्याम मोक्ष कहते हो, ऐसा कोई अर्थ करते नहीं। नहीं करे तो क्या करना? कहा। (संवत्) ९० के ज्येष्ठ महीने की बात है। फिर ९१ में परिवर्तन यहाँ हुआ। ज्ञानक्रियाभ्याम मोक्ष। उसमें आता है न? भाई! यह बनारसीदास में सात श्लोक। नहीं? सात श्लोक आते हैं न?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। यह क्रिया। महाव्रत की क्रिया नहीं। भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान और भान तथा प्रतीति हुई, पश्चात् उसमें लीनता, लीनता, रमणता, क्रिया और आनन्द में लीन-जम जाना। उसमें जमना, वह क्रिया है, इसका नाम चारित्र है। कहो, समझ में आया?

यहाँ एक बात हुई थी। वे थे न? मन्दिरमार्गी साधु थे। कपूरविजय थे। हम यहाँ थे तब। (संवत्) १९९१ में। सद्गुणानुरागी कहलाते श्वेताम्बर में। नरम व्यक्ति थे। प्रकृति नरम। उसकी बात आयी थी कि यहाँ आओ पधारो महाराज तुम। यहाँ कोई पढ़नेवाला नहीं है, आप वाँचन करो, ऐसा कहते थे। १९९२ की बात है। वहाँ तो गुजर गये बेचारे। परन्तु फिर एक यहाँ कामदार थे कान्तिलाल (नाम के) कामदार, वे सुनने आते थे यहाँ।

हीराभाई के मकान में थे न? वे वहाँ गये होंगे उन्होंने कहा, एक महाराज ऐसा कहते हैं कि ज्ञान और क्रिया अर्थात् आत्मा की स्थिरता, वह चारित्र। यह नहीं। यह कौन कहता है? वह तो नरम थे। एक महाराज कहते हैं। ज्ञान अर्थात् राग से भिन्न आत्मा का ज्ञान और क्रिया अर्थात् स्वरूप में लीनता। पंच महाव्रत की प्रवृत्ति और अपवास की क्रिया, वह क्रिया नहीं। वह अपवास बहुत करते, आम्बेल बहुत करते थे। हें? हाँ, फिर उन्होंने नाम दिया। बात तो सच्ची लगती है। समझ में आया? परन्तु वापस जाना कहाँ? ५०-५० वर्ष से मुंडकर बैठे हों, मान हो, बड़ी इज्जत हो, वह छोड़ी कैसे जाये? समझ में आया? वे बेचारे कहते, हों! कपूरविजय थे। बहुत ... भावनगर में। यह दादासाहेब का मन्दिर है न? वहाँ मिले थे। यह वस्तु क्या है? भाई चेतनजी तो पहिचानते हैं। कपूरविजय को। यह तो पहिचानते हैं न? परन्तु नरम व्यक्ति थे, हों! प्रकृति नरम। यह वस्तु न मिले तो क्या करे?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कपूरविजय। कपूरविजय न?

मुमुक्षु : सद्गुणानुरागी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, सद्गुणानुरागी, वे कपूरविजय। सद्गुणानुरागी ऐसा उनका वह था। बहुत नरम व्यक्ति। यहाँ हमें कहलवाया। कहा, हम तो कहीं जाते नहीं। उन्हें भी वे कान्तिभाई थे न? भाई! वे कान्तिभाई कामदार ने बात की। ऐसा एक महाराज वहाँ कहते हैं। तुम कहते हो कि यह ज्ञान अर्थात् यह शास्त्र का पठन और आम्बेल, ओली और अपवास करना, यह क्रिया। वे दोनों से इनकार करते हैं। आत्मा का ज्ञान राग से भिन्न, चैतन्य जड़ से भिन्न-ऐसा अन्तर का भान। और उसमें स्थिरता उसे क्रिया-चारित्र कहते हैं। बाहर आ गयी थी। १९९२ के वर्ष की बात है। ८ और २६, ३४ वर्ष हुए।

यहाँ भगवान कहते हैं कि ऐसा यदि तुझसे पालन नहीं किया जा सके तो ... श्रद्धा रखना। गड़बड़ नहीं करना कि ऐसा भी चारित्र पंचम काल में होता है। ऐसी गड़बड़ करना नहीं, श्रद्धाभ्रष्ट हो जायेगा। समझ में आया? और अपने उसमें भी है। यह नियमसार १५४ (गाथा)। देखो! कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा है। १५४। नियमसार। '**जदि सक्कदि कादुं जे पडिकमणादिं करेज्ज झाणमयं।**' ध्यान में रहना, वह क्रिया है। यह प्रतिक्रमण, सामायिक

वह सब अन्तर आनन्द के ध्यान में रहना, इसका नाम प्रतिक्रमण और सामायिक है।

'जदि सक्कदि कादुं जे' यदि किया जा सके तो अहो! ध्यानमय प्रतिक्रमणादि कर... समझ में आया? प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, प्रायश्चित यह सब क्रियायें ध्यान की हैं। उस ध्यान में अन्दर आनन्द में ध्यान में क्रिया हो, उसे निश्चय प्रतिक्रमण कहा जाता है। **यदि तू शक्तिविहीन हो तो तब तक श्रद्धान ही कर्तव्य है।** १५४ गाथा नियमसार। कुन्दकुन्दाचार्य। यदि तुझे यह चारित्र ध्यान में स्थिरता का प्रसंग न हो, इतनी शक्ति न हो तो श्रद्धा सच्ची रखना कि ध्यान में स्थिरता होती है। आहाहा!...

क्या कहते हैं भगवान कुन्दकुन्दाचार्य? कि निश्चय प्रतिक्रमण तो आत्मा के सम्यग्दर्शन भानसहित अन्दर ध्यान में रहना, वह निश्चय प्रतिक्रमण है। अमरचन्दभाई! निश्चय प्रत्याख्यान, उस आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान के भानसहित स्वरूप में स्थिर होना आनन्द में, वह निश्चय प्रत्याख्यान है। निश्चय प्रायश्चित? वह भी रागरहित स्वरूप में वीतरागता में रमणता, वह निश्चय प्रायश्चित है। उसे यदि न कर सके तो श्रद्धा बराबर रखना। श्रद्धा में गड़बड़ करना नहीं कि नहीं... नहीं... यह तो ऐसा भी होता है और ऐसा भी होता है, पंचम काल है, इसलिए ऐसा होता है। रहने दे, श्रद्धाभ्रष्ट हो जायेगा। देखो! **तब तक श्रद्धान ही कर्तव्य है।** अपने इसका गुजराती हरिगीत है न?

'यदि कर सके तो प्रतिक्रमण आदि ध्यानमय करना अहो!' विकल्प की वृत्तियाँ पुण्य की छोड़कर ध्यान में रहना, वही प्रतिक्रमण आदि है। **'कर्तव्य है श्रद्धा ही, शक्तिविहीन यदि तू होय तो।' 'कर्तव्य है श्रद्धा ही, शक्तिविहीन यदि तू होय तो।'** अपनी ताकत चारित्र की, ध्यान की इतनी न हो तो तू श्रद्धा में तो बराबर रखना। ध्यान में निर्विकल्प आनन्द में रहना, वह प्रतिक्रमण है, वह प्रत्याख्यान है, वह चारित्र है, ऐसी श्रद्धा तो पक्की रखना। समझ में आया? अब एक श्लोक दूसरा कुछ है अन्दर। यह श्लोक दूसरा है। यह नियमसार का है। वह श्लोक दूसरा है। आधार नहीं दिया। उसमें आधार है।

यहाँ कहते हैं— **अर्थ :- जो मुनि रत्नत्रयसंयुक्त होता हुआ...** सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र स्वरूप में-आनन्द में रहनेवाला होने पर भी **संयमी बनकर अपनी शक्ति के अनुसार तप करता है।** इच्छा निरोध करके आनन्द में विशेष उग्ररूप से पुरुषार्थ करे। **वह**

शुद्ध आत्मा का ध्यान करता हुआ... निर्जरा में आता है न? शुद्ध आत्मा का ध्यान करने से शुद्धता प्राप्त होती है। आता है निर्जरा (अधिकार समयसार में)? '**सुद्धं तु**' '**सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धं चेवप्पयं लहदि जीवो**' और मैं दोषवाला हूँ, रागवाला हूँ, मलिन हूँ, ऐसा माननेवाले मलिनपने को प्राप्त होते हैं। समझ में आया? है या नहीं? किसमें? समयसार, निर्जरा अधिकार।

मुमुक्षु : संवर अधिकार।

पूज्य गुरुदेवश्री : संवर-संवर। १८६ गाथा। संवर (अधिकार) की १८६ गाथा।

सुद्धं तु वियाणंतो सुद्धं चेवप्पयं लहदि जीवो।
जाणंतो दु असुद्धं असुद्धमेवप्पयं लहदि ॥१८६॥

जो शुद्ध जाने आत्म को वह शुद्ध आत्मा ही प्राप्त हो,... मैं निर्मल हूँ, शुद्ध हूँ— ऐसा ज्ञान में, लक्ष्य में, दृष्टि में लेकर शुद्ध आत्मा का जो ध्यान करे, वह शुद्ध आत्मा को पाता है। **अशुद्ध जाने आत्म को वह अशुद्ध आत्मा ही प्राप्त हो...** परन्तु मैं रागवाला और मलिन हूँ, अशुद्ध हूँ, ऐसा जो माने, उसे अशुद्धता की प्राप्ति होती है। आहाहा! ऐई! जयसागरजी! जयकुमार का जयसागर हो गया। अच्छा न, हो तो बहुत अच्छा था। आहाहा! धन्य अवतार! बापू! देखा! **शुद्ध आत्मा को जानता हुआ-अनुभव करता हुआ जीव शुद्ध आत्मा को ही प्राप्त करता है। अशुद्ध आत्मा को जानता-अनुभव करता हुआ जीव अशुद्ध आत्मा को ही प्राप्त होता है।** मलिनता को पाता है। जहाँ जिसकी दृष्टि, वहाँ उसकी सृष्टि होती है। आहाहा! समझ में आया? समयसार में तो समुद्र भरे है, एक-एक गाथा की टीका में।

यहाँ आचार्य कहते हैं कि **जो मुनि संयमी पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति यह तेरह प्रकार का चारित्र वही प्रवृत्तिरूप व्यवहारचारित्र...** यह व्यवहारचारित्र। **संयम है, उसको अंगीकार करके...** यह व्यवहार अर्थात् पुण्य विकल्प। **पूर्वोक्त प्रकार निश्चयचारित्र से युक्त होकर...** और अन्तर में आनन्दसहित की स्थिरतावाले-चारित्रवाले हुए। **अपनी शक्ति के अनुसार उपवास कायक्लेशादि...** देखो! क्योंकि वह उसे हठ से न करे। सोलह प्रकार के है न? शक्ति तप त्याग। है वह विकल्प। तीर्थंकरगोत्र बँधता है

न ? शक्ति तप त्याग, वह विकल्प है। परन्तु उसे ऐसा विकल्प आता है कि मेरी पुरुषार्थ की गति इतनी है, भाई! अधिक मेरी गति काम नहीं करती। इस प्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित शक्ति प्रमाण तप और त्याग अन्दर राग का अभाव हो तो उसमें विकल्प है, वह तीर्थंकरगोत्र बाँधता है। समझ में आया ? सोलहकारण आता है न ? सोलहकारण भावना ? शक्ति तप त्यागः। है तो विकल्प, राग। परन्तु उसके विचार में ऐसा है कि मेरी पुरुषार्थ की उग्रता हो उतना मैं त्याग करूँ। मुझमें पुरुषार्थ कम हो और हठ करके बैठे दस अपवास, पाँच अपवास सबके साथ होड़ाहोड़... पोपटभाई! अपवास-बपवास किये हैं या नहीं थोड़े ? एकाध किया होगा। दो-तीन किये हैं।

कहते हैं, **अपने शक्ति अनुसार...** शक्ति अनुसार अर्थात् ? शक्ति अनुसार अर्थात् शक्ति प्रमाण। भाषा है न ? शक्ति प्रमाण अन्दर... करके जाने कि इसमें से हठ हो जाएगी। मेरी शक्ति नहीं और हठ होगी तो ऐसा त्याग ज्ञानी नहीं करता। समझ में आया ? आहाहा! तब और ऐसा कोई कहे कि यदि शक्ति कम है, तब उसमें कर्म का जोर है या नहीं ? कर्म के जोर के कारण शक्ति कम है या नहीं ? नहीं; ऐसा नहीं। पुरुषार्थ की अपनी ही मन्दता है। वह अपने कारण से है। उग्र पुरुषार्थ करके चारित्र में रहना, ऐसी पुरुषार्थ गति नहीं, वह अपने पुरुषार्थ की कचास है। कर्म के कारण से नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध नहीं शुभ, पुण्य। राग, मैल, जहर। और रागरहित स्वरूप में रमणता, वह अमृत, वह अनास्रव, वह संवर, वह निर्जरा और वह चारित्र। होता है, वह बताया है।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभ होता है, निश्चय होता है वहाँ। निश्चय में आत्मा का ध्यान, ज्ञान, चारित्र हो, वहाँ ऐसे विकल्प होते हैं परन्तु शुभ प्रवृत्ति बन्ध का कारण है। जिसे निश्चय का भान नहीं, उसे तो शुभ आचार की बात है ही नहीं यहाँ। अन्ध है, उसे शुभ कहाँ से लाया ? परन्तु जिसे आत्मा जागृत हुआ है। समझ में आया ? 'जागकर देखूँ तो जगत दिखे नहीं।' अपने में, हों! जगत जगत में है। 'जागकर देखूँ तो जगत दिखे नहीं,

नींद में अटपटे खेल भासे।' अज्ञान में सब उल्टा लगता है कि मैं मैला हूँ, शरीरवाला हूँ, कर्मवाला हूँ, यह सब अज्ञान में भासित होता है। ज्ञान का भास होने पर जगत-बगत, राग-बाग आत्मा में है नहीं। जगत में जगत है। जगत में जगत नहीं, ऐसा नहीं है। ब्रह्म सत्य और जगत मिथ्या, इसलिए जगत नहीं है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आती है न वेदान्त की बात? 'अखा भगत' और बहुत सब आते हैं। 'अंधारो कूवो निर्णय करीने कोई न मूवो' ऐसा आता है उसमें। सब निर्णय करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करके बहुत मोक्ष गये। समझ में आया? भान नहीं न, इसलिए फिर बेचारे ऐसा कह गये। अखो कहे, यह सब दर्शन है न छहों। अखो कहे अन्धारो कूवो। क्या कहा फिर बाद में? 'अखो कहे अंधारो कूवो...'

मुमुक्षु : झगड़ो...

पूज्य गुरुदेवश्री : झगड़ो हाँ, बस यह। शब्द आना चाहिए न सरीखा। 'झगड़ो भांगी कोई न मूवो।' ऐसा कुछ है। ऐसे झगड़े तोड़कर अनन्त मोक्ष पधारे। उन्हें तो कुछ खबर नहीं थी वस्तु की। यह बात सच्ची।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर नहीं पड़ी? अच्छा। 'अखा भगत' एक हो गये हैं। 'अखो कहे अंधारो कूवो...' अर्थात् यह क्या चीज़ है, इसकी हमें कुछ खबर नहीं पड़ती। कोई कुछ कहे... कोई कुछ कहे... कोई कुछ कहे... अंधारो कूवो। अंधारो कूवो समझे न? कुँए में अन्धेरा। अन्धकारमय कुँआ। 'झगड़ा भांगी कोई न मूवा।' यह सब षट्दर्शन में यह सच्ची बात है, ऐसा निर्णय किये बिना सब मर गये, कहते हैं। ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सब सही। जिसने सर्वज्ञपद से की, उसकी खरी बात है। इसके अतिरिक्त अज्ञानियों ने अन्ध ने की, वह सब सच्ची बात नहीं है। ऐसी बात है। नहीं, ऐसा नहीं। किसी ने सही बात नहीं की, उसका कहना है।

सर्वज्ञ परमेश्वर ने आत्मा पूर्णानन्द का नाथ देखा और प्रगट करके परमात्मपद प्राप्त किया। ऐसे अनन्त परमात्मा हो गये, अनन्त सन्त हो गये। आहाहा! लोग कहते हैं न अभी तक कोई धर्मी हुआ ही नहीं। रजनीश ऐसा कहता है। ऐई! तुम्हारा। वह और उसमें लिखा

था एक बार। सन्त तारण शून्य का कहते हैं। परन्तु तुझे कहाँ से ? सन्त तारण दूसरी बात करते हैं। वह तो अस्तिपने का महा भगवान पूर्णानन्द अस्तिपने की दृष्टि करने से विकल्प की शून्यता हो जाए, ऐसा वे कहते हैं। शोभालालजी ! सन्त तारणस्वामी तो ऐसा कहते हैं कि भगवान ! तू तो परमात्मा शून्य निर्विकल्प है न, ऐसी अन्तर्दृष्टि करने से विकल्प से शून्य हो जा। ऐसा वे कहते हैं। ऐई ! यह सब अर्थ करने में अपनी दृष्टि से उल्टे करे और तुमको–सुननेवाले को कुछ खबर नहीं होती। जय नारायण।

मुमुक्षु : न करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : न किया जाये ? ऐसा कहते हैं। भान न हो तो क्या इनकार करे और हाँ करे। कुछ होंगे, कहते होंगे।

यहाँ कहते हैं शक्ति। आचार्य ने शब्द बहुत सरस रखा है। आहाहा ! शक्ति के पुरुषार्थ के परिणाम को देखना कि मेरे परिणाम कैसे वर्तते हैं और इस परिणाम में कितनी जागृति और कितनी अस्थिरता है ? समझ में आया ? ऐसा करके अन्दर में तप का भाव लेना। ... अर्थात् बिना भान के लाओ महीने के अपवास कर डालें, अमुक कर डालें। हद हो जायेगी, मर जायेगा फिर। समझ में आया ?

देखो ! आचार्य स्वयं कहते हैं। '**रयणत्तयजुत्तो कुणइ तवं संजदो ससत्तीए**।' है न ? ४३ गाथा। तेरी शक्ति प्रमाण करना। आहाहा ! सेठ ! पण्डितजी ! ४३ गाथा, देखो ! ४० और ३। शक्तिसहित। शक्ति हो तत्प्रमाण करना। श्रद्धा में शक्ति हो, तत्प्रमाण करना, ऐसा नहीं। श्रद्धा तो पूर्ण निर्विकल्प आनन्दघन है, उसकी श्रद्धा पूर्ण करना। चारित्र और तप में शक्ति प्रमाण करना। चारित्र में क्रम पड़ता है। लाखों–करोड़ों वर्षों तक चारित्र न हो। लो ! ऋषभदेव भगवान, चौरासी लाख पूर्व तक चारित्र नहीं था। समकित था। ... वह चारित्र कहीं झट आ जाता होगा ?

मुमुक्षु : पूर्व का उदय भोगते...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं... नहीं... नहीं। पुरुषार्थ की कमजोरी। वर्तमान पुरुषार्थ की कमजोरी। पूर्वकर्म का कुछ नहीं। पुरुषार्थ की कमजोरी क्यों ? क्यों क्या पुरुषार्थ की कमजोरी / निर्बलता है, स्वयं के कारण से। पुरुषार्थ तो यह ही ...

जो कोई शुद्धात्मा को ध्याते हुए परमपद को पाता है। लो! **अपनी शक्ति के अनुसार उपवास, कायक्लेशादि बाह्य तप करता है, वह मुनि अन्तरंग तप ध्यान के द्वारा शुद्ध आत्मा का एकाग्र चित्त करके ध्यान करता...** देखा! यह तप। अन्तरंग तप तो उसे कहते हैं कि आत्मा के आनन्द में लीन एकाग्र हो, उसका नाम तप है। परन्तु ऐसे तप में बाह्य विकल्प में हावे तो उसे जैसी शक्ति हो, उस प्रमाण उपवास आदि करे। **निर्वाण को प्राप्त करता है।** लो! वह जीव निर्वाण को पाता है। बहुत सरस गाथा थी।

श्रद्धा और सम्यग्ज्ञान में क्रम नहीं पड़ता। अर्थात् कि पहले थोड़ी श्रद्धा हो और पश्चात् अधिक श्रद्धा हो, ऐसा नहीं होता। श्रद्धा तो पूरी एक साथ होती है। पूर्ण निर्विकल्प आत्मा परमानन्द प्रभु हूँ, ऐसी श्रद्धा एक समय में पूरी एकसाथ होती है। सम्यग्ज्ञान भी भले विशेष ज्ञान न हो, परन्तु सम्यग्ज्ञान जो होता है, सम्यग्दर्शनपूर्वक सम्यग्ज्ञान एक साथ ही होता है। पहले थोड़ा अज्ञान हो, थोड़ा ज्ञान, और फिर अज्ञान हो, ऐसा नहीं। अज्ञान बिल्कुल टलकर आत्मा की ओर का ज्ञान हो, उसमें कोई क्रम नहीं पड़ता। चारित्र में क्रम पड़ता है। चारित्र में क्रम पड़ता है। स्थिरता थोड़ी हो, विशेष हो। श्रद्धा-ज्ञान में क्रम नहीं पड़ता। लो! इस प्रकार वस्तु का स्वभाव है। ऐसा ही भगवान ने कहा है, देखा है, जाना है, ऐसे स्वयं अन्दर में वर्ते हैं।

आगे कहते हैं कि ध्यानी मुनि ऐसा बनकर परमात्मा का ध्यान करता है :- ऐसे ध्यान में आनन्दकन्द में विशेष ले गये, देखो अब। तप, दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, ध्यान में। एकाग्रता विशेष कैसी करे, यह कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-४४

आगे कहते हैं कि ध्यानी मुनि ऐसा बनकर परमात्मा का ध्यान करता है –

तिहि तिण्णि धरवि णिच्चं तियरहिओ तह तिएण परियरिओ।
दोदोसविप्पमुक्को परमप्पा झायए जोई।।४४।।

त्रिभिः त्रीन् धृत्वा नित्यं त्रिकरहितः तथा त्रिकेण परिकरितः।
द्विदोषविप्रमुक्तः परमात्मानं ध्यायते योगी।।४४।।

जो तीन से त्रय-धार त्रिक से रहित त्रय-संयुक्त हो।
परमात्मा ध्याता सदा दो दोष-विरहित योगि जो।।४४।।

अर्थ – 'त्रिभिः' मन वचन काय से 'त्रीन्' वर्षा, शीत, उष्ण तीन कालयोगों को धारण कर 'त्रिकरहितः' माया, मिथ्या, निदान तीन शल्यों से रहित होकर 'त्रिकेण परिकरितः' दर्शन, ज्ञान, चारित्र से मंडित होकर और 'द्विदोषविप्रमुक्तः' दो दोष अर्थात् राग-द्वेष इनसे रहित होता हुआ योगी ध्यानी मुनि है वह परमात्मा अर्थात् सर्वकर्म रहित शुद्ध परमात्मा उनका ध्यान करता है।

भावार्थ – मन-वचन-काय से तीन काल योग धारण कर परमात्मा का ध्यान करे, इस प्रकार कष्ट में दृढ़ रहे तब ज्ञात होता है कि इसके ध्यान की सिद्धि है, कष्ट आने पर चलायमान हो जाय, तब ध्यान की सिद्धि कैसी ? चित्त में किसी भी प्रकार की शल्य रहने से चित्त एकाग्र नहीं होता है, तब ध्यान कैसे हो ? इसलिए शल्य रहित कहा, श्रद्धान, ज्ञान, आचरण यथार्थ न हो तब ध्यान कैसा? इसलिए दर्शन, ज्ञान, चारित्र मंडित कहा और राग-द्वेष-इष्ट-अनिष्ट बुद्धि रहे तब ध्यान कैसे हो ? इस तरह परमात्मा का ध्यान करे यह तात्पर्य है।।४४।।

प्रवचन-७९, गाथा-४४, गुरुवार, भाद्र शुक्ल ३, दिनांक ०३-०९-१९७०

४४वीं गाथा। आत्मा को मोक्ष कैसे होता है? इसका अर्थ कि आत्मा में संसारभाव पड़ा है। समझ में आया? वस्तु है, उसमें संसारभाव नहीं द्रव्य और गुण जो है, वह तो

संसारभाव से रहित है। संसारभाव अर्थात् उदयभाव। उससे रहित आत्मा है। पर्याय में उससे रहित होना, इसका नाम मोक्ष। परन्तु उसे द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान होना चाहिए। वस्तु है, वह त्रिकाल आनन्द शुद्ध है, उसका गुण भी त्रिकाल पूर्ण शुद्ध है। उसके लक्ष्य बिना अनादि से मिथ्यात्व और राग-द्वेष के भाव से दु:खी हुआ, संसार में भटकता है। वह भटकने का जिसे बन्द करना हो तो उसे क्या करना? यह बात है। क्योंकि भटकने की तेरी पर्याय वह दु:खरूप है। उस दु:ख के नाश के लिये जिसमें दु:ख नहीं ऐसा आत्मा है, उसे बराबर ज्ञान में, ध्यान में लेकर उसमें एकाकार होना, वह दु:ख से मुक्त होने का उपाय है। कहो, समझ में आया? यह कहते हैं।

ध्यानी मुनि... मोक्ष के मुख्य कारण की बात है न? मुनि हैं, वे दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित हैं, इसीलिए वे मोक्ष जाने को, मोक्ष होने को योग्य है। उन्हें भी ध्यान करना, मुनि को भी परमात्मा का ध्यान करना। परमात्मा अर्थात् स्वयं परमस्वरूप। आनन्द, ज्ञान, शान्ति, वीतराग मुद्रा, जिसका वीतरागस्वभाव, उसकी दृष्टि करके उसका ज्ञान किया है। उसे उसमें लीन और एकाग्र होना, वह मोक्ष का उपाय है। यह कहते हैं, देखो!

तिहि तिण्णि धरवि णिच्चं तियरहिओ तह तिएण परियरिओ।
दोदोसविप्पमुक्को परमप्पा झायए जोई।।४४।।

अर्थ :- मन-वचन-काय से... 'तिहि' इसका अर्थ यह है कि मन, वचन और काया है और उसकी ओर के झुकाव में कम्पन भी अन्दर प्रदेश में है। तथा मन, वचन और काया की ओर के झुकाव में शुभ और अशुभ विकल्प और राग है। तीन योग रहित होना। क्योंकि तीन योग स्वरूप में नहीं है। वे तीन योग मन, वचन और काया, उससे रहित और **वर्षा, शीत, उष्ण, तीन कालयोगों से...** ये तीनों सर्दी, गर्मी और चातुर्मास तीनों में यह करना है। समझ में आया? यह चातुर्मास में पाक पके और गर्मी खाया जाये और सर्दी में ठण्ड लगे तो कपड़ा-बपड़ा (ठीक से पहनना), वह नहीं, यह तो तीनों ऋतु में परमात्मा मुनि को आत्मा का ध्यान करना, यह एक ही मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया?

और **त्रिकरहित माया, मिथ्या, निदान तीन शल्यों से रहित होकर,...** जिसे आत्मा का कल्याण करना है, उसे कपट और मायाभाव नहीं होना चाहिए। समझ में आया?

माया, मिथ्या,... श्रद्धा—उल्टी मान्यता, पर्यायबुद्धि, राग से लाभ होता है, निमित्त से मुझमें कल्याण होता है—ऐसा जो मिथ्यादर्शन का भाव, उससे इसे रहित होना चाहिए। समझ में आया? द्वेष से लाभ हो, राग से लाभ हो, ऐसी जो मिथ्यात्वबुद्धि उससे इसे रहित होना चाहिए। क्योंकि आत्मा में वह है नहीं। जिसे आत्मा का ध्यान करना हो और मुक्ति चाहिए हो, आनन्द चाहिए हो, उसे यह करना। आहाहा! समझ में आया?

माया, मिथ्या, निदान... अपने तो शास्त्र में आता है—नि:शल्यो व्रती। चारित्रवन्त उसे कहते हैं कि जिसे मिथ्यादर्शन शल्य न हो। मिथ्यादर्शन शल्य हो तो उसे चारित्र नहीं होता तो वह ध्यान करने के योग्य नहीं है। देखो! यह ३६३ पाखण्ड मिथ्यात्व है और जैन में रहे परन्तु शुभराग और देह की क्रिया और मन की क्रिया से आत्मा को लाभ होता है, यह मान्यता मिथ्यात्व शल्य है। इस मिथ्या शल्य के नाश बिना आत्मा की ओर का झुकाव, ध्यान, चैतन्य को ध्येय बनाकर उसमें रहना, यह नहीं हो सकता। जब तक मिथ्यात्वभाव है, तब तक स्वभावसन्मुख (नहीं हो सकता)। मिथ्यात्वभाव बहिर्मुख है। मिथ्यात्वभाव में तो बहिर भाव है। यह निमित्त से लाभ होता है, राग से लाभ होता है, पुण्य से लाभ होता है, इस देह की क्रिया से दूसरों का भला कर दे, दूसरे से मुझमें भला होता है। यह सब बहिर बुद्धि है। इस बहिर बुद्धि का नाश हुए बिना अन्तर्मुख बुद्धि नहीं हो सकेगी, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? नि:शल्यो व्रति।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पहले से।

मुमुक्षु : सम्यग्दृष्टि को?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दृष्टि को शल्य होता ही नहीं। मिथ्यात्व का शल्य नहीं होता और व्रती में माया और निदान तीनों नहीं होते। सम्यग्दृष्टि को मिथ्यात्व नहीं होता। बाकी अभी दूसरे कपट आदि भाव होते हैं। परन्तु निदान और शल्य आदि नहीं होते। शल्य नहीं है।

मुमुक्षु : माया?

पूज्य गुरुदेवश्री : माया होती है परन्तु वह माया शल्यरूप माया नहीं है। आहाहा!

शल्य अन्दर खटके... खटके। सूक्ष्म शल्य। जैसे लगा हुआ बाण हड्डी–माँस में खटकता है, उसी प्रकार खटक–खटक कपट माया की जीव को स्वरूप सन्मुख की सावधानी होने का अवसर नहीं आता। सरलपने का मार्ग है। समझ में आया? होवे कुछ, मानना कुछ, मनवाना कुछ, ऐसा जहाँ कपटभाव है, वह आत्मा की ओर नहीं जा सकेगा? परन्तु उसकी बुद्धि बाहर के लिये है। इसी तरह निदान। किसी भी फल की इच्छा। कुछ स्वर्ग मिले, अनुकूलता मिले, भव मिले ऐसा, ऐसी शल्य जिसे होती है, उसे आत्मा की ओर झुकाव नहीं हो सकता।

मुमुक्षु : निदान में पुण्य की वांछा?

पूज्य गुरुदेवश्री : वांछा। निदान। इच्छा से कुछ भी प्राप्त करना। यह करूँगा तो मुझे कुछ मिलेगा, स्वर्ग मिलेगा, इज्जत मिलेगी, पुण्य मिलेगा, राजा होऊँगा इत्यादि–इत्यादि इच्छा, वह सब निदान है। अन्दर की गहराई में जब तक ऐसा अभिप्राय रहे, उसे स्वभाव सन्मुख होने का अवसर नहीं है, ऐसा आचार्य कहते हैं, देखो!

तीन शल्यों से रहित होकर,... 'त्रिकेण परिकरितः' तीन से घिरा हुआ। (सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र से घिरा हुआ।) **दर्शन, ज्ञान, चारित्र से मण्डित होकर...** आहाहा! जिसे आत्मा ध्रुव का ध्यान करके ध्रुव को पकड़कर सम्यग्दर्शन हुआ है, उसे ध्रुव का ज्ञान हुआ है और ध्रुव में रमणता जिसे हुई है, ऐसे दर्शन–ज्ञान–चारित्रवन्त को स्वभाव की एकाग्रता ध्यान करने का अवसर है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **दर्शन, ज्ञान, चारित्र से मण्डित होकर...** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र। दर्शन की प्रधानता तो पहले कह गये हैं, पश्चात् ज्ञान की कही, पश्चात् चारित्र की कही, पश्चात् तप की कही थी और यहाँ ध्यान की कहते हैं। एक–एक गाथा में बढ़ाते जाते हैं। समझ में आया?

आता है न शब्द, कलश में? निभ्रत। निभ्रत है न? निभ्रतः, उसके लिये यह है। जो चिन्ता से रहित है। बाहर की चिन्ता का जिसे खटकभाव निकल गया है। यह तो अन्तर की धीरज की बातें हैं। यह कहीं बाहर से मिल जाये, ऐसी चीज़ नहीं है। भगवान परमात्मस्वरूप पूरा पूर्ण प्रत्यक्ष पड़ा ही है। समझ में आया? स्वयं परमात्मा पूर्णानन्द पूर्ण परमात्मा, पूर्ण स्वरूप ही प्रत्यक्ष ही द्रव्यस्वभाव पड़ा ही है। कहीं बाहर से लाना पड़ता

नहीं। आहाहा! ऐसे द्रव्यस्वभाव की जिसे दृष्टि हुई नहीं, वह उसकी ओर कैसे ढलेगा? ध्यान में ध्यान उसका तो पर में जायेगा। समझ में आया? और जिसका ज्ञान स्वसन्मुख का झुका हुआ स्वसंवेदन हुआ नहीं और अकेले पर का ज्ञान हुआ है, वह अन्तर में नहीं झुक सकेगा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ध्यान। समझे बिना ध्यान करे, ऐसे बैठा रहे, क्या करे? उसका भान ही नहीं। लोग बातें करते हैं कि हम ध्यान करते हैं। दो घड़ी को उठकर ऐसे करते हैं। परन्तु किसका ध्यान? अभी वस्तु क्या है? उसकी पर्याय में भूल क्या है? और भूल टालने का उपाय क्या है? समझ में आया? इसकी तो खबर नहीं होती और ध्यान करते हैं ध्यान। निर्विकल्प हो जाओ... निर्विकल्प हो जाओ। सेठ!

मुमुक्षु : शून्य हो जाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : शून्य हो जाओ। क्या शून्य हो जाये? कहाँ से? आत्मा ही स्वयं विकल्प से रहित है और पूर्णानन्दस्वभाव से पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण भरपूर है। सोहम, वह मैं आत्मा। सोहम विकल्प नहीं, हों! पूर्ण आनन्द और ज्ञान, पूर्ण श्रद्धा और आनन्द के स्वभाव की सत्ता का दल, महा परिपूर्ण स्वभाव से भरपूर तत्त्व, उसमें कहते हैं कि उसे दर्शन उसका होना चाहिए।

उसकी प्रतीति अन्दर में ज्ञान करके होना चाहिए। उसका ज्ञान करके प्रतीति, हों! ऐसी की ऐसी प्रतीति काम नहीं आती। वस्तु का ज्ञान में भास होकर और प्रतीति होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है। और उस वस्तु का ज्ञान स्वसंवेदन ज्ञान, उसे ध्यान हो सकता है। अकेले शास्त्र के ज्ञान और बाहर का ज्ञान, उससे आत्मा की ओर नहीं झुक सकता, ऐसा कहते हैं। पण्डितजी! लोगों को बहुत कठिन लगता है। भाई! मार्ग तो ऐसा है। क्योंकि ऐसी दिशा है, उसकी दिशा बदल डालना। जो दृष्टि अनादि की संयोग के ऊपर, विकार के ऊपर और पर्याय के ऊपर है, उस दृष्टि को अन्तर में झुकाना, वह कोई अपूर्व पुरुषार्थ है या साधारण है? अपवास कर डालना पन्द्रह दिन, महीने का, वह सरल है। क्योंकि महीने-महीने के अपवास अनन्त बार किये। बारह-बारह महीने, छह-छह महीने

के अपवास अनन्त बार किये। वे सरल हैं। उसमें क्या है ? राग की कोई मन्दता और शल्य तो मिथ्यात्व का साथ में पड़ा है। परन्तु अन्तर्मुख होकर, बहिर्मुख से हटकर अन्तर्मुख होना, वही पुरुषार्थ है।

बहिर्मुख का पुरुषार्थ, उसे नपुंसक पुरुषार्थ गिना है। आहाहा! शुभभाव के पुरुषार्थ को भी नपुंसक गिना है। पुरुषार्थ तो उसे कहते हैं कि जहाँ स्वभाव जिसमें अनन्त-अनन्त पुरुषार्थ का पिण्ड भगवान स्थित है, उसकी ओर के पुरुषार्थ को पुरुषार्थ कहा जाता है। यह तो मोक्ष का अधिकार है, इसलिए इसमें अकेला माल ही भरा हुआ है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि न हो, उसे भी इस प्रकार से स्वभाव की सन्मुख का ध्यान करने से समकित होता है। दूसरे प्रकार से समकित नहीं होता। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : संचालन (प्रबन्धन) के घर में रहा। संचालन, संचालन के कारण से होता है। होवे तो क्या है ? अन्तरंग की दृष्टि में उससे रहितपने होना, उसमें कहाँ वह संचालन बाधक है ? छह खण्ड का राज हो समकिती को। छियानवें हजार स्त्रियाँ हों। उनमें से बाहर से छूटे तो ध्यान कर सके, ऐसा नहीं है। अन्तर से छूटे, वह ध्यान कर सकता है, ऐसी यहाँ बात चलती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : अन्तर अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा। क्या कहलाता है ? यह आत्मा आनन्दस्वरूप, इसमें अन्तर में झुकना। छियानवें हजार स्त्रीवाला भी एकदम अन्दर झुक जाता है ध्यान में अन्दर। विषय की वासना के समय वासना हो परन्तु उससे दृष्टि मुक्त है। इसलिए दूसरे क्षण में ध्यान में लग जाता है तो आनन्द का स्वाद उग्ररूप से ले लेता है। समझ में आया? भले गृहस्थाश्रम हो। गृहस्थाश्रम आत्मा में कहाँ है ? भगवानजीभाई! आहाहा! इसलिए तो कहा पहले कि मन, वचन, काया भी जिसमें नहीं और तीन ऋतु में किसी काल में यह आत्मा सन्मुख न झुक सके, ऐसा नहीं है। कोई काल अवरोधक नहीं उसे कि वर्षाकाल में ऐसी सर्दी होती है और सर्दी में ऐसी होती है और गर्मी में ऐसा होता है। समझ में आया?

कहते हैं कि तीन मिथ्यात्व शल्य आदि से रहित हो और तीन से सहित हो।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से सहित हो। उत्कृष्ट बात लेनी है न! ज्ञान और योग सामग्री में... तब उसका ध्यान जमे। तीन कषाय (चौकड़ी) का अभाव है न? उसे अन्दर में ध्यान जाने विशेष। ऐसा। चतुर्थ गुणस्थान में ध्यान होता है परन्तु थोड़ा होता है, थोड़ा काल होता है। समझ में आया? समकिती को भी किसी समय अन्दर में सामायिक में बैठा हो अन्दर में तो ध्यान में शुद्धोपयोग आ जाता है। शुद्धोपयोग चौथे गुणस्थान में आ जाता है, पाँचवें गुणस्थान में आ जाता है। वस्तु प्रगटी है न! चैतन्य आनन्द दल आत्मा दृष्टि में आया है। आहाहा! वर्तमान एक समय की अवस्था भी जिसने गौण कर डाली है। पर्यायबुद्धि नहीं। आता है न समयसार नाटक में? मार्ग ऐसा सूक्ष्म है, भाई! साधारण लोगों को ऐसा कि ऐसा ही मार्ग सबके लिये? सबके लिये आत्मा जैसा है, उसकी ओर ढलकर श्रद्धा-ज्ञान करके स्थिर होना, यह मार्ग है। बालक हो तो भी यह, पण्डित हो तो भी यह, देव हो तो भी यह और नारकी हो तो भी यह।

दर्शन, ज्ञान, चारित्र से मण्डित होकर... उसे अन्तर में ध्यान करने के लिये बहुत अनुकूलता है। क्योंकि श्रद्धा-ज्ञान की शान्ति प्रगट हुई है, उसके द्वारा अन्तर में जाकर स्थिर हो सकता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह रीति है और यह मार्ग है, ऐसा पहले इसे श्रद्धा में तो लेना पड़ेगा न? इस पद्धति के अतिरिक्त इसका ध्यान (नहीं कर सकेगा)। वे कहे, हम ध्यान करेंगे। परन्तु क्या ध्यान? ध्यान का विषय क्या है? इस विषय में क्या चीज़ नहीं है और किस चीज़ से मुक्त होना है, ऐसा ज्ञान किये बिना अन्तर्मुख में नहीं जा सकेगा। समझ में आया?

और, **दो दोष अर्थात् राग-द्वेष इनसे रहित होता हुआ योगी ध्यानी मुनि है,...** योगी मुनि **परमात्मा अर्थात् सर्व कर्म रहित शुद्ध परमात्मा उनका ध्यान करता है।** लो! आत्मा रागरहित और कर्मरहित, उसका ध्यान करता है। समझ में आया? ध्यान तो आता है। नहीं आता, ऐसा नहीं है परन्तु आर्तध्यान आता है। राग में एकता, वह भी एक ध्यान है, परन्तु वह संसार में भटकने का ध्यान है। आता है उसमें एकाग्र होने से, उसे यहाँ एकाग्रता करने का नाम मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! समझ में आया? तीन शल्य रहित कहा न वापस? जितने तीन सौ त्रेसठ पाखण्ड हैं और सूक्ष्म पर्यायबुद्धि है, वे सब शल्य निकल जाने के पश्चात् आत्मा का भान होता है और फिर अन्दर स्थिर हो सकता है। समझ में आया?

यह शुद्ध परमात्मा। कौन परमात्मा ? स्वयं। बहिरात्मबुद्धि छोड़कर अन्तरात्मदृष्टि करके परमात्मा का ध्यान करना। आहाहा! भारी काम। समझ में आया ? उसमें किसी की मदद की वहाँ आगे आवश्यकता नहीं है। आहाहा! परमात्मप्रकाश में कहा है न ? दिव्यध्वनि से भी जो प्राप्त नहीं होता, ऐसा यह आत्मा है। मुनियों की वाणी से भी यह नहीं मिलता, ऐसा आत्मा है। क्योंकि वह तो परद्रव्य है। समझ में आया ? परमात्मप्रकाश में कहा है और धर्मदास क्षुल्लक ने स्वात्मानुभव मनन में कहा है। शुभ और अशुभभाव कषायरूपी अग्नि है न ? पंचास्तिकाय में अन्त में कहा है। स्वर्ग में वहाँ कषाय के अंगारों में देव सुलगते हैं। आहाहा! दुनिया ऐसा कहती है कि सुखी है। भगवान कहते हैं, स्वर्ग के सुख में देव कषाय अग्नि से जलते हैं, भाई! पूर्व में पुण्य किया था, उसके फलरूप से पुण्य बँधा, उसके फलरूप से यह स्वर्ग की-धूल की इन्द्राणियाँ मिली। यह कहते हैं कि अग्नि से सुलगते हैं। पोपटभाई! क्या यह छह लड़के और पैसा, यह सब तुम्हारे टाईल्स का, वह उसके ऊपर लक्ष्य जाये तो अन्दर कषाय में सुलगता है, ऐसा कहते हैं। सेठ!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ कहाँ ठण्डा था ? ठण्डक कहाँ थी ? होली है। उस ठण्डे के ऊपर लक्ष्य जाये वही राग की होली सुलगती है। आहाहा!

देव का भी कषाय की अग्नि से जल रहे हैं, जिसे दुनिया सुखी कहती है। समझ में आया ? सुख तो आत्मा के आनन्द में है। यह कषाय शुभाशुभ विकल्प, यह अग्नि की भट्ठी है। समझ में आया ? आहाहा! उससे हटकर, उसका प्रेम छोड़कर, उसकी रुचि छोड़कर, उसकी एकाग्रता छोड़कर भगवान आत्मा के प्रेम में और ज्ञान में आवे और उसमें एकाग्रता हो, तब उसे मोक्ष का मार्ग प्रगट होता है। ऐसी बात है। तब ऐसा कहे कि ऐसी बात समाज झेल सके ? समाज के लिये दूसरा चाहिए। भाई! मार्ग तो यह है। एक के लिये हो या समाज के लिये हो। मार्ग यह है।

भावार्थ :- मन-वचन-काय से तीन कालयोग धारण कर परमात्मा का ध्यान करे,... कहते हैं कि ध्यान में इतनी एकाग्रता होती है। **कष्ट में दृढ़ रहे...** बिजली ऊपर से गिरे तो भी ध्यान में रहे, ऐसा ध्यान करे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? ऐसे

आसन लगाने से थोड़ा सा समय हो, वहाँ गर्मी हो कि यह जलता है, यह होता है, उसके ऊपर लक्ष्य जाये तो अन्दर में एकाग्र नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! जो चीज़ उसमें नहीं, उसमें कुछ फेरफार होने पर उसे चैन न आवे, वह अन्दर का ध्यान नहीं कर सकता, ऐसा कहते हैं, लो! समझ में आया?

कष्ट में दृढ़ रहे... आहाहा! जिसकी दृष्टि अन्तर में जमी है और जमने में ध्यान में पड़ा है, उसे बिच्छू काटे तो भी खबर नहीं पड़ती, ऐसा कहते हैं। क्या कहा? **कष्ट में दृढ़ रहे...** बिच्छू काटने की खबर नहीं रहती, अन्दर एकाग्र निर्विकल्प ध्यान में होवे तो, ऐसा कहते हैं। यह खाना, पीना और लहर करते-करते मोक्ष नहीं मिलता, ऐसा कहते हैं। अन्दर में आत्मा के आनन्द में उतरने से, पहले तो दृष्टि जमने पर, फिर स्थिर होने से शरीर आदि में कष्ट आवे, कमर दुःखे, टेका (सहारा) हो नहीं, नीचे पतला वस्त्र बिछाकर बैठा हो। अरे! गद्दी लेकर बैठा होता तो ठीक होता। आहाहा! कहते हैं कि यह सब प्रतिकूल साधन तुझे लगे तो वह तेरी दृष्टि वहाँ है। समझ में आया? ऐसा करने जाये तो कमर दुःखे, सिर दुःखे, गैस सिर में चढ़े तो सिर भारी हो जाये।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं। परन्तु यह होने पर भी उसके सामने न देखना। वह तो बाहर की चीज़ है। वह कहाँ तुझमें है? अमरचन्दभाई! आहाहा! यह अमर होने के रास्ते अलग हैं जगत के। जगत से भिन्न पड़े तो हो, ऐसा है।

कहते हैं, **इस प्रकार कष्ट में दृढ़ रहे, तब ज्ञात होता है कि इसके ध्यान की सिद्धि है,...** आहाहा! बाहर की चीज़ का ख्याल न रहे। पहली तो दृष्टि में बाहर की चीज़ मुझमें नहीं है, विकल्प आदि भी मुझमें नहीं है और है वह तो आनन्द और ज्ञान का धाम मैं हूँ, ऐसा दृष्टि में जमना चाहिए। समझ में आया? और फिर जब ध्यान का विषय है, बाहर की अनुकूलता ऐसी हो तो ध्यान हो और प्रतिकूलता न हो, वह भी उसमें है नहीं। यह गिरिगुफा में जायें तो ध्यान हो, ऐसा नहीं है, ऐसा यहाँ कहते हैं। जहाँ बैठा हो, वहाँ राग और पर से भिन्न है। अब कहाँ इसे भिन्न होकर कहाँ जाना है इसे? समझ में आया? भजन में नहीं आया था? चाहे तो दुनिया में रहे या चाहे दुनिया से दूर रहे। समकित की बात है,

मुनि की बात नहीं। समझ में आया? दुनिया में रहे अर्थात् स्त्री-पुत्र उसके साथ हो या जंगल में हो समकिती, उसे कुछ बाहर अवरोधक नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुकूलता की यह वही बात कहते हैं। अनुकूलता माने वहाँ तक मूढ़ जीव है। आत्मा की अनुकूलता तो अन्तर की एकाग्रता होना, वह अनुकूलता है। इसके अतिरिक्त बाहर की अनुकूलता होवे तो मुझे ठीक पड़े, इस मान्यता में बड़ी शल्य है। आहाहा! तीसरे नरक का नारकी, तीसरे नरक का नारकी इतना बाहर का प्रतिकूल संयोग और देव आकर तीसरे नरक तक जाता है। एक तो उष्णता की इतनी पीड़ा। इतनी उष्णता की पीड़ा कि लाख मण का लोहे का गोला छह-छह महीने तक निरोग लुहार के जवान लड़के ने, लुहार के जवान लड़के ने-३२ वर्ष के जवान ने छह महीने तक उसे गर्म करके टीपा हो-मजबूत। एक लाख मण का लोहा। यह तीसरे नारकी के वहाँ रखे, अग्नि में जैसे घी पिघल जाता है, वैसे गोला पिघल जाये। इतनी सर्दी। वहाँ भी समकिती अपने ध्यान में जाता है। आहाहा! ऐई! सेठ! वहाँ कोई दवा-बवा नहीं तुम्हारी उस जरा की, अमुक की, अमुक की। क्या कहे उसे? ... वहाँ तो सिर पर डण्डा पड़ता हो। आहाहा! पूरा शरीर मोड़कर लोहे का सरिया बनाकर... पूरे शरीर को गोलाकार करे और ऊपर से मारे घन। समकिती अन्दर ध्यान में जमता है। ऐई! बाहर की प्रतिकूलता उसे छूती ही नहीं। आहाहा! इससे तो पहला निर्णय अनुभव में किया है कि बाहर की चीज़ मुझमें नहीं है। रागादि बाहर में मुझमें नहीं, फिर मुझमें नहीं, वे मुझे अवरोध करे—यह किस प्रकार हो सकता है? समझ में आया?

अन्दर शल्य में शल्य रह जाती है। मिथ्याशल्य की व्याख्या बहुत सूक्ष्म है। गहरे-गहरे उसे ऐसा कि यह सुविधा हो, ऐसा हो तो ठीक। यह बाहर के ज्ञेय की सुविधा हो तो मेरा ध्यान हो सके, (यह) दृष्टि में बड़ा शल्य है। ऐई! सेठ!

मुमुक्षु : चौथे काल में...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पाँचवें काल की बात चलती है। सेठ ठीक कहते हैं, यह चौथे काल की बात चलती है। ठीक है न। प्रश्न तो करते हैं न? किसे सुनाते हैं यह

कुन्दकुन्दाचार्य ? चौथे काल के लिये ? आहाहा ! अरे ! आत्मा ! चौथे काल का हो या पाँचवें काल का हो या नारकी में हो, आत्मा तो आत्मा है । आत्मा में तो विकल्प भी नहीं, राग भी नहीं, अनुकूलता-प्रतिकूलता को स्पर्श भी नहीं करता । आहाहा ! काल को निगल गया हुआ भगवान आत्मा है । काल कैसा वहाँ ? काल को ग्रास कर गया है । स्वयं ज्ञाता-दृष्टा में समाकर । समझ में आया ? ऐसे सातवें नरक के नारकी की पीड़ा में समकिती हो । नया समकित होता है । सुना है ? सेठ ! सातवाँ नरक रवरव नरक । अपईठाणा ३३ सागर की स्थिति, बड़ा राजा, राजा का कुँवर हो । मरकर गया हो वहाँ बेचारा । परन्तु यहाँ मुनियों के पास सुना हुआ हो, धर्मात्मा ज्ञानी के निकट (सुना हो) । अरे ! भाई ! तू तो शुद्ध चैतन्य आनन्द है न ! सुना हुआ परन्तु प्रयोग में नहीं लाया था । वह वहाँ आगे उसे वह पीड़ा... आहाहा ! अरे ! यह क्या है ? इस पीड़ा का कहीं अन्त (होगा) ? यह क्या है ? ऐसा विचार में आ जाने पर पूर्व का स्मरण हो जाता है । समझ में आया ? अरे ! धर्मात्मा हमको कहते थे, अरे ! राजकुमार ! तू इसमें गृद्धि न हो । तेरी चीज़ दूसरी है, ऐसा मुनि हमें कहते थे, परन्तु हमने वहाँ नहीं किया । ऐसा करके अन्दर में उतर जाता है । समझ में आया ?

मुमुक्षु : सातवें नरक का...

पूज्य गुरुदेवश्री : सातवें नरक के पाँच पासडा है । उसका पाँचवाँ अपईठाण नारक कठोर में कठोर है । तैंतीस सागर की स्थिति और वेदना में उत्कृष्टता । सर्दी । जिसे रवरव नरक कहते हैं न ? वह पाँच पासडा है, पाँच । उसमें एक लाख योजन का है वह । उसके नारकियों को महा दुःख, बहुत दुःख । उसमें भी समकित पाते हैं, ऐसा यहाँ तो कहना है ।

रोग हो और ठीक से सोया नहीं जाये और भाई उसमें हमारे कैसे विचार किया जाये ? परन्तु यह तो तुझमें है नहीं, पहले से तो बात की है । मन-वचन-काया तुझमें नहीं है । वह नहीं, उसके लिये कुछ सुविधा होवे तो ठीक । वह वस्तु के स्वरूप को जानता नहीं । आहाहा ! समेट दृष्टि को ऐसे बाहर से हटाकर अन्दर में ला, ऐसा कहते हैं । मन-वचन-काया चाहे जैसी चीज़ बाहर की जड़ की है । आहाहा ! मुझमें नहीं, उसकी सुविधा मैं कैसे इच्छुँ ? जो मुझमें नहीं, उसकी सुविधा और असुविधा में मेरा लक्ष्य क्यों जाता है ? ऐई ! भीखाभाई ! ऐसी बातें हैं । हीराभाई ठीक हो, पैसा-बैसा ठीक से हो तो अपने को विचार में ठीक पड़े । धन्धा-बन्धा । आहाहा !

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई भी कहो, आत्मा तो आत्मा में पड़ा है। किसी क्षेत्र-काल में आत्मा को समकित हो जाता है? आहाहा! यह तो इससे पहले कहा। मन-वचन और काया तुझमें नहीं है। देखो! इसलिए कहा न?

मन-वचन-काय से कालयोग धारण कर परमात्मा का ध्यान करे,... अर्थात्? कि तीन का लक्ष्य छोड़कर यहाँ ध्यान कर। **इस प्रकार कष्ट में दृढ़ रहे, तब ज्ञात होता है कि इसके ध्यान की सिद्धि है,...** आहाहा! (स्वरूप) में एकाग्र हो, उसे बाहर के... कहते हैं, रोम-रोम में लोहे की सलियाँ गर्म करके (पहनायी)। खबर नहीं। देखो! यह पाण्डव। है? पाण्डव। धर्मात्मा मुनि, समकिती आनन्दकन्द में झूलनेवाले हैं। दुर्योधन के भानेज ने इस शत्रुंजय में, यह शत्रुंजय। यहाँ से चौदह मील है। पाँचों पाण्डव ध्यान में थे। लाकर लोहे के ऊपर पहनाये। राज देते हैं। राज चाहिए था न तुझे मेरे मामा का? लो राज। आहाहा! अन्तर के आनन्द में उतर जाते हैं। इस अग्नि का स्पर्श भी जिसे नहीं। ऐसा अन्तर ध्यान जमता है, वहाँ ध्येय में जिसकी नजरें हैं। बाहर की नजर खुल जाती है। कहो, समझ में आया? यहाँ शत्रुंजय से तीन (पाण्डव) मोक्ष पधारे हैं। क्योंकि ध्यान में थे। तीन मोक्ष पधारे हैं। दो सर्वार्थसिद्धि में गये। जेल हो गयी नकुल, सहदेव को कि अरे! भाई को क्या होता होगा? धर्मराजा, भीम और अर्जुन। बड़े भाई को पितातुल्य मानते थे। अरे! धर्मराजा को क्या होता होगा? ऐसा जरा विकल्प आया तो पुण्य बँध गया। दो भव हो गये।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सहदेव को ऐसा विकल्प आया। यह विकल्प ऐसा आया कि उनको क्यों ऐसा हुआ? उन्हें कैसे होगा? ऐसा। भाई है। महा कोमल। राजकुमार मक्खन के पिण्ड जैसे जिनके शरीर हैं। हाथी के अन्दर तलुवे जैसे जिनके पैर एकदम लाल हैं। अरे! इतना शुभ विकल्प आया, देखो अभी! दो भव हो गये। एक सर्वार्थसिद्धि का और एक मनुष्य का। दो भव हो गये। समझ में आया? ऐसे तो साधर्मी रूप से थे। भाई का सम्बन्ध टूट गया था। पाँचों पाण्डव साधर्मीरूप से साधु, धर्मात्मा आनन्दकन्द में। वीर...

वीर... वीर... बड़े वीर पराक्रम करके अन्दर में उतरे थे। आहाहा! राग ही नहीं। यह और शत्रु है या यह अग्नि है, यह बात ही कहाँ थी? जगत में मैं हूँ, एक ही चीज़ आनन्दकन्द हूँ। दूसरी चीज़ ही नहीं न, दूसरी चीज़ ही नहीं न! दु:ख आदि चीज़ ही नहीं न! संयोग आदि चीज़ ही नहीं न! आहाहा!

अपने महाप्रभु के अस्तित्व में जम गया हुआ ज्ञान, उसे दूसरी चीज़ है या नहीं, उसका विकल्प भी है ही नहीं! आहाहा! समझ में आया? एक ही भगवान आनन्द में व्याप्त, अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद का वह रस लेता है। समझ में आया? दुनिया उसे दु:खी देखती है कि अररर! यह भाई क्या? धर्मात्मा के परिणाम परिणामी के ऊपर होते हैं। इससे उसे बाहर की चीज़ का कोई लक्ष्य नहीं होता। ध्यान में, हों! बाहर में आकर लक्ष्य हो तो भी उसे जानता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! यह पोपाबाई का राज नहीं है कि एकदम उसकी मुक्ति हो जाये, अपवास किये और व्रत पालन किये! समझ में आया? महाव्रत का विकल्प है, वह जहर है, कहते हैं। जहाँ अमृत की डकार आवे, पड़ा है अमृत में, उसे कहते हैं कि ऐसे ध्यान में **कष्ट में दृढ़ है...** आहाहा! लाख बिच्छू आकर ऐसे काटे, स्पर्शता ही नहीं न जिसे। स्पर्शता है, ऐसा कहो तो दो द्रव्य एक हो जाते हैं। समझ में आया? मान्यता में ऐसा करे कि यह मुझे स्पर्श करता है तो उसकी मान्यता झूठी हो जाती है। समझ में आया? क्या कहा यह?

यह मुझे स्पर्श करता है, मुझे काटता है। काटे किसे? परमाणु की पर्याय को बिच्छू काटे? काटे किसे? आहाहा! यह तो कोई बात है! जिस वस्तु में यह शरीर और वाणी है ही नहीं। है नहीं, फिर उसमें कुछ होता है, इसलिए मुझे होता है, यह बात नहीं रहती, ऐसा कहना चाहते हैं। आहाहा! परमात्मा का भगत होना है या परमात्मा का सेवक होना है। यह कौन परमात्मा? स्वयं, हों! आहाहा! वास्तविक मार्ग हाथ आवे नहीं और उल्टे रास्ते जाये और जिन्दगी पूरी हो। चौरासी के अवतार में घाणी की भाँति पिलता है। आहाहा! सुनने को मिलता नहीं। बात ही ... है पूरी। क्या हो? अरे! ऐसे मौसम का दिन मनुष्य का। आत्मा का कल्याण करने का यह मौसम है। ऐई! मनसुख! इसकी यह पैसे की मौसम आवे न वहाँ। सीजन किया हो, उस समय मिले। पौष महीने से यह ऐसा होगा कुछ। अपने को

बहुत खबर नहीं। पौष महीने से वैशाख तक। सात, आठ लाख की उगाही डाली हो, सब देने आवे। ले जाओ, लाओ, ले जाओ और लाओ। यह मौसम होगा? पाप का मौसम है। आहाहा!

बापू! तेरा मौसम का काल, भाई! अनन्त काल में ऐसा मनुष्य देह (मिला)... आहाहा! अरे! देह भी नहीं, विकल्प भी नहीं। वह तुझमें विकल्प स्पर्शा भी नहीं, हों! यह ज्ञायकभाव विकल्प और राग से एकत्व कभी तीन काल में हुआ ही नहीं। आहाहा! माना है, वह अलग बात है। वह तो चैतन्य भगवान पूर्णानन्द का नाथ ऐसा का ऐसा अनादि से है। सातवें नरक में अनन्त बार गया। एक प्रदेश भी कम हुआ नहीं, मुरझाया नहीं और नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया तो वहाँ प्रदेश चौड़े हुए, पोचे हुए प्रसन्न है इसलिए, (ऐसा नहीं)। आहाहा! समझ में आया? चने को पानी में डाले और जैसे चना फूल जाता है। पोढो समझे न? ... चना होता है न चना? पानी में फूलता है। वैसे भगवान आत्मा आनन्द की शक्ति में फूँक मारे जैसे वह। क्या कहलाता है तुम्हारे यह लड़के का गुब्बारा... गुब्बारा। वह तो एकदम पोला फूलता है। यह तो ठोस। आनन्दधाम भगवान में एकाग्रता की फूँक मारे, वहाँ ध्यान प्रगट होता है और आनन्द से फूलता है। आहाहा! देखो! यह मार्ग वीतराग का। अर्थात् कि तेरा। ऐई! प्रकाशदासजी! करो यह और करो यह। महाव्रत लेकर अणुव्रत का फिर आन्दोलन करूँगा। जहर का। सेठ! यह तो जहाँ हो, वहाँ दूसरा क्या कहे? मिला हो उसमें प्रेम होवे न? जो बात सुनी न हो, क्या करना? आहाहा! हे भगवान!

मुमुक्षु : यह तो अन्दर की दुकान।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अन्दर के व्यापार की बातें हैं, बापू! आहाहा! भाई! तेरी दया कर... दया कर... दया कर। कहते हैं, भगवान में कुछ नहीं न दूसरा। नहीं; इसलिए उसमें प्रतिकूलता-अनुकूलता का लक्ष्य नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

कष्ट आने पर चलायमान हो जाये, तब ध्यान की सिद्धि कैसी? जरा प्रतिकूलता (आवे वहाँ) ऐसा (हो जाता है)। क्या है परन्तु यह? समझ में आया? यहाँ क्या कहना चाहते हैं? कि प्रतिकूलता की चीज़ और अनुकूलता की चीज़ रहित आत्मा है। ऐसा जिसे श्रद्धा और ज्ञान हुआ, उसे अन्तर में एकाग्र झुकने में बाहर की प्रतिकूलता अवरोधक नहीं

है। और प्रतिकूलता के समय च्युत हो जाये तो उसे वस्तु की बराबर स्थिरता की खबर नहीं है। समझ में आया? आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य की वाणी वस्तु की स्थिति खड़ी करती है। ऐसा हो सकता है और ऐसा होता है, ऐसा इसे श्रद्धा में लेना चाहिए। ऐसा न हो सके, ऐसा नहीं है।

भगवान आत्मा में एकाग्र न हो सके, ऐसा उसका स्वभाव है? एकाग्र हो सके, ऐसा स्वभाव है। राग में एकाग्र होता है, ऐसा उसका स्वभाव है ही नहीं। ऐसा तो पहले अन्दर निर्णय आना चाहिए। समझ में आया? दया, दान के विकल्प में एकाग्र हो, ऐसा उसका स्वभाव ही नहीं है। क्योंकि उसमें यह चीज़ नहीं है। इस विकल्प से रहित भगवान निर्विकल्पानन्द प्रभु में एकाग्र हो, वह तो उसका गुण, कार्य और स्वभाव है। समझ में आया?

यह तो परमात्मा होने की बात है। यह परमात्मा स्वयं है, उसे चिपटे-अन्दर में एकाग्र हो तो परमात्मा होता है। समझ में आया? लोगों को ऐसा कि यह तो निश्चय... निश्चय है। निश्चय अर्थात् सच्चा, निश्चय अर्थात् सत्य। व्यवहार अर्थात् आरोपित-खोटी बात है सब। आहाहा! उसको वह... पाँच पर्याय के भेद लिये न? भाई! कलश-टीका में लिया है न? यह तो मूल पाठ में लिया है, २०५वीं गाथा में। निर्जरा (अधिकार में)। मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय चार भेद नहीं। एकरूप वस्तु अभेद है। आहाहा! तब वह कहे, देखो! यह पाँच भेद करते हैं, वह आगम से विरुद्ध है। भेद-भेद वस्तु में है। भेद का निषेध कैसे करे? सुन न अब। रतनचन्दजी लिखते हैं उसमें। कौन जाने क्या करता है भगवान? अरे! तेरी चीज़ अभेद की बात करते हैं, प्रभु! तू उलझ नहीं। पाँच भेद पर लक्ष्य जाये तो विकल्प उठता है। यह मति और श्रुत और यह अवधि तथा ऐसे जो भेद पड़ते हैं, वह विकल्प उठता है। चिदानन्द भगवान अभेद चिदानन्द है। ऐसी बात वहाँ कहते हैं। तब कहे, नहीं। यह आगम विरुद्ध है। राजमलजी का आगम विरुद्ध है। समयसार (नाटक) भी खोटा है।... भाई! निकलने का अवसर आया हो, मुश्किल होगा, प्रभु! आहाहा!

ध्यान की शुद्धि चाही **कोई प्रकार की चित्त में शल्य रहने से...** देखो! किसी प्रकार

का शल्य रहे कि पर की अनुकूलता हो तो मुझे ठीक पड़े, ध्यान में ठीक पड़े। वह सब शल्य है। ऐई! सेठ! श्रद्धा का शल्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। पहली श्रद्धा तो रखे। जिस श्रद्धा में अन्तर पड़े तो ज्ञान एकाग्र नहीं हो सकेगा। यह शल्य कहते है। जरा-सी बाहर की अनुकूलता हो, खाने-पीने की अनुकूलता हो, पेट में भूख लगी हो तो। आहाहा! भाई! अनुकूलता, वह वस्तु का स्वरूप ही नहीं है। वह तो ज्ञेय है। अब अनुकूल किसे कहना और प्रतिकूल किसे, तुझे छाप मारनी है ? चन्दुभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर ऐसा कुछ नहीं। वह तो चाहे जो राग हो। शरीर में क्या ? ... का राग हो।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका भी राग हो। यह रण चढ़े राजा के कुमार। शरीर के ऊपर राग कम होता है। परन्तु उसे राज में प्रीति है तो शरीर पर बाण पड़े तो उसे ... राग हो गया है, उसका।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर का राग होता है। उसे बहुत प्रकार के राग (होते हैं)। यह अनुकूल हो तो ठीक पड़े, ऐसी शल्य रह जाये तो भी मिथ्यात्व है, कहते हैं। शिष्य अनुकूल हो तो सेवा में मुझे ठीक पड़े।

मुमुक्षु : राग तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : राग हो, वह अलग बात है और यह माने कि इस प्रमाण हो, वह तो शल्य है। अस्थिरता का राग आवे, उसका तो ज्ञाता है। परन्तु ऐसा शल्य आवे। एकाध शिष्य अनुकूल हो, बीमारी के समय काम आवे।

मुमुक्षु : शरीर ही मेरा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर तो नहीं परन्तु विकल्प मेरा नहीं। शरीर तो बाहर की बात है। शरीर तो बाहर रह गया। यह तो पंच महाव्रत का विकल्प मेरा नहीं, ऐसी अन्तर्दृष्टि हो, तब तो सम्यग्दर्शन होता है। शरीर तो अब बाह्य स्थूल हो, वह मिट्टी है। शरीर को आत्मा स्पर्श ही नहीं करता। विकल्प को तो अज्ञानी अनादि से स्पर्शा है। समझ में आया?

परमात्मप्रकाश में लिया है। शरीर को आत्मा कभी स्पर्शा नहीं। इसी प्रकार शरीर आत्मा को स्पर्शा नहीं। वह तो मिट्टी-धूल है। अजीव तत्त्व है, परन्तु अन्दर विकल्प जो सूक्ष्म है, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध का। उसके साथ एकताबुद्धि, वही महामिथ्यात्व है। वह अनन्तानुबन्धी का राग है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! थोड़ा ... कारण से जहाँ अनेक प्रकार के ... भगवान का भी विरह पड़ गया। समझ में आया? त्रिलोक के नाथ... वह अन्तर का दोष क्या न करे? आहाहा! वह संसार है। समझ में आया?

ध्यान की सिद्धि कैसी? कोई प्रकार की चित्त में शल्य रहने से... आहाहा! **श्रद्धान, ज्ञान, आचरण यथार्थ न हो, तब ध्यान कैसा?** जिसे वास्तविक वस्तु की श्रद्धा, पुण्य-पाप से भिन्न भगवान आत्मा का भान ही नहीं तो वह द्रव्य-सन्मुख झुकाव कैसे कर सकेगा? समझ में आया? **तब ध्यान कैसा? इसलिए दर्शन, ज्ञान, चारित्र मण्डित कहा और राग-द्वेष, इष्ट-अनिष्टबुद्धि रहे,...** देखो! यह आया। कुछ भी बाह्य चीज़ ठीक है, इष्ट है, अनिष्ट है—ऐसी बुद्धि राग-द्वेष में रहे, उसे भी अन्तर झुकाव नहीं हो सकेगा। शरीर तो कहीं रह गया। समझ में आया? लो! यह इष्ट है-अनिष्ट है, वह तो मिथ्यात्व ने भाग किये हैं। कोई चीज़ इष्ट-अनिष्ट है ही नहीं। ज्ञान का ज्ञेय है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर की बात नहीं। यहाँ तो बाहर की चीज़ हो अनुकूल। शरीर तो बाहर, स्थूल बात रह गयी। परन्तु अनुकूल में कोई बाह्य चीज़ हो, तीर्थंकर जैसी सुविधा हो, वह भी ठीक है, यह एक शल्य है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... विकल्प होवे तो ... उससे ध्यान होता है, ऐसा नहीं है। गिरिगुफा अन्दर को कहते हैं। समयसार की ४९ गाथा में है। अनुभूतिरूपी गिरिगुफा में मुनि ध्यान करते हैं। यह गुफा-बुफा नहीं। बाहर का क्या काम है तुझे? ऐ मलूकचन्दजी! यह समयसार नाटक में है। समयसार नाटक क्या, जयसेनाचार्य की टीका में। जयसेनाचार्य की टीका में। अनुभूतिरूपी गिरिगुफा। गिरिगुफा बाहर की धूल में कहाँ था? समझ में आया?

परमात्मा का ध्यान करे, वह ऐसा होकर करे, यह तात्पर्य है। लो! लो एक ही गाथा चली आज तो। बहुत लम्बा-लम्बा था तो फिर (एक ही गाथा चली)।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-४५

आगे कहते हैं कि जो इस प्रकार होता है वह उत्तम सुख को पाता है -

मयमायकोहरहिओ लोहेण विवज्जिओ य जो जीवो।
णिम्मलसहावजुत्तो सो पावइ उत्तमं सोक्खं।।४५।।

मदमायाक्रोधरहितः लोभेन विवर्जितश्च यः जीवः।
निर्मलस्वभावयुक्तः सः प्राप्नोति उत्तमं सौख्यम्।।४५।।

जो जीव मद माया-रहित सब क्रोध लोभादि-रहित।
निर्मल स्वभाव सहित वही नित प्राप्त करता परम सुख।।४५।।

अर्थ - जो जीव मद, माया, क्रोध इनसे रहित हो और लोभ से विशेषरूप से रहित हो वह जीव निर्मल विशुद्ध स्वभावयुक्त होकर उत्तम सुख को प्राप्त करता है।

भावार्थ - लोक में भी ऐसा है कि जो मद अर्थात् अति मानी और माया कपट और क्रोध इनसे रहित हो और लोभ से विशेष रहित हो, वह सुख पाता है, तीव्र कषायी

अति आकुलतायुक्त होकर निरन्तर दुखी रहता है, अत: यही रीति मोक्षमार्ग में भी जानो, जो क्रोध, मान, माया, लोभ चार कषायों से रहित होता है, तब निर्मल भाव होते हैं और तब ही यथाख्यात चारित्र पाकर उत्तम सुख को प्राप्त करता है।।४५।।

प्रवचन-८०, गाथा-४५ से ४७, शुक्रवार, भाद्र शुक्ल ४, दिनांक ०४-०९-१९७०

अष्टपाहुड़, मोक्षपाहुड़ की गाथा चलती है। ४४ गाथा हो गयी। ४५। **आगे कहते हैं कि जो इस प्रकार होता है, वह उत्तम सुख को पाता है :-** मोक्ष का अधिकार है न? मोक्ष अर्थात्? आत्मा में पूर्ण आनन्द है, उस पूर्ण आनन्द की दशा में प्राप्ति होना, इसका नाम मुक्ति। क्या कहा? आत्मा में, आत्मा वस्तु है, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर वह पदार्थ है। समझ में आया? आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है, सुख है, शान्ति है। ऐसे स्वभाव से आश्रय करके जिसने पर्याय में अर्थात् अवस्था में पूर्ण आनन्द की प्राप्ति करना, होना, उसका नाम मोक्ष है। वह मोक्ष कैसे होता है, यह कहते हैं। देखो! **वह उत्तम सुख को पाता है :-** उत्तम सुख अर्थात् मुक्ति।

मयमायकोहरहिओ लोहेण विवज्जिओ य जो जीवो।
णिम्मलसहावजुत्तो सो पावइ उत्तमं सोक्खं।।४५।।

क्या कहते हैं? **अर्थ :- जो जीव मद, माया, क्रोध इनसे रहित हो और लोभ से विशेषरूप से रहित हो...** अर्थात् कि क्रोध, मान, माया, लोभ, उसके दो प्रकार। क्रोध-मान होकर द्वेष है और माया तथा लोभ होकर राग है। वह राग और द्वेष, वह आस्रव है। समझ में आया? पुण्य और पाप का भाव, वह मलिन आस्रव, बन्ध का कारण है। जिसे मोक्ष करना है, उसे आस्रवरहित धर्म करना है जिसे, उसे यह पुण्य-पाप अर्थात् राग-द्वेष का भाव, उन्हें पहिचानना पड़ेगा न पहले? जिसकी पर्याय में बन्ध है। पर्याय में बन्ध है तो पर्याय में बन्ध से रहित होकर मुक्ति करनी है। समझ में आया?

पर्याय अर्थात् अवस्था। त्रिकाली जो ज्ञायकतत्त्व-वस्तु है, वह तो बन्ध और मुक्ति की पर्यायरहित वस्तु है। समझ में आया? परन्तु उस चीज़ की जो वर्तमान अवस्था-पर्याय—हालत-दशा। मिथ्याभ्रान्ति (अर्थात्) पर में सुख है और पर के राग के विकल्प

आदि भाव, वे मुझे मेरे स्वभाव को मदद करनेवाले हैं, ऐसा जो मिथ्या भ्रमभाव उसके साथ रहा हुआ राग-द्वेष का भाव, वह आस्रवभाव है। वह पर्याय अर्थात् अवस्था में-दशा में आस्रव अर्थात् बन्ध के कारण का भाव है। और जिसे मुक्ति करनी है, उसे उस आस्रवभावरहित आत्मा के स्वभाव की दृष्टि-ज्ञान और रमणता प्रगट करे तो उसे मुक्ति होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

देखो! उस लोभ में '**विवज्जिओ**' शब्द अधिक प्रयोग किया है। क्योंकि लोभ, इच्छा, रुचि में राग का प्रेम रह जाये, बाहर किसी चीज़ का प्रेम रह जाये, गृद्धि हो तो उसे आत्मा के तत्त्व की दृष्टि और रुचि नहीं हो सकती। इसलिए कहते हैं कि क्रोध, मान, माया, लोभ से रहित हो अर्थात् कि आस्रव से रहित हो। दूसरी भाषा में कहें तो यहाँ मुक्ति का मार्ग है। इसलिए बन्धभाव से रहित हो। समझ में आया? बन्धभाव किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती और बन्धभाव से रहित कैसे हुआ जाता है, ऐसे द्रव्य-वस्तु की खबर नहीं होती, उसे मुक्ति का उपाय हाथ नहीं आता। उसे मुक्ति नहीं हो सकती। भटकता है अनादि काल से।

मुमुक्षु : आप बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या आता है? अभी तक क्या किया? पैसे कमाये? बन्धभाव किया। वह तो यहाँ चलता है। समझ में आया? बन्ध... बन्ध। भगवान आत्मा वस्तु है न, वस्तु? आत्मतत्त्व है न? द्रव्य है न? पदार्थ है न? वस्तु है न? वह वस्तु स्वयं ही त्रिकाल है, उस वस्तु की कुछ उत्पत्ति नहीं, कुछ नयी हुई नहीं। वह तो अनादि की है। ऐसे अनन्त भव किये, उसमें आत्मा तो वह का वह... वह का वह... वह का वह... ऐसा का ऐसा रहा करता है। अनन्त भव किये। नारकी के, पशु के, ढोर के, चींटी के, कौवे के।

मुमुक्षु : कचूमर निकल गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कचूमर निकल गया, ऐसा इसे लगता कहाँ है? लगे तब तो उसका रास्ता ले। पोपटभाई! इसे बाहर में मजा लगता है थोड़ा... को कुछ न कुछ लड़के अच्छे, पैसा अच्छा, शरीर कुछ निरोगी हो, इज्जत थोड़ी लम्बी नाक हो।

मुमुक्षु : पैसा होवे तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी पैसा हो तो कुछ नहीं। पैसा हो और भूखे मर जाये। अन्दर जठर में भूख लगी हो परन्तु अनाज पचता न हो तो क्या करे? हें! ऐई! वहाँ था हमारे एक। सुरखा है न? वहाँ सुरखा गाँधी नहीं। सुरखा का था एक। अपने दीवान थे भावनगर के दीवान थे। सुरखा के। वजुभाई। वजुभाई दीवान थे, लो! फिर पालियादवाले लोग अपने हैं न? सब गये हुए। माल पके। हजारों मण अनाज लेने जाये। शोभालालजी! वहाँ माल लेने जाये। माल पका हुआ। दीवान थे। माल लेने जाये और उसमें घर में बगीचे। अमरूद पके उत्कृष्ट ऐसे सेर-सेर, डेढ़-डेढ़ सेर के। उसके टोकरे पड़े हुए अमरूद के। जमरूप समझे हो? वहाँ पड़े हुए। वे बनिया-व्यापारी आये हों। इसलिए स्वयं वजुभाई दो रोटी खाये और पाव सेर दूध खाये (पीवे)। अधिक पचे नहीं। बगीचे, पैसे के बड़े दीवान थे। समझ में आया? बनिया तो कहे, खाओगे आप? बड़ अमरूद वजनदार मजबूत डेढ़-डेढ़ सेर के। घर की वाडी के। हाँ। पूरा टोकरा समाप्त कर दिया। अरे! बनिया मर जाओगे। यह तुम्हें खाना नहीं आया। तुम तो देखने आये हो। अभी लाओ दूसरा टोकरा। ... पालियाद के लोग गये हुए। वह खा सके नहीं पाव सेर। क्या कहलाता है वह? अमरूद। पाव सेर की चीरी (फाँक) खा नहीं सके। भार पड़े अन्दर। दाना-दाना। भार लगे। रोटी पचना (मुश्किल)। मुश्किल से दो रोटी और दूध खाता हो। समझ में आया? यहाँ तो दृष्टान्त देते थे तुम्हारे परन्तु ऐं... होता हो तब सब पड़ा रहे। वहाँ कुछ खा नहीं सकता।... दवा तो फिर पाँच-पाँच हजार की दवा पड़ी हो। धूल भी करे नहीं वहाँ। दवा क्या करे वहाँ? भाई वहाँ खड़े रहे शोभालालजी। भाई को ऐसा है, भाई को ठीक नहीं। डॉक्टर को बुलाओ। कोई शाल डाले ऐसा है? आहाहा!

कहते हैं, भाई! इस साधन में सुख-बुख है नहीं। आहाहा! वह सुख भी नहीं और सुख के कारण भी नहीं। बापू! प्रभु तेरा सुख तो तुझमें है। उसकी तुझे खबर नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा। कल दृष्टान्त नहीं दिया था? मृग की नाभि में कस्तूरी, उसे कस्तूरी की कीमत नहीं होती। हिरण-हिरण की नाभि-दूंटी में कस्तूरी परन्तु उसे कस्तूरी की कीमत नहीं होती। क्योंकि सूखे पत्ते खड़खड़े, वहाँ भय पाता है। उसे ऐसा नहीं कि मेरे पास ऐसी कुछ ऊँची चीज़ है। पत्ते खड़खड़े वहाँ भय पाता है। उसी प्रकार यहाँ जरा अनुकूलता हो, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। प्रतिकूलता (आवे तो) नाराज (हो जाता

है)। उसे खबर नहीं, प्रभु! तेरे आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द तेरी नाभि-पेट में पड़ा है। समझ में आया? जरा अनुकूलता, लड़का कुछ ठीक पका, पैसे कुछ हुए। बस! मैं चौड़ा और गली सकड़ी। गली सकड़ी हो जाये। सकड़ी हो जाये अर्थात् हम आठ लड़के हैं। हमें जगह चाहिए। कोई स्त्री को कहे, रास्ता कर दे। हमारी सिफारिश पहुँचेगी कोर्ट में। तेरी नहीं पहुँचेगी। भाईसाहब! परन्तु अब पैसा जितना हो उतना तो हमें दो। ऐई! पोपटभाई! बनता है न। हमने तो कुछ देखा है न नजर से। आठ-आठ लड़के और दो-दो तीन-तीन कमरे और उसे पायखाना और उसको क्या कहा जाता है? नहाने का बाथरूम। अकेली धमाल-धमाल। जगह न मिले तब साथवाले को निकाले। कोर्ट में पैसेवाले का चले। वह बेचारा गरीब, परन्तु मैं चौड़ा हो गया और गली सकड़ी हो गयी। आहाहा! भगवान! स्थिर हो, स्थिर हो, शान्त हो, भाई! आहाहा!

कहते हैं, देखो! यहाँ ऐसा भी कहते हैं कि बाद में कहेंगे। यह चार कषायरहित हो, **वह जीव निर्मल विशुद्ध स्वभावयुक्त होकर...** अन्दर भगवान आत्मा आनन्द का रूप है, प्रभु। सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव भी उस आनन्द को आराधकर परमात्मा हुए। समझ में आया? अरिहन्त हुए, अरिहन्त हुए—णमो अरिहन्ताणं। वे अरिहन्त भी आत्मा के अन्तर में आनन्द है, उसका सेवन, आराधन करके हुए हैं। यह क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वेष, पुण्य-पाप के भाव तो बन्ध के कारण हैं। यह तो यहाँ मूल कहना है। मोक्ष का अधिकार है न! वह बन्ध के कारणभाव हैं, उन्हें पहिचानकर उनसे रहित होना। और उनसे रहित होने पर मोक्ष का कारणरूप भाव शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र प्रगट हो, वह आत्मा को मुक्ति का कारण है। समझ में आया?

निर्मल विशुद्ध स्वभावयुक्त... आहाहा! चैतन्य भगवान परमेश्वर तीर्थंकर ने जो प्रगट किया, ऐसा यह आत्मा है। समझ में आया? ऐसे आत्मा की अन्तर्दृष्टि करना और उस आत्मा का ज्ञान करना और उस आत्मा में रमणता, लीनता-लीनता करना, वह स्वभाव **निर्मल विशुद्ध स्वभावयुक्त...** जगत की जंजाल में से बाहर निकलकर निवृत्त नहीं होता। भाई ने कल कहा कि पुस्तक लेने की फुरसत नहीं मिलती।

मुमुक्षु : काम-धन्धा अधिक रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : काम-धन्धा होली का। सब पाप के धन्धे हैं। सेठ! दो-पाँच

लाख पैदा हों, उसमें तुझे क्या आया तेरे घर में ? वह पैसा तो धूल है। समझ में आया ? तेरे घर में तो अन्दर घाटा आया है। हमको यह मिला, हमने यह किया, वह मिथ्या भ्रान्ति और अज्ञान, उसमें मर गया, ... लिखा है शास्त्र में—परमात्मप्रकाश में। पंचम काल के पैसेवाले, वैभववाले को पुण्य के कारण वैभव मिले और वैभव के कारण उसे मद चढ़े। यह मद कहा न यहाँ ? देखो ने ! अति अभिमानी लेंगे। देखो ! भावार्थ में। अभिमानी। उसे अभिमान चढ़ जाये। पावर चढ़ जाये कि हमारे पास करोड़ रुपये, हमारे पास पाँच करोड़ रुपये। धूल भी नहीं, सुन न अब। तेरे पास लक्ष्मी है, वह तो अन्दर अलग है। पण्डितजी ! आहाहा ! गजब बात, भाई ! धुँए का बाचका भरकर थैली भरना है इसे। धुँआ समझते हो न ? धुँआ नहीं समझते ? धुँआ। धुँआ। धुँआ निकलता है न ? कच्ची लकड़ियाँ जले न ? कच्ची लकड़ियाँ, कच्चे कण्डे। कच्चे कण्डे हों, उसे सुलगावे तो धुँआ निकलता है। फिर भरो थैली में। धूल भी नहीं भरता। थैली में धुँआ रहता होगा ? पकड़ रखो इस पैसे को और शरीर को। नहीं पकड़ में आयेगा। वह तो परचीज़ है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ऐसा कहते हैं परमात्मा...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु कहता हूँ न यह। उसमें से ही यह चलता है। उसमें से ही यह चलता है।

इसे वैभव मिले और वैभव से मद चढ़े। समझ में आया ? नयी पुस्तक। मद चढ़े और मद से मति का विभ्रम हो जाये। हमारे जैसा कोई चतुर नहीं, हमारे जैसा कोई प्रमुख नहीं, ऊँचा नहीं। ज्ञानी हो, उसे भी तुच्छ गिनता है ज्ञानी ? महीने में पाँच सौ पैदा करने की शक्ति नहीं। और यहाँ तो कहे, हम महीने में पाँच-पाँच लाख, दो-दो लाख पैदा करते हैं। धूल भी नहीं अब, सुन न। वह तो बाहर की चीज़ है। यह तो पूर्व के पुण्य के कारण आती है। मतिभ्रम हो जाये, फिर कहते हैं। और मतिभ्रम होकर फिर मोह (होता है)। मोह होकर फिर चार गति में भटकता है।

मुमुक्षु : ऐसा पुण्य हमको न होओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा पुण्य हमको न होओ, आचार्य ऐसा कहते हैं। ऐई ! पोपटभाई ! भगवानजीभाई ! आचार्य कहते हैं कि ऐसा पुण्य हमारे न होओ। जिस पुण्य के कारण पैसा

और पैसे के कारण मद चढ़ जाये। मद चढ़ जाये। मद-अभिमान वह शराब है। और उसके कारण मतिभ्रम हो जाये। मति भ्रष्ट हो जाये भ्रमणा में। हम भी होशियार हैं, हों! हम चतुर हैं। आहाहा! और उसके कारण मोह। मोह के कारण चार गति। आचार्य कहते हैं कि ऐसा पुण्य हमको न होओ, हों! दरबार! तुम्हारे जमींदार को तो लाख-दो लाख की आमदनी हो, इसलिए फिर हो जाये मानो कि... आहाहा!

मुमुक्षु : पागल तो होवे ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : पागल तो होवे। समझ में आया? आहाहा!

प्रभु! तेरी लक्ष्मी तो अन्दर है न, नाथ! आहाहा! तुझे खबर नहीं। तेरे निधान की तुझे खबर नहीं। अन्दर में चिदानन्द आनन्दस्वरूप है, प्रभु! जिसके आनन्द का आस्रव और बन्धभाव रहित होकर जरा आनन्द का-स्वभाव का स्वाद ले तो तुझे खबर पड़े कि यह आत्मा ऐसा है। यह बात यहाँ करते हैं, देखो!

स्वभाव **निर्मल विशुद्ध स्वभावयुक्त होकर उत्तम सुख को प्राप्त करता है।** मूल तो ऐसा कहते हैं। क्या कहा? सूक्ष्म बात तो है, भाई! इसे अनन्त काल से अभ्यास नहीं होता। यह दुनिया के रंग में चढ़ गया है। वे संघाडिया रंग नहीं चढ़ाते? संघाडिया होते हैं न? भाई लकड़ी? संघाडिया समझते हो?

मुमुक्षु : हमारे यहाँ मणियार कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मणियार कहे। यहाँ संघाडिया कहते हैं। वह लड़के पढ़े न। फिर वह आंकड़ी हो न आंकड़ी। हमने तो आंकड़ी का देखा हुआ है। गारियाधार में थे न तो आंकड़ी को रंग देने ले गये। यह तो छोटी उम्र की बात है। आंकडी होती है ऐसी। आंकड़ी समझते हो? कादव के ऊपर डालकर ऐसे डोरी... आंकडी कहते हैं। संघाडिया के यहाँ गये थे, वह चढ़ाता था ऐसे। गर्म करके, लकड़ी हो न लकड़ी गोल? उसमें भराता था। ऐसा करे कि वापस निकले नहीं। रंग चढ़ाया आंकड़ी से लकड़ी पर। सेठ! इसी प्रकार पुण्य और पाप के विकल्प का रंग चढ़ाया अज्ञानी ने। वह आंकड़ी पर रंग चढ़ाया, फिर आँके अज्ञानभाव। छोटी उम्र की बात है। बारह महीने गरियाधार रहे थे। पढ़ते थे न। गोल-गोल आंकड़ी।

मुमुक्षु : 'महुवा' में उसके ही खिलौने हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। खिलौने आते हैं। महुवा के बहुत खिलौने। गन्ने के टुकड़े जैसे लगें। होवे लकड़ी। महुवा की लकड़ी गन्ने के। गन्ने के छोटे होते हैं न? धूल भी नहीं। उस लक्कड़ का लड्डू खाये तो भी पछताये और न खाये तो भी पछताये। अन्दर कुछ होगा। ऐसे इस दुनिया में, विषय में, भोग में, पैसे में कुछ होगा। धूल भी नहीं अब, सुन न। आहाहा!

कहते हैं। देखो! यहाँ तो सुख से बात ली है। भगवान आत्मा आनन्द का नाथ पूर्णानन्द प्रभु है। सच्चिदानन्द—सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द से भरपूर पदार्थ है। उसे पुण्य-पाप के, राग-द्वेष के आस्रव बन्धभाव है, उनसे रहित कर और त्रिकाली आनन्दस्वरूप है, उसके भाव से सहित कर, ऐसा कहते हैं। कठिन काम, भाई! यह सामायिक कर डालना तो कर डाले, प्रौषध कर डालें, प्रतिक्रमण कर डालें, लो! धूल भी नहीं तेरे सामायिक में। किसे सामायिक कहना, इसकी तो खबर नहीं।

यह यहाँ बात करते हैं, कि भाई! तेरा स्वभाव है न। शुद्ध ध्रुव चैतन्यमूर्ति प्रभु की भावना करना और पुण्य-पाप की भावना को छोड़ देना, यह मुक्ति का उपाय है। आहाहा! समझ में आया? इस सुख को उत्तम सुख (कहते हैं)। यह दुनिया के मानते हैं न? वह सुख नहीं है। इन्द्र का सुख जिसे इन्द्राणियाँ करोड़ों और वह कहीं अनाज का ढोकला नहीं। वह तो वैक्रियकशरीर। यह (शरीर) तो धान का ढोकला। दो दिन न खाये तो ऐं... ऐं... हो जाए। वे तो वैक्रियकशरीर। हजारों वर्ष में आहार की इच्छा उत्पन्न हो। ऐसा पखवाड़े-पखवाड़े में जिन्हें श्वास (आवे)। ऊँचा लेना और छोड़ना, ऐसा एक पखवाड़े में तो श्वास ले। ऐसे देव के सुख भी सुख नहीं हैं।

मुमुक्षु : अन्दर तो शान्ति रहती होगी न?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी शान्ति नहीं। वहाँ कषाय के अंगारे सुलगते हैं। समझ में आया? माने कि हमको लड़के ऐसे हुए, भाई ऐसे हुए, अमुक ऐसे हुए। मूढ़ माने नहीं तो क्या करे? सूकर तो विष्टा ही खाये न? वह कहीं अनाज खाये? मनुष्य अनाज खाकर निकाल डाले, उसे सूकर खाता है; उसी प्रकार ज्ञानी ने राग-द्वेष को निकाल डाला, उसे

वह खाये-भोग। ऐसा कहते हैं। सेठ! यहाँ तो कठिन बात है, भाई! आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि यह आत्मा बन्धभाव के भाव से रहित होकर अबन्धस्वरूपी भगवान आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान और शुद्धता प्रगट करे, ऐसे स्वभावसहित होता है, उसे उत्तम सुख अर्थात् परम आनन्द की प्राप्ति होती है। अर्थात् मुक्ति। समझ में आया?

भावार्थ :- लोक में भी ऐसा है... लोक में भी ऐसा है, ऐसा यह कहते हैं। **कि जो मद अर्थात् अति मानी...** अभिमानी बहुत हो, वह लोक में भी दु:खी होता है। जहाँ-तहाँ भटकता है। मान मिले नहीं, डण्डे खाये जहाँ-तहाँ। ऐसा कहते हैं। लोक की रीति कहते हैं, हों! यहाँ तो अभी लोक में भी बहुत मानी हो और जहाँ-तहाँ अपमान हो, फिर कहे, देखो न यह... रणवीरसिंह थे न भाई? जामनगर के दरबार। करोड़ों की आमदनी। वाईसराय आये हुए तब कितना खर्च किया? बीस लाख, इतने रुपये खर्च किये। वाईसराय के लिये। एक तीन लाख का पायखाना बनाया है। उसके लिये इसलिए ऐसा करते उसे ऐसा कि अब तो मैंने इतने पैसे खर्च किये हैं, इसलिए मेरा मान सरकार में रहे। उसमें राजा सब इकट्ठे हुए। सभा बड़ी। सब राजा इकट्ठे हुए। इसे ऐसा कि ... खड़ी की है। उसमें कुछ सरकार से विरुद्ध बोलने लगे और राजा को अनुकूल सामने जाकर। बैठ जाओ। यह भाषा कुछ दूसरी। अपने को बहुत नहीं आता। क्या था ऐई?

मुमुक्षु : सिटडाउन।

पूज्य गुरुदेवश्री : सिटडाउन। हाय... हाय..! जिसके लिये इतने-इतने लाख खर्च किये, उसे तीन दिन रहना, चार दिन रहने में तीन लाख का तो पायखाना बनाया था। प्रसन्न करने को। वह अवसर आया। भगवानजीभाई को खबर होगी। नहीं?

मुमुक्षु : ... सुना हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : ... बहुत किया था। हमने तो सुना था।

मुमुक्षु : लाख...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... वह राजा। करोड़-करोड़ तालुका की उपजवाले सब राजा इकट्ठे हुए और अपमान-अपमान। उसमें मर गया। अपमान इतना लगा, उसे धक्का लगा। सब सुना था। फिर डॉक्टर को चढ़ा दिया। यह खबर है। आहाहा! करोड़ की उपज एक

वर्ष की राज की। उसे अन्दर से अपमान लगा। बड़े राजा की सभा थी। ऐसा कि मैं इसके पक्ष का हूँ और इसकी वह की। क्या कहते हैं यह ? आवभगत। इसलिए मेरा कुछ रखेगा। बोला थोड़ा कुछ। बैठ जाओ। हाय... हाय। यह अपमान लगा उसे... ऐई! पोपटभाई! यह अभिमानी, देखो! संसार के अभिमानी दु:खी हैं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : कामकाज...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... परन्तु सबका ऐसा ही है। आहाहा! जितने-जितने मान पोषण किये हैं, उतनी ही यह प्रतिकूलता आवे वहाँ... ऐसा खेदखिन्न हो... ऐसा खेदखिन्न हो। मान में चढ़ा हो और अकेला अपमान आवे तो हाय... हाय... मर जाऊँ। आहाहा! संसार में भी अति मानी को चैन नहीं तो धर्म में अभिमान करे, उसे सुख और धर्म नहीं हो सकता। ऐसा कहना चाहते हैं।

तथा माया कपट और क्रोध इनसे रहित हो... कपट नहीं। यहाँ तो धर्म बात है। संसार में कुछ न कुछ कपट चलावे। बनिये गये हों कहीं और कहे कि अमुक जाता हूँ। होवे तोलने का कपास तीन कोस दूर। कहाँ जाते हो ? झूठ बोले। ऐई! पोपटभाई! ऐसे कपट और क्रोध। दुनिया में भी कहते हैं ऐसे कपट और क्रोधी हो तो दु:खी होता है, ऐसा कहते हैं, हों! अभी तो। **और लोभ से विशेष रहित हो वह सुख पाता है;...** उसमें भी मानरहित हो, कपटरहित हो, बहुत तीव्र क्रोध रहित तो लौकिक सुख पावे। लौकिक में उसकी सज्जनता हो।

तीव्र कषायी अति आकुलतायुक्त होकर निरन्तर दु:खी रहता है। खेदखिन्न-खेदखिन्न होता है। कितनी ही महिलायें भी ऐसी अभिमानी होती है न कि उनका जरा सा अपमान हो, वहाँ मर जाये, कूएँ में गिरे, अफीम खाये। क्या है वहाँ ? वहाँ मौसीबा बैठी है ? मौसीबा वहाँ बैठी है कि आओ भानेज यहाँ। मरकर वहाँ जायेगा तो दुकान छोड़ेगा देनदार ? पाप जो किये हैं, उनकी चुनौती वहाँ आयेगी ही। तू कहाँ जायेगा ? अपमान-अपमान। कहा नहीं ? हमारे लुहार की। सासु ने कहा, मेरे पुत्र को पुत्र होता नहीं। तीन-तीन लड़कियाँ। और हमारा घर ठीक कहलाये। लड़का होता नहीं। दूसरा विवाह करना है मेरे लड़के को। यह कहा और अपमान ऐसा लगा स्त्री को। ऐसा लगा। तीन लड़कियाँ,

स्वयं और बड़ी लड़की दो जीव साथ में, चारों कुएँ में जाकर गिरे दस बजे। हमारे उमराला की बात है। ऐई! पोपटभाई! वे आते हैं भाई अपने। महुवा की। यहाँ के मुमुक्षु हैं। लुहार। नया विवाह किया है न लड़के-बड़के व्यवस्थित। परन्तु उसकी माँ ने इतना कहा उसे कि मेरे लड़के को लड़का नहीं। तीन-तीन लड़कियाँ। अब उसकी उम्र इतनी हो गयी ३५ के ऊपर। ... ऐसी लग गयी। मान के पुतले। तीन लड़कियाँ और स्वयं चार और दो जीव साथ में अर्थात् पाँच जीव पड़े कुँए में। वहाँ सवेरे मुर्दा देखे। आहाहा! बंधियार कुँआ है। महाणियो। यह मान में ऐसा होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ... एक-एक दृष्टान्त ...

पूज्य गुरुदेवश्री : एक-एक दृष्टान्त सबको बनता है, ऐसा अनन्त बार। ऐसा है न? ऐई! नेमिदासभाई! काका-काकी कहलाते हों और कोई उतार पाड़े वहाँ। गाँव में काका-काकी कहलाये दोनों जनें।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सब जाने। ठीक कहते हैं। यह तो सेठ कहते हैं, और काकी का नाम दे। बड़े-बड़े... सब काकी को सौंपा है। आहाहा! वे कहे, ऐसा करना और फिर ब्याज बट्टा निकालकर पैसा ... कहो, समझ में आया इसमें?

कहते हैं, **तीव्र कषायी अति आकुलतायुक्त होकर निरन्तर दुःखी रहता है।** खेदखिन्नता करे। सासु ने मुझे ऐसा कहा, मेरी माँ ने मुझे ऐसा कहा, पति ने मुझे ऐसा कहा, अमुक ने मुझे ऐसा कहा। दुःखी बेचारे खेदखिन्न हो अन्दर कलेजे में। संसार में भी तीव्र क्रोधी, तीव्र मानी, तीव्र कपटी, लोभी भी दुःखी होता है। ऐसा यहाँ कहते हैं। बराबर है या नहीं? ऐई! दीपचन्दभाई! यह हमारे बड़े-बड़े पैसेवाले हों करोड़पति, उनका घर में अपमान हो। हाय। हाय... हम करोड़पति। जाति में हमारी गिनती नहीं। ना, नहीं।

मुमुक्षु : माफी मँगावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। अरे! एक रानी थी राजा की। बड़ा करोड़पति, हों! करोड़ों। रानी का जरा नाम लिया राजा ने कुछ फेरफार करके। दरबार! ध्यान रखना, हम जमींदार की लड़की हैं। हमारा नाम लोगे तो... पति को ऐसा कहा एकान्त में। पति कहे, हाय...

हाय... बाहर में मान का पार नहीं होता। यह घर में स्त्री ऐसा बोले। अब जले अन्दर क्या करे ? बाहर में खम्मा-खम्मा करते हों। परन्तु घर में स्त्री कहे, हमारा नाम नहीं लेना। हम जमींदारनी हैं। बनिया नहीं कहीं।... ऐई! उसकी बात बाहर आयी। जले अन्दर से दरबार बेचारा। क्या करे ? कहाँ जाना ? यह सब संसार में भी तीव्र, क्रोधी, मानी, दु:खी हैं। तो यहाँ धर्म में तो तीव्र कषाय आदि हो तो धर्म प्राप्त नहीं कर सकता।

अत: यही रीति मोक्षमार्ग में भी जानो... है न ? देखो! यह रीति मोक्षमार्ग में भी जानो। अर्थ बहुत अच्छा किया है। **जो क्रोध, मान, माया, लोभ चार कषायों से रहित होता है, तब निर्मल भाव होते हैं...** यह पुण्य और पाप के विकारी भाव रहित आत्मा की दृष्टि और ज्ञान करे तो उसे अच्छा निर्मल भाव हो। श्लोक है, श्लोक। हिन्दी है। मूल श्लोक है। अर्थ ऐसा नहीं। समझ में आया ? कहते हैं कि जितने प्रमाण में पुण्य और पापरूपी क्रोध, मान, राग-द्वेष के भावरहित होकर शुद्धता प्रगट करे, उतने प्रमाण में उसे शान्ति मिले। पूर्ण राग और द्वेषरहित हो तो यथाख्यात शान्ति मिलकर केवलज्ञान को पावे। कहो, समझ में आया इसमें ? आहाहा!

गाथा-४६

आगे कहते हैं कि जो विषय कषायों में आसक्त है, परमात्मा की भावना से रहित है, रौद्रपरिणामी है, वह जिनमत से पराङ्मुख है, अत: वह मोक्ष के सुखों को प्राप्त नहीं कर सकता –

विसयकसाएहि जुदो रुद्दो परमप्पभावरहियमणो।
सो ण लहइ सिद्धिसुहं जिणमुद्दपरम्मुहो जीवो।।४६।।

विषयकषायै: युक्त: रुद्र: परमात्मभावरहितमना:।
स: न लभते सिद्धिसुखं जिनमुद्रापराङ्मुख: जीव:।।४६।।

जो जीव जिन–मुद्रा–विमुख परमात्म भाव–रहित मनी।
वह रुद्र विषय–कषाय–युत पाता न सिद्धि–सुख कभी।।४६।।

अर्थ – जो जीव विषय–कषायों से युक्त है, रौद्रपरिणामी है, हिंसादिक विषय–कषायादिक पापों में हर्षसहित प्रवृत्ति करता है और जिसका चित्त परमात्मा की भावना से रहित है, ऐसा जीव जिनमुद्रा से पराङ्मुख है, वह ऐसे सिद्धिसुख जो मोक्ष के सुख को प्राप्त नहीं कर सकता।

भावार्थ – जिनमत में ऐसा उपदेश है कि जो हिंसादिक पापों से विरक्त हो, विषय–कषायों में आसक्त न हो और परमात्मा का स्वरूप जानकर उसकी भावनासहित जीव होता है, वह मोक्ष को प्राप्त कर सकता है, इसलिए जिनमत की मुद्रा से जो पराङ्मुख है, उसको मोक्ष कैसे हो? वह तो संसार में ही भ्रमण करता है। यहाँ रुद्र का विशेषण दिया है, उसका ऐसा भी आशय है कि रुद्र ग्यारह होते हैं, ये विषय–कषायों में आसक्त होकर जिनमुद्रा से भ्रष्ट होते हैं, इनको मोक्ष नहीं होता है, इनकी कथा पुराणों से जानना।।४६।।

गाथा–४६ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो विषय-कषायों में आसक्त है, परमात्मा की भावना से रहित है, रौद्रपरिणामी है, वह जिनमत से परान्मुख है; अतः वह मोक्ष के सुखों को प्राप्त नहीं कर सकता :- रुद्र की बात लेकर।

विसयकसाएहि जुदो रुद्दो परमप्पभावरहियमणो।
सो ण लहइ सिद्धिसुहं जिणमुद्दपरम्मुहो जीवो।।४६।।

अर्थ :- जो जीव विषय-कषायों में युक्त है,... रुचिवाले और अस्थिरतावाले हैं। विषय और कषाय मलिन परिणामसहित हैं, उसे आत्मा के शान्ति के सुख की प्राप्ति नहीं होती। सब अर्थ नहीं है इसमें, थोड़ा अर्थ है। **रौद्रपरिणामी है,...** रुद्र, यह शंकर है न अन्दर में? वह रुद्र परिणामी थे। जैन में साधु हुए परन्तु फिर भ्रष्ट हो गये। ग्यारह अंग पढ़े हुए। यह शंकर कहलाते हैं न? ग्यारह अंग पढ़े हुए, साधु हुए, पश्चात् भ्रष्ट हुए, जिनमुद्रा छोड़

दी, विषय की तीव्र अभिलाषा से नग्नपना छोड़ दिया।

हिंसादिक विषय-कषायादिक पापों में हर्षसहित प्रवृत्ति करता है... देखो! हर्षसहित प्रवर्ते। यह भाषा है। विकारभाव में उत्साह से प्रवर्ते, वह मूढ़ है। ज्ञानी को राग होता है, परन्तु उसमें उत्साह से नहीं प्रवर्तता। इतना अन्तर है। क्या कहा? अज्ञानी, पाँच इन्द्रिय के विषय और कषायसहित रुद्रपरिणामी और हर्षसहित प्रवर्ते। राग का छोटे में छोटा भाग हो परन्तु प्रेम से प्रवर्ते, वह मूढ़ और मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! विकार के परिणाम तो ज्ञानी-समकिती को भी होते हैं। समझ में आया?

भरत चक्रवर्ती, उनके घर में ९६ हजार रानियाँ। वे कैसी? जिनके शरीर में भ्रमर घूमे, ऐसे सुगन्धी शरीरवाली। तथापि उसे राग का भाग है परन्तु उसमें रुचि और हर्ष नहीं है। समझ में आया? खेद है। अरे! यह राग, उसकी रुचि ज्ञानी को नहीं होती। आसक्ति का थोड़ा भाग है परन्तु उसे उसमें हर्ष नहीं। अज्ञानी को छोटे में छोटा राग पुण्य-दया-दान का हो, उसमें हर्ष है। हर्ष के कारण हैरान हो जाता है। आहाहा! समझ में आया? हर्ष सहित प्रवर्तता है। है न? '**रुद्दो परमप्पभावरहियमणा सो ण लहइ सिद्धिसुह।**' मूल तो लेना है कि विषय-कषाय के (भाव में) हर्ष है। रुद्रपरिणाम है न।

और **परमात्मा की भावना से रहित है,...** जिसे पुण्य और पाप के राग में हर्ष है, यहाँ ऐसा कहना है कि बन्धभाव में जिसे हर्ष है, ऐसा कहना है। उसे आत्मा के मोक्षमार्ग के प्रति रुचि और दृष्टि नहीं होती। समझ में आया? आहाहा! रुद्र। **परमात्मा की भावना से रहित है,...** भगवान आत्मा ध्रुव चैतन्य आनन्दमूर्ति प्रभु, ऐसा यह आत्मा परमात्मा ही है अन्दर। उसकी उसे भावना नहीं होती। उसकी ओर की उसे एकाग्रता नहीं होती। जिसे विकारभाव का अन्दर में हर्ष और उत्साह वर्तता है, उसे आत्मा के स्वभाव की भावना नहीं होती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसी गाथायें सादी हैं, परन्तु भाव बहुत सरस है। गम्भीर है। आहाहा!

जिसे अपना परमात्मा भगवान चैतन्य प्रभु की जिसे भावना अर्थात् अन्तर एकाग्रता नहीं है, उसे हर्ष-शोक में जिसका सब प्रेम वर्तता है। पुण्य-पाप के भाव में ही पूरा अर्पित हो गया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह पुण्य और पाप के कषायभाव, विषय-कषायभाव में पूरा अर्पित हो गया है। भिन्न आत्मा है, उसका कुछ अवकाश रखा नहीं, वह

आत्मा की भावना नहीं कर सकता। समझ में आया? गजब बातें! ऐसा धर्म किस प्रकार का? वह तो कहे, रात्रि में खाना नहीं, कन्दमूल खाना नहीं, सूर्यास्तपूर्व भोजन करना, सामायिक करना, प्रौषध करना, प्रतिक्रमण करना, यात्रा करना, शत्रुंजय, सम्मेदशिखर जाना। वह तो सब शुभराग हो, उसकी बात है। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि शुभराग का भी जिसे हर्ष है, वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कुकषाय वह ही है न? दूसरा कौन था? 'तेरा दर्शन सुखकारी हो प्रभुजी, तेरा दर्शन सुखकारी। ... तेरा दर्शन सुखकारी।' प्रभु आत्मा का प्रियवर प्रभु स्वयं, उसका प्रेम करनेवाला स्वयं, उसमें सुख है, बाकी कहीं सुख है नहीं।

बाहर में ४०-४० लाख का बँगला। एक गोवा में है न? अपना शान्तिलाल खुशाल। ४० लाख का बँगला। ४० करोड़ रुपये। दो अरब दूसरे गिने जाते हैं। गिनना है न, वहाँ कहाँ खाना है? आहाहा! ऐसे हिचकता हो अन्दर से। भाईसाहेब! अपने यहाँ मिलना चाहते हैं। अभी नहीं, थोड़ी देर बाद। परन्तु साहेब बड़ा कारकून आया है, वह रुकेगा नहीं। ना किया, फिर हाँ करना पड़ी। क्या कहलाता है वह तुम्हारे पैसे का? इन्कम टैक्सवाला।

मुमुक्षु : ऑफिसर।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऑफिसर आये हों और उसे कहे कि अभी खाता हूँ, अभी नहीं। ... ऐसा नहीं कहा जाता। हाथ धो डालो। हैरान-हैरान हो अन्दर से। भाई! ... कारकून ... मार डालेगा तुम्हें। प्रसन्न रखो उसे। ऐई! सेठ! यह और सेठ को खबर पड़ी होगी न, दोनों व्यक्तियों को। आहाहा! अपने आत्मा का क्या होगा, उसकी दरकार नहीं। उसको प्रसन्न रखो। नहीं तो खेद हो जाये, खेद हो जाये। ... ऐसा कहे। दे दो उसे भाईसाहेब अमुक देना हो वह। आहाहा! कुत्ते को रोटियाँ डाले तो पूँछ हिलाता है। कुत्ता होता है न? रोटियाँ डालो तो ऐसे-ऐसे करे, नहीं तो ऐसे-ऐसे हो। कितने ही हों, उसे डालो चाहे पानी- तो ठीक हो। नहीं तो हैरान कर डाले। ऐई! इस संसार में ऐसे हख है, कहते हैं। ऐसा कहते हैं।

यहाँ तो विशेष बात दूसरी कहनी है। परमात्मा की भावना नहीं। भगवान आत्मा

ज्ञान का पिण्ड प्रभु चैतन्य का हीरा, चैतन्यसूर्य आत्मा है, चैतन्य का हीरा है आत्मा अन्तर (में)। आनन्द का कन्द प्रभु, जैसे शकरकन्द है, वैसे आत्मा आनन्द का कन्द है। आत्मा। कहाँ गया खबर नहीं मिलती। उसकी भावना विषय-कषाय के राग के रसवाले को इस चैतन्य की भावना नहीं होती। और जिसे चैतन्य की भावना हो, उसे विषय-कषाय के रस में प्रेम और भाव नहीं होता। आसक्ति हो, वह अलग बात है परन्तु उसका रस और हर्ष नहीं होता। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : रस अर्थात् एकाग्रता और रुचि। यह बाहर का रस छोड़े तो अन्दर में राग का रस है, वह रस छोड़ा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

ऐसा जीव जिनमुद्रा से परान्मुख है... वीतराग मुद्रा अन्दर भाव था, उसे छोड़ दिया। और मुद्रा वीतराग दिगम्बरदशा जो थी, उसे रुद्र ने छोड़ दिया। समझ में आया? उसकी बड़ी लम्बी कथा है। **जिनमुद्रा से परान्मुख है, वह ऐसे सिद्धिसुख को मोक्ष के-सुख को प्राप्त नहीं कर सकता।** आहाहा! जो विषय और कषाय के राग से रंग गया हुआ आत्मा, उसे आत्मा का रंग नहीं चढ़ता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! और जिसे आत्मा का रंग चढ़ता है, उसे विषय-कषाय के परिणाम का रंग उतर जाता है। रंग नहीं रहता-रस नहीं रहता। आहाहा! भारी काम, भाई! समझ में आया?

भावार्थ :- जिनमत में ऐसा उपदेश है कि जो हिंसादिक पापों से विरक्त हो,... हिंसा आदि पाप के परिणाम से तो विरक्त **विषय-कषायों में आसक्त न हो...** थोड़े परिणाम हों, उसमें भी रुचि नहीं। **और परमात्मा का स्वरूप जानकर उसकी भावनासहित जीव होता है, वह मोक्ष को प्राप्त कर सकता है,...** आहाहा! जो आत्मा अन्दर वस्तु आनन्दस्वरूप प्रभु, उसकी भावना, उसका प्रेम लगे, भावना करे, उसे मुक्ति होती है। समझ में आया?

मीराबाई की कथा। मीराबाई का (नाटक) देखने गये थे न तब। भरूच में एक बार गये थे। भरूच। साधु आये थे। हम भगत कहलायें। ... साधु उपाश्रय में गये थे। भरूच का क्या कहलाता है? स्टेशन के सामने नाटक देखने गये थे। ६४-६५ की बात है। संवत् १९६४-६५। मीराबाई का नाटक। डाह्याभाई घोणशा। ऐसा नाटक करे, एक बार तो वैराग्य

की धुन चढ़ा दे। भले उसे कुछ न हो। समझ में आया? मीराबाई राणा के साथ विवाह करती है। फिर राणा कहता है कि चल मेरे उसमें ले जाऊँ। लड़का तो जवान। वेतन तो बड़ा। तब १५-२० रुपये का वेतन महीने में हो। १९६४ के वर्ष की बात है। परन्तु ऐसा प्रदर्शन करे। 'परणी मारा पियुं अेनी साथ बीजाना मींढोळ नहि रे बांधु, हे राणा परणी मारा पियुजीनी साथ।' मेरा परमेश्वर। उसने माना हुआ। 'परणी मारा पियुजीनी साथ रे बीजाना मींढोळ नहि रे बांधु। नहि रे बांधु रे राणा नहिं रे बांधुं। परणी मारा परमेश्वरनी साथ, बीजाना मींढोळ...' मींढोळ समझते हो? यह विवाह करते हैं तब लकड़ी नहीं बाँधते?

मुमुक्षु : कंगन...

पूज्य गुरुदेवश्री : कंकण कहो। लकड़ी है। यहाँ बाँधते हैं लकड़ी? मींढोळ-मींढोळ कहे अपने काठियावाड़ में। मींढोळ बाँधा है। बाँधा है न? भगवानजीभाई! ऐसा सुनकर आये तो नींद न आवे। इतना तो अन्दर से वैराग्य चढ़ जाये। भरूच। धर्मशाला में बाहर सो रहे थे। मैं और फावाभाई थे। दो थे। सो रहे बाहर। परन्तु नींद न आवे, इतना वैराग्य। धुन चढ़ जाये अन्दर। आहाहा! ऐसी मीराबाई। वाह! वह राणा कहता है कि अरे! चल तुझे यह दूँ। बस।

इसी तरह सीताजी को लो न! सीताजी की अग्निपरीक्षा की। लोग काँप उठे। लक्ष्मण कहता है, भाई! ऐसे सुकोमल सीताजी को अग्नि की परीक्षा नहीं होती। नहीं चलती। प्रजा में कोलाहल हुआ है। प्रजा कहती है कि यह रावण के घर में रही। कौन जाने क्या हुआ? और राम ने घर में रखी। अग्नि में गिरना पड़ेगा। अग्नि में गिरे बिना घर में नहीं ले जायेंगे। आहाहा! अग्नि की और वह तो लाखों मण लकड़ियाँ। जलहल होली सुलगी। णमो अरिहन्ताणं। हे अग्नि! ध्यान रखना, इस लोक में धर्म की लाज जायेगी। मैंने यदि मेरे राम के अतिरिक्त दूसरा विकल्प किया हो तो जलाकर राख कर देना, परन्तु यदि दूसरा न किया हो तो ध्यान रखना। नहीं तो धर्म की लाज जायेगी इस जगत में। ऐसा करके कूद पड़ीं। सहज ही ऐसा हुआ कि ऊपर से एक देव निकलता था। देव, देव ने पानी किया और कमल बनाकर सीताजी बैठे।

मुमुक्षु : देव मदद के लिये आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : देव आये। सहज ही पुण्य था न? बात का यह सुमेल था। पुण्य का योग था और एकदम... मुझे तो दूसरा कहना है।

फिर पसार हुआ, नीचे उतरे। चलो रानी। राज की पटरानी बनाऊँ। राम! बस करो। बस हुआ। संसार स्वार्थी का पिण्ड। तुम मुझे जानते थे, निरपराध हूँ, सती हूँ, तुम्हारे हृदय में बसती हूँ, तथापि लोक के लिये ऐसी परीक्षा हुई। बस हुआ। अब मैं साधु होना चाहती हैं। ऐई!... चढ़ जाये न? यह संसार? राम जैसे पुरुषोत्तम पुरुष मोक्षगामी। इस भव में मोक्ष जानेवाले हैं। उन्हें भी ऐसा सूझा? अरे! संसार। धिक्कार!! दरबार! ऐसी अन्दर की लगन होती है, उसे अपने आत्मा की भावना छूटती नहीं और पर के विषय-कषाय का रस आता नहीं। राम कहते हैं, घर चलो। अब हम हमारे घर में जायेंगे। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, **जिनमुद्रा से परान्मुख है...** मूल तो नग्न दिगम्बरदशा कहना चाहते हैं। दिगम्बरदशा, हों! रुद्र का कहते हैं न! वीतरागभाव भी छूट गया है और मुद्रा दिगम्बर जो ऐसी निष्परिग्रह दशा चाहिए, वह छूट गयी। **उसको मोक्ष कैसे हो? वह तो संसार में ही भ्रमण करता है। यहाँ रुद्र का विशेषण दिया है, उसका ऐसा भी आशय है कि रुद्र ग्यारह होते हैं,...** रुद्र ग्यारह होते हैं। **ये विषय-कषायों में आसक्त होकर जिनमुद्रा से भ्रष्ट होते हैं,...** टीका में विस्तृत है। उसमें बड़ी टीका है। रुद्र की कथा है। बड़ी लम्बी कथा है। बोध कथा है। उसमें बहुत बड़ी-बड़ी कथा है। **जिनमुद्रा से भ्रष्ट होते हैं, इनको मोक्ष नहीं होता है, इनकी कथा पुराणों से जानना।** लो!

गाथा-४७

आगे कहते हैं कि जिनमुद्रा से मोक्ष होता है, किन्तु यह मुद्रा जिन जीवों को नहीं रुचती है वे संसार में ही रहते हैं -

जिणमुद्दं सिद्धिसुहं हवेइ णियमेण [१]जिणवरुद्दिट्ठं।
सिविणे वि ण रुच्चइ पुण जीवा अच्छंति भवगहणे ॥४७॥

१. पाठान्तरः - जिणवरुद्दिट्ठा।

जिनमुद्रा सिद्धिसुखं भवति नियमेन जिनवरोद्दिष्टा।
स्वप्नेऽपि न रोचते पुनः जीवाः तिष्ठंति भवगहने।।४७।।

जिन-कथित जिन-मुद्रा नियम से सिद्धि-सुख है वह जिन्हें।
रुचती नहीं है स्वप्न में भी वे गहन भव भटकते।।४७।।

अर्थ – **जिन भगवान के द्वारा कही गई जिनमुद्रा है, वही सिद्धिसुख है, मुक्तिसुख ही है, यह कारण में कार्य का उपचार जानना, जिनमुद्रा मोक्ष का कारण है, मोक्षसुख उसका कार्य है। ऐसी जिनमुद्रा जिनभगवान् ने जैसी कही है, वैसी ही है। ऐसी जिनमुद्रा जिस जीव को साक्षात् तो दूर ही रहो, स्वप्न में भी कदाचित् भी नहीं रुचती है, उसका स्वप्न आता है तो भी अवज्ञा होती है तो वह जीव संसाररूप गहन वन में रहता है, मोक्ष के सुख को प्राप्त नहीं कर सकता।**

भावार्थ – **जिनदेवभाषित जिनमुद्रा मोक्ष का कारण है, वह मोक्षरूप ही है, क्योंकि जिनमुद्रा के धारक वर्तमान में भी स्वाधीन सुख को भोगते हैं और पीछे मोक्ष के सुख को प्राप्त करते हैं। जिस जीव को यह नहीं रुचती है, वह मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता, संसार में ही रहता है।।४७।।**

गाथा-४७ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जिनमुद्रा से मोक्ष होता है किन्तु यह मुद्रा जिन जीवों को नहीं रुचती है, वे संसार में ही रहते हैं :- क्या कहते हैं? आहाहा! जिसे आत्मा की अन्तर की दृष्टि का निधान का खजाना खुल गया है, राग और आत्मा एक माननेवाले ने खजाने को ताला लगाया है। समझ में आया? भगवान आत्मा आनन्द का धाम प्रभु, वह राग के विकल्प से भिन्न है, ऐसा जहाँ ताला खोल डाला है, उसके निधान, निधान निकला ही करते हैं अन्दर से। ऐसे निधानवाले को बाहर की दिशा अत्यन्त दिगम्बर नग्नदशा हो जाती है। जरा उसकी बात करते हैं। समझ में आया? आहाहा! वह जिनमुद्रा जिसे स्वप्न में भी नहीं रुचती, वह अनन्त संसारी प्राणी है, ऐसा कहते हैं। यह नग्न, यह ऐसे। अरे! सुन रे सुन। नागा बादशाह से आघा। समझ में आया? उसमें लिखा है। जिनमुद्रा ... ऐसा उसमें लिखा हुआ है। उसमें है। संस्कृत टीका में है। बड़ी कथा है, लम्बी-लम्बी है। आहाहा!

कहते हैं, अहो ! धन्य अवतार ! जिसकी वीतरागदशा अन्दर प्रगट हुई है, स्वभाव की भावना की बात चलती है न परमात्मा की ? परमात्मा स्वयं निजानन्द प्रभु, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता की भावना है, उसे शरीर की मुद्रा नग्न हो जाती है। एक वस्त्र का धागा भी उसे नहीं रहता। ऐसी वीतरागता होती है उसे। समझ में आया ? जिनमुद्रा अन्दर की और जिनमुद्रा बाहर की। दोनों। आहाहा ! मोक्ष का मार्ग बताना है न ? यहाँ तो आचार्य यह कहेंगे। '**जिणमुद्दं सिद्धिसुहं**'। यहाँ तो कार्य का उपचार करते हैं न ? जिनमुद्रा, वही सिद्धिसुख है। क्योंकि जहाँ अन्दर वीतराग मुद्रा प्रगट हुई है, वहाँ बाहर में भी वीतराग मुद्रा दिगम्बर नग्नदशा (होती है) । आहाहा ! यह बात सुनने पर जिसे स्वप्न में आने पर घृणा लगे, उसे वीतरागमार्ग की रुचि नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? मोक्ष का मार्ग तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन हो और उसकी नग्नदशा दिगम्बर हो जाये। उसे वस्त्र का धागा भी नहीं हो सकता। ऐसी...

जिणमुद्दं सिद्धिसुहं हवेइ णियमेण जिणवरुद्दिट्ठं।
सिविणे वि ण रुच्चइ पुण जीवा अच्छंति भवगहणे ।।४७।।

स्वप्न में भी न रुचे, वह चौरासी के भवभ्रमण में भटकनेवाले हैं, कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? आचार्य महाराज तो स्वप्न में भी न रुचे... है न ? जिनमुद्रा वीतरागभाव अन्दर। उसे बाह्य के परिग्रह, वस्त्र का धागा (नहीं होता) । नग्न (दिगम्बर होता है) । माँ से जैसा जन्मा वैसा बालक जैसा उसका शरीर। निर्विकारी मुद्रा। आहाहा ! उसे भी व्यवहार से... आहाहा !

मुमुक्षु : वैराग्य उदासीनता...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह वैराग्य कितना ! कितना उदास ! समझ में आया ? कहा नहीं था ? अभी दो दिन पहले ? 'मारी मावडी रे अब नहीं राचुं रे आ संसारमां,...' हमको हे माता ! एक क्षण भी लाखों का जाता है। हमारे स्वभाव के साधन करने में। माता ! हम गृहस्थाश्रम में हैं... हैं। माँ ! आज्ञा दे। माँ ! तुझे रुलाया एक बार, हों ! अब दूसरी माँ नहीं करूँगा। कोल करार करते हैं। दूसरी माँ नहीं करेंगे, माँ ! परन्तु मुझे आज्ञा दे। हम वन में चले जायेंगे। आहाहा ! यह श्लोक आवे तब बोलते, भाई ! 'अजैव धम्मम पडिवज्ज्यामी...'

यह १४वाँ अध्ययन उत्तराध्ययन की गाथा बुलावे बोटाद में। 'अजैव धम्मम पडिवज्यामी, जहिंपवनाम पुणंभवामि...' हे माता! हम आज ही आत्मा के धर्म को अंगीकार करेंगे। जननी! फिर से दूसरी माँ अब नहीं करेंगे। 'अजैव धम्मम पडिवज्यामी...' आज ही हम धर्म को अंगीकार करेंगे। 'जहिंपुवंना...' जिसे अंगीकार करने से, माता! फिर से भव करनेवाले नहीं हैं। आहाहा! बेटा! जा भाई! भाई! जा, तेरा रास्ता हमें होओ। ऐसा कहकर आज्ञा देती है। ऐई! भगवानजीभाई! ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! जिसकी वीतरागदशा प्रगटी, जिसकी जिनमुद्रा... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-४८

आगे कहते हैं कि जो परमात्मा का ध्यान करता है वह योगी लोभरहित होकर नवीन कर्म का आस्रव नहीं करता है –

परमप्पय झायंतो जोई मुच्चेई मलदलोहेण।
णादियदि णवं कम्मं णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं।।४८।।

परमात्मानं ध्यायन् योगी मुच्यते मलदलोभेन।
नाद्रियते नवं कर्म निर्दिष्टं जिनवरेन्द्रैः।।४८।।

परमात्मा ध्याता श्रमण मल–जनक लोभ से छूटता।
नूतन करम नहिं आस्रवित हैं वहाँ जिनवर ने कहा।।४८।।

अर्थ **– जो योगी ध्यानी परमात्मा का ध्यान करता हुआ रहता है, वह मल देनेवाले लोभकषाय से छूटता है, उसके लोभ मल नहीं लगता है, इसी से नवीन कर्म का आस्रव उसके नहीं होता है, यह जिनवरेन्द्र तीर्थंकर सर्वज्ञदेव ने कहा है।**

भावार्थ **– मुनि भी हो और परजन्मसंबन्धी प्राप्ति का लोभी होकर निदान करे, उसके परमात्मा का ध्यान नहीं होता है, इसलिए जो परमात्मा का ध्यान करे, उसके इस लोक परलोक संबन्धी परद्रव्य का कुछ भी लोभ नहीं होता है, इसीलिए उसके नवीन**

कर्म का आस्रव नहीं होता – ऐसा जिनदेव ने कहा है। यह लोभ कषाय ऐसा है कि दसवें गुणस्थान तक पहुँच जाने पर भी अव्यक्त होकर आत्मा के मल लगाता है। इसलिए इसको काटना ही युक्त है अथवा जब तक मोक्ष की चाहरूप लोभ रहता है, तब तक मोक्ष नहीं होता, इसलिए लोभ का अत्यन्त निषेध है।।४८।।

प्रवचन-८१, गाथा-४८ से ५१, सोमवार, भाद्र शुक्ल ८, दिनांक ०७-०९-१९७०

.... समझ में आया ? हम तो दुकान पर भी बहुत पढ़ते थे न। सज्झाय बहुत करते थे। हजारों। है न वह सज्झाय ? चार सज्झायमाला है न यहाँ ? सज्झाय माला देखी नहीं होगी पोपटभाई ने। यहाँ देखी है ? ठीक, यहाँ देखी है कहते हैं। चार सज्झायमाला हैं। हजारों सज्झाय है। दुकान पर सब देखा था। बहुत वाँचन किया था। संवत् १९६४-६५-६६। उसमें वह श्लोक आया था। 'साचा में समकित बसे, माया में मिथ्यात्व।' पहले दो भूल गये। 'समकितनुं मूल जणीये सत्य वचन साक्षात्'। ऐसा उसमें आता है। 'समकितनुं मूल जाणीये सत्य वचन साक्षात्, साचा में समकित बसे, माया में मिथ्यात्व।' ऐसा श्लोक है। सरलपना होना चाहिए। ऐसी अपनी स्थिति है—ऐसा मन, वचन, काया से वक्रता न करे। ऐसा धर्म है, लो। आज तो आर्जव धर्म है न।

अब, यहाँ ४८ गाथा। चार और आठ। अष्टपाहुड़, मोक्षपाहुड़ की ४८ गाथा। क्या कहते हैं ? अड़तालीस।

परमप्पय झायंतो जोई मुच्चेई मलदलोहेण।
णादियदि णवं कम्मं णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं।।४८।।

अर्थ :- जो योगी ध्यानी परमात्मा का ध्यान करता हुआ रहता है... परमात्मा अपना निज स्वरूप। जैसा सिद्ध है, वैसा ही अपना अन्तर स्वरूप है। जिसमें पुण्य-पाप के विकल्प का भी मैल है नहीं। कर्म है नहीं, शरीर है नहीं, ऐसा अपना निज स्वरूप अन्तर है। ऐसा **परमात्मा का ध्यान करता हुआ रहता है, वह मल देनेवाले लोभकषाय से छूटता है,...** उसको लोभ होता नहीं। इसलोक की कोई इच्छा नहीं, परलोक की (कोई

इच्छा नहीं)। मोक्ष अधिकार आया है, ४८। मोक्ष अधिकार ४८ गाथा है। निकली? **'परमप्पय'**।

मुमुक्षु : ४८ हो गयी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये ४८ हो गयी है? ४८ पढ़ते हैं, ४७ हो गयी है। वहाँ अपने आया था, स्वप्न में भी जिसे नग्नमुद्रा रुचती नहीं है, वह मायावी मिथ्यादृष्टि है। वह पहले ४७ में आ गया है। समझ में आया? नग्नमुद्रा दिगम्बर वीतराग स्वभाव, अन्दर में वीतराग स्वभाव प्रगट हुआ हो और बाह्य में नग्नदशा। जैसे माता ने जन्म दिया, ऐसी नग्नमुद्रा और भावमुद्रा वीतराग जिसको नहीं रुचती है, स्वप्न में नहीं रुचे, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? वह ४७ में चल गया है। यहाँ तो ४८ चल रही है।

कहते हैं, जो **परमात्मा का ध्यान करता हुआ...** क्या कहते हैं? मैं तो आनन्द और शुद्ध द्रव्यस्वभाव मेरा पवित्र है, ऐसा ध्येय लगाकर ध्यान अर्थात् अन्तर में एकाग्रता करता है, उसको लोभकषाय छूटती है। उसको इसलोक और परलोक की कोई इच्छा रहती नहीं। परमात्मा के ध्यान में आलोक-परलोक की इच्छा कहाँ रही? ऐसा कहते हैं। आहाहा! लोभ का अर्थ—अपना आनन्दस्वरूप शुद्धात्मा का जहाँ ध्यान लगाते हैं तो भावना वह लोभ हुआ, लोभ वह हुआ। अन्तर भावना हुई, वह लोभ है। अपनी प्राप्ति। ऐसी प्राप्ति की दृष्टिवन्त को परपदार्थ की कोई इच्छा इसलोक की और परलोक का निदान आदि होते नहीं। है ही नहीं। महापरमात्मा निज स्वरूप है, उसकी जिसको रुचि और प्रेम जागा है, वह परलोक और इसलोक की इच्छा करते नहीं। समझ में आया?

उसके लोभ मल नहीं लगता है... कहना ऐसा है कि यहाँ जहाँ आत्मा का ध्यान अथवा स्वरूप की ओर झुकना हुआ, उसको पर ओर का विकल्प है नहीं तो उसको लाभ मल लगता नहीं। निर्मलता प्रगट होती है। समझ में आया? मोक्षपाहुड़ है न। बहुत संक्षिप्त भाषा है। टूंकी समझे? संक्षेप में। यहाँ भगवान आत्मा चैतन्य आनन्द का धाम है, ऐसी दृष्टि होकर जहाँ उस ओर झुकाव हुआ (तो) चार गति का झुकाव छूट गया। समझ में आया? देवगति का भी विकल्प छूट गया कि देवगति होगी या नहीं? इस आत्मा की परमात्मगति होगी, उसमें देवगति हो, ऐसा आये कहाँ से? आहाहा! पोपटभाई! फिर उसे पुत्र अच्छे हो और पैसे अच्छे हो, ऐसी इच्छा होती नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : पुत्र थे ही कब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ साथ में हाथ जोड़ के बैठा है। कितने पैसे खर्च करके, पाप करके पैसा इकट्ठा किया। फिर उसके नाम पर खर्च किया। कहो, समझ में आया? रामजीभाई का जीवन नैतिक बहुत अलौकिक था। संसार में भी उनकी लाईन बहुत... उनकी छाप... धारणा भी इस उम्र में... ओहोहो! बहुत धारणा। ऐई! आपकी भी कितनी धारणा तो नहीं होगी।... मेरे से ज्यादा है, ऐसा कहे। बाह्य बुद्धि का यहाँ क्या काम है? ऐ... भगवानजीभाई! आहाहा! यहाँ तो अन्तर की दृष्टि करने के विषय में जो बुद्धि काम करे, वह बुद्धि है। बुद्धयते इति बुद्धि। अपने स्वभाव को जानने में काम आवे, वह बुद्धि। समझ में आया? ... में नहीं। देखो!

यहाँ तो कहते हैं, मोक्ष का अधिकार है न। मोक्ष तो अपना वस्तुस्वभाव शुद्ध आनन्दधाम की ओर के झुकाव से अर्थात् ध्यान से, झुकाव का अर्थ ध्यान से, ध्यान से का अर्थ झुकाव से। अन्तर के झुकाव से स्वद्रव्य के आश्रय से आत्मा को संवर, निर्जरा और मोक्ष होता है। जैसे संवर, निर्जरा ज्यों अन्त में अपने द्रव्यस्वभाव में दृष्टि लगायी, उसको इसलोक, परलोक की कोई इच्छा रहती नहीं। समझ में आया? ये तो सम्यग्दृष्टि की बात करते हैं। बाद में चारित्र। परन्तु सम्यग्दृष्टि को जहाँ अपना ध्येय है, उसका ध्यान करने की जहाँ भावना है, उसको दूसरी कोई इच्छा होती नहीं। समझ में आया? तीन लोक का राज हो तो भी (उसकी इच्छा नहीं है)। अपने आलोचना में आया था। हे नाथ! आपने हमें जो उपदेश दिया, हे भगवान! उस उपदेश की जमावट में... हमारे जयकुमारजी कहते हैं, विस्तार से पढ़िये। परन्तु एक घण्टे में पूरा करना था। क्या करें? उसमें वह आया था, अन्त में आया था। हे नाथ! तेरे उपदेश में हमारा आत्मा ऐसा आया है कि जिसकी हमें अन्दर में जमावट लगी है। उसके आगे मुझे पृथ्वी का राज तो क्या है? देवलोक में जाना है न? इसलिए ना कहते हैं। पृथ्वी का राज तो क्या परन्तु तीन लोक का राज मुझे सड़े हुए तिनके के जैसे दिखता है। ऐसा चिदानन्द भगवान का ध्यान करता है और अपने श्रद्धा-ज्ञान में आत्मा को लिया तो सब ले लिया। सब जाना, सब देखा, सब किया। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :- कहते हैं, **मुनि भी हो और परजन्मसम्बन्धी प्राप्ति का लोभ होकर...**

देखो ! लोभ लेना है न। **निदान करे, उसके परमात्मा का ध्यान नहीं होता है,...** जिसे कुछ भी बाहर की रुचि और इच्छा रह जाए, उसकी इच्छा हो जाए तो अपने स्वरूप की दृष्टि नहीं होगी, स्वरूप की ओर झुकना नहीं होगा। समझमें आया ? बाह्य में कोई भी शुभराग की मिठास और प्रेम रह जाए तो अन्तर में रागरहित स्वभाव की रुचि, दृष्टि, ध्यान और ध्याता नहीं होगा। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कहते हैं। जिसको परमात्मा अपना निज स्वरूप, परम आत्मा अर्थात् परम स्वरूप, ऐसी जहाँ प्रीति की जमावट अन्दर में हुई, ऐसे धर्मात्मा को लोभमात्र रहता नहीं। अस्थिरता होती है, वह कुछ नहीं, वह गिनती में नहीं आता।

निदान करे, उसे परमात्मा का ध्यान नहीं होता है, इसलिए जो परमात्मा का ध्यान करे, उसके इसलोक-परलोक सम्बन्धी परद्रव्य का कुछ भी लोभ नहीं होता है,... देखो ! समझ में आया ? परजन्म और इस जन्म का लोभ, उसको परमात्मा का ध्यान नहीं होता। और आत्मा का ध्यान जिसे होता है, उसको परलोक और इसलोक की इच्छा नहीं होती। आहाहा ! समझ में आया ? **उसके इसलोक-परलोक सम्बन्धी परद्रव्य का कुछ भी लोभ नहीं होता है, इसलिए उसके नवीन कर्म का आस्त्रव नहीं होता, ऐसा जिनदेव ने कहा है।** वीतरागदेव परमात्मा ऐसा कहते हैं कि भगवान ! तेरा परमानन्दस्वरूप तेरे परमात्मा में जिसने दृष्टि लगाई, उस ओर का झुकाव का ध्यान हुआ, उसे किसी भी प्रकार का बाह्य लोभ रहता नहीं। समझ में आया ?

यह लोभकषाय ऐसा है कि दसवें गुणस्थान तक पहुँच जाने पर भी अव्यक्त होकर आत्मा को मल लगाता है,... दसवें गुणस्थान तक आता है न ? **इसलिए इसको काटना ही युक्त है,...** इसलिए स्वभावसन्मुख होकर उसका नाश करना ही उचित है। काटना (कहा तो) भाषा तो क्या करे ? लोभ को काटे क्या ? इस लाभ को काटूँ, ऐसा है ? उपदेश में वाक्य कैसा आये ? लोभरहित अपना निर्लोभ सन्तोष आनन्दस्वरूप की दृष्टि हुई और स्थिरता हुई तो इच्छा की उत्पत्ति नहीं हुई, तब इच्छा का काटना कहने में आता है। ऐसी बात है। भारी कथनी अलग जाति की, भाव अलग जाति का। कथनी उस प्रकार से आये। वस्तु भगवान भिन्न है, भाषा जड़ भिन्न है। भाषा द्वारा आत्मा की बात करनी, दुश्मन द्वारा प्रशस्ति करवाने (जैसा है)। भगवान तो मौन है। कौन भगवान ? आत्मा तो मौन है।

उसे विकल्प भी नहीं और वाणी भी नहीं। ऐसे आत्मा का जिसको दृष्टि और ध्यान लगा, उसको परलोक की इसलोक की कोई इच्छा है नहीं। इच्छा होने पर भी इच्छा नहीं। इच्छा की इच्छा नहीं है। आहाहा! परमात्मा आनन्दस्वरूप में जहाँ प्रीति जमी है... आता है न? निर्जरा अधिकार में। रति, कल्याण, सन्तोष इतने में कर दे। बाह्य में सन्तोष आदि है नहीं। निर्जरा अधिकार में आता है।

अथवा जब तक मोक्ष की चाहरूप लोभ रहता है... देखो! अरे! मोक्ष की इच्छा रहे, तब तक भी आत्मा वहाँ रुक जाता है। क्योंकि इच्छा का भी अभाव होता है, तब मोक्ष होता है। 'क्या इच्छत खोवत सब, है इच्छा दुःख मूल। क्या इच्छत खोवत सब है इच्छा करे नहीं।' तेरा आत्मा तो उसमें खो जाता है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म। छोटे से छोटा लोभ हो परन्तु उसकी रुचि और प्रेम रहता है तो समाप्त! आत्मा का प्रेम नहीं रहता। एक म्यान में दो तलवार नहीं रहती। आहाहा! जहाँ भगवान आत्मा का अन्दर में प्रेम लगा, उसका तीन लोक-तीन काल के पर का प्रेम छूट जाता है। और वहाँ का प्रेम रहे और आत्मा का प्रेम हो जाए, ऐसा बनता नहीं। समझ में आया?

गाथा-४९

आगे कहते हैं कि जो ऐसा निर्लोभी बनकर दृढ़ सम्यक्त्व ज्ञान चरित्रवान होकर परमात्मा का ध्यान करता है वह परमपद को पाता है –

होऊण दिढचरित्तो दिढसम्मत्तेण भावियमईओ।
झायंतो अप्पाणं परमपयं पावए जोई।।४९।।

भूत्वा दृछ चरित्रः दृढसम्यक्त्वेन भावितमतिः।
ध्यायन्नात्मानं परमपदं प्राप्नोति योगी।।४९।।

सम्यक्त्व दृढ़-भावित-मति दृढ़-चरित्री होकर सदा।
ध्याता श्रमण शुद्धात्मा वह परम पद पाता सदा।।४९।।

अर्थ – पूर्वोक्त प्रकार जिसकी मति दृढ सम्यक्त्व से भावित है ऐसे योगी ध्यानी मुनि दृढचारित्रवान होकर आत्मा का ध्यान करता हुआ परमपद अर्थात् परमात्मपद को प्राप्त करता है।

भावार्थ – सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप दृढ होकर परिषह आने पर भी चलायमान न हो, इस प्रकार से आत्मा का ध्यान करता है, वह परमपद को प्राप्त करता है – ऐसा तात्पर्य है।।४९।।

गाथा-४९ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो ऐसा निर्लोभी बनकर दृढ़ सम्यक्त्व-ज्ञान-चारित्रवान होकर... दृढ़ स्वरूप में चारित्रवन्त होकर। दृढ़ समकित, दृढ़ ज्ञान और दृढ़ चारित्र। **होकर परमात्मा का ध्यान करता है, वह परम पद को पाता है** :- लो, वह कहते हैं।

होऊण दिढचरित्तो दिढसम्मत्तेण भावियमईओ।
झायंतो अप्पाणं परमपयं पावए जोई।।४९।।

योगी। आत्मा आनन्दकन्द में जुड़ान करे, वह योगी। सम्यग्दृष्टि भी उतना योगी है। आहाहा! समझ में आया? राग की एकता तोड़कर वीतराग चैतन्यमूर्ति परमात्मा में जहाँ एकता हुई तो उतना वह योगी है, वह आत्मा का योग साधता है। समझ में आया? भरत गृहस्थाश्रम में वैरागी, नहीं कहते हैं? भरतजी घर में वैरागी। ९६ हजार स्त्रियाँ पद्मनी जैसी। ९६ हजार समझे? ९६ लाख तो हाथी, ९६ करोड़ सैनिक, ९६ करोड़ गाँव कोई मेरा नहीं। मैं तो आनन्दस्वरूप हूँ। ९६ हजार पद्मनी जैसी स्त्रियाँ घर में। राग भी थोड़ा होता है परन्तु उस राग का राग नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अपना निज स्वरूप भिन्न की दृष्टि रुचि के आगे जगत के कोई भी पदार्थ का प्रेम या रुचि उसे लूट ले, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

अर्थ :- पूर्वोक्त प्रकार... योगी ध्यानी मुनि इतने विशेषण लगाये। **दृढ़ सम्यक्त्व से भावित है...** पहले तो आत्मा अखण्ड आनन्दमूर्ति की प्रतीति-सम्यग्दर्शन में पक्की होनी चाहिए। सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र होता नहीं और चारित्र बिना मोक्ष का कारण

ध्यान उग्र होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? पहले तो **जिसकी मति दृढ़ सम्यक्त्व से भावित है...** जिसका मतिज्ञान, मति में दृढ़ता हो गयी है कि मैं पूर्ण आनन्द शुद्ध ध्रुव (हूँ)। मेरे स्वभाव में राग और पर का प्रवेश तो नहीं परन्तु एक समय की वीतरागी पर्याय का भी प्रवेश नहीं। समझ में आया? ऐसा वज्र किला चिदानन्द भगवान आत्मा है, ऐसा समकित दृढ़ हो, ऐसी जिसकी मति हो। और **दृढ़ चारित्रवान होकर...** ओहो! स्वरूप का सम्यग्दर्शनपूर्वक जहाँ स्वरूप में लीनता हो गयी, ध्यान हुआ, जमावट ध्यान हुआ। स्वरूप में रमना, जमना, लीन होना, आनन्द का विशेष भोजन लेना। ये दवाई की पुड़ियाँ लेते हैं न? दो पुड़िया का खुराक लेना। ऐसा कहते हैं या नहीं? खुराक-बुराक कुछ नहीं है धूल में। आत्मा आनन्द का भोजन। खुराक समझते हैं या नहीं भोजन। सम्यग्दर्शन भानसहित आनन्द का भोजन करते हैं, उसका नाम चारित्र है। आहाहा! समझ में आया?

जिसकी मति दृढ़ सम्यक्त्व से भावित है ऐसा योगी ध्यानी मुनि दृढ़ चारित्रवान होकर आत्मा का ध्यान करता हुआ... ऐसा बनकर अपने स्वरूप में लीनता करता हुआ और अपने ध्रुव स्वभाव की ओर झुकाव होने से **परमपद अर्थात् परमात्मपद को प्राप्त करता है।** अपना परमात्मा का ध्यान करने से पर्याय में परमात्मपद प्रगट होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कठिन बात लगे। परन्तु बापू! मार्ग ही यह है। स्वयं निज स्वरूप परमात्मा के ध्यान से ही शुद्ध परमानन्दरूपी मुक्ति प्राप्त होती है। दूसरा कोई कारण है नहीं। बीच में पंच महाव्रत आदि का विकल्प आता है, वह तो बन्ध का कारण है, ऐसा कहते हैं। मोक्ष का कारण नहीं। स्वद्रव्य स्वभाव पूर्ण की ओर का झुकाव से जितनी लीनता हुई, वही मोक्ष का कारण है।

मुमुक्षु : यह योगी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका नाम योगी। ये सब ऐसा करके बैठे, ध्यान लगाये, क्या ध्यान लगाया? एक आदमी लम्पटी था। वह भी समाधि लेता था। गड्ढे के अन्दर डाले और रहता। बाहर निकले तो ... उस प्रकार की प्रेक्टिस की थी। यहाँ आया था। रामजीभाई को मिला थ। यहाँ गुरुकुल में आया था। जमीन के अन्दर रहे, ऊपर से बन्द कर दे, था लम्पटी। परन्तु उस प्रकार का अभ्यास किया हो तो पाँच-दस-पन्द्रह दिन रहे। उसके साथ क्या सम्बन्ध है? समझ में आया? यहाँ गुरुकुल में आया था। भगवान के नाम से

ध्यान करके रह सको ? नहीं। मैंने जिसका विचार त्राटक किया हो, उसमें रह सकता हूँ। उसमें क्या ? ये सब समाधि करनेवाले थोथा है। आत्मा आनन्दस्वरूप का जब तक अन्तर्मुख होकर दृढ़ सम्यग्दर्शन हुआ नहीं, तब तक उसमें लीनता का चारित्र का ध्यान का भाव आता नहीं। लोगों का रंजन करे कि आहाहा! पन्द्रह दिन समाधि लगायी और ऊपर लकड़ी रखकर धूल डाली। समझ में आया ?

उमराला में देखा था। बहुत वर्ष पहले की बात है। (संवत्) १९५८-५९ की बात है। कबीर का साधु था। वाणन्द के घर... वाणन्द समझे ? हजाम के घर रहता था। अन्तिम दिन जीवित रहकर समाधि ली। हम देखने गये थे। ऐई! प्रकाशदासजी! ... वहाँ देखा था। कबीर का साधु था। ऐसे सुन्दर शरीर था। परन्तु उसे ऐसी धुन लगी थी कि मुझे जीवित (समाधि लेनी है)। मकान के अन्दर खाली जगह हो, वहाँ गड्ढा करके जिन्दा बैठाया। फिर ऊपर लकड़ी डालकर, धूल डालकर ढोल बजाया। वह आवाज करे तो कोई सुने नहीं। ढोल... ढोल समझते हो ? नगारा। गड्ढे में डाला, उस पर लकड़ी डाली, उसके ऊपर डाली धूल। हम तो छोटी उम्र के थे। (संवत्) १९५७ या १९५८ की बात है। कबीर का साधु था। कुछ भान नहीं।

मुमुक्षु : जबरदस्ती.. ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, उसने कहा था। ...हम तो बाहर खड़े थे। नगारा बजाया। उं.. उं.. कुछ भी हुआ होगा, अन्दर से जीव निकल गया होगा। यह तो हठ है, मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया ?

यह तो आत्मा परमानन्द स्वरूप की जागृति दृष्टि में हुई, फिर उसमें लीन होकर बाह्य में चाहे कुछ भी दबाव हो, चाहे तो ऊपर लकड़ी डाले या धूल डाले, परन्तु अन्दर ध्यान में लीनता है। समझ में आया ? उससे आत्मा की मुक्ति और मोक्ष होता है। ऐसी हठ समाधि से अनन्त बार किया, उसमें क्या है ?

भावार्थ :- सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप दृढ़ होकर परीषह आने पर भी चलायमान न हो,... देखो! अपना निज स्वभाव का ऐसा भरोसा अन्तर में भान होकर आया, इतना भरोसा अन्तर में ज्ञान का ख्याल में आकर आया कि जिसकी दृढ़ता चौदह ब्रह्माण्ड फिर परन्तु दृढ़ता फिरे नहीं। समझ में आया ? ऐसा अन्दर में दृढ़ समकित सहित **परीषह आने**

पर भी चलायमान न हो... प्रतिकूलता का संयोग हो परन्तु अन्दर में डिगे नहीं। **इस प्रकार से आत्मा का ध्यान करता है, वह परम पद को प्राप्त करता है...** ऐसे आत्मा का ध्यान करे, वह परमपद को प्राप्त करता है। अभी सम्यक्त्व का ठिकाना नहीं, ज्ञान का ठिकाना नहीं और करो ध्यान। बहुत लोग पूछने आते हैं कि हमें किसका ध्यान करना? अभी वस्तु क्या है, उसकी तो दृष्टि कर। समझ में आया? ध्येय जो आत्मा है, उसका तो पता नहीं, ध्यान किसका करना? ध्यान तो सम्यग्दर्शन होने के बाद स्वरूप में स्थिरता करना, वह ध्यान है। समझ में आया? पण्डितजी! यह सामायिक में ध्यान करते हैं न? परन्तु सम्यग्दर्शन बिना सामायिक में ध्यान कहाँ से आया?

सम्यग्दर्शन जो ध्यान का मूलकारण है, वह तो सम्यग्दर्शन है। और सम्यग्दर्शन में कारण तो त्रिकाली तत्त्व है। ऐसा त्रिकाली तत्त्व दृष्टि में और ज्ञान में-मति में आया नहीं तो कहाँ ध्येय लगाना, वह तो खबर नहीं, उसको ध्यान होता नहीं। मुफ्त में समय जाता है। ऐसा लगा दे, उसमें क्या हुआ? वह कहते हैं।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन आयेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ से आयेगा? दृष्टि में भान नहीं हुआ, कहाँ से आयेगा? सेठ बचाव करते हैं। ऐसा कहते हैं कि ऐसा करेगा तो आयेगा। ऐसा तो अनन्त बार किया। दो-दो महीने का संथारा। संथारा समझे? सल्लेखना। दो-दो मास, साठ-साठ दिन। अनन्त बार किया। अपना निजानन्द स्वभाव क स्पर्श किये बिना आत्मा को लाभ हुआ नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह तो बाह्य क्रियाकाण्ड का विकल्प है। वह हठ है, हठ। आहाहा! ४८ हुई।

आत्मा के सम्यग्दर्शनसहित, सम्यग्ज्ञानसहित और बाद में स्वरूप में स्थिरतासहित यदि ध्यान करे तो उसको परमपद की प्राप्ति हो। सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं, सम्यग्ज्ञान का ठिकाना नहीं, चारित्र का ठिकाना नहीं और ध्यान करे। किसका ध्यान? आकाश के फूल का ध्यान जैसा ध्यान है। आकाश का फूल है नहीं, ऐसा तेरा ध्यान है। वस्तु क्या है अन्दर में? ऐसा ज्ञान में स्वज्ञेय आये बिना, श्रद्धा में ज्ञेय आने की प्रतीति हुए बिना स्वरूप में स्थिरता होती नहीं। और स्थिरता होने के बाद ध्यान जमता है। ऐसा यहाँ कहते हैं। उसकी गाथा है। आहाहा!

गाथा-५०

आगे दर्शन, ज्ञान, चारित्र से निर्वाण होता है, ऐसा कहते आये वह दर्शन, ज्ञान तो जीव का स्वरूप है, उसको जाना, परन्तु चारित्र क्या है? ऐसी आशंका का उत्तर कहते हैं –

चरणं हवइ सधम्मो धम्मो सो हवइ अप्पसमभावो।
सो रागरोसरहिओ जीवस्स अणण्णपरिणामो ।।५०।।

चरणं भवति स्वधर्मः धर्मः सः भवति आत्मसमभावः।
सः रागदोषरहितः जीवस्य अनन्यपरिणामः ।।५०।।

चारित्र है स्वधर्म वह सम-भाव आत्मिक धर्म है।
इस जीव का वह राग-द्वेष-रहित अनन्य परिणाम है।।५०।।

अर्थ – स्वधर्म अर्थात् आत्मा का धर्म है, वह चरण अर्थात् चारित्र है। धर्म है, वह आत्मसमभाव है, सब जीवों में समानभाव है। जो अपना धर्म है, वही सब जीवों में है अथवा सब जीवों को अपने समान मानना है और जो आत्मस्वभाव से ही (स्वाश्रय के द्वारा) रागद्वेष रहित है, किसी से इष्ट-अनिष्ट बुद्धि नहीं है – ऐसा चारित्र है, वह जैसे जीव के दर्शन-ज्ञान है, वैसे ही अनन्य परिणाम है, जीव का ही भाव है।

भावार्थ – चारित्र है, वह ज्ञान में रागद्वेष रहित निराकुलतारूप स्थिरभाव है, वह जीव का ही अभेदरूप परिणाम है, कुछ अन्य वस्तु नहीं है।।५०।।

गाथा-५० पर प्रवचन

आगे दर्शन, ज्ञान, चारित्र से निर्वाण होता है - ऐसा कहते आये, वह दर्शन, ज्ञान तो जीव का स्वरूप है—ऐसा जाना, परन्तु चारित्र क्या है? ऐसी आशंका का उत्तर कहते हैं :- जीव का स्वरूप क्या है और फिर चारित्र क्या है? उन सबकी व्याख्या करते हैं। कठिन बात, भाई!

चरणं हवइ सधम्मो धम्मो सो हवइ अप्पसमभावो ।
सो रागरोसरहिओ जीवस्स अणण्णपरिणामो ।।५०।।

अर्थ :- स्वधर्म अर्थात् आत्मा का धर्म है, वह चरण अर्थात् चारित्र है। देखो, चारित्र की व्याख्या। पंच महाव्रत का विकल्प और देह की नग्नदशा, वह कोई चारित्र नहीं है। आहाहा! **स्वधर्म अर्थात् आत्मा का धर्म है, वह चरण अर्थात् चारित्र है।** आत्मा वीतरागस्वभाव है। ऐसा वीतरागस्वभाव प्रगट हो, उसका नाम चारित्र है। समझ में आया? स्वधर्म अर्थात् आत्मा के धर्म को चरण कहते हैं।

धर्म है, वह आत्म समभाव है... आत्मा समभाव है **सर्व जीवों में समानभाव है।** मैं आनन्दमय ज्ञानमय हूँ, वैसे सब आत्मा ज्ञानमय हैं। सर्व जीव हैं ज्ञानमय, वह आता है या नहीं? योगीन्द्रदेव योगसार। 'सर्व जीव है ज्ञानमय' बाद में? 'जाणे समता धार' अर्थात् समता का अर्थ वीतरागभाव प्रगट करके सर्व आत्मा मेरे जैसे हैं, ऐसा समान। किसी पर विषमता नहीं है। समझ में आया? सर्व जीव है ज्ञानमय। श्रीमद् में ऐसा आया, 'सर्व जीव है सिद्धसम'। वहाँ आत्मसिद्धि में सिद्धसम कहा है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरा' और सर्व जीव सिद्ध समान ही हैं।....

सब जीवों में समानभाव है। समझ में आया? श्रीमद् में आता है या नहीं? 'बहु पुण्य केरा...' (काव्य में)। अन्त में आता है। 'सर्व आत्ममां समदृष्टि दो, सर्वात्ममां समदृष्टि दो।' उसका अर्थ (यह कि) सर्व जीव ज्ञान का पिण्ड है, परमात्मस्वरूप है। मैं किसका पक्ष करूँ कि वह मेरा है और वह मेरा नहीं। सब मेरे स्वभाव जैसे भगवान आत्मा हैं। कोई दुश्मन नहीं है, कोई सज्जन है नहीं। समभाव। समझ में आया? देखो! 'सर्वात्ममां समदृष्टि दो'। वह बात १६ वर्ष की उम्र में कही। १६ वर्ष में! आनन्द ज्ञानस्वरूपी मैं हूँ, वैसे ही सब आत्मा हैं। चाहे तो दुश्मन हो तो भी वह भगवान आत्मा ही है। पर्याय में जो उसकी विरुद्धता है तो पर्यायदृष्टि तो मेरी छूट गयी है तो उस दृष्टि से मैं उसको क्यों देखूँ? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मेरी भी पर्यायदृष्टि छूट गयी है। राग और एक अंश मैं, ऐसी दृष्टि छूट गयी है तो दूसरे को भी ऐसे क्यों दखूँ कि वह राग-द्वेषवाला है। वह तो अन्दर ज्ञानमय स्वभाव है, ऐसे सब आत्मा हैं। आहा! समझ में आया?

भगवान होकर वह भी मैं हूँ, लो न। वह मैं हूँ और मैं हूँ वैसे वह हैं। स्वभाव की

अपेक्षा से, हों ! वस्तु तो भिन्न-भिन्न है। ऐसा अर्थ किया है। टीका में ऐसा अर्थ किया है। मैं किसके साथ प्रीति करूँ ? वह भी मेरा है, मैं हूँ। किसके साथ अप्रीति करूँ ? वह भी मैं हूँ। ऐसा टीका में लिखा है। उसमें है। ५० गाथा में। है अर्थ में नीचे ? विशेषार्थ है न ? विशेष अर्थ में है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह। न कर्तव्य। उसमें तो लिखा है जो मैं हूँ, वैसा वह है। वह आत्मा है, ऐसा लिखा है। क्या है ? हाँ वह। अभी पढ़ा था। सर्वोअपि ऐव। सर्व जीव मेरे जैसे हैं। मैं भी ज्ञानानन्दस्वभाव हूँ और सर्व जीव भगवान आनन्दस्वरूप ज्ञानस्वरूप है। अभी आगे होगा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह। वह मैं हूँ। वह लेना है। है ? मैं किसके प्रति प्रीति करूँ ? वह तो मैं हूँ। वह आत्मा है। मेरा जैसा स्वभाव है, वैसा उसका स्वभाव है। वह है, देखो ! समझ में आया ? भगवान आत्मा इस देह से, इस हड्डी से भिन्न है। पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न है, एक समय की पर्याय से भी भिन्न है। ऐसा अपने आत्मा का भान हुआ तो सब आत्मा यह मैं हूँ, वह मैं हूँ। मैं हूँ अर्थात् मैं जैसा हूँ, वैसा वह है तो वह मैं हूँ। आहाहा ! ऐसा अर्थ लिया है टीका में। है ? अमरचन्दभाई ! समभाव। सब (जीवों) पर समभाव, वीतरागभाव, प्रमोदभाव। वीतरागभाव का प्रमोदभाव।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो बाद में। मैं किस पर प्रीति करूँ ? वह तो मैं हूँ। मैं किस पर अप्रीति करूँ ? वह तो मैं हूँ। वह शब्द। समझ में आया ? मैं का अर्थ दो चीज़ एक नहीं हो जाती। परन्तु जैसा मैं हूँ, वैसा ही वह है। समझ में आया ? स्वभावदृष्टि। दुनिया में बैरी कौन है ? सज्जन कौन है ? सब मेरी चीज़ जैसी चीज़ है। ऐसा सम्यग्दर्शनपूर्वक समभाव प्रगट करना, उसका नाम चारित्र कहने में आता है। देखो !

धर्म है, वह आत्मस्वभाव है, सब जीवों में समानभाव है। देखो। सर्व जीव में समानभाव है। **जो अपना धर्म है, वही सब जीवों में है...** ऐसा लिया। देखो यहाँ। जैसा

अपने में केवलज्ञान, केवलदर्शन, आनन्दमय है, वैसा प्रत्येक आत्मा है। अभव्य को भी ऐसा होगा? अभव्य... अभव्य। केवलज्ञान, केवलदर्शन, आनन्द परिपूर्ण केवलज्ञान है। पर्याय में अन्तर है, वस्तु में कहाँ अन्तर है? समझ में आया? **अथवा सब जीवों को अपने समान मानना और जो आत्मस्वभाव से ही (-स्वाश्रय के द्वारा) राग-द्वेषरहित है,...** आत्मस्वभाव जो है, वह तो राग-द्वेषरहित है। **किसी से इष्ट-अनिष्ट बुद्धि नहीं है, ऐसा चारित्र है,...** आहाहा! चारित्र की व्याख्या और चारित्र का ऐसा स्वरूप है। समझ में आया? आहाहा! वह तो मेरा आत्मा है, वह भी भगवान है और मैं भी भगवान हूँ। भगवान को भगवान के प्रति प्रीति कैसी? और भगवान को भगवान प्रति अप्रीति कैसी? समझ में आया? वेदान्त की भाँति नहीं है, हों! सब एक है, ऐसी बात यहाँ नहीं है। एक स्वभाव ऐसा है। मेरा स्वभाव है, वैसा उसका स्वभाव है। परन्तु सब आत्मा एक है, ऐसा नहीं। संख्या तो अनन्त है। उसमें बड़ी विपरीतता है। समझ में आया?

अपने समान मानना और जो आत्मस्वभाव से ही (-स्वाश्रय के द्वारा) राग-द्वेषरहित है,... आत्मस्वभाव अर्थात् क्या? आत्मस्वभाव तो राग-द्वेषरहित है। ऐसा। **किसी से इष्ट-अनिष्ट बुद्धि नहीं है ऐसा चारित्र है, वह जैसे जीव के दर्शन-ज्ञान है, वैसा ही अनन्य परिणाम है, जीव का ही भाव है।** लो! क्या कहते हैं? जैसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान आत्मा का आश्रय से आत्मा का परिणाम है, ऐसा चारित्र भी आत्मा के आश्रय से आत्मा का ही परिणाम है। चारित्र कोई पंच महाव्रत का विकल्प या देह की क्रिया है नहीं, ऐसा कहते हैं। **चारित्र है, वह जैसे जीव के दर्शन-ज्ञान है, वैसा ही अनन्य परिणाम है,...** लो! आहाहा! क्या कहते हैं? देखो! समझ में आया? जैसे जीव के दर्शन-ज्ञान है... समझ में आया? सम्यग्दृष्टि में राग भी आता है और देह की क्रिया होती है। फिर भी सम्यग्दर्शन है, वह कोई अपना कार्य करता है या नहीं? उस समय अपना कार्य करता है या नहीं? या फोगट पड़ा है? क्या कहा समझ में आया?

सम्यक् आत्मा का भान हुआ कि मैं शुद्ध चैतन्यद्रव्य हूँ और शुद्ध चैतन्य मेरा ज्ञेय है, ऐसा ज्ञान हुआ तो वह ज्ञान-दर्शन राग के काल में, अशुभराग के काल में, शुभराग के काल में कोई कार्य करता है या नहीं? या खाली पड़ा है? वह श्रद्धा और ज्ञान अपना कार्य करता है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दर्शन खाली नहीं पड़ा है।

जीव के दर्शन-ज्ञान है, वैसा ही अनन्य परिणाम है,... दर्शन-ज्ञान भी जैसा अपना अनन्य अर्थात् अन्य नहीं ऐसा भाव है, वैसे चारित्र भी आत्मा से अन्य नहीं, ऐसा अनन्य परिणाम है। समझ में आया ? चारित्र परिणाम भी... कोई भी विकल्प हो, असमाधिपने तो चारित्र समभाव का कार्य करते ही हैं। समझ में आया ? चारित्रवन्त को कोई अशुभ आदि विकल्प आता है, आर्तध्यान हो जाये। छट्ठे गुणस्थानपर्यन्त आर्तध्यान है या नहीं ? फिर भी आर्तध्यान के काल में चारित्र समभाव का काम करता है, वह कोई निकम्मा नहीं पड़ा है। श्रद्धा, श्रद्धा का काम करती है, ज्ञान, ज्ञान का काम करता है; चारित्र समभाव का काम करता है। आहाहा! समझ में आया ? दिगम्बर सन्तों की कथनी में महा मर्म गहरा (भरा है)। समझ में आया ? वस्तु की स्थिति को स्पर्श करके बात है। साधारण को ऐसा लगे यह क्या है ? तेरे घर के अन्दर की बात है।

भावार्थ :- चारित्र है, वह ज्ञान में राग-द्वेषरहित निराकुलतारूप स्थिरताभाव है,... लो। चारित्र तो उसको कहना कि ज्ञान में अर्थात् आत्मा जो ज्ञानस्वभाव है, उसमें राग-द्वेषरहित पुण्य-पाप के विकल्परहित निराकुलतारूप स्थिरता। ऐसे। क्योंकि ऐसा कहा ? राग में स्थिरता तो है परन्तु वह तो आकुलतारूप स्थिरता है। समझ में आया ? राग में दया, दान के विकल्प में एकाग्रता तो है परन्तु वह एकाग्रता आकुलता है। चारित्र तो निराकुलतारूप एकाग्रता है। आहाहा! समझ में आया ? एक-एक बोल जैसा है, वैसा उसको बराबर ख्याल में लेना चाहिए, ऐसी बात है। यह कोई कहानी नहीं है। मोक्ष के कारण में समभाव है। जैसा समभाव त्रिकाली है, उसकी प्रतीति—ज्ञान हुआ, ऐसा ही समभाव पर्याय में प्रगट हुआ। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? समभाव में समता, वीतरागता ही है। जिनवर सो जीव और जीव सो जिनवर। परमात्मप्रकाश में आता है। उसमें भी श्लोक है। इसमें होगा। है ? जीव सो जिनवर। है न वह ? जीव, सो जिनवर और जिनवर, सो जीव। देखो, वह श्लोक है। पोपटभाई! जीव, सो जिनवर; जिनवर, सो जीव। सर्व जीव वीतरागभाव से राग-द्वेषरहित लबालब भाव से भरे हैं। सब वीतराग जिनवर ही हैं। सब जिनवर ही हैं। जीव जिनवर और जिनवर, वह जीव। समझ में आया ? राग-द्वेष परिणाम, वह कोई जीव नहीं है। समझ में आया ? राग-द्वेष रहित जो परिणाम आत्मा का है, वह तो जिनवर जैसा ही है। द्रव्यस्वभाव भी जिनवर है, ऐसा कहते हैं।

स्थिरता। **निराकुलतारूप स्थिरता,...** अर्थ टीका किया है। स्थिरता... स्थिरता तो कहे, परन्तु स्थिरता कैसी? आनन्दसहित की, निराकुलतासहित की स्थिरता को चारित्र कहते हैं। चारित्र में तो अतीन्द्रिय आनन्द आता है। उसको चारित्र कहते हैं। समझ में आया? चारित्र टूटता है, ऐसा कहते हैं न? महाकष्ट सहन करना, शरीर का कष्ट सहन करना। अरे! वह चारित्र नहीं, सुन न! चारित्र तो आत्मा में आनन्द में लीनता और अनाकुल आनन्द का प्रगट होना... है? **निराकुलतारूप स्थिरताभाव है, वह जीव का ही अभेदरूप परिणाम है,...** लो! अभेदरूप परिणाम है। अभेद का अर्थ—द्रव्य के साथ एकता हुई। एकता का अर्थ—पर्याय और द्रव्य एक हो जाते हैं, ऐसा नहीं। समझ में आया? जो पर्याय राग में एकता (करती) थी, वह द्रव्यस्वभाव में एकता हुई, ऐसा कहने में आता है। एकता हुई तो उसका अर्थ यह हुआ कि द्रव्य और पर्याय एक हो गये। ऐसा नहीं। समझ में आया? पाठ तो ऐसा है, **अभेदरूप परिणाम है,...** अभेद अर्थात् राग का भेदरूप भाव था, खण्ड-खण्ड था तो स्वभाव सन्मुख की समता वीतरागता उत्पन्न हुई, उसे अभेदभाव कहने में आता है। आहाहा! **कुछ अन्य वस्तु नहीं है।** कोई अन्य चीज़ है नहीं।

दृढ़ सम्यग्दर्शनसहित, सम्यग्ज्ञानसहित मति में आत्मा आया, बाद में उसमें निराकुलता की स्थिरता प्रगट होना, आनन्द-अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद की प्रचुरता होनी, उसका नाम चारित्र है। आहाहा! निराकुलता लिखा है या नहीं? राग-द्वेष है, वह आकुलता है। तो राग-द्वेषरहित निराकुलस्वरूप स्थिरताभाव जीव का अभेद परिणाम है।

गाथा-५१

आगे जीव के परिणाम की स्वच्छता को दृष्टान्त पूर्वक दिखाते हैं -

जह फलिहमणि विसुद्धो परदव्वजुदो हवेइ अण्णं सो।
तह रागादिविजुत्तो जीवा हवदि हु अणण्णविहो।।५१।।

यथा स्फटिकमणिः विशुद्धः परद्रव्ययुतः भवत्यन्यः सः।
तथा रागादिवियुक्तः जीवः भवति स्फुटमन्यान्यविधः।।५१।।

ज्यों स्फटिक मणि शुद्ध पर-द्रव्य योग से दिखती विविध।
त्यों जीव रागादि-रहित पर विकारों से हो विविध।।५१।।

अर्थ **– जैसे स्फटिकमणि विशुद्ध है, निर्मल है, उज्ज्वल है, वह परद्रव्य जो पीत, रक्त, हरित पुष्पादिक से युक्त होने पर अन्य सा दीखता है, पीतादिवर्णमयी दीखता है, वैसे ही जीव विशुद्ध है, स्वच्छ स्वभाव है, परन्तु यह (अनित्य पर्याय में अपनी भूल द्वारा स्व से च्युत होता है तो) रागद्वेषादिक भावों से युक्त होने पर अन्य-अन्य प्रकार हुआ दीखता है, यह प्रगट है।**

भावार्थ **– यहाँ ऐसा जानना है कि रागादि विकार है, वह पुद्गल के हैं और ये जीव के ज्ञान में आकर झलकते हैं, तब उनसे उपयुक्त होकर इस प्रकार जानता है कि ये भाव मेरे ही हैं, जब तक इनका भेदज्ञान नहीं होता है, तब तक जीव अन्य-अन्य प्रकार-रूप अनुभव में आता है। यहाँ स्फटिकमणि का दृष्टान्त है, उसके अन्य द्रव्य पुष्पादिक का डांक लगता है, तब अन्य सा दीखता है, इस प्रकार जीव के स्वच्छभाव की विचित्रता जानना।।५१।।**

गाथा-५१पर प्रवचन

आगे जीव के परिणाम की स्वच्छता को दृष्टान्तपूर्वक दिखाते हैं :- भगवान तो स्वच्छ है।

जह फलिहमणि विसुद्धो परदव्वजुदो हवेइ अण्णं सो।
तह रागादिविजुत्तो जीवा हवदि हु अणण्णविहो।।५१।।

अर्थ :- जैसे स्फटिकमणि विशुद्ध है,... जैसे स्फटिकमणि विशुद्ध है **निर्मल है, उज्ज्वल है, वह परद्रव्य जो पीत, रक्त, हरित पुष्पादिक से युक्त होने पर अन्य सा दिखता है,...** आहाहा! दिखता है। भगवान यहाँ तो कहते हैं कि स्फटिकमणि तो उज्ज्वल निर्मल है। परन्तु काला, लाल, हरे फूल के सम्बन्ध में उसका ऐसा प्रतिबिम्ब दिखता है। परन्तु वह प्रतिबिम्ब उसका नहीं है, उसका स्वरूप नहीं है। आहाहा!

ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की,
त्यों ही जीव स्वभाव रे,

श्री जिन वीरे धर्म प्रकाशियो, श्री जिन वीरे धर्म प्रकाशियो,
प्रबल कषाय अभाव रे... ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की ॥

जैसे निर्मल उज्ज्वल स्फटिक है, ऐसा भगवान आत्मा पुण्य-पाप के विकल्परहित स्फटिक जैसा निर्मल है। समझ में आया ? अशुचि। पुण्य-पाप को तो अशुचि कहा है न ? पवित्र के सामने अपवित्र कहा है। ७२ गाथा। शुभ-अशुभभाव दया, दान, व्रत का भाव अशुचि है, मैल है, अपवित्र है। आहाहा! उससे रहित भगवान निर्मलानन्द है, स्फटिकमणि जैसा। अन्दर में राग-द्वेष का प्रतिबिम्ब दिखता है न ? राग-द्वेष दिखते हैं परन्तु वह उसका स्वरूप नहीं है। उसकी बात विशेष करेंगे...　　　　(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-८२, गाथा-५१ से ५३, मंगवार, भाद्र शुक्ल ८, दिनांक ०८-०९-१९७०

आज चौथा दिन है। उत्तम दसलक्षणी पर्व का चौथा दिन। शौच धर्म की व्याख्या है। शौच धर्म। वैसे तो यहाँ चारित्रधर्म की आराधना की व्याख्या है। चारित्र का दस प्रकार उत्तम क्षमा आदि गिनने में आता है।

जिसको अपना शुद्ध स्वरूप दृष्टिगत हुआ हो, अपना ध्रुव नित्य स्वभाव दृष्टि में आया, बाद में उसमें चारित्र की आराधना किस प्रकार होती है, इसकी बात है। समझ में आया ? चौथा शौच कहते हैं, देखो!

जह फलिहमणि विसुद्धो परदव्वजुदो हवेइ अण्णं सो।
तह रागादिविजुत्तो जीवा हवदि हु अणण्णविहो।।५१।।

जो मुनि समभाव राग-द्वेष रहित परिणाम और सन्तोषभावरूपी जल से तृष्णा और लोभरूपी मल के समूह को धोवे। जिसने अपने में शुभ-अशुभराग एकरूप बन्धन का कारण है, उससे अपने स्वभाव में दृष्टि और स्थिरता हो, उसका नाम यहाँ समभाव कहने में आया है। इस समभाव से क्या करते हैं ? समभाव राग-द्वेषरहित अपना परिणाम है। और सन्तोषभाव। सम सन्तोष ऐसा है न ? सन्तोषरूपी जल, ऐसे लिया है न ? समभावरूपी परिणाम और सन्तोषरूपी जल। सन्तोष का अर्थ आत्मा के आनन्द में तृप्त रहकर लोभ

और तृष्णा (का अभाव करना)। भविष्य की इच्छा का नाम तृष्णा और वर्तमान में प्राप्त पदार्थ का लोभ—दोनों का अभाव करना, उसका नाम समभाव और सन्तोष कहने में आता है। समझ में आया? धर्म करना यह कोई साधारण बात नहीं है। ऊपर-ऊपर से मिल जाए ऐसी चीज़ नहीं है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : प्राप्त दृष्टि में हुआ। चारित्र में आराधन करना है न? समझ में आया? दृष्टि में प्राप्त हुआ कि आत्मा पूर्णानन्द है। अभी चारित्र-रमणता (बाकी है)। उस रमणता का नाम दस भेद है। उत्तमक्षमा आदि दस भेद हैं। उसको पर्यूषण कहने में आता है। चारित्र आराधना में।

तृष्णा और लोभरूपी मल के समूह को धोवे। सम सन्तोष जलेन। अपना पुण्य-पाप का विकल्प से, राग से रहित अपने चैतन्यस्वभाव की दृष्टिसहित तृप्ति-तृप्ति, आत्मा की शान्ति तृप्त होता हुआ लोभ और तृष्णा का नाश करता है। और भोजन की गृद्धि। मुनि को दूसरी चीज़ तो होती नहीं। एक भोजन होता है। वस्त्र-पात्र तो होता नहीं। भोजन की गृद्धि से रहित हो। और ... उसका चित्त निर्मल होता है। उसका नाम शौच धर्म कहने में आता है।

क्रोध से विरुद्ध उत्तमक्षमा। मान से विरुद्ध उत्तममार्दव। कपट से विरुद्ध आर्जव। लोभ से विरुद्ध शौच। समझ में आया? कई जगह चौथे में सत्य लेते हैं। यहाँ बराबर लिया है। चौथा धर्म कहीं पर सत्य लिया है। यहाँ शौच बराबर लिया है। क्रोध से रहित क्षमा, मान से रहित मार्दव, कपट से रहित सरलता, लोभ से रहित शौच। अपनी पवित्रता जो आत्मा की है, उसको प्रगट करना। देखो! भावार्थ में है।

तृण-कंचन को समान जानना और सन्तोषपना तृप्तिपना। अपने स्वरूप में सुख मानना। समझ में आया? अपने आनन्द में अपने में सुख मानना। पर में सुख है ही नहीं तीन काल में। ऐसा भावरूप जल से तृष्णा-आगामी मिलने की चाह, लोभ-पाये हुए द्रव्यादिक में अति लिप्त रहना, उसके त्याग में अति खेद करना, उसरूप मल है, उसे धोने से मन पवित्र होता है। ये तो विशेष स्पष्टीकरण करते हैं। बाकी स्वरूप अनुभव में आया,

उसमें आनन्द में रहना उसको चित्त शुद्धि होती है। बात यह है। समझ में आया? उससे लोभ और तृष्णा उत्पन्न नहीं होते, उसको नाश करते हैं और ऐसा कहने में आता है। तृष्णा अर्थात् भविष्य की कोई चाहना और लोभ अर्थात् वर्तमान पदार्थ में अति लोलुपता। दोनों का अभाव आत्मा के आनन्द के सन्तोष द्वारा करते हैं, उसको शौचधर्म कहने में आता है।

मुनि के अन्य त्याग तो होता ही है। वस्त्र-पात्र तो मुनि को होता ही नहीं। केवल आहार का ग्रहण है। उसमें भी तीव्रता नहीं रखता। लाभ-अलाभ, सरस-नीरस में समबुद्धि रहता है, तब उत्तमशौच धर्म होता है। लोभ के चार प्रकार। एक जीवित का लोभ। आयुष्य लम्बा रहे, ऐसा जीवित का लोभ। आरोग्य रहने का लोभ। शरीर की निरोगता रहने का लोभ। और इन्द्रिय बनी रहे उसका लोभ। पाँचों इन्द्रियाँ हैं, वह ठीक रहे। वह लोभ। और उपभोग का लोभ। सामग्री का उपभोग कर सकूँ, ऐसा लोभ। ये चारों और अपने सम्बन्धी स्वजन। अपने में और स्वजन में पुत्र को भी ऐसा जीवित हो, आरोग्य रहे, इन्द्रिय बनी रहे, पुत्र को उपभोग बना रहे। ऐसे स्त्री को इत्यादि। अपने और अपने सम्बन्धी स्वजन मित्र आदि दोनों के चाहने से आठ भेद से प्रवृत्ति है।

इसलिए जहाँ सब ही का लोभ नहीं होता, वहाँ शौचधर्म, पवित्र धर्म, चारित्र धर्म का आराधन होता है। समझ में आया? लड़का भी अच्छा रहे, उसकी इन्द्रियाँ ठीक रहे, वह भी लोभ है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर आत्मा है नहीं? आँख रहे, नहीं रहे, उसके साथ क्या सम्बन्ध है? सेठ तर्क करते हैं कि, आँख हो तो वाँचन में ठीक रहे या नहीं? वाँचन तो अन्दर करना है कि बाहर से करना है? वाँचन से भी वास्तव में तो ज्ञान होता नहीं।

मुमुक्षु : करना या नहीं करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : करना, नहीं करना, वह तो विकल्प आता है तो होता है। होता है। परन्तु उससे अपने में सम्यग्ज्ञान और दर्शन होता है, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उपयोग नहीं, उपभोग चाहिए। उपयोग हो तो निकाल देना।

उपभोग करो, उपभोग। बाकी तीन शब्द बराबर है। उपयोग नहीं परन्तु उपभोग। बाह्य चीज़ की उपभोग की इच्छा। समझ में आया ? उसे शौचधर्म कहने में आता है। लो। वह चौथा धर्म हुआ।

अब, अपने ५१ गाथा चलती है। अष्टपाहुड़ मोक्षपाहुड़ की ५१ गाथा। कल थोड़ा चला है।

जह फलिहमणि विसुद्धो परदव्वजुदो हवेइ अण्णं सो।
तह रागादिविजुत्तो जीवा हवदि हु अणण्णविहो।।५१।।

क्या कहते हैं ? देखो! **जैसे स्फटिकमणि विशुद्ध है,...** स्फटिकमणि विशुद्ध है, **निर्मल है, उज्ज्वल है, वह परद्रव्य जो पीत, रक्त, हरित पुष्पादिक से युक्त होने पर,...** पीला, लाल और हरा, ऐसे पुष्प से युक्त / सहित होता हुआ **अन्य सा दिखता है,...** स्फटिक पर के सम्बन्ध में अन्य सा दिखता है। समझ में आया ? **वैसे ही जीव विशुद्ध है,...** भगवान आत्मा तो निर्मलानन्द शुद्ध चैतन्यपिण्ड आनन्द का घन ध्रुव, राग और पर्याय से रहित ऐसा निष्क्रिय चैतन्यतत्त्व है। समझ में आया ? **स्वच्छस्वभाव है,...** उसका तो स्वच्छ निर्मल स्वभाव है। समझ में आया ?

रागद्वेषादिक भावों से युक्त होने पर... कर्म के निमित्त में सम्बन्ध करके जो उसमें राग और द्वेष पुण्य और पाप का भाव उत्पन्न होता है, तो आत्मा स्वच्छ होने पर भी राग-द्वेष के सम्बन्ध से मलिन सा दिखता है। समझ में आया ? है स्वच्छ स्फटिक जैसा चैतन्यबिम्ब। चैतन्य स्फटिक। ज्ञान, आनन्द आदि स्फटिक जैसा स्वभाव, ऐसा निर्मल स्वभाव है। परन्तु अनादि से कर्म का निमित्त का संग करने से उसमें राग और द्वेष का प्रतिबिम्ब दिखता है तो वैसा आत्मा अज्ञानी को दिखता है। मैं राग हूँ, मैं द्वेष हूँ, मैं न्यारा हूँ। अन्य सा दिखता है। समझ में आया ? वह लाल राग-द्वेष का जो प्रतिबिम्ब दिखता है, उसको छोड़कर अपनी स्वच्छता का आश्रय करके निर्मलता सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की उत्पन्न होती है, वह मोक्षमार्ग है। समझ में आया ? बहुत कठिन। कहाँ गये ? ऐई ! इन्द्रपालजी ! ये बैठे। दोपहर को थोड़ा सूक्ष्म आता है न। पुत्र, व्यापार-धन्धा सब निकाल दिया। ऐ... ...भाई ! लड़के अच्छी तरह से रखे। वहाँ भी पैसे कमाये और यहाँ धर्मध्यान

हो। दोनों एकसाथ हो तो अच्छा है या नहीं? परन्तु कौन पैसा (कमाये) ? कौन करे? लड़का कहाँ उनका था? वह तो परद्रव्य है। पैसा वह कहाँ लाकर देता है? वह तो पुण्य हो तो पैसा आता है। परवस्तु सूक्ष्म में सूक्ष्म राग या सूक्ष्म में सूक्ष्म पर मेरा है, ऐसा अन्दर में ज्ञान होना, वह मिथ्यात्वभाव है। चन्द्रकान्तभाई!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : धन्धा कौन करे? ऐई! चिमनभाई! कौन पक्का करे? सेठ! डालचन्दजी कमाये, आपके तीन-चार लड़के... ... क्या चीज़ है? लड़का क्या चीज़ है? वह तो परद्रव्य है। परद्रव्य में इच्छा रहना, वह ठीक है और वह मेरा है, यह मिथ्या भ्रम अज्ञान है। समझ में आया? ऐसी बात है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! धूल में भी आया नहीं। घर पर कब आया था? घर आया हो तो आपके पास रहे नहीं? आप किसी से रसोई बनवाकर खाते हो। ... बाहर रहता है। ये तो दृष्टान्त है। ...भाई! ... यहाँ किसी के पास रसोई बनवाकर खाओ। ... पर के करण है क्या? ...भाई! पिताजी यहाँ रहे और छह जनें वहाँ कमाये। उसका सन्तोष रहे कि सब लड़के मेरा जो करना है, वह करते हैं। भ्रमणा है, महाभ्रमणा। उस भ्रमणा का शल्य बहुत बड़ा है। समझ में आया?

परपदार्थ की अनुकूलता लक्ष्य में लेकर अपना मानना महामिथ्यात्व है। चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा का अनादर होता है। आहाहा! किसका किससे सम्बन्ध? किसका आत्मा कहाँ से आया? कहाँ से औरत आयी और कहाँ से आया पुरुष? कुछ मेल नहीं था। एक आया लट में से और एक आया थोर में से। हमारे ... भाई की सगाई हुई थी न? मनसुख की। (संवत्) १९८७। कार्तिक महीना था। अमरेली चातुर्मास था। वहाँ से हम चितल गये। १९८७ की बात है। कितने वर्ष हुए? ३९ वर्ष हुए। फिर आणन्दजी ने पूछा था कि महाराज! कहाँ ये ... की लड़की और कहाँ कुँवरजीभाई का लड़का? ये क्या होगा? पूर्व का कोई सम्बन्ध होगा? धूल भी नहीं है, कहा। राजमति और नेमिनाथ जैसे को सम्बन्ध हो, इसलिए सबका सम्बन्ध होता है? एक आता है लट में से और एक आये थोर में से।

थोर नहीं होता ? काँटेवाला थोर होता है न ? थुहर । उसमें से स्त्री आये और पुरुष मरकर आये लट में से । थुहर पर लट होती है, वह मरकर यहाँ आये ।

मुमुक्षु : सेवा कौन करेगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सेवा करता था ? धूल सेवा । ... सेवा कौन करता था ? और यहाँ हो तो भी सेवा जड़ की करे या आपकी करे ? जड़ की क्या करे ? हाथ फिराये । पगचम्पी होती है । पगचम्पी जड़ की पर्याय में होती है । उसमें वह क्या करे ? व्यर्थ भ्रमणा (करता है) । आहाहा !

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : घर कहाँ है अन्दर में ? वही कहते हैं कि जब तक राग और परचीज़ मेरी है, तब तक निजघर भूल गया है । निजघर भूलकर परघर को अपना मानता है । आहा ! समझ में आया ? 'अब हम कबहू न निजघर आये ।' गाया था न ? पर का नाम धराया । शरीरवाला हूँ, स्त्रीवाला हूँ, पैसावाला हूँ, मकानवाला हूँ, इज्जतवाला हूँ, वकालत की बुद्धिवाला हूँ । ऐई ! शास्त्र का अध्ययनवाला हूँ, वह भी कुबुद्धि है, कहते हैं । उसका अभिमान करे कि मैं ऐसा हूँ । वह पर को अपना मानता है । आहाहा ! ऐसी बात है, भाई ! समझ में आया ? चन्द्रकान्तभाई ! उसमें यहाँ कुछ रहनेवाला नहीं । ये मेरा चेला है और ये मेरा धूल है । चेला कहाँ से आया ? वह तो पर आत्मा है । चेला कहाँ से आया ? और तू उसका गुरु कहाँ से आया ? ऐसी बात है । समझ में आया ? कोई भी एक रजकण और राग के अंश को अपना मानना और उसे ठीक है तो मुझे ठीक है, ऐसा मानना महामिथ्यात्व भ्रम अज्ञान शल्य है । समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा... देखो । **स्वच्छभाव है परन्तु यह राग-द्वेषादिक भावों से युक्त होने पर अन्य-अन्य प्रकार हुआ दिखता है, यह प्रगट है** । अनेक प्रकार दिखे । है तो स्वच्छ निर्मलानन्द प्रभु, परन्तु संयोगी चीज़ अपनी है—ऐसा मानकर और राग-द्वेष का विकल्प उठाकर अन्य-अन्य प्रकार से स्वच्छता को छोड़कर अन्य-अन्य प्रकार से भासित होता है, वह मिथ्या भ्रम अज्ञान है । आहाहा !

मुमुक्षु : पहले खबर नहीं थी ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि से खबर नहीं थी, इसीलिए तो कहते हैं। दरबार! आहाहा! खबर नहीं थी वह कोई बचाव है? अज्ञान का बचाव है कि हमें खबर नहीं थी। जहर पीया और मुझे मालूम नहीं था। एक बोतल में था हरडे एक बोतल में सोमल था। सोमल समझे? रात्रि को जुलाब लेना था। बोतल उठाई। थी सोमल की और दिखती ऐसी थी कि ये हरडे (दवाई) की बोतल है। थोड़ा समय हुआ कि...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उनकी बहिन, मणिबेन। मणिबेन को हुआ था न? साँप काटा। उसके पति को ऐसा हुआ। शरीर देखा तो ऐसा तन्दुरूस्त। जुलाब लेना था उसमें सोमल आ गया। सोमल लेने के साथ ही आधा घण्टा हुआ, कुछ होने लगा। क्या हुआ? डॉक्टर को बुलाओ। तब तक तो समाप्त हो गया। सोमल ले लिया। सोमल समझते हो? विष। सोमल विष होता है। सोमल नहीं परन्तु यहाँ मलूकचन्दभाई ने थयुं अेने सोमल नहीं पण आ क्विनाईन। मलूकचन्दभाई को। ... फिर उल्टी हुई उसमें निकल गया। ... स्थिति पूरी हुई हो तो। समझ में आया? ... हमें खबर नहीं थी इसलिए ... ऐसे अज्ञान से पाप किया। हमें खबर नहीं थी। तो पाप से बच सकता है? आहाहा!

भावार्थ :- कहते हैं, **यहाँ ऐसा जानना कि रागादि विकार है, वह पुद्गल के है...** थोड़ा ध्यान रखो। निश्चय से तो आत्मा तो स्वच्छ ज्ञानमूर्ति चैतन्यबिम्ब है। उसमें राग दिखता है, पुद्गल का उदय विकार दिखता है-अपने में भासित होता है तो उसमें ऐसा लगता है कि यह मैं हूँ रागी। समझ में आया? राग मैं हूँ, ऐसा भ्रम होता है। वही अज्ञान और मिथ्यात्व है। पुद्गलद्रव्य के विकार है। देखो! यहाँ तो विकार भी अपना स्वभाव है, ऐसा बताना है। ज्ञान में भासित हो, है पुद्गल का विकार। राग-द्वेष का प्रतिबिम्ब उठा है, वह तेरा स्वभाव नहीं। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम भी राग है, विकार है, प्रतिबिम्ब है। आहाहा! विकार जैसा अपने को देखे, मिथ्यात्वभाव है। लोगों को खबर नहीं है। आहाहा!

पुद्गल (द्रव्य) के है और ये जीव के ज्ञान में आकर झलकते हैं... झलकते हैं अर्थात् ख्याल में आ जाये। **तब उनसे उपयुक्त होकर...** विकार से उपयोग में एकाकार

हुआ, **इस प्रकार जानता है कि ये भाव मेरे ही हैं,...** पुण्य-पाप का मैल-विकार मेरा है, ऐसा भ्रम उत्पन्न उसको उत्पन्न होता है। उसका तो स्वच्छ स्वभाव है। स्फटिक का स्वच्छ स्वभाव है। समझ में आया? कहते हैं न २७८ में? देखो! परद्रव्य के कारण से विकार होता है। यहाँ क्या कहना है? सुन तो सही। विकार तेरा स्वभाव नहीं; इसलिए विकार तेरी पर्याय में भासित होता है, वह विकार तेरी चीज़ नहीं। ऐसा बताना है। विकार होता है, उसकी अपनी पर्याय से। क्या पर के कारण से होता है?

स्फटिक में लाल, पीले फूल से जो प्रतिबिम्ब उठता है, वह प्रतिबिम्ब अपनी योग्यता से अपने में उत्पन्न होता है। यहाँ क्यों नहीं उत्पन्न होता है? उसमें प्रतिबिम्ब उत्पन्न होता है? उसकी योग्यता नहीं है। स्फटिक की योग्यता है तो लाल पुष्प आदि हो तो उसका प्रतिबिम्ब उत्पन्न होता है, वह अपनी पर्याय में अपने से उत्पन्न होती है परन्तु वह प्रतिबिम्ब अपना स्वभाव नहीं। आहाहा! वह परद्रव्य है, परवस्तु है, अज्ञानभाव है। ज्ञानभाव भगवान चैतन्यबिम्ब में वह अज्ञान कहाँ से आया? मान रखा है कि मैं रागी हुआ हूँ, मैं द्वेषी हुआ हूँ। आहाहा! समझ में आया? अन्य सा दिखे। जैसा है, वैसा न दिखे, अन्य सा दिखे, वही भ्रम है। आहाहा! मोक्ष का मार्ग दिखाना है न? भगवान चैतन्य ... उसका स्वभाव तो स्वच्छ ही है। परन्तु निमित्त के संग में जो विकार उत्पन्न हुआ, ऐसा अपने को देखे कि मैं विकारमय हूँ, मैं विकार ही हूँ, (वह) भ्रम है। आहाहा! समझ में आया?

इस प्रकार जानता है कि ये भाव मेरे ही हैं, जब तक इनका भेदज्ञान नहीं होता है... देखो, सेठ! भेदज्ञान नहीं करता है। दोष उसका है। किसी की चीज़ आ जाए और अपनी लक्ष्मी में गिनती कर ले तो मूढ़ है या नहीं? मेरा आ गया। परन्तु मेरा कहाँ से हो गया? वह तो किसकी चीज़ है। ऐसे राग आया। तो मैं राग हूँ। उपाधि का भाव मेरा है और उपाधि बाह्य की चीज़ मेरी है। भ्रम है। कहो, पोपटभाई! क्या करना? छह लड़के ऐसे बापूजी... बापूजी करते हों। चारों ओर बैठे हों। शादी का प्रसंग हो और सब बैठे हों चारों ओर। बापूजी बीच में बैठे। बापूजी! हमारे हिसाब से अपने को खर्च करना चाहिए। यह अन्तिम शादी है। अब ... इसलिए ऐसा करना चाहिए। मानों जैसे चक्रवर्ती बैठा हो! बड़े भाई एक ओर बैठे हों।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... कौन ... ? सबके कारण अपनी-अपनी पर्याय में ... डालचन्दजी आ गये अन्दर ? शोभालालजी आया अन्दर में ? दो भाईबन्ध कहते हैं। युगल बन्धव। ये दो हाथ भी एक होते नहीं तो ये दो कहाँ से हुआ ? दाँया दाँयापने है, बाँया बाँयापने है। दोनों स्वतन्त्र हैं। तो भाई कहाँ से आया ? और पुत्र कहाँ से आया ? अपनी कल्पना में, स्वच्छता का स्वभाव चैतन्य का होने पर भी कल्पना से अन्यथा दिखे, वही चैतन्य का भ्रम है। आहाहा ! मोक्ष में विघ्न करनेवाली चीज़ मिथ्यात्व है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

भेदज्ञान नहीं होता है... राग भिन्न है और मेरी चीज़ स्वच्छता भिन्न है, ऐसा भिन्न का भान न हो, **तब तक जीव अन्य-अन्य प्रकाररूप अनुभव में आता है।** देखो ! तो अन्य-अन्य प्रकार से, रागपने अनुभव में, द्वेषपने अनुभव में, हास्यपने अनुभव में, विषय की वासनापने अनुभव में, मानपने अनुभव में, कपटपने अनुभव में, लोभपने अनुभव में, गृद्धिपने अनुभव में आता है। वह तो भ्रम है। उसको भेदज्ञान नहीं है। समझ में आया ? मैं सेठ हूँ, मैं ऐसा हूँ, मैं ऐसा हूँ। वजुभाई ! उनके घर में होशियार वजुभाई कहलाते हैं। ... हो गया था तो ऐं... ऐं... हो गया था। ... क्या हो ? परचीज़ तो जैसे बननेवाली हो ऐसे बने। वह कोई रोकने से रुके ऐसा है ? जगत की स्वतन्त्र चीज़ है। नित्य रहकर अपना परिणमन करना, वह तो उसका स्वभाव है। तेरे कारण से वहाँ परिणमन करता है ? और तेरे कारण से तेरे पास आयी है ? समझ में आया ? आहाहा !

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिए कहते हैं न कि उस अज्ञान को अब छोड़। बचाने का कारण यह है कि अब छोड़। कब छोड़ेगा तू ? तेरा स्वभाव में नहीं है, उस चीज़ को अपना मानना, कब तक तुझे करना है ? कब तक तुझे भटकना है ? आहाहा ! समझ में आया ?

तब तक जीव अन्य-अन्य प्रकाररूप अनुभव में आता है। उसमें दिखने में आता है, ऐसा कहा था न ? स्फटिक अन्य-अन्य प्रकार से दिखने में आता है। उसे तो अनुभव कहाँ होता है ? इसलिए इसे कहा कि (अनुभव में आता है) । भगवान आत्मा...

ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव रे...
श्री जिन वीरे धर्म प्रकाशियो, प्रबल कषाय अभाव रे...
ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की...

जैसे स्फटिक की निर्मलता, वह उसका वास्तविक स्वरूप है। ऐसे भगवान आत्मा स्वच्छ शुद्ध निर्मल ज्ञानानन्द उसका निज स्वभाव है। ऐसे अपने स्वभाव को राग और विकल्प से भिन्न नहीं जानकर, राग और विकल्प मेरा है, ऐसा देखता है, उसको भेदज्ञान नहीं है। मिथ्याज्ञान है। ऐई! प्रकाशदासजी! महाव्रत के विकल्प को अपना मानना मूढ़ता है, ऐसा कहते हैं। ऐसी बड़ी बात। चारित्र मानते थे... आज सुबह बात चलती थी। देवीलालजी हैं न? देवीलालजी वहाँ गये थे। कहाँ? जयपुर? जोधपुर। वहाँ हस्तीमलजी है। भाई! महाव्रत क्या है? कानजीमुनि तो आस्रव कहते हैं। आस्रव हो तो आस्रव अंगीकार करना? महाव्रत अंगीकार करते हैं तो क्या आस्रव है? ... हस्तीमलजी। जोधपुर न? वहाँ हम गये थे।... अरे! महाव्रत दो प्रकार का है। एक अपना आनन्दस्वरूप में भान होकर आनन्द में लिपट जाना-लीन होना, वह निश्चय महाव्रत है। और ये अहिंसा, सत्य, दत्त का विकल्प है, वह तो राग है। वह महाव्रत चारित्र कैसा? आहाहा! इतनी खबर नहीं और हो गया साधु और हो गया आचार्य। अथाणा। अथाणा को आचार कहते हैं, खबर है? ... आचार। अरे! भगवान! तेरी चीज़ क्या है और क्या तुम करते हो? प्रभु! तुझे कलंक लगता है। आहाहा! समझ में आया?

अन्य-अन्य प्रकाररूप अनुभव में आता है। देखो! राग का वेदन, द्वेष का वेदन, महाव्रत के विकल्प का वेदन, मैं महाव्रत का विकल्पवाला हूँ। मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! गजब बात है। सुना नहीं हो, उसे तो ऐसा तो झटका लगे, झटका। समझ में आया? भगवान आत्मा स्वच्छ निर्मल शुद्धभाव है। परन्तु महाव्रत के विकल्प सहित भासे तो अज्ञान है, भेदज्ञान नहीं है—ऐसा कहते हैं। पण्डितजी! आहाहा! **यहाँ स्फटिकमणि का दृष्टान्त है, उसके अन्यद्रव्य-पुष्पादिक का डांक लगता है, तब अन्य सा दिखता है, इस प्रकार जीव के स्वच्छभाव की विचित्रता जानना।** स्वच्छभाव की विचित्रता अर्थात् स्वच्छता में वह दिखता है तो उसे अपना है ऐसा मानना, वह महा भ्रम और अज्ञान है।

गाथा-५२

इसीलिए आगे कहते हैं कि जब तक मुनि के (मात्र चारित्र दोष में) राग-द्वेष का अंश होता है, तब तक सम्यग्दर्शन को धारण करता हुआ भी ऐसा होता है –

देवगुरुम्मि य भत्तो साहम्मियसंजदेसु अणुरत्तो।
सम्मत्तमुव्वहंतो झाणरओ होदि जोई सो।।५२।।

देवे गुरौ च भक्तः साधर्मिके च संयतेषु अनुरक्तः।
सम्यक्त्वमुद्वहन् ध्यानरतः भवति योगी सः।।५२।।

जो देव-गुरु में भक्त संयत सधर्मी में राग हो।
सम्यक्त्व-धारी ध्यान-रत वह योगि ध्याता शुद्ध को।।५२।।

अर्थ – जो योगी ध्यानी मुनि सम्यक्त्व को धारण करता है और जब तक यथाख्यात चारित्र को प्राप्त नहीं होता है, तब तक अरहन्त सिद्ध देव में और शिक्षा दीक्षा देनेवाले गुरु में तो भक्तियुक्त होता ही है, इनकी भक्ति विनय सहित होती है और अन्य संयमी मुनि अपने समान धर्मसहित हैं, उनमें भी अनुरक्त है, अनुरागसहित होता है, वही मुनि ध्यान में प्रीतिवान् होता है और मुनि होकर भी देव-गुरु-साधर्मियों में भक्ति व अनुराग सहित न हो उसको ध्यान में रुचिवान नहीं कहते हैं, क्योंकि ध्यान करनेवाले के, ध्यानवाले से रुचि प्रीति होती है, ध्यानवाले न रुचें तब ज्ञात होता है कि इसको ध्यान भी नहीं रुचता है, इस प्रकार जानना चाहिए।।५२।।

गाथा-५२ पर प्रवचन

इसीलिए आगे कहते हैं कि जब तक मुनि के (मात्र चारित्र-दोष में) राग-द्वेष का अंश होता है, तब तक सम्यग्दर्शन को धारण करता हुआ भी ऐसा होता है :- क्या कहते हैं? कि धर्मी को भी राग, प्रशस्तराग देव-गुरु के प्रति आता तो है, तो क्या वह अज्ञानी है? नहीं। सुनो! समझ में आया? राग को अपना माने तो अज्ञानी है। राग से भिन्न अपना अनुभव करके शुद्ध चैतन्यद्रव्य हूँ, ऐसा भान हुआ। बाद में भी ध्यानी मुनि, ध्यानी

आचार्य, ध्यानी ज्ञानी अपने को ध्यान प्रिय है, अन्तर स्वरूप की दृष्टि से प्रिय है तो ऐसा प्रिय आत्मा प्रति उसको भक्ति का राग-अनुराग आता है। समझ में आया? परन्तु वह अनुराग बन्ध का कारण है। परन्तु आये बिना रहता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

जब तक मुनि के राग-द्वेष का अंश होता है,... देखो! थोड़ा अंश रहता है। यहाँ निकाल दिया है। राग-सा दिखे वह तो भ्रम है। यहाँ राग-सा दिखे नहीं, है स्वच्छ ऐसा भान है परन्तु राग आता है। क्योंकि ध्यानी मुनि स्वयं ध्यान में प्रेमवाले हैं। तो ऐसे ध्यानी सन्तों आदि को देखकर राग आता है। उसके कारण से नहीं आता है। अपनी कमजोरी से ऐसा आता है, फिर भी उसको सम्यग्दर्शन में बाधा नहीं है। सम्यग्दर्शन का नाश नहीं होता। समझ में आया? ऐसी बात!

देवगुरुम्मि य भत्तो साहम्मियसंजदेसु अणुरत्तो।
सम्मत्तमुव्वहंतो झाणरओ होदि जोई सो।।५२।।

भाषा देखो। '**देवगुरुम्मि य भत्तो साहम्मियसंजदेसु अणुरत्तो, सम्मत्तमुव्वहंतो झाणरओ**' ... '**भत्तो**', '**अणुरत्तो**', '**मुव्वहंतो**' बस! '**झाणरओ होदि जोई सा**'।

अर्थ :- जो योगी ध्यानी मुनि सम्यक्त्व को धारण करता है... देखो! पहले यह बात है। सम्यग्दर्शन तो पहली सिद्धि होनी चाहिए। रागमात्र विकल्प मैं नहीं, एक समय की पर्याय जितना मैं नहीं। समझ में आया? मैं तो त्रिकाल ज्ञायकसत्ता... सत्ता, ध्रुव ध्रुव सत्ता, महासत्ता मैं हूँ, ऐसा अनुभव में प्रतीत होना। वह पहले सम्यग्दर्शन '**मुव्वहंतो**'। समझ में आया? '**मुव्वहंतो**' अर्थात् धारण करता है। धारण करता हुआ। पहले सम्यग्दर्शन प्रगट करना चाहिए। इसके अतिरिक्त कोई चारित्र-फारित्र होता नहीं। सम्यग्दर्शन की कीमत नहीं और ले लो महाव्रत और ले लो चारित्र।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : (सम्यग्दर्शन का) पता नहीं और बाहर के हो... हा... विकल्प में। बात यह है। आज सवेरे चर्चा निकली थी। देवीलाल। व्यवहार ही वस्तु है, निश्चय-विश्चय क्या है? कुछ नहीं है। वही निश्चय है। आहाहा! वह तो वृत्ति उत्पन्न होती है। ऐसे पर की दया पालूँ, पर को न मारूँ, सत्य बोलूँ, ब्रह्मचर्य पालूँ। ... विकार है, दोष है। भले

पुण्य हो, परन्तु पुण्य दोष है, बन्धन का कारण है। आहाहा!

यहाँ आचार्य महाराज स्पष्टीकरण करते हैं। जब आपने ऐसा लिया कि राग का अंश जैसा अपना आत्मा दिखे तो मिथ्यात्व है। तो ज्ञानी को भी राग तो है। धर्मात्मा के प्रति प्रेम का विकल्प तो आता है। परन्तु सम्यग्दर्शनसहित है। वह राग को अपना मानते नहीं। समझ में आया ? दरबार! सूक्ष्म बात है। राजकोट में चलती थी न ? ज्ञानी हो जाये फिर तो हो गया। शादी भी करे, प्रसन्न करे। ऐसा नहीं। बात सच है। रागरूप परिणत होता नहीं। परन्तु बाह्य में सब क्रिया दिखती है। ९६ हजार स्त्री के वृन्द में दिखे। मैं तो कहीं नहीं हूँ। मैं तो मेरे आनन्द में हूँ। आसक्ति का राग है, जहर है, दुःख है। मेरे से स्पर्श करता नहीं। जानते हैं। ऐसा होना चाहिए। समझ में आया ? आहाहा!

चक्रवर्ती की सम्पदा कितनी ? क्या देखे ? इन्द्र सरीखा भोग। 'चक्रवर्ती की सम्पदा इन्द्र सरीखा भोग...' सम्यग्दृष्टि जानते हैं... क्या कहा ? 'कागवीट सम गिनत है सम्यग्दृष्टि लोग।' आहाहा! आत्मा आनन्दमूर्ति सच्चिदानन्द प्रभु है, ऐसी जिसको अन्तर्दृष्टि हुई, वह भोग को तो काग की विष्टा (देखता है)। 'चक्रवर्ती की सम्पदा, इन्द्र सरीखा भोग, कागवीट सम मानत है' काग की विष्टा। मनुष्य की विष्टा तो सुअर भी खाये। काग की विष्टा खा सके नहीं। 'कागवीट सम मानत है, सम्यग्दृष्टि लोग।' आहाहा! अपना स्वभाव ज्ञान और अनाकुल आनन्द के प्रेम के सामने सारा इन्द्र का भोग और चक्रवर्ती का भोग कागविष्टा सम दिखता है। समझ में आया ? अज्ञानी को तो थोड़ा जहाँ पुण्य हो, शुभभाव हो तो ... किया, धर्म किया, ऐसा किया। मूर्ख! धर्म कहाँ आया ? राग में धर्म कहाँ से आया ? समझ में आया ? क्या कहते हैं ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... क्या कहते हैं ? किया था, ऐसा माना है, वह वर्तमान की अज्ञान की भ्रमणा है, ऐसा कहते हैं। सब कर लिया। पैसे हो गये, अब लड़के और दो भाई करेंगे। अपने एक ओर बैठ जाते हैं। क्या कर दिया ? अभी तक तो अज्ञान किया था। अब वह करते हैं तो ठीक है, वह भी अज्ञान है। अपने आया न कलश में ? गाथा में आया न ? सज्जन और अपना। उपभोग का लाभ,... समझ में आया ? जीवित का लाभ, आरोग्य का लाभ... समझ में आया ? चार बोल आये या नहीं ? शरीर... शरीर। इन्द्रियाँ। आरोग्य का

लाभ, इन्द्रियाँ और उपभोग। चार बोल हैं। इन्द्रियाँ ठीक रहे तो ठीक। मेरी और लड़कों की और स्त्री की। रहे, न रहे तेरे आधीन है ? वह स्वतन्त्र है। ऐसा अभी हृदय में रहे कि हमने तो कर दिया, अब लड़के करते हैं, हमें कोई हरकत नहीं। वही का वही हुआ। शोभालालजी ! दो भाई हैं। निवृत्त हो गये, बैठो। मकान करवाया है। अपने कर लिया, अब वह करेंगे। क्या किया था ? अज्ञान किया था। पर का किया ऐसा माने, वह तो अज्ञानी है। उसको ठीक मानना कि हमें अब सन्तोष है, क्योंकि जो हमें करना था, वह कर लिया। वही मिथ्या भ्रम अज्ञान है। समझ में आया ?

कहते हैं, ज्ञानी आत्मा का प्रेम जिसको है, बार-बार जिसको अन्तर में झुकने का भाव है... समझ में आया ? जहाज में एक कौआ बैठा हो और जहाज समुद्र में चला। बहुत दूर आ गया। कौए को उड़-उड़कर वहीं आना है। समुद्र में कोई दूसरा स्थान तो है नहीं। जहाज था, उस पर कौआ बैठ गया। मालूम नहीं था कि यह जहाज (चलेगा)। जहाज चला तो वह भी चला। जहाज मध्य में पहुँच गया। अब ? नहीं है कोई पेड़, नहीं कोई मकान। घूम-घूमकर वहाँ आता है। वैसे जिसकी दृष्टि आत्मा आनन्दमय पर लगी है, उसकी बार-बार दृष्टि की पर्याय वहाँ जाती है। समझ में आया ? आहाहा !

कहते हैं, **जब तक यथाख्यातचारित्र को प्राप्त नहीं होता है...** सम्यग्दर्शन तो पाया। राग का छोटा अंश भी मेरा नहीं और मुझे लाभदायक नहीं है, ऐसी (प्रतीति हुई), फिर जब तक यथाख्यातचारित्र प्राप्त नहीं होता। जब तक बारहवें गुणस्थान की दशा नहीं आये, **जब तक अरहन्त-सिद्ध देव में, और शिक्षा-दीक्षा देनेवाले गुरु में (ऐसे पंच परमेष्ठी प्रति) भक्तियुक्त होता ही है,...** उसे भक्ति का राग आता है, वह मिथ्यात्व नहीं है, ऐसा कहते हैं। ऐसा राग आता है। राग को अपना माने और राग से धर्म का लाभ माने, वह मिथ्यात्व है। वहाँ गाथा डाली। मुनि को भी राग तो आता है न ? हो। परन्तु वे लाभदायक नहीं मानते।

इनकी भक्ति विनय सहित होती है... धर्मात्मा, अरिहन्त, देव-गुरु-शास्त्र प्रति बहुमान, विनय का विकल्प आता है। परन्तु वह बन्ध का कारण समझते हैं, अपने लाभ का कारण मानते नहीं। आहाहा ! गजब बात ! **और अन्य संयमी मुनि अपने समान धर्मसहित हैं, उनमें भी अनुरक्त है,...** आया न ? **'देवगुरुम्मि य भत्तो साहम्मियसंजदेसु**

अणुरत्तो'। अपने समान मुनि सन्त हो, आत्मज्ञानी ध्यानी दिगम्बरदशा जिसकी है, उनके प्रति मुनियों को प्रेम होता है, राग आता है। साधर्मी है, ऐसा। विकल्प आता है। जब तक वीतरागता नहीं हो, तब तक ऐसा राग आता है। जानते हैं कि बन्ध का कारण है। मेरा धर्म उससे है, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? आता है न? भाई! समन्तभद्राचार्य का। पुरुषार्थ में ... निमित्त है। ... आता है। लगाते हैं। पुण्य भी होता है। परन्तु होता है उसकी व्याख्या क्या? अर्थ क्या? उससे होता है? तब तो निमित्त रहा नहीं। समन्तभद्राचार्य में आता है। आये। पूर्ण नहीं है, तब तक संहनन, मनुष्यदेह आदि पुण्य का फल भी निमित्तरूप से होता है। निमित्तरूप से का अर्थ क्या? वहाँ पाठ ऐसा है न? निमित्त और पुरुषार्थ दो मिलकर मोक्ष होता है। ऐई! ऐसा पाठ है।

मुमुक्षु : समझ में नहीं आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं आया? अच्छा! एक श्लोक ऐसा है कि मोक्षप्राप्ति में दो कारण है। अपनी पवित्रता कारण है और पुण्य निमित्तकारण है। ऐसा पाठ में है। परन्तु उसका अर्थ क्या? होता है। वस्तु है, उसका ज्ञान करवाते हैं। उससे क्या मुक्ति होती है? वह तो आरोप का कथन है। समन्तभद्राचार्य में है। देवीलालजी ने वहाँ बात की होगी। अरे! भगवान! वह तो साथ में अपनी पवित्रता प्रगट हुई है, राग है, निमित्त है, पंच महाव्रत निमित्त है। वह तो आया न? उपादान-निमित्त में। उपादान-निमित्त के दोहे में आया है। पंच महाव्रत बीच में आता है। क्या सीधे तुम मोक्ष जा सकते हो? निमित्तरूप से हो, परन्तु उसको भी छोड़कर स्थिरता होगी, तब मोक्ष होगा। महाव्रत के परिणाम से मोक्ष होगा नहीं। उपादान ... आता है न? ... अन्दर आ जा, भाई! होता है, जब तक यथाख्यातचारित्र नहीं हो, तब तक आत्मा का ध्यान, स्वरूप की दृष्टि, अनुभव ज्ञाता-दृष्टा—ऐसा होने पर भी कमजोरी से पंच परमेष्ठी प्रति का राग आता है। परन्तु जब तक राग रहे, तब तक मुक्ति नहीं होगी। आहाहा! समझ में आया? पंचास्तिकाय की ... जब तक सूत्र की रुचि रहेगी, तीर्थंकर कहे—हमारे प्रति राग रहेगा और नव तत्त्व का प्रेम रहेगा, तब तक मुक्ति दूर है। आहाहा! तीर्थंकर नाम दिया है। हों! तीर्थंकर हम हैं, हमारे प्रति प्रेम रहेगा, तब तक मुक्ति दूर है। समझ में आया?

अन्य संयमी मुनि अपने समान धर्मसहित है, उनमें भी अनुरक्त है,... प्रेम है। **अनुरागसहित होता है, वही मुनि ध्यान में प्रीतिवान होता है...** धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि ज्ञानी और अन्तर चारित्रवन्त है, उनके प्रति प्रेम है। यदि प्रेम नहीं हो तो समझना कि उसको ध्यान का प्रेम है नहीं। ज्ञानी धर्मात्मा प्रति प्रेम नहीं है, उसको अपने ध्यान का प्रेम नहीं है, इतना बताना है। समझ में आया? ... चारित्र में पड़ा है, ऐसा साधक होकर ... उसके प्रति धर्मी अपने स्वभाव का साधन करते हैं, वहाँ ऐसा राग, यथाख्यातचारित्र न हो, तब तक आता है। आता है, इसलिए वह मोक्ष का कारण है—(ऐसा नहीं है)। पुण्य निमित्त कहा न? निमित्त का अर्थ यह है कि पूर्व में था। क्या हो? लोगों को व्यवहार ऐसा गले पड़ता है।

और मुनि होकर भी देव-गुरु-साधर्मियों में भक्ति अनुरागसहित न हो... देखो! यह कहते हैं, सम्यग्दृष्टि जीव धर्मात्मा चारित्रवन्त है और देव-गुरु-साधर्मियों में भक्ति अनुराग न हो, प्रेम न हो, यथाख्यातचारित्र तो है नहीं और ऐसे परमात्मा, सन्तों, मुनियों, धर्मात्मा के प्रति यदि प्रेम नहीं है, **उसको ध्यान में रुचिवान नहीं कहते हैं...** उसे अन्तर दृष्टि में ध्यान में रहना, वह ठीक नहीं लगता, उसे रुचि है नहीं। धर्मात्मा ध्यानी है, ज्ञानी है। अल्प ज्ञान हो,... समझ में आया? परन्तु अन्तर स्वरूप के ध्यान में आनन्द में मस्त रहते हैं। समझ में आया? ऐसे मुनि के प्रति प्रेम न हो तो समझना कि उसको आत्मा के ध्यान प्रति प्रेम नहीं है। समझ में आया? मोक्षपाहुड़ में यह बात ली।

क्योंकि ध्यान होनेवाले के, ध्यानवाले से रुचि, प्रीति होती है,... लो। जिसको अपना आत्मा आनन्दमूर्ति रुचता है, राग रुचता नहीं, ऐसे धर्मात्मा को धर्मात्मा के प्रति प्रेम आये बिना रहता नहीं। **ध्यानवाले से रुचि, प्रीति होती है,...** ओहो! धन्य अवतार! **ध्यानवाले न रुचे...** धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि ध्यानवाले हैं, उसकी जिसको रुचि नहीं, **तब ज्ञात होता है कि इसको ध्यान भी नहीं रुचता है,...** प्रवृत्ति रुचती है। समझ में आया? **इस प्रकार जानना चाहिए।** लो। आगे कहे। समझ में आया या नहीं?

राग आता है फिर भी मिथ्यादृष्टि नहीं है, ऐसा कहते हैं। पहले कहा, अन्य-सा दिखता है न? दिखो। राग ... परन्तु भेदज्ञान में भान है कि राग मेरा नहीं। समझ में आया? बहुत कड़क मार्ग। मार्ग तो है सीधा सरल। प्रभु चैतन्यमूर्ति सच्चिदानन्द निर्विकल्प आनन्दमूर्ति आत्मा परम कल्पवृक्ष, परम कामधेनु गाय ऐसा आत्मा है। आहाहा! जितनी

एकाग्रता करो, उतना आनन्द झरे। समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा जिसको सम्यग्दर्शन में रुचा है और उस ओर के ध्यान में प्रीति है, उस जीव को ध्यानवान प्राणी के प्रति यदि प्रेम न हो तो समझना कि उसको ध्यान में ही प्रीति नहीं है। समझ में आया?

गाथा-५३

आगे कहते हैं कि जो ध्यान सम्यग्ज्ञानी के होता है, वही तप करके कर्म का क्षय करता है –

उग्गतवेणण्णाणी जं कम्मं खवदि भवहि बहुएहिं।
तं णाणी तिहि गुत्तो खवेइ अंतोमुहुत्तेण ।।५३।।

उग्रतपसाऽज्ञानी यत् कर्म क्षपयति भवैर्बहुकैः।
तज्ज्ञानी त्रिभिः गुप्तः क्षपयति अन्तर्मुहूर्त्तेन ।।५३।।

अज्ञानि बहु भव के करम जो उग्र तप से क्षय करे।
अन्तर्मुहूरत में त्रिगुप्ति से सुज्ञानी क्षय करे।।५३।।

अर्थ – अज्ञानी तीव्र तप के द्वारा बहुत भवों में जितने कर्मों का क्षय करता है, उतने कर्मों का ज्ञानी मुनि तीन गुप्ति सहित होकर अन्तर्मुहूर्त में ही क्षय कर देता है।

भावार्थ – जो ज्ञान का सामर्थ्य है, वह तीव्र तप का भी सामर्थ्य नहीं है, क्योंकि ऐसा है कि अज्ञानी अनेक कष्टों को सहकर तीव्र तप को करता हुआ करोड़ों भवों में जितने कर्मों का क्षय करता है, वह आत्मभावना सहित ज्ञानी मुनि उतने कर्मों का अन्तर्मुहूर्त में क्षय कर देता है, यह ज्ञान का सामर्थ्य है।।५३।।

गाथा-५३ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो ध्यान सम्यग्ज्ञानी के होता है, वही तप करके कर्म का क्षय करता है :-

उग्गतवेणण्णाणी जं कम्मं खवदि भवहि बहुएहिं।
तं णाणी तिहि गुत्तो खवेइ अंतोमुहुत्तेण।।५३।।

अर्थ :- अज्ञानी तीव्र तप के द्वारा बहुत भवों में जितने कर्मों का क्षय करता है... बेचारा महाव्रत पाले, एक-एक महीने का उपवास करे, लाखों, करोड़ों भव में उसको कर्म क्षय नहीं होता, उतना ज्ञानी अपने ध्यान से क्षय करता है। समझ में आया? आहाहा! देखो! **अज्ञानी तीव्र तप के द्वारा बहुत भवों में...** है न? '**भवहि बहुएहिं**' '**बहुएहिं**' का अर्थ अनन्त भव। समझ में आया? अनन्त भव में भी जो आंशिक राग भी कम नहीं करता, वह ज्ञानी अपने द्रव्य में एकाकार होकर संसार का नाश करते हैं, कर्म का क्षय करते हैं। आहाहा! चैतन्य भगवान जिसकी दृष्टि में समीप में आया, वह अपने स्वभाव के आश्रय से कर्म का क्षय करते हैं। अज्ञानी अपने द्रव्यस्वभाव की समीप में दृष्टि नहीं आया, उसको तो राग और निमित्त समीप में वर्तते हैं। चाहे जितना अनन्तभव में महाव्रत पालो और अकामनिर्जरा से तपस्या आदि करो, ... कई बरसों तक।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दृष्टि अपने ध्यान से निर्जरा करते हैं, ऐसी अज्ञानी को बिल्कुल निर्जरा होती नहीं, ऐसा कहते हैं। रतनचन्दजी कहते हैं, देखो! उसमें '**खवदि**' कहा है न? थोड़ा तो क्षय होता है न। परन्तु समकिती को अनन्त भव होते ही नहीं। यहाँ क्या कहा? '**कम्मं खवदि भवहि बहुएहिं**'। कहो, समझ में आया? आहाहा! कोटाकोटि अर्थ किया है। करोड़-करोड़ भव में नहीं क्षय हो, विशेष अर्थ में किया होगा। समझ में आया? करोड़-करोड़ इतने भव तो होते नहीं हैं। समकित का आराधन हो तो एक भव, दो भव, पन्द्रह भव में तो समाप्त! समझ में आया? यहाँ तो अज्ञानी इतना करते हैं, उग्र तप करे (उसके द्वारा) **जितने कर्मों का क्षय करता है, उतने कर्मों का ज्ञानी मुनि तीन गुप्तिसहित...** यहां तो मन-वचन-काया से लक्ष्य छोड़कर अपने ध्यान में मस्त है, उसके आश्रय से कर्मक्षय होता है। बाह्य की क्रियाकाण्ड पर के आश्रय से कर्म क्षय नहीं होता। बस, यह सिद्ध करना है। क्या करे? सब अर्थ बदल दिये। उसका भावार्थ आयेगा...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(नोंध - गाथा ५३-५४ पर प्रवचन १९७०-१९७१ के वर्ष में उपलब्ध नहीं होने से यह प्रवचन १९७४ के वर्ष में से लिया गया है।)

प्रवचन-१३३, गाथा-५३ से ५५, गुरुवार, फाल्गुन कृष्ण १३, दिनांक २१-०३-१९७४

उग्गतवेणण्णाणी जं कम्मं खवदि भवहि बहुएहिं।
तं णाणी तिहि गुत्तो खवेइ अंतोमुहुत्तेण।।५३।।

अज्ञानी... जो यह आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप है, उसका जहाँ भान नहीं, ऐसा जीव तीव्र तप-कठोर तप करे, छह-छह महीने के अपवास करे (ऐसे तप) **द्वारा बहुत भवों में...** बहुत भवों में **जितने कर्मों का क्षय करता है...** अघाति अशुभ इतना टलता है न ? शुभभाव में अज्ञानी को अशुभकर्म कितना ही अघाति आदि का टलता है। पापकर्म। अज्ञान में शुभभाव से पापकर्म हटता है, टलता है। **उतने कर्मों का ज्ञानी मुनि...** यह तो साधारण दृष्टान्त दिया। आत्मा के आनन्द और ज्ञानस्वरूप में जिसकी दृष्टि है, ऐसे ज्ञानी मुनि... मुनि की प्रधानता से बात है, **तीन गुप्तिसहित...** शुभाशुभ विकल्प को भी जिसने छोड़ा है और आत्मा में निर्विकल्प समाधि में आया है। वह **अन्तर्मुहूर्त में ही क्षय कर देता है।** कितने ही (अज्ञानी) इसका ऐसा अर्थ लगाते हैं, अज्ञानी है उसे तो ज्ञान विशेष नहीं, वह अज्ञानी यहाँ लेना है, ऐसा कहते हैं। मिथ्यादृष्टि यहाँ नहीं लेना, रतनचन्दजी ऐसा कहते हैं न ? ऐसा कि इसमें थोड़ा भी कर्म खिपाता है न ? वह तो अशुभ अघातिकर्म और किंचित् शुभभाव हो तो घाति का रस पड़ते हुए कम पड़े।

मुमुक्षु : अकाम निर्जरा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अपेक्षा ... द्वारा। शुभभाव में शुद्धता का तो भान नहीं, उस शुभभाव में अशुभ अघातिकर्म की स्थिति भी किंचित् घटे और घाति का कोई भाव मिथ्यात्व बिना का ... परन्तु थोड़ा कुछ रस घटे, परन्तु अभाव नहीं कर सकता। उसे यहाँ अज्ञानी लेना है। कहते हैं कि खिपाता है न ? उसके साथ यह खिपाता है, ऐसा मेल किया है न ? इसलिए वह ज्ञानी जघन्य ज्ञानी निचली श्रेणीवाला है, ऐसा कहते हैं, ऐसा नहीं है।

पाठ में है न ? '**उग्गतवेणण्णाणी**'। वे अज्ञानी का अर्थ ऐसा करते हैं कि विशेष ज्ञान नहीं, मन्द ज्ञान। दूसरी जगह हो, इस जगह नहीं। अज्ञानी जीव... दूसरी जगह मन्द ज्ञानी का अर्थ अज्ञान होता है। बारहवें गुणस्थान में अज्ञान है न। बारहवें गुणस्थान में अज्ञान है, वह क्या है ? ज्ञान का अभाव है। विपरीत ज्ञान अलग और अल्प ज्ञान अलग। इन दोनों में बड़ा अन्तर है।

यहाँ तो मिलान करना है मात्र जहाँ चैतन्यमूर्ति भगवान वस्तु जो है, कर्म और कर्म के भाव रहित की, ऐसी जिसकी दृष्टि हुई नहीं तो उसकी दृष्टि राग के ऊपर ही पड़ी है और वह राग की क्रिया में मन्द राग भी करे, संथारा दो-दो महीने के करे। संथारा समझ में आता है ? अन्तिम मरण (हो)। परन्तु अन्दर वस्तुस्थिति की खबर नहीं, इसलिए उसे कर्म का अंश भी परमार्थ से अभाव नहीं होता, परन्तु ऐसा शुभभाव है, उसे अकाम अशुभ घटता है, इतनी अपेक्षा ली है।

ज्ञानी को... ज्ञानी तो पुण्य और पाप दोनों को खिपावे, ऐसी बात लेनी है। उनको अकेले पाप घटता है, इतनी अपेक्षा लेनी है। आहाहा! उसे मिथ्यात्व है न। और उसे है, जिसे शुभभाव है, मिथ्यात्व का रस मन्द हो। अभव्य को होता है। रस मन्द होता है परन्तु अभाव नहीं होता। समझ में आया ? मिथ्यादृष्टि को भी शुभभाव से मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का रस मन्द हो, परन्तु वह कोई चीज़ नहीं है। आहाहा! उन कर्मों का... **उतने कर्मों का...** ऐसा शब्द पड़ा है न ? '**तं णाणी तिहि गुत्तो**' मुनि तीन गुप्तिसहित, जिसने मन-वचन-काया के विकल्प दूर किये हैं। क्योंकि जिसे आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप अबन्धस्वरूप दृष्टि में, ज्ञान में आया है; इसलिए वह अन्दर ध्यान में जाए, तब अन्तर्मुहूर्त में क्षय कर दे। समझ में आया ?

भरत चक्रवर्ती, लो! ८३ लाख पूर्व तक संसार के; छह लाख पूर्व तो चक्रवर्ती पद में रहे। सम्यग्दृष्टि। छह लाख पूर्व। एक पूर्व में सत्तर लाख छप्पन हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। ऐसे ऐसे छह लाख पूर्व तो चक्रवर्ती पद में रहे। उसे जो अल्प कर्म बँधा था, वह अन्तर्मुहूर्त में ध्यान में सब खिरा दिया। चारित्र का विपर्यय था... ऐसे अन्तर में जहाँ गये... आहाहा! वहाँ इतने काल में चारित्रमोह का बन्धन अन्तर्मुहूर्त में खिर गया। समझ में आया ?

चैतन्यवस्तु के स्वभाव के अवलम्बन से जो काम हो, वह शुभराग के अवलम्बन में वह काम नहीं हो सकता। समझ में आया? तथापि यहाँ जरा उपमा में ऐसा (कहा), उसे खिपावे, उससे अन्तर्मुहूर्त में खिरे, इतनी जरा (अपेक्षा ली है)। नहीं तो वास्तव में उसके साथ कुछ मेल है नहीं। परन्तु जरा उसका माहात्म्य बताने के लिये इसका थोड़ा पाप खिरता है। वह अन्तर्मुहूर्त में पुण्य और पाप सबको जलाकर राख कर डालता है। समझ में आया?

भावार्थ :- जो ज्ञान का सामर्थ्य है... अब पण्डित जयचन्द्रजी स्वयं भावार्थ करते हैं। ज्ञानस्वभाव चैतन्यस्वभाव पुण्य और पाप के राग, विकल्परहित ऐसा जो आत्मा का ज्ञान, आत्मद्रव्य का भान, उसका जो सामर्थ्य है, **वह तीव्र तप का भी सामर्थ्य नहीं है,...** इतना बतलाना है। छह-छह महीने के अपवास करे, शास्त्र स्वाध्याय करे तो भी वह सामर्थ्य, ज्ञान के सामर्थ्य के समक्ष वह सामर्थ्य है नहीं। **क्योंकि ऐसा है कि अज्ञानी अनेक कष्टों को सहकर तीव्र तप को करता हुआ करोड़ों भवों में जितने कर्मों का क्षय करता है...** करोड़ों-करोड़ों .... टीका में तो बहुत लिया है। बहुत करोड़ और ऐसे और ऐसे आगे बढ़ाते गये। उसमें है। भवभवकम् कोटि भवे, शतकोटि भवे, सहस्र कोटि भवे, लक्ष कोटि भवे, कोटाकोटि भवे—क्रोड़ा क्रोड भव में। यह तो एक... ऐसा कि क्रोड़ क्या अनन्त काल में नहीं खिपाता, इसका यह अर्थ है। अनन्त काल में जो कोई अशुभ कर्म घटे, वह ज्ञानी शुभाशुभ परिणाम को अन्तर्मुहूर्त में खिरा डालता है। बस, सिद्धान्त ऐसा करना है। समझ में आया?

भगवान ज्ञानस्वभाव का सामर्थ्य इतना है कि जहाँ उसकी दृष्टि हुई और पश्चात् वह ध्यान में जाये। उसे ध्यान सच्चा होवे न! उसे अज्ञानी क्रोडा क्रोडी भव में जो अशुभकर्म पाप नहीं खिपाता अथवा शुभभाव से पाप खिपावे, खिपाने का लेना है न? वह इस अन्तर्मुहूर्त में आनन्दस्वरूप में भगवान, जिसे ध्यान में लेकर ध्येय बनाकर, दृष्टि उघड़ी है, इसीलिए तो ध्येय हो गया है। आहाहा! वह अन्तर्मुहूर्त में खिपाता है। कितने हुए कोटाकोटि भव द्वारा। अनन्त कर्म।

क्योंकि ऐसा है कि अज्ञानी अनेक कष्टों को सहकर तीव्र तप को करता हुआ करोड़ों भवों में जितने कर्मों का क्षय करता है वह... ऐसा। यह तो अपेक्षा से बात करते

हैं। **आत्मभावना सहित...** भगवान आत्मभावना भावता... आता है न? श्रीमद् में आता है। 'आतमभावना भावना भावता जीव लहे केवलज्ञान रे।' यह आत्मभावना अर्थात् क्या? आहाहा! जिसे आत्मा दृष्टि में, ज्ञान में ज्ञेयरूप से, श्रद्धारूप से ज्ञानरूप से भासित हुआ है, ऐसा आत्मा, उस आत्मा की भावना करने से अन्तर्मुहूर्त में कर्म खिपाकर केवलज्ञान भी पाता है। समझ में आया? देखो!

आत्मभावना सहित ज्ञानी मुनि उतने कर्मों का अन्तर्मुहूर्त में क्षय कर देता है, वह ज्ञान का सामर्थ्य है। प्रमाण दिया है, यह तो साधारण है। वह तो पापकर्म खिपावे, यह तो सब खिपावे। दोनों। आहाहा! क्योंकि आत्मद्रव्य में पुण्य और पाप के विकल्प तो है नहीं। ऐसी आत्मदृष्टिवन्त आत्मा की भावना करने से पुण्य और पाप के दोनों भाव को खिपाता है। **वह ज्ञान का सामर्थ्य है।** वह आत्मा के स्वभाव का सामर्थ्य है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

गाथा-५४

आगे कहते हैं कि जो इष्ट वस्तु के सम्बन्ध से परद्रव्य में रागद्वेष करता है, वह उस भाव से अज्ञानी होता है, ज्ञानी इससे उल्टा है –

सुहजोएण सुभावं परदव्वे कुणइ रागदो साहू।
सो तेण दु अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीओ ।।५४।।

शुभयोगेन सुभावं परद्रव्ये करोति रागतः साधुः।
सः तेन तु अज्ञानी ज्ञानी एतस्मात्तु विपरीतः ।।५४।।

शुभ–योग से हो राग–वश पर–द्रव्य में प्रीति करे।
अज्ञानि है विपरीत ज्ञानी नहीं उनमें वह करे।।५४।।

***अर्थ* – शुभ योग अर्थात् अपने इष्ट वस्तु के सम्बन्ध से परद्रव्य में सुभाव अर्थात् प्रीतिभाव को करता है, वह प्रगट रागद्वेष है, इष्ट में राग हुआ तब अनिष्ट वस्तु में**

द्वेषभाव होता ही है, इस प्रकार जो राग-द्वेष करता है, वह उस कारण से रागी-द्वेषी अज्ञानी है और जो इससे विपरीत अर्थात् उलटा है, परद्रव्य में राग-द्वेष नहीं करता है, वह ज्ञानी है।

भावार्थ **- ज्ञानी सम्यग्दृष्टि मुनि के परद्रव्य में रागद्वेष नहीं है, क्योंकि राग उसको कहते हैं कि जो परद्रव्य को सर्वथा इष्ट मानकर राग करता है, वैसे ही अनिष्ट मानकर द्वेष करता है, परन्तु सम्यग्ज्ञानी परद्रव्य में इष्ट अनिष्ट की कल्पना ही नहीं करता है तब राग-द्वेष कैसे हों ? चारित्रमोह के उदयवश होने से कुछ धर्मराग होता है, उसको भी रोग (राग) जानता है, भला नहीं समझता है तब अन्य में कैसे राग हो ? परद्रव्य से राग-द्वेष करता है वह तो अज्ञानी है, ऐसे जानना।।५४।।**

गाथा-५४ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो इष्ट वस्तु के सम्बन्ध से... अब क्या कहते हैं ? कि कोई वस्तु ज्ञेय जो पर है, उसमें प्रियकर इष्ट का संयोग होने पर **परद्रव्य में राग-द्वेष करता है...** वह संयोग होने पर सम्बन्ध में इष्ट मानकर राग करे, अनिष्ट मानकर द्वेष करे। **वह उस भाव से अज्ञानी होता है,...** परवस्तु में इष्टता और अनिष्टता, यह मान्यता ही मिथ्यात्व की है। समझ में आया ? **ज्ञानी इससे उल्टा है :-**

सुहजोएण सुभावं परदव्वे कुणइ रागदो साहू।
सो तेण दु अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीओ।।५४।।

अर्थ :- शुभ योग अर्थात् अपने इष्ट वस्तु के सम्बन्ध से... ऐसा। अनुकूल का सम्बन्ध ऐसे मिलाप होने पर **परद्रव्य में सुभाव अर्थात् प्रीतिभाव...** सुभाव अर्थात् इसका अर्थ यहाँ प्रीति लेना है। यहाँ तो यह सिद्ध करना है, मोक्ष का मार्ग है न ? परवस्तु का सम्बन्ध होने पर इष्ट-अनिष्ट की कल्पना से जो राग-द्वेष करता है, वह अज्ञानी है। समझ में आया ? क्योंकि ज्ञेय परवस्तु है, उसका तो आत्मा ज्ञाता है। उस ज्ञेय में यह इष्ट और अनिष्ट, ऐसे भाग है ही नहीं।

मुमुक्षु : भक्ति का राग है...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भक्ति का राग... यह ख्याल है, मस्तिष्क में बात का ख्याल है। अस्थिरता का राग है। यह इष्ट है, प्रियकर है—ऐसा मानकर उसे राग नहीं है। व्यवहार इष्ट है, ऐसा मानकर... इष्ट देव कहलाता है न? परमार्थ से वह इष्ट नहीं है। ऊपर ५२ (गाथा में) आया था। '**देवगुरुम्मि य भत्तो साहम्मियसंजदेसु**'। यह धर्मराग है। यह स्पष्टीकरण में आयेगा। चारित्रमोह के उदयवश जिसे धर्मराग आवे सही, परन्तु उसे रोग समान जानता है। और अज्ञानी उसे अनुकूल चीज़ है, इसलिए राग आया है, इसलिए ठीक है—ऐसा मानता है। श्रद्धा में अन्तर है। समझ में आया? पाठ शब्द ऐसा है न?

'**सुहजोएण**' शुभपदार्थ का मिलान होने पर, मिलना, ऐसे साथ में नजदीक सम्बन्ध होना। उसमें '**सुभावं परदव्वे**' परद्रव्य के प्रति सुभाव अर्थात् प्रीति करता है, वह राग को करता है, वह साधु अज्ञानी है। आहाहा! अन्तर में कौन सा अन्तर कहाँ पड़ता है? पर का संयोग होने पर उसे प्रीति उपजती है कि यह ठीक है। ऐसी प्रीति उपजती है, उस प्रीति को यहाँ राग कहते हैं, उसे अज्ञान कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे तो पंच परमेष्ठी इष्टदेव हैं। परन्तु वह इष्टता चारित्रमोह के मुनिपने का उदय है, उसके कारण लगती है। परन्तु वह इष्ट है, वह द्रव्य ठीक है; इसलिए मुझे राग होता है—ऐसा नहीं है। वह इष्ट द्रव्य है, इसलिए मुझे राग होता है—ऐसा नहीं परन्तु इष्ट के प्रेम में मुझे इष्ट वस्तु सच्चे देव-गुरु-शास्त्र हैं। उनका उसे प्रेम और विनय का भाव आता है, वह अपनी कमजोरी के कारण (आता है)। उन्हें इष्ट मानकर आता है, ऐसा है नहीं है। भारी अन्तर।

मुमुक्षु : ... इसलिए प्रशस्त राग कहलाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह प्रशस्त है, वह तो माना है कि यह प्रशस्त है। वास्तव में प्रशस्त है नहीं। परपदार्थ प्रशस्त-अप्रशस्त है ही नहीं। परन्तु शुभराग है, इसलिए प्रशस्त कहा जाता है। ऐसा। तथापि वह राग धर्मानुराग है। परन्तु वह पदार्थ को ही इष्ट मानकर, सम्बन्ध होने पर, मिलाप होने पर प्रीति का भाव अन्दर उल्लसित हो तो वह तो परद्रव्य के प्रति के प्रेम से राग हुआ है। वह तो मिथ्यात्वभाव है। बहुत अन्तर है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अभी बाद में आयेगा। यहाँ तो राग कौन करता है, यह बात है।

शुभयोग अर्थात् इष्ट वस्तुओं का मिलाप। उसकी व्याख्या इतनी की। '**सुहजोएण**' है न? शुभ का योग होना, मिलाप होना। उसमें '**परदव्वे**'। परद्रव्य का मिलाप हुआ है न? उसमें '**सुभावं**' प्रीति '**कुणइ**'। राग से प्रीति करता है कि यह ठीक है, इसलिए मुझे राग आया है, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? ... मोक्ष की इच्छा-राग हो, वह परद्रव्य में राग है, वह भी मिथ्यात्व है। मोक्ष का राग करूँ तो मुझे लाभ होगा, यह भी मिथ्यात्वभाव है। बाद की ५५वीं गाथा है। यह तो ५४ चलती है न?

मोक्षप्राभृत है न। यहाँ तो परद्रव्य के लक्ष्य से '**परदव्वादो दुग्गइ**' आया था न अपने? १६वीं गाथा में। '**परदव्वादो दुग्गइ**' जितने परद्रव्य का लक्ष्य हो, वहाँ चैतन्य की अपनी परिणति नहीं होती। दुर्गति है। चैतन्य का विभाव परिणाम दुर्गति है। '**परदव्वादो दुग्गइ सदव्वादो हु सुग्गइ**' १६वीं गाथा में आया था। १३-१४ से शुरु किया है न। पहली गाथा बाकी रह गयी है, भावपाहुड़ की बाकी है। समझ में आया?

'**सुहजोएण**' का अर्थ शुभयोग नहीं। शुभ का मिलाप। इष्ट वस्तु का सम्बन्ध। उसमें '**परदव्वे**' परद्रव्य का मिलाप है न? '**सुभावं**' सुभाव अर्थात् उसे प्रीति होती है। ऐसा जो राग करता है, तो वह '**अण्णाणी**' इसलिए वह अज्ञानी है। आहाहा! **वह प्रगट राग-द्वेष है। इष्ट में राग हुआ, तब अनिष्ट वस्तु में द्वेषभाव होता ही है,...** इष्ट वस्तु के कारण से राग हुआ, अनिष्ट वस्तु के कारण से वहाँ द्वेष हुए बिना रहेगा ही नहीं। आहाहा! यह तो राग-द्वेष करने का अभिप्राय हुआ। मोक्ष अधिकार है न। परद्रव्य के प्रति झुकाव का राग अस्थिरता का हो तो धर्मानुराग है। उसे इष्ट मानकर यह मुझे बहुत लाभदायक है, ऐसा मानकर हो तो वह अज्ञानभाव है। दो में इतना अन्तर है। समझ में आया? **अनिष्ट वस्तु में द्वेषभाव होता ही है,...**

इस प्रकार जो राग-द्वेष करता है... इष्टता जानकर राग करे, अनिष्ट मानकर द्वेष करे। इष्ट-अनिष्ट वस्तु नहीं है, वह तो ज्ञेय है। आहाहा! **इस प्रकार जो राग-द्वेष करता है, वह उस कारण से रागी-द्वेषी-अज्ञानी है...** देखो! **इस प्रकार जो राग-द्वेष करता है, वह उस कारण से...** पर के कारण से मानकर राग-द्वेष करता है, वह तो अज्ञानी है। आहाहा!

और जो इससे विपरीत अर्थात् उल्टा है, परद्रव्य में राग-द्वेष नहीं करता है...

परद्रव्य के प्रति झुकाव का राग-द्वेष अपनी अस्थिरता से होता है, परन्तु वह परद्रव्य के प्रति प्रीति-अप्रीति करके राग-द्वेष नहीं करता, वह ज्ञानी है। आहाहा! क्योंकि आत्मा तो ज्ञानस्वरूपी ज्ञानी है और परचीज़ अरिहन्त से लेकर दुश्मन सब कहो, वे सब ज्ञेय हैं। ज्ञेय में यह प्रतिकूल और यह अनुकूल, ऐसा उसमें कुछ नहीं है। वह ज्ञान में इष्ट के संयोग के सम्बन्धकाल में इष्ट है, इसलिए मैं प्रीति-राग करता हूँ, '**सुभावं**' शब्द लिया है न? '**सुभावं**' अर्थात् वहाँ राग। ऐसा जब अनुकूल संयोग के मिलाप काल में जब उसके कारण से प्रीति होती है, तब अनिष्ट संयोग में उसके कारण से उसे द्वेष होगा ही। आहाहा! **और जो इससे विपरीत अर्थात् उल्टा है, परद्रव्य में राग-द्वेष नहीं करता है, वह ज्ञानी है।**

भावार्थ :- ज्ञानी सम्यग्दृष्टि मुनि के परद्रव्य में राग-द्वेष नहीं है... आहाहा! केवली को देखकर भी ज्ञानी को राग होता है, ऐसा नहीं है—ऐसा कहते हैं। परपदार्थ को देखकर राग होता है, ऐसा नहीं है। परपदार्थ को अनिष्ट देखकर द्वेष होता है, ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं। आहाहा! वीतरागमार्ग तो देखो! **क्योंकि राग उसको कहते हैं कि जो परद्रव्य को सर्वथा इष्ट मानकर राग करता है...** सर्वथा इष्ट शब्द लिया है। व्यवहार से देव-गुरु इष्ट है, ऐसा जानकर राग होता है, वह अपनी कमजोरी के कारण होता है। वह पदार्थ इष्ट है, इसलिए होता है, ऐसा नहीं है। वहाँ पंचास्तिकाय में लिया है, प्रशस्त पदार्थ। इस राग का लक्ष्य वहाँ जाता है न, इसलिए वह प्रशस्त कहलाता है। बाकी तो पदार्थ है, वह है। व्यवहार से कहते हैं। आता है, इसलिए यहाँ शब्द प्रयोग किया है न? **परद्रव्य को सर्वथा इष्ट मानकर राग करता है, वैसे ही अनिष्ट मानकर...** देखा! **इष्ट मानकर...** ऐसा है न? **वैसे ही अनिष्ट मानकर द्वेष करता है...**

परन्तु सम्यग्ज्ञानी परद्रव्य में इष्ट-अनिष्ट की कल्पना ही नहीं करता है... परवस्तु इष्ट-अनिष्ट है, ऐसी कल्पना ही ज्ञानी को नहीं होती। क्योंकि वह तो परवस्तु सलंग सब ज्ञेय है। सलंग कही है। दुश्मन हो या केवली हो, ज्ञेयरूप से है। एक धारावाही ज्ञेयरूप से है। वह अज्ञानी उसे तोड़ डालता है। इष्ट आवे तो राग, अनिष्ट आवे तो द्वेष, यह खण्ड कर डालता है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इष्ट मानकर नहीं, अपने धर्मानुराग के कारण से। धर्म का प्रेम-

राग होता है इतना। उसे इष्ट मानकर नहीं। राग को इष्ट मानकर नहीं। सब अटपटा है। देखो न! यहाँ कहेंगे, स्वयं स्पष्टीकरण करेंगे।

परन्तु सम्यग्ज्ञानी परद्रव्य में इष्ट-अनिष्ट की कल्पना ही नहीं करता है, तब राग-द्वेष कैसे हो ? पर को इष्ट-अनिष्ट मानकर राग-द्वेष नहीं करता, इसलिए उसे राग-द्वेष कैसे हो, ऐसा कहते हैं। यह इष्ट है, इसलिए मुझे राग होता है, यह अनिष्ट है, (इसलिए द्वेष होता है)—ऐसा है ही नहीं। ऐसी कल्पना ही नहीं। सब वस्तु ज्ञेय है। आहाहा!

मुमुक्षु : निमित्त को तो स्वीकारते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पूजा का भाव स्वयं को आता है। धर्मानुराग। उसे देखकर नहीं, उससे नहीं। ... है न इसमें ? आहाहा!

तब राग-द्वेष कैसे हो ? अब आया, देखो! **चारित्र मोह के उदयवश होने से कुछ धर्मराग होता है...** इष्ट-अनिष्ट वस्तु मानकर नहीं, परन्तु अन्दर में जरा चारित्रमोह का उदय है, उदय अर्थात् उसमें प्रगट परिणमता है। **धर्मराग होता है...** धर्म का उस प्रकार का प्रेम होता है। **उसको भी रोग जानता है...** वह (अज्ञानी) इष्ट देखकर राग करके ठीक मानता है। आहाहा! **धर्मराग होता है...** है या नहीं राग ? ज्ञानी को राग है या नहीं ? मुनि को भी राग होता है। परन्तु पदार्थ के कारण से नहीं, आत्मा की निर्बलता के कारण से (होता है)। बड़ा अन्तर है। आहा!

मुमुक्षु : शुभराग का लोभ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यही बात है कि राग है, वह दुःख है, रोग है। राग है, वह स्वयं आकुलता है, दुःख है। शान्ति, आनन्दस्वरूप में वह रोग है।

मुमुक्षु : भट्ठी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भट्ठी है, यह कठोर लगा है न। बड़ी खलबलाहट हो गयी। भट्ठी में से अभी बड़ा ... पड़ गया। आहा! कषाय है। कषाय है, वह तो अग्नि है। प्रतिकूलता कोई ऐसी होती है, तब अनुभव में इसे नहीं आता ? कि झनझनाहट लगे। अन्दर में... अन्दर में। यहाँ जले, उसका अनुभव होता है। यह तो कषाय आती है तब जले, ऐसा दिखता है, ऐसा कहना है।

मुमुक्षु : मन्दराग भी जलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्दराग हो तो भी जले। ऐसे अन्दर में विचारा अनुसार न हो तो जले। कषायभाव है। लोग नहीं कहते? मेरा कलेजा जलता है, ऐसा होता है, वैसा होता है। परन्तु यह धीरे से देखे तो खबर पड़े न। समझ में आया? क्या होगा? ऐसा होगा। ऐसा हो वहाँ अन्दर से जले। अग्नि दिखाई दे। वह तो तीव्र अशुभराग के काल की बात की। मन्दराग में अग्नि तो तब दिखाई दे कि जब (स्वरूप की) शान्ति देखे तो।

मुमुक्षु : ... अग्नि न हो तो ...

पूज्य गुरुदेवश्री : राग ही अग्नि है। राग दाह दहे सदा, नहीं आया? 'राग आग दहे सदा, तातैं समामृत सेईये'। आहाहा! हो, परन्तु है तो दुःख।

धर्मी को चारित्रमोह के उदयवश, हों! उदय कराता नहीं है। उदय के आधीन होता है, इसलिए **कुछ धर्मराग होता है, उसको भी रोग जानता है, भला नहीं समझता है...** आहाहा! व्यवहार से करता है, ऐसा कहा जाता है। वास्तव में करता नहीं परन्तु हो जाता है। ज्ञान की अपेक्षा से परिणमन है, इसलिए कर्ता कहा जाता है। दो धारी तलवार है। द्रव्यस्वभाव की दृष्टि से देखो तो वह परिणमन का कर्ता ही नहीं है। परन्तु जब पर्याय से देखो तो राग का परिणमन है। इसलिए कर्ता भी वह है। आहाहा! यह बात।

उन लोगों को यह बड़ा विवाद आया है न! दीपचन्दजी सेठिया और उनके सब पक्षकार को। ज्ञानचन्दजी और लालचन्दजी को ... ऐसा कहते हैं। राग को भट्ठी कहते हैं, वह मिथ्यादृष्टि है। उसे ऐसा कि दुःख का वेदन दिखता है, यदि वेदे तो तीव्र कषायवाला है। दुःख का वेदन ज्ञानी बराबर जानता है। क्योंकि उसे आनन्द के वेदन के साथ दुःख का वेदन है। हें! आहाहा! इससे उसे दुःख का वेदन यथार्थरूप से ज्ञात होता है। अज्ञानी को दुःख वेदन में आता है, इसकी उसे खबर नहीं है। समझ में आया? क्योंकि आत्मा शान्ति-अकषायस्वरूप है, ऐसी दृष्टि हुई नहीं, इसलिए शान्ति को अनुभव किये बिना यह अशान्ति है, ऐसी उसके साथ तुलना उसे नहीं होती। आहाहा! भारी मार्ग, भाई! ऐसा है न, क्योंकि कषाय में भट्ठी लगती है तो तीव्र कषायी जीव है, ऐसा कहते हैं। तीव्र कषायवाले को भट्ठी दिखती है। मन्द कषायवाले को नहीं दिखती। अर..र..! ऐसा कहते हैं एकदम...

यहाँ तो कहते हैं, अकषाय आत्मा का भान हुआ, उसे कषाय का वेदन दिखता है, वह आकुलता का भोग करता है। प्रवीणभाई! गजब बात, भाई! आहाहा! कहते हैं कि धर्मानुराग हो, उसे भी रोग जानता है। रोग है, ऐसा वेदता है। आहाहा! धर्मी को... कहा नहीं? तीसरे कलश में? तीसरा कलश। '**कल्माषितायाः**'। मेरे परिणाम में निरन्तर कलुषितता वर्तती है। भाषा तो देखो! कलुषितता। नहीं तो मुनि को तो शुभराग है, उन्हें अशुभराग तो है नहीं।

मुमुक्षु : .... मोह का नाश करनेवाला...

पूज्य गुरुदेवश्री : नाश करनेवाला, यह तो ऐसा ही कहे न। नाश करने के लिये। मिथ्यात्व का मोह नहीं है वहाँ। '**कल्माषितायाः**' मेरे मोह के निमित्त से मुझमें मेरी परिणति में मुझे कलुषितता है। आचार्य छठे गुणस्थान में कहते हैं। लो, कलुषित है, शुभभाव है। यह शास्त्र रचने का भाव, टीका करने का भाव, वह कलुषित भाव है। और कहते हैं कि यह टीका करते हुए उस कलुषित भाव के काल में मेरी शुद्धि होओ। कलुषित भाव से नहीं। टीका करते हुए, पाठ ऐसा है कि टीका करते हुए मेरी कलुषितता नाश होओ। परन्तु टीका के प्रसंग में मेरा जोर तो अन्दर ज्ञायकभाव पर वर्तता है। इसलिए वहाँ तक अशुद्धता टलकर शुद्धि होओ। आहाहा! शास्त्र के अर्थ भी जैसे हों, वैसे न करे, इसे जँचे नहीं न, इसलिए जहाँ तहाँ रगड़ मारे, देखो! टीका करते हुए शुभभाव है और उससे भी उनकी कलुषितता टलेगी। ऐसा यह कहते हैं। पाठ ऐसा बोले परन्तु उसका अर्थ समझना चाहिए न। उसमें भी ऐसा अर्थ करे, '**तद्गुणलब्धये**।'

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्व तत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धधये॥

तुम्हारे गुण की प्राप्ति के लिये वन्दन करता हूँ। विकल्प है, वह गुण की प्राप्ति के लिये है। अर्थ तो इसका ऐसा है। आता है न? भाई! आहाहा! अर्थ यह आया है कि देखो! इसमें ऐसा कहा है। उनके पास जो गुण हैं, उनकी प्राप्ति के लिये मैं आपको वन्दन करता हूँ, ऐसा विकल्प करता हूँ। उस विकल्प से मुझे तुम्हारे गुण मिलेंगे। ऐसा अर्थ उस ओर से आया है। बिहार से आया?

मुमुक्षु : उत्तर प्रदेश।

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्तर प्रदेश। समाचार-पत्र में आया था। बहुत वर्ष हुए। '**तद्गुणलब्धये**' उनके गुण के लिये आपको वन्दन करता हूँ। पर को वन्दन, वह तो विकल्प है और उनके गुण की प्राप्ति विकल्प से होती है, ऐसा वहाँ तो कहा है। इसका अर्थ कि मेरा लक्ष्य तो मेरे स्वरूप के ऊपर ही है। तुमको वन्दन करता हूँ, उसके विकल्प के काल में भी मेरा आश्रय तो द्रव्य का है। समझ में आया? उसके आश्रय से मुझे गुण की प्राप्ति होओ। ऐसा है। वे कहें, सब अर्थ बदल डाले। परन्तु उसका अर्थ ऐसा है। होवे ऐसा अर्थ है या नहीं? कहीं उल्टा अर्थ करे? राग-विकल्प बन्ध का मार्ग है। आहाहा!

लोहे का दृष्टान्त दिया है न? लोहा जब अग्नि में बहुत तपा हुआ हो, तब तो ऊपर हांठिकडुं रखे। हांठिकडुं समझे? कठिन कपास का इतना रखे तो जले। और जब अन्दर मन्द अग्नि हो जाए तब वह हांठिकडुं रखो तो नहीं जले। रुई... रुई। रुई का ... लकड़ी नहीं जले, ... नहीं जले ऊपर रखेगो तो। परन्तु रुई का पोल पोला ... ऐसे कषाय की मन्दता की अन्दर अग्नि है। आहाहा! मन्दराग शान्ति को जलाता है। तीव्रराग हो, तब तो बाहर बहुत दिखाई देता है। मन्दराग में शान्ति जलती है। आहाहा!

दान अधिकार में नहीं कहा? दान करनेवाले जीव, अभी पैसा आदि मिले हैं, वह पूर्व में शुभभाव (किया है)। शुभभाव में शान्ति जली थी। खुरचन का दृष्टान्त दिया है न? ... यह खिचड़ी, चावल ऊपर-ऊपर के खा गये हों और अन्दर चिपके हुए होते हैं न? खुरचकर (बाहर निकाले)। ... कहते हैं न? अपने (गुजराती में) यहाँ उकडिया कहते हैं। वह जली हुई खुरचन जहाँ डाले, वहाँ कौआ अकेला नहीं खाता, सबको बुलाकर खाता है। इसी प्रकार कहते हैं कि पूर्व के तेरे पुण्य जले थे, शान्ति जली थी और तुझे शुभभाव हुआ था। उस शुभभाव के फल में यह धूल आदि तुझे मिली है। अकेला खायेगा तो कौवे से भी गया-बीता है। राग की मन्दता करना, ऐसा कहते हैं। दान (अधिकार में) रखने का भाव तीव्र है, दान में राग मन्दता में रखने का भाव मन्द है। है तो दाग, पूर्व में दाग जल था। तब शुभभाव (हुआ) उसका यह फल है। रसिकभाई! सच्चा होगा यह? ... यह चारित्रमोह के उदय के वश होकर। चारित्रमोह राग कराता नहीं है। स्वयं आधीन होता है ईश्वरनय है न? इसकी अपनी योग्यता। सैंतालीस नय। ईश्वर नय है। धाय माता के निकट

जैसे पराधीन बालक को दूध पिलाते हैं। वैसे आत्मा अपनी योग्यता से पराधीन होता है। आहाहा! पर उसे आधीन करके राग कराता है, ऐसा नहीं है। कितनी स्पष्टता है! यह कहे, कर्म के कारण राग होता है, कर्म के कारण यह होता है अमुक को। परद्रव्य के कारण जीव में विकार होता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि यदि राग को भला जाने तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! राग होता अवश्य है, धर्मराग, शुभराग आसक्ति का (होता अवश्य है), तथापि उसे **भलो नहीं समझता तब अन्य से कैसे राग हो?** धर्मराग को भला न जाने तो दूसरे को प्रीति करके राग हो, ऐसा कहाँ से हो? ऐसा कहते हैं। आहाहा! **परद्रव्य से राग-द्वेष करता है, वह तो अज्ञानी है,...** लो! स्पष्टीकरण देते हैं। परद्रव्य है, इसलिए ठीक करके (मानकर) राग करे, अठीक करके (मानकर) द्वेष करे, वह अज्ञानी है। परद्रव्य में इष्ट-अनिष्टता है कहाँ? समझ में आया? परद्रव्य से। यह मोक्ष अधिकार में ... **परद्रव्य से राग-द्वेष करता है, वह तो अज्ञानी है, ऐसे जानना।**

गाथा-५५

आगे कहते हैं कि जैसे परद्रव्य में रागभाव होता है, वैसे मोक्ष के निमित्त भी राग हो तो वह राग भी आस्रव का कारण है, उसे भी ज्ञानी नहीं करता है –

आसवहेदू य तहा भावं मोक्खस्स कारणं हवदि।
सो तेण दु अण्णाणी आदसहावा दु विवरीदु।।५५।।

आस्रवहेतुश्च तथा भावः मोक्षस्य कारणं भवति।
सः तेन तु अज्ञानी आत्मस्वाभावात्तु विपरीतः।।५५।।

हैं मोक्ष-हेतु मानता जो हेतु आस्रव भाव के।
अज्ञानि है वह उसी से विपरीत आत्म-स्वभाव से।।५५।।

अर्थ – **जैसे परद्रव्य में राग को कर्मबन्ध का कारण पहिले कहा वैसे ही राग भाव यदि मोक्ष के निमित्त भी हो तो आस्रव का ही कारण है, कर्म का बन्ध ही करता**

है; इस कारण से जो मोक्ष को परद्रव्य की तरह इष्ट मानकर वैसे ही रागभाव करता है तो वह जीव मुनि भी अज्ञानी है, क्योंकि वह आत्मस्वभाव से विपरीत है, उसने आत्मस्वभाव को नहीं जाना है।

***भावार्थ* – मोक्ष तो सब कर्मों से रहित अपना ही स्वभाव है, अपने को सब कर्मों से रहित होना है, इसलिए यह भी रागभाव ज्ञानी के नहीं होता है, यदि चारित्रमोह का उदयरूप राग हो तो उस राग को भी बन्ध का कारण जानकर रोग के समान छोड़ना चाहे तो वह ज्ञानी है ही और इस रागभाव को भला समझकर आप करता है तो अज्ञानी है। आत्मा का स्वभाव सब रागादिकों से रहित है, उसको इसने नहीं जाना, इस प्रकार रागभाव को मोक्ष का कारण और अच्छा समझकर करते हैं, उसका निषेध है।।५५।।**

गाथा-५५ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जैसे परद्रव्य में रागभाव होता है, वैसे मोक्ष के निमित्त भी राग हो तो वह राग भी आस्त्रव का कारण है,... आहाहा! **उसे भी ज्ञानी नहीं करता है :-**

आसवहेदू य तहा भावं मोक्खस्स कारणं हवदि।
सो तेण दु अण्णाणी आदसहावा दु विवरीदु।।५५।।

अर्थ :- ओहोहो! **जैसे परद्रव्य में राग को कर्मबन्ध का कारण पहिले कहा...** परवस्तु में राग कर्मबन्ध का कारण है। भगवान आत्मा स्वभाव चैतन्य आनन्द का आश्रय करके जो निर्जरा होती है, वह परद्रव्य के आश्रय से बन्ध होता है। आहाहा! चैतन्य भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड प्रभु है, उसका अवम्बन लेने से तो शुद्धता प्रगट होती है। परद्रव्य के अवलम्बन का आश्रय करे तो अशुद्धता प्रगट होती है। और वह अशुद्धता प्रगट हो, उसे भली जाने, वह अज्ञान है। समझ में आया?

अर्थ :- जैसे परद्रव्य में राग को कर्मबन्ध का कारण पहिले कहा, वैसे ही रागभाव यदि मोक्ष के निमित्त भी हो तो आस्त्रव का ही कारण है,... इच्छा उठे कि मोक्ष हो और यह हो, वह आस्त्रव का कारण है। गाथा नहीं वह? 'बोहिलाभं। कम्मखहो...' दु:ख का क्षय होओ, कर्म का क्षय होओ, समाधिमरण होओ। बोधि लाभ आता है। वह

तो एक भावना है। समझ में आया? परन्तु विकल्प से उसे ऐसा करे कि यह हो तो इससे होता है, इससे होता है। विकल्प से मोक्ष होता है। मोक्ष की तीव्र इच्छा करें तो मोक्ष होता है। वह तो अज्ञान है।

मुमुक्षु : लगन... लगन।

पूज्य गुरुदेवश्री : लगन किसकी? आत्मा की लगन।

मुमुक्षु : मोक्ष का तीव्र राग होना चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। मोक्ष तो पर्याय है। पर्याय का राग कैसे? आत्मद्रव्य जो ज्ञायकमूर्ति है, उसकी अन्दर लगन लगनी चाहिए। तब उसे साध्य में मोक्ष है, ऐसा कहने में आवे। ध्येय में द्रव्य है, तब साध्य में मोक्ष है, ऐसा कहने में आवे। साधक-साध्य कहा न? उपाय-उपेय नहीं कहा? उपेय-मोक्ष, वह साध्य है; उपाय, वह कारण है। उसे द्रव्य का ध्येय है। जिसे अकेली पर्याय का ध्येय है, उसे तो द्रव्य की खबर नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बातें, भाई! मोक्ष की पर्याय प्रगट करना, वह ध्येय है, साध्य है। परन्तु वह होती कहाँ से है? वह पर्याय मोक्ष के मार्ग की पर्याय से भी वह ध्येय होता नहीं। अन्दर का द्रव्यस्वभाव है, उसका आश्रय लेने से मोक्ष होता है। आहाहा!

राग भाव यदि मोक्ष के भी हो तो आस्रव का ही कारण है... आहाहा! मोक्ष अधिकार—मोक्षपाहुड़ है न। **कर्म का बन्ध ही करता है,...** कर्म का बन्धन करे। मोक्ष का राग / इच्छा करे तो बन्धन होता है। आहाहा! **इस कारण से जो मोक्ष को परद्रव्य की तरह इष्ट मानकर...** पर्याय इष्ट है, प्रिय—इष्ट है। ऐसा तो प्रवचनसार में कहा नहीं? अनिष्ट का नाश किया और इष्ट की प्राप्ति की। इष्ट अर्थात् पूर्ण निर्मल पर्याय की प्राप्ति हुई। अनिष्ट का नाश हुआ। यह तो एक वस्तु का स्वरूप बतलाया। परन्तु उसे ही इष्ट मानकर राग करे कि यह ठीक है, समझ में आया? तो पर्यायबुद्धि हुई। आहाहा! यह तो सब अटपटा मार्ग है। भीखुभाई! वहाँ कहीं था नहीं। आहाहा!

इस कारण से जो मोक्ष को परद्रव्य की तरह इष्ट मानकर वैसे ही रागभाव करता है तो वह जीव मुनि भी अज्ञानी है... देखा! अज्ञानी है, ऐसा कहा। यहाँ तो आत्मा चिदानन्द भगवान, जिसमें सिद्ध की पर्यायें भी अन्दर अनन्त पड़ी हैं। उस द्रव्य को जिसने

कब्जे में लिया, उसे मोक्ष हुए बिना रहेगा ही नहीं। मोक्ष की इच्छा नहीं है। उसमें सब आता है, भाई! द्रव्यदृष्टिप्रकाश में। हमारे तो मोक्ष भी करना नहीं और केवलज्ञान भी चाहिए नहीं। वह तो हो जायेगा। आनन्द चाहिए। द्रव्यदृष्टिप्रकाश। पाटनीजी! देखा है न? उसमें से यह बड़ा विवाद उठा है न! ज्ञानचन्दजी का पत्र था। द्रव्यदृष्टिप्रकाश निश्चयाभास है, ऐसा बाहर प्रसिद्ध करो तो हम आयेंगे। तुम्हारे ज्ञानचन्दजी। मुम्बई में थे न? कलकत्ता? दिल्ली थे, दिल्ली, हों!.... पत्र आया है। निश्चयाभासी सिद्ध करो। अरे! तुझे क्या काम है? सत्य तो डिगता नहीं। वह तो उसे द्रव्य के ध्येय का बहुत जोर है, इसलिए उसमें बाहर आ गया है। उसे कोई उपदेश करना नहीं था, दूसरे को समझाना नहीं था। आ गया है अन्दर से।

मुमुक्षु : शुभाशुभभाव से नुकसान नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दूसरी बात है। वह तो ध्रुव को नुकसान नहीं, ऐसा कहते हैं। ध्रुव जो है, वह तो शुभाशुभभाव हो तो भी नुकसान नहीं है और केवलज्ञान हो तो ध्रुव को लाभ नहीं है। वह तो दूसरी बात है। सदृश ध्रुव चिद्घन जो है, वह तो ऐसा का ऐसा है। भले अक्षर के अनन्तवें भाग का उघाड़ हो तो उसमें कुछ ध्रुव को नुकसान नहीं और केवलज्ञान हो जायें तो ध्रुव को लाभ हो, ऐसा नहीं है। ध्रुव तो ध्रुव ही है। आहाहा! समझ में आया? लोगों की दृष्टि में अन्तर, उसका अर्थ बदले न। अन्तर पड़ता है।... द्रव्य के ऊपर के जोर के कारण यह सब आता है। पर्याय ध्यान करे तो करो, यह कौन बोलता है? वह तो पर्याय जानती है। मैं किसका ध्यान करूँ? पर्याय मेरा ध्यान करो तो करो। परन्तु यह कौन जानता है? पर्याय जानती है या ध्रुव?

मुमुक्षु : ...

पूज्यगुरुदेवश्री : परन्तु वह उसमें आ ही गयी अन्दर। ३२०(गाथा) में आ गया न? जीव बन्ध-मोक्ष करता नहीं। परन्तु यह कौन जानता है? पर्याय। जीव जो है, वह उपजता भी नहीं, व्यय होता नहीं। पर्याय में आता ही नहीं। उस पर्याय को द्रव्य करता नहीं। परन्तु यह कौन जानता है? ज्ञानपर्याय जानती है या द्रव्य जानता है? आहाहा! ३२० में बहुत आ गया। ३२० गाथा, जयसेनाचार्यदेव की (टीका)। अपने वाँचन हो गया है। यह तो भाई मध्यस्थ जीव हो, उसे सत्य समझना हो, उसकी बात है। कोई पक्ष रखकर मेरी बात सिद्ध हो ऐसा, ... वह यह वस्तु नहीं है।

क्योंकि वह आत्मस्वभाव से विपरीत है,... मोक्ष हो, ऐसा राग करे और राग में ठीक माने तो वह तो आत्मस्वभाव से विपरीत मान्यता हुई। आहाहा! ऐसा कि अपने मोक्ष की इच्छा करेंगे तो मोक्ष शीघ्र आयेगा–जल्दी आयेगा, ऐसा नहीं है। इच्छा तो राग है। राग करने से मोक्ष जल्दी आये? या राग छोड़ने से आये? **अपने आत्मस्वभाव को नहीं जाना है।** लो। भगवान आत्मा का स्वभाव, वह राग से रहित है। तो राग करने से आत्मा का स्वभाव प्रगट हो, ऐसा वह स्वरूप नहीं है। आहाहा! इसका भावार्थ कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-८४, गाथा-५५-५६, गुरुवार, भाद्रशुक्ल १०, दिनांक १०-०९-१९७०

आज दसलक्षणी पर्व का धर्म का छठवाँ दिवस है। उत्तम संयम। है तो दसों बोल चारित्र का आराधन का है। परन्तु भेद करके एक-एक का विशेष वर्णन किया। उत्तम संयम। (कार्तिकेयानुप्रेक्षा) ३९९ गाथा। पृष्ठ चाहे जो हो।

जो जीवरक्खणपरो, गमणागमणादिसव्वकज्जेसु।
तणछेदं पि ण इच्छदि, संजमधममो हवे तस्स॥३९९॥

आचार्य महाराज ने संयम की बहुत सूक्ष्मता का वर्णन किया है। जैसा गुजराती में चले ऐसा ....

अन्वयार्थ :- जो मुनि जीवों की रक्षा में तत्पर होता हुआ... पर की रक्षा कर सकते हैं, ऐसा नहीं। परन्तु पर को दुःख न देना, ऐसा विकल्प नहीं करना—दुःख देने का विकल्प नहीं करना, उसका नाम छहकाय के जीव की रक्षा कहने में आता है। और '**गमणागमणादिसव्वकज्जेसु**' जाना-आना हो, **गमन-आगमन आदि सब कार्यों में...** '**तणछेदं पि ण इच्छदि**' देखा! यहाँ आचार्य (कहते हैं), धर्मात्मा संयमी मुनि इसको कहते हैं कि जिसको तृण छेदन करने की भी वृत्ति नहीं। तृण छेदन कर सकते नहीं, वह तो पहले अभिप्राय में गया। समझ में आया? एक तिनके के दो टुकड़े भी कर सके, ऐसी

आत्मा में शक्ति नहीं है। तृण के टुकड़े नहीं कर सकता ? छिलके का। ये सब काम करते हैं न ? रोटी का टुकड़ा करता है, दाल-भात लेता है, ऐसा करता है। ऐ सेठ! गजब बात है!

यह शब्द तीन जगह खोजा। श्रीमद् में आता है न ? श्रीमद् में दो जगह आता है। इसमें से ढूँढ़ा। श्रीमद् की शैली अमुक शैली से बात करते हैं।... है न ? स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा पढ़ा है। कार्तिकेयानुप्रेक्षा उनके हाथ आया है। फिर लिखते हैं, देखो! १९२ पृष्ठ पर है। एक तिनके के दो टुकड़े करने की हमारे में शक्ति नहीं है। तणखला समझे तिनका, तिनका। वह बात श्रद्धा की है। एक तिनके के दो टुकड़े करने की शक्ति भी हमारे में नहीं है। ऐई!

मुमुक्षु : बाहर में।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर में है क्या ? आत्मा में एक तिनके के दो टुकड़े करने की शक्ति है ही नहीं। वह तो परचीज़ है। आत्मा एक तिनके के दो टुकड़े कर सकता नहीं। वह तो जड़ की पर्याय है। शोभालालजी! अभी तक तो दोनों सेठ ने किया न ? वह एक बात है और दूसरी बात है। २३४ पृष्ठ पर। वह मैं खोज रहा था। क्या (कहते हैं) ? यहाँ चलती है, वह बात है। एक बार एक तिनके के दो टुकड़े करने की क्रिया करने की शक्ति भी उपशम होगी, तब ईश्वरइच्छा होगी वह होगा। क्या कहते हैं उसमें ? पहले ऐसा कहा कि तिनके के दो टुकड़े नहीं कर सकते। फिर आया कि तिनके के दो टुकड़े कर सकते तो नहीं, परन्तु जो वृत्ति है, करने की वृत्ति है, वह भी उपशम को प्राप्त हो, उसका नाम संयम है।

फिर से कहते हैं। एक तिनके के दो टुकड़े तो कर सकता नहीं। तीन काल-तीन लोक में कोई प्राणी। यह बात तो अभिप्राय की हुई। अब संयम की-स्थिरता की बात है। एक बार एक तिनके के दो टुकड़े करने की शक्ति भी उपशम हो... देखो! क्या कहते हैं ? एक तिनके के दो टुकड़े करने की वृत्ति, इच्छा भी उपशम को प्राप्त हो। तिनके के टुकड़े कर सकता नहीं, परन्तु वृत्ति उठे कि ऐसा करूँ, अस्थिरता भी उपशम हो, तब बननेवाला होगा बनेगा। ईश्वरइच्छा अनुसार बनेगा।

मुमुक्षु : उपशम को प्राप्त हो माने ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ... वृत्ति का छेद हो जाये। तिनके के दो टुकड़े करने की शक्ति

तो है नहीं, कर सकते तो हैं नहीं, परन्तु तिनके के दो टुकड़े करने की वृत्ति उठती है, वह भी शान्त हो, तब आत्मा की उपशम संयमदशा प्रगट होती है।

फिर से, उपशम अर्थात् ठरना, शान्त होना। इतनी वृति भी नाश हो जाये। तिनके का दो टुकड़े करने की वृत्ति है, वृत्ति अर्थात् इच्छा, कर सकता नहीं, वह तो पहले कहा, परन्तु वृत्ति उठती है तो वह वृत्ति भी उपशम हो जाये, स्वरूप के भान अनुभवसहित, उसका नाम संयम और उसका नाम चारित्र कहने में आता है। पहले तो वह कहा, तीन बोल आये हैं। एक और बोल कार्तिकेयानुप्रेक्षा में आता है न? भाई! पीछे है।

सम्यग्दृष्टि जब तक अपने में कम शक्ति है और केवलज्ञान नहीं है तो अपनी पर्याय में तिनके समान मानते हैं। तिनके समान मानते हैं। उसमें है परन्तु हाथ नहीं आया। ३१३? देखो! स्वामी कार्तिकेय की ३१३वीं गाथा है।

जो ण य कुव्वदि गव्वं, पुत्त-कलत्ताइसव्वअत्थेसु।
उवसमभावे भावदि, अप्पाणं मुणदि तिणमित्तं॥३१३॥

समझ में आया? यह तो तृण शब्द में से ख्याल आया। एक तो तृणमात्र की वृत्ति उठती है, तृणमात्र का छेद तो आत्मा कर सकता नहीं, टुकड़ा कर सकता नहीं। ऐ... पोपटभाई! तो टाईल्स-बाईल्स का क्या कर सकता है? सोनगढ़ में ऐसा नहीं, सेठ कहते हैं न। समझ में आया? प्रवचनसार की गाथा कही थी न? भाई! शुभकर्म और शुभफल। वह बात भाई को याद आयी थी कि प्रवचनसार में कहा है। है प्रवचनसार में। भाई ने कल पूछा था।

यहाँ तो इतना बोल लेना है कि ओहो! आचार्य ने एक तृणमात्र के अर्थ में क्या लिया? कि तृणमात्र का छेद-दो टुकड़े तो कर सकता नहीं। वह तो तीन काल में अज्ञानी या ज्ञानी कोई कर सकता नहीं। बीड़ी बनाना आत्मा नहीं कर सकता, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : पर में जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर में जाता है? चीज़ को भेजते हैं न? बन्दर को ये चीज़ वहाँ ले जाओ। वह तो कहते हैं कि वृत्ति होती है, परन्तु उससे वह काम नहीं होता। यहाँ तो कहते हैं कि वह वृत्ति भी उपशम हो जाओ। पर का तो हम नहीं कर सकते, परन्तु ऐसी

जो वृत्ति उठती है, वह शान्त हो जाओ, नाश हो जाओ। हम तो आत्मा ज्ञाता-दृष्टा आनन्द में हैं। आहाहा! भैया! ऐसी बात है। पैसे-बैसे कमा नहीं सकते, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : पर में सबमें यही बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर की कोई भी चीज़ का दो काम या टुकड़ा, कार्य आदि कर सकता नहीं। एक बात। वह तो सम्यग्दर्शन में गया। दूसरी बात, उसका काम करने की जो वृत्ति उठती है, वृत्ति-इच्छा, वह इच्छा भी शान्त हो जाओ। मेरे में वह इच्छा नहीं। वीतरागभाव हमारा प्रगट हो, इच्छा शान्त हो जाओ, उसका नाम संयम और शान्ति है। ३१३ कार्तिकेयानुप्रेक्षा में है। वहाँ है न? तुमको दिया है। ३१३ है। टुकड़ा नहीं कर सकता, वह श्रीमद् में है।

कहते हैं न, १९२ (पृष्ठ) पर वह आया था कि एक तिनके के दो टुकड़े करने की शक्ति भी हमारी नहीं है। हमारे में दो टुकड़े करने की, सब्जी के दो टुकड़े करने की, रोटी के दो टुकड़े करने की, शीशपेन उठकर लिखने की हमारे में शक्ति नहीं है। वह तो श्रद्धा और ज्ञान की बात कही। प्रकाशदासजी! पहले सुना था? करो... करो... करो। क्या करो? भगवान! तेरी चीज़ क्या है? तेरी चीज़ में तिनके के दो टुकड़े करना, ऐसी शक्ति तेरे में है ही नहीं क्योंकि पर का कार्य करने की शक्ति है? अपना कार्य करने की शक्ति है।

मुमुक्षु : बाहर में कुछ कर ही नहीं सकता।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर ही नहीं सकता तीन काल में। हाथ ऐसा, ऊंगली ऐसी आत्मा कर सकता ही नहीं तीन काल में। वह तो उसके कारण से होता है, जड़ के कारण से। आहाहा!

यहाँ तो दूसरी बात ली। यहाँ जो कहना है वह, यहाँ जो आचार्य को कहना है वह यहाँ लिया है कि एकबार तिनके के दो टुकड़े करने की क्रिया करने की, वृत्ति उठे कि मैं (ऐसा करूँ), वह वृत्ति भी उपशम हो, ईश्वरइच्छा होगी, वह होगा।

मुमुक्षु : कौन से शास्त्र में है?

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रीमद् राजचन्द्र में है।

यहाँ अपने वह आया, देखो! '**तणछेदं पि ण इच्छदि**' वह वृत्ति की बात है। तृण

का छेद-टुकड़ा कर सकता नहीं, वह तो श्रद्धा की बात हुई। समझ में आया ? श्रद्धा में ज्ञानी को-समकिती को एक तिनके का दो टुकड़ा, तिल का छिलका, छिलका होता है न ? उस छिलके के दो टुकड़े कर सके ऐसी आत्मा में ताकत नहीं है। तिल में क्या ताकत लगती है ? वह तो उसके कारण से होता है। हों ! और अपने में जो कोई तिनका छेदने की वृत्ति-इच्छा उठती है, वह '**तणछेदं पि ण इच्छदि**'। आचार्य महाराज स्वामी कार्तिकेय कहते हैं कि हम सम्यग्दृष्टि तो हैं, सम्यग्ज्ञानी तो हैं, पर का काम कर सकते हैं, ऐसा तो हम मानते नहीं। किसी को उपदेश दे सकते हैं, किसी का भला कर सकते हैं, किसी की मदद कर सकते है, ऐसी शक्ति तो हमारे में है ही नहीं। समझ में आया ? इसके अतिरिक्त संयम किसको कहते हैं ? '**तणछेदं पि ण इच्छदि**' तिनके को छेदना कभी नहीं चाहता है। वह इच्छामात्र नाश हो जाओ। दूसरे काम तो क्या, परन्तु तिनके का छेद करने की वृत्ति उठती है, (वह भी) शान्त हो जाओ, शान्त हो जाओ। हमें वह नहीं हो। आहाहा ! भगवानजीभाई ! यह सब काम करते हैं न ? ये भगवानजीभाई वहाँ थाणा में करते हैं, ये सागर में करते हैं।

मुमुक्षु : राग करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं कि जो राग की वृत्ति उठती है, दूसरे काम की तो नहीं, लड़ाई की, भोग की तो नहीं, परन्तु तिनके के दो टुकड़े करने की वृत्ति उठती है, वह शान्त हो जाओ। हम तो वीतरागस्वभाव है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ... सराग संयम हुआ ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बाद में आयेगा। वह छह काय में आया।

मुमुक्षु : कषाय की बात है न। समयसार में वेद्यवेदकभाव आया है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दूसरी (बात है)। वह तो इच्छा होती नहीं। यहाँ तो इच्छा होती है, वह शान्त हो जाओ, क्योंकि इच्छा असंयमभाव है। इच्छा मात्र असंयमभाव है। 'क्या ईच्छत खोवत सबे, है इच्छा दुःख मूल।' जयकुमारजी ! आहाहा ! भगवान ! देखो न ! आचार्य ने गजब काम किया है ! दिगम्बर आचार्यों ने... ओहोहो ! ऐसी बात सुनने नहीं मिले, ऐसी बात है। ऐ... पोपटभाई ! मुझे तो तिनके का याद आया था। दो पत्र निकले।

लिखा होता है न। ढूँढ़ने गये थे, तिनके के दो टुकड़े नहीं कर सकता, वह। तो निकले दो। बराबर बात है। ऐसी उसकी—श्रीमद् की सूक्ष्म बुद्धि थी। उस समय उसका क्षयोपशम इतना था और आत्मा का निर्विकल्प आराधन भी बहुत था। समझ में आया? लोग बाहर से देखे, उसे समझ में नहीं आता। श्वेताम्बर दिगम्बर की कुछ स्पष्ट बात बाहर आयी नहीं। परन्तु उसके आराधन में तो बराबर थे। आराधन करके वह तो चले गये। समझ में आया? ये देखो न एक बात।

१९२ पृष्ठ पर उसने वह कहा। तृण छेदन करने की शक्ति भी हमारी नहीं है। उसका अर्थ पर का टुकड़ा भी नहीं कर सकते, ऐसा हमारा आत्मा का स्वभाव है। दूसरा, ऐसे तिनके के (दो टुकड़े) करने की वृत्ति उठती है, भले कर नहीं सकता, मैं ऐसा करूँ, ऐसी वृत्ति, वह वृत्ति शान्त हो जाओ। वह ये संयम की बात है। सेठ! ओहो!

तृण का छेदमात्र भी नहीं चाहता है, नहीं करता है, उस मुनि के संयमधर्म होता है। लो। **छह प्रकार का कहा गया है-इन्द्रिय, मन का वश करना और छह काय के जीवों की रखा करना। वह तो संयमभाव सो यहाँ मुनि के आहार विहार करने में गमन आगमन आदि का काम पड़ता है तो उन कार्यों में ऐसे परिणाम रहते हैं कि मैं तृणमात्र का भी छेद न करूँ,...** आहाहा! इतना संयम अपने में नमन हो गया है। स्थिर... स्थिर... स्थिर। समझ में आया? और **मेरे निमित्त से किसी का सहित न हो, ऐसे यत्नरूप प्रवर्तता है, जीवदया में ही तत्पर रहता है।** लो, इतना लिया। बाकी बात विशेष करते हैं।

अब अपने चलता है वह। क्या चलता है? ५५ गाथा, अष्टपाहुड़। समझ में आया? द्रव्य... द्रव्य बहुत याद आता है। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं। ५५ गाथा का उपोद्घात। **आगे कहते हैं कि जैसे परद्रव्य में रागभाव होता है, वैसे मोक्ष के निमित्त भी राग हो तो वह राग भी आस्रव का कारण है,...** आहाहा! जैसे परद्रव्य के आश्रय से विकल्प उठता है, राग वह आस्रव है परन्तु मोक्ष की इच्छा, मोक्ष भी एक पर्याय है और एक न्याय से परपदार्थ है, उसकी भी इच्छा आस्रव का कारण है। आहाहा! समझ में आया? कहाँ ले जाते हैं? देखो! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य मोक्षपाहुड़ की ५५ गाथा में यह कहते हैं। आहा!

भगवान! तुझे मोक्ष के निमित्त भी राग हो तो वह भी आस्रव का कारण है। ऐ...!

प्रकाशदासजी ! महाव्रत का विकल्प तो आस्रव है और मेरा मोक्ष हो, ऐसी इच्छा वह भी आस्रव है। आहाहा ! समझ में आया ?

आसवहेदू य तहा भावं मोक्खस्स कारणं हवदि।
सो तेण दु अण्णाणी आदसहावा दु विवरीदु।।५५।।

अर्थ :- जैसे परद्रव्य में राग को कर्मबन्ध का कारण पहिले कहा... देखो ! आहा ! अपने द्रव्य की श्रद्धा, ज्ञान और भावना के सिवाय कोई भी परद्रव्य त्रिलोकनाथ तीर्थंकर हो, उसका आश्रय करना (बन्ध का कारण है) । उसकी अनन्त बार पूजा की। भगवान के समवसरण में अननत बार मणिरत्न का दीपक, हीरे का थाल, कल्पवृक्ष के फूल (लेकर) जय भगवान (किया) । समझ में आया ? परन्तु वह तो राग था, पुण्य था, धर्म नहीं। समझ में आया ? भैया ! आपका कल प्रश्न था न ? ४९ भव का। कहते हैं कि सम्मेदशिखर का दर्शन (तो ठीक), साक्षात् समवसरण में भगवान का दर्शन अनन्त बार किया। परमात्मप्रकाश में लिया है, भवेभवे पूजियो। भाई आता है न ? भव-भव में भगवान को पूजा। भगवान तो परद्रव्य है। उसकी भक्ति, उसकी स्तवना, उसका आश्रय तो सब राग का कारण है। भव के अभाव का कारण वह चीज़ है नहीं। आहाहा ! गजब बात है ! वीतराग जैनदर्शन परमात्मा सर्वज्ञ ने कहा, हों ! आहा ! अलौकिक मार्ग है, बापू ! साधारण कायर का काम नहीं। कायर तो सुनकर अन्दर से काँप उठे। अरे ! ऐ... हिम्मतभाई ! ये मन्दिर का आश्रय करे तो पुण्यभाव होता है, ऐसा कहते हैं। संवर-बंवर धर्म नहीं। आहाहा ! हो, अशुभ से बचने को भाव होता है, परन्तु है बन्ध का कारण। आहाहा !

तीन लोक के नाथ समवसरण में साक्षात् केवलज्ञानी विराजते हों। ३४ अतिशय सहित। गणधरों, सिंह और बाघ, जंगल में से सिंह और बाघ समवसरण में सुनने को आते थे। वहाँ गया और आरती उतारी। हीरे का थाल, मणिरत्न का दीपक और कल्पवृक्ष का फूल। जय प्रभु, जय नारायण... जय नारायण (किया) । जय जय नाथ परमगुरु हो। आता है, यह बोलते हैं। श्रीचन्दजी बहुत बोलते हैं। अकेले जब हो तब ... शुभभाव होता है, दूसरी बात है। वह वह क्रिया होती है क्रिया के कारण से। वह पुद्गल की क्रिया ऐसे होती है, आत्मा से नहीं। वह तो आया कि तिनके का दो टुकड़ा कर सकते नहीं। ... बजा सकते नहीं, ऐसा कर सकते हैं, ऐसा तीन काल में नहीं है। मात्र वृत्ति उठती है शुभभाव।

तीन लोक के नाथ समवसरण में विराजते हैं, उसकी भक्ति, उसकी स्तुति, उसकी सेवा, उसका श्रवण किया। अनन्त बार! एक भव नहीं घटा। आहाहा! तो सम्मेदशिखर के दर्शन से ४९ भव (ही) होंगे? किसी ने गप्प लगाया है। समझ में आया? यहाँ तो मार्ग है वैसा होगा। गप्प समझे? क्या कहते हैं? गप्प कहते हैं न? गप्प मारा है। वीतराग की वाणी ऐसी नहीं। वीतराग की वाणी—जिनवाणी वीतरागभाव का पोषण करती है। अपना स्वद्रव्य वीतरागभाव से भरा है, उसका आश्रय करने से ही भव का अभाव होता है। बाकी तीन लोक के नाथ तीर्थंकर का भी आश्रय करने से भव का अभाव होता नहीं। बड़ी कठिन बात। देखो!

यहाँ कहते हैं, **जैसे परद्रव्य में राग को कर्मबन्ध का कारण पहिले कहा, वैसे ही रागभाव यदि मोक्ष के निमित्त भी हो तो आस्रव का ही कारण है,...** आहाहा! मोक्ष भी एक पर्याय है न? उसकी इच्छा हो कि मोक्ष मुझे हो, वह इच्छा आस्रव का, बन्ध का कारण है। आहाहा! मोक्ष की इच्छा नहीं। क्या इच्छा से मोक्ष मिलता है? भगवान आत्मा मोक्षस्वरूप है, उसमें एकाग्र होकर मोक्ष होता है। कोई इच्छा हुई मोक्ष की, वह भी आस्रव का, बन्ध का कारण है। वीतराग ऐसा फरमावे, अज्ञानी ऐसा फरमा सकता नहीं। समझ में आया? शोभालालजी! शोभालालजी को बहुत उत्साह है, हों! आपसे भी इसका उत्साह बढ़ गया है। समझ में आया?

मुमुक्षु : वह भी हो जायेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : धीरे-धीरे होगा। मैं तो ओलम्भा (ताना) देता हूँ न। ताराचन्दजी थे वे कहते थे, ताराचन्दजी नहीं थे? शोभालालजी को उत्साह है। यह पहले समझे तो सही कि क्या चीज़ है? यह समझे बिना तेरा एक कदम भी सच्चा होगा नहीं। धूल-धाणी करे क्या? व्रत करे, तप करे और मर जाये, सूख जाये उसमें क्या है?

स्वद्रव्य भगवान आत्मा की एकाग्रता की भावना, वही मोक्ष का कारण है। बाकी परद्रव्य मोक्षपर्याय भी एक न्याय से तो अपने द्रव्य की अपेक्षा से पर्याय को परपदार्थ-परद्रव्य कहने में आया है न? ऐ... अमरचन्दभाई! आहा! ऐ... जयकुमारजी! आहाहा! 'ऐसा मार्ग वीतराग का कहा श्री भगवान'। समवसरण के मध्य में सीमन्धर भगवान। परमात्मा त्रिलोकनाथ महाविदेहक्षेत्र में यह कहते हैं। वर्तमान मौजूद हैं। अहो! कहते हैं कि

हमारा आश्रय करने से भी तेरे को तो आस्रव होता है, नाथ! तेरा आश्रय करने से तुझे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र होता है। प्रकाशदासजी! यहाँ किसी का पक्षपात है कि उसको लगाओ। त्रिलोकनाथ भगवान परमात्मा है, उसका आश्रय करो तो संसार का नाश होगा। नहीं। उस ओर का भक्ति आदि का भाव है, वह तो विकल्प है, राग है, शुभ है। हो, दूसरी बात। परन्तु उससे भव का अभाव हो और समकित हो उसके आश्रय से, और उसके आश्रय से सम्यग्ज्ञान हो, बिल्कुल नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभभाव होता है, शुभभाव होता है, बन्ध का कारण। भगवान के नाम का लाभ मन्त्र जपे, लाख करोड़ जपे, अनन्त जपे, सब पुण्य और आस्रव है। उसमें धर्म माने तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ है।

मुमुक्षु : अनुक्रम से उससे मोक्ष होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये तो लखे ने। वह तो सम्यग्दर्शन है, शुभभाव आया है तो अशुभ छोड़कर आया और शुभ छोड़कर शुद्ध होगा ऐसा। उससे क्या होता है? धूल। पर से बिल्कुल किंचित् भी लाभ माने वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। आचार्य तो वहाँ तक कहते हैं कि अभव्य जैसा है। समझ में आया? ऐसी बात है। यह तो वीतरागमार्ग है। यह कोई इच्छा और राग का मार्ग नहीं है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : भैया! वह तो दु:ख है। सुख है कहाँ? धूल में सुख है? ये सब पैसेवाले बैठे हैं, देखो! ये रहे। दो वहाँ बैठे हैं, दो यहाँ बैठे हैं। देखो! चालीस-चालीस, पचास-पचास, साठ-साठ, सत्तर-सत्तर लाख हैं। पहाड़ा गिनने का धर्म नहीं है। धूल में भी सुख नहीं है। शरीर में सुख है? इस मिट्टी में? अभी एक विचार आया था। जवान शरीर हो, जवान। ऐसे चले। चलने की गति तेरी नहीं, भगवान! वह तो जड़ की है। आहाहा! जवान शरीर हो, बीस वर्ष का जवान। समझे न? रोग आया न हो। ऐसा शरीर ... मेरा अवयव देखो। परन्तु अवयव तेरा नहीं, वह तो जड़ का है। तुम क्या बताना चाहते हो? कि मैं ऐसे जवानीवाला हूँ, मैं ऐसी जवानीवाला हूँ। तुम जवानीवाले हो? जवानी तो जड़ की

है, शरीर की है। समझ में आया? ऐई! शोभालालजी! यह तो अभी थोड़ा विचार आया था। जवान शरीर हो। कोई रोग उत्पन्न नहीं हुआ हो। फुटड़ी जवानी फटती हो। जड़ की, हों! मिट्टी की, धूल की। क्या है? वह क्रिया तेरी नहीं। वह क्रिया तेरी नहीं और उस क्रिया में तुम नहीं। आहा! अरे! जहाँ तुम हो, वहाँ दूसरी चीज़ है। ऐसे बाहर की चीज़ से भी अपना अधिकपना बताना, वह मूढ़ है, ऐसा कहते हैं। ऐ... भीखाभाई! यहाँ तो जो है, वह आयेगा; दूसरा कुछ नहीं आयेगा। आहाहा!

प्रभु! तुम किसको लेकर तेरी अधिकता मानता है? हें! बड़ा हमारा शरीर, सुन्दर शरीर, आँख ऐसी, शरीर ऐसा, हाथ-पैर ऐसा, केले के स्तम्भ जैसा। शास्त्र में सब आता है। केले के स्तम्भ जैसे पैर। हाथ-कोमल लता जैसे हाथ। गरुड़ जैसा नाक, हिरण जैसी आँख, कुण्डल जैसे कान, मुख चन्द्रमा के जैसा। धूल है, वह तो मिट्टी है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह तो आया नहीं? तिनके का दो टुकड़ा (नहीं कर सकता)। वह तेरी चीज़ नहीं। आहा! भगवान! क्या है? ऐ... नटु! नटुभाई वहाँ हमारी दुकान में काम करते थे। कर्ता-हर्ता थे। होशियार कहलाता है। शरीर निरोगी। तीनों में से उसका शरीर अच्छा। बड़ा दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह लाख का काम। यहाँ कहते हैं, किसी के ध्यान रखने से कुछ होता नहीं। ऐ... नटुभाई! ऐ.. छोटाभाई! आहाहा!

भगवान! तेरे में चीज़ है, वह बताना चाहे तब तो यथार्थ है। परन्तु तेरे में जो चीज़ नहीं है और उससे तू बताना चाहता है कि मैं उसमें हूँ और वह चीज़ मेरी है। आहाहा! भगवान! क्या कहे? तेरी शान्ति का खून होता है। समझ में आया? ओहोहो! देखो न! आज संयम अधिकार में भी वह तिनके का आया। और इस अधिकार में भी मोक्ष की इच्छा करना, वह भी आस्रव है। गजब बात है न! दिगम्बर सन्त मुनि सनातन केवलज्ञानी परमात्मा ने जो कहा, वह परम्परा से चला आता है। उसमें थोड़ी भी गड़बड़ी चलती नहीं। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, '**मोक्खस्स कारणं आसवहेदू**' मोक्ष का कारण शब्द है, उसका अर्थ ऐसा किया। टीका में ऐसा है। मोक्ष निमित्त हो तो भी आस्रव का कारण है। मोक्ष के कारण

भी राग हो, वृत्ति हो कि मोक्ष हो तो ठीक, मेरी पूर्ण पर्याय प्रगट हो, (वह तो) आस्रव है, राग है। आहाहा! **कर्म का बन्ध ही करता है, इस कारण से...** जिस भाव से बन्ध हो, उस भाव से भव का अभाव हो? समझ में आया? भगवान! तेरा मार्ग अलौकिक है। तेरा स्वरूप आनन्द और शान्त से भरा है। उसका आश्रय करते हैं तो सम्यग्दर्शन होता है, उसका आश्रय करते हैं तो सम्यग्ज्ञान होता है, उसमें स्थिर होते हैं तो चारित्र होता है, उसमें स्थिर होते हैं तो शुक्लध्यान होता है और उसमें स्थिर होते हैं तो केवलज्ञान होता है। बाकी बाह्य के, विकल्प के और पर्याय के आश्रय से भी लाभ होता नहीं। आहा! यहाँ यह कहते हैं, देखो तो सही! वाह...! आचार्य की भाषा सादी है परन्तु अन्दर भाव (गहरे हैं)। तेरी दृष्टि द्रव्य पर होनी चाहिए, ऐसा कहते हैं।

मोक्ष को परद्रव्य की तरह इष्ट मानकर... देखो! मोक्ष को भी परद्रव्य की तरह इष्ट मानकर। जैसे शरीर इष्ट माने, स्त्री इष्ट माने, पैसा इष्ट माने ऐसे मोक्ष को भी **परद्रव्य की तरह इष्ट मानकर वैसे ही रागभाव करता है तो वह जीव मुनि भी अज्ञानी है...** देखो! यहाँ तो अज्ञानी ले लिया। आहाहा!

मुमुक्षु : अज्ञानी की व्याख्या आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : है तो ज्ञानी बनाने को। परन्तु अज्ञानी कैसा होता है, उसका साथ में वर्णन करते हैं। मोक्ष की इच्छा भी मुझे हितकर है, ऐसा माने तो वह मुनि मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। आहाहा! अज्ञानी शब्द है न मूल में? अज्ञानी है। '**सो तेण दु अण्णाणी**'। मूढ़ है, बराबर है। वह तो एक ही है।

अज्ञानी है, वह कैसा है? **आत्मस्वभाव से विपरीत है,...** आहाहा! भगवान आत्मा का तो ज्ञाता-दृष्टा, आनन्द और वीतरागस्वभाव है। उसके अतिरिक्त मोक्ष की इच्छा में भी लाभ है, ऐसा माने तो मुनि भी अज्ञानी मूढ़ मिथ्यादृष्टि हो जाता है। आहाहा! है? प्रकाशदासजी! पुस्तक नहीं है तुम्हारे पास। है? शब्द है। है न? समझ में आया?

यहाँ तो परमात्मा सन्त कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा फरमाते हैं, प्रभु! तेरा स्वभाव पवित्र और आनन्द है, उसकी दृष्टि, उसका ज्ञान और उसमें लीनता, वही मोक्ष का मार्ग है। यह मोक्षपाहुड़ चलता है न। और इसके सिवा मोक्ष की पर्याय भी इष्ट मानकर राग करे, उसे इष्ट मानकर राग करे तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! वाह! कठिन काम। साधारण प्राणी को तो

'वचनामृत वीतराग के परम शान्तरस मूल, औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।' ऐसा होता है ? ऐसा होता है ? एकान्त है। सुन न! एकान्त या फेकान्त तेरे घर पर रहा। समझ में आया ? भगवान आत्मा अपने द्रव्य की रुचि छोड़कर मोक्ष की पर्याय की इच्छा हुई, उसमें भी रुचि कर ले (तो वह) मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ?

आत्मस्वभाव से विपरीत है, उसने आत्मस्वभाव को नहीं जाना है। देखो! मोक्ष की इच्छा में प्रेम है, रुचि है तो वह तो आस्रव है। तो आस्रव में प्रेम हुआ। तो आत्मा का स्वभाव क्या है, उसने जाना नहीं। आहाहा! लोग शास्त्र का स्वाध्याय नहीं करते हैं। अपनी दृष्टि से पढ़े। उसमें ऐसा है, उसमें ऐसा है। देखो! शुभभाव से परम्परा मोक्ष कहा है। परन्तु किसकी बात किस अपेक्षा से कही है, सुन तो सही। समझ में आया ?

भावार्थ :- मोक्ष तो सर्व कर्म से रहित अपना ही स्वभाव है,... मोक्ष तो विकल्प से रहित अपना निर्मल पूर्ण ज्ञानस्वभाव पूर्ण होना, वह मोक्ष है। **अपने को सब कर्मों से रहित होना है; इसलिए यह भी राग भाव ज्ञानी के नहीं होता है,...** लो देखो! आहा! **यदि चारित्रमोह का उदयरूप राग हो तो उस राग को भी बन्ध का कारण जानकर रोग के समान छोड़ना चाहे...** इच्छा हो तो भी उसे रोग समान जानकर छोड़ना चाहे। उससे लाभ है, ऐसा माने नहीं। पण्डित जयचन्द्र ने भी ठीक अर्थ किया है। **राग को भी बन्ध का कारण जानकर रोग के समान छोड़ना चाहे तो वह ज्ञानी है ही,...** राग तो चारित्रमोह के कारण से आता है। परन्तु उसमें हितबुद्धि हो जाये और आस्रव से मुझे लाभ-मोक्ष होगा, (तो) मूढ़ होगा। ज्ञानी को राग आता है परन्तु राग को रोगवत जानते हैं। आहाहा! ऐ... चन्द्रकान्तजी! हिन्दुस्तान में सबको ही लगाते हैं न ? अपने यहाँ भाई कहते हैं। आहाहा! इसमें कहाँ पुत्र और पुत्री रहा ? आहाहा!

और इस रागभाव को भला समझकर प्राप्त करता है तो अज्ञानी है। मोक्ष की इच्छा को भी भली जाने (तो) मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। आहाहा! **आत्मा का स्वभाव सब रागादिकों से रहित है, इसको इसने नहीं जाना,...** भगवान आत्मा का स्वभाव तो राग और इच्छा से रहित है। तो तूने राग को भला जाना तो आत्मा का स्वभाव भला जाना नहीं। आहाहा! ऐसे **रागभाव को मोक्ष का कारण और अच्छा जानकर करते हैं, उसका निषेध है।** राग का भी निषेध और भला जाने, उसका भी निषेध-दोनों का निषेध।

गाथा-५६

आगे कहते हैं कि जो कर्ममात्र से ही सिद्धि मानता है, उसने आत्मस्वभाव को नहीं जाना है, वह अज्ञानी है, जिनमत से प्रतिकूल है –

जो कम्मजादमइओ सहावणाणस्स खंडदूसयरो।
सो तेण दु अण्णाणी जिणसासणदूसगो भणिदो।।५६।।

य: कर्मजातमतिक: स्वभावज्ञानस्य खंडदूषणकर:।
स: तेन तु अज्ञानी जिनशासनदूषक: भणित:।।५६।।

कर्मज मति जो खण्ड–दूषण–कर स्वभाविक ज्ञान का।
उससे हुआ अज्ञानि जिन–शासन का दूषक वह कहा।।५६।।

अर्थ – जिसकी बुद्धि कर्म ही में उत्पन्न होती है, ऐसा पुरुष स्वभावज्ञान जो केवलज्ञान उसको खण्डरूप दूषण करनेवाला है, इन्द्रियज्ञान खण्ड–खण्डरूप है, अपने–अपने विषय को जानता है जो जीव इतना मात्र ही ज्ञान को मानता है, इस कारण से ऐसा माननेवाला अज्ञानी है, जिनमत को दूषित करता है। (अपने में महादोष उत्पन्न करता है)

भावार्थ – मीमांसक मतवाला कर्मवादी है, सर्वज्ञ को नहीं मानता है, इन्द्रिय ज्ञानमात्र ही ज्ञान को जानता है, केवलज्ञान को नहीं मानता है, इसका यहाँ निषेध किया है, क्योंकि जिनमत में आत्मा का स्वभाव सबको जाननेवाला केवलज्ञानस्वरूप कहा है, परन्तु वह कर्म के निमित्त से आच्छादित होकर इन्द्रियों के द्वारा क्षयोपशम के निमित्त से खण्डरूप हुआ, खण्ड–खण्ड विषयों को जानता है (निज बल द्वारा) कर्मों का नाश होने पर केवलज्ञान प्रगट होता है, तब आत्मा सर्वज्ञ होता है, इस प्रकार मीमांसक मतवाला नहीं मानता है, अत: वह अज्ञानी है, जिनमत से प्रतिकूल है, कर्ममात्र में ही उसकी बुद्धि गत हो रही है, ऐसे कोई और भी मानते हैं, वह ऐसा ही जानना।।५६।।

गाथा-५६ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो कर्ममात्र से ही सिद्धि मानता है, उसने आत्मस्वभाव को नहीं जाना है, वह अज्ञानी है, जिनमत से प्रतिकूल है :-

जो कम्मजादमइओ सहावणाणस्स खंडदूसयरो।
सो तेण दु अण्णाणी जिणसासणदूसगो भणिदो ।।५६।।

जो कर्म अर्थात् रागादि कार्य, रागादि कर्म से **जिसकी बुद्धि कर्म ही में उत्पन्न होती है, ऐसा पुरुष स्वभावज्ञान जो केवलज्ञान उसको खण्डरूप दूषण करनेवाला है...** क्या कहते हैं? जिसने कार्य-राग से लाभ माना, ऐसा जो पुरुष है, वह **स्वभावज्ञान जो केवलज्ञान उसको खण्डरूप दूषण करनेवाला है...** अखण्ड ज्ञान के आधार से, अखण्ड ज्ञानस्वभाव के आधार से आत्मा को केवलज्ञान आदि धर्म होता है, ऐसा न मानकर खण्ड-खण्ड क्रिया-रागादि क्रिया से होता है। **इन्द्रियज्ञान खण्ड-खण्डरूप है, अपने-अपने विषय को जानता है,...** देखो! यहाँ तक ले लिया। इन्द्रियज्ञान जो खण्ड है, उससे भी मेरा मोक्ष होगा, मोक्ष का प्रेम-राग करता है, वह मिथ्यात्व है, (उसको) उड़ाया। यहाँ तो अब इन्द्रियज्ञान खण्ड-खण्ड है, मीमांसक मानते नहीं, परन्तु जैन में भी कोई माने कि इन्द्रियज्ञान जो खण्ड-खण्ड है, वही स्वरूप है और वही क्रिया करने से, खण्ड-खण्ड ज्ञान की क्रिया करने से आत्मा को मुक्ति होगी। वह भी मूढ़ और मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! कठिन बात।

इन्द्रियज्ञान खण्ड-खण्डरूप है, अपने-अपने विषय को जानता है, जो जीव इतना मात्र ही ज्ञान को मानता है... देखो! इतना इन्द्रियज्ञान वर्तमान क्षणिक है, एक-एक विषय को जाने उतना ही मैं आत्मा हूँ, वह कर्म है, उसका नाम अज्ञान का कर्म-कार्य है, उससे मुझे धर्म होगा। आहाहा!

मुमुक्षु : अखण्ड पर दृष्टि हो...

पूज्य गुरुदेवश्री : अखण्ड ज्ञायक पर दृष्टि हो और अखण्ड ज्ञान प्रगट हो, वह मुक्ति का कारण है। इन्द्रिय के ज्ञान से भी मुक्ति का कारण नहीं। इन्द्रियज्ञान को कर्म कहा। समझ में आया?

इन्द्रियज्ञान खण्ड-खण्डरूप है, अपने-अपने विषय को जानता है, जो जीव इतना मात्र ही ज्ञान को मानता है, इस कारण से ऐसा माननेवाला अज्ञानी है, जिनमत को दूषण करता है। इन्द्रियज्ञान से अपने को लाभ होता है, ऐसा माननेवाला जैनदर्शन से विरुद्ध है। समझ में आया? आहाहा! क्या कहते हैं? शास्त्र सुनना और समझना उससे जो ज्ञान होता है, वह इन्द्रियज्ञान है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प है न सब। आहाहा! कठिन बात, भाई!

यहाँ तो कहते हैं कि जो इन्द्रियज्ञान है, ये इन्द्रियज्ञान है, सुनते हैं जो शास्त्र आदि का ज्ञान होता है वह इन्द्रियज्ञान है, वह अतीन्द्रिय ज्ञान नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रियस्वरूप त्रिलोकनाथ अनादि-अनन्त, उसका आश्रय करके जो अतीन्द्रिय ज्ञान उत्पन्न होता है, वह मुक्ति का कारण है। समझ में आया? **ऐसा माननेवाला अज्ञानी है, जिनमत को दूषण करता है।** यहाँ तो फिर कहा है कि मीमांसकमति ऐसा मानता है। परन्तु मीमांसक का अर्थ कोई भी अभिप्राय में इन्द्रियज्ञान से लाभ होता है, ऐसा माननेवाला मीमांसक जैसा मिथ्यादृष्टि है। ओहोहो! निमित्त से धर्म होता नहीं, शुभभाव से धर्म होता नहीं, इन्द्रियज्ञान से धर्म होता नहीं। गजब बात करते हैं न! बात कहाँ ले जाते हैं, देखो! समझ में आया?

केवलज्ञान को मानता नहीं है। अखण्ड एक ज्ञानमूर्ति आत्मा है और उसके आश्रय से केवलज्ञान होता है। अकेला ज्ञानस्वरूप है, खण्ड-खण्ड ज्ञान नहीं। इन्द्रिय से खण्ड-खण्ड ज्ञान होता है, वह आत्मा नहीं। आहाहा! निमित्त तो आत्मा नहीं, तीन लोक के नाथ हो तो भी वह पर है, निमित्त है। वह आत्मा नहीं है कि उससे आत्मा को लाभ हो। और उनकी ओर उत्पन्न हुआ राग भी आत्मा नहीं, वह तो आस्रव है। उनकी ओर से ज्ञान हुआ, वह भी पर है। इन्द्रियज्ञान पर है, बन्ध का कारण है। आहाहा! मोक्ष के कारण का वर्णन करना है न। गजब बात है। आहा! इसका पाचन होना चाहिए, पाचन। समझ में आया?

भाई! तेरे जन्म के अवतार की बात है। आहाहा! जन्म, जरा, मरण वह तो संयोग

से कथन है, हों! जन्म, मरण, जरा। अन्तर में आत्मा से विपरीत मिथ्यात्व आदि की आकुलता, वह दुःख है। कथन तो ऐसे चले न।

जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं रोगाणि मरणाणि य।
अहो दुक्खो हु संसारो जत्थ कीसंति जंतवो॥

ये आता है। उत्तराध्ययन में मृगापुत्र का आता है। उसकी माता जब आज्ञा देती है कि माता! आज्ञा दे। मुझे कहीं चैन नहीं है। ये २२ रानियाँ पद्ममणि जैसी। अभी तूने विवाह किया है। जवान हो। माँ! मुझे कहीं चैन नहीं है। मेरा चैन तो अन्तर में है। फिर गाथा कहते हैं,

जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं रोगाणि मरणाणि य।
अहो दुक्खो हु संसारो जत्थ कीसंति जंतवो॥

... माँ! यह जीव अनादि से आकुलता की घाणी में पिल रहा है। '**अहो सव्वो दुक्खो संसारो**' दुःखी भी आश्चर्यकारी है, कहते हैं। आहाहा! '**अजत्थं कीसंति**' क्लेश पाता है, माता! आज्ञा दे, माँ! हम जीवित ही श्मशान में जायेंगे। आहाहा! यहाँ थोड़ा छोड़ना हो तो दुनिया की कितनी प्रशंसा चाहे। मैंने इतना छोड़ा है, मैंने ऐसा छोड़ा है। धूल छोड़ी है, सुन तो सही। पर का छोड़ना-ग्रहना आत्मा में है कहाँ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ऐ... पोपटभाई! छह-छह लड़के बड़े योद्धा जैसे। रामजीभाई को भी छह और आपको भी छह हैं। कौन रामजीभाई? कामाणी। ऐई! दो-ढाई करोड़, तीन करोड़ रुपये धूल के। गिनती करनी है न, तेरे कहाँ थे? वह तो अजीव होकर रहे हैं। ये पुत्र का आत्मा पर का होकर रहा है, वह तेरा होकर कहाँ रहा है? ... गले पड़नेवाला है। वह आकर थोड़ी देर खड़ा रहा तो मेरे हैं। गले क्यों पड़ता है तू? समझ में आया? कथा में आता है न?

चोर ने चोरी की थी। उसे बचना था। क्या नाम है? वारिषेण। चोर ने वहाँ पोटली डाल दी। क्योंकि पीछे से पकड़ने आये। और चोर ने चोरी की थी। वारिषेण ध्यान में खड़े थे, वहाँ पुलिस आयी। देखो! वारिषेण। राजकुमार था न? श्रेणिक राजा का पुत्र था। परन्तु

बहुत वैरागी। ध्यान में जाता कोई कोईबार... गृहस्थाश्रम में। मुनि नहीं थे। श्मशान में, हों! पीछे से पुलिस पकड़ने आयी। पोटली उसके पास रखी और चोर भाग गया। खबर नहीं पड़ी कि वह चोर था। इसे पकड़ा। आहाहा! फिर देव आये। ऐसा कुछ है न? कथा बहुत याद नहीं है। समझ में आया? फिर तो उसकी प्रशंसा हुई है। अहो! धन्य अवतार राजकुमार! गृहस्थाश्रम में ऐसा तेरा वैराग्य! तुझे झींदा श्मशान में ध्यान करने की भावना। आत्मा में अन्तर ... देव आये। फाँसी की सजा दी थी। देव आये। आहाहा! कथा की बात बहुत ... न्याय दिमाग में याद रह गया हो। वैराग्य... वैराग्य... उसी प्रकार जगत की चीज़ साथ आयी तो गले पडु (कहता है), मेरे हैं।

यहाँ तो परमात्मा त्रिलोकनाथ की बात भगवान कुन्दकुन्दाचार्य जगत के पास प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा! भगवान! जिसने इन्द्रियज्ञान को माना, उसे त्रिकाल ज्ञानस्वरूप अखण्ड है, उसकी मान्यता है नहीं।

भावार्थ :- जिनमत में आत्मा का स्वभाव सबको जाननेवाला केवलज्ञानस्वरूप कहा है। लो। आहाहा! अकेला खण्ड-खण्ड जानना, वह भी कर्म है-अज्ञान का कार्य है; वह आत्मा का स्वभाव नहीं। **सबको जाननेवाला केवलज्ञानस्वरूप कहा है**। त्रिकाल ज्ञान हो, सर्व का जाननेवाला। खण्ड-खण्ड एक-एक विषय को जाने—ऐसा नहीं, वह चीज़ नहीं। ओहो! मोक्षप्राभृत में इन्द्रिय के ज्ञान से भी लाभ माने, वह मूढ़ है यह सिद्ध करते हैं। अकेला केवलज्ञानमय भगवान आत्मा पूर्ण स्वभाव, उसके आश्रय से दृष्टि करे, वह अखण्ड ज्ञान की दृष्टि हुई। वही ३१वीं गाथा में आता है न? '**जो इंदिये जिणित्ता**' में आता है न? भाई! उसमें भाव इन्द्रिय आ गयी। समयसार। भाव इन्द्रिय जितनी है। भाव इन्द्रिय मैं हूँ—ऐसा नहीं। द्रव्य इन्द्रिय तो दूर रही, ये तो जड़ मिट्टी है, परन्तु भाव इन्द्रिय को अपनी माने, उसने खण्ड-खण्ड ज्ञान को अपना माना, ऐसा कहते हैं। आहाहा! आचार्य की शैली चारों ओर से देखो, कोई भी शास्त्र देखो पूर्वापर अविरोध पूरा मण्डप खड़ा है। ऐसी सन्तों की वाणी। समझ में आया?

कहते हैं कि इन्द्रियज्ञान को ही अपना माने, खण्ड-खण्ड को माना उसने अखण्ड आत्मा का ज्ञान माना नहीं। मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! अर्थात् वह इन्द्रियज्ञान जो हुआ, उससे मुझे लाभ होगा, उससे मुझे समकित होगा, (वह) जैनमत से भिन्न है। आहाहा! **वह कर्म**

के निमित्त से आच्छादित होकर इन्द्रियों के द्वारा क्षयोपशम के निमित्त से खण्डरूप हुआ, खण्ड-खण्ड विषयों को जानता है,... देखो! भावइन्द्रिय है तो खण्ड-खण्ड एक-एक विषय को एक इन्द्रिय जाने, वह तो खण्ड-खण्ड जाने, वह कोई आत्मा का स्वभाव नहीं। आहाहा!

कर्मों का नाश होने पर केवलज्ञान प्रगट होता है, तब आत्मा सर्वज्ञ होता है। देखो! खण्ड-खण्ड ज्ञान का नाश करके, अखण्ड का आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है और फिर केवलज्ञान होता है। खण्ड-खण्ड ज्ञान अपना स्वभाव ही नहीं। **इस प्रकार मीमांसक मतवाला नहीं मानता है...** ये तो मीमांसक दृष्टान्त दिया है, हों! जो भावइन्द्रिय से लाभ माने, वह सब मीमांसकमति है। आहा! पुण्य से धर्म माने, शुभभाव से माने, निमित्त से माने वह तो ठीक, परन्तु कहते हैं कि इन्द्रियज्ञान से खण्ड-खण्ड से माने, वह भी मिथ्यादृष्टि मीमांसक जैसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : अतीन्द्रिय ज्ञान...

पूज्य गुरुदेवश्री : अतीन्द्रिय ज्ञान अन्दर जायेगा तो मिलेगा। भैया! अन्दर तेरे पास पड़ा है। पहले कहा न? केवलज्ञान स्वभाव तेरा परिपूर्ण पड़ा है। उसका आश्रय करने से तुझे सम्यग्ज्ञान होता है। बाकी इन्द्रिय से जो ज्ञान होता है, वह ज्ञान यथार्थ नहीं, ऐसा कहते हैं। यह तो वीतरागमार्ग है। लालापेठा करना नहीं है। अच्छा है, अच्छा होगा, अच्छा होगा। धूल भी अच्छा नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : इन्द्रियज्ञान से लाभ...

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता है। इन्द्रियज्ञान हुआ तो उससे मुझे धर्म होगा, उसके कारण मुझे समकित होगा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, दृष्टान्त दिया न। ३१वीं गाथा का दृष्टान्त दिया। समयसार में कहा, '**जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं**' ३१ गाथा। ३१-तीस और एक। समयसार। जो कोई खण्ड-खण्ड इन्द्रिय से हटकर अपना ज्ञानस्वभाव उससे-खण्ड से अधिक-भिन्न है / पृथक् है—ऐसे आत्मा को जाने उसने इन्द्रिय को

जीती, वह समकिती है। समझ में आया? कठिन काम। सत्य की परम्परा टूट गयी, इसलिए लोगों को यह बात सुनकर (ऐसा लगता है) अरे! ये तो एकान्त निकला। अरे! सोनगढ़ से एकान्त निकला। सोनगढ़ का है या भगवान का है? ये क्या कहते हैं? शास्त्र क्या कहता है? आहाहा!

मुमुक्षु : असल साधन छोड़ने जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : असल साधन छोड़के जाते हैं, ठीक है। ऐसा बोलते हैं। वह साधन ही नहीं है। अपने स्वरूप में साधन अखण्ड में है।

मुमुक्षु : कर्तापन छोड़ दो...

पूज्य गुरुदेवश्री : सब है ही नहीं। खण्ड-खण्ड ज्ञान ही अपना स्वरूप नहीं। आहाहा! गजब बात!

मुमुक्षु : वर्तमान में जितने दर्शन हैं..

पूज्य गुरुदेवश्री : है ही नहीं। आहाहा! भगवान! तेरी चीज़ तो अखण्ड आनन्दकन्द ज्ञानस्वरूप है। आहाहा! उसका आश्रय किये बिना कभी सम्यग्दर्शन, ज्ञान होता नहीं। वह बताते हैं। आहाहा! समझ में आया?

वह अज्ञानी है, जिनमत से प्रतिकूल है,... देखो! **कर्ममात्र में ही उसकी बुद्धि गत हो रही है,...** खण्ड-खण्ड ज्ञान भी अज्ञान का एक कर्म है। आहाहा! गजब बात! **ऐसे कोई और भी मानते हैं, वह ऐसा ही जानना।** देखो! मीमांसक तो माने परन्तु ऐसे कोई और भी माने, वह ऐसा ही जानना। ऐसा कहते हैं। जैन में भी रहकर ऐसा माने कि खण्ड-खण्ड ज्ञान से लाभ (होगा), वह भी मीमांसक मत का है, वीतराग के मत का है नहीं। विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-८५, गाथा-५७ से ६०, शुक्रवार, भाद्रशुक्ल ११, दिनांक ११-०९-१९७०

दशलक्षणी पर्व में से।

इहपरलोयसुहाणं, णिरवेक्खो जो करेदि समभावो।
विविहं कायकिलेसं, तवधम्मो णिम्मलो तस्सो॥४००॥

सम्यग्दर्शन के भानसहित, यह बात है। उत्तमतप कहते हैं न? उत्तम। अज्ञान में भी अनन्त बार ऐसा तप किया। छह-छह महीने का उपवास, दो-दो महीने का संल्लेखना तप। उसका कोई फल नहीं। वह तो मिथ्यात्व है। अपना आत्मा आनन्द, ज्ञान, शान्ति आदि स्वभाव सम्पन्न है, ऐसी अन्तर में दृष्टि करके निर्विकल्प सम्यग्दर्शन प्रगट करके उसमें स्थिरता, वह चारित्र है। इससे अतिरिक्त **इसलोक परलोक के सुख की अपेक्षा से रहित होता हुआ सुख दुःख, शत्रु मित्र, तृण कंचन, निन्दा प्रशंसा आदि में राग-द्वेष रहित समभावी...** उसका विशेष स्पष्टीकरण ... **अनेक प्रकार कायक्लेश करता है, उस मुनि के निर्मल तपधर्म होता है।** कायक्लेश तो निमित्त से कथन है। समझ में आया? अन्तर में... देखो!

भावार्थ :- चारित्र के लिये जो उद्यम और उपयोग करता है, सो तप कहा है। भगवान आत्मा में दर्शनशुद्धिपूर्वक चारित्र (अर्थात्) स्वरूप में रमणता, उसमें उद्यम और उपयोग विशेष करते हैं, उसका नाम तप है। समझ में आया? **वह कायक्लेश सहित ही होता है...** निमित्त। शरीर में उपवास आदि हो तो कायक्लेश कहने में आता है। परन्तु अन्दर में स्वरूप का अनुभवपूर्वक चारित्र में उपयोग को उग्रपने लगाना, उसका नाम तप कहते हैं। देखो! **इसलिए आत्मा की विभावपरिणति के संस्कार को मिटाने के लिये...** विभाव मैं नहीं, मैं स्वभाव हूँ—ऐसा अपना अस्तित्व का बोध श्रद्धा-ज्ञान हुआ है। बाद में स्वभाव में रहने को विभावपरिणति का संसार मिटाने को स्वभाव की ओर जोर करते हैं, उसका नाम तप कहने में आता है। तप की व्याख्या कठिन आयी। समझ में आया? **उद्यम करता है।**

अपने शुद्धस्वरूप उपयोग को चारित्र में रोकता है,... देखो! अपने शुद्धस्वरूप जो उपयोग को चारित्र में रोकता है, स्वरूप स्थिरता में रोकता है। क्या कहा, समझ में

आया ? अपना शुद्ध स्वरूप उपयोग, वर्तमान शुद्ध परिणति का उपयोग चारित्र में रोकता है। तप कहना है न ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : गड़बड़ कहाँ छोड़ी है ? राग है, वह उसका घर है। उसको अपना माना है, वह घर है।

मुमुक्षु : उपयोग हटाने के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपयोग हटाने को घर से हट जाते हैं ?

यहाँ तो अन्तर में पहले सम्यग्दर्शन, विकल्प से भी हटकर... पूरा संसार तो दूर रहा, स्त्री-पुत्र तो, शुभराग जो विकल्प से हटकर अपने अनुभव में दर्शन हुआ, सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान (हुआ), उसमें लीनता होती है, वह चारित्र; उस चारित्र में उपयोग को विशेष लगाना, उसका नाम तप है। आहाहा ! सूक्ष्म बात है, सेठ ! उपवास किये, इसलिए हो गयी तपस्या, ऐसा नहीं है।

अपने शुद्धस्वरूप उपयोग को... देखो ! अपने शुद्धस्वरूप वर्तमान परिणति के व्यापार को शुद्धस्वरूप चारित्र में रोकता है। अन्तर स्थिरता में रोकता है, उसका नाम तप कहने में आता है। यह व्याख्या। **बड़े बलपूर्वक रोकता है...** चारित्र का पुरुषार्थ तो है ही। समझ में आया ? दर्शन, ज्ञान, चारित्र का पुरुषार्थ तो है ही। परन्तु शुद्ध परिणाम को बड़े जोर से अन्तर में एकाग्र करते हैं, उसका नाम तप कहने में आता है। आहाहा ! ऐई ! प्रकाशदासजी ! यह क्या है ? अनशन, ऊनोदरी (क्रिया तो) तप हो गया। यहाँ ना कहते हैं। आहाहा !

इसलोक और परलोक की जिसमें इच्छा ही नहीं। समझ में आया ? और अपने स्वरूप की एकाग्रता की उग्रता, चारित्र तो है ही, परन्तु उसमें उग्रता का जो पुरुषार्थ है, चारित्र में शुद्ध उपयोग का परिणति का उग्र पुरुषार्थ है, वह तप है। आहाहा ! तप की व्याख्या भी खबर न हो और ये उपवास किये और लंघन किये, हो गया तप और निर्जरा। तपसा निर्जरा। ऐ... गजराजजी ! कल प्रश्न किया था न ? तोलाराम उसके साथ आये थे न ? तोलाराम को तुमने कहा था न ? करो, प्रश्न करो। तपसा निर्जरा। भैया ! कहा था न ? (संवत) २००९ के वर्ष। १७ वर्ष हुए न ? २००९ के वर्ष। १७ वर्ष हुए। दस और सात।

भाई ! आये थे न वे ? गजराजजी के बड़े भाई तोलाराम। गजराजजी के भाई। ये तो ... तोलाराम (को कहा), पूछो महाराज को तपसा निर्जरा। तपसा निर्जरा का अर्थ क्या ? शोभालालजी ! वह तत्त्वार्थसूत्र में आता है। तपसा निर्जरा आता है या नहीं ? वह तो निमित्त का कथन है। अन्दर में स्वरूप की दृष्टि और स्थिरता में उग्र पुरुषार्थ करना, उसका नाम भगवान तप कहते हैं। उस तप से निर्जरा होती है।

मुमुक्षु : शुभाशुभ इच्छाओं को रोकना...

पूज्य गुरुदेवश्री : रोकना, वह तो नास्ति से हुआ। वह तो नास्ति से। ऐसे नहीं, यहाँ ऐसे नहीं है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : रोकते हैं, वह बात यहाँ कही नहीं। यहाँ तो अपना शुद्ध स्वभाव जो दृष्टि में, ज्ञान में अनुभव में आया, उसमें जो लीनता हुई, वह चारित्र। और चारित्र में शुद्धपरिणति को रोकना, बलपूर्वक-वीर्यपूर्वक जोर करके अन्दर रोकना, उसका नाम तप कहने में आता है। समझ में आया ? बड़ी कठिन तप की व्याख्या। ये दस-दस उपवास करे, दसलक्षणी पर्व के। ये सेठ फिर बाँटे, उपवास किये हो तो। उसे भी लाभ हो और अपने कुछ दान दे तो हमें भी कुछ थोड़ा भाग मिले।

मुमुक्षु : कायक्लेश...

पूज्य गुरुदेवश्री : कायक्लेश तो निमित्त की बात है। अन्दर कायक्लेश हो तो दु:ख है। वह तो तप ही नहीं, वह तो आर्तध्यान है। यहाँ तो कायक्लेश बाह्य में है परन्तु अन्दर में आनन्द की लहर उठती है। जोर से कहा न ? देखो ! भाषा कैसी है ! बहुत अच्छी ली है। अर्थ भी बहुत अच्छा किया है। '**इहपरलोयसुहाणं, णिरवेक्खो**' ऐसे है न ? '**जो करेदि समभावो, तवधम्मो णिम्मलो तस्सो**' यहाँ स्वरूप में स्वरूप के अनुभव में चारित्र जो स्वरूप में स्थिरता प्रगट हुई, उस चारित्र में। चारित्र है, वीतरागचारित्र है। उस चारित्र में कहते हैं शुद्धस्वरूप उपयोग को चारित्र में रोकता है। अस्ति से बात ली है। समझ में आया ? **बड़े बलपूर्वक रोकता है, ऐसा बल करना ही तप है।** स्वरूप की स्थिरता में जोर करके लीन होना, उसका नाम तप कहने में आता है। आहा ! तप की व्याख्या... ऐ... पोपटभाई ! कितने उपवास किये थे ? कभी किये थे ? दो ? ठीक।

मुमुक्षु : यहाँ कायक्लेश सहित लिया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बाह्य में कायक्लेश होता है। ऐसा। शरीर में ऐसा हो, भाव में ऐसा हो तो तप कहने में आता है। समझ में आया? अन्दर में आत्मा का आनन्द का अनुभव हो और चारित्र में लीनता की उग्रता हो तो कायक्लेश बाह्य में हो, वह निमित्त है। अन्दर शुद्ध उपादान की यह क्रिया है। आहा! लोगों को बाह्य चीज़ इतनी गले लगी है न।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन...

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन होने के बाद चारित्र हो और चारित्र के पीछे जोरपूर्वक अन्दर स्थिरता हो, वह तप है।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन हो और अगर कायक्लेश न सहा जाये तो सम्यग्दर्शन ही नष्ट हो जाता है, ऐसा पूज्यपादस्वामी ने कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वह दूसरी बात है। वह बात दूसरी बात है। यहाँ गाथा आयेगी। बाद में आयेगी। वह तो शुभ शीलीया का राग तीव्र हो और स्वरूप का भान न हो, उसको तप नहीं होता, ऐसा कहने में आता है। कायक्लेश तो अनन्त बार किया।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन है, वह कायक्लेश नहीं है, कायक्लेश तो निमित्तमात्र कहने में आया है। काया तो जड़ है। उसको क्लेश क्या? और अन्दर क्लेश हो तो दुःख है, वह तो आर्तध्यान है। समझ में आया? वह तो आर्तध्यान है, पापध्यान है। पुण्य नहीं तो धर्म तो कहाँ से आया? यह तो निमित्त से कथन है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर है, सब खबर है। उसमें ऐसा है। आत्मा के आनन्द में लीन होते हैं, लीन न हो और वीतरागता प्रगट न करो तो सम्यग्दर्शन अकेला रहता है तो उसको चारित्र नहीं होता। ऐसी बात है। अकेला कायक्लेश तो अनन्त बार किया। दो-दो महीने का संथारा किया। सम्यग्दर्शनसहित कायक्लेश नहीं, कायक्लेश तो निमित्त का कथन है। कहा न? तपसा निर्जरा। वह तो निमित्त की बात है। उस समय शरीर में इतना उपवास आदि था। अन्तर में आनन्द का चारित्रधारा उत्पन्न हुई है, उसमें जोरपूर्वक लीन होना,

उसका नाम तप है। सम्यग्दर्शन हो और तप नहीं कर सके, इससे समकित नहीं चला जाता। समझ में आया? समकिती को स्वरूपाचरण होता है। सम्यग्दर्शन में स्वरूपाचरण होता है। अकेला ज्ञान... ज्ञान नहीं। वह बाद में आयेगा। बाद में आयेगा। समझ में आया? अपने इसमें अष्टपाहुड़ में आयेगा। अभी अष्टपाहुड़ में आयेगा।

आत्मा आनन्दस्वरूप का अनुभवपूर्वक स्थिरता हो, आनन्द की उग्रता वेदन हो, उसमें लीनता उग्र पुरुषार्थ करके करे, उसका नाम तप है। अकेला कायक्लेश कायक्लेश न हो और क्षायिक समकित हो, ऐसा भी है। कायक्लेश परवस्तु है, उसके साथ क्या सम्बन्ध है? समझ में आया? समकिती चौथे गुणस्थान में महा संवर-निर्जरा उत्पन्न करते हैं। चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, स्वरूप का आचरण का तीनों अंश वहाँ है। राजमलजी की टीका में बहुत लिया है। तीनों अंश समकितदर्शन में है। परन्तु यहाँ तो चारित्र की रमणता उग्र होती है, उसमें फिर पुरुषार्थ करके, जोर करके अन्तर में लीन होना। कितने ही कहते हैं, जोर क्या करना? ऐसा कोई कहता था। भाई! कोई आया था। जोर क्या करना? ये क्या कहते हैं, जोर क्या करना? ऐसा कोई कहता था। भाई! कोई आया था। जोर क्या करना? ये क्या कहते हैं? जोर का अर्थ स्वरूप में लीनता की उग्रता करना, वह जोर। जोर कोई बाहर में लगाना है?

मुमुक्षु : प्रबल पुरुषार्थ।

पूज्य गुरुदेवश्री : विशेष प्रयत्न। क्या कहते हैं? देखो!

बड़े बलपूर्वक रोकता है... किसमें? चारित्र में। चारित्र तो है। छठे गुणस्थान की दशा तो है, परन्तु बलपूर्वक अन्दर स्थिरता विशेष करते हैं, उसका नाम तप कहने में आता है। तब कायक्लेश को निमित्तरूप से कहने में आता है। **वह बाह्य अभ्यन्तर के भेद से बारह प्रकार का कहा गया है। उसका वर्णन आगे चूलिका में होगा...** वह ४०० गाथा हो गयी। अपने यहाँ कहाँ आये? ५७। ५७ न? देखो! यहाँ आया है। क्या कहते हैं उसमें? ५७। पाँच और सात। अष्टपाहुड़।

आगे कहते हैं... देखो! वही आया। **ज्ञान-चारित्र रहित हो...** देखो! यह चारित्र क्या? स्वरूपाचरण भी न हो और अकेला ज्ञान हो तो उसको ज्ञान कहने में आता नहीं।

भाई ! आहाहा ! **ज्ञान, चारित्ररहित हो और तप, सम्यक्त्वरहित हो तथा अन्य भी क्रिया भावपूर्वक न हो...** शुद्धभाव। शुद्धभाव यहाँ लेना है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, स्वरूपआचरणरूपी शुद्धभाव, ऐसा न हो **अन्य भी क्रिया भावपूर्वक न हो तो इस प्रकार केवल लिंग-भेषमात्र ही से क्या सुख है ?** अकेला लिंग धारण करने से या बाह्य क्लेश करने से कुछ लाभ है नहीं। वह कहते हैं, देखो !

गाथा-५७

आगे कहते हैं कि जो ज्ञान-चारित्र रहित हो और तप सम्यक्त्व रहित हो तथा अन्य भी क्रिया भावपूर्वक न हो तो इस प्रकार केवल लिंग भेषमात्र ही से क्या सुख है? अर्थात् कुछ भी नहीं है -

णाणं चरित्तहीणं दंसणहीणं तवेहिं संजुत्तं।
अण्णेसु भावरहियं लिंगग्गहणेण किं सोक्खं।।५७।।

ज्ञानं चारित्रहीनं दर्शनहीनं तपोभिः संयुक्तम्।
अन्येषु भावरहितं लिंगग्रहणेन किं सौख्यम्।।५७।।

हो ज्ञान चारित्र-हीन दर्शन-हीन तप-संयुक्त हो।
हो अन्य में भी भाव-बिन क्या लिंग-धर से सौख्य हो?।।५७।।

_अर्थ_ - जहाँ ज्ञान तो चारित्र रहित है, तपयुक्त भी है, परन्तु वह दर्शन अर्थात् सम्यक्त्व से रहित है, अन्य भी आवश्यक आदि क्रियायें हैं, परन्तु उनमें भी शुद्धभाव नहीं है, इस प्रकार लिंग-भेष ग्रहण करने में क्या सुख है ?

_भावार्थ_ - कोई मुनि भेषमात्र से तो मुनि हुआ और शास्त्र भी पढ़ता है। उसको कहते हैं कि शास्त्र पढ़कर ज्ञान तो किया, परन्तु निश्चय चारित्र तो शुद्ध आत्मा का अनुभवरूप तथा बाह्य चारित्र निर्दोष नहीं किया, तप का क्लेश बहुत किया, सम्यक्त्व भावना नहीं हुई और आवश्यक आदि बाह्य क्रिया की, परन्तु भाव शुद्ध नहीं किये तो

ऐसे बाह्य भेषमात्र से तो क्लेश ही हुआ, कुछ शान्तभावरूप सुख तो हुआ नहीं और यह भेष परलोक के सुख में भी कारण नहीं हुआ; इसलिए सम्यक्त्वपूर्वक भेष (जिन-लिंग) धारण करना श्रेष्ठ है।।५७।।

गाथा-५७ पर प्रवचन

णाणं चरित्तहीणं दंसणहीणं तवेहिं संजुत्तं।
अण्णेसु भावरहियं लिंगग्गहणेण किं सोक्खं।।५७।।

अर्थ :- जहाँ ज्ञान तो चारित्र रहित है,... चारित्र अर्थात् स्वरूप की स्थिरता नहीं। अकेला क्षयोपशम ज्ञान, जानने का ज्ञान, परलक्ष्यी ज्ञान ऐसा है, परन्तु स्वरूप की दृष्टि और स्वरूप में आचरण नहीं है तो वह ज्ञान निरर्थक है। समझ में आया? '**णाणं चरित्तहीणं दंसणहीणं तवेहिं**' और जहाँ **तपयुक्त भी है,...** मुनिपना तो लिया। बाहर पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण तो पालते हैं, **परन्तु वह दर्शन अर्थात् सम्यक्त्व से रहित है,...** अनुभव सम्यग्दर्शन तो है नहीं। समझ में आया? आहाहा! **अन्य भी आवश्यक आदि क्रियायें हैं...** दूसरी सब आवश्यक की क्रिया करते हैं। व्यवहार सामायिक, व्यवहार वन्दना, व्यवहार स्तवन, व्यवहार प्रत्याख्यान इत्यादि क्रियायें करते हैं। **परन्तु उनमें भी शुद्धभाव नहीं है,...** देखो! शुद्ध—रागरहित श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता शुद्धभाव नहीं है। **इस प्रकार लिंग-भेष ग्रहण करने में क्याा सुख है?** समझ में आया? शुद्धभाव बिना लिंग-भेष और बाह्य क्रियाकाण्ड, उसमें कुछ लाभ है नहीं। वहाँ यह बात है। समझ में आया?

समाधिशतक में दूसरा कहा है। विशेष तपादि का भाव न हो तो शुभशिलीया हो तो कभी प्रतिकूलता आयेगी तो भ्रष्ट हो जायेगा। वह बात कहते हैं। वह दूसरी बात है। समझ में आया? अन्तर में शाताशिलीया हो जाये... शाताशिलीया को क्या कहते हैं? आपकी हिन्दी भाषा है? सुहावना। शाताशिलीया कहते हैं। सुहावना। बाह्य की अनुकूलता में सुहावना हो जाये और अपनी दृष्टि शुद्ध चैतन्य पर न हो, शुद्धभाव न हो तो भ्रष्ट हो जायेगा। समझ में आया? प्रतिकूलता आयेगी तो भ्रष्ट हो जायेगा। ऐसा कहते हैं।

यहाँ तो कहते हैं, ज्ञान हो परन्तु शुद्धभाव न हो, ऐसा कहते हैं। शुद्ध श्रद्धा और शुद्ध स्थिरता न हो, तप हो और समकित न हो। समझ में आया? ये बोल भी आया। तप के दिन में यह आया। दोनों का मेल आया। अन्य भी आवश्यक क्रिया हो। आदि क्रिया। सुबह-शाम बराबर भगवान का वन्दन, पूजा, देव-गुरु का विनय, भक्ति बराबर पाले। ऐसी क्रिया हो परन्तु शुद्धभाव न हो, शुद्ध समकित और शुद्ध ज्ञान और शुद्ध आचरण की दशा न हो तो वृथा है। वह **लिंग-भेष ग्रहण करने में क्या सुख है?** उसमें कहाँ आत्मा का धर्म आया? सुख अर्थात् उसमें धर्म क्या आया? ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अन्तर की बात है, भाई! यह तो सब ऐसी बात है। स्वरूप की अनुभवदृष्टि सम्यक्...

अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप,
अनुभव मारग मोक्ष का, अनुभव मोक्ष स्वरूप।

चौथे गुणस्थान से अनुभव उत्पन्न होता है। यह अनुभव रत्न चिन्तामणि है। यहाँ कहते हैं कि अकेला ज्ञान हो परन्तु दृष्टि और स्वरूप की स्थिरता अन्दर न हो, वह ज्ञान निरर्थक है। समझ में आया? और तप हो, तप अर्थात् मुनिपना, मुनिपना की आवश्यक आदि क्रिया सब, परन्तु सम्यग्दर्शन रहित हो, शुद्धभाव नहीं हो, ऐसे **लिंग-भेष ग्रहण करने में क्या सुख है?**

भावार्थ :- कोई मुनि भेषमात्र से तो मुनि हुआ... देखो! अरे! **शास्त्र भी पढ़ता है...** देखो! शास्त्र पढ़ता है। **शास्त्र पढ़कर ज्ञान तो किया...** शास्त्र का ज्ञान तो किया। समझ में आया? **परन्तु निश्चयचारित्र जो शुद्ध आत्मा का अनुभवरूप तथा बाह्य चारित्र निर्दोष नहीं किया,...** अन्तर स्वरूप की लीनता न हुई और बाह्य में पंच महाव्रत आदि के विकल्प में गड़बड़ी हो तो उसमें आत्मा को कुछ लाभ होता नहीं। समझ में आया? **परन्तु निश्चयचारित्र...** निश्चयचारित्र स्वरूपाचरण नीचे चौथे गुणस्थान से उत्पन्न होता है। समझ में आया? जितने गुण हैं, उतने सब गुण का अंश चौथे गुणस्थान में प्रगट हो जाते हैं। जितने अनन्त गुण हैं—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान सब सम्यग्दर्शन हुआ (तो) अनन्त-अनन्त गुण का व्यक्त अंश प्रगट निर्मल सबका होता है। और वह प्रगट न हो और अकेला शास्त्रज्ञान हो तो वह ज्ञान निरर्थक है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

निश्चयचारित्र जो शुद्ध आत्मा का अनुभवरूप... है न? अनुभवरूप। **तथा बाह्य चारित्र निर्दोष नहीं किया,...** पंच महाव्रत आदि का विकल्प निर्दोष न हो और उसमें गड़बड़ी हो तो उसमें कुछ लाभ होता नहीं। **तप का क्लेश बहुत किया,...** लो, तप का क्लेश तो बहुत किया, क्लेश बहुत किया। निर्जरा अधिकार में आता है। पंच महाव्रत का विकल्प क्लेश है, भार है-बोझ है। आत्मा का ध्यान, ज्ञानस्वरूप प्रगट नहीं हुआ... निर्जरा अधिकार में है। आहा! अन्तर शुद्धभाव सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शान्ति के भाव बिना ये सब तप आदि क्लेश किया। **सम्यक्त्व भावना नहीं हुई और आवश्यक आदि बाह्य क्रिया की...** चौबीस घण्टे की जो कोई व्यवहार क्रिया है, उसे बराबर करता है। **परन्तु भाव शुद्ध नहीं लगाये...** बात तो यह है।

अपना चैतन्य आनन्द शुद्ध की दृष्टि और ज्ञान को लगाकर शुद्धभाव तो प्रगट नहीं किया, **ऐसे बाह्य भेषमात्र से तो क्लेश ही हुआ,...** लो, शास्त्र का पढ़ना, पंच महाव्रत की क्रिया, सब क्लेश है। स्वभाव के भानसहित राग की मन्दता हो तो व्यवहारचारित्र कहने में आता है। परन्तु निश्चय का अनुभव और निश्चयचारित्र हो तो। **बाह्य भेषमात्र से तो क्लेश ही हुआ,...** अरुचि—वहाँ तो आर्तध्यान है, ऐसा कहते हैं। **कुछ शान्तभावरूप सुख तो हुआ नहीं...** देखो! अन्तर वीतरागपर्याय सुखरूप तो प्रगट हुई नहीं। आहाहा! समझ में आया? अकषायस्वभाव आत्मा, उसमें से शान्ति प्रगट हुई नहीं, उसके बिना सब कायक्लेश और संसारबन्धन है। बहुत सूक्ष्म बात है।

यह भेष परलोक के सुख में भी कारण नहीं हुआ,... देखो! क्योंकि अन्दर कष्ट हुआ, अरुचिकर हुआ परिषह सहन करने में। क्योंकि सहज आनन्द तो है नहीं। तो परलोक में सुख मिले शुभभाव से, ऐसा शुभभाव भी रहा नहीं। देखो! **भेष परलोक के सुख में भी कारण नहीं हुआ, इसलिए सम्यक्त्वपूर्वक भेष (जिन-लिंग) धारण करना श्रेष्ठ है।** समकित हो, सुख चारित्र हो तो नग्नपना आये बिना रहता नहीं। नग्नपना का भेष आता है। लाना नहीं पड़ता, वह बीच में आ जाता है। चारित्र हो और नग्नपना न हो और वस्त्र, पात्रसहित हो—ऐसा होता नहीं। समकितपूर्वक भेष धारण करना, ऐसा कहा। समझे? आत्मा का आनन्दपूर्वक। फिर पंच महाव्रत का विकल्प आता है, नग्नदशा होती है परन्तु वह कोई मोक्ष का कारण नहीं। परन्तु बीच में आये बिना रहती नहीं।

गाथा-५८

आगे सांख्यमती आदि के आशय का निषेध करते हैं –

अच्चेयणं पि चेदा जो मण्णइ सो हवेइ अण्णाणी।
सो पुण णाणी भणिओ जो मण्णइ चेयणे चेदा।।५८।।

अचेतनेऽपि चेतनं यः मन्यते सः भवति अज्ञानी।
सः पुनः ज्ञानी भणितः य मन्यते चेतने चेतनम्।।५८।।

है अचेतन में मानता जो चेतना अज्ञानि वह।
जो चेतना में चेतना को मानता है ज्ञानि वह।।५८।।

अर्थ – जो अचेतन में चेतन को मानता है, वह अज्ञानी है और जो चेतन में ही चेतन को मानता है, उसे ज्ञानी कहा है।

भावार्थ – सांख्यमती ऐसे कहता है कि पुरुष तो उदासीन चेतनास्वरूप नित्य है और यह ज्ञान है, वह प्रधान का धर्म है, इनके मत में पुरुष को उदासीन चेतनास्वरूप माना है, अतः ज्ञान बिना तो वह जड़ ही हुआ, ज्ञान बिना चेतन कैसे ? ज्ञान को प्रधान का धर्म माना है और प्रधान को जड़ माना, तब अचेतन में चेतना मानी, तब अज्ञानी ही हुआ।

नैयायिक, वैशेषिक मतवाले गुण–गुणी में सर्वथा भेद मानते हैं, तब उन्होंने चेतना गुण को जीव से भिन्न माना, तब जीव तो अचेतन ही रहा। इस प्रकार अचेतन में चेतनापना माना। भूतवादी चार्वाक भूत पृथ्वी आदिक से चेतनता की उत्पत्ति मानता है, भूत तो जड़ है, उसमें चेतनता कैसे उपजे ? इत्यादिक अन्य भी कई मानते हैं, वे सब अज्ञानी हैं, इसलिए चेतन में ही चेतन माने वह ज्ञानी है, यह जिनमत है।।५८।।

गाथा-५८ पर प्रवचन

आगे सांख्यमती आदि के आशय का निषेध करते हैं :- सांख्यमति आदि, हों! जैन में रहा हो तो भी।

अच्चेयणं पि चेदा जो मण्णइ सो हवेइ अण्णाणी।
सो पुण णाणी भणिओ जो मण्णइ चेयणे चेदा ।।५८।।

अर्थ :- जो अचेतन में चेतन को मानता है, वह अज्ञानी है... समझ में आया? प्रकृति का राग मन्द धर्म है न? उन लोगों में ... है न? सात्त्विक प्रकृति। राजस, सात्त्विक और तमो। वह सब राग की मन्दता का और तीव्रता का बोल है। उसमें धर्म मानते हैं। चेतना मानते हैं तो जड़ है। राग की मन्दता से मेरी जागेगी, ऐसा माननेवाला क्या कहा यहाँ? सांख्यमती जैसा है। अचेतन में चेतन मानता है, मूल में तो ऐसा कहते हैं, हों! **अचेतन में चेतना को मानता है, वह अज्ञानी है और जो चेतना में ही चेतन को मानता है, उसे ज्ञानी कहा है।**

भावार्थ :- सांख्यमती ऐसे कहता है कि पुरुष तो उदासीन चेतनास्वरूप नित्य है... क्या कहते हैं? भगवान तो चेतनास्वरूप नित्य ध्रुव है। **और यह ज्ञान है, वह प्रधान का धर्म है,...** प्रधान अर्थात् रजो, सत्त्व और तमो। यहाँ की भाषा लें तो कषाय मन्द और कषाय तीव्र वह ज्ञान है, ऐसा कहते हैं। यहाँ जैन में भी माने कि मन्द कषाय हुई, वह हमारा ज्ञान है, उससे ज्ञान होगा तो उसने अचेतन में चेतन माना है। सांख्यमत का तो दृष्टान्त दिया है। आचार्य तो (कहते हैं), अचेतन में चेतन मानना। दूसरी भाषा से कहें तो पर का परलक्ष्यी क्षयोपशम ज्ञान है न? वह वास्तव में अचेतन है। शास्त्र का ज्ञान भी अचेतन है। अचेतन न हो तो उसमें संवर, निर्जरा होनी चाहिए। ऐसा शास्त्रज्ञान भी अनन्त बार किया। ग्यारह अंग, नव पूर्व अनन्त बार पढ़ा, क्या हुआ? शास्त्रज्ञान हुआ, उसमें से मेरा ज्ञान होगा, वह अचेतन को चेतन मानता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले राग से (कहा), अब तो ज्ञान (कहते हैं)। परलक्ष्यी ज्ञान।

मुमुक्षु : मन्द राग से ज्ञान होगा, वह कैसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मानता है न? कषाय मन्द है तो मेरा ज्ञान होगा। तो अचेतन को चेतन माना। अनन्त बार ऐसा ही माना है न? क्षयोपशमज्ञान है, राग को तो निकाल

दिया, परन्तु क्षयोपशमज्ञान जो है, वह वास्तव में अचेतन है, उससे मेरा ज्ञान होगा। बहुत बात (आयी)। मोक्षमार्ग का अधिकार... आहाहा! राग से आत्मा को लाभ माने और राग से मेरा ज्ञान हो, वह तो दूसरी बात। यहाँ तो पहले ज्ञान का क्षयोपशम हुआ, उससे मेरा ज्ञान होगा, उसमें भी अचेतन को चेतन माना है। क्योंकि सांख्यमत में तमो, रजो, सत्त्व गुण है न? वह प्रधान धर्म कहा और वह ज्ञान है। आत्मा में ज्ञान है ही नहीं। आत्मा तो नित्य चैतन्यस्वरूप ध्रुव है। ऐसा यहाँ माननेवाला पर्याय में ज्ञान का क्षयोपशम हुआ, क्रियाकाण्ड को तो निकाल दिया, आवश्यक क्रिया आदि तो पहले गयी, यहाँ तो क्षयोशम ज्ञान हुआ वह ज्ञान भी अचेतन है, निश्चय से चेतन है नहीं। आहाहा! समझ में आया? देखो! दूसरी रीति से विस्तार किया है। पहले आ गया था न? '**कम्मजादमइओ**'। ५६ (गाथा) में आया था। खण्ड-खण्ड इन्द्रिय को ज्ञान मानता है। वह कर्मजाति का क्षयोपशम है, वह आत्मा का क्षयोपशम नहीं है। आहाहा! गजब बात है! अकेला जानपना, वह चीज़ नहीं है। ज्ञान, अपना द्रव्यस्वभाव चैतन्य के आश्रय से उत्पन्न हुआ ज्ञान, उस ज्ञान को चेतन कहते हैं। शास्त्र का ज्ञान भी मुर्दा है। आहा! जैसे राग की मन्द क्रिया मुर्दा है, मुर्दा। यहाँ तो यह कहते हैं।

ज्ञान बिना चेतन कैसे? उदासीन चेतनास्वरूप माना है, अतः ज्ञान बिना तो वह जड़ ही हुआ,... वह आत्मा में ज्ञान नहीं मानता है। ज्ञान है, वह तो सात्त्विक का गुण है- मन्द कषाय आदि का गुण है। ऐसा कहते हैं। यह जैन भी ऐसा कहे कि हमारा ज्ञान बाहर से खिला है, वह भी ज्ञान है। वह ज्ञान नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : भावश्रुतज्ञान... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भावश्रुतज्ञान है, वही ज्ञान है। द्रव्यश्रुत का ज्ञान, वह ज्ञान नहीं है।

ज्ञान बिना चेतन कैसे? **ज्ञान को प्रधान का धर्म माना है...** प्रधान अर्थात् रजो, तमो प्रकृति। **प्रधान को जड़ माना,...** तो आपने तो जड़ माना। **अचेतन में चेतना मानी, तब अज्ञानी ही हुआ। नैयायिक, वैशेषिक मतवाले गुण-गुणी के सर्वथा भेद मानते हैं,...** लो, गुणी आत्मा न्यारा और ज्ञान न्यारा है, ऐसा मानते हैं। ऐसा है नहीं। **तब उन्होंने चेतना**

गुण को जीव से भिन्न माना... चेतनागुण जीव से पृथक् हुआ। **भिन्न माना तब जीव तो अचेतन हो रहा। इस प्रकार अचेतन में चेतनापना माना। भूतवादी चार्वाक-भूत पृथ्वी आदिक में चेतना की उत्पत्ति मानता है,...** लो! ये सब पंच महाभूत इकट्ठे हो तो चेतना उत्पन्न हो। यह भी ऐसा कहे कि राग की मन्दता हो, क्षयोपशमज्ञान हो तो चेतना उत्पन्न हो। सब एक ही बात है। आहाहा!

भूत तो जड़ है, उसमें चेतना कैसे उपजे? इत्यादि अन्य भी कोई मानते हैं... ऐसा। इत्यादि अन्य भी-जैन में रहा हुआ भी, कोई भी माने, वह सब अज्ञानी हैं। **इसलिए चेतन में ही चेतन माने, वह ज्ञानी है,...** ज्ञानस्वरूप भगवान अपना ज्ञान में से ज्ञान प्राप्त करता है, पर से प्राप्त होता नहीं। आहा! जैसे 'कोई क्रियाजड़ हो रहे, शुष्कज्ञान में कोई' वह बात है। 'माने मार्ग मोक्ष का करुणा उपजे जोई।' श्रीमद् में आता है न? 'कोई क्रियाजड़ हो रहे' क्रिया-राग की मन्दता की क्रिया। वह राग जड़ है। 'शुष्कज्ञान में कोई' अकेला ज्ञान के जानपने में परलक्षी ज्ञान में मान रहा है। शुष्कज्ञान-लुख्खा ज्ञान। अपने ज्ञानानन्द में ठरे बिना, अन्तर की दृष्टि हुए बिना अकेला शुष्कज्ञान उसमें धर्म मानते हैं। 'करुणा उपजे जोई।' ऐसा आया न? **चेतन में ही चेतन माने, वह ज्ञानी है...** मूल पाठ तो यह है।

आचार्य का आशय यह है। अपना चेतन भगवान, उसमें अपनी दृष्टि लगाकर जो ज्ञान प्रगट हुआ, वह चेतन है। उस चेतन में चेतनपना मानना, वह यथार्थ है। और अपना भगवान चेतनस्वरूप तो दूर रहा और परलक्ष्यी ज्ञान और मन्द राग हुआ, उसमें चेतनपना माना, वह तो अचेतन को चेतन माना। आहा! गजब बात है! बाहर की बात दूर रह गयी। ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ा, लो! मिथ्यादृष्टि था। अभव्य भी इतना तो पढ़ते हैं, उसमें क्या हुआ? पढ़ लिया और बातें करना आ गया, इसलिए ज्ञान हुआ ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : बाहर में तो कद्र (कदर) हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर आपके जैसे हो, वह कद्र (कदर) करे। क्योंकि आपसे त्याग हो सकता नहीं, बुद्धि में अधिक ज्ञान नहीं हो, इसलिए बेचारा माने तो कद्र है, बात सच्ची है। शोभालालजी! ... आहा! कितना जानपना! हजारों लोग, लाखों लोगों को

समझाते हैं, उसमें से बहुत लाभ होगा। क्या समझता है ? स्वयं तो अभी ज्ञानस्वरूप चिदानन्द है, उसकी तो दृष्टि है नहीं। बाहर का क्षयोपशम से जगत को समझाये, अपने तो लुख्खा है। पर को क्या समझ सकते हैं ? भीखाभाई ! उस प्रकार की कद्र तो हो, ऐसा कहते हैं।

मेंढ़क-मंडुक है, लो ! समझाना भी आता नहीं। अपना आत्मा का अनुभव है। मेंढ़क-मंडुक। आनन्द का भान है, आनन्द वेदते हैं, कह सकते नहीं। नौ तत्त्व का नाम भी आता नहीं। उसमें क्या है ? समझने की शक्ति भी नहीं। अपना जो स्वभाव आनन्दकन्द है, उसका स्पर्श करके जो ज्ञान और आनन्द प्रगट किया। सार्थक है इसका। दुनिया कदर करे, न करे उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। बाग में फूल हो और उसको कोई सूंघे तो उसमें गन्ध रहती है, ऐसा है ? कोई सूंघे तो गन्ध रहती है और कोई नहीं सूंघे तो गन्ध नहीं रहती है ? आहाहा ! है, सो है।

चेतन में ही चेतन माने वह ज्ञानी है, यह जिनमत है। लो, वीतराग अभिप्राय तो यह है कि अपना ज्ञानस्वभाव अन्तर में पड़ा है, उसके अवलम्बन से जो ज्ञान प्रगट करते हैं, वह चेतन को चेतन माना। बाहर के क्षयोपशम में आत्मा मानते हैं, वह अचेतन को चेतन मानते हैं। वह जिनमत है नहीं। आहाहा !

गाथा-५९

आगे कहते हैं कि तप रहित ज्ञान और ज्ञान रहित तप ये दोनों ही अकार्य हैं, दोनों के संयुक्त होने पर ही निर्वाण है –

तवरहियं जं णाणं णाणविजुत्तो तवो वि अकयत्थो।
तम्हा णाणतवेणं संजुत्तो लहइ णिव्वाणं।।५९।।

तपोरहितं यत् ज्ञानं ज्ञानवियुक्तं तपः अपि अकृतार्थम्।
तस्मात् ज्ञानतपसा संयुक्तः लभते निर्वाणम्।।५९।।

हो तप-रहित जो ज्ञान ज्ञान-विहीन तप अकृतार्थ है।
अतएव तप-संयुक्त ज्ञानी मोक्ष की प्राप्ति करें।।५९।।

***अर्थ* – जो ज्ञान तपरहित है और जो तप है, वह भी ज्ञानरहित है तो दोनों ही अकार्य हैं, इसलिए ज्ञान तप संयुक्त होने पर ही निर्वाण को प्राप्त करता है।**

***भावार्थ* – अन्यमती सांख्यादिक ज्ञानचर्चा तो बहुत करते हैं और कहते हैं कि ज्ञान से ही मुक्ति है और तप नहीं करते हैं, विषय-कषायों को प्रधान का धर्म मानकर स्वच्छन्द प्रवर्तते हैं। कई ज्ञान को निष्फल मानकर उसको यथार्थ जानते नहीं हैं और तप क्लेशादिक से ही सिद्धि मानकर उसके करने में तत्पर रहते हैं। आचार्य कहते हैं कि ये दोनों ही अज्ञानी हैं जो ज्ञानसहित तप करते हैं, वे ज्ञानी हैं, वे ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं, यह अनेकान्तस्वरूप जिनमत का उपदेश है।।५९।।**

गाथा-५९ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि तपरहित ज्ञान और ज्ञानरहित तप ये दोनों ही अकार्य है... मोक्षमार्ग की विशेष बात करते हैं न। **दोनों के संयुक्त होने पर ही निर्वाण है :-**

तवरहियं जं णाणं णाणविजुत्तो तवो वि अकयत्थो।
तम्हा णाणतवेणं संजुत्तो लहइ णिव्वाणं।।५९।।

सम्यक्ज्ञान तो हुआ है, सच्चा ज्ञान है परन्तु साथ में चारित्र वीतरागदशा नहीं है तो उसकी मुक्ति नहीं होती। समझ में आया? चौथे गुणस्थान में सम्यग्ज्ञान है, सम्यग्दर्शन है, चारित्र नहीं है। स्वरूप की रमणतारूप चारित्र नहीं है तो मुक्ति नहीं होती। चारित्र बिना मुक्ति नहीं होती। प्रवचनसार में पीछे कहा है न? भाई! सम्यग्दर्शन और ज्ञान भी चारित्र के बिना निरर्थक है। गाथा है। क्यों? चारित्र-स्वरूप की रमणता बिना मुक्ति नहीं होगी। अकेला सम्यग्दर्शन, ज्ञान से मुक्ति होगी? अकेले समकित से होता नहीं, अकेले ज्ञान से नहीं होती और अकेले क्रियाकाण्ड से नहीं होती। समझ में आया? वह बात यहाँ कहते हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान हुआ। मुनि के योग्य चारित्र न हो, मुनियोग्य चारित्र न हो-अन्दर स्वरूप की रमणता (न हो), अकेले ज्ञान से मुक्ति होती नहीं। वह बात कहते हैं। समझ में आया?

अर्थ :- जो ज्ञान तपरहित है... चारित्ररहित **और जो तप है, वह भी ज्ञानरहित है...** तपस्या तो बहुत करते हैं परन्तु अन्दर सम्यग्ज्ञान नहीं है, वह भी बिना अंक के शून्य हैं। बराबर है ? **जो तप है, वह भी ज्ञानरहित है...** यहाँ तप शब्द का अर्थ मुनिपना, हों ! मुनि को तपकल्याणक कहते हैं न ? तपकल्याणक कहते हैं। भगवान चारित्र लेते हैं, उसको तपकल्याणक कहते हैं। चारित्र को ही तपकल्याणक (कहते हैं)। ज्ञानरहित तप है अर्थात् मुनिपना है, **तो दोनों ही अकार्य है, इसलिए ज्ञान-तप संयुक्त होने पर...** सम्यग्दर्शन, ज्ञान और साथ में चारित्रदशा। **संयुक्त होने पर ही निर्वाण को प्राप्त करता है।** ऐसा अकेले सम्यग्दर्शन, ज्ञान से भी निर्वाण नहीं प्राप्त करेगा। सच्चा क्षायिक समकित हुआ और ज्ञान सम्यक् हुआ, परन्तु बीच में चारित्र / स्वरूप की स्थिरता बिना मुक्ति होती नहीं।

मुमुक्षु : नय से आगे...

पूज्य गुरुदेवश्री : तपना मुनिपना चारित्र। ये चारित्र तप, हों ! उपवास-बपवास की बात नहीं है यहाँ। स्वरूप में रमणता का चारित्र। सम्यग्दर्शन, ज्ञान हुआ और चारित्र न हो तो मुक्ति होती नहीं। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र नहीं है और अकेली बाह्य की क्रिया चारित्र है और सम्यग्दर्शन, ज्ञान नहीं है, उसकी भी मुक्ति नहीं होती। तीनों मिलकर मुक्ति होती है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र मिलकर मोक्ष होता है। समझ में आया ?

भावार्थ : अन्यमती सांख्यादिक... देखो ! आदि है न ? सांख्य आदि। जैन में भी रहे हुए। **ज्ञानचर्चा तो बहुत करते हैं...** जानपने की बात बहुत करे, परन्तु अन्दर में स्वरूप की दृष्टि, ज्ञान और रमणता नहीं है। **ज्ञान से ही मुक्ति है और तप नहीं करते हैं,...** अकेले जानपने से मुक्ति है, चारित्र की जरूरत नहीं, ऐसा माने वह भी झूठ बात है। आहाहा ! समझ में आया ? सांख्यादिक है न ? सब अन्यमती कहने में आते हैं। **ज्ञानचर्चा तो बहुत करते हैं कि ज्ञान से ही मुक्ति है और तप नहीं करते हैं,...** इच्छा का निरोध करके स्वरूप की स्थिरता करते नहीं। **विषय-कषायों को प्रधान का धर्म मानकर स्वच्छन्द प्रवर्तते हैं।** ऐसा कहते हैं। वह पुद्गल का धर्म है। विषय कषाय पुद्गल का धर्म है, हमें क्या ? परन्तु परिणाम तेरा है या नहीं ? समझ में आया ? **विषय-कषायों को प्रधान...** अर्थात् रजो, तमो प्रकृति का धर्म मानकर **स्वच्छन्द प्रवर्तते हैं।** भोग विषयवासना। जैसे उसको ठीक लगे,

वैसे प्रवर्ते वह तो अज्ञानभाव है, अशुभभाव है, पापभाव है। शुभभाव से भी मुक्ति नहीं तो अशुभ से कहाँ से होती है?

कई ज्ञान को निष्फल मानकर उसको यथार्थ जानते नहीं है... ज्ञान क्या है? करो न कुछ क्रिया। मोक्षमार्गप्रकाशक में सातवें अधिकार में आता है। कुछ करोगे तो पाओगे। कुछ करोगे तो पाओगे। क्या करेगा? स्वभाव के भान बिना राग की क्रिया हो, वह तो निरर्थक है, बन्ध का कारण है। **ज्ञान को निष्फल मानकर उसको यथार्थ जानते नहीं है...** अन्तर का स्वरूप सन्मुख होकर ज्ञान को जाने नहीं **और तप-क्लेशादिक से ही सिद्धि मानकर...** देखो! तप और क्लेशादिक से सिद्धि माने। शरीर को क्लेश होता है न? श्वेताम्बर में ऐसा बोल है। देहे दुःखं महाफलं। दशवैकालिक में है। इस देह को जितना कष्ट दो, उतना बड़ा फल (मिलता है)। धूल भी नहीं। देह को कष्ट कैसा? ये तो मिट्टी है। अन्दर में आत्मा को परीषह आदि में कष्ट लगे, वह तो आर्तध्यान है। आनन्दस्वरूप में रहकर कायक्लेशादिक का ज्ञाता-दृष्टा रहकर सहन करना, उसका नाम वास्तविक तप कहने में आता है।

आचार्य कहते हैं कि ये दोनों ही अज्ञानी है,... क्या अज्ञानी? अकेले ज्ञानमात्र से मुक्ति माने और चारित्ररहित है, वह अज्ञानी है और क्रियामात्र से मुक्ति माने और ज्ञान नहीं हो तो वह भी अज्ञानी है। **जो ज्ञानसहित तप करते हैं, वे ज्ञानी हैं...** लो। आत्मज्ञान सहित चारित्र की रमणता करे, **वे ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं,...** वह धर्मी है, उसको मोक्ष प्राप्त होता है। आहा! इसने तो ऐसा अर्थ किया है कि निर्विकल्प ध्यान में हो तब ज्ञानी, सविकल्प में आया तो अज्ञानी। क्या करता है? यहाँ तो कहते हैं कि सर्वथा ज्ञानी है सदा। परन्तु स्वरूप में चारित्र नहीं है, इस कारण से चारित्र के बिना-आत्मा में आनन्द की रमणता बिना मुक्ति नहीं होती। वह बात है। समझ में आया? ज्ञानी तो है। सविकल्प में आया और शुभ उपयोग में आ गया, अरे! अशुभ में आ गया तो क्या अज्ञानी हो जाता है?

मुमुक्षु : छठवें गुणस्थान में तो मुनिपना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु विकल्प से मुनिपना है या चारित्र से मुनिपना है?

मुमुक्षु : कहा है न,...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहा है। अज्ञानी कहा है। विकल्प में आये तो अज्ञानी। छठवें गुणस्थान में अज्ञानी कहते हैं। स्वरूप में स्थिर हो तो ज्ञानी, ऐसा कहते हैं। इसमें लिखा है। आठवें से ज्ञानी कहा जाये। स्वरूप में स्थिर हो तब ज्ञानी। समझ में आया? अरे! बहुत गड़बड़ी कर दी। बाह्य क्रियाकाण्ड के प्रेमियों ने तत्त्व को बिखेरकर मसल डाला है। समझ में आया? आहाहा! देखो! यहाँ सिद्धान्त कहते हैं।

अकेला ज्ञान, समकित तो तीर्थंकर को था। तीर्थंकर तीन ज्ञान लेकर आते हैं, क्षायिक समकित लेकर आते हैं, परन्तु चारित्र बिना मुक्ति होती है? समझ में आया? तीर्थंकर की तो उस भव में जरूर मुक्ति है। तीन ज्ञान हुआ और क्षायिक समकित हुआ, उससे मुक्ति होगी? उसके साथ चारित्र की रमणता करेगा तो मुक्ति होगी। तीर्थंकर जैसे को भी। दूसरा कहे कि हमें समकित और ज्ञान एक ही है, उससे हमारी मुक्ति होगी ऐसा है नहीं। आहाहा! चारित्र तो वस्तुस्वरूप पुरुषार्थ से अन्तर आनन्द में लीन होना—ठहरना—जमना, इस चारित्र के बिना मुक्ति नहीं होती। क्षायिक समकिती हो, तीन ज्ञान के धनी हो, समझ में आया? परन्तु स्वरूप में चारित्रदशा मुनिपना आये बिना कभी मुक्ति किसी को नहीं होती। कहो, सेठ!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनिपना यह, ये मुनिपना।

यह अनेकान्तस्वरूप जिनमत का उपदेश है। देखो! क्या कहते हैं? अपना स्वरूप का ज्ञान और समकित होने पर भी, जब तक स्वरूप में चारित्रदशा / रमणता प्रगट नहीं हुई, तब तक मुक्ति नहीं होगी। तथापि चौथे गुणस्थान में मोक्ष का मार्ग है, ऐसा कहने में आता है। उपचार से। वास्तव में मोक्षमार्ग तो तीनों इकट्ठे हो, तब मोक्षमार्ग है। समझ में आया? **यह अनेकान्तस्वरूप जिनमत का उपदेश है।** ऐसा कहते हैं। अनेकान्त अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान भी है। स्वरूप की चारित्र रमणता ... समझ में आया?

गाथा-६०

आगे इसी अर्थ को उदाहरण से दृढ़ करते हैं –

धुवसिद्धी तित्थयरो चउणाणजुदो करेइ तवयरणं।
णाऊण धुवं कुज्जा तवयरणं णाणजुत्तो वि।।६०।।

ध्रुवसिद्धिस्तीर्थंकरः चतुर्ज्ञानयुतः करोति तपश्चरणम्।
ज्ञात्वा ध्रुवं कुर्यात् तपश्चरणं ज्ञानयुक्तः अपि।।६०।।

सिद्धी सुनिश्चित तीर्थकर चउ ज्ञान-युत भी तप करें।
यों जान ज्ञान-सहित भि प्राणी नियम से तप को करें।।६०।।

अर्थ – आचार्य कहते हैं कि देखो..., जिसको नियम से मोक्ष होना है... और जो चार ज्ञान – मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय इनसे युक्त है, ऐसा तीर्थंकर भी तपश्चरण करता है, इस प्रकार निश्चय से जानकर ज्ञानयुक्त होने पर भी तप करना योग्य है। (तप-मुनित्व; सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता को तप कहा है)।

भावार्थ – तीर्थंकर मति-श्रुत-अवधि इन तीन ज्ञान सहित तो जन्म लेते हैं और दीक्षा लेते ही मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो जाता है, मोक्ष उनको नियम से होना है तो भी तप करते हैं, इसलिए ऐसा जानकर ज्ञान होते हुए भी तप करने में तत्पर होना, ज्ञानमात्र ही से मुक्ति नहीं मानना।।६०।।

गाथा-६० पर प्रवचन

आगे इसी अर्थ को उदाहरण से दृढ़ करते हैं :- देखो! साक्षात् भगवान का दृष्टान्त देते हैं। सम्यग्ज्ञान हुआ, तीन ज्ञान हुआ, क्षायिक समकित हुआ। चारित्र लिया... मुनिपना।

धुवसिद्धी तित्थयरो चउणाणजुदो करेइ तवयरणं।
णाऊण धुवं कुज्जा तवयरणं णाणजुत्तो वि।।६०।।

'**धुवसिद्धी तित्थयरो**' देखो! तीर्थंकर को उस भाव में निश्चित मुक्ति है।

'**चउणाणजुदो करेइ।**' चार ज्ञानसहित हैं, परन्तु वह चारित्र पालते हैं। समझ में आया? बहुत सुन्दर दृष्टान्त दिया है। साक्षात् भगवान का दृष्टान्त।

अर्थ :- आचार्य कहते हैं कि देखो... जिसको नियम से मोक्ष होना है... तीर्थंकर को तो उस भव में मोक्ष होना ही है। छाप लेकर आये हैं। **और चार ज्ञान—मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय इनसे युक्त है...**

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनिपना में भी उग्र स्थिरता करेंगे, तब केवलज्ञान पायेंगे। चार ज्ञान हो तो भी अन्दर विशेष उग्र स्थिरता करेंगे, तब शुक्लध्यान होगा और केवलज्ञान होगा। '**करोति तपश्चरणम्**' लो। चार ज्ञानसहित ऐसे तीर्थंकर हैं तो भी **तपश्चरण करता है,...** स्वरूप में उग्र रमणता करते हैं। आया था न? चारित्र में शुद्ध उपयोग की परिणति को बलपूर्वक रोकना, वह तप है। ऐसा तप यहाँ कहते हैं। समझ में आया? ५६ में आया था। बलपूर्वक आया था न? कार्तिकेयानुप्रेक्षा में आया था। कार्तिकेयानुप्रेक्षा में तप की व्याख्या (आयी थी)। स्वरूप का अनुभव, स्वरूप का ज्ञान और स्वरूप का चारित्र, अन्दर में, उसमें भी उग्र पुरुषार्थ जोर से करे तब तप कहने में आता है। तप की व्याख्या आ गयी।

यहाँ कहते हैं, भगवान समकित लेकर तो आये हैं। बहुत तीर्थंकर तो क्षायिक समकित लेकर आते हैं। समझ में आया? कोई क्षयोपशम लेकर (आते हैं)। कोई तीर्थंकर क्षयोपशम लेकर आते हैं। ज्ञान तो चारित्ररहित है। समझ में आया? उसकी मुक्ति होगी। देखो! **तीर्थंकर भी तपश्चरण करता है, इस प्रकार निश्चय से जानकर ज्ञानयुक्त होने पर भी तप करना योग्य है।** चारित्र लेना योग्य है। ६०। देखो! **जिसको नियम से मोक्ष होना है... और जो चार ज्ञान—मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय इनसे युक्त है ऐसा तीर्थंकर भी...** स्वरूप में उग्रपने पुरुषार्थ करते हैं, ऐसा कहते हैं। चारित्र लिया तो भी विशेष पुरुषार्थ करते हैं। आहाहा! **इस प्रकार निश्चय से जानकर ज्ञानयुक्त होने पर भी तप करना योग्य है।** तप की व्याख्या लोग क्या समझते हैं? कि उपवास करना। वह नहीं, यहाँ तो मुनिपना चारित्र को तप कहने में आता है। तपकल्याणक कहते हैं न? तपकल्याणक। भगवान के तपकल्याणक का अर्थ क्या? चारित्र लिया वह।

भावार्थ :- तीर्थंकर मति-श्रुत-अवधि इन तीन ज्ञान सहित तो जन्म लेते हैं... देखो ! तीन ज्ञानसहित तो जन्म लेते हैं। **और दीक्षा लेते ही मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न हो जाता है,...** तुरन्त मन:पर्यय ज्ञान उत्पन्न होता है। चारित्र अन्दर प्रगट हुआ (कि) मन:पर्यय ज्ञान (उत्पन्न हो जाता है)। **मोक्ष उनको नियम से होना है...** और मोक्ष तो नियम से होनेवाला है। परन्तु चारित्र बिना मोक्ष होता नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? **तो भी तप करते हैं,...** निश्चय से मोक्ष होना है तो भी स्वरूप में रमणता की उग्रता करते हैं। आहा ! **इसलिए ऐसा जानकर ज्ञान होते हुए भी तप करने में तत्पर होना,...** चारित्र लेकर भी स्वरूप में उग्र पुरुषार्थ करने को तत्पर होना। ओहोहो ! समझ में आया ? **ज्ञानमात्र ही से मुक्ति नहीं मानना।** अकेले सम्यग्ज्ञान से भी मुक्ति नहीं होती है। समझ में आया ? सम्यग्ज्ञान में अनुभव होने पर भी चारित्र जब होगा, तब मुक्ति होगी; नहीं तो नहीं होगी। चारित्रदशा की उग्रता बताने को बात की है। समझ में आया ?

प्रवचनसार में बहुत लिया है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान है तो भी चारित्र बिना; अनुभव है तो भी चारित्र बिना मुक्ति नहीं होगी। स्वरूप में आनन्द में लीनता, आनन्द में लीनता। आनन्द का अनुभव तो हुआ। चौथे, पाँचवें में आनन्द का अनुभव होता है। स्वरूप में लीनता तो चारित्रदशा में होती है। और यह चारित्र की रमणता बिना मुक्ति होती नहीं। ज्ञानी का भोग निर्जरा का हेतु है कहा। भोग निर्जरा का हेतु है नहीं। दृष्टि में शुद्धता का जोर है, शुद्ध आनन्दकन्द में जहाँ अन्तर जोर पड़ा है, उस अपेक्षा से उसको भोग में अवलम्बन है, उसकी गिनती नहीं की। भोग यदि निर्जरा का कारण हो तो भोग छोड़कर चारित्र लेना कहाँ आया ? भोग में रहते-रहते मुक्ति हो जायेगी। समझ में आया ? ऐसा है नहीं। भोग का विकल्प छोड़कर स्वरूप की चारित्रदशा करेगा, तब मुक्ति होगी। आहा ! ऐसे कहे कि ज्ञानी को भोग में निर्जरा होती है।

ज्ञानमात्र ही से मुक्ति नहीं मानना। लो, विशेष दूसरी बात बाह्य लिंग की करेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन-८६, गाथा-६१-६२, शनिवार, भाद्र शुक्ल १२, दिनांक १२-०९-१९७०

दसलक्षणी पर्व का अष्टम दिन है। त्यागधर्म कहते हैं। यहाँ तो मूल मुनि की व्याख्या है। मुनि, जिसको आत्मा का सम्यग्दर्शन हुआ है और इसके अलावा स्वरूप की चारित्रदशा हुई है। स्वरूप में रमणता का आनन्द आदि का विशेष भाव हुआ है। उसको त्याग में क्या होता है, वह बात चलती है।

जो चयदि मिट्ठभोज्जं, उवयरणं रायदोससंजणयं।
वसदिं ममत्तहेदुं, चायगुणो सो हवे तस्स॥४०१॥

अन्वयार्थ :- जो मुनि... उसमें मुनि की व्याख्या है न? मुनि की व्याख्या है। **मिष्ट भोजन को छोड़ता है...** वैसे तो मिथ्यात्व छूट गया है, समझ में आया? संसार, देह, भोग से तो ममत्व छूट गया है, इससे अतिरिक्त जिसकी प्रवृत्ति में थोड़ी आसक्ति हो जाये, वह आसक्ति नहीं करना, उस आसक्ति का त्याग करना उसका नाम त्यागधर्म कहने में आता है। छोड़ता है, भोजन को छोड़ता है। भाषा क्या है? एक ओर कहे कि भगवान आत्मा अपना आनन्दस्वरूप में लीन रहता है तो राग का त्यागकर्ता भी आत्मा नहीं। अमरचन्दभाई! त्याग किसका करे? दृष्टि में तो आत्मा है, चैतन्य है, आनन्द है। उसमें तो राग है नहीं। किसका त्याग करना? अपने स्वभाव में स्थिर होते हैं तो उस प्रकार का राग उत्पन्न नहीं होता, उसको राग छोड़ते हैं—ऐसा कहने में आता है। यहाँ तो जड़ भोजन को छोड़ता है, (ऐसा कहा)। उपदेश की कथन पद्धति ऐसी होती है कि वह व्यवहार से न समझे, क्योंकि यह व्यवहार का कथन है। भोजन का त्याग-ग्रहण तो आत्मा में है नहीं। ऐसा अनुभव तो पहले से लिया है।

आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव है, यह तो पहले से अनुभव में लिया है। पर का त्याग-ग्रहण तो आत्मा में है ही नहीं। फिर भी यहाँ कहते हैं कि मुनि मिष्ट भोजन को छोड़ता है। सही है न? व्यवहार की कथन शैली ऐसी है। अमरचन्दभाई! बताना है कि अपने स्वरूप में चारित्रदशा प्रगट हुई है, उसमें विशेष लीनता से आसक्ति का छूट जाना, उसका नाम त्यागधर्म कहने में आता है। कथन शैली शास्त्र की ऐसी है।

'रायदोससंजणयं उवयरणं' राग-द्वेष उत्पन्न करनेवाले उपकरण को छोड़ता है। उपकरण तो उसको मोरपिच्छी, कमण्डल और पुस्तक हो। दूसरा तो होता नहीं। उसके प्रति भी आसक्ति की वृत्ति हो, वह छोड़ दे। अर्थात् स्वरूप में विशेष लीनता होते हैं तो वह छूट जाता है, उसको छोड़ दे—ऐसा कहने में आता है। शास्त्रभाषा... गजब। इस प्रकार से बात की। संक्षेप में बात करनी हो तो कैसे करे? '**ममत्तहेदुं वसदिं**' ममत्व का कारण जो बस्ती-रहने का स्थान। है तो मुनि ध्यानी ज्ञानी। छठवें गुणस्थान में आत्मज्ञान सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र सहित, (वह) **ममत्व का कारण वसतिका को छोड़ता है, उस मुनि के त्याग नाम का धर्म होता है।** देखो! वस्तु की स्थिति।

भावार्थ :- मुनि के संसार देह भोग के ममत्व का त्याग तो पहिले ही है। मिथ्यात्व का तो त्याग है ही, परन्तु संसार देह भोग के विकल्प का भी त्याग है। **जिन वस्तुओं से काम पड़ता है...** मुनि को ध्यानी ज्ञानी छठवें गुणस्थान में चारित्रवन्त हैं, उनको जिन वस्तुओं से काम पड़ता है, **उनको मुख्यरूप से कहा है। आहार से काम पड़े तो सरस नीरस का ममत्व नहीं करे,...** इतनी बात है। आहा! चारित्र तो है ही। तीन कषाय का अभाव ऐसा चारित्र तो है ही। इससे अतिरिक्त उसे जिसके साथ प्रवृत्ति करनी पड़ती है, उसमें तीव्रता न आने दे, आसक्ति छोड़ दे, उसका नाम त्याग है। **धर्मोपकरण पुस्तक पिच्छी कमण्डलु जिनसे राग तीव्र बँधे, ऐसे न रखे,...** समझ में आया? धर्म के उपकरण हैं—पुस्तक, पिच्छी, कमण्डलु इतने उपकरण हैं। दूसरे उपकरण तो मुनि को होते नहीं। वस्त्रादि तो होते नहीं। आहा!

मुमुक्षु : चश्मा...

पूज्य गुरुदेवश्री : चश्मा ठीक कहते हैं। सेठ, ठीक निकालते हैं। चश्मा-बश्मा होता नहीं। मुनि को चश्मा कैसा? वस्त्र का टुकड़ा नहीं होता तो चश्मा कैसा? चश्मा परिग्रह है। बात ऐसी है। कठिन है। चारित्रवन्त की बात है, हों! सम्यग्दर्शन अनुभवसहित जिसको चारित्र अन्तर आनन्द तीन कषाय के अभाव से प्रगट हुआ है, उसकी बात है। ऐसे दूसरे में ऐसा कहा है, पुस्तक आदि कोई माँगे तो मुनि छोड़ दे। त्याग है ले जाओ, भैया! हमारे इतना आलम्बन छूट गया। हमारा आत्मा ही हमको ज्ञान ध्यान में आलम्बन है। दूसरी जगह ऐसा लिया है। पद्मनन्दि पंचविंशति में।

जो गृहस्थजन के काम न आवे,... ऐसा उपकरण रखे। देखो! गृहस्थाश्रम को काम न आवे ऐसा उपकरण मोरपिच्छी, कमण्डल, पुस्तक रखे। **बड़ी वसतिका रहने की जगह से काम पड़े तो ऐसी जगह न रहे...** ऐसी जगह में न रहे कि **जिससे ममत्व उत्पन्न हो, ऐसे त्याग धर्म का वर्णन किया।** लो, उसका नाम त्यागधर्म है। लोग कहते हैं न कि बाहर से छोड़ना, बाहर से छोड़ना, बाहर से छोड़ना सम्यग्दर्शन बिना, उसकी यहाँ बात है ही नहीं। समझ में आया? और चारित्रसहित भी बाहर से छोड़ना, वह भी व्यवहार का कथन है। समझ में आया? नहीं तो विरोध जो जाये। एक ओर ऐसा कहे कि राग का त्याग का कर्ता आत्मा परमार्थ से है नहीं। और एक ओर कहे कि भोजन को छोड़ना। तो पूर्वापर विरोध हो गया। अमरचन्दभाई! उसका अर्थ है कि उसकी आसक्ति छूटती है तो छोड़ना। परन्तु छोड़ना तो नास्ति से हुआ। अपने शुद्ध चैतन्य आनन्द में विशेष लीन होते हैं तो इतनी वृत्ति छठवें गुणस्थान में चारित्रवन्त को भी उत्पन्न नहीं होती, तो उसको छोड़ना ऐसा असद्भूत व्यवहारनय का कथन है। आहाहा! शास्त्रभाषा से चर्चा करने लगे तो पार आये ऐसा नहीं है। यह तो असद्भूत व्यवहारनय का कथन है। आहार को छोड़ना, उपकरण को छोड़ना, ऐसा वसति को छोड़ना। समझे? आहा! कठिन मार्ग, बापू! वह त्यागधर्म हुआ। विरक्त व्यक्ति ही मुनिपद का अधिकारी है, कहीं से लिया है। विरक्त व्यक्ति ही मुनिपद का अधिकारी है। कहीं से लिखा है, कहीं से भी लिखा हो। उसमें लिखा है...

अब यहाँ आया। कहाँ गाथा आयी? ६० हो गयी। भावार्थ बाकी है? हो गया है। हो गया हो तो कई बार आपको खबर नहीं रहती। भावार्थ हो गया है, खबर है। ६१।

गाथा-६१

आगे जो बाह्यलिंग सहित है और अभ्यन्तरलिंग रहित है, वह स्वरूपाचरण चारित्र से भ्रष्ट हुआ, मोक्षमार्ग का विनाश करनेवाला है, इस प्रकार सामान्यरूप से कहते हैं –

बाहिरलिंगेण जुदो अब्भंतरलिंगरहियपरियम्मो।
सो सगचरित्तभट्ठो मोक्खपहविणासगो साहू।।६१।।

बाह्यलिंगेन युतः अभ्यंतरलिंगरहितपरिकर्म्मा।
सः स्वकचारित्रभ्रष्टः मोक्षपथविनाशकः साधुः।।६१।।

जो अन्तरंगी लिंग बिन बहि लिंग से करता क्रिया।
वह स्वक-चरित्र से भ्रष्ट मुनि शिव-मग-विनाशक जिन कहा।।६१।।

अर्थ - जो जीव बाह्य लिंग-भेष सहित है और अभ्यन्तर लिंग जो परद्रव्यों में सर्व रागादिक ममत्वभाव रहित ऐसे आत्मानुभव से रहित है तो वह स्वक-चारित्र अर्थात् अपने आत्मस्वरूप के आचरण-चारित्र से भ्रष्ट है, परिकर्म अर्थात् बाह्य में नग्नता, ब्रह्मचर्यादि शरीरसंस्कार से परिवर्तनवान द्रव्यलिंगी होने पर भी वह स्व-चारित्र से भ्रष्ट होने से मोक्षमार्ग का विनाश करनेवाला है।।६१।। (अतः मुनि-साधु को शुद्धभाव को जानकर निज शुद्ध बुद्ध एकस्वभावी आत्मतत्त्व में नित्य भावना (एकाग्रता) करनी चाहिए।) (श्रुतसागरी टीका से)

भावार्थ - यह संक्षेप से कहा जानो कि जो बाह्यलिंग संयुक्त है और अभ्यंतर अर्थात् भावलिंग रहित है, वह स्वरूपाचरण चारित्र से भ्रष्ट हुआ मोक्षमार्ग का नाश करनेवाला है।।६१।।

गाथा-६१ पर प्रवचन

आगे जो बाह्यलिंग सहित है और अभ्यन्तरलिंग रहित है, वह स्वरूपाचरण चारित्र से भ्रष्ट हुआ मोक्षमार्ग का विनाश करनेवाला है, इस प्रकार सामान्यरूप से कहते हैं :- देखो!

बाहिरलिंगेण जुदो अब्भंतरलिंगरहियपरियम्मो।
सो सगचरित्तभट्ठो मोक्खपहविणासगो साहू।।६१।।

य है। '**परियम्मो**' य का क होता है। साधु की बात है। मोक्ष का साधन है न वहाँ?

अर्थ :- जो जीव बाह्य लिंग-भेष सहित है... नग्न लिंग, दिगम्बर लिंग। स्त्री, कुटुम्ब सब छोड़कर रहा है। **और अभ्यन्तर लिंग जो परद्रव्यों से सर्व रागादिक ममत्वभाव ऐसे आत्मानुभव से रहित है...** परन्तु अन्तर में... लो, यह बात आयी। राग का

अभावस्वभावरूप आत्मा के आनन्द में लीन है, वह अभ्यन्तर लिंग है। सम्यग्दर्शन सहित स्वरूप में लीनता, वह अभ्यन्तर लिंग है। बाह्य लिंग अट्ठाईस मूलगुण विकल्प और नग्नपना बाह्य लिंग है। वह बाह्य लिंग होने पर भी यदि अभ्यन्तर लिंग नहीं है तो उसको कुछ लाभ होता नहीं। समझ में आया?

परिकर्म अर्थात् बाह्य में नग्नता, ब्रह्मचर्यादि शरीर संस्कार से परिवर्तनवान... अर्थात् रागादि से रहित नहीं है, अभ्यन्तर लिंग सहित नहीं है तो **वह स्व-चारित्र से...** अपने आत्मस्वरूप का आचरण सो चारित्र, उससे **भ्रष्ट होने से...** बाह्य की क्रिया अट्ठाईस मूलगुण या नग्नपना वह कोई आत्मचारित्र नहीं है। आहाहा! स्व-चारित्र (अर्थात्) अपने आत्मस्वरूप का आचरण। शुद्ध आनन्दस्वरूप के अनुभव अतिरिक्त अन्तर लीनता का आचरण, अन्दर आनन्दकन्द का (आचरण)। आहाहा!

मुमुक्षु : स्वक...

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वक (अर्थात्) अपना। लिया न अर्थ में? स्वक चारित्र अर्थात् अपना। स्वक अर्थात् अपना। आत्मस्वरूप का। अपना अर्थात् आत्मस्वरूप का। चारित्र अर्थात् आचरण। अपना आनन्दस्वरूप ऐसा आत्मा, उसके स्वरूप का आचरण, वह चारित्र। अट्ठाईस मूलगुण आदि विकल्प, वह चारित्र-आचरण नहीं। समझ में आया? उससे भ्रष्ट है। अपना स्वस्वभाव शुद्ध आनन्दकन्द, उसके आचरण से भ्रष्ट है और अकेला बाह्यलिंग धारण करता है, उसमें आत्मा को कुछ लाभ है नहीं।

स्व-चारित्र से भ्रष्ट होने से मोक्षमार्ग का विनाश करनेवाला है... आहाहा! देखो!

मुमुक्षु : अपने आप नाश करता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं। दूसरा कौन नाश करे? अपना शुद्ध स्वभाव पवित्र पिण्ड प्रभु आत्मा, उसकी दृष्टिपूर्वक स्वरूप का आचरण, अन्दर लीनता का निर्विकल्प आचरण, उस आचरण से भ्रष्ट है, मोक्षमार्ग का नाश करता है। ऐ... प्रकाशदासजी! बड़ी कठिन बातें आयी। पंच महाव्रत का विकल्प होने पर भी। और नग्नपना, हों! ये वस्त्रवाले तो द्रव्यलिंगी भी नहीं है। वस्त्रसहित जो मुनि मानते हैं, वह तो द्रव्यलिंगी भी नहीं। जिसका द्रव्यलिंग नग्न है और अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रतादि का विकल्प है, परन्तु आत्मस्वभाव का आचरण और चारित्र नहीं है तो मोक्षमार्ग से भ्रष्ट है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : प्राप्त न होना, उसका अर्थ नाश है। भाषा क्या करे? मोक्षमार्ग नहीं है, उसका अर्थ कि विनाश है, ऐसा। उसको मोक्षमार्ग है नहीं। आहाहा! समझ में आया? देखो! मोक्षमार्ग तो एक ही कहा। शुद्ध चैतन्यवस्तु की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वीतरागी निर्विकल्प शान्ति, आनन्द, वही एक मोक्ष का मार्ग है। आहाहा!

स्वक-चारित्र है न? पाठ में है या नहीं? '**सगचरित्तभट्ठो**' है न? दूसरा पद है पाठ में। '**सो सगचरित्तभट्ठा**' '**सग**' अर्थात् अपने आत्मा का शुद्ध स्वभाव का आचरण। विकल्प है, वह स्व आत्मा का चारित्र नहीं। आहाहा! पंच महाव्रत का विकल्प, अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प, वह स्व चारित्र नहीं। वह तो परचारित्र विभावचारित्र है। आहा! समझ में आया? ऐसा पहले निश्चित करना पड़ेगा कि ऐसा चारित्र है। भले दिखता नहीं परन्तु मार्ग ऐसा है। ऐसा उसको निर्णय करना पड़ेगा। सेठ!

मोक्षमार्ग का विनाश करनेवाला है। अर्थात् मोक्षमार्ग की उत्पत्ति करनेवाला नहीं है, उसका नाम नाश करनेवाला है।

भावार्थ :- यह संक्षेप से कहा जानो कि जो बाह्यलिंग संयुक्त है और अभ्यन्तर अर्थात् भावलिंग रहित है, वह स्वरूपाचरणचारित्र से भ्रष्ट हुआ,... लो, स्वरूप का आचरण तो है नहीं। आनन्दस्वरूप भगवान, उसका ज्ञानाचार, दर्शनाचार, आनन्दाचार ऐसा स्वभाव का आचरण तो है नहीं और अकेला विकल्प का आचरण है। समझ में आया? **भ्रष्ट हुआ मोक्षमार्ग का नाश करनेवाला है**। पंच महाव्रत हो, अट्ठाईस मूलगुण हो तो भी कहते हैं कि अपना स्वभाव स्व शुद्ध चैतन्य आनन्द की दृष्टि, ज्ञान और रमणता नहीं है तो वह स्वचारित्र अर्थात् मोक्षमार्ग से भ्रष्ट है। आहाहा! समझ में आया? समझ में आता है? उत्कृष्ट बात बहुत ऊँची है। परन्तु मार्ग तो ऐसा ही है। अब आगे कहे देखो।

कल आया था न? समाधिशतक १०२ श्लोक, वही गाथा यह है। समाधिशतक में १०२ गाथा है, परन्तु यह मुनि के लिये बात है। सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है, आत्मचारित्र है परन्तु ध्यान में रहने में उसकी सहनशीलता न हो तो ध्यान से छूट जाता है। समझ में आया? वह बात कहते हैं, देखो!

गाथा-६२

आगे कहते हैं कि जो सुख से भावित ज्ञान है वह दु:ख आने पर नष्ट होता है इसलिए तपश्चरणसहित ज्ञान को भाना –

सुहेण भाविदं णाणं दुहे जादे विणस्सदि।
तम्हा जहाबलं जोई अप्पा दुक्खेहि भावए।।६२।।

सुखेन भावितं ज्ञानं दु:खे जाते विनश्यति।
तस्मात् यथाबलं योगी आत्मानं दु:खैः भावयेत्।।६२।।

हो सुख से भावित ज्ञान दुख की व्यक्तता में नष्ट हो।
अतएव योगी यथा-शक्ति दु:ख से भा आत्म को।।६२।।

अर्थ – सुख से भाया हुआ ज्ञान है, वह उपसर्ग-परीषहादि के द्वारा दु:ख उत्पन्न होते ही नष्ट हो जाता है, इसलिए यह उपदेश है कि जो योगी ध्यानी मुनि है, वह तपश्चरणादि के कष्ट (दु:ख) सहित आत्मा को भावे। (अर्थात् बाह्य में जरा भी अनुकूल-प्रतिकूल न मानकर निज आत्मा में ही एकाग्रतारूपी भावना करे, जिससे आत्मशक्ति और आत्मिक आनंद का प्रचुर संवेदन बढ़ता ही है।)

भावार्थ – तपश्चरण का कष्ट अंगीकार करके ज्ञान को भावे तो परीषह आने पर ज्ञानभावना से चिगे नहीं, इसलिए शक्ति के अनुसार दु:ख सहित ज्ञान को भाना, सुख ही में भावे तो दु:ख आने पर व्याकुल हो जावे, तब ज्ञानभावना न रहे, इसलिए यह उपदेश है।।६२।।

गाथा-६२ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो सुख से भावित ज्ञान है... ज्ञान अर्थात् आत्मा। ज्ञान अर्थात् अकेला ज्ञान नहीं। सम्यग्ज्ञान तो चौथे गुणस्थान में भी होता है और चक्रवर्ती का राज भी है तो वह ज्ञान से भ्रष्ट है नहीं। समझ में आया? परन्तु यहाँ ज्ञान शब्द का अर्थ आत्मा।

आत्मा का दर्शन, आत्मा का ज्ञान और आत्मा का चारित्र। उसको यहाँ ज्ञान शब्द से कहा गया है। आत्मा की भावना को यहाँ ज्ञान कहते हैं। आगे कहा न? स्वचारित्र। **सुख से भावित ज्ञान है...** अर्थात् प्रथम भूमिका में ध्यान की उत्कृष्टता का अभ्यास न हो और साधारण ध्यान करने बैठा और शरीर का कष्ट आ पड़े। शरीर भी ठीक रह सके नहीं, आहार-पानी भी मिला न हो और ऐसे स्वभाव में शान्ति का, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रसहित मुनि की बात है। देखो! है न? '**जोई**'—जोगी। यहाँ जोगी-मुनि की बात है। वहाँ १०२ में भी मुनि की बात है। वहाँ मुनि शब्द पड़ा है। समाधितन्त्र १०२ श्लोक है। देखो!

णाणअदुःखभावितं ज्ञानं क्षीयते दुःखसन्निधौः।
तस्माद्यथाबलं दुःखैरात्मानं भावयेन्मुनिः॥१०२॥

मुनि की बात है। मुनि तो है, सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है, चारित्र-स्वरूप रमणता भी अन्दर है, परन्तु ध्यान करने में प्रतिकूलता आती है तो इतनी अस्थिरता हो जाये तो उस प्रतिकूलता में सहनशीलता का भाव प्रगट करना कि जिससे डिगे नहीं। अपने ध्यान में से डिगे नहीं। ध्यान तो समकिती को होता है और चारित्रवन्त को होता है, उसकी बात है। समझ में आया? अज्ञानी बाह्य कष्ट सहन करे, उसमें कुछ है ही नहीं, वह तो दुःख और आर्तध्यान का पापभाव है। समझ में आया? दुःख लगे, ऐसी भाषा यहाँ नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं जो आत्मभावना दुःख बिना भायी जाती है, ध्यानी को-मुनि को, **वह उपसर्गादिक दुःखों के उपस्थित होने पर नष्ट हो जाता है।** अन्दर डिग जाये। प्रतिकूलता होने लगी, कुछ हवा लगी, बरसात आया, कोई बिच्छू काटा, सर्प का डंक (लगा)। बैठा हो आत्मा के ध्यान में परन्तु सहनशीलता की विशेष शक्ति न हो तो, हमारे गुजराती में सुखशिलीया शब्द लिया है। समझ में आया? सुखशिलीया है। शाताशीलपना है। देखो! उसमें है। सुखशिलीया हमारी गुजराती भाषा है। सुखशिलीया का अर्थ गुजराती में... गुजराती बना है, छपा है। किसने बनाया है? बोटाद के छोटाभाई गाँधी थे। अपने दिगम्बर। उसने बहुत स्पष्ट किया है। गुजर गये।

मुमुक्षु : प्रवचन हुए थे?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पहले हुए थे। शाताशीलपना। अनुकूलता में अन्दर आसक्ति

हो जाये और ध्यान से डिग जाये तो उसको बराबर प्रतिकूलता के स्थान में अनुकूलता की इच्छा न रहो और शान्ति सहनशीलता की हो उसको यहाँ '**दुक्खेहि भावए**' कहने में आता है। दु:ख का अर्थ कष्ट नहीं। कष्ट तो दु:ख है। वह तो शब्द कायक्लेश है। देखो! कायक्लेश है न? पाठ में भी है। '**ज्ञानं क्षीयते दु:खसन्निधौ:। तस्माद्यथाबलं दु:खैरात्मानं**' दु:ख शब्द पड़ा है न? दु:ख का अर्थ वह। प्रतिकूलता के स्थान में संयोग में... है तो ज्ञानी, है तो ध्यानी, है तो चारित्रवन्त, वह मुनि '**भावयेन्मुनि**' अपने आत्मस्वरूप की भावना इतनी उग्रता करे कि जिससे प्रतिकलता के योग में उससे चलायमान हो सके नहीं। समझ में आया? उसमें बहुत विस्तार लिया है। इसमें समाधिशतक में भी लिया है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान में तीन गुप्ति है। ये तो ध्यान में पहले साधारण अभ्यास है... उसने लिखा है, देखो! अभी पूछा था न कि शरीर के ... शरीर में कुछ प्रतिकूलता आ जाए तो सहन नहीं कर सकता। उसे ऐसे समभाव का अभ्यास करना कि प्रतिकूलता आये तो भी समभाव से हटे नहीं। देखो! कहते हैं, साधारण ध्यानी पुरुषों की अपेक्षा से यह बात ठीक है। साधारण ध्यानी। मुनि है तो मुनि। परन्तु अभी ध्यान में बहुत जम नहीं जाते। साधारण ध्यानी पुरुषों की अपेक्षा से यह बात ठीक है। क्योंकि जिनको शरीर को सुखिया रखकर... लो, सुखिया आया आपका। शाताशिलीया अर्थात् कल क्या कहा था? सुखिया। सुखिया आपका हिन्दी शब्द है। कोमलता। सुखिया अर्थात् मैं अनुकूल रखूँ। सुखिया रखकर ध्यान करने की आदत होती है, उनका ध्यान कष्टों के आने पर जमा हुआ नहीं रह सकता। इतनी बात है। है तो मुनि ध्यानी समकिती ज्ञानी। परन्तु आसक्ति में थोड़ा सा हट जाते हैं...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना नहीं करना, बस, इतनी बात है। है तो मुनि, है तो समकिती। सहज ध्यान करने की योग्यतावाला। परन्तु शुरुआतवाला है तो प्रतिकूलता में शान्ति रहे, ऐसा अभ्यास करना। प्रतिकूलता में शान्ति विशेष रहे, सहज। समझ में आया? ऐसा प्रयत्न-अभ्यास करना। बहुत लम्बी बात है। शरीर के कष्टों को थोड़ा भी सहन नहीं

कर सकता। जवान की भाषा की है। कोई तीव्र निन्दा की भाषा बोले, सहनशक्ति नहीं हो तो डिग जाये ध्यान से। अरे! क्या महाराज? क्या ध्यान करते हो? भान बिना? ऐसा सुनकर ऐसा अभ्यास रखे कि ऐसी भाषा आती है तो समता सम्यग्दर्शन सहित चारित्र सहित समता विशेष करनी।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हो जाये स्थिरता है या नहीं? आर्तध्यान आ जाता है या नहीं? मुनि को भी आर्तध्यान है या नहीं? रौद्रध्यान नहीं है। छठवें गुणस्थान में भी आर्तध्यान आ जाता है। पंचम गुणस्थानवर्ती गृहस्थ को रौद्रध्यान आ जाता है। तो भी पंचम गुणस्थान आत्मज्ञान, आत्मदर्शन छूटता नहीं। समझ में आया? समकिती पंचम गुणस्थानवाला। समझे? आहाहा!

मुमुक्षु : क्षुल्लक अवस्था में ध्यान हो सकता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पंचम गुणस्थान में होता है। ठीक, प्रश्न करते हैं। आहाहा! चौथे गुणस्थान में थे, लो! श्रीकृष्ण वासुदेव बलदेव जैसे। आहाहा! द्वारिका जली। अग्नि प्रज्वलित हुई। भाई! कहाँ जायेंगे? समकिती ज्ञानी थे। दोनों ज्ञानी थे। परन्तु वह आर्तध्यान का विकल्प आ जाये। है तो उसका ज्ञाता। ऐई! अरे! अभाव हुआ नहीं। समझ में आया? सोने का गढ़ और मणिरत्न का कांगरा। बारह योजन चौड़ी और नौ योजन लम्बी द्वारका। हजारों तो मणिरत्न के जिनमन्दिर। मणिरत्न के! और प्रतिमा मणिरत्न की। अग्नि द्वारा जले। आहाहा! दोनों खड़े रहकर देखे। क्या करे? समकिती है, ज्ञानी है, श्रीकृष्ण तो तीर्थंकर होनेवाले हैं। बलदेव तो उस भव में मोक्ष जानेवाले हैं या स्वर्ग में।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : द्वारिका का बहुत मालूम नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : करते हैं द्रव्यलिंगी। वास्तव में ... था। क्योंकि भगवान का वचन था कि इस द्वीपायन के कारण द्वारिका जलेगी। तो वो बाहर निकल गया। भगवान के वचन को झूठा ठहराने को बाहर चला गया। मैं बाहर चला जाऊँ तो मेरे कारण द्वारिका नहीं

जलेगी। परन्तु भगवान का वचन बदले तीन काल में? केवलज्ञानी का वचन है, वह त्रिकाल में बदले नहीं। द्वारिका जली। आहाहा! श्रीकृष्ण वासुदेव बलदेव पर हाथ रखकर (कहते हैं), भाई! कहाँ जायेंगे? आहाहा! समझ में आता है? 'तरसे तरफडे त्रिकमो कोई नहि पाणीनो पानार।' समकिती ज्ञानी तीर्थंकर होकर मोक्ष जानेवाला। समझ में आया? पानी नहीं मिलता। ये सब तो हमने दुकान पर पढ़ा है। चार सज्झायमाला है न? तुम्हारे में सज्झायमाला नहीं है, श्वेताम्बर में है। हजारों सज्झाय बनाई है। उसके चार पुस्तक हैं। वह तो दुकान पर हमने सब देखा है। उसमें वह आया है। दुकान पर, हों! संवत् १९६४-६५-६६।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे लगा कि मुझसे जलेगी तो मैं बाहर निकल जाऊँ। बाहर निकल जाने से भगवान का वचन झूठा ठहरेगा? जरतकुमार भी बाहर निकल गया। भगवान ने कहा जरतकुमार के कारण श्रीकृष्ण का देह छूटेगा। आहाहा! बाहर निकल गया। बाहर निकल गया तो न्याय बदल जाये?

मुमुक्षु : केवलज्ञान की बात तीन काल में (फिरे नहीं)।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीन काल में (नहीं बदले)। जैसा है, ऐसा आया ... भाई! कहाँ जायेंगे? रोते हैं, हों! है समकिती, है ज्ञानी। विकल्प आया, उसका भी ज्ञाता है। आँख में से आँसू आये, उसमें भी समकिती ज्ञाता है। आहाहा! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान क्या चीज़ है? अलौकिक चीज़ है! ऐसी जहाँ अन्तर अनुभव की दृष्टि हुई, कहते हैं कि फिर रोना आया, रौद्रध्यान हो, समझ में आया? फिर भी ज्ञानी के ज्ञान में और समकित में कोई बाधा नहीं है, विघ्न है नहीं।

यहाँ तो चारित्र की बात करते हैं। समझ में आया? ज्ञान ऐसा नहीं है कि सम्यग्ज्ञान हुआ और कष्ट आये तो छूट जाये। इसलिए कष्ट सहन करना, ऐसा चौथे गुणस्थान में होता ही नहीं। चौथे गुणस्थान में ९६ हजार तो स्त्रियाँ थीं। करोड़ों अप्सरायें चौथे गुणस्थान में हैं। क्षायिक समकित है। शकेन्द्र अभी है। उसमें क्या है? बाह्य की चीज़ उसको नुकसान कर दे? चारित्रमोह का उदय क्या सम्यग्दर्शन को नुकसान करे? तीन काल में नहीं। भाई!

पंचाध्यायी में आता है न? समकित और चारित्रमोह की बहुत व्याख्या की है। एक गुण की पर्याय दूसरे गुण की पर्याय को क्या नुकसान कर सकती है? आहाहा! क्या कहा? अपने सम्यक् चैतन्यमूर्ति का अनुभव सम्यग्दर्शन हुआ, फिर चारित्रमोह की तीव्रता आयी, राग कठोर आया, रौद्रध्यान आदि तो क्या सम्यग्दर्शन को नुकसान करता है? दूसरे गुण की पर्याय दूसरे गुण की पर्याय को हानि कर सकता है? तीन काल में नहीं। समझ में आया? कठिन बात है, भाई!

यहाँ कहना है, वह दूसरी बात है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रसहित है। ध्यान की इतनी स्थिरता नहीं हुई हो, साधारण प्राणी है, साधारण अर्थात् छठवें गुणस्थानवर्ती चारित्रवन्त। परन्तु उसके योग्य जो ध्यान की लीनता जमनी चाहिए तो सहनशीलता बहुत हो तो ध्यान हो सके। नहीं तो ध्यान से च्युत हो जाय। समझ में आया? वह बात यहाँ १०२ में है। समझे? मुनि शब्द है न? '**दुःखैरात्मानं भावयेन्मुनिः**' प्रतिकूलता आती है तो शान्ति से सहन करते हैं, उसका नाम '**दुःखैरात्मानं**' भाषा है। दुःख शब्द का अर्थ यहाँ अभी आयेगा–प्रयत्न। कठोर प्रयत्न। कठिन... क्या कहते हैं? कठिन। आयेगा यहाँ। दुःखता है तो दुःख की भावना... उसमें भी आयेगा। अरे! शीलपाहुड़ है न? शीलपाहुड़ की तीसरी गाथा। शीलपाहुड़ है, उसकी तीसरी गाथा, देखो! उसमें तीसरी है। देखो!

दुक्खे णज्जदि णाणं णाणं णाऊण भावणा दुक्खं।
भावियमई व जीवो विसयेसु विरज्जए दुक्खं॥३॥

तीसरी गाथा, शीलपाहुड़।

अर्थ :- प्रथम तो ज्ञान ही दुःख से प्राप्त होता है, कदाचित् ज्ञान भी प्राप्त करे तो उसको जानकर उसकी भावना करना, बारम्बार अनुभव करना दुःख से (दृढ़तर सम्यक् पुरुषार्थ से) होता है... उसकी व्याख्या करेंगे। **कदाचित् ज्ञान की भावनासहित भी जीव हो जावे तो विषयों को दुःख से त्यागता है।**

भावार्थ :- ज्ञान की प्राप्ति करना, फिर उसकी भावना करना, फिर विषयों का त्याग करना ये उत्तरोत्तर दुर्लभ है... उसकी व्याख्या है। समझ में आया? यहाँ तो मुनि की बात है। **विषयों का त्याग किये बिना प्रकृति पलटी नहीं जाती है, इसलिए पहिले ऐसा**

कहा है कि विषय ज्ञान को बिगाड़ते हैं। अतः विषयों का त्यागना ही सुशील है। विशेष चारित्रवन्त है न। समझ में आया? पाठ तो ऐसा है, देखो! '**दुक्खे णज्जदि णाणं**' दुःख से ज्ञान प्राप्त होता है? दुःख तो आर्तध्यान है। परन्तु दुष्कर प्रयत्न से समकित ज्ञान और समकित में ज्ञान होता है। अमरचन्दभाई! दुष्कर प्रयत्न, अनन्त प्रयत्न, कठिन प्रयत्न। समझ में आया? दूसरे में आता है। उसमें होगा। अमरचन्दजी! उसके अर्थ में है। शीलपाहुड़। उसके अर्थ में है, तीसरी गाथा में है। शीलपाहुड़ की तीसरी गाथा। उसकी टीका में होगा, टीका में है। दूसरे में है। जागना सो देखो! उत्तरोत्तर दुर्लभ है, यह बताना है। लो! पहले '**दुक्खे णज्जदि णाणं**' उसका अर्थ महाप्रयत्न से सम्यग्ज्ञान और दर्शन होता है। महाप्रयत्न से ज्ञान की अन्तर एकाग्रता की भावना होती है। दुःख से उसका अर्थ ऐसा नहीं है, शब्द है। '**भावियमई व जीवो विसयेसु विरज्जए दुक्खं**' परन्तु एकाग्र होने पर भी विषय से विरक्त होना महादुर्लभ महाप्रयत्न है। दुष्कर है। समझ में आया? दुःख सहन करना, वह तो कष्ट राग है, आर्त्तध्यान है। एक ओर कहे कि दुःख सहन करने से लाभ हो, तथा एक ओर कहे दुःख सहन करना आर्तध्यान है; तो तत्त्व का विरोध हो जाये। ऐसा मार्ग है नहीं। वीतराग का मार्ग पूर्वापर विरोध होता ही नहीं। समझ में आया? और अन्तिम शब्द में है न? कष्ट है न?

२२ गाथा है, लिंगपाहुड़ की अन्तिम गाथा। अपने चलता है उसमें। लिंगपाहुड़ की २२ गाथा। हमारी बुक में ३८१ पृष्ठ नम्बर है। **इस प्रकार इस लिंगपाहुड़ शास्त्र का-सर्वबुद्ध जो ज्ञानी गणधरादि उन्होंने-उपदेश दिया है, उसको जानकर जो मुनि धर्म को कष्टसहित...** पाठ में है, देखो! '**कट्ठसहियं**'। कष्टसहित का अर्थ बड़े यत्न से पालते हैं। कष्ट का अर्थ बड़ा प्रयत्न। कष्ट का अर्थ दुःख है, ऐसा नहीं। है? **बड़े यत्न से पालता है,...** लो। अपने अभी ६५ गाथा में आयेगा। ये ६२ चलती है, ६५ में आयेगा। देखो! **आत्मा का जानना, भाना, विषयों से विरक्त होना उत्तरोत्तर यह योग मिलना बहुत दुर्लभ है,...** दुःख का अर्थ दुर्लभ है। अपने चलता है उसमें ६५ गाथा। वर्तमान चलती है वह। मोक्षपाहुड़।

दुक्खे णज्जइ अप्पा अप्पा णाऊण भावणा दुक्खं।
भावियसहावपुरिसो विसयेसु विरच्चए दुक्खं॥६५॥

महादुर्लभ है। समझ में आया? कष्टसहित यत्न करे। अर्थात् बड़ा यत्न करना, उसका नाम दु:ख है। दु:ख की व्याख्या दु:ख नहीं। महापुरुषार्थ करके आत्मा का ज्ञान मिलता है, महापुरुषार्थ करके चारित्र मिलता है, महापुरुषार्थ करके आत्मा की भावना होती है, महापुरुषार्थ करके विषय की विरक्तता सम्यग्दर्शन सहित होती है। आहाहा! दुष्प्राप्य उसमें लिखा है। देखो! दुष्प्राप्य है। दु:ख का अर्थ दु:ख नहीं, दु:ख से प्राप्त। बहुत प्रयत्न से प्राप्त, ऐसा शब्द है। है न? दुष्कर। समझ में आया?

अपने ६२ गाथा चलती है। **सुख से भाया हुआ ज्ञान...** ज्ञान शब्द का अर्थ आत्मा। सम्यग्दर्शन, ज्ञानसहित आत्मा। **वह उपसर्ग-परीषहादि के द्वारा दु:ख उत्पन्न होते ही नष्ट हो जाता है,...** सहनशीलता चारित्र में... चारित्र में, हों! समकित सहित चारित्र की बात है। विशेष न हो तो स्थिरता से भ्रष्ट हो जाये।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन तो है, सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट नहीं, चारित्र से भ्रष्ट। सम्यग्दर्शन कहाँ भ्रष्ट होता है?

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन भाया हुआ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बराबर है, मुनि का चारित्र नष्ट हो जाये। सम्यग्दर्शन का नाश कहाँ होता है? सम्यग्दर्शन तो चौथे गुणस्थान में होता है। महापरीषह को सहन करने की शक्ति नहीं है। उसमें क्या है? चारित्र भ्रष्ट हो जाये। सहनशीलता नहीं हो तो। वह क्या? कुम्हारिन से विवाह किया न माघमुनि ने? सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट नहीं है। चारित्र से भ्रष्ट है। विषय की वासना आयी और विवाह भी किया। चारित्र से भ्रष्ट है, समकित से भ्रष्ट नहीं। परन्तु लोगों को बाहर की बात ही अनादि से रुचती है। समकित से भ्रष्ट हो, तब तो क्षायिक समकिती को अनन्त-अनन्त प्रतिकूलता है और अनन्त अनुकूलता है। सातवीं नरक में अनन्त प्रतिकूलता है। कितनी प्रतिकूलता है? समकित डिगते हैं। सातवीं नरक में समकिती है। अनन्त प्रतिकूलता। रवरव नरक जितनी। उससे डिगते नहीं। अस्थिरता है। और समवसरण में, भगवान के समवसरण में द्रव्यलिंगी मुनि मिथ्यादृष्टि पड़ा हो। कितनी अनुकूलता! परन्तु राग की एकता की दृष्टि में वह अनुकूलता क्या करे? वहाँ भी समकित से भ्रष्ट है। समझ में आया?

जो योगी ध्यानी मुनि हैं... देखो ! है ? योगी ध्यानी मुनि। पाठ में है न ? '**जोई**'। तीसरा पद है। '**जोई**'। '**सुहेण भाविदं णाणं दुहे जादे विणस्सदि। तम्हा जहाबलं जोइ**'। यहाँ तो मुनि की बात है। समकिती प्रतिकूलता चली जाये तो समाप्त हो जाये। बाहर के चारित्रमोह के तीव्र उदय से भी समकित से भ्रष्ट नहीं होता।

मुमुक्षु : अपनी निर्बलता के कारण से।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह हो दूसरी बात है, परन्तु समकित से भ्रष्ट नहीं होता। मुनिपना चारित्र से लिया है, महा भगवान आत्मदशा, उसमें से ... अन्दर में मुनिपना नहीं रहेगा। समझ में आया ?

मुमुक्षु : क्षायिक सम्यग्दर्शन ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षायिक सम्यग्दर्शन कभी नहीं छूटे।

मुमुक्षु : क्षयोपशम ?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षयोपशम छूटे। यहाँ छूटने की बात है नहीं। वह पर से नहीं छूटे, अपना पुरुषार्थ उल्टा हो तो छूटे। चारित्रमोह का उदय तीव्र आया तो छूटे, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : श्रद्धा में भूल पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धा में भूल पड़े (तो) छूटे। बाकी बाहर के कारण विषय वासना... कहा नहीं ? कुन्दकुन्दाचार्य ने मूलाचार में कहा, कुन्दकुन्दाचार्य। हे मुनि ! प्रतिकूल—जिसकी श्रद्धा विरुद्ध है, वह ऐसी लकड़ी (विपरीतता) लगा देगा तो तेरी श्रद्धा भ्रष्ट करेगा। तेरी श्रद्धा में इतना विपरीत श्रद्धा लोग लगा देंगे कि सहन करते नहीं तो भ्रष्ट होगा। ऐसा लकड़े (विपरीतता) लगा देगा। तो ऐसे कुसंग में नहीं रहना। ऐसा करने से तो स्त्री के साथ विवाह कर लेना। मुनि कहते हैं। आहाहा !

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह न करना। उसका अर्थ क्या ? स्त्री का संग करे और चारित्रमोह के उदय में जुड़ जाये तो भी समकित से भ्रष्ट नहीं होता। समझ में आया ? समकित दूसरी चीज़ है, चारित्र दूसरी चीज़ है, चारित्रमोह का उदय दूसरी चीज़ है। लोगों

को कहाँ खबर है ? बाह्य का कायक्लेश आये तो लोगों को पकड़ जाये अन्दर से। दृष्टि विपरीत है न ? देखो ! कायक्लेश होता है तो सहनशीलता आयी तो धर्म से नहीं डिगता। ऐसा है ही नहीं। वहाँ तो चारित्र की बात है, समकित की बात है नहीं। पण्डितजी ! आहाहा !

रवरव नरक में कितनी पीड़ा ! उसमें सहनशीलता है नहीं। समकिती को राग आ जाता है, द्वेष आ जाता है। समकित से भ्रष्ट नहीं। समझ में आया ? और छह खण्ड के राज में चक्रवर्ती पड़ा है। कितनी उसको साता है ! छह खण्ड का राज चक्रवर्ती, समकिती क्षायिक समकिती होता है। उसके बत्तीस कवल में उतनी उम्दा चीज़ होती है कि उसका एक कवल ९६ करोड़ सैनिक पचा नहीं कर सकें, ९६ करोड़ सैनिक एक ग्रास नहीं खा सके। कवल... कवल। ९६ करोड़ सैनिक एक कवल खा नहीं सकता। ऐसा तो उसका उत्तम आहार है। बत्तीस कवल का आहार। अकेली भस्म। अरबों-अरबों रुपये की कीमत का, चक्रवर्ती का भोजन ऐसा है। आहाहा ! ९६ करोड़ पैदल एक कवल नहीं खा सके, हजम नहीं कर सके। ऐसी उत्तम चीज़ भस्म (डालते हैं)। तुम्हारे भाई भस्म करते हैं न ? ये तो रंक जैसी भस्म आपकी। वह तो महा अकेली हीरे की भस्म। हीरे की। क्षायिक समकित। क्या भस्म खाने से और भस्म के भोग के भाव से क्या समकित से भ्रष्ट होता है ? अमरचन्दभाई ! समकित दूसरी चीज़ है, ज्ञान दूसरी चीज़ है, चारित्र दूसरी चीज़ है। आहा ! चारित्रवन्त साधु सम्यग्दर्शन सहित हो और उससे हटकर समकित में रह जाये और विवाह कर ले तो भी समकित को बाधा नहीं। गजराजजी ! दर्शनशुद्धि की चीज़ ही दूसरी है। उसके साथ बाहर का कष्ट आया तो डिग जायेगा, भ्रष्ट हो जायेगा, ऐसा है नहीं। ऐई !

यहाँ तो कहते हैं, चारित्रवन्त मुनि है न ? देखो ! जोगी। जोगी ध्यानी है। उसे अन्दर में समकित तो है, ज्ञान तो है, चारित्र है। परन्तु विशेष सहनशीलता न हो तो प्रतिकूलता के काल में चारित्र से अस्थिरता हो जाये, ध्यान से अस्थिरता हो जाये। बस, इतनी बात है। समझ में आया ? आहाहा ! क्या कहा ? माघनन्दी मुनि। कुम्हार से शादी की। परन्तु समकित को बाधा नहीं। वह तो चारित्रदोष है। समझ में आया ? संघ में कीमत रही। संघ में प्रश्न उठा कि इस प्रश्न का स्पष्टीकरण कौन करते हैं ? नहीं कर सकते। जाओ वहाँ। परन्तु वह तो कुम्हारन के साथ बैठा है न। भले बैठा हो। पूछो उसको, समाधान वह कर

सकेगा। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान था। हल उसके पास है। आहाहा! वहाँ गये। क्या हमारी कीमत अभी भी है? अरे! साहब! आपके दर्शन-ज्ञान की कीमत तो सदा रहेगी। आहा! मोरपिच्छी, कमण्डल था लेकर चले गये। जंगल में चले गये। चारित्र अन्दर एकदम पुरुषार्थ हो गया। समझ में आया?

मुमुक्षु : माघनन्दी...

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर नहीं। धवल में है, पहले लिखा है। धवल है न? उसमें लिखा है।

यहाँ कहते हैं, मुनि को आत्मज्ञान, आत्मदर्शन तो है ही और चारित्र—वीतरागता भी है। परन्तु ध्यान में स्थिरता पक्की न हो तो प्रतिकूलता आने से ध्यान से डिग जाये। समझ में आया? तो उसको बराबर प्रयत्न करके आत्मा में ध्यान जम जाये, ऐसा उग्र प्रयत्न करना। दुःख सहित आत्मा को भावे। देखो! **तपश्चरणादिक के कष्ट (दुःख) सहित आत्मा को भावे।** कष्ट नहीं, कष्ट का अर्थ बड़ा प्रयत्न। तपश्चरणादि से बड़े प्रयत्न से दुःख सहित अर्थात् प्रतिकूलता में सहनभाव। ज्ञाता-दृष्टापने भाना। है न? आत्मा को भावे, कहा न? पहले ज्ञान शब्द लिया था। फिर आत्मा कहा। देखो! '**अप्पा दुक्खेहि भावए**'। '**अप्पा**' है न? '**अप्पा**'। फिर आत्मा शब्द पड़ा है। पहले ज्ञान था। यहाँ तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र सहित आत्मा की बात चलती है।

भावार्थ :- तपश्चरण का कष्ट अंगीकार करके ज्ञान को भावे... ज्ञान अर्थात् आत्मा। चारित्रसहित आत्मा की भावना करे। भगवान सम्यग्दर्शन, ज्ञान सहित चारित्र की भावना करे। **तो परीषह आने पर ज्ञानभावना से डिगे नहीं...** परीषह आये तो आत्मभावना से डिगे नहीं। ज्ञान अर्थात् आत्मा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र से डिगे नहीं। **इसलिए शक्ति के अनुसार दुःखसहित ज्ञान को भाना,...** शक्ति के अनुसार अर्थात् यथाबल। पाठ में है न? '**यथाबल**'। यथाबल—हठ नहीं, हठ से नहीं। हठ से हो तो मिथ्यात्व हो जाता है। समझ में आया? बहुत कठिन मार्ग। शब्द पड़ा है, देखो! '**तम्हा जहाबलं**'। अपनी शक्ति-सहज पुरुषार्थ से होती है ऐसा...

मुमुक्षु : यथाबल का अर्थ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने पुरुषार्थ की जितनी सहज शक्ति है उतना। सहज शक्ति का विकास हो, इतना। हठ करके नहीं। वह आता है न ? सोलह भावना नहीं। शक्ति त्याग तप: सोलह भावना में आता है। शक्ति से हठ करे नहीं। सहज ज्ञान, दर्शन में सहजता रहे, हठ रहे नहीं। कष्ट आ जाये तो हठ हो जाये, ऐसा नहीं। मिथ्यात्व हो जायेगा। समझ में आया ? दु:ख माने तो... आहाहा ! सहज शक्ति है, उसके अनुसार राग का त्याग करके ध्यान करे। यथाबलं-अपने पुरुषार्थ की जितनी योग्यता है, उतना काम ले, विशेष काम लेने जायेगा तो हठ हो जायेगी। आहाहा ! कठिन काम, भाई ! आचार्य के एक-एक शब्द... पहले ज्ञान कहा, फिर (कहा), '**अप्पा दुक्खेहि भावए**'। फिर आत्मा (कहा)। यहाँ मात्र सम्यग्दर्शन, ज्ञान की बात नहीं है। यहाँ तो आत्मा जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रवन्त है, उसकी अन्तर में भावना करते हैं। महाप्रयत्न से समभाव का अभ्यास करना।

तपश्चरण का कष्ट अंगीकार करके ज्ञान को भावे... अर्थात् आत्मा को (भावे)। **तो परीषह आने पर ज्ञानभावना से चिगे नहीं...** अपने स्वरूप से चिगे नहीं। अकेले ज्ञान में परीषह आये और सहन नहीं कर सके, समकिती तो सहन कर सकते ही नहीं। समझ में आया ? समकिती सहन कर सकता नहीं। परीषह उसको होता ही नहीं। परीषह तो छठवें गुणस्थान में, पाँचवें गुणस्थान में होता है। समझ में आया ? चौथे गुणस्थान में परीषह है ही नहीं। चारित्र नहीं है न। फिर भी क्षायिक समकित और क्षयोपशम ज्ञान सम्यक् बराबर रहते हैं। किंचित् अन्तर नहीं उसमें। देवीलालजी ! कठिन बातें, भाई ! आहाहा !

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वह वास्तव में परीषह नहीं है। समकित परीषह का भले ही कहे, परन्तु वह परीषह नहीं है। परीषह तो चारित्र में (होता है)।... मार्ग से नहीं डिगने के लिये ... मार्ग में दर्शन, ज्ञान, चारित्र हुआ है और उससे नहीं डिगना और अपने स्वरूप में स्थिर रहकर निर्जरा के लिये परीषह सहन करते हैं। सहन करने का अर्थ कष्ट नहीं। ज्ञाता-दृष्टा रहकर आनन्द में लीन रहते हैं, उसका नाम परीषह जीता—ऐसा कहने में आता है। समझ में आया ? बाकी तो प्रतिकूलता आयी और अन्दर में अरुचि हुई। तो क्या हुआ ? वह तो आर्तध्यान हुआ, वह तो आर्तध्यान है, पाप है। पुण्य तो नहीं, धर्म तो नहीं परन्तु पुण्य भी नहीं है। ऐसी बात है, भाई ! थोड़ी सूक्ष्म बात है। लो।

सुख ही में भावे तो दु:ख आने पर व्याकुल हो जावे... बाह्य की अनुकूलता की स्थिति में जब तक थोड़ी आसक्ति रहती है तो प्रतिकूलता आने पर आकुलता हो जाये, **तब ज्ञानभावना न रहे,...** आत्मभावना न रहे। चारित्र की शान्ति और आनन्द की भावना न रहे। **इसलिए यह उपदेश है।** लो, यहाँ तो मुनि की बात है न। अकेले ज्ञान, समकित की बात नहीं। आहाहा!

चक्रवर्ती क्षायिक समकिती ९६ स्त्री के साथ विवाह करते हैं। तो क्या है? समकित में दोष है? वह तो चारित्रदोष है। समझ में आया? वह तो चारित्र का दोष है। समकित का दोष ही दूसरी चीज़ है। अन्तर अनुभव में प्रतीति हुई, चारित्रमोह चाहे जितना तीव्र आओ, समकित में तीन काल—तीन लोक में दोष लगा सकता नहीं। समझ में आया? बहुत कठिन बात। जगत को बाह्य चीज़ में इतनी रुचि हो गयी है न। बाह्य में कष्ट सहन करना होगा तो लाभ होगा, वह बात चिपट जाती है। ऐसा है ही नहीं। जैनमार्ग में ऐसी बात नहीं है। समझ में आया?

गाथा-६३

आगे कहते हैं कि आहार, आसन, निद्रा इनको जीत कर आत्मा का ध्यान करना–

आहारासणणिद्दाजयं च काऊण जिणवरमएण।
झायव्वो णिय अप्पा णाऊणं गुरुपसाएण।।६३।।

आहारासननिद्राजयं च कृत्वा जिनवरमतेन।
ध्यातव्य: निजात्मा ज्ञात्वा गुरुप्रसादेन।।६३।।

जिनमार्ग से आहार आसन नींद को भी जीतकर।
निज आतमा ध्याओ सदा वह गुरु कृपा से जान वर।।६३।।

अर्थ **– आहार, आसन, निद्रा इनको जीतकर और जिनवर के मत से तथा गुरु के प्रसाद से जानकर निज आत्मा का ध्यान करना।**

भावार्थ – आहार, आसन, निद्रा को जीतकर आत्मा का ध्यान करना तो अन्य मतवाले भी कहते हैं, परन्तु उनके यथार्थ विधान नहीं है, इसलिए आचार्य कहते हैं कि जैसे जिनमत में कहा है, उस विधान को गुरु के प्रसाद से जानकर ध्यान करना सफल है, जैसे जैनसिद्धान्त में आत्मा का स्वरूप तथा ध्यान का स्वरूप और आहार, आसन, निद्रा इनके जीतने का विधान कहा है, वैसे जानकर इनमें प्रवर्तना।।६३।।

गाथा-६३ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि आहार, आसन, निद्रा इनको जीतकर आत्मा का ध्यान करना:– देखो! यहाँ तो आत्मा के ध्यान की बात चलती है। प्रतिकूलता आये तो भी ध्यान से डिगे नहीं, ऐसा अभ्यास करना। यहाँ कहते हैं, आहार, आसन, निद्रा की बात है। मुनि की बात है। यहाँ ध्यान की, ध्यान करनेवाले की बात है। समझ में आया? समाधिशतक में भी वह है। भावित मुनि। मुनि की बात है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान को बाधा क्या है? चाहे तो परीषह सहन करने की शक्ति न हो, वह तो चारित्र का दोष है। क्या समकित का दोष है? समझ में आया? पंचाध्यायी में बहुत बात ली है। समकित और चारित्रमोह की। भाई! पंचाध्यायी में समकित और चारित्रमोह की बहुत बात ली है, बहुत पन्ने भरे हैं। क्या चारित्रमोह तीव्र होता है, वहाँ सम्यग्दर्शन को नुकसान कर सकता है? समकित को नुकसान कर सकता है? क्षयोपशम समकित को भी क्या नुकसान कर सकते हैं? क्या तुम समझते हो? एक गुण की पर्याय दूसरे गुण की पर्याय को हानि कर सकती है? ऐ... देवीलालजी!

मुमुक्षु : प्रमाद...

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रमाद है परन्तु क्या चारित्र का नाश होता है? छठे गुणस्थान में प्रमाद है। कहो विकथा होती है। थोड़ी कषाय है तो क्या चारित्र नाश होता है?

मुमुक्षु : निद्रा में अधिक रह जाए तो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दूसरी बात हो गयी। वह उसके प्रमाद के कारण नहीं,

उसकी दृष्टि में उतना विषय रहने की योग्यता नहीं है। ऐसी बात है। भाई ने प्रश्न किया कि छठवें गुणस्थान में पौन सेकेण्ड से अधिक निद्रा आ जाए तो मिथ्यात्व हो जाता है, प्रमाद के कारण? नहीं। दृष्टि टिकाने की स्थिति छठवें गुणस्थान की ऐसी है कि पौन सेकेण्ड के अन्दर ही मुनि को निद्रा होती है। उससे अधिक हो और मुनिपना रहता है, ऐसा माने तो मिथ्यात्व हो जाता है। समझ में आया? ये बात है। देवीलालजी प्रश्न ठीक करते हैं। पौन सेकेण्ड की निद्रा मुनि को है, फिर मुनि को निद्रा नहीं होती। छठवें गुणस्थान में आवे तो पौन सेकेण्ड के अन्दर निद्रा आवे। एकदम जागृत है। वह भी पिछली रात्रि में।

मुमुक्षु : निद्रा ज्यादा हो जाए तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यात्व हो जाता है। दृष्टि विपरीत हो जाती है। प्रमाद के कारण नहीं। अपने कारण से वहाँ दृष्टि का विपर्यास हुआ। क्योंकि चारित्र में इतनी स्थिति होनी चाहिए, उससे विपरीत आया और माना कि मैं चारित्रवन्त हूँ तो दृष्टि मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु : ये तो अपने को सातवाँ गुणस्थान माने?

पूज्य गुरुदेवश्री : माने। उसमें क्या है?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत बार आता है। पूरे भव में असंख्य बार आता है। अर्ध पुद्गल। एक ... बहुत आता है, हजारों। पूरे अर्ध पुद्गल में असंख्य बार आता है। स्वामी कार्तिकेय में है।

६३ गाथा। हो गया समय। यहाँ आहार, आसन, निद्रा। देखो! मुनि की बात है, हों! **उसको जीतकर आत्मा का ध्यान करना।** सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तो है। उग्र तप का नाम ध्यान। जोर करके स्वभाव में स्थिर होना, ऐसा तप करना, उसमें उसको जीतना। वह विशेष आयेगा.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-८७, गाथा-६३ से ६५, रविवार, भाद्र शुक्ल १३, दिनांक १३-०९-१९७०

दसलक्षणी पर्व का नौवाँ दिन है। मूल में यह चारित्र की आराधना का दिन है। सम्यग्दर्शनसहित तो है, ऐसा गिनने में आया है। उसकी आराधना की यहाँ बात है न। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन न हो तो उसको क्या करना ? वह तो अपने अष्टपाहुड़ में आता है। यहाँ तो पहले आत्मा शुद्ध चैतन्य आनन्दकन्द है, ऐसा अन्तर में अनुभव करके प्रतीति करना उसका नाम सम्यग्दर्शन है। क्या करना पूछते हैं। वही बात तो यहाँ चलती है। समझ में आया ? सबेरे प्रश्न उठा था, क्या करना ? यहाँ तो सुबह, दोपहर, रात्रि को वही चलता है। आत्मा... आगे आयेगा। देखो ! अष्टपाहुड़ में। यहाँ अपने अकिंचन चलता है न ?

तिविहेण जो विवज्जदि, चेयणमियरं च सव्वहा संगं।
लोयववहारविरदो, णिग्गथत्तं हवे तस्स ॥४०२॥

यहाँ मुख्य मुनिपने की व्याख्या है न।

अन्वयार्थ :- जो मुनि लोक व्यवहार से विरक्त होकर... लोक व्यवहार का अर्थ दुनिया से तो विरक्त है ही। स्त्री-पुत्र से तो विरक्त है ही। परन्तु अन्दर में देव-गुरु-शास्त्र के विनय में रहना, ऐसा व्यवहार जो है, वह लोक व्यवहार है। उससे भी विरक्त होकर। समझ में आया ? **'चेयणमियरं च सव्वहा संगं' चेतन अचेतन परिग्रह को सर्वथा मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमोदना से छोड़ता है...** मुनि है। स्त्री, कुटुम्ब तो है नहीं, त्यागी है। अन्दर में संघ में रहने से पारस्परिक व्यवहार विनय करना पड़ता है, वह भी विकल्प व्यवहार है। समझ में आया ? उसे भी छोड़कर अपना चैतन्य और अचेतन अपने से भिन्न सर्व से भिन्न होकर अपने आत्मा का ध्यान करना। निर्ग्रन्थ, अकिंचन—मेरा कोई है नहीं। मेरा है नहीं और मेरा है, वह मेरे से दूर है नहीं। मैं तो ज्ञान और आनन्द, शान्तस्वरूप हूँ। वह मेरे से दूर है नहीं। और रागादि दूर है, वह मेरी चीज़ नहीं।

भावार्थ :- मुनि अन्य परिग्रह तो छोड़ता ही है... उसके तो वस्त्र-पात्र भी नहीं। नग्न मुनि दिगम्बर है। **परन्तु मुनित्व के योग्य ऐसे चेतन तो शिष्य संघ...** चैतन्य तो जैसा शिष्य और संघ। **अचेतन पुस्तक पिच्छिका कमण्डलु धर्मोपकरण और आहार, वसतिका**

देह ये अचेतन इनसे भी सर्वथा ममत्व छोड़े... आत्मा अकिंचन-बिल्कुल परपदार्थ के साथ सम्बन्ध है ही नहीं। अकेला अखण्डानन्द भगवान असंग चेतन राग और मन का भी जिसको संग नहीं, ऐसे असंग चैतन्य का (बाह्य) संग छोड़कर अन्तर में ध्यान करना। उसका नाम अकिंचन धर्म कहने में आता है। समझ में आया?

और सर्वथा ममत्व छोड़े, ऐसा विचारे कि मैं तो आत्मा ही हूँ... मैं तो ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसा स्वभाववाला मैं आत्मा हूँ। **अन्य मेरा कुछ भी नहीं है...** विकल्प भी नहीं। देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का विकल्प भी मेरी चीज़ नहीं।

मुमुक्षु : कहाँ खड़े रहना?

पूज्य गुरुदेवश्री : ये कहते हैं न, आत्मा में खड़े रहना। इसलिए तो बात चलती है। राग में खड़ा है, वह तो दोष है। आहा! सूक्ष्म बात है, भाई! तत्त्व की प्राप्ति और तत्त्व में लीनता अपूर्व पुरुषार्थ है। वह कोई साधारण पुरुषार्थ से मिलता नहीं।

वस्तु भगवान आत्मा पर से बिल्कुल भिन्न है। **ऐसा निर्ममत्व हो, उसके अकिंचन धर्म होता है।** अरे! मेरी चीज़ तो आनन्द और ज्ञान है। उससे तो मैं भरपूर भरा हूँ। और विकल्पमात्र से दूसरी चीज़ है, संग में आनेवाली चीज़ से तो रहित हूँ। असंग आत्मा हूँ। ...भाई! ऐसी बहुत कठिन बात है। चारित्र की आराधना की बात है। सम्यग्दर्शनसहित, सम्यग्ज्ञानसहित, चारित्रसहित संग छोड़कर ध्यान करना, उसकी यहाँ बात है। आहाहा! समझ में आया? उसको यहाँ शास्त्र में निर्ग्रन्थ कहा न? '**णिग्गथत्तं हवे तस्स**'। उसको निर्ग्रन्थपना अन्तर में स्वभाव की श्रेणी में चढ़ने से विभाव से ग्रन्थ-विभावग्रन्थ—राग से भिन्न होकर निर्ग्रन्थ श्रेणी में वह जाते हैं। समझ में भी नहीं, ख्याल में नहीं, क्या करना उसकी खबर नहीं तो करे क्या वह? वह कहते हैं?

मुमुक्षु : आप बताइये।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा? अकिंचन धर्म की बात हुई।

अपने यहाँ ६३ गाथा चलती है। ६३ है? उसमें भी वह आया, देखो!

आहारासणणिद्दाजयं च काऊण जिनवरमएण।
झायव्वो णिय अप्पा णाऊणं गुरुपसाएण॥६३॥

अर्थ :- आहार, आसन, निद्रा, इनको जीतकर और जिनवर के मत में... सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, उन्होंने जो आत्मा कहा, ऐसा **गुरु के प्रसाद से...** अर्थात् निर्ग्रन्थ सन्त गुरु के पास से आत्मा क्या है, उसको जानना चाहिए। समझ में आया? अज्ञानी से वह आत्मा जानने में आता नहीं, ऐसास कहते हैं। समझ में आया? 'बिना नयन पावे नहीं, बिना नयन की बात, सेवे सद्गुरु के चरण सो पावे साक्षात्'। आता है या नहीं? उसमें है। है या नहीं उसमें? गुरु प्रसाद आया, उसमें है।

बिना नयन पावै नहीं, बिना नयन की बात,
सेवे सद्गुरु के चरण सो पावे साक्षात्॥

यह गुजराती तो समझ में आता है या नहीं? 'बिना नयन पावे नहीं' सम्यक् नेत्र बिना अपने आत्मा की प्राप्ति होती नहीं। 'बिना नयन की बात' इस आँख के बिना की बात है। 'सेवे सद्गुरु के चरण सो पावे साक्षात्।' धर्मात्मा जैन परमेश्वर का भान हुआ ऐसा आत्मा, ऐसे आत्मज्ञानी गुरु से साक्षात् आत्मा कैसा है, वह मिल सकता है। वह प्राप्त करे तो।

जप तप और व्रतादि सब तहाँ लगी भ्रमरूप,
जप तप और व्रतादि सब तहाँ लगी भ्रमरूप
जहाँ लगी नहीं सन्त की पाई कृपा अनूप।

कृपा का अर्थ उसकी योग्यता है तो कृपा है, ऐसा कहते हैं। कृपा का अर्थ वह है। भगवान की 'करुणा हम पावत है तुमकी, वह बात रही सुगुरुगम की।' परमात्मा को कहते हैं, हे नाथ! आपकी करुणा। तो भगवान को करुणा होती है? भगवान तो वीतराग है। परन्तु वीतराग के ज्ञान में अपना स्वरूप क्या है, ऐसा आया और भान हुआ तो भगवान की करुणा हुई, ऐसा कहने में आता है। ऐसी बात है। समझ में आया? 'पाया की यह बात है निज छन्दन को छोड़।' लो। हिन्दी है, श्रीमद् का है, ये तो हिन्दी है। हिन्दी में नहीं समझते?

पाया की यह बात है निज छन्दन को छोड़
पीछे लाग सत्पुरुष के तो सब बन्धन तोड़।

ज्ञानी पुरुष का आशय क्या है, वह समझना अलौकिक बात है। साधारण अपने स्वच्छन्द से शास्त्र पढ़े और मिले, ऐसी चीज़ है नहीं। समझ में आया? इतने शब्द हैं।

बाकी तो लम्बा है। **गुरु के प्रसाद से जानकर...** दो क्यों लिया? आयेगा, देखो!

भावार्थ :- आहार, आसन, निद्रा इनको जीतकर आत्मा का ध्यान करना... भगवान आत्मा... यहाँ पहले नास्ति से बात की। आहार, आसन लगाना और निद्राजय करना। बाद में अन्दर आत्मा का ध्यान करना। **अन्यमतवाले भी कहते हैं परन्तु उनके यथार्थ विधान नहीं है,...** आत्मा की बात तो अन्यमति भी बहुत करते हैं। परन्तु सर्वज्ञ परमेश्वर जिनवर वीतरागदेव के अभिप्राय से जो आत्मा है, ऐसे पहले जानना चाहिए। समझ में आया? वह भी... क्या कहते हैं?

इसलिए आचार्य कहते हैं कि जैसे जिनमत में कहा है... सर्वज्ञ परमेश्वर ने बिल्कुल विकल्परहित अनन्त... अनन्त... अनन्त... संख्या से गुण का पिण्ड (देखा है)। समझ में आया? अनन्त-अनन्त संख्या से गुण का पिण्ड है, और उसकी अनन्त पर्याय होती है। आहाहा! समझ में आया? कहा था न?

एक आत्मा में कितने गुण हैं? समझ में आया? ६०८ (जीव) छह महीने और आठ समय में मुक्ति में जाते हैं। ६०८ (जीव) छह महीने और आइ समय में मुक्ति जाते हैं। इतने-इतने अभी तक सिद्ध हुए, उससे निगोद के एक शरीर में अनन्तगुने जीव हैं। निगोद समझे? आलू, काई, आलू का राई जितनी टुकड़ा लो तो उसमें असंख्य तो औदारिक शरीर है और एक शरीर में अभी तक सिद्ध हुए-६०८... ६०८... ६०८ छह महीने और आठ समय, अनन्त... अनन्त... अनन्त पुद्गल परावर्तन चले गये। वह सिद्ध की जो संख्या है, उससे भी एक शरीर में अनन्तगुनी संख्या है।

मुमुक्षु : जमीकन्द में आलू इत्यादि सब आ जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब आता है। काई होती है न पानी में? काई... काई। उसके एक टुकड़े में असंख्य शरीर और एक शरीर में अनन्तगुना जीव। सिद्ध से अनन्तगुने जीव। और उसकी संख्या से परमाणु की संख्या अनन्तगुनी। परमाणु की संख्या। संसारीजीव की संख्या एक शरीर में अनन्तगुने, ऐसे-ऐसे असंख्य चौबीसी के समय जितने निगोद के शरीर हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर निकलते ही कहाँ निगोद के जीव। पूरे तो निकलते नहीं। अनन्तवें भाग में बाहर आये हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहना है कि सिद्ध की संख्या से निगोद की संख्या अनन्तगुनी एक शरीर की, ऐसे-ऐसे असंख्यगुने शरीर। उतनी आत्मा की संख्या। उससे परमाणु की संख्या अनन्तगुनी। जितनी जीव की संख्या है, उससे तीन काल के समय अनन्तगुने। तीन काल के समय परमाणु की संख्या से अनन्तगुने। और उससे आकाश के प्रदेश अनन्तगुने। आकाश है न? आकाश। आकाश कहाँ नहीं होगा? सुना है? खाली आकाश है न? पीछे क्या होगा? पीछे-पीछे है... है... है... आकाश चले ही जाता है। खाली। इसका जो अंश है आकाश का प्रदेश, उसकी संख्या तो तीन काल के समय से अनन्तगुनी है और उससे एक आत्मा में अनन्तगुने गुण हैं। जैनमत में ऐसा है, दूसरे में ऐसा होता नहीं। समझ में आया? आकाश के प्रदेश अनन्तगुने, तीन काल के समय से अनन्तगुने। और तीन काल के समय परमाणु से अनन्तगुने और परमाणु संसारीजीव की संख्या से अनन्तगुने और जीव की संख्या सिद्ध से अनन्तगुनी। इनते आकाश के प्रदेश हैं, उससे भी अनन्तगुना एक जीव में अनन्त गुण हैं। ऐसा आत्मा जिनवर वीतराग परमात्मा ने फरमाया है। दूसरी (जगह) ऐसी चीज़ होती नहीं। जैन सम्प्रदाय में अभी खबर नहीं है कि कितना आत्मा अन्दर क्या चीज़ है। समझ में आया? पोपटभाई! सम्प्रदाय में था कब? दिगम्बर में है, फिर भी उसे कहाँ खबर है कि क्या आत्मा है और कैसा आत्मा है। ये करो, वह करो। कर्ताबुद्धि मरणबुद्धि है।

मुमुक्षु : भावमरण हुआ न।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावमरण है। आहाहा!

मुमुक्षु : अनन्त गुण फरमाया...

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान गुण। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द गुण है न। ऐसी संख्या अनन्तगुनी है। इतना भी सुना नहीं। कितने वर्ष वहाँ रहे मुम्बई? यह बात कहीं नहीं है। बात ऐसी है।

मुमुक्षु : आपके प्रवचन में अभी बात आयी थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : आया था।

मुमुक्षु : सर्वार्थसिद्धि के जीव निरन्तर आत्मा के गुण का परिणमन करे तो भी पार नहीं पावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्तानन्त है न। केवली नहीं कर सके। क्योंकि केवली का भी देशे उणी करोड़ पूर्व का आयुष्य है। एक-एक गुण एक-एक समय में कहे तो संख्यात कह सके, अनन्त तो कह सके नहीं। केवली एक साथ कहे कि अनन्तानन्त इतने हैं, बस इतना। परन्तु एक-एक गुण कि यह ज्ञान है, यह दर्शन है, आनन्द है, कर्ता, कर्म ऐसा कहने को अनन्त काल चाहिए। समझ में आया?

ऐसा एक-एक आत्मा, ऐसे अनन्तगुने आत्मा जिसमें अनन्त-अनन्त गुण एक-एक आत्मा में है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, स्वच्छत्व, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान। सैंतालीस शक्ति तो अपने आयी है। सैंतालीस शक्ति है न? शक्ति कहो या गुण कहो। ऐसे-ऐसे अनन्तानन्त गुण। भान बिना करो व्रत और करो उपवास। मर गया कर-करके। राग है तो अज्ञान है। और मानता है कि हमारे धर्म होगा। अनन्तानन्त गुण आत्मा।

गुरु के प्रसाद से जानकर... देखो! धर्मात्मा सन्त ज्ञानी जैन परमेश्वर के अभिप्रायपूर्वक जिसका भान हुआ है, ऐसे गुरु के प्रसाद से। प्रसाद कहने में क्या आया? कि उसकी पात्रता ऐसी है कि गुरु ने किया। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : समझे तो या उसके बिना? दस दिन में क्या धर्म हो गया? धर्म तो दस दिन के बाद भी होगा। होली के दिन धर्म होता है। धर्म कहाँ बाहर से होता है? सेठ! होली कहते हैं न? होली। हुतासनी। अनन्त मुक्ति में गये। उसमें क्या है? अनन्त समकित पाये। हुतासनी में भी... हुतासनी कहते हैं न? भैया! अनन्त मोक्ष गये, अनन्त समकित पाये, अनन्त साधुपद पाये। उसमें क्या है? क्या दिन अवरोध करता है? दीवाली के दिन अनन्त नरक में गये, सातवीं नरक में गये, निगोद में गये। उसमें क्या है? दस पर्व के दिन में भी असंख्य जीव नरक में जाते हैं। समझ में आया? और निगोद के जीव भी एक समय में अनन्त-अनन्त उत्पन्न होते हैं और मरते हैं, उत्पन्न होते हैं और मरते हैं। इस

दसलक्षणी पर्व में। वह तो व्यवहार से बात गिनने में आयी कि ऐसी चीज़ है। उसको तुम निवृत्ति से समझो और ध्यान करो।

गुरु के प्रसाद से जानकर ध्यान करना सफल है। देखो! उसका ध्यान करे तो सफल हो। गुरु के प्रसाद से सुना परन्तु ध्यान न करे और एकाग्र न हो तो सफल होता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : उनके चरण में रहे तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : चरण में रहे क्या, उसका स्वभाव समझना, वह चरण में रहना है। बाहर के चरण... पुरुषार्थ उसे करना चाहिए।

जैसे जैन सिद्धान्त में आत्मा का स्वरूप... जैसे वीतराग परमेश्वर, वह भी ये शास्त्र सिद्धान्त दिगम्बर मुनियों ने जो कहा, वह जैन सिद्धान्त। समझ में आया? आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पूज्यपादस्वामी, नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती, अमृतचन्द्राचार्य धर्म के स्तम्भ! केवलज्ञानी का रहस्य खोल दिया है। समझ में आया? ऐसे **जैन सिद्धान्त में आत्मा का स्वरूप तथा ध्यान का स्वरूप...** देखो! आत्मा का ध्यान (अर्थात्) उस ओर झुकाव होना। राग और निमित्त का लक्ष्य छोड़कर ऐसा आत्मा पहले जानकर उस ओर झुकाव होना। **और आहार, आसन, निद्रा इनके जीतने का विधान कहा है...** भगवान ने जैसा कहा है, ऐसा जीतने का विधान कहा है, **वैसे जानकर इनमें प्रवर्तना।** लो, यह बात। पहले तो भगवान ने आत्मा जैसा कहा, ऐसे गुरुगम से पहले जानना। अपनी कल्पना से सिद्धान्त से भी जानने में आता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अपनी कल्पना से पढ़े। ऐसा है, वैसा है। हो कुछ और अर्थ करे दूसरा। समझ में आया? मार्ग तो दुष्कर है, भाई! वह आयेगा, ६५ में कहेंगे। महा दुष्कर पुरुषार्थ से सम्यग्ज्ञान प्राप्त होता है। दु:ख का अर्थ यह है। दु:ख अर्थात् कष्ट से नहीं। अभी ६५ गाथा में आयेगा। समझ में आया?

गाथा-६४

आगे आत्मा का ध्यान करना वह आत्मा कैसा है, यह कहते हैं –

अप्पा चरित्तवंतो दंसणणाणेण संजुदो अप्पा।
सो झायव्वो णिच्चं णाऊणं गुरुपसाएण।।६४।।

आत्मा चारित्रवान् दर्शनज्ञानेन संयुतः आत्मा।
सः ध्यातव्यः नित्यं ज्ञात्वा गुरुप्रसादेन।।६४।।

हो आतमा चारित्र-युत संयुक्त दर्शन ज्ञान से।
वह नित्य ध्याओ आतमा यों जान गुरु-प्रसाद से।।६४।।

अर्थ – आत्मा चारित्रवान् है और दर्शन-ज्ञानसहित है, ऐसा आत्मा गुरु के प्रसाद से जानकर नित्य ध्यान करना।

भावार्थ – आत्मा का रूप दर्शन-ज्ञान-चारित्रमयी है, इसका रूप जैनगुरुओं के प्रसाद से जाना जाता है। अन्यमतवाले अपना बुद्धिकल्पित जैसा तैसा मानकर ध्यान करते हैं, उनके यथार्थ सिद्धि नहीं है, इसलिए जैनमत के अनुसार ध्यान करना ऐसा उपदेश है।।६४।।

गाथा-६४ पर प्रवचन

आगे आत्मा का ध्यान करना, वह आत्मा कैसा है, वह कहते हैं :- देखो! अब (कहते हैं) आत्मा कैसा है?

अप्पा चरित्तवंतो दंसणणाणेण संजुदो अप्पा।
सो झायव्वो णिच्चं णाऊणं गुरुपसाएण।।६४।।

अर्थ :- आत्मा चारित्रवन्त है... यहाँ तो आत्मा चारित्रवन्त ही है, ऐसा कहते हैं। जो चारित्र प्रगट करना है तो चारित्रवन्त ही आत्मा है। आहाहा! ... भगवान आत्मा, उसमें

चारित्र का गुण अर्थात् वीतरागपना अथवा शान्तरसपना त्रिकाल पड़ा है। समझ में आया? जो चारित्र प्रगट करना है, जो सम्यग्दर्शन प्रगट करना है, सम्यग्ज्ञान वह गुण तो अनादि से पड़ा ही है, ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा वस्तु में श्रद्धा नाम का गुण त्रिकाल पड़ा है। उसमें शान्ति, वीतरागता चारित्रगुण त्रिकाल पड़ा है और सम्यग्ज्ञान की मूर्ति अनन्त केवलज्ञान का पिण्ड ज्ञान त्रिकाल पड़ा है। आहाहा! ओहो! कुन्दकुन्दाचार्य की पद्धति! क्या कहते हैं? देखो!

भगवान **चारित्रवान है...** भाई! तेरा आत्मा तो चारित्रवान त्रिकाल है। तेरे में चारित्रगुण तो त्रिकाल पड़ा है। देवीलालजी! बाहर से लाना नहीं। बाहर नजर करने से चारित्र नहीं आयेगा, ऐसा कहते हैं। तेरे में है ही। समझ में आया? तेरा स्वभाव ही वीतरागभाव से भरा पड़ा है न, प्रभु! आहाहा! क्या कहे? '**जिणवरमएण**' '**गुरुपसाएण**'। दो लिया है। जिनवर के अभिप्राय से और गुरु की प्रसादी से। भगवान आत्मा... भगवान ने और गुरु ने क्या कहा? भगवान! तेरा आत्मा तो चारित्रगुण से त्रिकाल भरा पड़ा है न। समझ में आया? आहाहा! नजर डालने से अन्दर चारित्रगुण है, उसमें एकाग्र होने से चारित्र प्रगट होता है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! विकल्प से आता है या निमित्त से आता है, बाह्य गुण की पर्याय, (ऐसा नहीं है)। सेठी! क्या कहा, देखो! आहाहा! ऐ... सेठ!... कहो, समझ में आया? आहाहा! अरे! भगवान! तुम श्रेष्ठ आत्मा हो। वही सेठ है। चारित्र से श्रेष्ठ है। प्रगटपना बाद में। चारित्रगुण से श्रेष्ठ तो त्रिकाल पड़ा है। ऐ... पोपटभाई! आहाहा! भगवान! तेरी महिमा तो देख! सुन तो सही, पहले समझ तो सही कि क्या है। ओहोहो!

दर्शन-ज्ञानसहित है... वह तो दर्शन-सम्यग्दर्शन गुण तो त्रिकाल पड़ा ही है। ऐसा सम्यग्दर्शन गुणसहित आत्मा है। विकल्प से संग से रहित है। परन्तु चारित्रगुण और सम्यग्दर्शन से सहित है। पर्याय की बात नहीं है, यहाँ गुण से सहित है, यह बताना है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : पर्याय की बात...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा उसमें है, ऐसे ध्यान करने से पर्याय प्रगट होती है। जिसमें है उसमें प्राप्त की प्राप्ति है न? नहीं है तो उसमें से आता है? पुण्य-पाप का विकल्प

क्रियाकाण्ड ऐसा-ऐसा उसमें से कोई चारित्र आता है? उसमें से सम्यग्दर्शन आता है? आहाहा! समझ में आया? जहाँ पड़ा है, वहाँ ध्यान करने से प्राप्त होता है, ऐसा कहते हैं। देखो! मोक्षपाहुड़ है न! आहाहा!

दर्शन-ज्ञानसहित है, ऐसा आत्मा... ऐसा तीन गुण मुख्य लिये। यहाँ मोक्ष का अधिकार है न? तो मोक्ष का कारण कौन? सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र पर्याय कारण है। पर्याय कारण है। तो पर्याय का कारण कौन? अन्दर गुण (है वह)। समझ में आया? वह पर्याय प्रगट होने का कारण कोई विकल्प और व्यवहार नहीं है, ऐसा बताना है। आहाहा! समझ में आया? पहले आत्मा की बात ही वर्तमान में गुम हो गयी है। ऐसा व्रत और ऐसा नियम और तप... दस दिन तप करेंगे। फिर ये सेठ जैसे उसे कुछ देंगे। वह प्रसन्न हो जाए और यह जाने कि अपने को धर्म का कुछ लाभ मिला। ऐ... सेठ! आहाहा!

भगवान! कहाँ जाना है तुझे? जहाँ जाना है, वहाँ माल क्या है? माल क्या है अन्दर? आहाहा! जिसमें तुझे ध्यान लगाना है और ध्येय बनाना है, उस ध्येय में क्या चीज़ है? अकेला वीतरागरस चारित्रभाव से भरा है। आत्मा तो गुणी है। गुण क्या? मोक्ष का मार्ग लेना है न? मोक्षप्राभृत है न। मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह तो पर्याय की बात है। परन्तु वह पर्याय कहाँ से आयेगी? अन्दर में पड़ा है। सम्यग्दर्शन गुण-श्रद्धा गुण त्रिकाल पड़ा है। ज्ञानगुण त्रिकाल पड़ा है और चारित्रगुण त्रिकाल पड़ा है। आहाहा! ऐसा आत्मा। समझ में आया? तीन गुण की व्याख्या मुख्यरूप से की। क्योंकि तीन प्रधान गुण मोक्ष का कारण है। आहाहा!

ऐसा आत्मा... आत्मा आत्मा तो है, परन्तु सर्वज्ञ ने कहा ऐसा आत्मा। अन्यमति, परमात्मा के अतिरिक्त कल्पना से कहते हैं, उन्हें सच्चे आत्मा की खबर है नहीं। समझ में आया? कबीर में आतमा की बहुत बात आती है, परन्तु सब कल्पित। ऐई! अब तो पक्के हो गये न। आत्मा, एक आत्मा, हों! एक। जिसमें वीतरागता अर्थात् चारित्रस्वभाव त्रिकाल पड़ा है। गुणी वस्तु, गुण यह, उसका ध्यान करने से पर्याय प्रगट होती है। द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों लिये। समझ में आया? ऐसी है बात? द्रव्य, गुण और पर्याय।

किसी का ऐसा कहना है कि हमें धर्म करना है। लो! धर्म करना है तो नयी पर्याय

हुई और पुरानी पर्याय का नाश होता है। नयी पर्याय उत्पन्न हुई कहाँ से ? ऊपर-ऊपर से उत्पन्न होती है ? पूर्व की पर्याय से नयी पर्याय उत्पन्न होती है ? राग से कोई धर्म की पर्याय उत्पन्न होती है ? धर्म की पर्याय धर्म जो त्रिकाल पड़ा है, उसमें से उत्पन्न होती है। आहाहा ! '**वत्थु सहावो धम्मो**' भगवान आत्मा का स्वभाव चारित्रस्वभाव बिल्कुल अकषायस्वभाव वीतरागस्वभाव, दर्शनस्वभाव, ज्ञानस्वभाव ऐसा आत्मा। लो, यहाँ तो तीन गुण से (कहा)। तीन पर्याय प्रगट करनी है न। आहाहा ! दुनिया दुनिया की जाने, तेरा तू काम कर। ऐसी बात है यहाँ। जिसमें से धर्मपर्याय प्रगट करनी है, वह पर्याय कहाँ से आयेगी ?

कहते हैं, भैया ! तेरा गुणी आत्मा, उसमें जो पर्याय प्रगट करनी है, ऐसा गुण तो तेरे में भरा पड़ा है। ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड गुण है। चारित्र प्रगट होता है, वह तो पर्याय है। समय-समय में चारित्र की पर्याय बदलती है। परन्तु ऐसी अनन्त-अनन्त चारित्र की सादि-अनन्त पर्याय का पिण्ड जो चारित्रगुण है, वही तेरा स्वभाव है। उसमें ध्यान करने से उसका ध्येय करने से, वहाँ त्राटक लगाने से, वहाँ पर्याय को गुण में एकाकार करने से धर्म की पर्याय प्रगट होती है। समझ में आता है या नहीं ? आहाहा ! समझ में आया ?

कुन्दकुन्दाचार्य की अष्टपाहुड़ की शैली अलौकिक शैली ! केवली का पेट खोलकर (बात करते हैं)। भगवान ! तू तेरे में जो दर्शन, ज्ञान, चारित्रपर्याय प्रगट करना चाहता है, तुझे धर्म करना है न ? धर्म का अर्थ पर्याय। धर्म का अर्थ पर्याय है। मोक्षमार्ग पर्याय है, मोक्ष भी पर्याय है। तो वह पर्याय कहाँ से आयेगी ? आहाहा ! अन्दर में अनन्त पर्याय का पिण्ड ज्ञान केवलज्ञान... केवलज्ञान... केवलज्ञान सादि-अनन्त केवलज्ञान की पर्याय (प्रगट होगी), वह सब पर्याय का पिण्ड जो ज्ञानगुण पड़ा है। समकित-क्षायिक समकित की पर्याय प्रगट हुई, वह उत्पाद-व्ययवाली है। नयी उत्पन्न होती है, पुरानी जाती है, ऐसी क्षायिक पर्याय सादि-अनन्त तेरे श्रद्धागुण में पड़ी है। और चारित्र एक समय की निर्मल अवस्था, चारित्र अरागी दशा तो पर्याय है। पर्याय तो एक समय रहती है, दूसरे समय दूसरी रहती है। ऐसी सादि-अनन्त अरागी चारित्र की पर्याय चारित्रगुण में है। आहाहा ! देखो !

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय है न। मोक्षमार्ग पर्याय है। सिद्ध पर्याय है, मोक्षमार्ग पर्याय

है, संसार पर्याय है। संसार विकारी पर्याय है। मिथ्यात्व और राग-द्वेष संसार पर्याय है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र मोक्ष का मार्ग, वह पर्याय है-अवस्था है। वह अवस्था किससे आयेगी? कहाँ से आयेगी? किस प्रकार से आयेगी? अन्दर आत्मा में दर्शन, ज्ञान, चारित्र भरा पड़ा है, वहाँ ध्यान लगा दे। आहाहा! लो, यह करना। ऐ... सेठ! यह करने का है।

जिनवर परमेश्वर वीतराग केवलज्ञानी ने कहा हुआ, गुरु ने जाना और गुरु से समझना। क्योंकि वर्तमान में केवली है नहीं। तो '**गुरुपसाएण**' ऐसा कहने में आया। नहीं तो सीधा केवली के पास सुने, भगवान हो वहाँ। जिनवर ने कहा हुआ, गुरु प्रसाद से और तेरी पात्रता से। ऐसा। समझ में आया?

मुमुक्षु : हमारी...

पूज्य गुरुदेवश्री : पात्रता उसकी होनी चाहिए न। कोई दे देता है? कोई समझा सकता है? आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन—ज्ञान पाने की योग्यता, पुरुषार्थ की उग्रता। वह अब आयेगा, ६५ में आयेगा। महापुरुषार्थ। स्वभाव ऐसा है, ऐसी प्रतीति में महापुरुषार्थ है। समझ में आया? महा दुष्कर। '**दुक्खेण**' अर्थात् दुष्प्राप्य। महापुरुषार्थ से प्राप्त होता है। ऐसे कोई साधारण (प्रयत्न से) प्राप्त होता है, ऐसी चीज़ नहीं। समझ में आया? भक्ति, पूजा, यात्रा शुभभाव होता है। दया, दान भाव (होता है), परन्तु वह चीज़ मुक्ति का कारण नहीं। धर्म का कारण नहीं, उससे धर्म होता नहीं। धर्म तो, गुण भरा है—ऐसे आत्मा में एकाग्र होने से धर्म होता है। स्वद्रव्य के आश्रय से धर्म, वह यहाँ सिद्ध किया, देखो! '**परदव्वादो दुग्गइ सदव्वादो हु सुग्गइ होइ।**' इसका स्पष्टीकरण करते हैं। समझ में आया? ऐ... अमूलखचन्दजी! आहाहा!

मुमुक्षु : गुरु के प्रसाद से...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उसकी योग्यता है तो ऐसा निमित्त मिलता है, ऐसा नहीं कहकर यहाँ प्रसाद से कहने में आया। आहाहा! ऐसा आत्मा। देखो! है न पाठ? '**अप्पा चरित्तवंतो दंसणणाणेण संजुदो अप्पा। सो झायव्वो णिच्चं**' '**णिच्चं**' है, देखो! '**णिच्चं**'

शब्द अर्थ में नहीं आया है। **आत्मा चारित्रवान है और दर्शन-ज्ञानसहित है, ऐसा आत्मा गुरु के प्रसाद से जानकर नित्य ध्यान करना।** ऐसे लेना। '**णिच्चं**' शब्द पड़ा है न पाठ में? कोई शब्द रह गया हो। वहाँ जोर लगाना। ज्ञान की पर्याय का वहाँ जोर लगाना। आहाहा! समझ में आया? करना यह है, करना यह है, उसमें सफलता है।

भावार्थ :- आत्मा का रूप दर्शन-ज्ञान-चारित्रमयी है,... देखो! भावार्थ है न? आत्मा का स्वरूप ही दर्शन, ज्ञान, चारित्रमयी है ही। उसमें से प्राप्त की प्राप्ति होती है। कुएँ में न हो और अवेडा में आवे... अवेडा समझते हैं? अवेड़ा क्या कहते हैं पानी का कुंडा होज बाहर होता है न? होज। क्या कहते हैं? पानी भरा रहता है। कुएँ में से निकालते हैं न? ... तालाब नहीं। कुएँ में से पानी निकालकर ऐसे बाहर पानी भरते हैं, वह पशु पीते हैं। कुएँ में हो वह आता है? कुएँ में भरा हो पानी और यहाँ होज आता है? ऐसा आता है? ऐसे आत्मा में भरा है दर्शन, ज्ञान, चारित्र तो उसमें से पर्याय आती है।

हमारे एक थे न? जेठालाल... राजकोट। 'पियावा कांठे पंथ बनयो छे साचो...' वह उसको बहुत प्रिय था। पीयावा किया है। पानी निकाले न? मेरा कण्ठ ठीक नहीं था। (संवत्) १९७७ के वर्ष। कण्ठ ठीक नहीं था तो मुझे कहा, महाराज! हमारे वहाँ घीवाली सब्जी होती है। आत्मा के लिये बिल्कुल दोष नहीं है। आपका कण्ठ ठीक नहीं है तो मेरे घर पधारना। ऐसा कहे। क्या कहते हैं? भाजी इत्यादि सब घी में बनाये। कण्ठ बहुत मीठा था। १९७७ की बात है। ४९ वर्ष हुए। भीमजी मोरारजी थे न? भीमजी मोरारजी के छोटे भाई जेठालाल। ये बहुत बोलते थे। 'पियावा कांठे पंथ बन्यो छे साचो...' पियावु अर्थात् पानी पीने के स्थान में हे मनुष्य! यहाँ किनारे आईये, पीने की चीज़ यहाँ है। समझ में आया? बहुत गाते थे। समझ में आया? वह गाते थे, इतना पद याद रह गया। १९७७ की बात है, १९७७। उन दिनों में गले में ठीक नहीं था। नरसिंहभाई वहाँ थे। मेरे यहाँ घी में सब्जी होती है। क्योंकि हमारे लिये बने और हमें मालूम पड़े तो हम तो प्राण जाये तो भी लेते नहीं। हमारे लिये सब्जी बनी हो, पानी का एक बिन्दु बना हो तो हम नहीं लेते थे। पानी का एक बिन्दु खबर पड़े कि हमारे लिये बना है, बिल्कुल नहीं। सख्त क्रिया थी हमारी, बहुत सख्त क्रिया। अभी तो देखने में यही क्रिया... परन्तु वह सब कायक्लेश था। बहुत सख्त। २४-२४ घण्टे, ४८-४८ घण्टे पानी का बिन्दु नहीं। जब तक बारिश का एक बिन्दु

ऊपर से आवे, मत्सर जैसा दिखे, भिक्षा नहीं जाते थे, दो-दो दिन, तीन-तीन दिन।... ये तो हमारी बात है। १५-१५ वर्ष ऐसा किया था। बारिश का एक बिन्दु... जैसा दिखे भिक्षा के लिये नहीं जाते थे।... सचेत है। एक बिन्दु में असंख्य जीव है। अभी तो पोलंपोला (चलता है)। हमारी क्रिया तो बहुत कड़क थी। जवान अवस्था थी और हमारे गुरु ने ऐसा कहा कि यह मार्ग है। चलो भैया! आहा! समझ में आया?

यह तो अन्तर में ज्ञानानन्दस्वभाव पड़ा है, उसमें ध्येय दृष्टि दो। ध्यान की स्थिति बताते हैं। क्या करना? करना पहले यह कि ऐसा आत्मा है, उसमें श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र भरा है, उसमें ध्यान लगाना वह तेरा कर्तव्य है करना। श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र सब प्रगट होता है। आहा! समझ में आया?

जैन गुरुओं के प्रसाद से जाना जाता है। देखो! है? जैनगुरु के। अन्य गुरु नहीं। जैन गुरु सम्प्रदाय का नहीं। परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर की दिव्यध्वनि में आया ऐसा जिसको समझ में-ज्ञान में आया है। प्रकाशदासजी! आहाहा! **जैन गुरुओं के प्रसाद से जाना जाता है।** अज्ञानी ध्यान कराये कि ऐसा करो, वैसा करो। ॐ करो, यह करो, जप करो। उसमें कुछ है नहीं। समझ में आया?

अन्यमतवाले अपना बुद्धिकल्पित जैसा-तैसा मानकर ध्यान करते हैं... समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! **उनके यथार्थ सिद्धि नहीं है,...** उसको यथार्थ सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती नहीं। आहाहा! **इसलिए जैनमत के अनुसार ध्यान करना, ऐसा उपदेश है।** भगवान ने कहा ऐसा अन्तर में चारित्रगुण, दर्शनगुण, ज्ञानगुण से भरा है—ऐसा अनन्त गुण, परन्तु ये तीन प्रगट करने हैं तो उस अपेक्षा से तीन गुणवाला कहने में आया। नाभि में कस्तूरी, मृग बाहर ढूँढ़ता है। बाहर ढूँढने जाता है। ऐसा करो। परन्तु तेरी चीज़ में पड़ा है, भगवान! अन्दर नाभि में-तेरे गुण में सर्व पड़ा है। ओहो! **जैनमत के अनुसार ध्यान करना, ऐसा उपदेश है।**

गाथा-६५

आगे कहते हैं कि आत्मा का जानना, भाना और विषयों से विरक्त होना ये उत्तरोत्तर दुर्लभ होने से दुःख से (दृढ़तर पुरुषार्थ से) प्राप्त होते हैं –

दुक्खे णज्जइ अप्पा अप्पा णाऊण भावणा दुक्खं।
भावियसहावपुरिसो विसयेसु विरच्चए दुक्खं।।६५।।

दुःखेन ज्ञायते आत्मा आत्मानं ज्ञात्वा भावना दुःखम्।
भावितस्वभावपुरुषः विषयेषु विरज्यति दुःखम्।।६५।।

हो कष्ट से ही ज्ञात आतम जान दुष्कर भावना।
भावित स्वभावी पुरुष को भी कठिन विषय-विरक्तता।।६५।।

अर्थ – प्रथम तो आत्मा को जानते हैं वह दुःख से जाना जाता है, फिर आत्मा को जानकर भी भावना करना, फिर फिर उसी का अनुभव करना दुःख से (उग्र पुरुषार्थ से) होता है, कदाचित् भावना भी किसी प्रकार हो जावे तो भायी है, जिनभावना जिसने ऐसा पुरुष विषयों से विरक्त बड़े दुःख से (अपूर्व पुरुषार्थ से) होता है।

भावार्थ – आत्मा का जानना, भाना विषयों से विरक्त होना उत्तरोत्तर यह योग मिलना बहुत दुर्लभ है, इसलिए यह उपदेश है कि ऐसा सुयोग मिलने पर प्रमादी न होना।।६५।।

गाथा-६५ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि आत्मा का जानना, भाना और विषयों से विरक्त होना ये उत्तरोत्तर दुर्लभ होने से दुःख से... अर्थात् दुर्लभ है। दुःख नहीं है, हों! दुःख तो भाषा है। दुःख हो तो आर्तध्यान है। **दुःख से (दृढ़तर पुरुषार्थ से) प्राप्त होता है।** दुःप्राप्य है न उसमें? अर्थ है। महापुरुषार्थ, महापुरुषार्थ। वहाँ कायर का काम नहीं है। आहाहा! समझ में आया? 'वचनामृत वीतराग के परम शान्तरस मूल, औषध जो भवरोग के कायर को

प्रतिकूल।' कायर का कलेजा कम्पायमान हो। समझ में आया?

दुक्खे णज्जइ अप्पा अप्पा णाऊण भावणा दुक्खं।
भावियसहावपुरिसो विसयेसु विरच्चए दुक्खं।।६५।।

उसमें अर्थ किया है। आत्मा का ज्ञान होना अत्यन्त दुष्कर है। दुःख का अर्थ दुष्कर।

मुमुक्षु : भावार्थ में लिखा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, भावार्थ में लिखा है। भावना में लिखा है। देखो! उत्तरोत्तर योग मिलना बहुत दुर्लभ है। दुःख का अर्थ दुःख नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख से अर्थात् महापुरुषार्थ से, महापुरुषार्थ। दुःख का अर्थ महापुरुषार्थ।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। दुःख मालूम पड़े तो अज्ञान है। नहीं... नहीं... नहीं... सम्यग्दर्शन की ही बात है। दुःख मालूम पड़े वह तो कष्ट है, आर्तध्यान है। वह तो आर्तध्यान है, उसमें पाप बँधता है। वह तो कल कहा था। नीचे है, देखो! नीचे भावार्थ में है। **योग मिलना बहुत दुर्लभ है,...** ऐसा पाठ है। दुःख का अर्थ कष्ट (नहीं)। **यह उपदेश है कि ऐसा योग मिलने पर प्रमादी न होना।** यह बात है। दुःख का अर्थ महापुरुषार्थ, महापुरुषार्थ। स्वभाव सन्मुख। दुष्कर। उसमें दुष्कर लिखा है। इसमें उसने दुष्प्राप्य लिखा है। दुष्प्राप्य का अर्थ आनन्द का पुरुषार्थ अनन्त होता है तो प्राप्त होता है। साधारण पुरुषार्थ से सम्यग्दर्शन, ज्ञान मिलता नहीं—ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सामायिक करके मर जाये कृश होकर। मिथ्यात्व का पाप बाँधता है। यदि कोई दुःख लगे तो वह तो आर्तध्यान है। उससे मेरा लाभ होगा, तो मिथ्यात्व का लाभ है। आहाहा! बहुत कठिन काम, भाई! वीतराग ने कहा तत्त्व समझना। लोगों को अज्ञानी अपनी कल्पना से अर्थ करते हैं। समझ में आया?

दुष्कर। है न नीचे ? देखो ! **योग मिलना बहुत दुर्लभ है।** अपने आत्मा का ज्ञान पाना महादुर्लभ है। दुःख का अर्थ दुर्लभ है। नीचे भावार्थ में अर्थ किया है। उत्तरोत्तर दुर्लभ है। पहले तो आत्मज्ञान पाना ही महादुर्लभ है। समझ में आया ? आहाहा ! **फिर आत्मा को जानकर भी भावना करना, फिर-फिर इसी का अनुभव करना...** आनन्द का अनुभव करना **दुःख से (-उग्र पुरुषार्थ से) होता है,...** जानने के बाद भी अनुभव करना, वह तो अनन्त-अनन्त दुष्कर प्रयत्न है। समझ में आया ? आहाहा !

मुमुक्षु : गोपनीय विषय है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : गोपनीय ये तो अन्तर में पुरुषार्थ की उग्रता, उसका नाम दुःख शब्द लिया है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो अस्ति की बात है। यहाँ तो महापुरुषार्थ लिखा है न ? नीचे लिखा है, देखो ! **उत्तरोत्तर यह योग मिलना बहुत दुर्लभ है...** पहले तो ज्ञान पाना महादुर्लभ है। दुःख का अर्थ महादुर्लभ है। अभी तो सच्चा ज्ञान पाना महादुर्लभ है। समझ में आया ? आहाहा ! कल तो कहा था।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... पाना है, ऐसा अज्ञानी करते हैं। वह मिथ्यात्व की पुष्टि करता है और मानता है कि मैं शास्त्र का अर्थ करता हूँ। बहुत कष्ट सहन करना, तो उससे धर्म होता है। मूढ़ है। धर्म की व्याख्या ही समझते नहीं। वह आता है, छहढाला में आता है। वैराग्य, ज्ञान को कष्ट माने। नहीं ? निर्जरा की भूल। 'कष्टदान्' अपने को कष्ट माने, वह तो अज्ञान है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा माने तो मूढ़ है, कहते हैं। कष्ट नहीं है। सहजानन्द स्वरूप सहज पुरुषार्थ से ज्ञान, दर्शन प्राप्त होता है, आनन्द से प्राप्त होता है। कष्ट माने तो तत्त्व की भूल है, मिथ्यात्व है। निर्जरा होती है, ऐसा मानते हैं; इसलिए तो छहढाला में स्पष्टीकरण

किया है। माने कष्टदान। बहुत कठिन। वह तो अज्ञान है, मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है। मिथ्यात्व का पोषण करते हैं। ऐई!

महापुरुषार्थ से आत्मा को जानकर भावना करना। भावना अर्थात् अनुभव करना। अन्तर में जानकर भी स्थिरता, अनुभव करना महापुरुषार्थ, अनन्त-अनन्त पुरुषार्थ, स्वाभाविक अनन्त पुरुषार्थ है। पर से हटकर स्वभाव में आना महापुरुषार्थ—दुष्कर पुरुषार्थ है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या पुरुषार्थ? स्वभाव सन्मुख होने में पुरुषार्थ कितना है! लगाओ तो सही। तो खबर पड़े कि कितना है। बाहर से बात करे ऐसा काम आवे? अन्तर द्रव्य-गुण में लगाना... यहाँ गुण कहा न? ६४ (गाथा में) गुण कहा। अब गुण में पर्याय प्रगट करनी है तो यहाँ पर्याय की बात करते हैं। महापुरुषार्थ से पर्याय प्रगट होती है, ऐसा कहा। पहले ६३ गाथा में आत्मा कहा। '**झायव्वो णियप्पा णाऊणं**'। परन्तु आत्मा कैसा? दर्शन, ज्ञान, चारित्र भरा है ऐसा। अब भरा है, उसमें से पर्याय कैसे प्रगट होती है? वह बात यहाँ ६५ में चली है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : भावार्थ में आता है, उत्तरोत्तर योग मिलना दुर्लभ है। दु:ख का अर्थ दुर्लभ किया।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ना, ना, वह नहीं। स्थिरता नहीं हो, आत्मज्ञान का अर्थ। ज्ञान तो वर्तता है। ९६ हजार स्त्री में वर्तते हैं और सम्यग्ज्ञान है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु न हुआ विषय में प्रवर्तता है फिर भी समकित दर्शन हो सकता है। सम्यग्दर्शन न हो? तो पीछे राग तो राग से सम्यग्दर्शन न हो? राग तो सदा रहता है। स्वामी नहीं है उसका। बहुत कठिन बात है। अभी तो समझने में अर्थ उल्टा करते हैं।

थोड़ा कष्ट करते हैं न ? तो (मानते हैं कि) कष्ट में कुछ लाभ है। विषय विरक्त का अर्थ अभी आयेगा। यहाँ तो उत्तरोत्तर दुर्लभ है, इतना कहना है। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन पाया, सम्यग्ज्ञान पाया फिर भी विषय से विरक्त होकर स्वरूप में स्थिरता करना महादुर्लभ है। वह बात है।

मुमुक्षु : सम्यग्ज्ञान का मतलब यहाँ चारित्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र। यहाँ तीन की बात है न।

मुमुक्षु : ... आत्मज्ञानी है ...

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मज्ञानी है, वह तो चौथे गुणस्थान में है। वह चौथे गुणस्थान में है। यहाँ कहा वह छठवें की बात है, मुनि की अपेक्षा से बात है। यहाँ तो ध्यान की बात है। तीन गुण की बात है न। (विपरीतता का) लकड़ा घुस गया है। मिथ्या शल्य। विषय से छूटे तो (कुछ लाभ हो)। विषय से अनन्त बार छूटा। आत्मा को ध्येय बनाये बिना विषय से अनन्त बार छूटा। ब्रह्मचर्य नौ-नौ कोटि से अनन्त बार पाला। स्वस्त्री से नौ-नौ कोटि से ब्रह्मचर्य पाला। उसमें हुआ क्या ? मिथ्यात्वभाव है।

यहाँ तो स्वरूप की अनुभव दृष्टि हुई और स्वरूप का ज्ञान हुआ, बाद में स्वरूप में रमणता करना पर का लक्ष्य छोड़कर, महापुरुषार्थ है। ऐसी बात है। यह बात है। ये चारित्र है। समझ में आया ? आहाहा! कल तो बहुत बात कही थी। श्रेणिक राजा, भरत चक्रवर्ती सब क्षायिक समकिती ज्ञानी थे। और विषय तो बहुत था। कितना विषय ? अभी तो है भी नहीं। वह तो चारित्रदोष है। परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि वह चारित्रदोष टालकर स्वरूप में रहना, वह महापुरुषार्थ है। ऐसा कहना है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सुना नहीं ? चारित्रदोष टालकर स्वरूप में रमना महापुरुषार्थ है। चारित्रदोष टालकर। आहाहा!

यहाँ तो तीन बोल लिये न ? चारित्र, दर्शन और ज्ञान। वह तो त्रिकाल गुण है। अब गुण में से पर्याय कैसे निकालनी ? यह कहते हैं। गुण में से पर्याय कैसे निकालनी ? अनन्त पुरुषार्थ है।

मुमुक्षु : अन्तर्मुहूर्त में...

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ है न, अन्तर्मुहूर्त में नहीं है ? अन्तर्मुहूर्त में अन्दर ध्यान में अनन्त पुरुषार्थ लगाते हैं। केवलज्ञान हो जाता है। अन्दर में लगाता है या बाहर में ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बात कहते हैं। अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान लेते हैं। उसमें क्या है ? भरत चक्रवर्ती ने अन्तर्मुहूर्त में लिया।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा है, ऐसा ही है न। यहाँ देखो आयेगा।

यहाँ तो ज्ञायक का अनुभव करना दुःख से-महापुरुषार्थ से है। है न नीचे ? दुर्लभ है। और उससे **कदाचित् भावना भी किसी प्रकार हो जावे...** समझ में आया ? **जिनभावना जिसने जैसा पुरुष विषय विषयों से विरक्त बड़े दुःख से (-अपूर्व पुरुषार्थ से) होता है।** सम्यग्दर्शनसहित, सम्यग्ज्ञानसहित राग से छूटकर स्वरूप में रहना महापुरुषार्थ है। वह बात है। सम्यग्दर्शनसहित है, सम्यग्ज्ञानसहित है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान में आनन्द का अनुभव है। परन्तु राग से हटकर स्वरूप में स्थिर होना महापुरुषार्थ है। समझ में आया ? यह विषय। बाहर का विषय कहाँ अन्दर घुस गया है ? वह तो लक्ष्य बदलता है, इतनी बात है।... अभी तो शास्त्र के अर्थ समझने में अन्तर। उसे समझ में कब आये और श्रद्धा कब करे ? समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं, देखो ! **भायी है जिनभवना जिसने...** देखो ! **ऐसा पुरुष विषयों से विरक्त बड़े दुःख से होता है।** पर का लक्ष्य छोड़कर स्वरूप में स्थिर होना बड़ा पुरुषार्थ, अनन्त पुरुषार्थ है। सम्यग्दर्शन, ज्ञानसहित की बात है, हाँ ! अकेले ज्ञान की बात नहीं है। उसको विषय छूटा ही नहीं। दृष्टि मिथ्यात्व है न। मैं विषय छोड़ूँ, मैं ऐसा छोड़ूँ, वह मिथ्यात्वभाव है। पर का ग्रहण-त्याग आत्मा में है ही नहीं और माना कि मैंने छोड़ा, तो मिथ्यात्व की पुष्टि करते हैं। वह भाव है इसमें। उसमें वह भाव है।

मुमुक्षु : आगे कहते हैं कि जब तक विषयों से यह मनुष्य प्रवर्तता है, तब तक आत्मज्ञान नहीं होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु विषय का अर्थ क्या ? आत्मज्ञान नहीं हो तो सम्यग्दृष्टि है नहीं और विषय में प्रवर्तते हैं। राग की एकताबुद्धि जिसमें है, उसको सम्यग्दर्शन नहीं होता। यह कहना है। एकताबुद्धि है। विषय तो भोग है सब है। आत्मज्ञान हो और विषय में प्रवर्तता है। परन्तु विषय में रुचिपूर्वक प्रवर्तता है तो सम्यग्ज्ञान नहीं होता। बात ऐसी है। बहुत अन्तर, पूर्व-पश्चिम जितना अन्तर है। ९६ हजार स्त्री के भोग में प्रवर्तता है और समकित एवं क्षायिक समकित है। कल तो बहुत कहा था।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि को त्याग है ही नहीं। उसको त्याग होता ही नहीं। (मिथ्यादृष्टि को विषय में) एकता है ही। एकताबुद्धि तो है ही। भिन्नता कहाँ से हो ? ये तो भिन्नता के बाद की बात है। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होने के बाद सम्यग्ज्ञान हुआ, बाद में विषय की वृत्ति छूटकर स्वरूप में स्थिर होना महादुर्लभ है, ऐसा कहना है। छठवें गुणस्थान में आता है। यह कहते हैं। देखो न। ऐसा अर्थ है। **विषयों से विरक्त बड़े दुःख से होता है**। लो, समय हो गया। कल विशेष आयेगा... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-८८, गाथा-६५ से ६९, सोमवार, भाद्र शुक्ल १४, दिनांक १४-०९-१९७०

आज दसलक्षणी पर्व का दसवाँ दिन है। ब्रह्मचर्य धर्म। मूल तो चारित्र की आराधना सम्यग्दर्शनसहित की बात है। यहाँ तो अकेला चारित्र होता है, वह सम्यग्दर्शन बिना नहीं होता। पंच महाव्रत क्रियाकाण्ड है न ? वह कोई चारित्र नहीं है। चारित्र तो सम्यग्दर्शनपूर्वक अन्तर स्वरूप में लीनता, आनन्द की उग्रता आना, उसका नाम चारित्र की आराधना कहने में आता है। सूक्ष्म बात है। ब्रह्मचर्य में वह लेते हैं, देखो ! ब्रह्मचर्य धर्म।

जो परिहरेदि संगं, महिलाणं णेव पस्सदे रूवं।
कामकहादिणिरीहो, णव विह बंभं हवे तस्स॥४०३॥

अन्वयार्थ : जो मुनि स्त्रियों की संगति नहीं करता है,... सम्यग्दर्शनसहित चारित्रवन्त है न ? उसको स्त्री का संग नहीं होता। नौ वाड़ से ब्रह्मचर्य होता है। और **उनके**

रूप को नहीं देखता है... अपना रूप देखते न, उसे पर का रूप क्या देखना ? आहा ! समझ में आया ? अपनी अनुभूति आनन्द की परिणति के साथ संग करते हैं, उसे महिला के संग की क्या जरूरत है ? ऐसा कहते हैं '**कामकहादिणिरीहो**' काम की कथा नहीं करते। भगवान आत्मा के गुण की कथा करे कि काम की कथा करे ? **काम की कथा आदि शब्द से, स्मरणादिक से रहित हो...** आदि शब्द पड़ा है। स्त्री आदि का स्मरण नहीं। किसका स्मरण ? प्रभु आत्मा का स्मरण करे, आनन्दस्वरूप प्रभु, उसका जो मतिज्ञान में अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा से अनुभव में लिया है, उसको धारणा में से आत्मा का स्मरण करते हैं। समझ में आया ? स्मरणादिक से रहित। स्मरण, प्रशंसा से रहित। **ऐसा नवधा कहिये मन-वचन-काय कृत-कारित-अनुमोदना...** से करता है। नौ-नौ कोटि प्रकार से ब्रह्मचर्य पालते हैं, ऐसा कहते हैं। **उस मुनि के ब्रह्मचर्य होता है।**

भावार्थ :- ब्रह्म आत्मा है... देखो ! आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा को ब्रह्म कहते हैं और उसमें लीन होना, वह ब्रह्मचर्य है। आहा ! समझ में आया ? काया द्वारा ब्रह्मचर्य हो, वह तो शुभविकल्प है। यह तो ब्रह्म अर्थात् आत्मा आनन्द अतीन्द्रिय सुधारस का भरा हुआ भण्डार, उसको पीना-आनन्द का अनुभव करना, उसका नाम ब्रह्मचर्य है। **ब्रह्म आत्मा है, उसमें लीन होना, सो ब्रह्मचर्य है।** समझ में आया ? काया से या बाहर से ब्रह्मचर्य पाले, वह तो विकल्प है, वह तो अनन्त बार पाला है। नौवें ग्रैवेयक गया तो ऐसी मन-वचन-काया से बाहर की क्रिया तो अनन्त बार की। यहाँ तो ब्रह्म अर्थात् आत्मा में लीन होना, वह ब्रह्मचर्य है। समझ में आया ?

परद्रव्यों में आत्मा लीन हो, उनमें स्त्री में लीन होना प्रधान है... क्या कहते हैं ? अपने द्रव्य में आनन्द में लीन न हो और परद्रव्य में लीन हो, उसमें स्त्री की लीनता मुख्य है। **क्योंकि काम मन में उत्पन्न होता है...** मन में वृत्ति उत्पन्न होती है। **इसलिए वह अन्य कषायों से भी प्रधान है...** दूसरे कषाय से भी कामवासना को मुख्य गिनने में आया है। वैसे कहा है नोकषाय। हें ! परन्तु उस पर बहुत जोर है। विषय की वासना... वास्तव में तो राग का भोगना, वही विषय की वासना का भोगना है। भोग निमित्त... बन्ध अधिकार में आता है न ? भोग निमित्त। राग का अनुभव वही, पुण्य का अनुभव वही भोग के लिये अनुभव है, आत्मा के लिये नहीं। आहाहा ! ऐसी बात है।

इसलिए वह अन्य कषायों से भी प्रधान है और इस काम का आलम्बन स्त्री है... निमित्त। **इसका संसर्ग छोड़ने पर अपने स्वरूप में लीन होता है।** वह तो बाहर से छोड़ने का नास्ति से कथन है। वास्तव में तो स्वरूप ब्रह्म भगवान आत्मा के आनन्द में लीन (होकर) अतीन्द्रिय अमृत का पीना (ब्रह्मचर्य है)। समझ में आया? वह आलम्बन छोड़कर **संसर्ग छोड़ने पर अपने स्वरूप में लीन होता है। इसलिए स्त्री की संगति करना, रूप निरखना, कथा करना, स्मरण करना जो छोड़ता है, उसके ब्रह्मचर्य होता है।** समझ में आया? **यहाँ टीका में शील के अठारह हजार भेद ऐसे लिखे हैं।** वह तो जानने के लिये है। मूल चीज़ यह है।

भगवान आत्मा ब्रह्मानन्द प्रभु अमृतसागर है। समझ में आया? उस अमृतसागर में दृष्टि लगाकर-ध्येय लगाकर आनन्द का अनुभव करना, उसका नाम दस धर्म में अन्तिम का ब्रह्मचर्य धर्म कहने में आया है। और वह ब्रह्मचर्य धर्म आराधे, उसको भवभ्रमण रहे नहीं। भवभ्रमण रहे ही नहीं। लो, वह आया। अब अपने ६५ गाथा। आज दस (लक्षणी) पर्व पूरा हुआ। ६५ गाथा चलती है, देखो!

अर्थ :- प्रथम तो आत्मा को जानते हैं, वह दुःख से... अर्थात् महापुरुषार्थ, महा कठोर दुष्कर भाव, उससे आत्मा को जानने में आता है। उसमें लिखा है। मोक्षपाहुड़ में इसमें है। आत्मा का ज्ञान होना और अनुभव होना, वह अत्यन्त दुष्कर है। दुःख से का अर्थ दुष्कर है। आत्मा का ज्ञान, अनुभव होना अत्यन्त दुष्कर। दुःख से का अर्थ महापुरुषार्थ है। ज्ञान आत्मानुभव होने के बाद आत्मा का चिन्तवन, उसकी भावना रहा करनी महा दुष्कर है। और आत्मा की भावना करनेवाले पुरुष के लिये, सम्यग्दृष्टि जीव के लिये भी विषयों से विरक्त होना, उदासीन होना अत्यन्त दुष्कर है। ठीक अर्थ किया है। इसमें भी वही अर्थ है, देखो!

फिर आत्मा को जानकर भी भावना करना,... भावना अर्थात् अन्तर में एकाग्र होकर अनुभव करना महा दुष्कर, महादुःखप्राप्य, महापुरुषार्थ है। उत्तरोत्तर, हों! और **कदाचित् भावना भी किसी प्रकार से हो जावे तो भायी है जिनभावना जिसने...** जिसने जिनभावना अर्थात् सम्यक् भावना, जिनभावना का अर्थ सम्यग्दर्शन भावना। जिसमें सम्यग्दर्शन प्रगट है, ऐसी जिनभावना जिसने भायी है, **ऐसा पुरुष विषयों से विरक्त बड़े**

दुःख से (-अपूर्व पुरुषार्थ से) होता है। समझ में आया ? भावना का अर्थ पहले बहुत लिया है। जिनभावना शब्द है न ? भावपाहुड़ में बहुत लिया है। भावपाहुड़ है न ? भावपाहुड़ की ८वीं गाथा है, देखो ! भावपाहुड़ है न ? भाव। ८वीं गाथा है।

हे जीव! तूने भीषण का (भयंकर) नरकगति तथा तिर्यंचगति में और कुदेव, कुमनुष्यगति में तीव्र दुःख पाये हैं, अतः अब तू जिनभावना अर्थात् शुद्ध आत्मतत्त्व की भावना भा... है ? ८वीं गाथा। भावना है न ? यह भाव अधिकार है न। **जिनभावना अर्थात् शुद्ध आत्मतत्त्व की भावना भा, इससे तेरे संसार का भ्रमण मिटेगा।** जिनभावना अर्थात् सम्यग्दर्शन। शुद्ध भगवान वीतराग की भावना, वह सम्यग्दर्शन की भावना। उससे तेरे संसार भ्रमण का (नाश होगा)। वहाँ बहुत बात है। ८वीं गाथा में है, ६८ में है। पहले बहुत मिलान किया था। ६८... ६८। ६८ है न ? देखो ! भावपाहुड़ की ६८।

णग्गो पावइ दुक्खं णग्गो संसारसायरे भमइ।
णग्गो ण लहइ बोहिं जिणभावणवज्जिओ सुइरं॥६८॥

जिनभावना बहुत भाते हैं। भाई ! श्रीमद् ने ऐसा कहा है। अष्टपाहुड़ में कुन्दकुन्दाचार्य ने जिनभावना हमने, तुमने कभी भायी नहीं। देवाधिदेव ने भी पहले भायी नहीं थी। श्रीमद् के पुस्तक में है। कुन्दकुन्दाचार्य का अष्टपाहुड़ का (आधार) लिखा है।

अर्थ :- **नग्न सदा दुःख पाता है, नग्न सदा संसार-समुद्र में भ्रमण करता है और नग्न बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप स्वानुभव को नहीं पाता है, कैसा है वह नग्न-जो जिनभावना से रहित है।** है ?

भावार्थ :- जिनभावना, सो सम्यग्दर्शन-भावना... भावार्थ में। जिनभावना-सम्यग्दर्शन भावना को जिनभावना कहते हैं। पूर्णानन्द वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा की श्रद्धा, अनुभव सम्यग्दर्शन का नाम जिनभावना कहने में आती है। इस जिनभावना के बिना नग्नपना भी अनन्त बार लिया। पंच महाव्रत अट्ठाईस मूलगुण आदि पाले। उसमें तो बहुत कड़क भाषा है। **संसार में ही दुःख को पाता है तथा वर्तमान में भी जो पुरुष नग्न होता है, वह दुःख ही को पाता है। सुख तो भावमुनि नग्न हों, वे ही पाते हैं।** अन्दर आनन्दमय दशा प्रगट हुई हो और बाद में नग्न दशा हो तो उसको अन्तर में आनन्द आता है। बहुत शब्द है। ६८ है न ? फिर ७२। ७२-७२, पहले पढ़ा था न।

जे रायसंगजुत्ता जिणभावणरहियदव्वणिग्गंथा।
ण लहंति ते समाहिं बोहिं जिणसाणे विमले॥७२॥

अर्थ :- जो मुनि राग अर्थात् अभ्यन्तर परद्रव्य से प्रीति,... राग में जिसको प्रीति है, **वही हुआ संग अर्थात् परिग्रह, उससे युक्त है और जिनभावना अर्थात् शुद्धस्वरूप की भावना से रहित हैं...** उसमें आया। देखो! जिनभावना... जिनभावना। बहुत जगह लिया है। आहा! विकल्प / राग की भावना नहीं। शुद्ध वीतरागमूर्ति आत्मा की भावना अर्थात् सम्यग्दर्शनसहित स्थिरता करना। देखो! **शुद्धस्वरूप की भावना से रहित हैं, वे द्रव्यनिर्ग्रन्थ हैं तो भी निर्मल जिनशासन में जो समाधि अर्थात् धर्म-शुक्लध्यान और बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग को नहीं पाते हैं।** समझ में आया? कौन सी है? ८८। गाथा ८८। उसमें है।

मच्छो वि सालिसित्थो असुद्धभावो गओ महाणरयं।
इय णाउं अप्पाणं भावह जिणभावणं णिच्चं॥८८॥

अर्थ :- हे भव्यजीव! सालिसित्थ मच्छ होता है न छोटा? सातवीं नरक में जाता है, इतना छोटा। ... सालिसित्थ यहाँ कहा है। पाठ में सालिसित्थ। ८८ गाथा है न? सालिसित्थ। **शालिसिक्थ (तन्दुल नाम का मत्स्य) वह भी अशुद्धभावस्वरूप होता हुआ महानरक (सातवें नरक) में गया, इसलिए तुझे उपदेश देते हैं कि अपनी आत्मा को जानने के लिये निरन्तर जिनभावना कर।** वीतरागभाव की भावना भा। राग और विकल्प की छोड़ दे। ऐसा कहते हैं। देखो! यह भावपाहुड़ है। भावपाहुड़ में ऐसा बहुत लिया है। १३०। गाथा-१३०, हों! अपने तो मोक्षपाहुड़ चलता है। भावपाहुड़ की १३० गाथा।

जेइड्ढिमतुलं विउव्विय किण्णरंकिपुरिसअमरखयरेहिं।
तेहिं वि ण जाइ मोहं जिणभावणभाविओ धीरो॥१३०॥

अर्थ :- जिनभावना (सम्यक्त्व भावना)... देखो न, आचार्य जिनभावना... जिनभावना (कहते हैं)। है? १३०, भावपाहुड़।

मुमुक्षु : उनको राग को कहना है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। सम्यग्दर्शन अन्तर एकाग्रता, वह भावना। तकरार करते हैं, इसलिए तो यह निकाला है। सम्यक्भावना। क्या कहते हैं? **जिनभावना (सम्यक्त्व भावना)...** समकित की भावना, उसका नाम ही जिनभावना है।

मुमुक्षु : रागरूप भावना नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग हो? विकल्प हो? उसको तो रतनचन्दजी चिन्तवना कहते हैं न। भावना का अर्थ विकल्प करना। अरे! श्रावक का अधिकार शास्त्र में आता है न? कि श्रावक समकिती है, पंचम गुणस्थानवर्ती, सामायिक में पड़ा हो तो उसे शुद्ध उपयोग आ जाता है। शुद्ध उपयोग की भावना शब्द वहाँ पड़ा है। प्रवचनसार की टीका में। समकिती श्रावक सामायिक में बैठा हो, कोई बार उसको आत्मध्यान में शुद्धउपयोग आ जाता है। उसको कहते हैं कि शुद्धउपयोग नहीं, वह तो शुद्धउपयोग की भावना है। परन्तु भावना का अर्थ एकाग्रता है। भावना है, वह शुद्धउपयोग की एकाग्रता है। यहाँ जिनभावना क्या कहा? सम्यक्त्व भावना। जिन अर्थात् वीतरागस्वरूप आत्मा, उसमें भावना अर्थात् एकाग्रता। सम्यग्दर्शन की भावना है। पोपटभाई! शब्दार्थ में बहुत तकरार (करते हैं)। अभी तो शास्त्र के अर्थ करने में तकरार, समझना तो बाद में रहा। आहा! देखो! कौन सी आयी? १३०। मोक्षपाहुड़ की ६५ गाथा है न? १३० के बाद भावपाहुड़ की १४९ गाथा। सब जगह जिनभावना जिनभावना है। १४९ है। १४९ कहते हैं? एक चार नौ। देखो!

दंसणणाणावरणं मोहणियं अंतराइयं कम्मं।
णिट्ठवइ भवियजीवो सम्मं जिणभावणाजुत्तो॥१४९॥

अर्थ :- सम्यक् प्रकार जिनभावना से युक्त भव्यजीव है, वह ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय इन चार घातियाकर्मों का निष्ठापन करता है अर्थात् सम्पूर्ण अभाव करता है। जिनभावना। वीतरागस्वरूप आत्मा में एकाग्रता जिनभावना है। समझ में आया? १६२ अन्तिम की। उसमें गाथा बहुत है न। १६२ है। भावपाहुड़ देखो!

सिवमजरामरलिंगमणोवममुत्तमं परमविमलमतुलं।
पत्ता वरसिद्धिसुहं जिणभावणभाविया जीवा॥१६२॥

अर्थ :- जो जिनभावना से भावित जीव है, वे ही सिद्धि अर्थात् मोक्ष के सुख को पाते हैं। लो। बस, इतना अर्थ लो। जिनभावना का अर्थ भावपाहुड़ में बहुत आता है। दर्शनपाहुड़ में...

यहाँ कहते हैं, **कदाचित् भावना भी किसी प्रकार हो जावे तो भायी है जिनभावना...** वीतरागी भाव सम्यग्दर्शन **ऐसा पुरुष विषयों से विरक्त बड़े दुःख से (-अपूर्व पुरुषार्थ से) होता है।** चारित्र। आहाहा! महापुरुषार्थ। समकित के बाद भी चारित्र का महापुरुषार्थ है।

भावार्थ :- आत्मा का जानना, भाना,... भावना, **विषयों से विरक्त होना उत्तरोत्तर...** एक के बाद एक **योग मिलना बहुत दुर्लभ है,...** समझ में आया? पहले तो सम्यग्ज्ञान होना कि यह आत्मा ऐसा है, बुद्धि में आना और फिर सम्यग्दर्शन की एकाग्रता होना और बाद में चारित्र की प्राप्ति उत्तरोत्तर एक के बाद महादुर्लभ है, महापुरुषार्थ है। समझ में आया? **इसलिए यह उपदेश है कि ऐसा सुयोग मिलने पर...** सम्यग्दर्शन, ज्ञान की प्राप्ति हो तो **प्रमादी न होना।** स्वरूप में स्थिरता करके चारित्र प्राप्त करना, ऐसा कहते हैं।

गाथा-६६

आगे कहते हैं कि जबतक विषयों में यह मनुष्य प्रवर्तता है, तबतक आत्मज्ञान नहीं होता –

ताम ण णज्जइ अप्पा विसएसु णरो पवट्टए जाम।
विसए विरत्तचित्तो जोई जाणेइ अप्पाणं ।।६६।।

तावन्न ज्ञायते आत्मा विषयेषु नरः प्रवर्तते यावत्।
विषये विरक्तचित्तः योगी जानाति आत्मानम् ।।६६।।

जब तक विषय में प्रवृत्ति तब तक न जाने आत्मा।
विरक्त-चित्ती विषय में वह योगि जाने आत्मा।।६६।।

अर्थ – **जबतक यह मनुष्य इन्द्रियों के विषयों में प्रवर्तता है, तबतक आत्मा को**

नहीं जानता है, इसलिए योगी ध्यानी मुनि है, वह विषयों से विरक्त चित्त होता हुआ आत्मा को जानता है।

भावार्थ **– जीव के स्वभाव के उपयोग की ऐसी स्वच्छता है कि जो जिस ज्ञेय पदार्थ में उपयुक्त होता है, वैसा ही हो जाता है, इसलिए आचार्य कहते हैं कि जबतक विषयों में चित्त रहता है, तबतक उनरूप रहता है, आत्मा का अनुभव नहीं होता है, इसलिए योगी मुनि इस प्रकार विचार कर विषयों से विरक्त हो आत्मा में उपयोग लगावे तब आत्मा को जाने, अनुभव करे, इसलिए विषयों से विरक्त होना यह उपदेश है।।६६।।**

गाथा-६६ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जब तक विषयों में यह मनुष्य प्रवर्तता है... यहाँ वजन है। '**विसएसु पवट्टए**'। एकता की बात है वहाँ। विषय अर्थात् पाँच इन्द्रिय के परपदार्थ नहीं; राग भाग है, वही विषय है। राग में प्रवर्तते हैं। प्रवर्तते हैं। ज्ञानी राग में नहीं प्रवर्तते; ज्ञानी राग से रहित आत्मा में प्रवर्तते हैं। समझ में आया? मूल तो योगी-मुनि की बात है।

ताम ण णज्जइ अप्पा विसएसु णरो पवट्टए जाम।
विसए विरत्तचित्तो जोई जाणेइ अप्पाणं।।६६।।

अर्थ :- जब तक यह मनुष्य इन्द्रियों के विषयों में प्रवर्तता है... देखो! राग में प्रवर्तता है। अभिलाष। विकल्प जो है, (उसमें) पंचेनिद्रय विषय में अभिलाष मुख्य है। उस विकल्प में प्रवर्तता है, वह मिथ्यादृष्टि है। परविषय में राग में प्रवर्ते तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? **तब तक आत्मा को नहीं जानता है,...** जब तक राग में एकता, विषय की अभिलाषा का अर्थ राग... राग। भोग निमित्तं कहा न? बन्ध (अधिकार) में। भोग अर्थात् राग। राग के अनुभव में पड़ा है। बन्ध अधिकार में, भोग निमित्तं। भोग के कारण पुण्य करता है। उसका अर्थ उसको राग का अनुभव है। उसको आत्मा का अनुभव नहीं है।

कहते हैं **विषयों में प्रवर्तता है...** ऐसी भाषा है। राग में प्रवर्तते हैं, विकल्प में प्रवर्तते हैं, तब तक सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया? पाँच इन्द्रिय के विषय में प्रवर्तते हैं

और सम्यग्दर्शन नहीं हो तो चक्रवर्ती पाँच इन्द्रिय के विषय में बाह्य में जुड़ता है। वह नहीं। अन्तर में तो वह प्रवर्तता ही नहीं।

मुमुक्षु : बाहर की प्रवृत्ति दिखती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर की प्रवृत्ति ज्ञाता के ज्ञेय में जाती है। सूक्ष्म बात है, भाई! अन्दर में प्रवर्तता है, राग में प्रवर्तता है एकाकार होकर, वह विषय से विरक्त नहीं है। कल आया था न? कल बताया था न? शीलपाहुड़ की ३२वीं गाथा। समकिती विषय से विरक्त है। नरक में भी। वहाँ क्या विषय है? स्त्री, कुटुम्ब तो है नहीं कोई। समझ में आया? विषय से विरक्त का अर्थ निर्विषय ऐसा भगवान आत्मा, उसको छोड़कर विषय जो राग है, उसमें एकाकार है, वह विषय से अविरक्त है। समझ में आया? और विषय से विरक्त है, वह राग की एकता से छूट गया, वह विषय से विरक्त है। समझ में आया? कठिन बात, भाई! कल बताया था। ३२वीं (गाथा)।

प्रवर्तता है... शब्द पड़ा है न? ऐसे तो नियमसार में लिया है। आहा! नियमसार में ऐसा लिया है कि जो कोई अज्ञानी विकल्प में प्रवर्तते हैं, वह मिथ्यादृष्टि है। ऐसा लिया है। समझ में आया? सूक्ष्म है। विकल्प अर्थात् शुभराग में भी प्रवर्तते हैं तो मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ प्रवर्तता है? अपने ज्ञान में प्रवर्तता है या राग में प्रवर्ते? सम्यग्दृष्टि तो राग से मुक्त है। राग से मुक्त है। आहाहा! पण्डितजी! ९६ हजार स्त्री का राग आता है तो भी कहते हैं कि राग से मुक्त है! क्योंकि उसमें एकाग्रता नहीं है। एकाग्रता तो ज्ञान, आनन्द में है। आहा! कठिन काम, भाई! जगत को दृष्टि का विषय और दृष्टि उल्टी है, उसका विषय क्या है, यह समझना महाकठिन है। आया न? महा दुर्लभ है। सम्यग्ज्ञान पाना, वह महादुर्लभ है। अनुभव करना महादुर्लभ है। फिर चारित्र विषय से विरक्त होकर स्थिरता करना, वहाँ स्थिरता की बात है, महादुर्लभ... महादुर्लभ। अहो! धन्य अवतार! जिसका अन्तर सम्यग्दर्शनपूर्वक स्वरूप की स्थिरता में पुरुषार्थ जमा है, जन्म सफल हुआ! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, विषय की रुचि में प्रवर्तता है। ऐसा पाठ है न? **तब तक आत्मा**

को नहीं जानता है। राग की रुचि में प्रवर्तता है, तब तक आत्मा को कैसे जाने? पुण्य की रुचिवाला जड़रुचि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन काम, भाई! समझ में आया? **तब तक आत्मा को नहीं जानता है,...**

इसलिए योगी... मुख्य तो मुनि की बात है न। **ध्यानी...** मूल पाठ में तो योगी शब्द है। योगी। उसका अर्थ किया है। **मुनि है वह विषयों से विरक्त चित्त होता हुआ...** देखो! विषय में विरक्त है चित्त जिसका। चित्त में राग की एकता छूट गयी है। वह विषय से विरक्त है। समझ में आया? अर्थ बहुत अच्छा किया है। विरक्त है चित्त अन्दर। ऐसा **होता हुआ आत्मा को जानता है।** राग की एकता छोड़कर स्वभाव को जाने। आहाहा! बहुत दुर्लभ। मूल चीज़ सम्यक् पाना और सम्यक् है, वही मूल चीज़ है। समझ में आया? आत्मा परमानन्द शुद्ध चैतन्यदल पड़ा है, उसका अनुभव करना, वह सम्यग्दर्शन है। बाकी इसके अतिरिक्त सब निरर्थक है।

भावार्थ :- जीव के स्वभाव के उपयोग की ऐसी स्वच्छता है... देखो! न्याय देते हैं। विषय में प्रवर्तता है, ऐसा कहा न? उसका न्याय देते हैं। **जीव के स्वभाव के उपयोग की ऐसी स्वच्छता है कि जो जिस ज्ञेय पदार्थ से उपयुक्त होता है, वैसा ही हो जाता है,...** राग में एकाकार हो जाए तो उपयोग ऐसा हो जाता है। समझ में आया? नहीं समझे? अच्छा! राग को ज्ञेय बनाकर एकाकार हुआ तो उपयोग रागमय हो गया।

मुमुक्षु : एकाकार हुआ का मतलब क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग में एकाकार हुआ-एकत्वबुद्धि। राग की एकत्वबुद्धि। उपयोग वहाँ एकत्व में लग गया न। एक ज्ञेय में एकाकार होने से दूसरे ज्ञेय में लक्ष्य नहीं जाता है तो एकाकार हुआ, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? सेठ स्पष्ट करते हैं। अधिक स्पष्ट होता है न। देखो!

विषयों में प्रवर्तता है... यहाँ कहा न? **उपयोग की ऐसी स्वच्छता है कि जिस ज्ञेय पदार्थ से उपयुक्त होता है, वैसा ही हो जाता है...** उसका अर्थ जैसे ... के निमित्त में स्फटिक लाल या काला हो जाता है। उसी प्रकार आत्मा राग के रंग में उपयोग लग गया तो रागरूप पर्याय हुई। समझ में आया? राग चाहे तो शुभ-अशुभ हो, परन्तु उसमें

एकता हो गयी तो उपयोग राग में रंग गया। उपयोग में राग का रंग चढ़ गया। समझ में आया?

क्षत्रिय था। एक साधु था, साधु। (संवत्) १९८३ की बात है। दामनगर था। साधु था। उसको कोई स्त्री के साथ संग रहता होगा। वह सब पैसा स्त्री खा गयी। फिर स्त्री ने छोड़ दिया। हम दामनगर में थे। बाजार में ही उपाश्रय है। हम बैठे थे और वह निकला। काला कोट था। काले कोट पर नाम लिखा, लक्ष्मी... लक्ष्मी... लक्ष्मी। स्त्री का नाम लक्ष्मी था। पहले उसके साथ विषय लेता होगा। पैसे दिये होंगे। फिर पैसे समाप्त हो गये तो स्त्री ने छोड़ दिया। छोड़ दिया तो उसको द्वेष हुआ। क्षत्रिय था, हों! परन्तु साधु हो गया था। समझ में आया? लक्ष्मी... लक्ष्मी। तो क्या कहे? कोई लड़के को देखे तो कहे, बोलो दस बार लक्ष्मी-लक्ष्मी। तो एक पैसा दे। लक्ष्मी का अपमान कराने को। स्त्री का फिर मुझे ख्याल आया कि अरे! ये क्या करता है? मैं उपाश्रय में बैठा था। संवत् १९८३। कितने वर्ष हुए? ४३—चार और तीन। हम उपाश्रय में पाट पर बैठे थे। वह निकला। फिर कहलवाया, अरे! बाबाजी! ये शोभता नहीं। इस वेश में यह क्या करते हो? स्त्री का नाम कोट पर लिखा है। लक्ष्मी... लक्ष्मी... लक्ष्मी। अपमान करवाना है? क्या है? तो उसको जवाब दिया, मुझे नहीं, मैंने किसी को कहा था। क्षत्रिय का रंग चढ़ा है, उतरता नहीं। ऐसा बोला। हम क्षत्रिय हैं और साधु हुए हैं। हमारा रंग चढ़ा है, स्त्री के द्वेष पर, वह उतरता नहीं। ऐ... प्रकाशदासजी! भाव समझे या नहीं? मैं क्षत्रिय हूँ तो मेरा रंग स्त्री के राग में चढ़ गया है। वह उतरता नहीं।

इसी प्रकार राग में उपयोग एकाकार रंग हो गया तो उतरता नहीं, आत्मा में जाता नहीं। समझ में आया? अपने यहाँ कहते हैं न? योगीहठ, क्षत्रियहठ कहते हैं न? राजहठ, योगीहठ, बालहठ, स्त्रीहठ,... चार कहते हैं न? एक तो क्षत्रिय था और साधु हो गया। दो हठ मेरे पास हैं। ऐसा कहता था। हमारी हठ छूटती नहीं। महाराज पूछते हैं कि यह क्या करते हो? हमारा रंग चढ़ गया है, वह अभी उतरता नहीं। अनादि का उपयोग में राग का रंग चढ़ गया है। समझ में आया? उपयोग तो अपना स्वच्छ शुद्ध चैतन्य है, परन्तु राग का रंग चढ़ने से उसमें एकत्वबुद्धि हो गयी। समझ में आया? उसका नाम विषय से अविरक्त है।

इसलिए आचार्य कहते हैं कि जब तक विषयों में चित्त रहता है,... राग... राग। राग में चित्त रहता है, **तब तक उनरूप रहता है,...** देखो! तब तक उनरूप रहता है-रागरूप रहता है। राग बिना की मेरी चीज़ क्या है, उस ओर उसकी दृष्टि जाती नहीं। **आत्मा का अनुभव नहीं होता है,...** कहाँ से हो? राग का उपयोग में रंग लग गया हो तो आत्मा का ध्यान और अनुभव कहाँ से हो? **इसलिए योगी मुनि इस प्रकार विचारकर विषयों से विरक्त हो...** राग का उपयोग छूट जाए। समझ में आया? आहाहा! भगवान तो ऐसा भी कहते हैं कि जैसा स्त्री आदि विषय है, वह अशुभभाव का विषय है। परन्तु परद्रव्य जो वीतराग की वाणी आदि है, वह भी विषय है। वह शुभभाव का विषय है। परद्रव्य विषय है, उसमें जब तक लक्ष्य जाता है, चाहे तो भगवान हो या चाहे तो स्त्री हो, राग ही उत्पन्न होगा। परद्रव्य के लक्ष्य से राग ही उत्पन्न होगा। वह पहले आ गया है। समझ में आया? कठिन काम है।

३१वीं गाथा में वह कहा न? समयसार ३१वीं गाथा में कहा है, इन्द्रिय का जो विषय है, वही इन्द्रिय है। भगवान की वाणी भी इन्द्रिय का विषय है तो वह भी इन्द्रिय है, ऐसा कहा है। भगवान ऐसा कहते हैं कि ये पाँच इन्द्रियाँ तो जड़ हैं, भावेन्द्रिय भी इन्द्रिय है, खण्ड-खण्ड अंश खण्ड-खण्ड इन्द्रिय है, परन्तु भगवान की वाणी भी इन्द्रिय है। क्योंकि उसका विषय इन्द्रिय है, विषय उसका है, इन्द्रिय का विषय है। आहाहा! अमरचन्दभाई! कायर का तो कलेजा काँप उठे ऐसा है। ऐ... सेठ! वीतराग की वाणी और वीतराग कहते हैं कि हमारा विषय, तुम्हारा हमारे पर लक्ष्य जाएगा तो तुझे राग होगा। हम राग का विषय हैं, तेरे अतीन्द्रिय ज्ञान का विषय हम नहीं। आहाहा! परद्रव्य... यहाँ लिखा है न? देखो!

आत्मा को जाने, अनुभव करे, इसलिए विषयों से विरक्त होना यह उपदेश है। विषय में जब तक चित्त रहे, तब तक राग में लीन होता है। आहाहा! कठिन बात, भाई! ऐ... देवीलालजी! क्या आया? बहुत कठिन काम है। अपना स्वविषय सम्यग्दर्शन का छोड़कर जितना पर के ऊपर लक्ष्य जाता है, वह सब विषय है। चाहे तो शुभभाव हो या चाहे अशुभ हो। ऐई! पण्डितजी! समयसार ३१वीं गाथा में आता है। तीनों को हम तो इन्द्रिय कहते हैं। खण्ड-खण्ड इन्द्रिय, जड़ इन्द्रिय और शब्द आदि भगवान की वाणी आदि भी इन्द्रिय है, वह अतीन्द्रिय नहीं। आहाहा! तीनों को इन्द्रिय कहा। उन इन्द्रियों को

जीते उसने सब जीता। उसका अर्थ कि जो शब्द आदि है, उसका लक्ष्य छोड़कर, द्रव्यइन्द्रिय का छोड़कर, भावइन्द्रिय का लक्ष्य छोड़कर अतीन्द्रिय आत्मा के सन्मुख करे तो उसको सम्यग्दर्शन होता है। वह सम्यग्दर्शन की गाथा है। बहुत सूक्ष्म बातें, भाई! उसका मार्ग अन्दर से प्राप्त करने की रीति ही कोई अलग है। समझ में आया? ऐ... सेठ! लड्डू खाना ऐसे नहीं मिल जाता।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो भाव आया। आये बिना रहेगा नहीं। जब तक वीतराग नहीं हो, तब तक शुभराग आता है, परन्तु है बन्ध का कारण। दुनिया कहे, दुनिया के घर रही। सत्य यह है। सत्य कोई गुप्त रखने में आता है? सत्य तो ऐसा है। ३१ गाथा में स्पष्ट कर दिया है। '**जो इंदिये जिणित्ता**' अमृतचन्द्राचार्य ने इन्द्रिय की व्याख्या की। इन्द्रिय के तीन प्रकार। इन्द्रिय की व्याख्या। खण्ड इन्द्रिय, जड़ इनिद्रय और सामने विषय। विषय अर्थात् चाहे तो स्त्री का हो या चाहे तो भगवान की वाणी का हो। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : विषय अर्थात् सामने लक्ष्य है। विषय के भोग की बात नहीं है। उससे जब तक एकताबुद्धि है तो विषय से विरक्त नहीं, वह इन्द्रिय का जीतना नहीं। भाई! ३१ में आता है न? वह इन्द्रिय का जीतनेवाला नहीं। जिसका लक्ष्य पर के ऊपर जाता है, वीतराग तीन लोक के नाथ... ऐसा कहा न? '**परदव्वादो दुग्गइ**' पहले आ गया है। परद्रव्य पर लक्ष्य जाता है, इतनी आत्मा की गति से भ्रष्ट होता है। ऐ... वजुभाई! क्या है यह?

मुमुक्षु : यहाँ से कोई ना नहीं करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : आप सब ना कहनेवाले हाँ कहते हो। यहाँ का कहाँ है? मार्ग ऐसा है, भगवान! ये तो पहले से चला आया है, १६वीं गाथा से। नहीं? '**परदव्वादो दुग्गइ सदव्वा हु सुग्गइ होइ**' जितना स्वद्रव्य का आश्रय छोड़कर परद्रव्य का आश्रय करेगा इतनी आत्मा की गति स्व की नहीं होगी, परगति होगी। चार गति दुर्गति है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं **आत्मा का अनुभव नहीं होता है,...** जब तक राग की एकता पड़ी है, वह परविषय में एकता है। विषय अर्थात् पर ध्येय। राग ध्येय पर है, उसमें एकता है, तब तक आत्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन नहीं होगा। **विषयों से विरक्त होकर आत्मा में उपयोग लगावे...** देखो! राग में जो उपयोग लगा था, उसे छोड़कर आत्मा में लगावे, **तब आत्मा को जाने,...** तब आत्मा ज्ञानानन्द है, उसका ज्ञान होता है। तब अनुभव है। वेदन करे। **इसलिए विषयों से विरक्त होना, यह उपदेश है**। इसलिए इस कारण से विषय की एकताबुद्धि छोड़ना, विरक्त होने का उपदेश भगवान का है। आहाहा! विशेष जोर देते हैं।

गाथा-६७

आगे इस ही अर्थ को दृढ़ करते हैं कि आत्मा को जानकर भी भावना बिना संसार में ही रहता है –

अप्पा णाऊण णरा केई सब्भावभावपब्भट्ठा।
हिंडंति चाउरंगं विसएसु विमोहिया मूढा।।६७।।

आत्मानं ज्ञात्वा नरः केचित् सद्भावभावप्रभ्रष्टाः।
हिण्डन्ते चातुरंगं विषयेषु विमोहिताः मूढाः।।६७।।

कुछ जीव आतम जान भी सद्भाव-भाव-प्रभ्रष्ट हो।
चारों गति में भटकते विषयों में मोहित मूढ़ हो।।६७।।

अर्थ **– कई मनुष्य आत्मा को जानकर भी अपने स्वभाव की भावना से अत्यंत भ्रष्ट हुए विषयों में मोहित होकर अज्ञानी मूर्ख चार गतिरूप संसार में भ्रमण करते हैं।**

भावार्थ **– पहिले कहा था कि आत्मा को जानना, भाना, विषयों से विरक्त होना ये उत्तरोत्तर दुर्लभ पाये जाते हैं, विषयों में लगा हुआ प्रथम तो आत्मा को जानता नहीं है ऐसे कहा, अब यहाँ इस प्रकार कहा कि आत्मा को जानकर भी विषयों के वशीभूत हुआ भावना नहीं करे तो संसार ही में भ्रमण करता है, इसलिए आत्मा को जानकर विषयों से विरक्त होना यह उपदेश है।।६७।।**

गाथा-६७ पर प्रवचन

(गाथा) ६७। **आगे इस ही अर्थ को दृढ़ करते हैं...** देखो! उस ही अर्थ को दृढ़ करते हैं। **आत्मा को जानकर भी भावना बिना संसार में ही रमता है :-** अकेला जानपना हो और अनुभव, समयग्दर्शन न हो तो भी चार गति में भटकेगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

अप्पा णाऊण णरा केई सब्भावभावपब्भट्ठा।
हिंडंति चाउरंगं विसएसु विमोहिया मूढा।।६७।।

यहाँ तो स्वविषय में झुकने के लिए परविषय को छोड़ने का उपदेश है। समझ में आया? देखो न, नरक में भी विषय से विरक्त है। ३२ में आया है। वहाँ से निकलकर तीर्थंकर होगा। क्योंकि राग की एकताबुद्धि छूटकर स्वरूप का आचरण वहाँ भी है। स्वरूप का आचरण नरक में भी है, सो शील है। उसको शीलपाहुड़ में शील कहा है। समझ में आया? एकदेश शील। आहाहा!

अर्थ :- कई मनुष्य आत्मा को जानकर भी अपने स्वभाव की भावना से अत्यन्त भ्रष्ट हुए... अन्तर में सम्यग्दर्शन की भावना करते नहीं और अनुभव करते नहीं। कहो, समझ में आया? **विषयों में मोहित होकर...** देखो! पर में-राग में एकता हो जाती है। स्वभाव की भावना नहीं करके राग में एकत्व होता है। **अज्ञानी मूर्ख...** देखो! अज्ञानी। आहाहा! राग में एकता है, वह अज्ञानी है। मूर्ख है। पाठ में है न? '**विमोहिया मूढा**' दो शब्द है।

मुमुक्षु : '**आत्मानं ज्ञात्वा**' में क्या कहना है?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा का जानपना-क्षयोपशमभाव। जाना इतना, बुद्धि में आया इतना। परन्तु अनुभव दृष्टि-सम्यग्दृष्टि नहीं की। समझ में आया? अपने स्वभाव-सन्मुख की एकता होनी चाहिए, वह करते नहीं। ग्यारह अंग नौ पूर्व पढ़े। उसमें आता है न? आत्मा कैसा है पढ़ा था, उसे ख्याल तो आया था। हों! जानना उस प्रकार का ज्ञान, हाँ! सम्यग्ज्ञान नहीं।

अज्ञानी मूर्ख चार गतिरूप संसार में भ्रमण करते हैं। चार गति अर्थात् संसार में।

देखो ! यहाँ तो नरक में जाते हैं, कहते हैं। अपना विषय सम्यग्दर्शन बनाया नहीं और राग का विषय बनाकर एकत्व रहता है, वह चार गति में नरकादि में, पशु में, निगोद में भी जायेगा। लो। चार गति ली है न। तो मिथ्यादृष्टि निगोद में जाते हैं, समकिती जाते नहीं। समकिती को तो गति एक वैमानिक गति है। मनुष्य और तिर्यंच हो तो। नारकी और देव हो तो मनुष्य गति है। दूसरी गति होती ही नहीं। समझ में आया ?

यहाँ तो राग में एकत्व लीन है। मोक्षपाहुड़ है न ? तो परद्रव्य का आश्रय करके राग में लीन (रहता है), वह बन्ध का कारण है। और राग से रहित अपना स्व का आश्रय है, वह मुक्ति का कारण है, यह सिद्ध करना है। यह बात वीतराग मार्ग के अतिरिक्त कहीं सुनने मिलती नहीं। ऐ... प्रकाशदासजी ! यह पंच महाव्रत को पर का विषय बनाया। राग है न, राग। उसका अनुभव है, सो भोग का अनुभव है, ऐसा कहते हैं। अपने अनुभव की खबर नहीं। बन्ध अधिकार में लिया।

भावार्थ :- पहिले कहा था कि आत्मा को जानना, भाना, विषयों से विरक्त होना, ये उत्तरोत्तर दुर्लभ पाये जाते हैं,... देखो ! उत्तरोत्तर दुर्लभ है। समझना दुर्लभ है, फिर अनुभव दुर्लभ है और फिर स्थिरता अन्दर में दुर्लभ है। एक के बाद एक दुर्लभ है। उत्तरोत्तर है न ? **विषयों में लगा हुआ प्रथम तो आत्मा को जानता नहीं है ऐसे कहा,...** जो विषय में-राग में लीन हो गया, विकल्प में लीन है, वह विषय है, वह आत्मा को जानता नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! परविषय को विषय करता है। **आत्मा को जानता नहीं है ऐसे कहा, अब यहाँ इस प्रकार कहा कि आत्मा को जानकर भी विषयों के वशीभूत हुआ भावना नहीं करे...** अनुभव सम्यग्दर्शनसहित की वीतराग भावना में लीन, ऐसा न करे **तो संसार ही में भ्रमण करता है, इसलिए आत्मा को जानकर विषयों से विरक्त होना, यह उपदेश है।** परविषय से छूटकर अपना ज्ञान जानकर, अपने को विषय बनाकर अपने में स्थिर रहना, होना, वह मोक्ष का मार्ग है। स्वद्रव्य के आश्रय से रहना, वह मोक्ष का मार्ग है। परद्रव्य के आश्रय से राग होता है, वह बन्ध का मार्ग है। मूल तो वह कहना है। अब उससे सुलटा (कहते हैं)।

गाथा-६८

आगे कहते हैं कि जो विषयों से विरक्त होकर आत्मा को जानकर भाते हैं वे संसार को छोड़ते हैं –

जे पुण विसयविरत्ता अप्पा णाऊण भावणासहिया।
छंडंति चाउरंगं तवगुणजुत्ता ण संदेहो।।६८।।

ये पुन: विषयविरक्ता: आत्मानं ज्ञात्वा भावनासहिता:।
त्यजन्ति चातुरंगं तपोगुणयुक्ता: न संदेह:।।६८।।

जो पुन: आतम जान विषय–विरक्त–संयुत भावना।
हों तप गुणों–संयुक्त तजते चार गति सन्देह ना।।६८।।

अर्थ – फिर जो पुरुष मुनि विषयों से विरक्त हो आत्मा को जानकर भाते हैं, बारंबार भावना द्वारा अनुभव करते हैं वे तप अर्थात् बारह प्रकार तप और मूलगुण उत्तरगुणों से युक्त होकर संसार को छोड़ते हैं, मोक्ष पाते हैं।

भावार्थ – विषयों से विरक्त हो आत्मा को जानकर भावना करना, इससे संसार से छूटकर मोक्ष प्राप्त करो, यह उपदेश है।।६८।।

गाथा-६८ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो विषयों से विरक्त होकर आत्मा को जानकर भाते हैं, वे संसार को छोड़ते हैं :- पहले चार गति में भटकता है, ऐसा कहा था। अब यहाँ चार गति को छोड़ता (है, ऐसा कहा कहते हैं)।

जे पुण विसयविरत्ता अप्पा णाऊण भावणासहिया।
छंडंति चाउरंगं तवगुणजुत्ता ण संदेहो।।६८।।

'**जे पुण विसयविरत्ता**' विषय से विरक्त, राग की एकताबुद्धि से छूट गया है।

'**अप्पा णाऊण**' आत्मा का ज्ञान करके '**भावणासहिया**' अनुभव विशेष करके। '**छंडंति चाउरंग**' देखो! चार गति छोड़ देता है। '**तवगुणजुत्ता ण संदेहा**' उसके साथ चारित्र हो तो चार गति होती नहीं। '**ण संदेहा**' सन्देह नहीं करना।

अर्थ :- फिर जो पुरुष मुनि विषयों से विरक्त हो आत्मा को जानकर भाते हैं,... पर का लक्ष्य छोड़कर अपना ज्ञान करके आत्मा की भावना करते हैं **बारम्बार भावना द्वारा अनुभव करते हैं...** आत्मा का आनन्द का शुद्धउपयोग बारम्बार करे। ऐसा कहते हैं। **वे तप अर्थात् बारह प्रकार तप और मूलगुण उत्तरगुणों से युक्त होकर...** उसको बाहर में बारह प्रकार का तप निमित्तरूप से होता है। बारह प्रकार का कहा न? उसमें सज्झाय, ध्यान आ गया। विनय, वैयावृत्य बाहर में निमित्त है। **मूलगुण उत्तरगुणों से युक्त होकर संसार को छोड़ते हैं,...** उसका संसार-उदयभाव छूट जाता है और आत्मा की परम पवित्र दशा प्राप्त होती है। लो, वह बाद में आयेगा।

भावार्थ :- विषयों से विरक्त हो आत्मा को जानकर भावना करना, इससे संसार से छूटकर मोक्ष प्राप्त करो, यह उपदेश है। लो। अब कहेंगे, सब स्पष्टीकरण बहुत आयेगा।

गाथा-६९

आगे कहते हैं कि यदि परद्रव्य में लेशमात्र भी राग हो तो वह पुरुष अज्ञानी है, अपना स्वरूप उसने नहीं जाना –

परमाणुपमाणं वा परदव्वे रदि हवेदि मोहादो।
सो मूढो अण्णाणी आदसहावस्स विवरीओ ॥६९॥

परमाणुप्रमाणं वा परद्रव्ये रतिर्भवति मोहात्।
सः मूढः अज्ञानी आत्मस्वभात् विपरीतः ॥६९॥

हो मोह से पर-द्रव्य में परमाणु-मात्र भि रति यदी।
विपरीत आत्म-स्वभाव से है मूढ़ अज्ञानी वही॥६९॥

अर्थ – जिस पुरुष के परद्रव्य में परमाणु प्रमाण भी लेशमात्र मोह से रति अर्थात् राग–प्रीति हो तो वह पुरुष मूढ़ है, अज्ञानी है, आत्मस्वभाव से विपरीत है।

भावार्थ – भेदविज्ञान होने के बाद जीव–अजीव को भिन्न जाने, तब परद्रव्य को अपना न जाने तब उससे (कर्तव्यबुद्धि–स्वामित्वबुद्धि की भावना से) राग भी नहीं होता है यदि (ऐसा) हो तो जानो कि इसने स्व–पर का भेद नहीं जाना है, अज्ञानी है, आत्मस्वभाव से प्रतिकूल है और ज्ञानी होने के बाद चारित्रमोह का उदय रहता है, जबतक कुछ राग रहता है उसको कर्मजन्य अपराध मानता है, उस राग से राग नहीं है, इसलिए विरक्त ही है, अतः ज्ञानी परद्रव्य से रागी नहीं कहलाता है, इस प्रकार जानना।।६९।।

गाथा–६९ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि यदि परद्रव्य में लेशमात्र भी राग हो तो वह पुरुष अज्ञानी है,... यहाँ स्पष्टीकरण किया। राग का राग है, वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। लेशमात्र राग का अंश है, उसकी भी रुचि है। रुचि है, उसकी बात है न? राग हो, दूसरी बात है, उसकी रुचि। ये गाथा अपने आती है, भाई! पंचास्तिकाय, समयसार और प्रवचनसार तीनों में इस गाथा का सार है। पंचास्तिकाय १६७, समयसार २०१, प्रवचनसार में ३९। ऐसा यहाँ लिखा है। यह गाथा तीन में आती है।....

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : राग का राग। यहाँ राग वह लेना है। समयसार में लिया है। राग का राग।

परमाणुपमाणं वा परदव्वे रदि हवेदि मोहादो।
सो मूढो अण्णाणी आदसहावस्स विवरीओ।।६९।।

ये सबका सार लिया।

अर्थ :- जिस पुरुष के परद्रव्य में परमाणु प्रमाण भी लेशमात्र मोह से रति

अर्थात् राग-प्रीति हो... राग का राग-प्रेम है, वह मिथ्यादृष्टि है। बहुत कठिन काम।

मुमुक्षु : परमाणु माने ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परमाणु अर्थात् थोड़ा। अल्प में अल्प राग, शुभराग। दया का, दान का बड़ा अच्छा। शरीर का ब्रह्मचर्य। उस राग का भी राग है मोहादि... देखो! '**परदव्वे रदि हवेदि मोहादो**' रति। रति का अर्थ प्रेम किया।

जिस आत्मा को। पुरुष अर्थात् आत्मा, हाँ! **परद्रव्य में... 'परदव्वे रदि हवेदि'** राग-विकल्प भी परद्रव्य है। उसमें भी रुचि-प्रीति है, '**मोहादो**' मोह से रति अर्थात् राग-प्रीति हो **तो वह पुरुष मूढ है,...** यहाँ तो परद्रव्य का विषय का राग है, उसमें प्रीति है, वह मिथ्यात्व है—यह बात सिद्ध करनी है। आहाहा! कठिन काम, भाई! राग हो, दूसरी बात है और राग की प्रीति, रति कहते हैं न? राग की रति करना, प्रीति करना, राग ठीक है, मुझे ठीक है। मिथ्यात्वभाव से ऐसी प्रीति करते हैं, वह मूढ़ हैं। कहो, स्त्री, पुत्र राग तो बहुत दूर रह गया। राग का राग करते हैं। समयसार २०१ में वह लिया न? भाई! समयसार २०१ में वह लिया। पण्डित जयचन्द्र ने स्पष्टीकरण किया कि यह राग तो अज्ञानी का राग। राग में राग है, वह राग। ऐसे राग तो ज्ञानी को दसवें गुणस्थान तक है। वह राग परद्रव्य है, ज्ञेय है, अपने स्वरूप नहीं है। राग का अंश भी है, वह प्रीति करके करता है, वह अपने स्वभाव की दृष्टि का वमन करते हैं। भाई!

बड़ा दिन है, बड़ी बात आ गयी। सेठ! आहाहा! अनन्त चतुर्दशी का बड़ा दिन है। महापर्व है बड़ा। अन्तिम है न। ब्रह्मचर्य। ब्रह्म अर्थात् अपने आनन्दस्वरूप में रुचि करना, वह ब्रह्मचर्य है। परद्रव्य में राग है, राग में प्रीति करना वह मैथुन-अब्रह्म है। दया के, दान के शुभभाव में प्रीति / रुचि करना वही मैथुन और अब्रह्म है। एक स्वभाव को दूसरे के साथ जुड़ान करके रहना, वह मैथुन विषय है। समझ में आया?

मुमुक्षु : जगह ही नहीं रही निकलने की।

पूज्य गुरुदेवश्री : जगह रही निकलने की, रागरहित आत्मा है या नहीं? राग में रहकर कुछ हो, धूल भी नहीं होता। पुण्य-पाप अधिकार में वह आया था। उसमें क्या है?

'**परमाणुपमाणं**' उसका अर्थ क्या? परमाणु प्रमाण भी राग में रति, वह मिथ्यादृष्टि है, उसका अर्थ क्या? राग तो छठे गुणस्थान में होता है, राग तो दसवें गुणस्थान तक होता है। वह दूसरी बात है। राग की रुचि और प्रीति है। भले थोड़ा राग और थोड़ी प्रीति (हो)। मोक्षपाहुड़ में बात वह यहाँ सिद्ध करनी है। समझ में आया? बाहर की चीज़ तो दूर पड़ी रही।

मुमुक्षु : अनन्तानुबन्धी का राग?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्तानुबन्धी का राग। हाँ। शुभराग है, उसकी प्रीति है, रुचि है, उससे मेरा भला होगा, वह अनन्तानुबन्धी का राग है। समझ में आया? क्या करना? ये सब झटककर निकाल दिया। वीतराग मार्ग है, उसमें राग की रुचि तो वीतराग मार्ग कहाँ से आया? जिनवाणी वीतरागभाव की पोषक है, जिनवाणी राग की पोषक नहीं है। राग की पोषक हो वह जिनवाणी नहीं। समझ में आया? जिनवाणी किसको कहते हैं वीतराग? राग की रुचि तो राग का पोषक भाव हुआ।

जिस पुरुष के परद्रव्य में परमाणु प्रमाण... इतना छोटे से छोटा राग। **लेशमात्र मोह से रहित अर्थात् राग-प्रीति हो तो वह पुरुष मूढ़ है, अज्ञानी है,...** पाठ में आया **आत्मस्वभाव से विपरीत है**। आत्मा के स्वभाव से विपरीत है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना माना है न, रति की है न। यहाँ तो छोटा। परमाणु अर्थात् थोड़ा राग। राग में रति है, प्रेम है कि यह लाभदायक है, मेरा है, वह अनन्तानुबन्धी का राग है। मोह से मिथ्यात्व से मिथ्यादृष्टि है। आत्मस्वभाव से विपरीत है। ऐसी बात है, भाई! राग हो वह दूसरी बात है और राग की रुचि में लाभ मानना, राग से लाभ होगा, मेरे शुभराग से लाभ होगा, मुझे सम्यग्दर्शन होगा, शुभराग से मुझे चारित्र होगा—ऐसी दृष्टि मूढ़ अज्ञानी प्राणी की है, ऐसा कहते हैं। प्रकाशदासजी! वहाँ कभी सुना नहीं होगा। स्थूल बातें सुनकर प्रसन्न-प्रसन्न हो जाये। जाओ, हो जाओ साधु। मुंडाओ, बाद में वही चलता है, अनादि से चलता है। वह कोई नया है? आहाहा!

यहाँ तो प्रभु कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं, स्वद्रव्य... राग परद्रव्य है। अपना द्रव्य

भी नहीं, अपना गुण भी नहीं, अपनी पर्याय भी नहीं। आहाहा! क्योंकि वह तो आस्रवतत्त्व है, राग तो आस्रवतत्त्व है और आत्मा तो ज्ञायकतत्त्व है। ज्ञायकतत्त्व आस्रवतत्त्व की प्रीति करता है तो मिथ्यात्व है। एक तत्त्व दूसरे तत्त्व की प्रीति करे तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! क्या कहा इसमें? '**परमाणुपमाणं वा परदव्वे रदि हवेदि मोहादो**'। मिथ्यात्व है न, मिथ्यात्व। सार करके यहाँ लाये। विषय से विरक्ति आदि जो सब कहा था न? राग में रस है, वह विषय से अविरक्त है। एकाकार उसमें पड़ा है। आत्मा का उपयोग बिल्कुल अस्वस्थ हो गया। आहाहा! आगे कहेंगे, देखो!

भावार्थ :- भेदविज्ञान होने के बाद जीव-अजीव को भिन्न जाने, तब परद्रव्य को अपना न जाने... देखो! अज्ञानी अपना जानते हैं तो मिथ्यात्व है। **तब उससे (कर्तव्यबुद्धि-स्वामित्व की भावना से) राग भी नहीं होता है,...** देखो! **भेदविज्ञान होने के बाद जीव-अजीव को भिन्न जाने, तब परद्रव्य को अपना न जाने, तब उससे (कर्तव्यबुद्धि-स्वामित्व की भावना से) राग भी नहीं होता है, यदि (ऐसा) हो तो जानो कि इसने स्व-पर का भेद नहीं जाना है,...** आहाहा! आपा-पर का। आपा कहते हैं न काठी को? **स्व-पर का भेद नहीं जाना है,...** भगवान आत्मा रागरहित और राग विकारसहित, दो का भेदज्ञान यदि हुआ और फिर प्रेम करे तो भेदज्ञान है ही नहीं। उसने स्व-पर का भेद जाना नहीं, **अज्ञानी है,...** आहाहा! **आत्मस्वभाव से प्रतिकूल है,...** पाठ में है न? अब स्पष्टीकरण करते हैं, देखो!

ज्ञानी होने के बाद चारित्रमोह का उदय रहता है, तब तक कुछ राग रहता है उसको कर्मजन्य अपराध मानता है,... गुनाह माने, दोष माने। **उस राग से राग नहीं है,...** देखो! ज्ञानी को राग से राग नहीं है, अज्ञानी को राग पर प्रीति रुचि है। बस, इतना कहना है। समयसार में २०१ में वही अर्थ किया है। राग का राग। '**सव्वागमधरो वि**'। वहाँ ऐसा कहा। '**सव्वागमधरो वि**' राग प्रीतिमात्र करे तो वह मिथ्यादृष्टि है। समस्त आगम का जाननेवाला हो, परन्तु राग की रुचि करे तो मिथ्यादृष्टि है। **उस राग से राग नहीं है, इसलिए विरक्त ही है...** देखो! विरक्त लिखा। राग का राग नहीं है; इसलिए विरक्त है। अज्ञानी को राग का राग है, इसलिए अविरक्त है, विरक्त नहीं। आहाहा! कठिन अर्थ। **अतः ज्ञानी परद्रव्य में रागी नहीं कहलाता है, इस प्रकार जानना।** ज्ञानी परद्रव्य का प्रेमी कहने में आता नहीं। विशेष आयेगा.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-७०

आगे इस अर्थ को संक्षेप से कहते हैं –

अप्पा झायंताणं दंसणसुद्धीण दिढचरित्ताणं।
होदि धुवं णिव्वाणं विसएसु विरत्तचित्ताणं।।७०।।

आत्मानं ध्यायतां दर्शनशुद्धीनां दृढचारित्राणाम्।
भवति ध्रुवं निर्वाणं विषयेषु विरक्तचित्तानाम्।।७०।।

हैं विरत-चित्ती विषय में दर्शन-विशुध दृढ़ चरित्री।
जो आतमा ध्याते उन्हें निर्वाण होता नियम ही।।७०।।

अर्थ – पूर्वोक्त प्रकार जिनका चित्त विषयों से विरक्त है, जो आत्मा का ध्यान करते रहते हैं, जिनके बाह्य अभ्यन्तर दर्शन की शुद्धता है और जिनके दृढ़ चारित्र है उनको निश्चय से निर्वाण होता है।

भावार्थ – पहिले कहा था कि जो विषयों से विरक्त हों, आत्मा का स्वरूप जानकर आत्मा की भावना करते हैं, वे संसार से छूटते हैं। इस ही अर्थ को संक्षेप में कहा है कि जो इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होकर बाह्य अभ्यन्तर दर्शन की शुद्धता से दृढ़ चारित्र पालते हैं, उनको नियम से निर्वाण की प्राप्ति होती है, इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति सब अनर्थों का मूल है, इसलिए इनसे विरक्त होने पर उपयोग आत्मा में लगे तब कार्यसिद्धि होती है।।७०।।

नोंध – गाथा ७० से ७६ का प्रवचन १९७४ के वर्ष से लिया गया है।

प्रवचन-१३८, गाथा-७० से ७३, सोमवार, वैशाख शुक्ल ८, दिनांक २९-०४-१९७४

उसे चारित्र कहते हैं। **उनको निश्चय से निर्वाण होता है**। उसे निश्चय से... साधक है न। मुक्तिदशा किसे होती है? जिसे आत्मा शुद्ध अखण्ड अभेद ... जिसे वीतराग

... पश्चात् स्वरूप में चारित्र, उस अतीन्द्रिय आनन्द में जिसकी लीनता हो। आहाहा! उसे चारित्र कहते हैं। ऐसे सम्यग्दर्शन और अन्दर रमणतारूप चारित्र आनन्द की, बाह्य दशा उसकी नग्न होती है। उसमें तो दर्शन की बाह्य-अभ्यन्तर शुद्धता कही है। उसमें वह आ जाती है। जिसकी दशा, मुनि जिसे कहते हैं भगवान के शास्त्र में, उसकी तो नग्नदशा हो गयी होती है। आहाहा!

श्रीमद् में ऐसा नहीं आता? शरीरमात्र जिसे, मात्र देह वह संयम हेतु होय। देह के अतिरिक्त मुनि को दूसरा नहीं होता। ऐसा डाला है, अपूर्व अवसर में। अन्तर के आनन्द की दशा का भान है और आनन्द में रमणता बहुत है। उसका नाम चारित्र कहते हैं। आहाहा! और देहमात्र जिसे परिग्रह रहा है। निमित्त बाहर। उसे वस्त्र का धागा नहीं होता, पात्र नहीं होता, उसे यहाँ जैनदर्शन में वीतराग शास्त्र में उसे मुनि कहा जाता है। उस मुनि को **निश्चय से निर्वाण होता है**। उसे वास्तव में मुक्ति होती है। उसका मोक्ष होता है।

भावार्थ :- पहिले कहा था कि जो विषयों से विरक्त हो, आत्मा का स्वरूप जानकर आत्मा की भावना करते हैं, वे संसार से छूटते हैं। पहले आया था। परन्तु ऐसे तो स्त्री का विषय छोड़े, वह कहीं उसे छोड़ा नहीं कहलाता। अन्तर में सम्यग्दर्शन के भावसहित में वस्तु की ओर के झुकाव की आसक्ति छोड़कर स्वरूप में रमणता करे, उसे विषय छोड़ा कहा जाता है। गजब बातें, भाई!

मुमुक्षु : आत्मा को विषय बनाया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जिसने आत्मा को विषय बनाया है। आत्मा को विषय बनाया, वह क्या?

जिसने आत्मा ध्येय बनाया, ध्रुव अखण्ड आनन्द का नाथ पूर्ण आनन्दस्वरूप, ऐसा जिसने ध्येय बनाकर ध्यान किया है। आहाहा! उसे अन्दर में स्वरूप की रमणता की जमावट जमती है, अन्दर अनाकुल आनन्द की लहर आती है। जैसे समुद्र में पानी का ज्वार आवे, वैसे मुनि को अन्तर के आनन्द की पर्याय में-अवस्था में ज्वार आता है। यह क्या होगा ऐसा? यह तो वह बाहर की दया और वस्त्र छोड़ना। यह उन श्वेताम्बर को वस्त्र

बदलना इतना। वह तो जैनदर्शन ही नहीं, उसे जानो, ऐसा कहते हैं। यह तो वस्त्र छोड़कर नग्न हो, उसे भी यदि इस आत्मा का सम्यग्दर्शन और भान नहीं है, उसे चारित्र नहीं है और मुक्ति नहीं है। समझ में आया? बहुत कठिन बातें। लालचन्दभाई! विस्तार करते हुए अन्तिम आने पर जरा कठिन पड़ता है कितनों को। मार्ग तो यह है, बापू! मिठास से कहे, शान्ति से कहे, धीरे से कहे या मोटी आवाज से कहे। मार्ग तो यह है। प्रवचनसार में अन्त में आता है। मोटी आवाज से कहे। पाठ आता है, हों! या धीमे से। परन्तु मार्ग तो यह है, बापू! तू भूला है, तुझे खबर नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, **आत्मा का स्वरूप जानकर आत्मा की भावना करते हैं...** आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप शुद्ध चैतन्यबिम्ब, उसके स्वरूप को स्वसन्मुख होकर जानकर पश्चात् भावना करता है अर्थात् अनुभव करता है। बारम्बार आनन्द का अनुभव करता है। आहाहा! उसका नाम चारित्र है। व्याख्या बहुत कठिन सूक्ष्म है। गणधर चार ज्ञान और चौदह पूर्व की रचना अन्तर्मुहूर्त में करे, ऐसे गणधर का जिसे नमस्कार पहुँचे, वह मुनिपना कैसा होगा! आहाहा! यह तो चल निकले बाहर से। मिथ्यादृष्टिसहित बाहर के क्रियाकाण्ड में जुड़ गये, वह तो मिथ्यात्व अज्ञान कुलिंगी है। यह तो जिसे गणधर णमो लोए सव्वसाहुणं—पंच नमस्कार में णमो लोए सव्वसाहुणं। चार ज्ञान और चौदहपूर्व की रचना करने में जिन्हें अन्तर्मुहूर्त लगे, ऐसे सन्त-गणधर, सन्तों के नायक, वे भी जिन्हें नमस्कार करते हैं, वह साधु है न, भाई! अलौकिक बातें हैं। समझ में आया? वह साधुपने की स्थिति सुनना भी कठिन है। आहाहा! कहते हैं, वह भावना आत्मा का ध्यान करके एकाग्र होता है। **वे संसार से छूटते हैं।** उसकी विधि यह है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह विधि। लावे, यह तुम्हारा याद आया। विधि-अविधि आवे न तुम्हारे? श्वेताम्बर में बहुत आती है। विधि से यह करना। परन्तु वह विधि ही नहीं है। क्या विधि करे? आहाहा! बहुत मार्ग प्रभु का, भाई! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने मार्ग कहा है। बापू! इसे सुनने को मिलता नहीं, वह कब माने और कब विचार करे? आहाहा!

कहते हैं कि **इस ही अर्थ को संक्षेप से कहा है कि जो इन्द्रियों के विषयों से**

विरक्त होकर बाह्य-अभ्यन्तर दर्शन की शुद्धता से दृढ़ चारित्र पालते हैं... आहाहा! जिसे सच्चे अरिहन्त सर्वज्ञदेव की पहिचान होती है। बाह्य समकित में, व्यवहार में। सच्चे सन्त-गुरु-मुनि कैसे होते हैं ? दिगम्बर नग्न मुनिदशा वनवासी हो, उसे यहाँ मुनि माने। उसकी तो व्यवहारश्रद्धा ऐसी होती है। आहाहा! और जिसे भगवान के कहे हुए शास्त्र, उसे वह शास्त्र माने। अज्ञानी के कल्पित शास्त्रों को वह शास्त्र नहीं माने। आहाहा! ऐसी तो बाह्य जिसकी दर्शन की शुद्धता हो। और अभ्यन्तर शुद्धता आत्मा के आनन्द की, अनुभवदशा की जिसे प्रतीति हो। आहाहा! भाषा अलग प्रकार की, भाव अलग प्रकार के। वह **दृढ़ चारित्र पालते हैं...** लो!

उनको नियम से निर्वाण की प्राप्ति होती है,... उनको पूर्ण निर्वाण की प्राप्ति होती है। पूर्ण शुद्ध अर्थात् पूर्ण आनन्द। पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति का लाभ, उसे मुक्ति कहते हैं। आहाहा! मोक्ष। श्रीमद् में तो ऐसा आया है 'मोक्ष कहा निज शुद्धता, वह पावे सो पंथ; समझाया संक्षेप में सकल मार्ग निर्ग्रन्थ।' वीतराग भगवन ने निर्ग्रन्थ मुनियों ने यह मार्ग अनादि का कहा है। मोक्ष कहा निज शुद्धता। अर्थात् कि आत्मा की पूर्ण आनन्द की प्राप्ति, वह निज शुद्धता। अतीन्द्रिय पूर्ण आनन्द की प्राप्ति का नाम मोक्ष। और उसका उपाय यह। स्वरूप आनन्द का नाथ भगवान अतीन्द्रिय विराजता है। उसका भान-ज्ञान करके प्रतीति करना और पश्चात् दृढ़ चारित्र पालन करे। आहाहा! सम्यग्दर्शन होने के पश्चात् चारित्र पालन करे, उसकी बात है। जिसे अभी सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं, उसे व्रत और चारित्र अज्ञानी के हैं। आहाहा!

इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति सब अनर्थों का मूल है,... अतीन्द्रिय आत्मा स्वयं भगवान है, उस अतीन्द्रिय की दृष्टि, ज्ञान और लीनता, वह मोक्ष का कारण। और ऐसे पाँच इन्द्रियों के विषयों की ओर का झुकाव, वह अनर्थ का कारण है, ऐसा कहते हैं। विषय शब्द से ? यहाँ तो भगवान की वाणी और भगवान स्वयं भी इन्द्रिय है। इन्द्रिय का विषय है। उसकी ओर के झुकाव का भाव राग है, वह अनर्थ का मूल है। आहाहा! वहाँ हमेशा सुनने जाते हो या किसी दिन ? किसी दिन। ठीक। रास्ते में साथ में थे तब। लालभाई के साथ चर्चा करते थे न।... इकट्ठे। उस दिन की पहिचान है। लालचन्दभाई की। लालचन्दभाई

बहुत अच्छा वाँचन करते हैं वहाँ। व्याख्यान में हजारों युवक आते थे। व्याख्यान में हजारों युवक, हों!

मुमुक्षु : जवान भी बहुत अधिक...

पूज्य गुरुदेवश्री : जवान बहुत। वृद्ध अब तो सब थक गये। और हजारों स्थानकवासी व्याख्यान में आते थे। हजारों। क्या कहते हैं परन्तु यह ? ४०-४० वर्ष से यह चलता है। और लोग बढ़ते जाते हैं। क्या है वह यह मार्ग ? सुने तो सही, भगवान! बापू! तेरे मार्ग की पद्धति यह है। आहाहा! भाई! तेरे विचार का मार्ग यह है। दुनिया से दूसरे प्रकार से मानकर कल्पित किया है, उस रास्ते से लाभ नहीं होगा। आहाहा! परन्तु इसकी दरकार भी कौन करे ? एक व्यक्ति तो उन्हें पूछता था कि यह हम संसार का काम भी करें और मोक्ष का कारण करते हैं, ऐसा कोई उपाय ? एक म्यान में दो तलवार रहे, ऐसा कुछ है ? पण्डितजी! संसार के काम कर सकता हूँ, यह जब तक मान्यता है, तब तक मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! अरे! राग, दया, दान और भक्ति का राग, वह सब राग है। उसे भी करनेयोग्य है और करता हूँ, ऐसी कर्ताबुद्धि है, वह मिथ्यादृष्टि है। उसे धर्म की खबर नहीं है। आहाहा! यह भी काम करते हैं और यह भी काम होता है, ऐसा दो है ? मैंने कहा, दो नहीं, यहाँ तो एक है। आहाहा! भगवान परमात्मा केवलज्ञानी अरिहन्त के श्रीमुख से निकली हुई यह बात है।

इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति सब अनर्थों का मूल है,... परसन्मुख के विषय में प्रेम है, वह सब अनर्थ का मूल है। **इसलिए इनसे विरक्त होने पर,...** परसन्मुख के, चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र हो या स्त्री-कुटुम्ब हो, वे सब परद्रव्य हैं। उनके प्रति का उपयोग छोड़कर **आत्मा में लगे, तब कार्यसिद्धि होती है।** आहाहा! यहाँ तो चारित्रसहित की व्याख्या है न। ऐसे पाँच इन्द्रिय के विषय (छोड़कर) ब्रह्मचर्य पालन करे। वह नहीं। वह तो सब विषय है। काया से ब्रह्मचर्य पालन करे, वह भी एक शुभराग की क्रिया है, यदि शुभराग करता हो तो। दुनिया में दिखाने के लिये करता हो तो अकेला पाप है। आहाहा!

आत्मा में लगे... जिसने आत्मा के आनन्द के स्वरूप को जिसने देखा, जाना और आस्वाद लिया है, ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव ने परद्रव्य की ओर के झुकाव के भाव को छोड़कर आत्मा में अन्दर जो स्थिरता में लगे हैं, उन्हें मुक्ति है। आहाहा! **तब कार्यसिद्धि होती है।** यह ७० गाथा हुई।

गाथा-७१

आगे कहते हैं कि जो परद्रव्य में राग है, वह संसार का कारण है इसलिए योगीश्वर आत्मा में भावना करते हैं –

जेण रागो परे दव्वे संसारस्स हि कारणं।
तेणावि जोइणो णिच्चं कुज्जा अप्पे सभावणं।।७१।।

येन रागः परे द्रव्ये संसारस्य हि कारणम्।
तेनापि योगी नित्यं कुर्यात् आत्मनि स्वभावनाम्।।७१।।

पर–द्रव्य में है राग वह संसार का हेतु कहा।
इसलिए योगी नित करें निज आतमा में भावना।।७१।।

अर्थ – जिस कारण से परद्रव्य में राग है, वह संसार ही का कारण है, उस कारण ही से योगीश्वर मुनि नित्य आत्मा ही में भावना करते हैं।

भावार्थ – कोई ऐसी आशंका करते हैं कि परद्रव्य में राग करने से क्या होता है? परद्रव्य है, वह पर है ही, अपने राग जिस काल हुआ उस काल है, पीछे मिट जाता है, उसको उपदेश दिया है कि परद्रव्य से राग करने पर परद्रव्य अपने साथ लगता है यह प्रसिद्ध है और अपने राग का संस्कार दृढ़ होता है, तब परलोक तक भी चला जाता है, यह तो युक्ति सिद्ध है और जिनागम में राग से कर्म का बंध कहा है, इसका उदय अन्य जन्म का कारण है, इस प्रकार परद्रव्य में राग से संसार होता है, इसलिए योगीश्वर मुनि परद्रव्य से राग छोड़कर आत्मा में निरंतर भवना रखते हैं।।७१।।

गाथा-७१ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो परद्रव्य में राग है, वह संसार का कारण है,... आहाहा! वह तो साधारण में उतारते हैं। यह अर्थकार है न? स्त्री का राग, वह है न। आचार्य तो परद्रव्य का राग कहना है पूरा। यह है न? स्त्री के प्रति राग और... यहाँ तो परद्रव्य चाहे

तो देव हो, गुरु हो, सच्चे शास्त्र, हों! मिथ्या की तो बात भी नहीं करना। आहाहा! **जो परद्रव्य में राग है, वह संसार का कारण है,...** आहाहा! केवली परमात्मा ऐसा कहते हैं कि हमारे प्रति भी तुझे प्रेम है, वह राग है, वह संसार का कारण है। आहाहा! वीतराग ऐसा कहते हैं, हों! तेरा नाथ अन्दर वीतरागमूर्ति आनन्दनाथ विराजता है। उस स्वद्रव्य का आश्रय छोड़कर, परद्रव्य के लक्ष्य में जाता है, वह राग संसार का कारण है। आहाहा! वह शुभराग धर्मी को भी भाव होता है सही, परन्तु है वह राग संसार का कारण। भाव आवे सही। अशुभ से बचने के लिये समकिती को भी देव-गुरु-शास्त्र का प्रेम भक्ति (होती है) परन्तु है वह राग बन्ध का कारण। आहाहा!

इसलिए योगीश्वर आत्मा में भावना करते हैं :-

जेण रागो परे दव्वे संसारस्स हि कारणं।
तेणावि जोइणो णिच्चं कुज्जा अप्पे सभावणं।।७१।।

अर्थ :- जिस कारण से परद्रव्य में राग है... मोक्ष अधिकार (पाहुड़) है न? १६वीं गाथा में आ गया। वहाँ मुम्बई में भी कहा था। '**परदव्वादो दुग्गइ**' १६वीं गाथा। इसमें, हों! '**परदव्वादो दुग्गइ**' १६-१६। पृष्ठ २४१। आहाहा! है? '**परदव्वादो दुग्गइ सदव्वा हु सुग्गइ होइ।**' यह सिद्धान्त वीतराग का। आहाहा! वहाँ कहा था, हों! मुम्बई। सब सुनते थे। सुने। आत्मद्रव्य जो आनन्द का नाथ प्रभु स्वयं सच्चिदानन्दस्वरूप, उसके आश्रय से सुगति होती है। और उस स्वद्रव्य को छोड़कर जितना परद्रव्य के ऊपर लक्ष्य जाता है, आश्रय करता है, उतना राग होता है और राग, वह आत्मा की गति नहीं, वह आत्मा का वर्तन नहीं, वह तो दुर्गति है। अर...र..! आहाहा! सच्चे देव और अरिहन्त गुरु...

आत्मा ही में भावना करते हैं। आहाहा! आत्मा, परमेश्वर सर्वज्ञ वीतराग अरिहन्त ने कहा हुआ ऐसा आत्मा; अज्ञानी ने किसी ने देखा नहीं और ऐसा कहा नहीं। वह सर्वज्ञ परमेश्वर ने तीर्थंकरदेव ने जो यह अन्तर आत्मा असंख्य प्रदेशी और अनन्त पवित्र गुण का धाम, स्वयं ज्योति सुखधाम, ऐसा आनन्द का नाथ भगवान आत्मा... आहाहा! उसे जिसने सम्यग्दर्शन और ज्ञान से जिसने जाना है, तदुपरान्त जिसने परद्रव्य के प्रति के राग को छोड़ा है। आहाहा! है न! परद्रव्य का राग संसार का कारण है। आहाहा! इस कारण से धर्मात्मा **नित्य आत्मा ही में भावना करते हैं।** आत्मा अर्थात् दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्परहित

चीज़, उसे आत्मा कहते हैं। अन्य तो सब राग है। आहाहा! ऐसे आत्मा का जिसने प्रथम अनुभव-सम्यग्दर्शन किया हो और वह उसमें परद्रव्य के प्रति की झुकाव की वृत्ति छोड़कर अन्दर में वह भावना करे, उसे मुक्ति होती है। लो! आहाहा!

भावार्थ :- कोई ऐसी आशंका करते हैं कि परद्रव्य में राग करने से क्या होता है ? परद्रव्य है वह पर ही है, अपने राग जिस काल हुआ उस काल है, पीछे मिट जाता है,... आहाहा! **उसको उपदेश दिया है कि परद्रव्य से राग करने पर परद्रव्य अपने साथ लगता है,...** पर के प्रति का प्रेम है तो पर का संयोग तुझे रहा करेगा। आहाहा! समझ में आया ? वस्तु ऐसी है। बहुत बारीक-सूक्ष्म और अपूर्व (वस्तु) है। यहाँ कहते हैं कि चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र पर है और स्त्री-कुटुम्ब भी पर है, परन्तु पर के प्रति का झुकाव-राग रहेगा, तब तक संयोग रहा ही करेंगे। संयोग रहे, उसमें आत्मा को क्या लाभ ? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

परद्रव्य से राग करने पर परद्रव्य अपने साथ लगता है,... अर्थात् कि राग पर सम्बन्धी का है, उसका फल संयोग रहेगा। आहाहा! **यह प्रसिद्ध है और अपने राग का संस्कार दृढ़ होता है...** और राग होता है, वह भले शुभ हो। जिसे प्रशस्तराग कहते हैं, पुण्य राग। परन्तु वह राग के संस्कार अन्दर दृढ़ रहते हैं। आहाहा! **तब परलोक तक भी चला जाता है...** वह परभव में जाये तो राग के संस्कार वहाँ रहा करते हैं। आहाहा!

यह तो युक्ति सिद्ध है और जिनागम में राग से कर्म का बन्ध कहा है,... वीतराग परमेश्वर के मार्ग में राग से कर्मबन्धन कहा। चाहे तो परमेश्वर के प्रति राग हो, चाहे तो पंच महाव्रत का राग हो, वह महाव्रत स्वयं राग है। आहाहा! वे कहते हैं कि पाँच महाव्रत धर्म है और संवर है। सब उल्टा। दृष्टि विपरीत, श्रद्धा विपरीत, ज्ञान विपरीत, आचरण विपरीत। खबर नहीं होती। जिनागम में वीतराग परमेश्वर के शासन में तो चाहे व्रत का राग हो, भगवान के प्रति राग हो, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की प्रीति का राग हो, **कर्म का बन्ध कहा है,...** राग तो बन्ध का कारण कहा है।

इसका उदय अन्य जन्म का कारण है,... वह राग तो भव का कारण है। आहाहा! **इस प्रकार परद्रव्य में राग से संसार होता है,...** चैतन्य भगवान आत्मा पूर्ण पवित्र का पिण्ड

प्रभु, उसके आश्रय बिना जो कुछ परद्रव्य का आश्रय करे, वहाँ तो उसे राग ही होता है और वह राग भटकने का, संसार का ही कारण है। पहले सम्यक् श्रद्धा तो करे। समझण में तो बात ले कि मार्ग ऐसा है। उल्टे मार्ग में श्रद्धा करे तो भटक मरेगा। नरक और निगोद में जायेगा। आहाहा! परन्तु कहाँ ऐसी पड़ी है किसी को अन्दर?

इसलिए योगीश्वर मुनि परद्रव्य से राग छोड़कर... चौथे गुणस्थान में, पाँचवें गुणस्थान में अभी राग होता है। देव-गुरु-शास्त्र का राग आदि बन्ध का कारण होता है, वहाँ वह। वह बन्ध का कारण है, ऐसा जानता है। जितनी आत्मा के आश्रय से निर्मल अरागी-वीतरागी दशा प्रगट हो, उतना मोक्ष का कारण। तब मुनि को तो कहते हैं कि तुझे राग ही नहीं हो सकता। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का पर्वत आत्मा है। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द के पर्वत में स्थिर हो और परसन्मुख के राग को छोड़। यह **आत्मा में निरन्तर भावना रखते हैं**। आहाहा! दुनिया के साथ मिलान खाये, ऐसा नहीं है।

सम्यग्दर्शन, वह अपूर्व चीज़, जिसने अनन्त काल में सेकेण्ड भी प्रगट नहीं की। मुनिपना अनन्त बार पालन किया। मुनिपना अर्थात् नग्न दिगम्बर की क्रिया, हों! वह मुनिपना। उसके अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत अनन्त बार, अनन्त अनन्त बार (पालन किये) परन्तु अन्दर आत्मज्ञान क्या चीज़ है, उसे स्पर्श नहीं किया। आहाहा! इसलिए कहते हैं, ऐसे आत्मज्ञानसहित समभाव जो प्रगट होता है अन्दर वीतरागता (प्रगट होती है) उसे चारित्र होता है। आहाहा!

गाथा-७२

आगे कहते हैं कि ऐसे समभाव से चारित्र होता है -

णिंदाए य पसंसाए दुक्खे य सुहएसु य।
सत्तूणं चेव बंधूणं चारित्तं समभावदो ।।७२।।

निंदायां य प्रशंसायां दुःखे च सुखेषु च।
शत्रूणां चैव बंधूनां चारित्रं समभावतः ।।७२।।

निन्दा–प्रशंसा में सकल सुख–दु:ख में सम–भाव से।
चारित्र हो जो रहें शत्रु–मित्र में सम–भाव से।।७२।।

अर्थ – **निन्दा–प्रशंसा में, दु:ख–सुख में और शत्रु–बन्धु–मित्र में समभाव जो समतापरिणाम, रागद्वेष से रहितपना ऐसे भाव से चारित्र होता है।**

भावार्थ – **चारित्र का स्वरूप यह कहा है कि जो आत्मा का स्वभाव है, वह कर्म के निमित्त से ज्ञान में परद्रव्य से इष्ट–अनिष्ट बुद्धि होती है, इस इष्ट–अनिष्ट बुद्धि के अभाव से ज्ञान ही में उपयोग लगा रहे उसको शुद्धोपयोग कहते हैं, वही चारित्र है, यह होता है, वहाँ निंदा–प्रशंसा, सुख–दु:ख, शत्रु–मित्र में समान बुद्धि होती है, निंदा–प्रशंसा का द्विधाभाव मोहकर्म का उदयजन्य है, इसका अभाव ही शुद्धोपयोगरूप चारित्र है।।७२।।**

गाथा–७२ पर प्रवचन

(गाथा) ७२।

णिंदाए य पसंसाए दुक्खे य सुहएसु य।
सत्तूणं चेव बंधूणं चारित्तं समभावदो।।७२।।

आत्मज्ञानी, धर्मात्मा की मुनिपने की दशा में उसे समामृत, वीतरागरूपी अमृत का उन्हें स्वाद आया है। आहाहा! ऐसे समभाव में निन्दा–प्रशंसा में जिसे समभाव है। दुनिया निन्दा करे, प्रशंसा करे, उसके प्रति धर्मी को तो समभाव है। अन्तर का समभाव, हों! बाहर का समभाव करे, वह समभाव नहीं है। आहाहा!

अर्थ :- निन्दा-प्रशंसा में,... धर्मी जीव को अन्तर समभाव प्रगट हुआ है। 'राग दाह दहे सदा तातैं समामृत सेईये।' छहढाला में है न? उसमें आता है। 'राग दाह दहे...' चाहे तो शुभराग हो या अशुभ हो। आहाहा! वह 'राग दाह दहे सदा' आत्मा की शान्ति को जलाता है। आहाहा! 'तातैं समामृत सेईये।' इसलिए सम्यग्दर्शन की भूमिका में स्थिर होकर समामृत–वीतरागरूपी अमृत का सेवन करो। आहाहा! यह राग के पेय–वेदन जहर का वेदन है, अंगारे का वेदन है, कहते हैं। आहाहा!

दु:ख-सुख में... समभाव से। प्रतिकूल संयोग दुश्मन आदि आये हों या अनुकूल संयोग सज्जन आदि हों, उसमें सुख-दु:ख की कल्पना जिसने छोड़ दी है। आहाहा! उसका नाम समता अमृत का सागर आत्मा है। आहाहा! **शत्रु-बन्धु-मित्र में समभाव...** सज्जन हो या शत्रु हो। दोनों परद्रव्य ज्ञेयरूप से ज्ञान करनेयोग्य है। आहाहा! अन्तर में सम्यग्दर्शनसहित आत्मा के अनुभव के भानसहित धर्मात्मा को शत्रु-मित्र के प्रति समभाव (रखनेयोग्य है)। किसी के प्रति विरोध नहीं। आहाहा! अज्ञानी की दृष्टि विपरीत हो या श्रद्धा विपरीत हो, ऐसा जाने परन्तु वैर-विरोध नहीं। आहाहा! किसी आत्मा के प्रति विरोध नहीं है। वह शत्रु और मित्र के प्रति (समभाव रखता है)। बन्धु कहा है न? बन्धु का अर्थ मित्र। समभाव-समभाव। वह समभाव वीतरागीरूपी अमृत का स्वभाव, उसे यहाँ समभाव कहा है। ऐसे तो यह सब गाँधी की लाईन में देश के लिये लकड़ी की मार सहन करे, वह समभाव नहीं। वह तो जहर है। जहाँ अभी सम्यग्दर्शन ही नहीं। क्या कहलाता है तुम्हारे? शहीद-शहीद होते हैं न? शहीद। वे सब तो मिथ्यादृष्टि अज्ञानी, उन्हें कहाँ समभाव था? ऐसी भारी सूक्ष्म बातें।

यहाँ तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आत्मा मन और राग के सम्बन्धरहित आत्मा अन्दर (देखा), उसका जिसे अन्तर भान हुआ है, उसका जिसे आत्मा के आनन्द का स्वाद आया है, उस स्वाद की उग्रता में आनन्द के स्वाद में स्थित हो, उसे समता का-अमृत का स्वाद आता है। उसे समताभाव कहते हैं। जगत से व्याख्या भी अलग है। भगवान वीतराग का मार्ग, बापू! जगत से अलग है। अरे! इसे एक सेकेण्ड भी इसने सुना नहीं। सुनना उसे कहते हैं कि इसे रुचना चाहिए। आहाहा!

समभाव जो समता परिणाम,... ऐसे तो समता-बमता सब बहुत कहते हैं, वह समता अज्ञानी की बात करते हैं। यहाँ तो आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप ज्ञाता-दृष्टा आनन्द है, ऐसी चैतन्यज्योति का जिसे अनुभव हुआ है। उस अनुभव में जिसे प्रतीति—सम्यक्त्व की दशा हुई है, उसे उस अनुभव में आनन्द में विशेष वीतरागी अमृत को पीता होता है, उसे यहाँ समता और समभाव कहा जाता है। शर्तें बहुत बड़ी। **राग-द्वेष से रहितपना, ऐसे भाव से चारित्र होता है।** आहाहा! बाह्य में जिसे नग्नदशा हो, अभ्यन्तर

में जिसे आनन्द की लहर अन्दर उठती है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का उछाला जिसे पर्याय में—दशा में आता है, उसे समामृत, वीतरागचारित्र और उसे चारित्र कहते हैं। आहाहा! अभी तो वह क्या है, इसकी खबर नहीं होती। प्रगटे तो कहाँ से ? हें!

भावार्थ :- चारित्र का स्वरूप यह कहा है कि जो आत्मा का स्वभाव है, वह कर्म के निमित्त से ज्ञान में परद्रव्य से इष्ट-अनिष्टबुद्धि होती है,... भगवान आत्मा तो ज्ञान-स्वरूपी प्रज्ञाब्रह्म, ज्ञान और आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा। उसे जो कर्म के निमित्त से... निमित्त से, हों! होता है तो स्वयं से। **ज्ञान में परद्रव्य से इष्ट-अनिष्टबुद्धि...** आत्मा के अतिरिक्त दूसरी चीज़ें चाहे तो भगवान हो या देव हो या गुरु हो। आहाहा! **परद्रव्य से इष्ट-अनिष्टबुद्धि...** देव-गुरु-शास्त्र में इष्टबुद्धि, शत्रु के प्रति अनिष्टबुद्धि। आहाहा!

इस इष्ट-अनिष्टबुद्धि के अभाव से... ऐसी इष्ट-अनिष्टबुद्धि का अभाव होकर आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में **ज्ञान ही में उपयोग लगा रहे...** आहाहा! अन्तर ज्ञानस्वभाव में शुद्ध उपयोग। पुण्य और पाप का उपयोग, वह तो अशुद्ध उपयोग है। जिसके ज्ञान में अर्थात् स्वभाव में **ज्ञान ही में उपयोग लगा रहे उसको शुद्धोपयोग कहते हैं,...** आहाहा! यह कहेंगे ७३ में कि अभी ऐसा ध्यान नहीं होता। ऐसा माननेवाले अज्ञानी मूढ़ जीव हैं, ऐसा कहेंगे। यहाँ शुद्धोपयोग की व्याख्या ली है न ? '**ण हु कालो झाणजोयस्स**' यह क्या होगा ? ऐसा वह अभी ध्यान होगा ? अरे! अभी आनन्दस्वरूप का ध्यान न हो तो धर्म ही नहीं है। आहाहा! आर्त और रौद्रध्यान है या नहीं ? वह पर में एकाग्रता है। यह स्वआनन्दस्वरूप भगवान आत्मा है, उसमें एकाग्रता के आनन्द के स्वाद में पड़ा हो, उसे ध्यान कहते हैं। आहाहा! वह ध्यान चौथे गुणस्थान से प्रगट होता है। समकित होने पर उस ध्यान की दशा (प्रगट होती है)। आहाहा!

वहाँ निन्दा-प्रशंसा, दुःख-सुख, शत्रु-मित्र में समानबुद्धि होती है, निन्दा-प्रशंसा का द्विधाभाव मोहकर्म का उदयजन्य है,... आहाहा! **इसका अभाव ही शुद्धोपयोगरूप चारित्र है।** यह व्रत के विकल्प हैं, वह अशुद्ध उपयोग है। आहाहा! उसमें से हटकर चैतन्य भगवान आत्मा में अन्दर शुद्धोपयोग, पवित्रता का परिणाम जिसे प्रगट हो, उसे यहाँ शुद्धोपयोग कहते हैं और वह शुद्धोपयोग, वह चारित्र है। व्याख्या कैसी यह ?

वह कहे, पंच महाव्रत पालना, दया पालना, सत्य बोलना, वह चारित्र है। बहुत अन्तर है। श्रद्धा में, दृष्टि में, मान्यता में, भगवान के मार्ग से बहुत उल्टा। समझ में आया?

आचार्य वापस यह सिद्ध करके कहते हैं कि आत्मा में पहला सम्यग्दर्शन हो, वह शुद्धोपयोग में होता है। अन्तर स्वरूप में लीनता, ध्यान, ध्येय, ध्याता को भूलकर,... आहाहा! ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान तीन में भेद छोड़कर, अकेले आत्मा में जहाँ रमणता शुद्ध उपयोग की, पुण्य-पाप के भावरहित (होती है), ऐसे शुद्धोपयोग को यहाँ भगवान ने चारित्र कहा है।

गाथा-७३

आगे कहते हैं कि कई मूर्ख ऐसे कहते हैं जो अभी पंचम काल है, सो आत्मध्यान का काल नहीं है, उसका निषेध करते हैं -

चरियावरिया वदसमिदिवज्जिया सुद्धभावपब्भट्ठा।
केई जंपति णरा ण हु कालो झाणजोयस्स।।७३।।

चर्यावृत्ताः व्रतसमितिवर्जिताः शुद्धभावप्रभ्रष्टाः।
केचित् जल्पंति नराः न स्फुटं कालः ध्यानयोगस्य।।७३।।

आवृत-चरण व्रत-समिति-वर्जित शुद्ध भाव-प्रभ्रष्ट ही।
कोई मनुज ऐसा कहें ध्यान-योग का यह काल नहिं।।७३।।

अर्थ - **कई मनुष्य ऐसे हैं, जिनके चर्या अर्थात् आचारक्रिया आवृत्त है, चारित्रमोह का उदय प्रबल है, इससे चर्या प्रकट नहीं होती है, इसी से व्रतसमिति से रहित हैं और मिथ्या अभिप्राय के कारण शुद्धभाव से अत्यंत भ्रष्ट हैं, वे ऐसे कहते हैं कि अभी पंचम काल है, यह काल प्रकट ध्यान योग का नहीं है।।७३।।**

गाथा-७३ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि कई मूर्ख ऐसे कहते हैं जो अभी पंचम काल है... ऐसे पंचम काल में तुम ऐसी बातें करो, वह अभी नहीं होती। ऐसा मूर्ख अज्ञानी, मूढ़ जीव ऐसा कहते हैं। आहाहा! है न? **अभी पंचम काल है, सो आत्मध्यान का काल नहीं है,...** अभी तो यह व्रत करें, अपवास करें, ऐसा करें बस। अब यह अन्दर में ध्यान करना और ऐसी बड़ी बातें तुम (करो)। **उसका निषेध करते हैं :-** आचार्य। मूर्ख! तेरी बात झूठी है। आहाहा! आत्मा की ओर का ध्यान न हो तो उसे धर्म ही नहीं है। पंचम काल है, तो क्या? आत्मा का सम्यग्दर्शन अन्तर के ध्यान में से प्रगट होता है। '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणि णियमा**' (द्रव्यसंग्रह, गाथा ४७) आहाहा! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, वह अन्तर आत्मा के ध्यान में प्राप्त होता है। वह कहीं बाह्य प्रवृत्ति में से प्राप्त नहीं होता।

●●●

प्रवचन-९०, गाथा-७३ से ७५, गुरुवार, भाद्र कृष्ण २, दिनांक १७-०९-१९७०

७३वीं गाथा है। **आगे कहते हैं कि कई मूर्ख ऐसे कहते हैं जो अभी पंचम काल है, सो आत्मध्यान का काल नहीं है,...** अर्थात् अज्ञानी ऐसा कहता है कि अभी शुद्धभाव होता ही नहीं। अभी शुभभाव ही है, शुद्ध नहीं। ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है – ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। कहाँ गये तुम्हारे? आते हैं? सुने तो सही।

चरियावरिया वदसमिदिवज्जिया सुद्धभावपब्भट्ठा।
केई जंपति णरा ण हु कालो झाणजोयस्स।।७३।।

आचार्य महाराज ऐसा फरमाते हैं कि जो कोई ऐसा कहता है कि अभी आत्मा का ध्यान नहीं है। क्योंकि समकित हो, उसे खबर पड़े कि ध्यान है। अथवा चारित्र हो, उसे खबर पड़े कि ध्यान है अर्थात् आत्मा में एकाग्रता है। समझ में आया? अमरचन्दभाई!

जिसे उस शुद्धभाव की खबर नहीं... पाठ में ऐसा है न '**सुद्धभावपब्भट्टा**'? वस्तु स्वभाव चैतन्य है, उसका आश्रय करने से, ध्यान करने से, उसमें एकाग्रता करने से शुद्धभाव प्रगट होता है। यह शुद्धभाव, वह धर्म है। जिसे उस शुद्धभाव की खबर नहीं, वह ऐसा कहता है कि अभी शुद्धभाव नहीं होता। अभी तो यह शुभभाव व्रत, नियम आदि होते हैं, बस। क्या कहा? जेठाभाई! ध्यान रखना। यह सब गाथा यहाँ से शुरु हुई है। ७० से। इसमें बहुत माल है। सत्य का भणकार बजता है।

जिसे यह आत्मा आनन्दस्वरूप है, ऐसी जिसे शुद्धता ध्यान से प्रगट नहीं हुई, वह जीव मात्र यह व्रत, तप और बाहर से मानकर हमारे शुद्धभाव नहीं होता, अभी धर्मध्यान शुद्ध नहीं है। धर्मध्यान है, ऐसा कहते परन्तु वह शुभभावरूपी धर्मध्यान है। समझ में आया? निश्चय धर्मध्यान जो शुद्ध है, उस सम्यग्दर्शन की खबर नहीं। सम्यक् चारित्र की खबर नहीं कि सम्यग्दर्शन और चारित्र, वह शुद्धभाव होता है और शुद्धभाव आत्मा की एकाग्रता से अन्दर से शुद्धभाव आता है, ध्यान से आता है। समझ में आया?

अर्थ :- कई मनुष्य ऐसे हैं जिनके चर्या अर्थात् आचारक्रिया आवृत्त है, चारित्रमोह का उदय प्रबल है, इससे चर्या प्रकट नहीं होती है,... जिसे चारित्र प्रगट नहीं है। यदि चारित्र प्रगट हो तो उसे खबर पड़े कि आत्मा का ध्यान होता है, उसे चारित्र होता है। आत्मा का ध्यान हो, उसे समकित होता है। पण्डितजी! जरा बात रहस्यमय बात है। मोक्ष का अधिकार है न? तो मोक्ष का कारण... यह आत्मा के अन्तर स्वद्रव्य के आश्रय से प्रगट होता है। समझ में आया? ७३-७३। सेठ! क्या है? चर्या-चर्या शुद्ध है न? आचार अर्थात् चारित्र। चारित्र का जिसे आवरण है। '**चरियावरिया**' पहला शब्द पड़ा है न? '**चरियावरिया**' चारित्र का जिसे आवरण है। अर्थात् कि जिसे चारित्र प्रगट नहीं है। समझ में आया?

इसी से व्रतसमिति से रहित हैं... ऐसे व्रत-समिति है नहीं। क्योंकि चारित्र नहीं है इसलिए व्रत, समिति व्यवहार चाहिए, वह भी है नहीं। वे ऐसा कहते हैं कि और मिथ्या अभिप्राय से **मिथ्या अभिप्राय के कारण शुद्धभाव से अत्यन्त भ्रष्ट हैं,...** आहाहा! भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति आनन्द का धाम, उसकी जिसे एकाग्रता हो, उसे शुद्धता

प्रगट होती है। समझ में आया? यह बाहर के पंच महाव्रत आदि तो विकल्प है, वह तो अशुद्ध है। थोड़ा सूक्ष्म विषय है।

कहते हैं, **मिथ्या अभिप्राय के कारण शुद्धभाव से अत्यन्त भ्रष्ट हैं,...** जिसकी श्रद्धा में ही विपरीतता है कि अभी आत्मा के शुद्धभाव में एकाग्र नहीं हो सकते। अभी तो अपने यह पंच महाव्रत, नियम आदि शुभभाव है, वह करें, उसमें धर्म है, ऐसा समकित से रहित मिथ्यादृष्टि, ध्यान क्या चीज़ है और शुद्धभाव कैसे प्रगट होता है, इसकी उसे खबर नहीं है। शोभालालजी! बहुत सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : उदय हो तो हो जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : उदय भी यह... आहाहा! इसका अर्थ कि पुरुषार्थ किया नहीं, ऐसा कहते हैं। चारित्र का द्रव्य में एकाग्र होने का पुरुषार्थ किया नहीं, इसलिए उसे चारित्रमोह के उदय का आवरण है, ऐसा कहते हैं। फिर से। यह विषय बहुत... वर्तमान में बड़ी गड़बड़ दशा है। समझ में आया?

७०वीं (गाथा से) यह बात उठायी है। '**अप्पा झायंताणं**' वहाँ आया था न? '**अप्पा झायंताणं**' ध्यान अर्थात् भाई! सम्यग्दर्शन भी आत्मा चैतन्य वस्तु ध्रुव है, उसका ध्यान अर्थात् अन्तर में एकाग्र होने से समकित होता है। और वह समकित, वह शुद्धभाव है। उस शुद्धभाव की जिसे खबर नहीं, वह ऐसा कहता है कि अभी ध्यान नहीं हो सकता। अभी तो यह व्रत, नियम और क्रिया करें, उसमें से आगे बढ़कर कल्याण हो जायेगा। ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव ... ऐसा कहते हैं कि यह लाख बात तुम कहो, परन्तु अन्तर आत्मा के आश्रय से शुद्धता होती है, वह अभी नहीं है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बताते हैं। तुम्हारे बताते हैं। प्रकाशदासजी! यह बात ऐसी है, भाई! बहुत सूक्ष्म है।

आत्मा चिदानन्द सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध का पिण्ड है। उसका अन्तर ध्यान करे, तब अन्तर एकाग्र हो और ध्येय पकड़े, तब ध्यान हो। ध्यान हो, तब शुद्धता प्रगट हो। उस शुद्धता का जिसे भान नहीं, जिसे धर्म प्रगट नहीं हुआ, जिसे चारित्र है नहीं, मिथ्या अभिप्राय

है, वह कहता है कि अभी शुद्धता नहीं होती, अर्थात् कि अभी ध्यान नहीं होता, अर्थात् कि आत्मा का स्वद्रव्य आश्रयपना अभी प्रगट नहीं हो सकता।

मुमुक्षु : कारण ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कारण (कि) अभी पंचम काल है इसलिए। यही अज्ञानी का तर्क है। उसके सामने यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा !

कहते हैं कि जिसे चारित्र का आवरण है, अर्थात् कि चारित्र प्रगट नहीं हुआ ऐसा। और व्रत, समिति से रहित है और शुद्धभाव से भ्रष्ट है। अर्थात् आत्मा आनन्द का धाम शुद्ध चैतन्य वस्तु की अन्तर की एकाग्रता का ध्यान जो समकित का कारण, जो चारित्र का कारण, वह तो है नहीं। अमरचन्दभाई ! समझ में आया ? उस **मिथ्या अभिप्राय के कारण शुद्धभाव से अत्यन्त भ्रष्ट हैं,...** देखो ! इस मिथ्या अभिप्राय से शुद्धभाव से भ्रष्ट है, आवरण के कारण नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? तुम बड़ी बातें करो कि आत्मा का ध्यान होता है, आत्मा में शुद्धता प्रगट होती है, वह अभी नहीं होती। अभी तो शुभभाव (होता है), बस। समझ में आया ? यह शुभभाव, वह हमारा चारित्र; शुभभाव, वह हमारा आचरण; शुभभाव, वह हमारा तप; शुभभाव, वह हमारा धर्मध्यान।

मुमुक्षु : अर्थात् कर्मध्यान।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्मध्यान है। वह तो राग है। उस शुद्धभाव से उसे भ्रष्ट कहा है।

भगवान आत्मा चैतन्य शुद्धस्वरूप ज्ञायक आनन्द, उसका आश्रय करके जो शुद्धता प्रगटे, उसकी तो उसे खबर नहीं। कि द्रव्य के आश्रय से शुद्धता प्रगटे और वह शुद्धता प्रगटे, वह धर्मध्यान कहलाता है। वह शुभभाव धर्मध्यान है नहीं। गजब बात, भाई ! समझ में आया ? **मिथ्या अभिप्राय के कारण शुद्धभाव से अत्यन्त भ्रष्ट हैं, वे ऐसे कहते हैं कि अभी पंचम काल है,...** देखो ! **यह काल प्रकट ध्यान-योग का नहीं है।** अभी आत्मा की शुद्धता प्रगटे और यह निश्चय समकित प्रगटे (यह अभी नहीं होता)। यह समकित हो हमारे। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नवतत्त्व की श्रद्धा, वह हमारा समकित। अभी आत्मा में शुद्धता प्रगटे और द्रव्य का ध्यान हो, वह प्रगटे, यह हमें तो जँचता नहीं। ऐई ! पोपटभाई ! आहाहा !

मुमुक्षु : ऐसा चलता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : है ही न। उसके लिये तो यह कथन किया है भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने। समझ में आया ? ऐई ! सेठ ! नेमिदास सेठ ! यह क्या कहते हैं ?

मुमुक्षु : शुभ में से चला जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : चला जायेगा। यह ठीक कहते हैं। शुभ भी कब कहलाये ? इस शुद्ध को ही शुभ भगवान कहते हैं। पुण्य-पाप के अधिकार समयसार में शुद्धभाव, वही शुभ है। शुभ-अशुभभाव तो दोनों अशुद्ध हैं। क्या है अब ? भगवानजीभाई ! बातें बापू ! यह तो ऐसी बात है...

मुमुक्षु : शुभ-अशुभ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अशुद्ध है न। पुण्य-पाप अधिकार में है। मोक्षमार्ग को शुभ कहा है। शुभ। और पुण्य-पाप दोनों को अशुद्ध (कहा है) । यह शुद्ध। समझ में आया ? आहाहा ! यह यहाँ कहते हैं। ऐसा जो नहीं मानते, जिसे यह खबर नहीं कि शुद्धता अन्तर द्रव्यस्वरूप चिदानन्द है, उसकी अन्तर एकाग्रता होने पर शुद्धता प्रगट हो और वह समकित और वह चारित्र है। आहाहा ! खबर नहीं कुछ ? क्या ? इसलिए कहते हैं नहीं, शुद्धता ऐसा नहीं होता। यह शुभभाव में ही कहीं संवर और निर्जरा का अंश होता है। अशुभ टला, इतनी संवर-निर्जरा। राग रहा उतना थोड़ा आस्रव। हमारे तो शुभभाव में दो भाग पड़ते हैं।

मुमुक्षु : .... मार्ग ही खोटा...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे बनाया है लोगों ने, माना है। ऐसा है नहीं। इसके लिये तो यह गाथायें ली हैं। ७० से अभी आगे चलेगी। समझ में आया ? ७७ तक चलेगी। आहाहा ! शान्ति से समझनेयोग्य चीज़ है भाई यह। यह कहीं वाद-विवाद से पार पड़े, ऐसी चीज़ नहीं है।

कहते हैं कि यह मिथ्या अभिप्रायवाले ऐसा कहते हैं कि शुद्धभाव से अत्यन्त भ्रष्ट है। अत्यन्त भ्रष्ट है। चारित्र तो नहीं परन्तु मिथ्यादर्शन में शुद्धभाव का अंश भी नहीं है। अत्यन्त भ्रष्ट है। आहाहा ! समकित में शुद्धता प्रगट होती है और चारित्र में उग्र शुद्धता प्रगट होती है। शुद्धता, वह आनन्द का धाम आनन्ददशा है। वह वीतराग परिणति है, वह धर्म

है। और वह धर्मध्यान अर्थात् आत्मा में एकाग्र होने से प्रगट होती है। ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया?

अभी पंचम काल है, यह काल प्रकट ध्यान-योग का नहीं है। प्रगट ध्यान योग्य नहीं। अभी अन्दर आत्मा का प्रगट ध्यान हो, शुद्ध चैतन्य का ध्यान हो और वह निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगटे, यह अभी नहीं है। ऐसा अज्ञानी (मानता है)। ऊपर तो मूर्ख कहा था। मूल विवाद ही पूरा (अभी यह चलता है)। द्रव्यस्वभाव चैतन्य भगवान, परिपूर्ण परमात्मस्वरूप, उसकी अन्तर एकाग्रता हुए बिना धर्म की दशा समकित की प्रगट नहीं होती। प्रकाशदासजी! समझ में आया? इसलिए ऐसा कहते हैं कि हम तो यह शुभभाव की क्रिया करते हैं, वह हमारा चारित्र और वह हमारा समकित। वह हमारा धर्मध्यान। ऐसा अभी कहते हैं। वह धर्मध्यान। वह धर्मध्यान नहीं। आहाहा! धर्म तो आत्मा का पवित्र वीतरागस्वभाव त्रिकाल, उसका ध्यान, उसमें एकाग्रता। वह विकल्प—रागरहित, ऐसी वीतरागी पर्याय, वह धर्मध्यान। वह शुद्धता, वह शुद्ध द्रव्य के आश्रय से प्रगट होती है। परन्तु यह बात जँचती नहीं, इसलिए जाओ अभी शुद्धता नहीं, (ऐसा अज्ञानी कहते हैं)। समझ में आया? आठवें गुणस्थान में शुद्धता प्रगट होती है, ऐसा अभी कहते हैं। इसके लिये यह सब लिया है। उस समय भी ऐसे होंगे। हें! आहाहा!

प्रकट ध्यान-योग का नहीं है। भले भावना करें, अपन विकल्प से। समझ में आया? परन्तु समकित की निर्विकल्पदशा प्रगटे, ऐसा निश्चय समकित, ऐसा यह ध्यान-ब्यान अभी नहीं होता। ऐई! जयकुमारजी! समझ में आया? ऐसा माननेवाले मूर्ख मिथ्यादृष्टि हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन बातें! ऐसी शैली से बात रखी है।

मुमुक्षु : मुनि को तो होता है यह?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु मुनि हो उसे न? चारित्र प्रगट हुआ हो उसे न? तो उसे खबर पड़े कि चारित्र और समकित शुद्ध है। और शुद्धता आत्मा के आश्रय से प्रगट हो, वह धर्मध्यान है। परन्तु है नहीं, इसलिए फिर अभी शुद्धता नहीं होती। अभी शुद्धता ध्यान की प्रगट दशा काल है नहीं। चौथे काल में ध्यान प्रगट होता है। आठवें गुणस्थान में जाये तो शुद्धता प्रगट होती है। अभी शुभ ही छठवें-सातवें तक होता है, ऐसा कहते हैं। कहते हैं न उस अखबार में। समझ में आया?

गाथा-७४

वे प्राणी कैसे हैं, वह आगे कहते हैं –

सम्मत्तणाणरहिओ अभव्वजीवो हु मोक्खपरिमुक्को।
संसारसुहे सुरदो ण हु कालो भणइ झाणस्स।।७४।।

सम्यक्त्वज्ञानरहितः अभव्यजीवः स्फुटं मोक्षपरिमुक्तः।
संसारसुखे सुरतः न स्फुटं कालः भणतिः ध्यानस्य।।७४।।

सम्यक्त्व ज्ञान-विहीन शिव-परिमुक्त जीव अभव्य ही।
संसार-सुख में सुरत कहते ध्यान का यह काल नहिं।।७४।।

अर्थ – पूर्वोक्त ध्यान का अभाव कहनेवाला जीव सम्यक्त्व और ज्ञान से रहित है, अभव्य है, इसी से मोक्ष रहित है और संसार के इन्द्रिय सुखों को भले जानकर उनमें रत है, आसक्त है, इसलिए कहता है कि अभी ध्यान का काल नहीं है।

भावार्थ – जिसको इन्द्रियों के सुख ही प्रिय लगते हैं और जीवाजीव पदार्थ के श्रद्धान-ज्ञान से रहित है, वह इस प्रकार कहता है कि अभी ध्यान का काल नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि इस प्रकार कहनेवाला अभव्य है, इसको मोक्ष नहीं होगा।।७४।।

गाथा-७४ पर प्रवचन

वे प्राणी कैसे हैं, वह आगे कहते हैं :- अब यहाँ तक तो इतनी बात साधारण की थी। आचार्य तो अब अभव्य की उपमा दे देंगे। जो कोई अभी शुद्धता नहीं और शुद्धता प्रगट हो सकती ही नहीं, ऐसा माननेवाले अभव्य जैसे हैं—ऐसा यहाँ आचार्य कहते हैं। क्योंकि अभव्य को कभी शुद्धता प्रगट नहीं होती। उसे बहुत तो शुभभाव (होते हैं)। ऐसा शुभभाव कि नौवें ग्रैवेयक में जाये। उसे शुद्धता का एक अंश भी नहीं होता। इसलिए शुद्धता ऐसा जो धर्मध्यान अभी नहीं है, नहीं हो सकता, यह बननेयोग्य नहीं है, ऐसा जो मानते हैं, वे अभव्य जैसे हैं।

कुन्दकुन्दाचार्य बहुत बार तो अभव्य की उपमा दे देते हैं। भले वह वर्तमान में भव्य हो परन्तु वह अभव्य जैसा है। शुद्धता नहीं अभी ? तो धर्म नहीं। धर्म नहीं तो मोक्ष का मार्ग नहीं। आहाहा! यह पढ़ा नहीं हो कभी सेठ ने। पढ़ी होगी ? पुस्तक होगी। है घर में... निवृत्ति कहाँ है ? है घर में पुस्तक ? है या नहीं ? तुम सेठिया हो या नहीं ? रामजीभाई कहते हैं, नहीं। परन्तु तुम हिन्दुस्तानी हो या नहीं ? करो न। सीधा कह दें तो ठीक न कि रामजीभाई कहते थे। ऐई! भगवानजीभाई! आहाहा! आचार्य ने तो बात भी किस प्रकार से कर डाली है, देखो न! आहाहा!

हाँ पाड़ तो तुझे (शुद्धता प्रगट होगी)। ना पाड़नेवाले को शुद्धता बिल्कुल प्रगट होगी ही नहीं अब। हो गया। तुझे अब शुद्धता तो प्रगटेगी ही नहीं। शुद्धता प्रगटेगी नहीं तो मिथ्यादृष्टि अशुद्धता में रहेगा। समझ में आया ? **वे प्राणी कैसे हैं, वह आगे कहते हैं :-** उसमें तो अभी '**चरियावरिया वदसमिदिवज्जिय**' भ्रष्ट कहकर शुद्धभाव से भ्रष्ट कहा था। यहाँ तो कहते हैं....

सम्मत्तणाणरहिओ अभव्वजीवो हु मोक्खपरिमुक्को।
संसारसुहे सुरदो ण हु कालो भणइ झाणस्स ॥७४॥

अर्थ :- पूर्वोक्त ध्यान का अभाव कहनेवाला जीव... कैसा है ? **सम्यक्त्व और ज्ञान से रहित है, अभव्य है,...** अमचन्दभाई! तुझे शुद्धता प्रगट करनी ही नहीं। शुद्धता प्रगट हो सके, यह तेरी मान्यता ही नहीं। अभव्य को शुद्धता कभी प्रगट नहीं होती। अभव्य जैसा तू है। आहाहा! जैसा भी कहा नहीं, हों! अभव्य जैसा। आहाहा! देवीलालजी! क्या कहते हैं यह, देखो! ओहोहो! अभी शुद्धता नहीं होती। अभी शुभभाव की ही पर्याय दशा होती है। छठवें गुणस्थान तक शुभभाव होता है। फिर शुद्धता और आठवें में होती है। और ऐसा कहते हैं। फिर कोई सातवाँ और आठवाँ कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ... सातवें।

पूज्य गुरुदेवश्री : सातवें में किसी जगह इनकार करते हैं। किसी जगह और... ऐसा डालते हैं। एक और दो प्रकार आते हैं। लिखावट में जरा ऐसा आता अवश्य है। प्रमत्त-अप्रमत्त आता है न ? जयसेनाचार्य की टीका में। शुभभाववाला प्रमत्त-अप्रमत्त। वह

तो प्रमत्त... यहाँ वापस आता है, ऐसे जीव की वहाँ बात ली है। प्रमत्त-अप्रमत्त होकर आगे बढ़ जाता है, यह बात वहाँ नहीं ली है। शुभभाव में कहाँ से वह हो ? ऐसा। प्रमत्त से उसमें आवे। शुभ वहाँ तक होता है, ऐसा कहा। जयसेनाचार्य की टीका में। अरे! भगवान! आहाहा! शास्त्र के अर्थ करने के लिये जिसे सुलटापना नहीं।

यहाँ तो भगवान आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य दया करके, करुणा करके कहते हैं, हों! अरे! भगवान! तू है या नहीं ? और तू तो शुद्ध है प्रभु। आनन्द... आनन्द... आनन्द का स्वरूप तेरा है। उसकी दृष्टि होने पर, स्वरूप में एकाग्र होने पर ध्यान होता है, तब उसे शुद्धता प्रगट होती है। तब तू कहता है कि अभी ध्यान नहीं होता, शुद्धता प्रगट नहीं होती, भाई! तुझे क्या करना है ? अभी से ऐसा नकार करके तुझे द्रव्यस्वभाव की ओर ढलना नहीं है, झुकना नहीं और शुभभाव में रुकना है। आहाहा! समझ में आया ? ऐई! वजुभाई! ऐसा अधिकार आया है। सरस आया है, लो! दोपहर में अधिकार अच्छा आता है। ठण्डा पहर हुआ न ? सर्दी का मौसम होकर। अच्छा हो गया, लो हमारे कहते हैं। सर्दी के मौसम में सब सूक्ष्म-सूक्ष्म विभक्त होता। आहाहा! भाई! तुझे खबर नहीं, बापू! आत्मा पवित्र का धाम, उस पवित्रता के सन्मुख (होने से) जो ध्यान की शुद्धता प्रगटे। आया है न वहाँ ? ४७ गाथा, द्रव्यसंग्रह।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब अभव्य ऐसे होते हैं, ऐसा कहते हैं। जो शुद्धता को न माने उसे यहाँ अभव्य सिद्ध किया है।

मुमुक्षु : कोई-कोई मानते हों।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, कोई माने नहीं। अभव्य कोई माने नहीं। यहाँ तो दूसरी बात है। अभव्य अर्थात् शुद्धता प्रगट करने के योग्य नहीं। तो ऐसा कहते हैं कि अभी शुद्धता होती नहीं, शुभ ही होता है। धर्मध्यान आत्मा के आश्रय से शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... कहते हो, वह नहीं होता। तो वे सब अभव्य जैसे हैं। अर्थात् कि आत्मा की शुद्धता प्राप्त करने के योग्य नहीं। बस, इतनी बात। यह शैली है। एकदम नकार। अभव्य को कभी शुद्धता प्रगट नहीं होती। तू कहता है कि अभी शुद्धता नहीं होती, इस काल में शुद्धता प्रगट

नहीं होती। अभव्य जैसा है ? इनकार क्यों करता है ? अभव्य है। जैसा भी नहीं। भाषा यह है। प्रवचनसार में भी ऐसा है। जो कोई सुख केवली को स्वयं का सुख है, उसे न माने, वह अभव्य है। अभव्य है। यहाँ यह कहा। यहाँ यह कहते हैं। देखो!

'**संसारसुहे सुरदो**' कहना है तो यह मूल। जिसे पुण्य परिणाम में सुखबुद्धि है, विषयबुद्धि है, इष्ट विषय है। '**संसारसुहे सुरदो**' तीसरा पद है। वह राग के परिणाम हैं, वह उसमें संसार का सुख है। उसमें रत है। उसे राग में रत है, उसे रागरहित आत्मा के शुद्धता की खबर नहीं, इसलिए इनकार करता है कि अभी शुद्धता नहीं होती। संसारसुख में लीन है। राग के, पुण्य के सुख में लीन है। तुझे आत्मा के सुख की खबर नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात!

मुमुक्षु : आचार्य कहते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहते हैं ? अभी कहते हैं न ? उसमें से इसमें उतरे वापस। अभी कहते हैं। अखबार में आता है। अभी शुभभाव होता है छठे गुणस्थान तक। शुद्ध नहीं होता। शुद्ध तो आगे होता है। उसकी यह लगायी है। उसका यह कारण है। पहले कह गये न, जिसे चारित्र नहीं है, अर्थात् चारित्र यदि हो, तब तो उसे खबर पड़े कि यह शुद्धता ध्यान से प्रगट होती है। द्रव्य के ध्यान से प्रगट होती है। चारित्र नहीं है। चारित्र को आवरण है अर्थात् चारित्र का पुरुषार्थ नहीं है। चारित्र का नहीं; इसलिए व्रत, समिति, व्यवहार वह भी उसे नहीं है। निश्चय नहीं तो व्यवहार भी नहीं है। वह शुद्धभाव से भ्रष्ट है। ऐसा कहा न ? '**सुद्धभावपब्भट्टा**' यह सब तो बहुत मार्मिक शब्द हैं। इसमें शुभ से भ्रष्ट है। शुद्ध से भ्रष्ट है। क्योंकि शुद्ध से भ्रष्ट है, इसलिए उसे वास्तव में तो शुभ भी नहीं है। व्यवहार ऐसा नहीं है। अकेला व्यवहार पाँच महाव्रत की क्रिया करे और माने कि यह मेरा धर्मध्यान, यह धर्मध्यान है। क्योंकि धर्मध्यान तो शुद्धता के आश्रय से प्रगटे, वह धर्मध्यान है। वजुभाई ! गजब ! ऐसा अधिकार बहुत सरस है।

वस्तुस्थिति ऐसी है, वहाँ उसमें प्रश्न क्या ? न्याय-लॉजिक से समझे तो इसे आत्मा आनन्द का नाथ है, सच्चिदानन्दस्वरूप है, उस सच्चिदानन्द की शुद्धता अन्तर एकाग्र ध्यान करे तो प्रगट होती है। उसे धर्मध्यान कहते हैं। वह धर्मध्यान न माने, वह शुद्धता

अभी मुझे प्रगटेगी नहीं। अभी नहीं, फिर त्रिकाल नहीं, इसका अर्थ यह हुआ है। अभव्य जैसा है। आहाहा! समझ में आया? कठिन काम।

मुमुक्षु : प्रत्यक्ष सिद्ध हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्ध हो गया। आहाहा!

मुमुक्षु : खाली पाँच महाव्रत हों।

पूज्य गुरुदेवश्री : खाली पाँच महाव्रत होते ही नहीं। यहाँ निश्चय बिना महाव्रत के विकल्प शुभ होते नहीं, इसके लिये सिद्ध किया है। अकेले (पंच महाव्रत) वह तो व्यवहाराभास है। क्या कहा? आहाहा!

यह मोक्षप्राभृत अधिकार है। मोक्ष का कारण भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप का आश्रय करके निर्मलता प्रगट हो, वह मोक्ष का कारण है। और तू शुभ के क्रियाकाण्ड में अभी है धर्मध्यान उसका नाम है और उसमें-शुभभाव में शुद्धता का अंश है, ऐसा मानता है। कहाँ खबर है कुछ? सुननेवाले को जय नारायण। दस बोघा, दस बोघली, दस बोघा के बच्चा, ऊपर पर गुरु कहे गप्पा, वह कहे सच्चा। भान नहीं होता। ऐई! सेठ! यहाँ कहीं मक्खन-बक्खन नहीं है। वे कहते हैं, ऐई! जय महाराज, जय महाराज। क्या है जय महाराज? तुझे कुछ भान है? यहाँ धर्म में जय-जय करना, बापू! यह कहीं सेठिया को प्रसन्न नहीं करना। ऐई! राजमलजी! भारी गाथायें आयी हैं, हों।

मुमुक्षु : पाठ में जैसा कथन करे वैसा...

पूज्य गुरुदेवश्री : भान नहीं होता, तब तुम हाँ.. हाँ.. करो न अन्दर से? वह क्यों हाँ-हाँ करे? ऐसा कोई कर दे तुम्हारे पिता को मेरे पिता ने दस लाख दिये हैं। लाओ, हाँ कर दो? यह पैसे का काम आया है। यह तो अन्दर लक्ष्मी की बात है। समझ में आया? आहाहा! हाँ कर दे, लो। तुम्हारे पिता को मेरे पिता ने करोड़ रुपये दिये हैं, उस भव में। लाओ। हाँ कर देता होगा?

मुमुक्षु : वे तो गये उनके पास।

पूज्य गुरुदेवश्री : जा उनके पास। मर जा, ऐसा उसका अर्थ। ऐसा कि तू जा उनके

पास। अर्थात् मरकर जा उनके पास। वहाँ तो उसे ऐसा जवाब दे। सच्ची बात है, भाई कहे वह। जा उनके पास। ऐसा अभी कहता है। तब व्यक्ति कहे जा उनके पास। अर्थात् क्या? मर जा और वहाँ जा उनके पास। हमारे क्या है? आहाहा!

देखो! बात तो देखो! **पूर्वोक्त ध्यान का अभाव कहनेवाला...** अर्थात् भगवान शुद्ध चैतन्यप्रभु की अन्तर की शुद्धता, धर्मध्यानरूपी भाव अभी नहीं है, ऐसा कहनेवाले **सम्यक्त्व और ज्ञान से रहित है,...** उसे समकित भी नहीं और ज्ञान सच्चा नहीं। आहाहा! समझ में आया? **अभव्य है, इसी से मोक्ष रहित है...** मोक्ष का मार्ग शुद्ध है, ऐसा कहते हैं। और वह शुद्धता धर्मध्यान से प्रगट होती है। धर्म अर्थात् आत्मा के स्वभाव का ध्यान करने से शुद्धता प्रगट होती है। यह राग की क्रिया और पुण्य की क्रिया के ध्यान करने से प्रगट नहीं होती। आहाहा! गजब बात है। किस शैली में रखते हैं। थोड़े शब्दों में ठेठ मूल बात को स्पर्श करा देते हैं। भाई! तुझे खबर नहीं। शुद्धता, वह मोक्ष का मार्ग है। शुद्ध उपयोग और शुद्धता की परिणति, वह मोक्ष का मार्ग है। और शुद्धपरिणति और शुद्ध उपयोग, वह अन्तरध्यान में द्रव्य के आश्रय से प्रगट होता है। और तू बाहर लक्ष्य में क्रियाकाण्ड में रहे और उससे तुझे ऐसा लगे कि अभी शुद्धता नहीं होती, अभी धर्मध्यान ऐसा शुद्धता का नहीं होता, शुभभाव का धर्मध्यान होता है (तो तू) अभव्य है। समझ में आया? भीखाभाई! यहाँ तो ऐसी बात है, भाई! आहाहा!

और संसार के इन्द्रिय-सुखों को भले जानकर उनमें रत है,... लो! है? शुभभाव में उसे प्रेम है। वह सुख संसारसुख है। उसके कारण तू शुद्धता का निषेध करता है। शुद्धता अभी नहीं होती। पंचम काल में? यह अभी शुद्धता? ऐसा कहनेवाले **इन्द्रिय-सुखों को भले जानकर...** क्या कहते हैं? कि राग में भलापना जानकर रुक गया है। यदि आत्मा को भला जानकर आवे तो राग में भलापना तुझे जँचे नहीं। तब तो शुद्धता वह भली है, ऐसा जँचे। आहाहा! प्रकाशदासजी! समझ में आया या नहीं? आहाहा!

कहते हैं कि भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान का धाम, उसमें दृष्टि देने से वह दृष्टि स्वयं शुद्धता प्रगट करती है। ऐसी शुद्धता को ही यहाँ धर्मध्यान कहा है। ऐसी शुद्धता नहीं है, ऐसा कहे, ऐसा धर्मध्यान का भाव अभी नहीं होता, वह मिथ्यादृष्टि समकित

से और ज्ञान से रहित है और उसे इन्द्रिय के सुख में प्रीति है। अतीन्द्रिय सुख प्रगट नहीं होता, ऐसी शुद्धता अर्थात् अतीन्द्रिय सुख। आहाहा! क्या बात डालते हैं! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति प्रभु, उसका आश्रय करने से अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट होता है, वह शुद्धता है। उसकी ना करता है, उसे इन्द्रिय के सुख में बुद्धि है। आहाहा! भले इन्द्रिय के विषय छोड़ दिये हों, मुनि हुआ हो, परन्तु अन्दर में शुद्धता अभी नहीं होती, धर्मध्यान नहीं होता अर्थात् अतीन्द्रिय सुख प्रगट नहीं होता, द्रव्य में अतीन्द्रिय आनन्द है, वह अतीन्द्रिय आनन्द अभी नहीं होता, अर्थात् शुद्धता नहीं होती, ऐसा जिसे भाव है, उसे शुभभाव में इन्द्रियसुख में उस शुभभाव में सुख मानकर बैठा है। इसलिए वहाँ से निकलता-हटता नहीं है। यह बहुत अच्छी गाथायें हैं।

मुमुक्षु : मुनि हुए तो क्या रहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि किसे कहना? मुनि हो गये स्त्री, पुत्र छोड़े, वस्त्र छोड़े तो मुनि हो गये? वस्त्र तो यह श्वान और कौवे भी नहीं पहनते।

मुमुक्षु : गुरुदेव! भावपाहुड़ में ७० गाथा में लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पहले लिया है। शीलपाहुड़ में लिया है। आगे लिंगपाहुड़ में बहुत लिया है। लिंगपाहुड़ में तो नट श्रमण है (ऐसा कहा है)। नट-नट।

मुमुक्षु : स्वांग लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वांग लिया। इस लिंगपाहुड़ में बहुत आयेगा। थोड़ा भावपाहुड़ में तो कहा है परन्तु उसमें तो बहुत कहा है। लिंगपाहुड़ में नट श्रमण है (ऐसा कहा है)। आत्मा ज्ञानानन्द चैतन्य की तो तुझे खबर नहीं। शुद्धता क्या धर्म है, वह तो धर्म की खबर नहीं। और यह अकेला विकल्प और वेश लेकर बैठा, नट श्रमण है, ऐसा कहते हैं। भाई! यहाँ बात आवे, तब तो सत्य आवे।

देखो न! यहाँ क्या कहते हैं? आहाहा! क्या कहा? क्या कहा? शुं कह्युं? क्या कहा? इतने शब्द में समझ लेना थोड़ा-थोड़ा। थोड़ा-थोड़ा गुजराती समझना। '**संसारसुहे सुरदो**' यह शब्द है। तीसरा पद। जिसे यह शुद्धता अभी नहीं हो सकती अर्थात् कि परम आनन्द का अंश प्रगट नहीं हो सकता अर्थात् कि द्रव्य का ध्यान नहीं हो सकता, अर्थात्

कि आत्मा के आनन्द की एकाग्रता नहीं हो सकती—ऐसा माननेवाला राग में सुख और इन्द्रिय में सुख है, उसे माननेवाला है कि जिससे उसमें से हटकर इसमें आनन्द है, वह प्रगट नहीं होगा, यह मान्यता उसकी है नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : आज्ञाविचय...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आज्ञाविचय यह। आज्ञाविचय कौन सा धर्मध्यान यह है। भगवान की आज्ञा शुद्धता की है। वह आज्ञा वह शुद्धता द्रव्य-सन्मुख ढले, वह आज्ञा वीतराग की है। वीतराग की आज्ञा वीतरागभाव के पोषक की है। वीतराग की आज्ञा रागभाव के पोषक की नहीं। ठीक निकाला है भाई ने। आज्ञाविचय और विपाकविचय आता है न? वह तो व्यवहार से बात की है। परन्तु वास्तविक आज्ञा आत्मा का आराधन, वीतरागपने की पर्याय की आज्ञा ... सुविधि। आया नहीं है पुण्य-पाप में? यह विधान भगवान ने कहा है। पुण्य की क्रिया का विधान भगवान ने कहा नहीं धर्म के लिये। समझ में आया? आहाहा!

'अगम प्याला पीवो मतवाला किन्हीं अध्यात्म वासा आनन्दघन चेतन में खेले देखे लोग तमासा।' दुनिया तो दूसरे प्रकार से देखेगी। तू यह देख अन्दर, कहते हैं। आहाहा! भगवान चैतन्यद्रव्य, अतीन्द्रिय आनन्द का धाम ऐसा भगवान आत्मा अन्तर एकाग्र होकर शुद्धता प्रगट करे, आनन्द प्रगट करे, ऐसा अभी नहीं होता - ऐसा माननेवाला अभव्य है। समझ में आया? यहाँ कोई मक्खन-बक्खन चोपड़ना नहीं कि यह प्रसन्न हो, अमुक हो। पोपटभाई! कहो, सेठ! देखो! कुन्दकुन्दाचार्य।

मुमुक्षु : सत् न रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सत् न रहे। सत्य बात यही है।

मुमुक्षु : उन्हें खबर थी कि ऐसा हुआ है...

पूज्य गुरुदेवश्री : हो गया है और होगा, ऐसा उन्हें ख्याल था। उस काल में भी ऐसा माननेवाले होते हैं न? अभी तो काल हल्का आयेगा। ऐसे जगेंगे कि नहीं, शुद्धता नहीं; शुद्ध धर्म नहीं, शुभ वह धर्म। शुभक्रिया, वह धर्म है और शुभ करते-करते शुद्धता होगी। जहर खाते-खाते अमृत की डकार आयेगी। ऐसे जगेंगे। उनके सामने यह लिखा है। कहो,

पोपटभाई ! आहाहा ! गजब बात, भाई ! बाबूभाई ! कहो, समझ में आया यह ? आहाहा ! रुचि में ना नहीं करना। शुद्धता नहीं प्रगटे। ना करे तब तो हो गया। तुझे शुभ में रस है। आहाहा ! समझ में आया ?

इसलिए कहते हैं, **इन्द्रिय-सुखों को भले जानकर उनमें रत है,...** भोगे नहीं, उसकी बात नहीं है यहाँ। परन्तु शुभभाव में एकाग्र है, इन्द्रिय सुख में ही रत है। जो शुभभाव में लीन है, वह कहते हैं कि अभी शुद्धता होती नहीं, शुद्धता होती नहीं। अन्दर इन्द्रिय सुख में रत है। बन्ध अधिकार में आया है न ? भोग निमित्तं। वह अज्ञानी भोग के निमित्त से व्रतादि करता है। भोग अर्थात् राग के अनुभव के लिये। राग का अनुभव, वही भोग का अनुभव है। दूसरा क्या भोग का अनुभव ? पर को कौन भोगता है ? समझ में आया ?

इसलिए कहते हैं कि अभी ध्यान का काल नहीं है। आहाहा ! प्रभु ! उसे क्या कहना ? अभी वह शुद्धता द्रव्य वस्तु भगवान परमानन्द प्रभु, उसके सन्मुख हुआ नहीं जा सकता। अभी तो हमारी सन्मुखता शुभभाव में ही है, ऐसा माननेवाले शुद्धता नहीं और शुद्धता प्रगट सके, ऐसा काल नहीं—ऐसा वे कहते हैं। आहाहा ! '**सम्मत्तणाणरहिओ**' कुन्दकुन्दाचार्य की वाणी गजब ! हें ! अलौकिक है, भाई ! **अभी ध्यान का काल नहीं है।** यह उपाय है, देखो न यह। आहाहा ! अभी अन्तर्मुख झुकने का काल ही नहीं, कहते हैं। आहाहा ! भगवान ! तू क्या कहता है ? अभव्य है...। ऐई ! पण्डितजी ! भारी कठिन।

मुमुक्षु : पर्यायमूढ़ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्यायमूढ़ है। **इसलिए कहते हैं कि अभी ध्यान का काल नहीं है।**

भावार्थ :- जिसको इन्द्रियों के सुख ही प्रिय लगते हैं... गहरे-गहरे इन्द्रिय का सुख, वही प्रिय है। इससे अतीन्द्रिय सुख अभी प्रगटे, ऐसी उसकी श्रद्धा नहीं होती। ऐसा है। आहाहा ! अतीन्द्रिय शुद्धता धर्मध्यान होकर प्रगटे, यह हमारी मान्यता में नहीं आता। अभी यह काल ऐसा होगा ? पंचम काल, बापू ! अभी तो इतना बस। शुभभाव का आचरण, उसमें से शुद्धता प्रगटेगी - हमारे इतना बस है। कहते हैं कि इन्द्रिय के सुख में उसकी बुद्धि है। चाहे तो साधु हुआ हो, त्यागी हुआ हो, हजारों रानियाँ छोड़कर बैठा हो, परन्तु उसे

आनन्द का ध्यान नहीं, उसे आनन्द प्रगटेगा नहीं, शुद्धता नहीं प्रगटेगी और शुद्धता का काल नहीं, उसे अशुद्धता ऐसे इन्द्रिय के सुख में प्रीति है। इसलिए उसे अतीन्द्रिय सुख के ओर की झुकाव की दशा अच्छी नहीं लगती। आहाहा! गजब बात करते हैं, भाई! यह अष्टपाहुड़ में, लो! सुनाई देता है या नहीं अब? छगनभाई! सुनाई देता है? थोड़ा-थोड़ा? थोड़ा, इसलिए तो नजदीक लाये यहाँ। तुम्हारे रखना, वह कहाँ गया, तुम्हारे नहीं? ऐई! नहीं भुंगला-बुंगला रखते? यह तुम्हारे चिरंजीवी को कहा कि भुंगला-बुंगला रखना चाहिए न इन्हें। आहाहा! समझ में आया?

जिसको इन्द्रियों के सुख ही प्रिय लगते हैं और जीवाजीव पदार्थ के श्रद्धान-ज्ञान से रहित है,... देखो! जीव की श्रद्धा रहित है। जीव तो आनन्दस्वरूप है। आनन्दस्वरूप है जीव और उसकी श्रद्धा करना, वह तो धर्मध्यान अन्दर हो, तब हो। उसे जीव की श्रद्धा नहीं है, कहते हैं। क्या कहा यह? **जीवाजीव पदार्थ के श्रद्धान-ज्ञान से रहित है,...** यदि जीव की श्रद्धा हो, तब तो शुद्धता प्रगटे और शुद्धता है, ऐसा हो सके। समझ में आया? आहाहा! उसे अजीव की भी खबर नहीं कि यह रागादि में सुखबुद्धि, वह अजीवभाव है। इसका उसे ज्ञान नहीं। जीव का ज्ञान नहीं, अजीव का ज्ञान नहीं। आहाहा! अभी धर्मध्यान शुद्धता नहीं हो सकती, ऐसा माननेवाले को जीव की श्रद्धा नहीं, उसे अजीव की श्रद्धा नहीं। समझ में आया? जीव की श्रद्धा तब कहलाये कि परमानन्द प्रभु आत्मा की एकाग्रता होने से जो आनन्द आवे, वह संवर और जीव आनन्द की मूर्ति, वह जीव और उससे रहित राग, वह अजीव। अजीव में सुखबुद्धि है, उसे अजीव का भी ज्ञान नहीं। आहाहा! कहो, नेमिदासभाई! ऐसी बात है। वहाँ पोरबन्दर ऐसा पढ़ो तो भी समझ में आये ऐसा नहीं वहाँ। अष्टपाहुड़ पढ़ा है। वाँचते तो होंगे निवृत्त हैं तो। आहाहा!

चैतन्य को डोलाया है अन्दर से। भगवान! तू आनन्द का धाम नाथ है न! आहाहा! और आनन्द का अंश और शुद्धता न प्रगटे, धर्मध्यान ऐसा नहीं होता। क्या कहता है तू? तुझे तो विषयसुख में और अजीव में ही तुझे प्रेम है। जीव में प्रेम नहीं। आहाहा! जीव का प्रेम होवे तो शुद्धता हो सकती है। शुद्धता प्रगट हो सकती है। धर्मध्यान में। आत्मा की ओर के झुकाव में धर्मध्यान होता है। ऐसा आना चाहिए। आहाहा! समझ में आया? गजब अधिकार, भाई! वहाँ से बुद्धि उठा, कहते हैं। और रख यहाँ, ऐसा हो सकता है। क्यों

इनकार करता है ? आहाहा ! देखो ! दूसरे प्रकार से कहें तो पर में सुखबुद्धि का अर्थ पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि है और द्रव्य में सुख है, ऐसी श्रद्धा नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? धर्म चीज़ कोई अलौकिक है। लोगों ने बाहर से मानी है, ऐसा है नहीं।

भावार्थ :- जीवाजीव पदार्थ के श्रद्धान-ज्ञान से रहित है,... क्यों ? भगवान आत्मा तो पवित्र और शुद्ध और आनन्दस्वरूप है, और यदि उसकी श्रद्धा हो, तब तो उसे शुद्धता प्रगट होती है। तो शुद्धता, वह धर्मध्यान है और वह धर्मध्यान नहीं, ऐसा कहता है। उसे आत्मा का ज्ञान नहीं, उसे आत्मा की श्रद्धा नहीं। समझ में आया ? तो ऐसा कहते हैं जीवाजीव पदार्थ के श्रद्धान-ज्ञान से रहित है। **वह इस प्रकार कहता है कि अभी ध्यान का काल नहीं है।** अरे ! आत्मा में एकाग्रता होती है, शुद्ध द्रव्यस्वभाव में लीनता होती है, ऐसा कुछ हम मानते नहीं। ऐसा धर्मध्यान होता नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

जीवाजीव पदार्थ के श्रद्धान-ज्ञान से रहित है, वह इस प्रकार कहता है कि अभी ध्यान का काल नहीं है। इससे ज्ञात होता है कि इस प्रकार कहनेवाला अभव्य है, इसको मोक्ष नहीं होगा। उसे मोक्ष नहीं होगा। वह बन्ध का भाव ही उसे रुचिकर लगता है। आहाहा ! ऐसा कहते हैं। अबन्धभाव आत्मा की रुचि हो तो शुद्धता प्रगटी और शुद्धता प्रगटने का भाव हो, उसे शुद्धता न प्रगटे, ऐसी बात उसे नहीं आती। आहाहा ! समझ में आया ? बहुत अच्छा अधिकार आया है। सूक्ष्म है। तू सूक्ष्म है न, भगवान ! अकेले ज्ञान के साथ तुझे काम लेना है। राग के साथ नहीं, पर के साथ नहीं। ऐसा तो तू है। स्वभाव से ज्ञात हो, ऐसा तो है। स्वभाव तो शुद्ध है और शुद्धता की एकाग्रता से वह शुद्धता प्रगट होती है। वह आत्मा को जाननेवाला कहा जाता है। और वह आत्मा शुद्धता न प्रगटे, शुद्धता का काल नहीं, धर्मध्यान का काल नहीं, उसे आत्मा का ज्ञान नहीं तथा अजीव का भी ज्ञान नहीं। विषय के सुख में मेरी बुद्धि है, वह अजीव है और अजीव में उसकी खबर नहीं कि अजीव में सुख नहीं होता। समझ में आया ?

गाथा-७५

जो ऐसा मानता है–कहता है कि अभी ध्यान का काल नहीं तो उसने पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति का स्वरूप भी नहीं जाना –

पंचसु महव्वदेसु य पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु।
जो मूढो अण्णाणी ण हु कालो भणइ झाणस्स।।७५।।

पंचसु महाव्रतेषु च पंचसु समितिषु तिसृषु गुप्तिसु।
यः मूढः अज्ञानी न स्फुटं कालः भणिति ध्यानस्य।।७५।।

त्रय गुप्ति पाँच समिति महाव्रत पाँच में जो मूढ़ ही।
वह मूढ़ अज्ञानी कहे है ध्यान का यह काल नहिं।।७५।।

अर्थ – जो पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति इनमें मूढ है, अज्ञानी है अर्थात् इनका स्वरूप नहीं जानता है और चारित्रमोह के तीव्र उदय से इनको पाल नहीं सकता है, वह इस प्रकार कहता है कि अभी ध्यान का काल नहीं है।।७५।।

गाथा-७५ पर प्रवचन

जो ऐसा मानता है-कहता है कि अभी ध्यान का काल नहीं, तो अपने पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति का स्वरूप भी नहीं जाना :- देखो! गजब बात की है न!

पंचसु महव्वदेसु य पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु।
जो मूढो अण्णाणी ण हु कालो भणइ झाणस्स।।७५।।

तीन जगह यह लिया है। उसमें, '**ण हु कालो झाणजोयस्स**' '**ण हु कालो भणइ झाणस्स।**' '**ण हु कालो भणइ झाणस्स।**' गजब बात, भाई!

अर्थ :- जो पाँच महाव्रत,... अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य (और अपरिग्रह)

के स्वरूप को भी इसने जाना नहीं। यदि शुद्धता प्रगटे ही नहीं और शुद्धता वह धर्मध्यान अभी हो नहीं तो उसे महाव्रत के स्वरूप की ही खबर नहीं। जिसे महाव्रत के स्वरूप का ज्ञान हो, उसे चारित्र का ज्ञान हो और चारित्र की शुद्धता हो, उसकी उसे खबर होती है। शोभालालजी! मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ... स्वीकार भी नहीं करता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं करता।

पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति इनमें मूढ़ है, अज्ञानी है अर्थात् इनका स्वरूप नहीं जानता है... अरे! जिसे पंच महाव्रत के स्वरूप का ज्ञान हो, उसे शुद्धता का ज्ञान होता है और उसे धर्मध्यान होता है। समझ में आया? जिसे आत्मा के शुद्धस्वभाव का ध्यान होता है, उसे शुद्धता प्रगटी हुई होती है समकित-ज्ञान-चारित्र की, उसे पंच महाव्रत के विकल्प का बराबर ज्ञान होता है। यह तो एक भी ज्ञान नहीं। नहीं द्रव्य का, नहीं शुद्धता का, नहीं पंच महाव्रत का। समझ में आया? मूढ है, उसका स्वरूप जानता नहीं।

और चारित्रमोह के तीव्र उदय से इनको पाल नहीं सकता है,... पाल नहीं सकता अर्थात् अन्दर पाल नहीं सकता, इसलिए उसे नहीं... नहीं... नहीं... ऐसी स्थिरता और अन्दर का ध्यान ऐसा नहीं हो सकता। **वह इस प्रकार कहता है कि अभी ध्यान का काल नहीं है।** लो! वास्तविक चारित्र और पंच महाव्रत वास्तविकरूप से पाल नहीं सकता, इसलिए कहते हैं कि नहीं, यह तुम बड़ी बात करते हो ऐसी। आहाहा! मेरुपर्वत उठाना। बापू! चैतन्य भगवान है। आहाहा! महामेरु तो धूल में कहीं रह गया। ऐसे तो अनन्त मेरु जिसने ज्ञान में समाहित कर दिये हैं। ऐसा भगवान आत्मा अनन्त आनन्द का धाम प्रभु, उसकी तुझे श्रद्धा नहीं। उसका तुझे ज्ञान नहीं। उसका नहीं तो पंच महाव्रत का भी ज्ञान नहीं। तेरे पास चारित्र और महाव्रत भी नहीं है। इसलिए तू कहता है कि अभी शुद्धता नहीं होती और ध्यान नहीं होता। समझ में आया? **अभी ध्यान का काल नहीं है।** लो, ठीक!

आगे कहते हैं कि अभी इस पंचम काल में धर्मध्यान होता है, यह नहीं मानता है, वह अज्ञानी है :- अभी पंचम काल में आत्मा शुद्धता का ध्यान करके शुद्धता प्रगट कर सकता है। समझ में आया? आहाहा! और यह धर्मध्यान कैसा? यह शुभभाव, वह नहीं।

वह धर्मध्यान नहीं। वह तो आर्तध्यान है। शुभभाव पंच महाव्रत के अकेले विकल्प तो आर्तध्यान हैं। आत्मा के प्राण पीड़ित होते हैं। निश्चयधर्मध्यान हो तो शुभभाव को व्यवहारधर्मध्यान कहा जाता है। व्यवहार अर्थात् है नहीं, उसे कहना। परन्तु अभी जिसे निश्चयधर्मध्यान की खबर नहीं... समझ में आया? आहाहा! यह ७६ गाथा में कहेंगे, लो न! ७६ कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-७६

आगे कहते हैं कि अभी इस पंचम काल में धर्मध्यान होता है, यह नहीं मानता है, वह अज्ञानी है –

भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स।
तं अप्पसहावठिदे ण हु मण्णइ सो वि अण्णाणी।।७६।।

भरते दुःषमकाले धर्मध्यानं भवति साधोः।
तदात्मस्वभावस्थिते न हि मन्यते सोऽपि अज्ञानी।।७६।।

भरतस्थ दुष्षम काल में धर्मध्यान होता साधु के।
वे रहें आत्म-स्वभाव में मानें नहीं अज्ञानि वे।।७६।।

अर्थ **– इस भरतक्षेत्र में दुःषम काल-पंचम काल में साधु मुनि के धर्मध्यान होता है, यह धर्मध्यान आत्मस्वभाव में स्थित है, उस मुनि के होता है, जो यह नहीं मानता है, वह अज्ञानी है, उसको धर्मध्यान के स्वरूप का ज्ञान नहीं है।**

भावार्थ **– जिनसूत्र में इस भरतक्षेत्र में पंचम काल में आत्मभावना में स्थित मुनि के धर्मध्यान कहा है, जो यह नहीं मानता है, वह अज्ञानी है, उसको धर्मध्यान के स्वरूप का ज्ञान नहीं है।।७६।।**

प्रवचन-९१, गाथा-७६ से ७९, शुक्रवार, भाद्र कृष्ण ३, दिनांक १८-०९-१९७०

अष्टपाहुड़ में मोक्षपाहुड़। ७६वीं गाथा।

आगे कहते हैं कि अभी इस पंचम काल में धर्मध्यान होता है, यह नहीं मानता है, वह अज्ञानी है :- क्या कहते हैं ? देखो !

भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स।
तं अप्पसहावठिदे ण हु मण्णइ सो वि अण्णाणी।।७६।।

अर्थ :- इस भरतक्षेत्र में दुःषमकाल-पंचम काल में साधु मुनि के धर्मध्यान होता है... यहाँ क्या सिद्ध करना है ? कि शुद्धता, वह धर्मध्यान है। शुभभाव, वह धर्मध्यान नहीं। कोई कहे कि अभी तो शुभभाव ही हो सकता है। शुद्ध नहीं हो सकता। तो यह कहते हैं कि वह अज्ञानी है, मूढ़ है। समझ में आया ? **मुनि के धर्मध्यान होता है...** कैसा धर्मध्यान ? **यह धर्मध्यान आत्मस्वभाव में स्थित है...** देखो ! अभी यह दूसरे उल्टे अर्थ करते हैं, उसका अभी अर्थ है। अभी धर्मध्यान होता है परन्तु यह शुभभाव, वह धर्मध्यान, शुद्धभाव हो तो शुक्लध्यान, यह बात खोटी है, एकदम झूठी है।

आत्मा स्वभाव में स्थित रहे, वह धर्मध्यान है। पुण्य परिणाम, वह आत्मा नहीं शुभभाव। समझ में आया ? तब इसमें से क्या निकालते हैं और कितने ही ? कि देखो ! अभी धर्मध्यान है और महाव्रत नहीं, ऐसा कहनेवाले झूठे हैं, ऐसा कहते हैं। महाव्रत से धर्मध्यान होवे तो महाव्रत हो न ? धर्मध्यान बिना महाव्रती कैसा ? समझ में आया ? धर्मध्यान आत्मा के आश्रय से होता है। देखो ! है न ? **आत्मस्वभाव में स्थित है...** चैतन्य आनन्दस्वरूप वह शुभ-अशुभराग से रहित ऐसे स्वभाव में स्थित आत्मा आश्रित उसे धर्मध्यान कहते हैं। भाई ! शोभालालजी ! आहाहा ! समझ में आया ? अभी यह बड़ी चर्चा विरोध की है। यह रतनचन्दजी इतना हाँकते हैं, निकालते हैं। देखो ! अभी धर्मध्यान है और शास्त्र में धर्मध्यान शुभउपयोग को ही कहा है।

यहाँ कहते हैं कि आत्मस्वभाव में स्थित हो, उसे धर्मध्यान कहा है। समझ में आया ? और नियमसार में तो बहुत जगह स्वआश्रित निश्चयधर्मध्यान, स्वआश्रित धर्मध्यान

(ऐसा कहा है)। नियमसार। समझ में आया? क्योंकि मोक्ष का मार्ग है न? मोक्ष का मार्ग, वह आत्म आश्रित से प्रगट होता है। समझ में आया? आत्मा अखण्ड आनन्द शुद्धचैतन्य वस्तु के आश्रय से, एकाग्रता से, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र यह धर्मध्यान स्वआत्मा के आश्रय से प्रगट होता है। समझ में आया इसमें?

'**अप्पसहावठिदे**' यहाँ वजन है। धर्मध्यान तो उसे कहते हैं कि आत्मा का जो शुद्ध चैतन्य स्वभाव है, ज्ञायक आनन्दभाव, उसमें लीन होना और शुद्धता प्रगट होना, वह शुद्धता स्व के आश्रय से हो, उसका नाम धर्मध्यान कहा जाता है। समझ में आया? अमरचन्दभाई! स्वआश्रित। है यह नियमसार में। दो-तीन तो निकले थे। भाई! उसमें बहुत बोल हैं। नियमसार में तो बहुत बोल हैं। खोला, वहाँ यही निकला। १७५ पृष्ठ पर है। पहला, देखो!

निश्चय-उत्तमार्थप्रतिक्रमण स्वात्माश्रित ऐसे निश्चयधर्मध्यान... स्वाश्रित ऐसे निश्चयधर्मध्यान। पहली अभी समझण में ही पूरी दिक्कत है। शुद्धता उसे नहीं, इसलिए कहते हैं, अभी शुद्धता नहीं है, ऐसा। धर्मध्यान शुभभाव है, वह उसे मानता है। अशुद्धता जो शुभभाव, उसे धर्मध्यान मानता है। समझ में आया? **स्वात्माश्रित ऐसे निश्चयधर्मध्यान और निश्चयशुक्लध्यान...** दोनों स्व-आत्मा के आश्रय से होते हैं। शुभभाव स्व-आत्मा के आश्रित नहीं, वह तो पराश्रित है। समझ में आया? १७५ है। देखो! इसमें भी है।

मुमुक्षु : कौन सी गाथा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ९२ गाथा है। ९० और २। क्या कहते हैं? बानवें गाथा है। १७५-१७६ (पृष्ठ) होगा। ७७-७७ है, देखो! ७७ में है। ९३ गाथा में भी है।

स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान में लीन होता हुआ अभेदरूप से स्थित रहता है,... लो! ९३वें में भी है। क्या कहना है, समझ में आया इसमें? धर्मध्यान-धर्मध्यान लोग कहते हैं, वह शुभविकल्प और राग को धर्मध्यान (कहते हैं)। वह धर्मध्यान तो व्यवहार है, यह निश्चयधर्मध्यान होवे तो (व्यवहार है)। परन्तु वास्तविक निश्चयधर्मध्यान, वह शुद्धभाव, वह धर्मध्यान होता है। भगवानजीभाई! चैतन्यद्रव्य, देखो! **स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान...** समझ में आया? अभी थोड़े बोल निकाले थे। अभी पढ़ते हुए, हों! अभी। १७५, १७७

आया न? १७८। १७८ है, देखो! **स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान...** गाथा तो वह की वह है, हों! ९३। ९३ गाथा में दो बार आया है।

मुमुक्षु : गाथा ७८? गाथा ७८?

पूज्य गुरुदेवश्री : गाथा तो ९३। ९२-९३ दो। उसमें। १७५ और १७८ पृष्ठ है।

स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान... इतना तो स्पष्टीकरण है। परन्तु यह मान्य नहीं उन्हें। पद्मप्रभमलधारिदेव की टीका मान्य नहीं। ऐसा स्पष्ट कर डाला और अब हमारे शुभभाव में धर्मध्यान मानना है, यह क्या करना? यह टीका मान्य नहीं, जाओ। समझ में आया? ७८। २४८-४९ इतना निकाला है। बाकी तो बहुत जगह होगा। २४८ और २४९... धर्मध्यान, लो यह अधिकार परम समाधि का। १२२ गाथा। **त्रिकाल निरावरण नित्य-शुद्ध कारणपरमात्मा को...** कैसा है भगवान आत्मा? त्रिकाल निरावरण नित्य-शुद्ध, ऐसा कारणपरमात्मा ध्रुव चैतन्य, वह **स्वात्मा...** यह आत्मा स्व, यह अपना आत्मा। उसके आश्रय से **निश्चयधर्मध्यान से और टंकोत्कीर्ण ज्ञायक एक स्वरूप में लीन परमशुक्लध्यान से जो परम वीतराग तपश्चरण में लीन,...** होता है। उसे तपस्या कहा जाता है। ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? सेठ! सुनने को न मिले और ऐसे का ऐसा बिना भान के...

मुमुक्षु : पहले अवलम्बन ले पश्चात्....

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, ऐसा है। और पहले अवलम्बन कैसा? सीधे आत्मा का अवलम्बन, ऐसा कहते हैं। अब सेठ को तर्क करना आता है। पहले ऐसा कहे, पर का अवलम्बन ले और पश्चात् (स्व का अवलम्बन ले)। पहले और कौन सा? पहले निश्चय से स्व का अवलम्बन लेना, इसका नाम धर्मध्यान है। समझ में आया? देखो! २४८ (पृष्ठ) अर्थात् गाथा १२२। इसमें २४९ (पृष्ठ) है। और १२३ गाथा में है।

उस जीव की परिणति विशेष, वह स्वात्माश्रित निश्चयधर्मध्यान है। यह तो इतने निकाले थे आचार्य के, हों! पढ़ते थे। दूसरे बहुत होंगे अन्दर। यह तो एक नमूना बस है न इसमें। समझ में आया? श्रद्धा का-अभी व्यवहारश्रद्धा का ठिकाना न हो। चैतन्य शुद्ध आत्मा पवित्र कारणपरमात्मा नित्यानन्द प्रभु, वह आत्मा, उसके आश्रय से जो धर्मध्यान

(होता है), उसे धर्मध्यान कहा जाता है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा! अभी लिखे थे हों, पाँच बोल। धर्मध्यान, ऐसा। है। दूसरे बहुत हैं। उसमें बहुत आते हैं। पद्मप्रभमलधारिदेव ने बहुत स्पष्ट किया है। क्योंकि मोक्षमार्ग का अधिकार है न वह? मोक्षमार्ग है, वह धर्मध्यान और शुक्लध्यान है। धर्मध्यान स्व-आत्मा के आश्रय से प्रगट होता है। यह शुभभाव आदि धर्मध्यान और मोक्षमार्ग नहीं है। समझ में आया? ठीक है? धर्मध्यान किसे होता है? **आत्मस्वभाव में स्थित हैं...** देखो! पंच महाव्रत और शुभभाव में स्थित, वह धर्मध्यान नहीं; वह तो राग है, विकल्प है। समझ में आया?

आत्मा अन्दर परमानन्द प्रभु त्रिकाल निरावरण शुद्ध कारणप्रभु का आश्रय करके जो एकाग्रता प्रगट हो, उसे यहाँ धर्मध्यान, शुद्ध परिणाम को धर्मध्यान कहा है। शुद्ध। शुभ नहीं। समझ में आया? देवीलालजी! गजब काम। ऐसे झगड़े। अभी तो आत्मा का आश्रय करना, वह धर्म है, यह बात जँचती नहीं। आहाहा! वे कहते हैं कि ऐसा होता है, यह जो न माने, **उसको धर्मध्यान के स्वरूप का ज्ञान नहीं है**। ऐसा न माने; वह अज्ञानी है। उसे धर्मध्यान किसे कहते हैं, उसकी खबर नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा का स्वभाव शुद्ध चैतन्यघन आनन्दकन्द, वह आत्मा। उसका आश्रय करके एकाग्रता हो, वह शुद्धता-पवित्रता सम्यग्दर्शन, ज्ञान आदि प्रगटे उसे धर्मध्यान कहा जाता है। समझ में आया? क्या अभी तक धर्मध्यान-धर्मध्यान कहते थे। अणुव्रत और महाव्रत वह धर्मध्यान। हें! आहाहा! देखो! आचार्य कहते हैं। यह चारों गाथा वहाँ से उठायी है। ७० से उठायी है न? '**अप्पा झायंताणं**' उठायी है। ७० से। वहाँ से मूल तो यह लेना है। भगवान आत्मा पर का लक्ष्य छोड़कर, शुभ-अशुभराग का भी लक्ष्य छोड़कर अन्तर चैतन्य ध्रुव की धुन में अन्दर एकाकार हो, उसे धर्मध्यान कहा है। यह धर्मध्यान, वह शुद्धता के परिणाम हैं। पश्चात् उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र चाहे जो कहो। समझ में आया? यह स्व-आत्मा के आश्रय से उत्पन्न होता है। शुभ विकल्प, वह स्वात्म-आश्रय से नहीं, वह तो पर-आश्रय। व्यवहार पराश्रित, निश्चय स्वआश्रित। स्वआश्रित निश्चय, पराश्रित व्यवहार। अब उसकी व्याख्या क्या? यहाँ तो यह दो गाथा है। बन्ध अधिकार में समयसार। स्वआश्रित निश्चय। आत्मा अखण्ड आनन्द का आश्रय लेकर जो परिणति प्रगट हुई, वह निश्चय। पराश्रय विकल्प उठे, वह व्यवहार अशुद्धता।

ऐसी सीधी बात है। निश्चय-व्यवहार की ऐसी सीधी। कुछ उसमें कोई बहुत तर्क करना पड़े या बहुत जानना पड़े या ऐसा कुछ है नहीं। समझ में आया?

इस भरतक्षेत्र में... देखो न भाषा कैसी है! दुषमकाल हो भले, परन्तु मुनियों को धर्मध्यान होता है। धर्मध्यान हो, उसे मुनिपना कहा जाता है! वापस ऐसा कहना है। यह बाहर का लिया, उसे धर्मध्यान होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? '**धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स**।' यहाँ तो मुख्यरूप से साधु की बात ली है न मुख्य? गौणरूप से चौथे गुणस्थान में, पाँचवें में धर्मध्यान होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न। यह अभी क्या कहा? चौथे-पाँचवें में गौणरूप से धर्मध्यान है। मुनि को मुख्यरूप से धर्मध्यान। विशेष है न वहाँ? यहाँ मुनि की व्याख्या प्रधान है न! दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन, यह मुक्ति का कारण है। इससे चारित्रसहित है, वह मुनि है और उसे धर्मध्यान होता है, ऐसा सिद्ध करना है। वह धर्मध्यान अर्थात् आत्मा के आश्रित भाव होता है, वह धर्मध्यान है और वह मुक्ति का कारण है। ऐसा धर्मध्यान अभी नहीं - ऐसा माने, वह अज्ञानी है। दूसरी बात। उस धर्मध्यान का स्वरूप कैसा है, उसे जानते नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई! देवीलालजी! उस धर्मध्यान का कायोत्सर्ग आता है या नहीं? वह तो तुमने बहुत बार किया होगा। स्थानकवासी में बहुत आता है, ऐसा धर्मध्यान का कायोत्सर्ग आता है। समकित बिना इस जीव ने अनन्त बार क्रिया की। ऐसा आता है उसमें। धर्मध्यान का कायोत्सर्ग आता है। हमारे यहाँ बोलते हैं तुम्हारे वहाँ...

यह धर्मध्यान अर्थात् क्या? वस्तु का धर्म अर्थात स्वभाव, उसका ध्यान अर्थात् एकाग्रता। वह स्वात्माश्रित एकाग्रता। सीधी बात है। मीठी मधुर आनन्ददायक बात है। धर्मध्यान उसे कहते हैं कि जो आत्मा के स्वभाव को अवलम्बकर परिणति प्रगट हो उसे। उसमें तो शुद्धता ही होती है। स्व-आत्मा के आश्रय में अशुद्धता नहीं होती। आहाहा! ऐसा जो न माने और शुभभाव को धर्मध्यान माने, उसे धर्मध्यान के स्वरूप की खबर नहीं है, ऐसा कहते हैं। पोपटभाई! प्रतिक्रमण में आया होगा तुम्हारे नहीं? धर्मध्यान और कायोत्सर्ग करते होंगे वहाँ दोनों जनें। दरियापरी के उपाश्रय में।

मुमुक्षु : अर्थ की किसे खबर थी?

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो सच्ची है। हम सबको प्रतिक्रमण कराते थे। अर्थ-बर्थ किसे खबर थी वहाँ? यह पाँचवाँ श्रमणसूत्र बोल जायें। चैतन्य परिणाम की भूल। स्थानकवासी में बोला जाता है न? श्रावक को बोला जाता है। पालेज में मैं ही प्रतिक्रमण कराता था। संवत् १९६३-६४-६५। आठ दिन सब इकट्ठे हों। शाम को प्रतिक्रमण करे और चार अपवास करें। आठ दिन के चार। लो, धर्म हो गया। लो!

मुमुक्षु : प्रतिक्रमण करके देखो रे देखो रे जैनों गाये...

पूज्य गुरुदेवश्री : देखो रे देखो रे, यह मैं भी वहाँ गाता था। मैं वहाँ गाता। 'देखो रे देखो रे जैनों कैसे व्रतधारी, कैसे व्रतधारी आगे हुए नर-नारी।' ऐसा गाते वहाँ जम्बूस्वामी... क्या है इसकी खबर नहीं होती। आठ दिन के चार अपवास करें, हों! चार अपवास। छोटी उम्र में पहले से।

मुमुक्षु : परन्तु इस वस्तु की खबर नहीं थी कि क्या हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु की खबर क्या, कुछ (खबर नहीं)। सब विपरीतता। यह सब क्रिया, वह धर्म हो गया। अपने को मोक्ष का मार्ग हो गया, जाओ। अपवास किया इसलिए हो गयी निर्जरा। यहाँ कहते हैं कि निर्जरा स्व-आत्मा के आश्रय से होती है; पराश्रय से नहीं होती। इस सेठ ने तो बहुत गड़बड़ की है। सेठ था कलकत्ता में। कहो, समझ में आया? आहाहा!

कितना स्पष्टीकरण किया है आचार्य ने! धर्मध्यान उसे कहते हैं कि '**अप्पसहावठिदे**' ऐसा तो अब स्पष्टीकरण किया है। वहाँ टीका में पद्मप्रभमलधारिदेव ने कहा, स्वआश्रय से धर्मध्यान। अब उसमें अन्तर क्या? दोनों बात तो एक ही है। समझ में आया? **जो यह नहीं मानता है, वह अज्ञानी है, उसको धर्मध्यान के स्वरूप का ज्ञान नहीं है।** धर्मध्यान किसे कहना? आहाहा! णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं करके, या ३२ बार गिनकर, वह करके सामायिक पूरी कर डाले। हो गया धर्मध्यान। वह धर्मध्यान नहीं है। जिसमें आत्मा का आश्रय आया नहीं, पराश्रय छूटे नहीं, उसे धर्मध्यान नहीं हो सकता।... क्या यह सब चला है या नहीं वहाँ, तुम सेठ थे न? सब गड़बड़ चलायी। यह तो चलायी की

बात है। अभी की कहाँ बात है। यह तो भूतकाल की बात है। आहाहा! मार्ग की खबर नहीं होती। जाना हो पूर्व में और चले ऐसे 'ढसे'। 'ढसा' है न 'ढसा' इस ओर नहीं ? जाना भावनगर और जाये 'ढसे'। ऐसा भावनगर आत्मा स्वाश्रय जाना है। उसके बदले राग पराश्रय 'ढसा' में जाना है इसे। उसमें इसे धर्मध्यान मानना है। आहाहा!

भावार्थ :- जिनसूत्र में इस भरतक्षेत्र पंचम काल में आत्मभावना में स्थित... देखो! स्पष्टीकरण किया। आत्मभावना में स्थित। आत्मा अपनी भावना अर्थात् एकाग्रता में स्थित है। भावना अर्थात् संकल्प-विकल्प, ऐसा नहीं। भाव ऐसा जो त्रिकाली प्रभु, उसकी भावना अर्थात् एकाग्रता। समझ में आया ? द्रव्यभाव, ज्ञायकभाव, कारणप्रभु, कारणपरमात्मा त्रिकाली वह भाव। उसकी एकाग्रता, वह भावना। उस आत्मभावना में स्थित **मुनि के धर्मध्यान कहा है,...** ऐसे मुनि को धर्मध्यान (कहा है)। जादवजीभाई! तुमने वहाँ बहुत ऐसा किया होगा। प्रतिक्रमण और अमुक धर्मध्यान। घर में बहिन ने बहुत कराया होगा। समझ बिना का। आहाहा! मार्ग की खबर नहीं होती और मार्ग में हैं, ऐसा मानकर चले। आहाहा!

आत्मभावना में स्थित मुनि के धर्मध्यान कहा है,... वापस यह मुनिपना, ऐसा, हों! ऐसा। वापस ऐसा मानो कि यह पंच महाव्रत धारण किये, इसलिए हम मुनि और हमारे धर्मध्यान हो गया, ऐसा नहीं। यह लिखा है उसने। उसमें अर्थ में लिखा है। उसमें लिखा है। देखो! महाव्रत न माने, वह ऐसा कहलाये, ऐसा लिखा है उसमें। इसी गाथा में। महाव्रतधारी को। परन्तु महाव्रतधारी कौन ? जिसे धर्मध्यान नहीं, उसे महाव्रत कैसे ? समझ में आया ? ऐसा कहे, इनकार करते हैं अभी धर्मध्यान न माने, वह अज्ञानी है। अभी महाव्रत नहीं, कोई ऐसा माने वह अज्ञानी है, ऐसा करके वहाँ लगा दिया। वह तो स्वतन्त्र आत्मा है। हें! आहाहा!

यहाँ तो धर्मध्यान अर्थात् आत्मा के स्वरूप शुद्ध आनन्द का आश्रय करके जो एकाग्रता होती है, ऐसा उसे धर्मध्यान कहा है। **जो यह नहीं मानता हैं, वह अज्ञानी है, उसको धर्मध्यान के स्वरूप का ज्ञान नहीं है।** लो!

गाथा-७७

आगे कहते हैं कि जो इस काल में भी रत्नत्रय का धारक मुनि होता है, वह स्वर्ग लोक में लौकान्तिकपद, इन्द्रपद प्राप्त करके यहाँ से चयकर मोक्ष जाता है, इस प्रकार जिनसूत्र में कहा है –

अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहहिं इंदत्तं।
लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति।।७७।।

अद्य अपि त्रिरत्नशुद्धा आत्मानं ध्यात्वा लभंते इन्द्रत्वम्।
लौकान्तिकदेवत्वं ततः च्युत्वा निर्वृत्तिं यांति।।७७।।

पा आज भी त्रिरत्न–शुद्धि आतमा ध्या इन्द्र–पद।
लौकान्तिकी देवत्व या आ प्राप्त करते मोक्ष–पद।।७७।।

अर्थ – अभी इस पंचम काल में भी जो मुनि सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र की शुद्धता युक्त होते हैं, वे आत्मा का ध्यान कर इन्द्रपद अथवा लौकान्तिकदेवपद को प्राप्त करते हैं और वहाँ से चयकर निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

भावार्थ – कोई कहते हैं कि अभी इस पंचम काल में जिनसूत्र में मोक्ष होना कहा नहीं, इसलिए ध्यान करना तो निष्फल खेद है, उसको कहते हैं कि हे भाई ! मोक्ष जाने का निषेध किया है और शुक्लध्यान का निषेध किया है, परन्तु धर्मध्यान का निषेध तो किया नहीं। अभी भी जो मुनि रत्नत्रय से शुद्ध होकर धर्मध्यान में लीन होते हुए आत्मा का ध्यान करते हैं, वे मुनि स्वर्ग में इन्द्रपद को प्राप्त होते हैं अथवा लौकान्तिकदेव एक भवावतारी हैं, उनमें जाकर उत्पन्न होते हैं। वहाँ से चयकर मनुष्य हो मोक्षपद को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार धर्मध्यान से परंपरा मोक्ष होता है तब सर्वथा निषेध क्यों करते हो? जो निषेध करते हैं वे अज्ञानी मिथ्यादृष्टि हैं, उनको विषय–कषायों में स्वच्छंद रहना है इसलिए इस प्रकार कहते हैं।।७७।।

गाथा-७७ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो इस काल में भी रत्नत्रय का धारक मुनि होता है, वह स्वर्गलोक में लौकान्तिकपद, इन्द्रपद प्राप्त करके वहाँ से चयकर मोक्ष जाता है, इस प्रकार जिनसूत्र में कहा है :- लो ठीक! उस समय कुन्दकुन्दाचार्य ने श्लोक लिखे तब। अभी भी रत्नत्रय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, शुद्ध हों, शुद्ध। व्यवहाररत्नत्रय नहीं। शुद्ध आत्मा के आश्रय से। दर्शन आत्मा के आश्रय से, ज्ञान आत्मा के आश्रय से, लीनता (आत्मा के आश्रय से)। ऐसे रत्नत्रय के धारी मुनि हों सो स्वर्ग में लौकान्तिकपद (पावे)। मुक्ति तो है नहीं। **इन्द्रपद प्राप्त करके वहाँ से चयकर मोक्ष जाता है,...** वहाँ से एकाध भव करके मोक्ष जाये। **इस प्रकार जिनसूत्र में कहा है :-** लो।

अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहहिं इंदत्तं।
लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति।।७७।।

अर्थ :- अभी इस पंचम काल में भी जो मुनि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्धता युक्त होते हैं... इस काल में भी जो कोई मुनि सम्यग्दर्शन-आत्मा के अनुभव की प्रतीति, आत्मा का ज्ञान और आत्मा में लीनता। देखो! **शुद्धता युक्त होते हैं...** भाषा ऐसी है। है न? '**तिरयणसुद्धा**' शब्द है न? '**सुद्धा**' यहाँ शुद्ध सिद्ध करना है इसलिए '**सुद्धा**' शब्द डाला है। व्यवहाररत्नत्रय वह तो अशुद्ध है, राग है, वह नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब शुद्ध की व्याख्या है। विकल्प से करो तो व्यवहार की बात है। अशुद्ध हो, उसे ऐसे विकल्प होते हैं, उसे व्यवहार से कहा जाता है परन्तु वह बन्ध का कारण है। आत्माश्रित निर्विकल्प, उतना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो, वह शुद्ध है, वह मुक्ति का मार्ग है। समझ में आया? है न? सामने पुस्तक है न, देखो न! सेठ हाँ करते हैं।

'**अप्पा झाएवि**' लिखा है, देखो! आत्मा का ध्यान करे, ऐसा। देखो! ऐसा है? **अभी इस...** '**तिरयणसुद्धा**' मुनि **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्धता युक्त होते हैं, वे आत्मा का ध्यान कर इन्द्रपद अथवा लोकान्तिक देवपद को प्राप्त करते हैं।** ऐसा है।

आत्मा का ध्यान करते-करते विकल्प बाकी रह जाएगा पूर्ण ध्यान नहीं है इसलिए। लोकान्तिक में जायेगा। इन्द्रपना पायेगा। समझ में आया? आहाहा !**अथवा लोकान्तिक देवपद को प्राप्त करते हैं।** लोकान्तिक देव होता है। यह लोकान्तिक देव ब्रह्मचारी होते हैं। उन्हें देवी नहीं होती। आठ सागर का आयुष्य होता है। छोटे में छोटा आठ और बड़े में बड़ा आठ। जघन्य-उत्कृष्ट उन्हें आठ ही सागर का आयुष्य। क्योंकि सब एकावतारी हैं। लोकान्तिक देव असंख्य हैं। सब एक भवतारी। मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाले। ऐसी शुद्धता का आराधन करके, आत्मा का शुद्ध स्वरूप का भान और स्थिरता करके, बाकी विकल्प होंगे तो लोकान्तिक में गये हैं। वहाँ से एक भव करके मोक्ष जायेंगे। आयेगा, अर्थ में आयेगा। और **और वहाँ से चयकर निर्वाण को प्राप्त होते हैं।** आहाहा! आत्मा पंचम काल में भी अपने निज स्वभाव को आराधे, शुद्धता की भावना प्रगट करके, वह जीव पंचम काल के जीव भी इन्द्रपना और लोकान्तिकपना पाकर वहाँ से एकाध मनुष्य का भव करके मोक्ष जानेवाले हैं। कहो, समझ में आया?

भावार्थ :- कोई कहते हैं कि अभी इस पंचम काल में जिनसूत्र में मोक्ष होना कहा नहीं; इसलिए ध्यान करना तो निष्फल खेद है,... आहाहा! समझ में आया? **उसको कहते हैं कि हे भाई! मोक्ष जाने का निषेध किया...** जानो कि मोक्ष नहीं। ऐसा अभी जानो कि मोक्ष नहीं है। **शुक्लध्यान का निषेध किया है परन्तु धर्मध्यान का निषेध तो किया नहीं।** धर्मध्यान नहीं, ऐसा तो कहा नहीं। वह मुनि स्वर्ग में इन्द्रपना, देखो यह **अभी भी जो मुनि रत्नत्रय शुद्ध होकर...** भाषा यहाँ वजन है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र शुद्ध। शुद्ध स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई परिणति शुद्ध। वह शुद्धपना अभी नहीं, ऐसा माननेवाले को धर्मध्यान की खबर नहीं है। समझ में आया?

धर्मध्यान में लीन होते हुए आत्मा का ध्यान करते हैं,... ध्यान में आत्मा को ध्येय बनाकर अर्थात् कि ध्यान का विषय बनाकर। विषय समझ में आता है? यह शब्द उसमें बहुत आता है। 'परम अध्यात्मतरंगिणी', टीका में बहुत आता है। 'विषयकुरु'। 'परम अध्यात्मतरंगिणी' है न? कलशटीका। उसमें बहुत आता है। विषयकुरु। भगवान आत्मा को विषय कर। विकल्प और पर का विषय छोड़ दे। समझ में आया? वहाँ है। एक बार

बताया था। आया था। विषय अर्थात् ध्येय। आत्मा को ध्येय बना। यह विषय जहाँ पुण्य-पाप का विषय है, वह तो पर का विषय है। इसे विषय बना, ध्येय बना। ध्यान में विषय को, विषय अर्थात् आत्मा का विषय कर, ध्येय बना। यह कहीं है। अब कहीं सब हाथ आवे? टीका में है। कहा था एक-दो बार बताया था। यह कहीं याद रहे यहाँ सब? निशान किया हुआ है, निशान किया हुआ है। परन्तु पूरा देखे उसमें कहाँ... निशान किया हुआ है। यहाँ एक बार बताया था। समझ में आया? निशान किये हुए हैं। सब जगह निशान किये हुए हैं, पूरा पढ़ा हो उसमें। समझ में आया? आहाहा!

प्रभु आत्मा एकदम शरीर, वाणी और कर्म तथा विकल्परहित, रागरहित ऐसा जो आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं। क्योंकि विकल्प तो आस्रव है। शरीर, कर्म अजीव है। ऐसा आत्मा, उसे ध्येय में-लक्ष्य में विषय में बनाकर, एकाग्र होना। समझ में आया? **रत्नत्रय से शुद्ध होकर धर्मध्यान में लीन होते हुए आत्मा का ध्यान करते हैं,...** आहाहा! शान्त होकर, धीर होकर बाहर से वृत्ति को समेटकर अन्तर में परिणति में द्रव्य को ध्येय बनावे। कहो, समझ में आया या नहीं राजमलजी? ऐई! राजमलजी! ऐसा है धर्मध्यान। सत्य बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्मध्यान की परिणति सदा रहे। नियमसार में तो कहा है कि धर्मध्यान न हो, वह बहिरात्मा है। ऐसा नियमसार में कहा है। धर्मध्यान और शुक्लध्यान न हो तो बहिरात्मा है। धर्मध्यान में लीनता न रहे तो भी परिणति तो शुद्ध रहती है न कायम? न होवे तो बहिरात्मा है। राग में एकता, वह बहिरात्मा है, ऐसा कहा है। लो! नियमसार में बहुत स्पष्टीकरण है। ओहोहो! आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य की शैली में थोड़े में गागर में सागर भर दिया है। इतनी अधिक (स्पष्टता)। परन्तु अब लोग शान्ति से स्वाध्याय करे, विचार करे, मनन करे तो उन्हें पता लगे। ऐसे के ऐसे ऊपर... ऊपर... ऊपर... ऊपर से वाँच जाये। उभड़क समझते हो? ऊपर-ऊपर से वाँच गये, लो! परन्तु क्या है अन्दर भाव? समझ में आया?

महाप्रभु व्यक्तरूप से चैतन्य द्रव्य तो ऐसा का ऐसा पड़ा है। वस्तु तो महाप्रभु

पड़ी है। चैतन्य आनन्द का धाम महाप्रभु है। यह स्थल इसका सत्ता धाम महासंघ है। उसका आश्रय करके लीन हो, उसे धर्मध्यान कहते हैं। कहो, प्रकाशदासजी! अभी तक किसका धर्मध्यान-धर्मध्यान कहते थे। अणुव्रत पालो। हम महाव्रत लेकर अणुव्रत का उपदेश देते हैं। पाप का। सम्यग्दर्शन बिना अणुव्रत के परिणाम, वह पाप है। समझ में आया? मार्ग तो ऐसा है।

मुमुक्षु : पाप कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाप है। रत्नत्रय को पाप कहा है—व्यवहाररत्नत्रय को शास्त्र में पाप कहा है। जयसेनाचार्य की टीका में है। जयसेनाचार्य की टीका में है। (व्यवहार) रत्नत्रय को पाप कहा है। पुण्य-पाप का अधिकार है न? देखो!

'**व्यवहारमोक्षमार्गो**' संस्कृत है। '**निश्चयरत्नत्रयस्योपादेयभूतस्य कारणभूतत्वा -दुपादेयः**' व्यवहार से उपादेय कहा जाता है। '**परंपरया जीवस्य पवित्रताकरणात् पवित्रस्तथापि बहिर्द्रव्यालंबनत्वेन पराधीनत्वात्वपतति**' परन्तु शुद्ध से पतित होते हैं व्यवहार में। और '**नश्यतीत्येकं कारणं। निर्विकल्पसमाधिरतानां व्यवहारविकल्पालंबनेन स्वरूपात्पतितं भवतीति द्वितीयं कारणं। इति निश्चयनयापेक्षया पाप।**'

मुमुक्षु : कौन सी गाथा?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य-पाप की अन्तिम। पुण्य-पाप की अन्तिम गाथा। १६१, ६२, ६३। संस्कृत है। यहाँ तो सब चिह्न किये हैं। यहाँ और शून्य किया है अधिक वापस। यह लो! '**निश्चयनयापेक्षया पाप।**' समझ में आया? आनन्दस्वरूप भगवान में से पतित होता है, तब व्यवहाररत्नत्रय का शुभ विकल्प उठता है। आहाहा! पहले कहा कि परम्परा पवित्र का निमित्त है। परम्परा फिर होगा, इसे छोड़कर। परन्तु वर्तमान देखो तो यह पाप है। ऐई! पुण्य-पाप की अन्तिम गाथायें। योगफल ऐसा लिया है कि यह अधिकार तो पुण्य का चलता है, और तुमने पाप का अधिकार कहाँ डाला इसमें? अब यह पाप है, सुन न! योगसार में कहा नहीं? 'पाप पाप को सब कहे, परन्तु अनुभवीजन पुण्य को भी पाप कहे।' योगसार में (७१ गाथा में) आता है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह योगसार में है।

मुमुक्षु : यह तो प्रत्येक ग्रन्थ का सार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो प्रत्येक में दिगम्बर सन्तों का कोई भी ग्रन्थ में कहीं विरोध है नहीं। कोई ग्रन्थ में विरोध नहीं। सन्तों की वाणी है, वीतरागी मुनि की वाणी है। समझ में आया? यह तो सर्वज्ञ के पेट की सब वाणी है। कहीं व्यवहार कहा हो, निश्चय कहा हो, और किस नय का कथन है, उसे समझना चाहिए।

मुमुक्षु : तेरापन्थी...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह और दूसरे प्रकार से कहते हैं। आहाहा! ले! तेरापन्थी तो कहते हैं कि दूसरे की दया का भाव है, वह पाप है। ऐसा नहीं है। हिंसा का भाव, वह पाप और दया का भाव, वह पुण्य। वह तो यहाँ निश्चय की अपेक्षा से दया के भाव को पाप कहा है। परन्तु पाप की अपेक्षा से दया के भाव को पुण्य कहा है। अपेक्षा लगनी चाहिए न! एकान्त खींचा करे, ऐसा कहीं चले? वे तेरापन्थी ऐसा कहते हैं कि दूसरे को बचाने का भाव, वह पाप; दूसरे को पानी पिलाना, दाना देना, अनाज देना, वह पाप। नहीं, नहीं, ऐसा नहीं है। वह अनुकम्पा आदि भाव पुण्य है, धर्म नहीं। समझ में आया? धर्म नहीं परन्तु पुण्य है। पाप डाल दे, ऐसा नहीं। पाप कहा, वह तो निश्चय के स्वभाव के आनन्द की अपेक्षा से पुण्य में राग है और जहर है, इस अपेक्षा से पाप (कहा है)। परन्तु व्यवहार की अपेक्षा से पाप से पुण्य शुभभाव है, ऐसा व्यवहार में भेद पाड़ने पर उसे व्यवहार से पाप नहीं कहा जाता। निश्चय की अपेक्षा से पाप है। वह तो कहे - नहीं, पाप ही है। परजीव की दया पालना, किसी को-भूखे को आहार-पानी देना, पानी देना तृषा लगी हो तो। वह असन्ति है। उसे पाप है। ऐसा नहीं होता भाई!

मुमुक्षु : तेरापन्थी में है?

पूज्य गुरुदेवश्री : तेरापन्थी है न? स्थानकवासी में तुलसी।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह। नहीं, ऐसा मार्ग नहीं है।

मुमुक्षु : निश्चय नहीं तो पाप बँधता नहीं, पुण्य को पाप बताते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बताते हैं। वे पुण्य किसे कहते हैं ? कि मुनि हैं, उनके माने हुए। मुनि को आहार-पानी दे तो निर्जरा और पुण्य दो होते हैं। यह बात कहते हैं। सब पढ़ा है न, हमने सब देखा है। मुनि हो, उनके माने हुए, हों! उन्हें कहाँ मुनि की खबर है ? तथारूप माने हुए मुनि।... कहा था, अभी रात्रि में कहा था। भगवती सूत्र है। तथारूप के साधु को आहार-पानी दे तो एकान्त निर्जरा करे। अरे! पर को आहार-पानी देना, सच्चे सन्त गणधर हों, उन्हें आहार-पानी दे तो भी निर्जरा नहीं होती। पुण्यभाव है। स्वद्रव्य आश्रित निर्जरा होती है। परद्रव्य आश्रित तो पुण्य का कारण है। हमने तो उनका सब पढ़ा है। उनके एक-एक ग्रन्थ, सब ग्रन्थ देखे हैं। यहाँ तो पहले देखे थे। वहाँ थे न संसार में ? परम दिगम्बर शास्त्र तुम्हारे काका भड़कते थे। कि यह परम दिगम्बर शास्त्र अभी पढ़ते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : मर जाये क्या ? उसका भाव क्या है ? ऐसी बात तो फिर गाय को घास-बास देना, वह सब पाप है। ऐसा नहीं है। भाव की बात है। भगवान की पूजा में पानी में हिंसा तो होती है। परन्तु भाव क्या है ? भक्ति का है, इसलिए शुभभाव है; धर्म नहीं। यह दूसरी बात है। सब पढ़ा उसका है, हों! एक-एक ५२ बोल का थोकड़ा है।... पूरा ग्रन्थ है। सब देखा है। तेरापन्थी के शास्त्र देखे हैं। पहले सबका सब देखा है। यह सनातन सन्त दिगम्बर...

मुमुक्षु : ... कल्पित।

पूज्य गुरुदेवश्री : बनाये हुए कल्पित स्वयं बनाये हुए। उनका मुख्य साधु है। बनाये हैं। आहाहा! भाई! यहाँ तो ऐसा नहीं चलता। व्यवहार में कोई दया, दान, शुभभाव से भक्ति, गाय को गोशाला में चारा डालने का भाव, वह सब भाव है हिंसा थोड़ी, अल्प पाप लगता है परन्तु है उसमें पुण्यभाव-शुभभाव है। उसका निषेध करे कि वह पुण्य नहीं और पाप है। ऐसा नहीं। यहाँ तो आत्मा के आनन्द की अपेक्षा से वहाँ से हट जाता है, इसलिए पाप है, ऐसा कहा है। जो अपेक्षा है, वैसा समझना चाहिए न ? खींचतान करे, ऐसा नहीं चलता। यह तो तत्त्व-वीतराग का मार्ग है। यह तो केवली का कहा हुआ (मार्ग है)।

यह कोई किसी से कल्पित है और ऐसा है, वैसा है – ऐसा नहीं। समझ में आया? परमात्मा त्रिलोकनाथ सीमन्धर भगवान ने कहा हुआ मार्ग है। महावीर आदि भगवान सर्वज्ञ यही कहते आये हैं और कहेंगे। समझ में आया?

वे मुनि स्वर्ग में इन्द्रपद को प्राप्त होते हैं अथवा लोकान्तिक देव एक भवावतारी हैं,... देखो! एकभवतारी। इतना पुरुषार्थ नहीं, मुक्ति-केवलज्ञान प्राप्त करे, ऐसा तो पुरुषार्थ है नहीं। भविष्य में एक भव करके मुक्ति में जायेगा।

मुमुक्षु : लोकान्तिक का नियम है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नियम ही है। लोकान्तिक का नियम है और अमुक सर्वार्थसिद्धि के देव का नियम है। सर्वार्थसिद्धि के देव एक भव करके मुक्ति जाते हैं। दूसरे चार को किसी को एक हो, किसी को दो हो। परन्तु वह तो आराधक हो गये, समाप्त हो गया। भव-फव वह तो जरा थोड़ा सा राग बाकी है, वह तो धर्मशाला में रुकनेमात्र है। शाम को चलते-चलते २५ कोस चलने का हो। सोलह कोस चलने पर अन्धेरा हो गया, तो कुछ धर्मशाला में पड़ाव डाला परन्तु सवेरा होने पर चल देता है। आठ कोस काटना बाकी है। समझ में आया? (इसी प्रकार) स्वरूप आराधन करते-करते थोड़ी कचास बाकी रह जाये, पूर्ण न हो, (इसलिए) एकाध भव धर्मशाला में आ जाये – स्वर्ग में (आ जाये)। वहाँ से निकलकर मोक्ष में जायेगा। यह सब कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पद्मप्रभमलधारिदेव सब एकभवतारी हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : वे लोकान्तिक में हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे लोकान्तिक में हों या चाहे जहाँ हों, परन्तु एकभवतारी है। समझ में आया? एक ही भव है भविष्य में। इतनी ताकत लेकर चले गये हैं। इसमें तो कहा इन्द्रपना या लोकान्तिकपना (प्राप्त करता है)।

इस प्रकार धर्मध्यान से परम्परा मोक्ष होता है... लो, भाई! यहाँ परम्परा आया। परम्परा अर्थात् क्या? कि वर्तमान धर्मध्यान में शुद्धता थोड़ी है। धर्मध्यान में फिर शुद्धता बढ़ायेगा, तब यह अशुद्धता थोड़ी घटी (नाश होगी), तब मोक्ष जायेगा। ऐसी परम्परा। समझ में आया? क्योंकि धर्मध्यान द्वारा मुक्ति-केवलज्ञान नहीं पावे, पश्चात् तो शुक्लध्यान

होगा, तब केवल(ज्ञान) पायेगा। इसलिए धर्मध्यान शुक्लध्यान का कारण है और शुक्लध्यान केवलज्ञान का कारण है, ऐसा। आहाहा! समझ में आया? परन्तु यह शुद्ध धर्मध्यान, हों! आहाहा! इसके लिये शुद्ध-शुद्ध शब्द डालते आते हैं, देखो न! '**तिरयणसुद्धा**' ओहोहो! अरे! रुचि तो करे, उसकी श्रद्धा तो करे अन्दर में। समझण को पक्की दृढ़ करे कि मार्ग यह है। दूसरा मार्ग नहीं है। लालापेठा करे ऐसा होगा और ऐसा होगा - ऐसा यहाँ नहीं चलता। ऐई! सेठ! लालापेठा को हिन्दी में क्या कहते हैं? कहते होंगे। ऐसे होंगे नरम।

मुमुक्षु : एक ही बात...

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही मार्ग है। 'एक होय तीन काल में परमारथ का पंथ।' देखो! क्या कहते हैं?

धर्मध्यान से परम्परा मोक्ष होता है... इसका अर्थ क्या? कि धर्मध्यान में थोड़ी शुद्धि है, पश्चात् विशेष शुद्धि होगी, तब मुक्ति होगी तो परम्परा कहने में आया है। समझ में आया? **तब सर्वथा निषेध क्यों करते हो?** इस काल में शुद्धता धर्मध्यान की नहीं, ऐसा सर्वथा कहो तो धर्मी जीव नहीं है। समझ में आया? और थोड़ा हो, कोई हो परन्तु शुद्धता के धर्मध्यानवाले जीव हैं और धर्मध्यान से आगे परम्परा से मुक्ति होगी। होगी, होगी और होगी ही। परम्परा मोक्ष होगा।

जो निषेध करते हैं, वे अज्ञानी मिथ्यादृष्टि हैं, उनको विषय-कषायों में स्वच्छन्द रहना है... क्योंकि राग में उसे स्वच्छन्दरूप से रहना है, उसे आत्मा का आश्रय पकड़ना नहीं है। आहाहा! समझ में आया? **उनको विषय-कषायों में स्वच्छन्द रहना है...** पर में रुके। जाओ, अपने को अन्तर्मुख ढलने की शक्ति तो है नहीं अभी। बाकी बहिर्मुख में चाहे जो करो अब। समझ में आया? **स्वच्छन्द रहना है, इसलिए इस प्रकार कहते हैं।** समझ में आया इसमें?

गाथा-७८

आगे कहते हैं कि जो इस काल में ध्यान का अभाव मानते हैं और मुनिलिंग पहिले ग्रहण कर लिया, अब उसको गौण करके पाप में प्रवृत्ति करते हैं, वे मोक्षमार्ग से च्युत हैं –

जे पावमोहियमई लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं।
पावं कुणंति पावा ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि।।७८।।

ये पापमेहितमतयः लिंगं गृहीत्वा जिनवरेन्द्राणाम्।
पापं कुर्वन्ति पापाः ते त्यक्त्वा मोक्षमार्गे।।७८।।

जो पाप-मोहित-मती लेकर लिंग को जिनवरों के।
नित पाप करते पाप हैं वे त्याज्य मुक्ति-मार्ग में।।७८।।

अर्थ – जिनकी बुद्धि पापकर्म से मोहित है, वे जिनवरेन्द्र तीर्थंकर का लिंग ग्रहण करके भी पाप करते हैं, वे पापी मोक्षमार्ग से च्युत हैं।

भावार्थ – जिन्होंने पहले निर्ग्रन्थ लिंग धारण कर लिया और पीछे ऐसी पापबुद्धि उत्पन्न हो गई कि अभी ध्यान का काल तो है नहीं, इसलिए क्यों प्रयास करें? ऐसा विचारकर पाप में प्रवृत्ति करने लग जाते हैं, वे पापी हैं, उनको मोक्षमार्ग नहीं है।।७२।।

[* इस काल में धर्मध्यान किसी को नहीं होता' किन्तु भद्र ध्यान (व्रत, भक्ति, दान, पूजादिक के शुभभाव) होते हैं। इससे ही निर्जरा और परम्परा मोक्ष माना है और इस प्रकार सातवें गुणस्थान तक भद्र ध्यान और पश्चात् ही धर्मध्यान माननेवालों ने ही श्री देवसेनाचार्यकृत 'आराधनासार' नाम देकर एक जालीग्रन्थ बनाया है उसी का उत्तर केकड़ी निवासी पण्डित श्री मिलापचन्दजी कटारिया ने 'जैन निबंध रत्नमाला' पृष्ठ ४७ से ६० में दिया है कि इस काल में धर्म ध्यान गुणस्थान ४ से ७ तक आगम में कहा है। आधार – सूत्रजी की टीकाएँ, श्री राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, सर्वार्थसिद्धि आदि।]

गाथा-७८ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो इस काल में ध्यान का अभाव मानते हैं और मुनिलिंग पहिले ग्रहण कर लिया, अब उसको गौण करके पाप में प्रवृत्ति करते हैं, वे मोक्षमार्ग से च्युत हैं :-

जे पावमोहियमई लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं।
पावं कुणंति पावा ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ।।७८।।

देखो! जिनवर का जिनकारण करके और स्वद्रव्य के आश्रय से किया नहीं और अकेले पाप में प्रवृत्ति करे। उसके अर्थ में किया है।... उसमें होगा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह नहीं।... श्लोक होगा, श्लोक...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें श्लोक है वह। संस्कृत टीका में।

अर्थ :- जिनकी बुद्धि पापकर्म से मोहित है... जिसकी पापकर्म से मूढ़ हुई बुद्धि है, **वे जिनवरेन्द्र तीर्थंकर का लिंग...** नग्न। दिगम्बर नग्न। भगवान ने दिगम्बर धारण किया था, ऐसा दिगम्बर नग्न धारण करे। **करके भी पाप करते हैं, वे पापी मोक्षमार्ग से च्युत है।**

भावार्थ :- जिन्होंने पहिले निर्ग्रन्थ लिंग धारण कर लिया और पीछे ऐसी पापबुद्धि उत्पन्न हो गयी कि अभी ध्यान का काल तो नहीं, इसलिए क्यों प्रयास करें? ऐसा विचारकर पाप में प्रवृत्ति करने लग जाते हैं... फिर चाहे जो स्वच्छन्द करना, ऐसा। समझ में आया? **पहिले निर्ग्रन्थ लिंग धार कर लिया...** दिगम्बर हुआ। **पीछे ऐसी पापबुद्धि उत्पन्न हो गयी कि अभी ध्यान का काल तो नहीं...**

मुमुक्षु : पापबुद्धि थी?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पापबुद्धि नहीं थी। निर्ग्रन्थ लिंग धारण किया, तब ऐसा नहीं

था। कुछ करूँगा। फिर जहाँ सुना कि ध्यान तो अभी नहीं। ऐसा।... **निर्ग्रन्थ लिंग धारकर लिया और पीछे ऐसी पापबुद्धि...** लिंग धारण करने के पश्चात् (विचार किया कि) धर्मध्यान नहीं है। धर्मध्यान तो है नहीं, शुद्धता तो है नहीं। अपन चाहे जैसे प्रवर्तो। ऐसा। **इसलिए क्यों प्रयास करे?** अन्तर्मुख में ध्यान में तो कैसे प्रयास करना? **ऐसा विचारकर पाप में प्रवृत्ति करने लग जाते हैं...** ऐसा। **वे पापी हैं, उनको मोक्षमार्ग नहीं है।** लो! समझ में आया?

गाथा-७९

आगे कहते हैं कि जो मोक्षमार्ग से च्युत हैं वे कैसे हैं –

जे पंचचेलसत्ता गंथग्गाही य जायणासीला।
आधाकम्मम्मि रय ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि॥७९॥

ये पंचचेलसक्ताः ग्रंथग्राहिणः याचनाशीलः।
अधः कर्मणि रताः ते त्यक्ताः मोक्षमार्गे॥७९॥

जो पंच वस्त्रासक्त परिग्रह–धारि याचन–शील हैं।
हैं लीन आधा–कर्म में वे त्याज्य मुक्ति–मार्ग में॥७९॥

अर्थ **– पंच आदि प्रकार के चेल अर्थात् वस्त्रों में आसक्त हैं, अंडज, कपासज, वल्कल, चर्मज और रोमच इस प्रकार वस्त्रों में किसी एक वस्त्र को ग्रहण करते हैं, ग्रन्थग्राही अर्थात् परिग्रह के ग्रहण करनेवाले हैं, याचनाशील अर्थात् माँगने का ही जिनका स्वभाव है और अधःकर्म अर्थात् पापकर्म में रत हैं, सदोष आहार करते हैं वे मोक्षमार्ग से च्युत हैं।**

भावार्थ **– यहाँ आशय ऐसा है कि पहिले तो निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि हो गये थे, पीछे कालदोष का विचारकर चारित्र पालने में असमर्थ हो निर्ग्रन्थ लिंग से भ्रष्ट होकर वस्त्रादिक अंगीकार कर लिये, परिग्रह रखने लगे, याचना करने लगे, अधःकर्म**

उद्देशिक आहार करने लगे उनका निषेध है, वे मोक्षमार्ग से च्युत हैं। पहिले तो भद्रबाहु स्वामी तक निर्ग्रन्थ थे। पीछे दुर्भिक्षकाल में भ्रष्ट होकर जो अर्द्धफालक कहलाने लगे उनमें से श्वेताम्बर हुए, इन्होंने इस भेष को पुष्ट करने के लिए जो सूत्र बनाये, इनमें कई कल्पित आचरण तथा इसकी साधक कथायें लिखीं। इनके सिवाय अन्य भी कई भेष बदले, इस प्रकार कालदोष से भ्रष्ट लोगों का संप्रदाय चल रहा है, यह मोक्षमार्ग नहीं है, इस प्रकार बताया है। इसलिए इन भ्रष्ट लोगों को देखकर ऐसा भी मोक्षमार्ग है, ऐसा श्रद्धान न करना।।७९।।

गाथा-७९ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो मोक्षमार्ग से च्युत है, वे कैसे हैं :- विशेष स्पष्टीकरण करते हैं।

जे पंचचेलसत्ता गंथग्गाही य जायणासीला।
आधाकम्मम्मि रय ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि।।७९।।

श्वेताम्बर की ढलक डालनी है। श्वेताम्बर ने भी पहले तो दिगम्बर का लिंग धारण किया था न? पश्चात् दुष्काल पड़ा। आयेगा अन्दर। अर्धफालक ग्रहण किया। चर्या में दृष्टि मिथ्यात्व हो गयी। स्वच्छन्द से अपनी कल्पना से शास्त्र बनाये। यह कहते हैं। ऐई! उसमें है। देखो! अर्थ।

अर्थ :- पंच आदि प्रकार के चेल अर्थात् वस्त्रों में आसक्त हैं,... मुनि को वस्त्र-फस्त्र होते नहीं। परन्तु वस्त्र का टुकड़ा रखकर फिर बहुत वस्त्र स्थापित किये। कालक्रम से **अण्डज...** अर्थात् वे अण्डे से उत्पन्न हों, वे वस्त्र। **कर्पासज, कपास से उत्पन्न हो। वल्कल,...** छाल। **चर्मज...** चमड़ा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। उसमें होता है। क्या आवे? रेशम नहीं होता? क्या कहलाता है? रेशम के कीड़े होते हैं न? मारकर फिर करे और कोई टुकड़ा करके... दो प्रकार की

होती है अभी। क्या कहलाता है वह ? ऐरंडी। भागलपुर में ऐरंडी दो प्रकार की होती है। एक तो जो जीव होते हैं, उन्हें उसमें डाल दे। जीव हों वे टुकड़े में निकल जाये। बहुत टुकड़े रह जायें। मारना न पड़े। फिर टुकड़े को...

मुमुक्षु : ... बाहर निकल जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : निकल जाये, टुकड़ा करके बाहर निकल जाये अपने आप। दो प्रकार के बनते हैं। हम गये थे न! हम भागलपुर गये थे न। भागलपुर के लोगों से बात की थी। भागलपुर। वहाँ से चम्पापुरी गये थे न हम। वासुपूज्य भगवान मोक्ष पधारे। वहाँ गये थे। संघ लेकर गये थे। हिन्दुस्तान के सब तीर्थस्थान में गये थे। वहाँ गये थे। तो वे कहते थे वहाँ। एक तो ऐसी एरंडी बनती है कि रेशम के जीव होते हैं न? अन्दर टुकड़े करके निकल जाते हैं। बहुत छोटे टुकड़े। फिर उन्हें सांधकर जैसे इस कपास में से कपड़ा बनावे न? वैसे ऐरंडी में से कपड़ा बनावे। उसे ऐरंडी कहते हैं। पहली ऐरंडी ऐसी थी। ...भाई ने दी थी। (संवत्) १९९० के वर्ष। बहुत ऊँची थी। फिर दूसरी दी थी भाई ने वीरजीभाई ने। वीरजीभाई ने। परन्तु वह सब यह सूखी। टुकड़े निकालकर निकल जाये, उसकी बनाते हैं। और जीवित की बहुत ऊँची बनती है। जीवित को मार डाले उसकी ऊँची बनती है। क्योंकि पूरा भाग होता है न? मूल्यवान। बहुत मूल्यवान। परन्तु वह नहीं चलती। जीव मारकर बनाते हैं, ऐसी चीज़ तो जैन को नहीं हो सकती।

इस प्रकार वस्त्रों में से एक वस्त्र को ग्रहण करते हैं, ग्रन्थग्राही अर्थात् परिग्रह के ग्रहण करनेवाले हैं,... लो! परिग्रह ग्रहण करे। पात्रा आदि, हों! पात्र से माँगने जाये। ....भाई! **माँगने का ही जिनका स्वभाव है और अध:कर्म अर्थात् पापकर्म में रत हैं,...** उसके लिये बनाया हुआ आहार ले। श्वेताम्बर में ऐसा आता है। द्रव्यानुयोग का ज्ञान हो तो उसके लिये बनाये हुए आहार में पाप नहीं है, ऐसा लेख है। परन्तु द्रव्यानुयोग के ज्ञान बिना साधु और समकिती होता नहीं। साधु को अध:कर्मी होता नहीं। उसके लिये बनाया हुआ... **सदोष आहार करते हैं, वे मोक्षमार्ग से च्युत हैं।** उसके लिये बनाया हुआ आहार लेता है। साधु नाम धराता है, वस्त्र पहनता है। दूसरा क्या कहा? याचनाशील है, परिग्रह अर्थात् पात्र आदि रखता है, वह सब मोक्षमार्ग से च्युत है। भगवान वीतरागमार्ग से भ्रष्ट है। ऐई! प्रकाशदासजी!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे ... नहीं होता। मुनि तो नग्न ही होते हैं।

मुमुक्षु : बस्ती में आकर साधु ... इसलिए पाप लगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यही कहते हैं। तुम्हारे लिये ... वह साधु। तुम्हारे घर में लड़का था वह ? डालचन्दजी हैं कि इनके लिये तुम्हारे कुछ करना पड़े ? नहीं। यहाँ तो पाठ देखो न, कैसे होते हैं।

साधु नाम धराकर वस्त्र रखे, पात्र रखे और माँगे। याचना करे न ? बाईस परीषह है ... बाईस परीषह में याचना परीषह है। तो याचना परीषह का अर्थ ऐसा है कि याचना नहीं और मिले, उसका नाम याचना परीषह। परन्तु माँगे और मिले, वह याचना परीषह नहीं है। वह तो भिखारी है। समझ में आया ? क्या कहा, समझ में आया ? बाईस परीषह में याचना परीषह है। परन्तु याचना परीषह का ऐसा अर्थ नहीं है कि माँगना, वह परीषह नहीं है। माँगना नहीं और मिले, उसका नाम याचना परीषह है। माँगना नहीं। सहज मिले तो ले, न मिले तो सहन करे। यह तो माँगने जाये। यह विशेष स्पष्टीकरण करेंगे भावार्थ में...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-९२, गाथा-७९ से ८२, शनिवार, भाद्र कृष्ण ४, दिनांक १९-०९-१९७०

अष्टपाहुड़, मोक्षपाहुड़ की गाथा ७९। मोक्षमार्ग के अन्दर पाँच प्रकार के वस्त्र नहीं होते उसे। ऐसा यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं)। '**पंचचेलसत्ता**' पाँच प्रकार के वस्त्र में जो आसक्त है, वह मुनि नहीं होता।

मुमुक्षु : आसक्त न हो और रखे तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : आसक्त बिना रख ही नहीं सकता। वस्त्र रखे और आसक्ति न हो, ऐसा नहीं होता। बहुत से कहते हैं, हमारे मूर्च्छा नहीं है परन्तु वस्त्र रखते हैं। ऐसा कभी नहीं होता। उपकरण बिल्कुल नहीं है। वस्त्र उपकरण है ही नहीं। इसके लिये तो गाथा ली है। लोग कहते हैं कि वस्त्र रखकर अभी चारित्र का निभाव करना। चारित्र का निभाव वस्त्र से हो सकता ही नहीं। वस्त्र रखे, वह चारित्रवन्त ही नहीं है-मुनि ही नहीं है। ऐई! प्रकाशदासजी! है, अन्दर है। देखो! बहुत घूंटकर आये हैं न वहाँ से सुनकर। क्या कहते हैं? देखो!

भावार्थ :- यहाँ आशय ऐसा है कि पहिले तो निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि हो गये थे,... साधु हो। श्वेताम्बर हुए, उसके पहले तो दिगम्बर मुनि थे। **पीछे कालदोष का विचारकर चारित्र पालने में असमर्थ हो...** दुष्काल पड़ा। चारित्र पालने को शक्ति न रही। **निर्ग्रन्थ लिंग से भ्रष्ट होकर...** दिगम्बर लिंग अनादि का था, वह लिया था, दिगम्बरपना नग्न। बारह (वर्ष का) दुष्काल पड़ा तो वस्त्र का टुकड़ा रखा पहला अर्धफालिक। उसमें से यह श्वेताम्बरमत (निकला)। कठिन बात है, भाई! ऐई! देखो! **निर्ग्रन्थ लिंग से भ्रष्ट होकर वस्त्रादि अंगीकार कर लिये,...** मुनि को वस्त्र तीन काल में हो ही नहीं सकते। वस्त्र रखे, वह मुनि होता ही नहीं। जिसे वस्त्र का ऐसा ममताभाव है, उसे मुनिपना हो सकता ही नहीं। वस्तु की स्थिति ऐसी है। समझ में आया? **परिग्रह रखने लगे,...** पात्र रखने लगे। **याचना करने लगे,...** पात्र लेकर जाये तो माँगे। यह मार्ग भगवान का नहीं है।

मुमुक्षु : माँगते हैं, कहाँ सूझता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इसका अर्थ क्या हुआ? सूझता है वह। सूझता है या नहीं?

ऐसा कहते हैं न ? तो वह माँगा कहलाये। माँगने का कोई बाप होगा दूसरा ? सूझता समझे ? सूझता अर्थात् निर्दोष। निर्दोष आहार है ? वैसे श्वेताम्बर साधु पूछे। निर्दोष है ? ऐसा पूछे। तो इसका अर्थ क्या हुआ ? माँगा। माँगा वह तो भिखारी हुआ। मार्ग तो पूरा फेरफार हो गया। यह भी सच्चा और यह भी सच्चा, (ऐसा) वीतराग मार्ग में दो नहीं रहते। ऐई !

मुमुक्षु : एक सोलह आने सच्चा और एक चौदह आने।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक-एक प्रतिशत खोटा। बात यह है। जो निर्ग्रन्थ मार्ग से भ्रष्ट होकर पश्चात् शास्त्र रचे, पश्चात् मिथ्यात्व से रचे, भाई ! कठिन पड़े ऐसा है। मार्ग पूरा दूसरा है। उसे ऐसा लगे कि यह पक्ष की बात करते हैं। पक्ष नहीं, वस्तु का स्वरूप ऐसा है। ऐई ! देखो ! है ?

याचना करने लगे... माँगना सूझता है ? आहार दोगे ? ऐसा कहते हैं न ? हमने तो सब किया है न। खबर है। गाँव में जायें तो वहाँ हो किसान और भाई ऐसे। वहाँ तो जाकर ऐसा कहे कि आहार बहोराओगे ? ऐसा कहे। बहोराओगे ऐसा कहे। यह माँगा कहलाये या क्या हुआ यह ? यह मुनि की पद्धति ही नहीं है।

मुमुक्षु : धर्मलाभ कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा ? धर्मलाभ कहे तो वह उसका बाप हुआ। धर्मलाभ। हमें दो तो धर्म होगा, दो। यह तो याचना की। उसने किया है न यह ? भिखारी है। धर्मलाभ कैसा ? मुनि तो उदास होते हैं। दिगम्बर मुनि उदास चले जाते हैं। उसमें पुष्ट है तिष्ठ तिष्ठ, देखो कहते हैं निर्दोष आहार।

मुमुक्षु : भावलिंग में से भ्रष्ट या द्रव्यलिंग में से ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव और द्रव्य दोनों में से। ... क्या है ? भावलिंग भी भ्रष्ट और द्रव्यलिंग भी भ्रष्ट। यह आता है, देखो !

अधःकर्म औद्देशिक आहार करने लगे... उनके लिये आहार-पानी हो, बनाया हो पानी किसी ने किया हो। **उनका निषेध है, वे मोक्षमार्ग से च्युत हैं। पहिले तो भद्रबाहु स्वामी तक निर्ग्रन्थ थे।** देखो ! भद्रबाहुस्वामी निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि भावलिंगी थे। **पीछे दुर्भिक्षकाल में भ्रष्ट होकर जो अर्द्धफालक कहलाने लगे...** बाद के साधु। **दुर्भिक्षकाल**

में भ्रष्ट होकर जो अर्द्धफालक... देखो! कपड़े का आधा टुकड़ा रखा, टुकडा। कपड़े का थोड़ा टुकड़ा। बस, इतना। **अर्द्धफालक कहलाने लगे, उनमें से श्वेताम्बर हुए,...** पश्चात् यह श्वेताम्बर हुए। स्थानकवासी तो अभी निकले हैं। वे तो पहले थे ही कहाँ? यह श्वेताम्बर जो है, ये उसमें से निकले हैं। **इन्होंने इस वेश को पुष्ट करने के लिये सूत्र बनाये,...** देखो! सूत्र बनाये, उसमें मुनि को इतने कपड़े चलते हैं, इतने पात्र चलते हैं (ऐसा लिखा)।

मुमुक्षु : टुकड़े लगाते थे?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले टुकड़ा रखते थे। अर्धफालक। उसमें से श्वेताम्बर हुए। हमारे नहीं चलता।

मुमुक्षु : शिथिलाचार बढ़ने लगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : शिथिलाचार। दृष्टि विपरीत हो गयी। ऐसा आचार पोषे कहाँ से? मार्ग ऐसा है, भाई! सम्प्रदाय को ठीक नहीं लगता, लगता, उसके साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। एक व्यक्ति लिखता है कि तुम ऐसा कहते हो कि वस्त्र रखे तो मुनि नहीं। तो एक पूरी दीवार गिर जायेगी। क्या कहलाता है वह? दीवाल आड़ी। एक पूरा अंग है श्वेताम्बर जैन का, उनकी दीवाल गिर जायेगी। तुमको नहीं मानेंगे, नहीं सुनेंगे। ऐसे स्वतन्त्र हैं न सुने तो। यहाँ हमारे क्या? सुने कौन? जिसकी गरज हो वह सुने नहीं? समझ में आया?

मुमुक्षु : दो भद्रबाहु थे?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। भद्रबाहु तो अन्तिम एक ही थे। उसमें से फिर साधु हुए, उसमें से वे भ्रष्ट हो गये।

मुमुक्षु : ... कहा कि दो भद्रबाहु...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पहले भद्रबाहु पुराने। यह भद्रबाहु अन्त में। अन्तिम की बात है।

इन्होंने इस वेश को पुष्ट करने के लिये सूत्र बनाये,... जरा सूक्ष्म बात है। श्वेताम्बर पन्थ निकला, उसमें शास्त्र रचे। उसमें इतने वस्त्र चलते हैं, इतने पात्र चलते हैं, ऐसा लिखा, वह सब कल्पित है। ऐई! छोटाभाई!

मुमुक्षु : यह तो उन्होंने लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है। यह तो आचारांग में है। परन्तु साधारण मार्ग यह है।

मुमुक्षु : वह तो कालदोष से यह है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कालदोष से। यही कहते हैं न? कालदोष से भी भ्रष्ट हुए, उनकी दृष्टि विपरीत होकर? काल के कारण हुई? उसका कारण निमित्त से कहते हैं। ऐसा कि कालदोष के कारण से भ्रष्ट हुए। भाव के कारण से भ्रष्ट हुए। काल तो निमित्त है। ऐसी परम्परा अनादि सनातन मार्ग चला आया है। अनादि वीतराग दिगम्बर मार्ग है, कोई नया नहीं है। महाविदेहक्षेत्र में अकेला दिगम्बर मार्ग है, निर्ग्रन्थ मार्ग है, दूसरा कोई मार्ग है ही नहीं।

मुमुक्षु : पंचम काल चलता होगा...

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल के लिये ही कहते हैं। भ्रष्ट हुए। और नये शास्त्र रचे, उनमें कल्पित रचकर इतने वस्त्र हमको चलते हैं, इतने पात्र चलते हैं और एक डण्डा चलता है, यह सब....

मुमुक्षु : निभाने के लिये कोई वस्तु चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : निभाव का अर्थ क्या? किसका निभाव? शरीर का निभाव या चारित्र का निभाव? मार्ग तो ऐसा है, भाई! आचार्य स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। पंचशील सत्ता। पाँच प्रकार के वस्त्र में आसक्ति रखे, वह मुनि नहीं है। ऐई! चन्द्रकान्तजी! समझ में आया? देखो!

इनमें कंई कल्पित आचरण... सब कल्पित आचरण बनाये। ऐसा चलता है, नहीं चलता, निषित और व्यवहार और वेदकल्प इतना सब लेखन। यह हमने मुखाग्र-कण्ठस्थ किया था। वह मार्ग वीतराग का नहीं है। ऐई! बखाई! एक सेठ थे वहाँ? वह अब फिर लूला हो गया। कहो, समझ में आया? स्थानकवासी तो अभी श्वेताम्बर में से मन्दिरमार्गी में से निकले हैं। वे तो अधिक भ्रष्ट हुए। उसमें और यह तुलसी निकले, वे अधिक भ्रष्ट हुए। एक के बाद एक भ्रष्ट होते गये, ऐसे निकलते गये।

मुमुक्षु : एक के बाद एक हम सुधार करते गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह मानो कि सुधार करो ऐसा माने। माने अज्ञानी तो माने न।

मुमुक्षु : क्रिया उद्धारक।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रिया उद्धारक। समकित उद्धारक नहीं न ? समकित की शुद्धि उसकी तो नहीं न ? मिथ्यात्व की चाहे जो क्रिया करो, उसमें क्या ? मार्ग ऐसा है। लोगों को कठिन पड़े या न पड़े। निर्ग्रन्थ दिगम्बर सन्त, भावलिंग समकित सहित छठा गुणस्थान, उसे वस्त्र का एक डोरा भी नहीं होता। तीन काल-तीन लोक में ऐसा एक मार्ग है।

मुमुक्षु : श्वेताम्बर निकले हुए कितने वर्ष हुए ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दो हजार वर्ष। दो हजार वर्ष पहले दुर्भिक्षकाल पड़ा था। उसमें से यह निकला। यह कहा न ? दुर्भिक्ष में। **दुर्भिक्षकाल में भ्रष्ट होकर...** ऐसा लिखा है न ? बराबर लिखा है। **अर्द्धफालक कहलाने लगे, उनमें से श्वेताम्बर हुए, इन्होंने इस वेश को पुष्ट करने के लिये सूत्र बनाये, इनमें कई कल्पित आचरण...** यह चलता है, ऐसा नहीं चलता, पात्र ऐसे लेना, ऐसे रखना, वस्त्र को ऐसे धोना, पात्र को ऐसे रंगना, ऐसा बहुत लेख शास्त्र में। सब कल्पित। वीतराग मार्ग का यह मार्ग नहीं है।

मुमुक्षु : अर्धफालक निकला...

पूज्य गुरुदेवश्री : पहला अर्धफालक, पश्चात् उसमें से यह श्वेताम्बर। यह पहले कहा न वह ? एकदम नग्न न रह सके, (इसलिए) थोड़ा रखा। फिर कहे अपने तो अब रखना चाहिए। समझ में आया ? दो-तीन जगह आता है उसमें। तीन जगह। ४६ पृष्ठ, ३७६ पृष्ठ। अर्धफालक का सब जगह। बहुत अच्छा लिखा है। वस्तु ऐसी ही हुई है। समझ में आया ? पृष्ठ ४६ और पृष्ठ ३७६ दो जगह यह का यह आता है।

इनमें कई कल्पित आचरण तथा इनकी साधक कथायें लिखी। धर्मरुचि अणगार पात्र लेकर आहार लेने गये, नागेश्री सब्जी डाली, कड़वी तुम्बी की, वह सब कल्पित। पात्र ही मुनि को होते नहीं, फिर और प्रश्न कहाँ ? गप्प ही गप्प।

मुमुक्षु : गणधरदेव भी पात्र लेकर जाते।

पूज्य गुरुदेवश्री : खोटी कथा बनायी। गणधर पात्र लेकर आहार लेने गाँव में गये। आणन्दजी के पास गये और कहे, मुझे तो अवधिज्ञान हुआ। नहीं, ऐसा नहीं होता। तब प्रायश्चित लो। सच्चे का प्रायश्चित या खोटे का? वह आणन्दजी श्रावक कहे। पश्चात् भगवान के पास गये। आहार का पात्र ... ... यह भिखारी जैसा होगा? मुनिमार्ग ऐसा होगा? भिखारी जैसा लगे हाथ में लेकर ऐसे चले।

मुमुक्षु : हाथ में लेकर गये उसमें क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : भिखारी है, वह तो रंक जैसा है। इतना पानी भरे और भार लावे इतना। ऐई! चेतनजी! मुनि तो निर्ग्रन्थ होता है, जैसा माता से जन्मा। मात्र एक मोरपिच्छी, कमण्डल, पुस्तक बस बाकी हो नहीं सकता। मार्ग तीन काल-तीन लोक में एक सत्य यह है। उसमें कुछ भी शंका को स्थान नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : चश्मा तो रखे?

पूज्य गुरुदेवश्री : चश्मा भी नहीं होता। मुनि को चश्मा होगा? वह तो परिग्रह है। वह परिग्रह है। चश्मा परिग्रह है। ऐई! सेठ!

मुमुक्षु : मुनि की आँख खराब हो जाये तो समाधिमरण करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कि आँख से न सूझे तो समाधिमरण करे। मार्ग किसका है? मार्ग ऐसा है। यह तो सिंह का मार्ग है। यह कहीं सियालिया का मार्ग है? सियाल को क्या कहते हैं, समझे? सियाल... सियाल होता है न? जंगल में सियाल होता है। ऐं... ऐं... करे शाम को। सियाल-सियाल नहीं कहते तुम्हारे? जानवर। सियाल मार्ग नहीं, सिंह मार्ग है। आहाहा! आठ-आठ वर्ष के राजकुमार भी निकाल जाते थे। छोटी मोरपिच्छी, कमण्डल, नग्न दिगम्बर जंगल वनवास। मार्ग तो यह वह कहीं सिंह का मार्ग है या बनिया के टें... टें... करे, उसका मार्ग है? समझ में आया? हमारे सेठ कहते हैं कि कालभ्रष्ट... क्या कहा? कालदोष से हुआ। परन्तु कालदोष का अर्थ, इसने दोष किया, इसलिए कालदोष कहने में आया।

मुमुक्षु : कालदोष चल रहा है, रिकॉर्ड में सब उतरता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भले उतरे, परन्तु यहाँ अन्दर है न! यह अधिकार है या क्या है?

अन्दर है, वह तो कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं फरमाते हैं। यह कहाँ गुप्त रखी हुई चिट्ठी है?

कल्पित आचरण तथा इनकी साधक कथायें लिखी। इनके अतिरिक्त अन्य भी कई वेश बदले,... लो! फिर यह ढूँढिया का वेश बदला बाद में यह। और तेरापन्थी ने बदला, और यह मुँहपत्ती आयी और अमुक-अमुक कुछ बदले। **इस प्रकार कालदोष से भ्रष्ट लोगों का सम्प्रदाय चल रहा है, यह मोक्षमार्ग नहीं है,...** समझ में आया? **इस प्रकार बताया है।** इस गाथा में ऐसा बतलाया है। ऐसा है, बापू!

इसलिए इन भ्रष्ट लोगों को देखकर ऐसा भी मोक्षमार्ग है, ऐसा श्रद्धान न करना। ऐसी श्रद्धा नहीं करना कि यह भी एक जैन का मार्ग है। कहो, समझ में आया?

गाथा-८०

आगे कहते हैं कि मोक्षमार्गी तो ऐसे मुनि हैं –

णिग्गंथमोहमुक्का बावीसपरीसहा जियकसाया।
पावारंभविमुक्का ते गहिया मोक्खमग्गम्मि ।।८०।।

निर्ग्रन्थाः मोहमुक्ताः द्वाविंशतिपरीषहाः जितकषायाः।
पापारंभविमुक्ताः ते गृहीताः मोक्षमार्गे ।।८०।।

निर्मोह विजित-कषाय-बाइस परीषह निर्ग्रन्थ हैं।
वे मुक्त-पापारम्भ हैं गृहणीय मुक्ति-मार्ग में।।८०।।

अर्थ **– जो मुनि निर्ग्रन्थ हैं, परिग्रह रहित हैं, मोहरहित हैं जिनके किसी भी परद्रव्य से ममत्वभाव नहीं है, जो बाईस परीषहों को सहते हैं, जिन्होंने क्रोधादि कषायों को जीत लिया है और पापारंभ से रहित हैं। गृहस्थ के करने योग्य आरंभादिक पापों में नहीं प्रवर्तते हैं, ऐसे मुनियों को मोक्षमार्ग में ग्रहण किया है अर्थात् माने हैं। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में समंतभद्राचार्य ने भी कहा है कि – ''विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः। ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्तते ।।८०।।**

भावार्थ – **मुनि हैं वे लौकिक कष्टों और कार्यों से रहित हैं। जैसा जिनेश्वरदेव ने मोक्षमार्ग बाह्य अभ्यंतर परिग्रह से रहित नग्न दिगम्बररूप कहा है वैसे ही प्रवर्तते हैं, वे ही मोक्षमार्गी हैं, अन्य मोक्षमार्गी नहीं हैं।।८०।।**

गाथा–८० पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि मोक्षमार्गी तो ऐसे मुनि होते हैं :-

णिग्गंथमोहमुक्का बावीसपरीसहा जियकसाया।
पावारंभविमुक्का ते गहिया मोक्खमग्गम्मि ।।८०।।

लो! वे मोक्षमार्ग से भ्रष्ट थे। '**चत्ता मोक्खमग्गम्मि**' थे। यह मोक्षमार्ग में रहे हुए मुनि ऐसे होते हैं। पहले कैसा स्वरूप है देव का, गुरु का, शास्त्र का, उसे जानना पड़ेगा या नहीं? ऐसे का ऐसा अन्ध–अन्ध चले?

अर्थ :- जो मुनि निर्ग्रन्थ है,... देखो! परिग्रह नहीं। एक टुकड़ा भी वस्त्र का नहीं। नग्न दिगम्बर जैसा माता से जन्मा। वैराग्य की मूर्ति। और **मोह रहित हैं,...** मिथ्यात्व बिल्कुल नहीं। स्वरूप में सावधान... सावधान... सावधान। आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में बहुत सावधान, बहुत सावधान। **जिनके किसी भी परद्रव्य से ममत्वभाव नहीं है,...** बिल्कुल परद्रव्य मेरे हैं, ऐसी ममता उन्हें नहीं है। मेरा तो स्वद्रव्य चैतन्य है। मेरा स्वद्रव्य चैतन्य भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, वह मैं हूँ। इसके अतिरिक्त कोई चीज़ मेरी है ही नहीं। आहाहा!

जो बाईस परीषहों को सहते हैं,... क्षुधा, तृषा शान्ति से सहन करना। शान्ति से, हों! कष्ट से नहीं। कष्ट से सहन करना, वह तो आर्तध्यान है। ज्ञाता–दृष्टा रहकर परीषह को सहन करना, प्रतिकूलता को। सदी–गर्मी में आनन्द में रहते हैं। मुनि तो आत्मा के आनन्द के उग्र स्वाद में स्थित हैं। उन्हें प्रतिकूलता का कोई दु:ख नहीं है। आहाहा! देखो! मार्ग यह है। समझ में आया? **जिन्होंने क्रोधादि कषायों को जीत लिया है...** क्रोध, मान, माया, लोभ जीत लिये हैं। उन्हें क्रोध, मान, माया होते नहीं। अविकारी स्वभाव वीतरागमूर्ति।

निर्ग्रन्थ लिंग और वीतरागभाव अन्दर। ऐसा मुनिपना वीतरागमार्ग में है। ऐसा मार्ग कहीं अन्यत्र वीतराग के अतिरिक्त नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : कषाय....

पूज्य गुरुदेवश्री : कष-संसार। आय-लाभ। क्रोध, मान, माया, लोभ को कषाय कहते हैं, कषाय। कष अर्थात् संसार, आय अर्थात् लाभ। जिससे भटकने का लाभ मिले, उसका नाम कषाय। क्रोध, मान, माया, लोभ को कषाय कहते हैं। कष अर्थात् संसार, आय अर्थात् लाभ। जिससे भटकने का लाभ मिले। वे कसाई नहीं। यह स्वयं कषायभाव। राग-द्वेष। राग के दो भाग—माया और लोभ, द्वेष के दो भाग—क्रोध और मान। राग-द्वेषभाव, वह कषायभाव है, जिससे मलिनता से दुःख उत्पन्न होता है और संसार में भटकना पड़ता है। समझ में आया?

और पापारम्भ से रहित हैं, गृहस्थ के करनेयोग्य आरम्भादिक पापों में नहीं प्रवर्तते हैं... मुनि को कोई दूसरे मकान बनाना, अमुक करना, ऐसा नहीं होता। आरम्भ से-पाप से अत्यन्त निवृत्ति है। किसी का सम्बन्ध करा दे। सगपण को क्या कहते हैं? सगाई। यह अच्छा लड़का है, तुम भी अच्छे हो तो करो। मुनि को होता नहीं। उसमें महापाप है। ऐसी वृत्ति नहीं होती, ऐसे भाव मुनि को नहीं होते। मुनि किसे कहते हैं? परमेश्वर पद में सम्मिलित हुए हैं। **गृहस्थ के करनेयोग्य आरम्भादिक पाप...** वे करते नहीं। **ऐसे मुनियों को मोक्षमार्ग में ग्रहण किया है...** लो, ऐसे मुनि को मोक्षमार्ग में कहा गया है। समझ में आया?

भावार्थ :- मुनि हैं, वे लौकिक कष्टों और कार्यों से रहित हैं। लौकिक कष्ट तो कोई है ही नहीं उन्हें। समझ में आया? लौकिक कार्य। कार्य से रहित है उसमें कष्ट लिया है। लिखा है उसमें? सुधारा है। लौकिक कार्य से रहित हैं। परन्तु वह लौकिक कार्य सब कष्ट ही है न। **जैसा जिनेश्वर ने मोक्षमार्ग बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह से रहित...**

मुमुक्षु : लौकिक कष्ट... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कार्य लिखना।

लौकिक कार्य नहीं करते। मकान बनाना, ऐसी पुस्तक बनाओ, रचो, ऐसा करो,

विवाह करो, विवाह करो, सगाई करो, व्यापार ऐसा करो, ऐसे भाव नहीं होते। वह तो पापभाव है। ऐसे कार्य से रहित है।

जैसा जिनेश्वर ने मोक्षमार्ग... कहा। परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा मोक्षमार्ग **बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह से रहित...** देखो! दोनों। बाह्य में वस्त्रादि नहीं और अभ्यन्तर में राग नहीं। आनन्दमूर्ति भगवान आत्मा, मुनि तो उसमें लीन रहते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन, उसमें राग नहीं है। बाह्यलिंग में परिग्रह भी नहीं, ऐसा मार्ग है। कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं। अब दूसरे कोई कहे कि इसमें वस्त्रसहित रहे, अमुक हो, अमुक हो, ऐसा कुछ मानने में आवे? थोड़े वस्त्रसहित हो तो निभाव करना चारित्र का। मुनि को हो ही नहीं सकता। मार्ग तो ऐसा है। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। जहाँ वीतरागता अन्तर (प्रगट हुई)... आहाहा! तीन कषाय का अभाव होकर वीतरागता प्रगट हुई, वह तो अलौकिक! उसकी दशा भी अलौकिक, बाह्यलिंग भी अलौकिक! ऐसा मार्ग सनातन वीतरागमार्ग में चला आता है। समझ में आया? उससे भ्रष्ट होकर दूसरा माने (तो) मिथ्यात्व लगेगा। ऐई! देवानुप्रिया! प्रकाशदासजी! यह तो सब माना था वे बत्तीस सच्चे, अमुक-अमुक सब पक्का करके आये थे। मार्ग ऐसा है, भाई! मार्ग ऐसा है, भगवान! समझ में आया?

नग्न दिगम्बररूप कहा है... भगवान ने तो। नग्न दिगम्बररूप मोक्षमार्ग में तो परमात्मा ने कहा है। अनादि तीर्थंकरों ने (यह कहा है)। समझ में आया, उसमें वस्त्र रखकर मुनिपना मनवाया, वह शास्त्र ही झूठे हैं। शास्त्र ही खोटे। शास्त्र के करनेवाले की दृष्टि मिथ्यात्व है। मिथ्यादृष्टि के किये हुए शास्त्र हैं। आहाहा! गजब बात! ... सम्प्रदाय बाँधा हुआ है न। दो भाग पड़ गये। श्वेताम्बर थे, उसमें से स्थानकवासी (निकले)। और उसमें से यह तुलसी (निकले)। वे गये? पावागढ़वाले तलकचन्दभाई? गये होंगे। बेचारे शाम को कहते थे। ऐसा है, वैसा है। वाडा में रहकर भारी कठिन काम। गये होंगे। समयसार पुस्तक ले गये हैं। आते हैं, यहाँ बारम्बार आते हैं।

मुमुक्षु : ... भाई आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे नहीं। एक नवलचन्दभाई हैं। कालावडवाले। कालावड।

मुमुक्षु : यहाँ के मुमुक्षु हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं आते हैं इतना। आते हैं इतना कहा। आते हैं, सुनते हैं, सुहाता है। परन्तु वापस पुराना हो वहाँ उसके पास जाये। वे और कहे कि भाई! पाप से तो हम छूटे हैं। भले शुद्धभाव न हो। पाप से छूटे नहीं। मिथ्यात्व का पाप बड़ा है। उसमें गृहीतमिथ्यात्व की पुष्टि करते हैं। देव-गुरु-शास्त्र का स्वरूप है, उससे विरुद्ध मानते हैं तो उसमें पाप से कहाँ बचे? मिथ्यात्व को पोसते हैं। समझ में आया? कामदार क्या है यह? यह कठिन लगे। चितलवाले को कठिन लगे। ऐई! छोटाभाई! इनके सब कुटुम्बियों को।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ से बोले। यह तो बात ऐसी है। सबको चैन पड़े, ऐसी बात यह तो सत्य बात यह है। आहाहा! धन्य मार्ग!

स्वरूप की दृष्टि होने के पश्चात् स्वरूप में लीनता जम जाये। आनन्द में सच्चिदानन्द प्रभु में लीन हो जाये, तब उसे आनन्द इतना अतीन्द्रिय (आनन्द) आवे कि जिसे वस्त्र-पात्र लेने की वृत्ति ही नहीं होती। ऐसी दशा को मुनिपना कहते हैं, भाई! समझ में आया? न हो, उसे मानना और हो, उसे न मानना—ऐसा कहीं बने? निर्ग्रन्थ दिगम्बर... कुन्दकुन्दाचार्य खुलेआम मोक्षमार्ग में लिखते हैं, फिर इसमें प्रश्न कहाँ? यहाँ कहाँ गुप्त रखा है? पाँच प्रकार के वस्त्र में से एक धागा भी वस्त्र का रखे, दर्शनपाहुड़ में आ गया, सूत्रपाहुड़ में, एक धागा... ताणा समझते हो न? धागा... धागा। एक धागा रखे तो भी निगोद में जायेगा। स्पष्ट बात है। इसमें कहीं ढांकपछेड़ो नहीं है।

मुमुक्षु : दिगम्बर में भी तौलिया वगैरह रखने लगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : रखते हैं। खबर है। रखते हैं। और वस्त्र रखते हैं। ऊपर ... रखे। खबर है। मार्ग नहीं है। भगवान! न पालन कर सके तो जैसा हो, वैसा समझना, मानना। परन्तु ऐसी गड़बड़ करना नहीं कि नहीं... नहीं... ऐसा भी है, ऐसा भी है। ऐसा नहीं चलता। समझ में आया? यह कहते हैं कि हम अब आत्मा की बात करते हैं। यहाँ का सुनकर कितने ही 'आत्मधर्म' रखते हैं। पढ़ते हैं और फिर उसमें से पुस्तक बनाते हैं। ज्ञान ऐसा हो। अब तेरे ज्ञान कहाँ से आया? गृहीतमिथ्यात्व में पड़ा है न! ऐई!

मुमुक्षु : पुस्तक ... बनाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत से बनाते हैं। अभी तो यहाँ का पढ़-पढ़कर कितना ही बनाते हैं। समझ में आया?

जब तक उसकी श्रद्धा में वस्त्र-पात्र रखनेवालों को मुनि माने, तब तक उसकी मिथ्यादृष्टि टलेगी नहीं। मुनि नहीं है। समझ में आया? साधु नहीं, आचार्य नहीं, उपाध्याय नहीं। ब्रह्मचारी हो सकता है। समझ में आया? परन्तु मुनि नाम धराना और ऐसा करना, वीतराग तो ... निगोद में जायेगा एक-दो भव करके। समकिती गृहस्थाश्रम में हो, आराधक होकर एकावतारी होकर मोक्ष जायेगा। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में यह गाथा आयी न? ...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : गृहस्थ हो और सम्यग्दृष्टि हो-धर्मी हो तो मोक्षमार्गी है। और मोहवाला अणगार मिथ्यादृष्टि संसार में रहेगा। नग्न हो तो भी, हों! वह मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! भारी बहुत भगवानजीभाई कठिन। कठिन अर्थात् इसे समझने में कठिन पड़े, ऐसा। ऐसा बैठाना... आहाहा! भगवानजीभाई! जति-बति कहाँ रहे तुम्हारे वे वहाँ? परन्तु तब कोई नहीं था तो क्या करे? हें! लो, आहाहा!

इसलिए इन भ्रष्ट लोगों को देखकर ऐसा भी मोक्षमार्ग है - ऐसा श्रद्धान न करना। ऐसे भी मोक्षमार्गी होते हैं, अभी पंचम काल है तो चारित्र निर्वाह करने को थोड़े वस्त्र रखे। नहीं, बिल्कुल नहीं। वह मोक्षमार्ग नहीं है। उसकी श्रद्धा छोड़ देना। कहो, समझ में आया? भीखाभाई! यह तुम्हारे कठिन पड़े, ऐसा सब वहाँ 'चित्तल' में। बड़ा कुटुम्ब, सब फंस गये। यहाँ तो कहते हैं, **नग्न दिगम्बररूप कहा है...** लो! **बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रह से रहित नग्न दिगम्बररूप कहा है, वैसे ही प्रवर्तते हैं, वे ही मोक्षमार्ग है, अन्य मोक्षमार्गी नहीं है।**

मुमुक्षु : गृहस्थ से अच्छे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : गृहस्थ से अच्छे। छाछ से बिगड़ा हुआ दूध जाता है। छाछ होती है न? छाछ और रोटी चलती है। छाछ समझते हो? मठ्ठा-मठ्ठा। छाछ ठीक हो तो रोटी

चलती है। परन्तु बिगड़ा हुआ दूध हो तो मार डालता है। इसी प्रकार साधु होकर बिगड़ा हुआ दूध है मिथ्यादृष्टि।

मुमुक्षु : दूध फट जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिगड़ा हुआ। यह दूध बिगड़ जाता है न? फट जाता है। वह तो छाछ से भी गया-बीता है। छाछ में तो रोटी भी चलती है। बिगड़े हुए दूध में नहीं चलती। ऐई!

गाथा-८१

आगे फिर मोक्षमार्गी की प्रवृत्ति कहते हैं –

उड्ढद्धमज्झलोये केई मज्झं ण अहयमेगागी।
इय भावणाए जोई पावंति हु सासयं सोक्खं।।८१।।

ऊर्ध्वाधोमध्यलोके केचित् मम न अहममेकाकी।
इति भावनया योगिनः प्राप्नुवंति स्फुटं शाश्वतं सौख्यम्।।८१।।

त्रय लोक में एकाकी मैं कोई यहाँ मेरा नहीं।
इस भावना से योगि पाते शाश्वत शिव-सौख्य ही।।८१।।

अर्थ – मुनि ऐसी भावना करे – ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोक इन तीनों लोकों में मेरा कोई भी नहीं है, मैं एकाकी आत्मा हूँ, ऐसी भावना से योगी मुनि प्रकटरूप से शाश्वत सुख को प्राप्त करता है।

भावार्थ – मुनि ऐसी भावना करे कि त्रिलोक में जीव एकाकी है, इसका संबंधी दूसरा कोई नहीं है, यह परमार्थरूप एकत्व भावना है। जिस मुनि के ऐसी भावना निरन्तर रहती है, वही मोक्षमार्गी है, जो भेष लेकर भी लौकिकजनों से लाल पाल रखता है, वह मोक्षमार्गी नहीं है।।८१।।

गाथा-८१ पर प्रवचन

आगे फिर मोक्षमार्गी की प्रवृत्ति कहते हैं :- ८१।

उड्ढद्धमज्झलोये केई मज्झं ण अहयमेगागी।
इय भावणाए जोई पावंति हु सासयं सोक्खं॥८१॥

अर्थ :- मुनि ऐसी भावना करे—ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोक इन तीनों लोकों में मेरा कोई भी नहीं है,... मैं तो आनन्द ज्ञानस्वरूप हूँ, वह मैं हूँ। बाकी दूसरी तीन लोक में मेरी कोई चीज़ है नहीं। मेरा स्वभाव वीतराग ज्ञानानन्द आत्मा, इसके अतिरिक्त राग का कण और रजकण पूरी दुनिया तीन लोक में मेरी कोई चीज़ नहीं है। समझ में आया? **मैं एकाकी आत्मा हूँ,...** पहले नहीं, ऐसा कहा। अब अस्ति से कहते हैं। **मैं एकाकी आत्मा हूँ,...** अकेला आत्मा। आनन्द और ज्ञान का भण्डार मैं आत्मा चैतन्यमूर्ति सच्चिदानन्द स्वरूप, वह मैं हूँ। इसके अतिरिक्त राग, दया, दान, विकल्प और शरीर रजकण तीन लोक में कोई मेरी चीज़ नहीं है। तीन लोक में भगवान तीर्थंकर भी आये, सिद्ध आये। वे भी मेरे नहीं हैं। समझ में आया? यह अनन्त सिद्ध भगवान तीन लोक में आये। ऊर्ध्वलोक में आये न भगवान? मध्यलोक में तीर्थंकर, लाखों केवली (आ गये)। मेरी कोई चीज़ तीन लोक में मेरे आत्मा के अतिरिक्त कुछ है नहीं। ऐसी मुनि को अनुभवदृष्टि होती है, तदुपरान्त निर्ममत्वदशा होती है। चारित्र की बात है न विशेष। आहा! मोक्षपाहुड़ है न। मोक्षसार। मोक्षसार-मोक्ष का प्राभृत। यह अधिकार मोक्ष का उपाय है। सार-सार। समयसार कहते हैं न? समय प्राभृत।

ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोक इन तीनों लोकों में मेरा कोई भी नहीं है, मैं एकाकी आत्मा हूँ,... 'अहयमेगागी' है न? मैं तो अकेला चैतन्यस्वरूप, ज्ञान और आनन्द का सागर, वह मैं। इसके अतिरिक्त मेरी कोई चीज़ जगत में है नहीं। समकिती भी ऐसा मानता है। परन्तु मुनि को तो निर्ममत्व चारित्रदशा उग्र है। समझ में आया? समकिती ऐसा मानता है कि आत्मा के अतिरिक्त मेरी कोई चीज़ है नहीं। परन्तु अभी अस्थिरता है, वहाँ राग की। राग-द्वेष के परिणाम अस्थिरता है। मुनि को वे नहीं हैं। चारित्र में राग का कण भी मेरा नहीं है। पंच महाव्रत के विकल्प उठे, वे मेरे नहीं है। समझ में आया?

मुनि परमेश्वर पद। णमो लोए सव्व साहूणं। गणधर जिसे नमस्कार करे। समझ में आया? यह बाद में आयेगा। '**देवगुरूणं भत्ता**' मुनि धर्मात्मा सच्चे देव-गुरु के भक्त होते हैं। सच्चे सन्त-मुनि और सच्चे केवली के मुनि भक्त होते हैं, यह ८२ में कहेंगे। समझ में आया? वे अज्ञानी के भक्त नहीं होते, जिसे-तिसे मानना। देवी और देवला, अम्बाजी और माताजी और अमुक। समझ में आया?

ऐसी भावना से योगी मुनि प्रकटरूप से शाश्वत सुख को प्राप्त करता है। लो! आत्मा आनन्दस्वरूप परमात्मा स्वयं निज स्वरूप है, ऐसी दृष्टि और स्थिरता में लीनता से उसे पूर्ण आनन्दरूपी मोक्ष की प्राप्ति होती है। बाकी कोई दूसरा उपाय नहीं है। मोक्षपाहुड़ है न। **ऐसी भावना से योगी...** योगी अर्थात् स्वरूप में लीन होनेवाला। योग अर्थात् जुड़ान। चिदानन्द भगवान ध्रुव चिदानन्द में जुड़ान होकर। जुड़ान समझते हो न? एकाग्र। **मुनि प्रकटरूप से शाश्वत् सुख को...** आत्मा का आनन्द-सुख प्रगट पर्याय में प्राप्त करते हैं। लो! समझ में आया? आहाहा!

भावार्थ :- मुनि ऐसी भावना करे कि त्रिलोक में जीव एकाकी है, इसका सम्बन्धी दूसरा कोई नहीं है,... जहाँ-जहाँ मैं होऊँ, वहाँ मेरी चीज़ मेरे पास है। मुझसे अतिरिक्त दूसरी कोई चीज़ मेरी है नहीं। **इसका सम्बन्धी दूसरा कोई नहीं है,...** 'एकाकी विचरूँगा कब श्मशान में' आता है न? श्रीमद् में आता है। अपूर्व अवसर। 'एकाकी विचरूँगा कब श्मशान में, अरु पर्वत में बाघ सिंह संयोग जब' चारित्र है।

अडोल आसन अरु मन में नहीं क्षोभ हो,
परम मित्र का मानो पाया योग जब।
अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा?

सिंह और बाघ के बीच में ध्यान में स्थित मैं मस्त रहूँ। आसन स्थिर तो हो परन्तु मन में जिसकी स्थिरता। मन में क्षोभ नहीं। उसमें शरीर लेने के लिये सिंह और बाघ आवे। वह तो मेरा मित्र है। मुझे चाहिए नहीं और उसे चाहिए है। ले जा। कितनी समता! ऐसा भाव हमको कब आवे और ऐसी दशा कब प्राप्त करें, ऐसी भावना (भाते हैं)। श्रीमद् भावना करते हैं गृहस्थाश्रम में रहे होने पर भी (भावना करते हैं)। समझ में आया?

घोर परीषह या उपसर्ग भय करी
पा सके नहीं वह स्थिरता का अन्त जो।
रजकण या ऋद्धि वैमानिक देव की
सब में भासे पुद्गल एक स्वभाव जो।

'रजकण या ऋद्धि वैमानिक देव की, सबको माना पुद्गल एक स्वभाव जो।' वह तो जड़ का स्वभाव, मेरी चीज़ नहीं। ऐसी दृष्टिसहित स्वरूप में लीनता की चारित्र की वीतराग की दशा हो, उसे चारित्रवन्त और मुनि कहा जाता है। उसे मोक्षमार्ग में भगवान ने कहा है। आहाहा! कहो, नेमिदासभाई! अन्त में ऐसा करेंगे तो मुक्ति होगी, हों! लड्डू खाना, माल खाना और ऐसा नहीं मिले वहाँ। मकान बड़ा बँगला और दो जनें घर के व्यक्ति। मनवांछित खाये। लड़के हों तो भाग माँगे। यह तो कहे, हलुवा बनाओ दो सेर। सेर-सेर खाये ओर बढ़े तो थोड़ा सा कुटुम्ब-बुटुम्ब में दे आना थोड़ा कहीं। उन्हें अच्छा लगे।

मुमुक्षु : कुटुम्ब सेवा करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : सेवा-बेवा कहाँ थी? वहाँ तो अच्छा लगाने को ऐसा कि काका पैसेवाले हैं और जरा सा ऐसा करे तो ... बादाम-बादाम का हलुवा बनाया हो थोड़ा। थोड़ा खावे और फिर दे। भेजो कुछ ऐसा। कपड़ा-कपड़ा कुछ दो बहू को। परिवार प्रसन्न हो। राग का पोषण है अकेला। भीखाभाई!

यह मेरी चीज़ तो मेरे पास है। मैं आनन्द का धाम हूँ। मेरा आनन्द तो जितना एकाग्र होऊँ, उतना प्रगट होगा। मुझे कहीं से लेना नहीं है। आहाहा! यह चैतन्य की खान जिसकी खुल गयी है। आहाहा! न्यालभाई ने कहा है न, भाई? न्यालचन्दभाई ने। मिथ्यादृष्टि के निधान बन्द हैं। राग और आत्मा दोनों एक माने हैं तो मिथ्यादृष्टि के निधान की तिजोरी बन्द है। समकिती की तिजोरी खुल गयी है। राग और स्वभाव दोनों भिन्न हैं, ऐसा जहाँ भान हुआ, अनन्त आनन्द का खजाना खुल गया है। अब खुलकर जितना स्थिर होगा, उतना निकालेगा। समझ में आया? न्यालभाई हो गये न? वे न्यालचन्दभाई नहीं कलकत्तावाले? द्रव्यदृष्टिप्रकाश। उन्होंने लिखा है कि मिथ्यादृष्टि की तिजोरी बन्द है। अपनी तिजोरी है

अन्दर आनन्द और ज्ञान। परन्तु राग और आत्मा को एक माना है तो मिथ्यात्व है तो तिजोरी बन्द है और सम्यग्दृष्टि की खुल गयी है। प्रकाशदासजी! राग और आत्मा दोनों के ताला बन्द थे, वे एकदम खोल दिये।

मैं तो आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... आनन्दस्वरूप। राग नहीं, विकल्प नहीं। दो की एकता तोड़ी, उसका खजाना खुल गया है। अब सन्दूक खोलकर जितना निकालना हो, उतना निकाल। समझ में आया? आहाहा! द्रव्यदृष्टिप्रकाश है, पढ़ा है या नहीं? नटुभाई! वे छोटे दो भाग? पढ़ा है। पूरा या थोड़ा? ठीक, यह तुमने साक्षी दी। कहो, समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **त्रिलोक में जीव एकाकी है, इसका सम्बन्धी दूसरा कोई नहीं है, यह परमार्थरूप एकत्वभावना है।** देखो! परमार्थरूप एकत्व। मैं तो अकेला हूँ। ऐसी दृष्टिसहित भावना करना, एकाग्रता करना, वही मोक्ष का मार्ग है। विकल्प-बिकल्प बीच में आवे, वह तो बन्ध का कारण है, मोक्ष का मार्ग नहीं। **जिस मुनि के ऐसी भावना निरन्तर रहती है...** देखो! समकिती को तो भावना है। परन्तु यहाँ निरन्तर शब्द प्रयोग किया है। समझ में आया? निरन्तर रहे। आत्मभान सम्यग्दर्शन में भावना तो यह है, परन्तु स्थिरता नहीं है, निरन्तर नहीं है और आत्मभान के पश्चात् चारित्र हुआ है। निरन्तर स्वरूप की भावना अन्दर एकाग्रता। वीतरागता के झूले में झूलते हैं। सन्त तो वीतरागता के झूले में झूलते हैं। झूले समझे? झूलना। झोला। आता है उसमें। झूलना। ओहोहो!

मुनि को तो कहते हैं कि अन्तर्मुहूर्त में हजारों बार आनन्द का अनुभव हो जाता है। सातवें गुणस्थान में। ओहो! आनन्द का भान हो गया। अनुभव और चारित्र है। मुनि को, सच्चे सन्त को तो एक अन्तर्मुहूर्त में हजारों बार सातवाँ गुणस्थान-अप्रमत्तदशा आती है। आहाहा! बापू! ऐसा मार्ग है, भाई! यह वस्तु का स्वरूप ऐसा कहे, वहाँ मानो ऐसा लगे, अरे! हमारे विरुद्ध कहते हैं। बापू! मार्ग यह है। भाई! तेरे हित के लिये बात भी यह है। समझ में आया? उल्टी रीति से मानकर बैठे और उसे मनाना साधुपना, बापू! उसमें तुझे क्या लाभ है? समझ में आया?

जिस मुनि के ऐसी भावना निरन्तर रहती है... एकत्व (भावना) निरन्तर (रहे)।

विकल्प से रहित, शरीर से रहित, किसी भी पदार्थ के सम्बन्ध से रहित। अपने आया था न ३८ गाथा में? एक परमाणुमात्र भी मेरा नहीं है। ३८ गाथा। मैं तो अखण्ड आनन्द पूर्ण स्वरूप, उसकी अन्दर लीनतारूपी भावना, उसमें मेरा एक परमाणु नहीं है। ऐसा अन्तिम शब्द है। जीव का स्वरूप बताना है। स्वयं पूर्ण वीतराग भिन्न हो गया। उसे एक रजकण और राग का कण भी उसका नहीं है। यह बात इसके ख्याल में आना चाहिए, हों! समझ में आया? कि ऐसा उसका-मुनिपने का स्वरूप है। समझ में आया? जैसा है, वैसा इसे मानना चाहिए। उससे कम, अधिक, विपरीत माने तो मिथ्यात्व लगता है।

मुमुक्षु : मुनि तो निर्ग्रन्थ ही होते हैं...

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रावक भी समकिती हो, वह निर्ग्रन्थ को ही मानता है। वस्तु वह है, ऐसा मानता है। ऐसा भले मुनि न हो सके। निर्ग्रन्थ मुनि, वह मुनि है और मुझे भी निर्ग्रन्थ ही होना है। भावना होती है या नहीं श्रावक को? न हो सके, वह अलग बात है। परन्तु भावना होती है कि ओहो! धन्य दशा! यह दशा मुनि की निर्ग्रन्थपने की, वीतरागपने में आनन्द की लहर चढ़ता, आनन्द की लहर में मौज उड़ाता हुआ... आहाहा! शान्ति के रस में, शान्ति की घूँट पीता हुआ। गन्ना का पीते हैं न? गन्ना-गन्ना। क्या कहलाता है वह? शेरड़ी। गन्ना नहीं होता? गन्ना। आनन्द के घूँट अन्दर से पीवे, आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के समक्ष इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए तिनके लगते हैं। समझ में आया? समकिती को भी ऐसा लगे और चारित्रवन्त की तो बात क्या करना! ओहो! धन्य अवतार! जिसने अन्दर मुनिपना भावलिंग प्रगट किया, उसने जन्म सफल किया। समझ में आया?

जो वेश लेकर भी लौकिकजनों से लाल-पाल रखता है... देखो! वेशधारी को भी **लौकिकजनों से लाल-पाल...** मक्खन चोपड़े और सेठिया को प्रसन्न करे। समझ में आया?

मुमुक्षु : लाल-पाल अर्थात् प्रेम?

पूज्य गुरुदेवश्री : मक्खन चोपड़े न, मक्खन? वह मक्खन नहीं कहते?

मुमुक्षु : खुशामत।

पूज्य गुरुदेवश्री : खुशामत-खुशामत। चापलूसी।

मुमुक्षु : वह आशीर्वाद नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आशीर्वाद किसका ? आशीर्वाद किसका दे ? इसका तो उसे भान नहीं और आशीर्वाद किसका दे ? आहाहा ! मुनि तो आशीर्वाद दे कि भाई ! तेरा कल्याण होओ, तेरे स्वरूप का। यह आशीर्वाद। परन्तु यह दे, इसलिए हो जाये वहाँ ?

मुमुक्षु : ... आशीर्वाद दे तो हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे पैसे में-धूल में वह तो अज्ञान का आशीर्वाद है। पुत्र हो, पैसा हो। मूढ़ है देनेवाला और लेनेवाला दोनों। आशीर्वाद दे, जाओ पैसे से प्रसन्न होओ। धूल में-पैसा में क्या है ? वह तो होली है, कषाय की अग्नि है। पैसा मिले उसमें किसे मिला ? तुझे होली मिले राख। अग्नि-भट्टी सुलगती है। पैसे की ममता की तो भट्टी सुलगती है। आहाहा ! समझ में आया ? बहुत से तो ऐसे अन्दर लोभिया (होते हैं कि) महाराज का ऐसा करूँगा तो ऐसा होगा। अपने को आशीर्वाद मिलेगा। अमुक... अर र ! उसे धर्म कैसे जँचे ? यहाँ तो तीन लोक का राज हो तो सड़ा हुआ तिनका है। वह हमारे नहीं चाहिए। हमारे तो हमारा आत्मा आनन्दमूर्ति, वह पूर्ण प्राप्त करना है, ऐसी जिसे भावना हो, उसे तो समकिती कहते हैं और ऐसी लीनता होवे, उसे चारित्र कहते हैं। आहाहा ! चन्द्रकान्तभाई ! ऐसा है इसमें। अच्छे पैसेवाले और लड़केवाले की कोई गिनती होगी धर्म में ?

लाल-पाल रखता है... लाल-पाल अर्थात्... लाल-पाल तो हिन्दी भाषा है। लाल-पाल को क्या कहते हैं ? यह तो हिन्दी है। लाल-पाल करते हैं न ? बालक को हाथ में रखकर नहीं करते ? ऐसे-ऐसे करे और ऐसे करे और ऐसे करे। इसी प्रकार यह सब गृहस्थों को लाल-पाल करे। मक्खन चोपड़े मक्खन। खुशामतिया। **वह मोक्षमार्गी नहीं है**। समझ में आया ? आहाहा !

गाथा-८२

आगे फिर कहते हैं –

देवगुरूणं भत्ता णिव्वेयपरंपरा विचिंतिंता।
झाणरया सुचरित्ता ते गहिया मोक्खमग्गम्मि।।८२।।

देवगुरूणां भक्ताः निर्वेदपरंपरा विचिन्तयन्तः।
ध्यानरताः सुचरित्राः ते गृहीताः मोक्षमार्गे।।८२।।

जो देव गुरु के भक्त निर्वेद संतति को सोचते।
वे ध्यान-रत सुचरित्री गृहणीय मुक्ति-मार्ग में।।८२।।

अर्थ – जो मुनि देवगुरु के भक्त हैं, निर्वेद अर्थात् संसार देह-भोगों से विरागता की परंपरा का चिंतन करते हैं, ध्यान में रत हैं, रक्त हैं, तत्पर हैं और जिनके भला-उत्तम चारित्र है, उनको मोक्षमार्ग में ग्रहण किये हैं।

भावार्थ – जिनने मोक्षमार्ग प्राप्त किया ऐसे अरहंत सर्वज्ञ वीतराग देव और उनका अनुसरण करनेवाले बड़े मुनि दीक्षा शिक्षा देनेवाले गुरु इनकी भक्तियुक्त हो, संसार-देह-भोगों से विरक्त होकर मुनि हुए, वैसी ही जिनके वैराग्यभावना है, आत्मानुभवरूप शुद्ध उपयोगरूप एकाग्रतारूपी ध्यान में तत्पर हैं और जिनके व्रत, समिति, गुप्तिरूप निश्चय-व्यवहारात्मक सम्यक्त्वचारित्र होता है, वे ही मुनि मोक्षमार्गी हैं, अन्य भेषी मोक्षमार्गी नहीं हैं।।८२।।

गाथा-८२ पर प्रवचन

आगे फिर कहते हैं :-

देवगुरूणं भत्ता णिव्वेयपरंपरा विचिंतिंता।
झाणरया सुचरित्ता ते गहिया मोक्खमग्गम्मि।।८२।।

देखो! महामुनि आत्मज्ञानी, तथापि देव-गुरु के भक्त होते हैं, उन्हें भाव-विकल्प

आता है। समझ में आया ? वह कहीं स्त्री-पुत्र का भक्त नहीं है।

अर्थ :- जो मुनि देव-गुरु के भक्त हैं,... ऐसे मुनि होते हैं। देव सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग देवाधिदेव; गुरु-निर्ग्रन्थ मुनि वीतरागी दिगम्बर आत्मध्यानी-ज्ञानी उनके मुनि, भक्त होते हैं। समझ में आया ? उनका दास होता है। देव-गुरु का दास होता है मुनि, समकिती। आहाहा! छह खण्ड के राजा चक्रवर्ती हों और चौरासी लाख हाथी का लश्कर निकला हो, परन्तु एक मुनि बबूल के नीचे बैठे हों। बावण समझे ? बबूल। बबूल। काँटे। ध्यान की वीणा अन्दर से बजती हो आनन्द की। नीचे हों, नग्न हों, काला शरीर हो, मैल हो, तिनके चिपटे हुए हों। तिनके-तिनके। ऊपर से उतरकर, धन्य महाराज! धन्य अवतार! धन्य अवतार!! वे तो अन्दर आनन्द की वीणा बजाते हों। झनझनाहट जैसे वीणा के तार की आवे न ? वैसे अन्तर के आनन्द की झनझनाहट अन्दर से वेदते होते हैं। वह कहे... आहाहा! उनको-साथ वालों को आश्चर्य हो जाये। यह चौरासी लाख हाथी और यह छियानवें हजार स्त्रियाँ, ये चक्रवर्ती इन बाबा को नमस्कार करे ? यह बाबा नहीं हैं, यह बड़ा बादशाह है। आनन्द का (बादशाह है)। समझ में आया ? और तू भिखारी बाबा है। यह पैसा और यह और वह। भगवानजीभाई! यह ऐसी बातें हैं। आहाहा! रहने का मकान न हो। बाबूल के नीचे (बैठे)। नीचे बिछाने का कपड़ा न हो। सर्दी और गर्म हवा लगती हो। अन्दर से आनन्द की झनकार बजती हो, अतीन्द्रिय आनन्द की। मुनि हैं न ? वे सुखी हैं और सब दुखिया हैं बेचारे। छह खण्ड के राजवाला, छियानवें हजार की सुविधावाला, रानियों की सुविधावाला, वे सब दुखिया हैं। वह सब दुखिया सुखी को नमस्कार करे, धन्य महाराज! आहाहा! पण्डितजी!

निर्वेद अर्थात् संसार-देह-भोगों से वीतरागता की परम्परा का चिन्तवन करते हैं,... कुछ मेरा नहीं। देह नहीं, भोग नहीं, पूरा संसार मेरा नहीं। **ध्यान में रत हैं,...** आहाहा! अन्दर आनन्द में लवलीन रहे। **और जिनके भला-उत्तम चारित्र हैं,...** और स्वरूप की दशा चारित्र की बहुत हो। **उनको मोक्षमार्ग में ग्रहण किये हैं।** लो! उसे मोक्षमार्ग में ग्रहण किया गया है। बाकी इसके अतिरिक्त भ्रष्ट हो, उसे मोक्षमार्ग में गिनने में नहीं आया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-९३, गाथा-८२-८३, रविवार, भाद्र कृष्ण ६, दिनांक २०-०९-१९७०

८२ गाथा, मोक्षपाहुड़। क्या कहते हैं? धर्मी मुनि मोक्षमार्गी कैसे होते हैं? धर्मी अर्थात् आत्मा के स्वरूप के जाननेवाले और अन्दर स्थिर रहनेवाले। चारित्रसहित लेना है न? ऐसे धर्मात्मा मोक्षमार्गी जीव कैसे होते हैं?

भावार्थ :- जिनने मोक्षमार्ग प्राप्त किया ऐसे अरहन्त सर्वज्ञ वीतरागदेव... उनमें उसकी भक्ति होती है। अरिहन्त सर्वज्ञ वीतरागदेव का वह मुनि भक्त होता है। उनका बहुमान उसे वर्तता है। समझ में आया? मूल पाठ है या नहीं? '**देवगुरुणं भत्ता**' धर्मी जीव सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञानी और स्वरूप में चारित्रवन्त जीव, उसे देव-गुरु के प्रति बहुमान होता है। देव-गुरु परद्रव्य परन्तु ... धर्म की प्राप्ति हुई, उनके प्रति उसे बहुमान होता है। समझ में आया? **और उनका अनुसरण करनेवाले बड़े मुनि दीक्षा देनेवाले गुरु इनकी भक्तियुक्त हो,...** देव-गुरु के भक्त हो। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ निर्ग्रन्थ वीतराग परमात्मा और निर्ग्रन्थ मुनि-गुरु, उनके मुनि भक्त होते हैं, उन्हें बहुमान होता है। है शुभ विकल्प। समझ में आया? ऐसा उसे व्यवहार होता है। बहुमानपना उसे जिससे धर्म पाया है, ऐसे देव-गुरु के प्रति उसे बहुमान वर्तता है। आचार्य स्वयं गाथा में रखते हैं। यह मोक्षपाहुड़ का अधिकार है। **संसार-देह-भोगों से विरक्त होकर...** निर्वेद-निर्वेद। संसार के उदयभाव, भोग और शरीर से जो अन्तर से पर से उदास है। **वैसी ही जिनके वैराग्यभावना है,...** ऐसी वैराग्य भावना मुनि को होती है। पर से उदास-उदास। यह तो नास्ति से बात की। अब अस्ति से (बात करते हैं)।

और **आत्मानुभवरूप शुद्ध उपयोगरूप एकाग्रतारूपी ध्यान में तत्पर हैं...** क्या कहा? **आत्मानुभवरूप शुद्ध उपयोगरूप एकाग्रता...** शुद्ध चैतन्य आत्मा आनन्दस्वरूप, उसका जो शुद्ध उपयोग अनुभव, आनन्द का अनुभव, अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन, ऐसे अनुभवसहित शुद्ध उपयोगरूप। शुद्ध उपयोग आचरण में **एकाग्रतारूपी ध्यान में तत्पर हैं...** स्वरूप सन्मुख के ध्यान के लिये तत्पर हैं। समझ में आया? मोक्षमार्गी जीव का वर्णन है। मोक्ष स्वद्रव्य आश्रय से होता है। परद्रव्य आश्रय से नहीं होता। भक्ति

ली, उसका विकल्प-बहुमान का होता है परन्तु ऐसा तत्परपना तो अन्दर में शुद्ध अनुभवस्वरूप शुद्ध उपयोग में उसकी एकाग्रता और तत्परता होती है। क्योंकि वह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया?

और **व्रत, समिति, गुप्तिरूप निश्चय-व्यवहारात्मक सम्यक्चारित्र होता है...** मुनि है न? निश्चयस्वरूप की चारित्रदशा भी है और व्यवहार के पंच महाव्रतादि विकल्प भी व्यवहार के योग्य जो है, वे होते हैं। समझ में आया? ऐसे मुनि, **वे ही मुनि मोक्षमार्गी हैं,...** ऐसे मुनि मोक्ष के मार्ग में आये हैं, वे मोक्षमार्गी हैं। उन्हें अल्प काल में मोक्ष होगा। देखो! **अन्य वेशी मोक्षमार्गी नहीं है।** वीतरागमार्ग के दर्शन-ज्ञान और चारित्र तथा बाह्य नग्न दिगम्बर लिंग, अन्दर में निश्चयचारित्र और व्यवहार विकल्प महाव्रत आदि के, उस जीव को मोक्षमार्ग में गिनने में आया है। अन्यवेशी मोक्षमार्ग में गिनने में नहीं आये। समझ में आया?

गाथा-८३

आगे ऐसा कहते हैं कि निश्चयनय से ध्यान इस प्रकार करना –

णिच्छयणयस्स एवं अप्पा अप्पम्मि अप्पणे सुरदो।
सो होदि हु सुचरित्तो जोई सो लहइ णिव्वाणं।।८३।।

निश्चयनयस्य एवं आत्मा आत्मनि आत्मने सुरतः।
सः भवति स्फुटं सुचरित्रः योगी सः लभते निर्वाणम्।।८३।।

निश्चय नयानूसार आतम आत्म में अपने लिए।
हो सुरत सुचारित्र योगी वही शिव-सुख को लहें।।८३।।

अर्थ **– आचार्य कहते हैं कि निश्चयनय का ऐसा अभिप्राय है जो आत्मा आत्मा ही में अपने ही लिये भलेप्रकार रत हो जावे वह योगी, ध्यानी, मुनि सम्यक्चारित्रवान् होता हुआ निर्वाण को पाता है।**

भावार्थ – निश्चयनय का स्वरूप ऐसा है कि एक द्रव्य की अवस्था जैसी हो उसी को कहे। आत्मा की दो अवस्थायें हैं – एक तो अज्ञान अवस्था और एक ज्ञान अवस्था। जबतक अज्ञान अवस्था रहती है, तबतक तो बंधपर्याय को आत्मा जानता है कि मैं मनुष्य हूँ, मैं पशु हूँ, मैं क्रोधी हूँ, मैं मानी हूँ, मैं मायावी हूँ, मैं पुण्यवान् धनवान् हूँ, मैं निर्धन दरिद्री हूँ, मैं राजा हूँ, मैं रंक हूँ, मैं मुनि हूँ, मैं श्रावक हूँ इत्यादि पर्यायों में आपा मानता है, इन पर्यायों में लीन होता है तब मिथ्यादृष्टि है, अज्ञानी है, इसका फल संसार है उसको भोगता है।

जब जिनमत के प्रसाद से जीव–अजीव पदार्थों का ज्ञान होता है, तब स्व–पर का भेद जानकर ज्ञानी होता है, तब इस प्रकार जानता है कि मैं शुद्धज्ञानदर्शनमयी चेतनास्वरूप हूँ, अन्य मेरा कुछ भी नहीं है। जब भावलिंगी निर्ग्रन्थ मुनिपद की प्राप्ति करता है, तब यह आत्मा आत्मा ही में अपने ही द्वारा अपने ही लिये विशेष लीन होता है तब निश्चयसम्यक्चारित्रस्वरूप होकर अपना ही ध्यान करता है, तब ही (साक्षात् मोक्षमार्ग में आरूढ़) सम्यग्ज्ञानी होता है इसका फल निर्वाण है, इस प्रकार जानना चाहिए।।८३।। (नोंध – प्रवचनसार गाथा २४१–२४२ में जो सातवें गुणस्थान में आगमज्ञान तत्त्वार्थश्रद्धान संयतत्व और निश्चय आत्मज्ञान में युगपत् आरूढ़ को आत्मज्ञान कहा है, वह कथन की अपेक्षा यहाँ है।) (गौण–मुख्य समझ लेना)

गाथा–८३ पर प्रवचन

८३। **आगे ऐसा कहते हैं कि निश्चयनय से ध्यान इस प्रकार करना :-** निश्चय और व्यवहार इस प्रकार का होता है और मोक्षमार्ग में उसे गिनने में आता है। अब निश्चय का अभिप्राय अकेला वर्णन करते हैं।

णिच्छयणयस्स एवं अप्पा अप्पम्मि अप्पणे सुरदो।
सो होदि हु सुचरित्तो जोई सो लहइ णिव्वाणं।।८३।।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, निश्चय अर्थात् यथार्थ दृष्टि का, ज्ञान का ऐसा अभिप्राय है कि आत्मा–शुद्ध आनन्दधाम आत्मा, वह अपने पवित्र कार्य का कर्ता है। समझ में आया ? रागादि विकल्पादि वह पवित्र कार्य का कर्ता नहीं। वह पवित्र नहीं, वह

अपवित्र है। आहाहा! कहा न? बहुमान का विकल्प आवे परन्तु उसका कर्ता नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी भूमिका में देव-गुरु का बहुमान हो, परन्तु कहते हैं कि वह कर्ता तो अपनी पवित्र दशा का है। शुद्ध वीतराग आनन्दघनस्वरूप, वह जीव अपनी निर्दोष सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी कर्म अर्थात् कार्य का वह आत्मा कर्ता है। समझ में आया? मोक्षमार्ग अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। निश्चय अर्थात् कि स्ववस्तु के आश्रय से हुई दृष्टि, स्वद्रव्य के आश्रय से हुआ स्वसंवेदन ज्ञान, स्वद्रव्य में आश्रय करके स्थिरता की—ऐसा चारित्र, ऐसे मोक्षमार्ग की पर्याय का कर्ता आत्मा है। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा आत्मा ही में... यह अधिकरण आया। कर्ता भगवान आत्मा पवित्र शुद्ध आनन्द और निर्विकल्प वीतरागी पर्याय का परिणमनेवाला स्वयं कर्ता आत्मा है। और वह वीतरागी पर्याय धर्म की निर्दोष, उसका आधार आत्मा है। समझ में आया? निर्दोष वीतरागी आनन्द और शान्तिरूपी जो अपना निजकार्य, उसका कर्ता आत्मा, और उसका आधार आत्मा है, निमित्त और विकल्प आधार नहीं है और निमित्त और विकल्प, वह मोक्षमार्ग की पर्याय का कर्ता नहीं है। गजब! अमरचन्दभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : देव-गुरु-शास्त्र का बहुमान आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुमान आया (वह) विकल्प, परन्तु कर्ता नहीं। यह तो पहले कहा न? कहा सही, बहुमान आता है। भूमिका में मुनि को भी होता है। मुनि को मुनि की बहुत दशा अपने गुरु अरिहन्त तीर्थंकर के प्रति, वह तो पहली बात आयी। परन्तु अब यहाँ तो कहते हैं कि उसका कर्ता नहीं है। यह ज्ञान कराया। तथा जो विकल्प है, वह आत्मा की पवित्रदशा का कर्ता नहीं है। राग का कर्ता नहीं है और पवित्र पर्याय का वह राग कर्ता नहीं है।

मुमुक्षु : कुछ समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में नहीं आता? ठीक किया। अधिक स्पष्ट करना है। यह भाई ऐसा कहते हैं।

फिर से, भगवान आत्मा तो चैतन्यपिण्ड अखण्ड आनन्दकन्द ध्रुव (है), उसका

जिसे बहुमान सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, उसे देव-गुरु के प्रति भक्ति का भाव आता है और होता है। आता है और होता है, तथापि यहाँ कहते हैं कि उस विकार परिणाम का कर्ता जीव नहीं है तथा वह विकार परिणाम कर्ता और निर्मल पर्याय कार्य, ऐसा नहीं है। गजब बात! समझ में आया? आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द, जिसमें निर्विकल्प स्वभाव परिपूर्ण पड़ा है। ऐसा आत्मा जहाँ अन्तर्दृष्टि की तो वह आत्मा अपने वीतरागी निर्दोष धर्म की पर्याय का कर्ता आत्मा। उसे विकल्प बहुमान का, अरिहन्त और गुरु का बहुमान आवे, ऐसा विकल्प होता है, परन्तु उसका वह कर्ता नहीं है। ऐसा होवे, उसका कर्ता नहीं है, उसका वह ज्ञाता है। और विकल्प कर्ता और धर्म की पर्याय कर्म, ऐसा नहीं है। धर्म की पर्याय कार्य और विकल्प कर्ता, ऐसा नहीं है। धर्म की पर्याय का कर्ता आत्मा। सीधा द्रव्यस्वभाव, वह धर्म की पर्याय का कर्ता। आहाहा! गाथा बहुत सरस ली है। तीन कारक उतारे हैं, परन्तु छहों कारक इसमें आ गये। समझ में आया?

भगवान आत्मा विकल्प से, शरीर से, कर्म से तो रहित ही है, तथापि उसे बहुमान भी मोक्षमार्ग की भूमिका में देव-गुरु का आवे, यह बात पहले सिद्ध की। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने सिद्ध की। परन्तु वापस सिद्ध करके भी यह सिद्ध किया कि वह विकल्प होता है, उसका वह जाननेवाला है; उसका कर्ता नहीं। तथा वह विकल्प कर्ता और धर्म की पर्याय कार्य, ऐसा नहीं है। गजब बात! कर्ता-कर्म आता है न? कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। षट् (कारक) अन्तर उतारे हैं यहाँ तो। आहाहा!

कहते हैं कि आत्मा स्वयं जागृत होकर स्वभाव-सन्मुख हुआ। इससे स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति / चारित्र जो प्रगट हुआ, उनका कर्ता सीधे द्रव्य कर्ता है। उनका कर्ता पुण्य और विकल्प और व्यवहार वह उसका कर्ता नहीं है। समझ में आया? भाई! शोभालालजी! एक दिन के बुखार में आ नहीं सके। शरीर ऐसा है, भाई! यह तो मुर्दा है। जड़, जड़ को रहना हो, वैसा रहे; वह आत्मा के कारण से शरीर रहे, सम्हाल करूँ तो ठीक रहे और न रहे, यह बात अज्ञानी का भ्रम है।

यहाँ तो कहते हैं, भगवान! यहाँ मोक्षप्राभृत है। मोक्ष का मार्ग क्या? मोक्ष प्राभृतसार, इसका मार्ग क्या? इसका मार्ग भगवान आत्मा परिपूर्ण कारणसमयसार प्रभु, का आश्रय

करके, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वद्रव्य के आश्रय से प्रगट हुआ, वह '**सदव्वा हु सुग्गइ**'। यह स्ववस्तु से प्रगटी, वह गति-सुगति पर्याय-दशा अपनी हुई। समझ में आया ? और वह आत्मा अपने सम्यग्दर्शन निश्चय स्व के आश्रय से निर्विकल्प अनुभव की प्रतीति, वह मोक्ष का एक अवयव मार्ग का। ऐसे स्वसंवेदनज्ञान अपना अपने से प्रत्यक्ष, राग और मन के अवलम्बनरहित ऐसा जो स्वसंवेदन ज्ञान, वह मोक्षमार्ग का एक अवयव। जैसे सम्यक् अवयव, वैसे ज्ञान एक अवयव। वैसे यह स्वरूप में लीनता, आनन्द में लीनता, वह चारित्र। इन तीन का कर्ता सीधे आत्मा है। उनका कर्ता कोई देव-गुरु-शास्त्र या देव-गुरु की भक्ति का विकल्प, वह उनका कर्ता नहीं—ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! समझ में आया ? और 'आत्मा में' यह अधिकरण लिया। आत्मा अपनी पवित्रता में कार्य करता है। कोई राग और विकल्प और व्यवहार, निमित्त के कारण कार्य (नहीं करता)। अपने कार्य का आधार स्वयं है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसा जो मोक्षमार्ग, ऐसी जो पवित्रदशा उसका आधार-अधिकरण आत्मा है। उसका आधार व्यवहार विकल्प और निमित्त नहीं है। समझ में आया ?

अपने ही लिये... यह सम्प्रदान आया। अपने लिये अन्दर करता है। अर्थात् ? स्वयं अपने लिये करके अपने में रखता है। आहाहा! शुद्ध चैतन्यस्वभाव वीतरागमूर्ति प्रभु आत्मा, उसकी पर्याय में वीतरागता स्वद्रव्य के अवलम्बन से प्रगट हुई, वह स्वयं अपने लिये की है और रखी है। रागादि हों, वे अपने लिये नहीं और राग का फल वापस बन्धन है। वह यह नहीं। स्वभाव चैतन्य ज्ञायकभाव, उसका जो कार्य स्वयं ने किया, वह स्वयं ने रखा। अपने में अभेदरूप से वह पर्याय हुई। स्वयं भगवान आत्मा ने अपने को दान दिया। यह दान। ऐई! सेठ! पैसा-फैसा दान नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : गुरु के उपदेश...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दान है। गुरु के उपदेश में यह दान है। स्वयं भगवान आत्मा सम्प्रदान नाम की शक्ति से तो भरपूर है। परन्तु उसका आश्रय लेकर जो पर्याय प्रगट हुई, वह स्वयं अपने में रखी है। निर्मलता स्वयं अपने में रखी है। इसका नाम दान और सम्प्रदान कहा जाता है। भारी व्याख्या! समझ में आया ?

अपने ही लिये... यह चौथी हुई न? कर्ता, कर्म, करण उसमें आ गया। क्योंकि **अपने ही लिये...** है न वह स्वयं साधन आत्मा है। राग और दया, दान या व्यवहार के विकल्प इसके—मोक्षमार्ग के साधन नहीं हैं। नहीं है, उसे कहा शास्त्र में, इसे उलझन आयी कि देखो! व्यवहार साधन और निश्चय साध्य। अब वह तो व्यवहारनय के कथन हैं। समझ में आया? आहाहा! आता है या नहीं? पंचास्तिकाय में, व्यवहार साधन, निश्चय साध्य, सब बहुत आता है। बहुत आता है, सुन न अब। तेरे हित के साधन बिना बाहर के साधन कहाँ से आये? तुझमें कहाँ साधन नहीं, वह कहीं किसी को खोजना पड़े? आहाहा! अन्दर आत्मा में साधन स्वभाव पड़ा है। उसका कर्तापने का जहाँ आश्रय लिया, तब वह साधन स्वभाव साधन होकर निर्मलदशा प्रगट होती है। व्यवहार और निमित्त साधन होकर निर्मलदशा प्रगट होती है, ऐसा नहीं। कहो, वजुभाई! यह सब समझना पड़ेगा। यह शरीर तो व्यर्थ अन्दर का जरा काम न करे। है या नहीं? खबर है या नहीं, ऐसा हुआ है अन्दर? जवान छोटी अवस्था में प्रत्यक्ष अनुभव हो गया। यह तो जवान छोटी अवस्था है। ऐई! मगनभाई! वह तो जड़ की अवस्था है। उसे होना हो, वैसी होती है। इसे रोकने से रुकती नहीं और टालने से टलती नहीं।

मुमुक्षु : डॉक्टर की मदद से हो जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी मदद से नहीं। वह तो मिटने की पर्याय हो तो मिटती है। डॉक्टर का बाप मर जाये, डॉक्टर मर जाये। बाप मर जाये, वह तो ठीक। डॉक्टर स्वयं मर गया। यह नहीं वैद्य? हिम्मतलाल। पूरा सर डॉक्टर था भावनगर का। वह ऑपरेशन करता था। मुझे कुछ होता है। बस, पड़ गया, मर गया, उड़ गया।

मुमुक्षु : परन्तु वह तो हजारों में एक होता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब वह हजारों को एक ही सिद्धान्त होता है न! ऐई! चन्दुभाई! आहाहा! यहाँ दो-तीन बार आये थे। एक बार दाँत के लिये बुलाया था। एक बार व्याख्यान में आये थे। देह की स्थिति जिस समय की जो पर्याय जो होनेवाली है, उसे तीन काल में इन्द्र-नरेन्द्र नहीं रोक सकते, जिनेन्द्र नहीं रोक सकते। तू तेरी सावधानी में रह। भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप चिदानन्द मूर्ति के आधार से और उसने की हुई निर्मल वीतरागदशा,

वह स्वयं रखे, उसका साधन स्वयं, अपादान स्वयं। चार तो इसमें आ गये। और कर्म, यह आया, देखे! **भले प्रकार...** व्रत हो, वह कर्म है। पाठ में है न? '**सुरदो**' पाठ है। '**णिच्छयणयस्स एवं अप्पा**' कर्ता, '**अप्पम्मि**' यह अधिकरण। '**अप्पणे**' यह सम्प्रदान, '**सुरदो**' यह कर्म है। कर्म अर्थात् कार्य। आत्मा आनन्द में लीन (हो), वह आत्मा का कार्य है। राग और दया, दान, व्रत, विकल्प, वह उसका कार्य नहीं। आहाहा! नवरंगभाई! पानी छानना उसका कार्य नहीं, ऐसा कहते हैं। पानी छानना सही। कौन सा? चैतन्य का पानी जो राग में एकत्व है, उसे छोड़कर अपने छन्ने में रखकर अपने में रखना। अपने तेज को अपने में रखना। उसमें—राग में जाने नहीं देना। उसका नाम वास्तव में पानी छानकर पीना कहा जाता है। आहाहा! बाहर को कौन छाने और कौन पीवे? वह तो जड़ की क्रिया है। आहाहा!

एक बार श्रीमद् ने कहा था, हों! श्रीमद् ने ऐसा कहा था। श्रीमद् में एक बार किसी ने कहा, नाम नहीं देते हैं। आओ चर्चा करने। कहे, तुम यह सब ज्ञानी-ज्ञानी करके बैठे हो, अन्य किसी को मानते नहीं परन्तु तुम्हारे यह कहना है न कि पानी छानकर पीना। हम पानी छानकर पीते हैं। पानी समझते हो न? जल। एक साधु ने कहा कि चर्चा करो। चर्चा करो। ऐसे आचार्य साधु किसी को मानते नहीं। बड़ा पच्चीसवाँ तीर्थंकर हो गया। वह तो कुछ कहते नहीं थे परन्तु दूसरे उड़ावे ऐसे। ऐसा कि यह स्वयं किसी को मानते नहीं। आओ चर्चा करने। परन्तु बापू! चर्चा करके तुम्हारे साथ क्या? तुम्हारे यह कहना है न कि पानी छानकर पीना। छह काय की हिंसा नहीं करना, यह कहना है। हम पानी छानकर पीते हैं। किसलिए हमको... अमरचन्दभाई! हम पानी छानकर पीते हैं। बापू... वह पानी और यह पानी, तुझे जो समझना हो, वह समझ ले! ऐसी चर्चा हुई थी। आहाहा! अरे! भगवान! तेरे चैतन्य के पानी का पूर है न अन्दर। बेहद आनन्द, बेहद ज्ञान, बेहद जिसका स्वभाव है, उसकी हद क्या? मर्यादा क्या? ऐसी स्वभाव की स्थिति का स्वरूप सागर भगवान, उसमें जो पड़ा, 'माही पड्या ते महासुख माणे, दुनिया देखीने दाझे जो रे।' दुनिया देखे कि कुछ करते नहीं। अब सुन न! करने का है, वह तो अन्दर में है। बाहर में है करने का? आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : माही पड्या ते महासुख माणे।

पूज्य गुरुदेवश्री : 'माही पड्या ते महासुख माणे' वह अन्दर में पड़े हैं, वे महा आनन्द को वेदते हैं, ऐसा। 'देखनारा तो दाझे जो ने।' देखनेवाले दाझे / जले। व्रत पालते नहीं, अमुक करते नहीं। भगवान की पूजा में आते नहीं। ठीक! यह हमारे यहाँ भजन है। वेदान्त का भजन है, हों! प्रकाशदासजी! वेदान्त में ऐसा भजन आता है। 'माही पड्या ते महासुख माणे, देखनारा तो दाझे जो ने। हरिनो मार्ग छे शूरानो, कायरना नहीं काम जो ने। प्रभुनो रे मार्ग छे रे शुरानो।' हरि अर्थात् आत्मा। अज्ञान और राग-द्वेष को हरे, इसलिए हरि। ऐसा प्रभु का मार्ग शूरवीर का है, वह वीर का मार्ग है, भाई! यह पामर और रंक का मार्ग नहीं है। रंक और पामर के कलेजे काँप जायें। अर र र! यह... यह... ? अरे! सुन, बापू... भगवान! तू पूर्णानन्द का नाथ प्रभु चैतन्य है। उसकी जहाँ स्वभाव की शरण ली, कहते हैं कि वह विकारी दशा उसकी है ही नहीं। आहाहा! देखो न, यह शैली-रचना! पहले में तो देव-गुरु भक्त कहा। वापस उसे उड़ा दिया। है, होता है परन्तु उसका वह ज्ञाता-दृष्टा है। उसका कार्य तो निर्मल है। समझ में आया?

मुमुक्षु : घड़ीक है और घड़ीक में नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं किसने कहा? है। नहीं कहा नहीं। है, उसका कर्ता नहीं— ऐसा कहा है। है और नहीं, इसका अर्थ कि है वह भाव। ऐसा होता है। कर्ता नहीं है। वह भाव नहीं है, ऐसा नहीं है। ऐई! गजब बातें! कुन्दकुन्दाचार्यदेव दो बात करते हैं, देखो न! बराबर बात है। आहाहा!

रत हो... देखो! '**सुरदो**' है न '**सुरदो**'? वह इसका कार्य है। शुद्ध स्वरूप में लीनता करना, वह इसका कार्य है। राग और पर का कार्य, वह आत्मा का नहीं है। आहाहा! अरे! निवृत्त होकर जरा विचार तो करे, यह वह कौन कैसा तत्त्व?

मुमुक्षु : पैसे आते रुक जायें।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसके पैसे आते रुक जायें?

मुमुक्षु : निवृत्त हो इसलिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : निवृत्त हो इसलिए? अन्दर में पैसा तो आनेवाले होंगे वे आयेंगे ही। पुण्य के कारण आये बिना रहेंगे? चक्रवर्ती के राज छह खण्ड के होते हैं, तथापि अन्दर

में ध्यान करके लीन होता है तो चक्रवर्ती के राज कहीं चले जाते हैं ? और चला जाये तो यहाँ से चला गया। अन्दर में से तो छोड़ दिया है। वह मेरा नहीं न! विकल्प मेरा नहीं फिर छह खण्ड के राज कहाँ से आये ? आवे कौन और जाये कौन ? ले कौन और दे कौन ? आहाहा! यह कहते हैं कि ऐसा करना जाये तो पैसा नहीं मिले, बीड़ियों में से पैसे मिलते हों, ऐसा ये कहते हैं। आहाहा! अरे! यहाँ तो विकल्प को प्राप्त करना नहीं वहाँ और पर को प्राप्त करना कहाँ रहा ? समझ में आया ? परसन्मुख की वृत्ति है, उसमें भी जहाँ एकता करना नहीं, वहाँ फिर पर के साथ बात कहाँ रही ? आहाहा! छह खण्ड के राजा हों, इन्द्र के इन्द्रासन हों, वे उसके घर में रहे। यहाँ कहाँ अन्दर में थे ? समझ में आया ? धर्मी का धर्म उसका है। उसका राग भी नहीं तो पर तो कहीं रह गया ? समझ में आया ?

वह योगी... ऐसा कैसे कहना है ? कि गृहस्थाश्रम में मोक्ष का मार्ग पूर्ण नहीं होता। इसलिए यहाँ मुनि को लिया है। मुनि को चारित्र होता है। दिगम्बर मुनि होते हैं, आत्मध्यानी होते हैं, उन्हें मोक्ष का मार्ग (होता है) और वे मोक्ष जाते हैं। ऐसा कि यह गृहस्थाश्रम में रहे होने पर भी मोक्ष जाये, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? क्योंकि गृहस्थाश्रम में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अंश होता है परन्तु चारित्र पूरा नहीं होता, पूर्ण नहीं होता तो मोक्षमार्ग पूर्ण नहीं होता। इसलिए यहाँ योगी शब्द प्रयोग किया है न ? देखो न! '**जोई**' '**अप्पणे सुरदो। सो होदि हु सुचरित्तो जोई सो लहइ णिव्वाणं**।' वह योगी मुक्ति को पाता है। परन्तु ऐसे योगी, हों! समझ में आया ? उसका इसे ज्ञान में व्यवस्थित करना पड़ेगा नहीं ? ज्ञान में समझ में बैठाना पड़ेगा या नहीं, उल्टा बैठाया है वह।

योगी, ध्यानी,... ऐसा। स्वरूप में लीनतावाला। ऐसे **मुनि सम्यक्चारित्रवान होता हुआ... सम्यक्चारित्रवान होता हुआ... 'सुचरित्तो'** तीसरे पद में है न ? '**सो होदि हु सुचरित्तो**' **निर्वाण को पाता है।** आहाहा! एक-एक गाथा में भी पूरी पूरी बात रख दी है। ऐसी कुन्दकुन्दाचार्य की शैली। पूरा श्लोक पढ़ो या एक पढ़ो। इस एक में भी यह और लाखों में भी यह। आहाहा! समझ में आया ?

भावार्थ :- निश्चयनय का स्वरूप ऐसा है कि - एक द्रव्य की अवस्था जैसी हो उसी को कहे। आत्मा की दो अवस्थायें हैं - एक तो अज्ञान अवस्था और एक ज्ञान

अवस्था। दो पर्याय। **जब तक अज्ञान-अवस्था रहती है, तब तक तो बन्धपर्याय को आत्मा जानता है...** जब तक मिथ्यात्वभाव है, वहाँ बन्धपर्याय अर्थात् कर्म का सम्बन्ध, उससे उत्पन्न हुए भावों को अपना माने। **मैं मनुष्य हूँ,...** मिथ्यादृष्टि ऐसा मानता है कि मैं मनुष्य हूँ, परन्तु मनुष्य कहाँ हो ? तू तो आत्मा है। परन्तु मानता है कि मैं मनुष्य हूँ। **मैं पशु हूँ...** है तो आत्मा आनन्दकन्द ज्ञायकभाव वह आत्मा। अज्ञान के कारण मैं मनुष्य हूँ, पशु हूँ। **मैं क्रोधी हूँ,...** मैं क्रोधी हूँ। अरे! भगवान! क्रोधी तेरा स्वरूप कहाँ था ? तेरा स्वरूप तो परमपवित्र आनन्दधाम है। अज्ञान अवस्था में मैं क्रोधी हूँ, ऐसा भाव उसे भासित होता है। क्रोधरहित चीज़ है, उस भाव का भासन नहीं है।

मैं मानी हूँ,... मैं मानी हूँ। अभिमानी। झुकूँगा नहीं। मर जाओ तो झुकूँगा नहीं और ऐसा बोले। आहाहा! बोलते हैं या नहीं ? **मैं मायावी हूँ,...** महा प्रपंचजालिया हूँ। दूसरे को प्रपंच में डालना हो तो डाल दूँ। भाई! यह कहाँ से लाया ? तू ज्ञान और आनन्द का कन्द है न। मायावी हूँ, कपटी हूँ, दम्भी हूँ। मेरा पेट हाथ न आवे। ठीक भाई! ऐई! नेमिदासभाई! **मैं पुण्यवान-धनवान हूँ,...** मूढ़ है, वह ऐसा मानता है। **मैं पुण्यवान-धनवान हूँ,...** मूढ़ है। धनवान-पुण्यवान तू कहाँ से आया ? तेरा तो आनन्द-ज्ञानस्वरूप है। उसमें पुण्यवान हूँ, धनवान हूँ, वक्ता हूँ। लो न! समझ में आया ? मैं वक्ता हूँ। दो-दो घण्टे तक बोलना हो तो लाख मनुष्यों में तो एकधारा बोल सकता हूँ। ठीक भाई! वाणी तो जड़ है, भगवान! यह सब मिथ्यादृष्टि के अज्ञानभाव हैं। आहाहा!

मैं निर्धन-दरिद्री हूँ,... दरिद्री कैसा ? तीन लोक का नाथ अनन्त आनन्द को संग्रह कर बैठा है न! तू दरिद्री कैसा ? अज्ञानी दरिद्री मानता है। आहाहा! अनन्त सिद्धपद को संग्रह कर अन्दर बैठा है और कहता है मैं दरिद्री हूँ। आहाहा! मिथ्यादशा में अज्ञानी को ऐसा भान होता है, कहते हैं। आहाहा! **मैं राजा हूँ....** लो! राजा हूँ। कितने हजारों राजा मुझे सलाम करते हैं। खम्मा अन्नदाता! तैनाती में खड़े हों ऐसे। राजा चँवर ढोले। धूल भी नहीं, सुन न! राजा-फाजा कैसा था। ऐई! **मैं रंक हूँ...** यह अज्ञानदशा में ऐसा मानता है। मैं सेठ हूँ, ऐसा लेना इसके अन्दर में। मैं साहूकार हूँ, धनिक हूँ, मेरी बड़ी पदवी, मेरी माँ की पदवी मोटी, उसमें जन्मे हुए। अरे! माँ कब थी सुन न! बड़े पिता के कुल में जन्मे हुए। बड़े पिता के। पिता कैसा ? भाई! आहाहा!

मैं मुनि हूँ... पर्याय में माना, देखा ! एक समय की पर्याय में मुनिपना मानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। पर्याय ली। ज्ञायकस्वरूप में पर्याय के भेद चौदह गुणस्थान कैसे ? आहाहा ! समझ में आया ? मुनि की पर्याय (में) मैं मुनि हूँ। द्रव्यलिंगी हो वह मानता है। हम मुनि हैं, पंच महाव्रत पालते हैं, अट्ठाईस मूलगुण पालते हैं। देखो ! निर्दोष आहार-पानी लेते हैं। हमारे लिये बनाया हुआ लेते नहीं। किसका परन्तु ? वह तो विकल्पदशा, पर्याय की बात है। पर्याय में पूरा द्रव्य आ गया ? ऐसी पर्याय मैं हूँ, ऐसा माने, वह मूढ़ अज्ञानी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! उसमें एक समय की पर्याय का अभी अभाव है, ऐसा तो त्रिकाली द्रव्य है। समझ में आया ? जिसमें नहीं, उसे मानता है, वह अज्ञानी है। आहाहा !

मैं श्रावक हूँ... लो ! यह आया। हम श्रावक हैं। श्रावक तो एक समय की पर्याय को तू आत्मा मानता है ? पर्यायबुद्धि है, मिथ्याबुद्धि है। कहो, पोपटभाई ! आत्मा आनन्दस्वरूप परिपूर्ण वापस ऐसा। जिसमें एक समय की पर्याय भी नहीं। पर्याय तो व्यवहार है। निश्चय में पर्याय कैसी ? समझ में आया ? एक समय की पर्याय तो व्यवहार है। निश्चय तो द्रव्य त्रिकाली ज्ञायक, वह द्रव्य है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : पर्याय आयी कहाँ से ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय आयी पर्याय में से। किसने कहा ? पर्याय आयी पर्याय में से। पर्याय का कर्ता पर्याय। पर्याय का कर्ता द्रव्य नहीं। आवे तब द्रव्य में से, परन्तु है पर्याय पर्याय से। समझ में आया ?

मुमुक्षु : पर्याय की खान तो द्रव्य कहलाये न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी भाषा। तो भी पर्याय पर्याय स्वतन्त्र है। परिणमन है... परिणमन है। यह तो भेद का अंश अन्दर है, इस अपेक्षा से आयी, वह भेद से कथन है। अभेद सदृश की अपेक्षा से तो पर्याय का कर्ता आत्मा है ही नहीं। एकरूप वस्तु। भेद अन्दर अंश है न ? वह तो भेदवाला अंश है। भेद का अंश आया, वह भेद का कथन है। अभेद चैतन्यमूर्ति में भेद कैसा ? आहाहा ! तथापि कहे, मैं श्रावक हूँ। इसमें अभी दूसरा नहीं लिखा हुआ। मैं पण्डित हूँ, मैं मूर्ख हूँ। यह सब अज्ञानी ने माना हुआ है। आहाहा !

इत्यादि पर्यायों में आपा मानता है,... अपनापन मानता है। एक समय की पर्याय

में ही मानता है, ऐसा कहा। या रागवाला, संयोगवाला और या एक समय की पर्यायवाला। ऐसे तीन। या अच्छे संयोगवाला या खराब संयोगवाला या रागवाला-कषायवाला और या एक समय की पर्याय। तीनों पर्यायबुद्धि है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो व्यवहार में क्या बोला जाये? इसका अर्थ कि मैं वह नहीं, ऐसा। ऐसा अर्थ करना। नहीं आया? टोडरमलजी में नहीं आया? टोडरमलजी में। व्यवहार अन्यथा कहता है, ऐसा है नहीं। ऐसा है नहीं। ऐसा उसका अर्थ समझना। बहुत सरस कहा। कौन हो? कहाँ के? कि वढवाण के। अर्थात् कि वढवाण के नहीं। तुम्हारा क्या व्यापार है? कि टाईल्स का। कि व्यापार टाईल्स का नहीं, ऐसा समझना। आहाहा! बाहर में क्या (बोला जाये)? हाथी के बाहर के दाँत अलग और चबाने के दाँत अलग। हाथी के बाहर के दिखाने के दूसरे और सोने के वे ... करे। वह कहीं चबाने में काम आवे? अन्दर के चबाने के दूसरे होते हैं। इसी प्रकार अन्दर के अभिप्राय की बात दूसरी होती है, बोलने की बात दूसरी होती है। आहाहा! समझ में आया?

पर्यायों में आपा मानता है,... अपनापना माने। **इन पर्यायों में लीन होता है...** देखो, वह '**सुरतः**' के सामने डाला है। '**सुरदो**' है न पहला? उसके सामने यह अज्ञानी पर्याय में लीन है। समझ में आया? वह है '**अप्पा अप्पम्मि अप्पणे सुरदो।**' बराबर ऐसा। क्या शब्द है। और यह है '**कुरदो**' एक समय की पर्याय को आत्मा माने, पण्डिताई की, मूर्खताई की, पढ़े हुए की। हमें बहुत आता है, ग्यारह अंग पढ़े हैं, नौ पूर्व पढ़े हैं, वह हमारा ज्ञान। यह सब पर्यायबुद्धि है, मिथ्याबुद्धि है। कहो, समझ में आया?

पर्यायों में लीन होता है... इसके सामने डाला। '**अप्पणे सुरदो**' था न, इसके सामने सुलटा अर्थ किया कि ऐसा जब तक मानता है, तब तक मिथ्यादृष्टि है। चाहे तो ग्यारह अंग पढ़ा हो, नौ पूर्व पढ़ा हो और अट्ठाईस मूलगुण पालता हो परन्तु उसवाला हूँ और वह हूँ, तब तक मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? **अज्ञानी है, इसका फल संसार है, उसको भोगता है।** लो! इसका फल संसार है। एक समय की पर्याय को मानना, मिथ्यादृष्टि और उसका फल संसार है। आहाहा! द्रव्य वस्तु की खबर नहीं होती और एक समय की

पर्याय में अपना सर्वस्व माने। समझ में आया? अब सुलटा। यह ऊंधाई की बात ली। पाठ में सुलटा है, हों! तथापि अर्थ किया है। दूसरा सामने एक अर्थ किया है।

जब जिनमत के प्रसाद से... वीतराग अभिप्राय का भाव, त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा हुआ जीव-अजीव, उनने कहे हुए नौ तत्त्व, उनने कहे हुए छह द्रव्य का **ज्ञान होता है, तब स्व-पर का भेद जानकर...** दो का ज्ञान होने में मैं कौन और पर कौन , इसका भेदज्ञान होता है। समझ में आया? पर्याय भी मैं नहीं, इतना राग भी नहीं और अजीव भी नहीं। तब इसे भेदज्ञान हुआ कहा जाता है। आहाहा!

वीतराग अभिप्राय प्रमाण वीतरागदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव सौ इन्द्रों के पूजनीक परमात्मा, उन्होंने कहे हुए जीव-अजीवतत्त्व, उनका-दो का भेदज्ञान। जीव अखण्ड ज्ञायकभाव, एक समय की पर्याय भी एक जीव की अपेक्षा से वह भी एक न्याय से अजीव है। जीवद्रव्य नहीं, इस अपेक्षा से अजीव है। व्यवहार है न, व्यवहार वह? रागादि पर है। मेरी चीज़ राग, पर्याय और उससे भिन्न चीज़ है। समझ में आया?

स्व-पर का भेद जानकर ज्ञानी होता है, तब इस प्रकार जानता है कि - मैं तो शुद्धज्ञानदर्शनमयी चेतनास्वरूप हूँ, अन्य मेरा कुछ भी नहीं है। है? मैं तो शुद्ध ज्ञानदर्शनमय अभेद ऐसा चेतनास्वरूप हूँ। यहाँ तो एक समय की पर्याय नहीं। समझ में आया? भेदज्ञान जीव-अजीव का परमात्मा ने कहा ऐसा। जानने में आया, तब दो की भिन्नता जानी। उसमें मैं, **मैं शुद्धज्ञानदर्शनमयी...** अभेद। शुद्ध ज्ञानदर्शनवाला चेतना, ऐसा भी नहीं। शुद्ध ज्ञानदर्शनमयी चेतनास्वरूप अभेद। अकेला ज्ञाता-दृष्टा का अभेदपना, वह मैं आत्मा। इसका नाम सम्यग्दर्शन और इसका नाम सच्ची दृष्टि और इसका नाम सम्यग्ज्ञान। आहाहा! सूक्ष्म है। मैनेजर! बैंक का अभ्यास... हुआ था। आहाहा! समझ में आया? वह स्वयं भगवान अनन्त परमात्मा का सामर्थ्य लेकर अन्दर गुप्त पड़ा है। वह पर्याय में भी आता नहीं। आहाहा! एक समय की अवस्था में भी वह आता नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा गुप्त भगवान ऐसा शुद्धचैतन्यमय, शुद्धज्ञानदर्शनमयी चेतना, यह अभेद से डाला। अकेला चेतना स्वभाव। शुद्ध दर्शनज्ञानमय, केवल ज्ञानदर्शनमय। केवल अर्थात् यह त्रिकाली। केवल पर्याय नहीं। अकेले ज्ञानदर्शनमय वस्तु, अभेद वह मैं। ऐसा विकल्प भी नहीं परन्तु वह मैं, ऐसा परिणमन। समझ में आया?

अन्य मेरा कुछ भी नहीं है। इसका अर्थ क्या हुआ ? देखो न ! ओहोहो ! राग तो नहीं परन्तु एक समय की पर्याय कोई भी मेरी नहीं, ऐसा। यहाँ तो अभेद, वह मैं। मैं भेद नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? **तब यह आत्मा ही में अपने ही द्वारा अपने ही लिये विशेष लीन होता है...** लो, यह वापस पाठ में था, वह डाला। ऐसी जब अन्दर दृष्टि शुद्धज्ञानदर्शनमय चेतनास्वभाव (की हुई), तब वह अपनी निर्मल भाव की पर्याय का कर्ता स्वयं। यहाँ तो यह लेना है न ? साथ में लेना है। यहाँ पर्याय पर्याय का कर्ता, यह नहीं लेना। जिस जगह जो लेना हो, वह लिया जाये न ! सब जगह एक लेने जाये तो मेल खाये नहीं। ज्ञानप्रधान कथन क्या ? दृष्टिप्रधान कथन क्या ? यहाँ तो मेरी पर्याय का कर्ता मैं हूँ, ऐसा सिद्ध करना है। वहाँ और ३२० में आवे कि पर्याय का कर्ता द्रव्य नहीं। वह किस अपेक्षा से बात है ? सामान्य सत्ता में विशेष सत्ता नहीं, इस अपेक्षा से। यहाँ विशेषसत्ता की पर्याय का कर्ता तो परिणमन करनेवाला तो द्रव्य है। परिणमना, वह तो पर्याय है परन्तु परिणमन का कर्ता द्रव्य है, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया ?

अपने ही द्वारा... आत्मा कर्ता हुआ। **आत्मा ही में...** अधिकरण-आधार। **अपने ही द्वारा...** करण हुआ, लो ! इसमें यह करण डाला। **अपने ही लिये...** यह सम्प्रदान हुआ। इसमें कारण डाला, भाई ! उसमें नहीं, वह इसमें डाला। पाठ में तीन बोल है। '**अप्पा अप्पम्मि अप्पणे सुरदो**' कर्म चार है। यहाँ पाँच डाले। एक अपादान नहीं। वह तो अपादान-उपादान स्वयं से हुआ, यह तो आ गया न साथ में। क्या कहा ? इसमें तीन है। संस्कृत में तीन है। कर्ता, आधार और सम्प्रदान। तीन है। संस्कृत टीका में तीन है। यहाँ चार लिये हैं।

आत्मा **आत्मा ही में...** आत्मा कर्ता, **आत्मा ही में ही...** अपने आधार से, **अपने ही द्वारा...** अपने स्वभाव साधन द्वारा। देखो ! यह स्वभाव साधन आया। **अपने ही द्वारा...** शुद्ध आनन्द के स्वभाव साधन द्वारा कार्य किया है। यह साधन। राग-फाग साधन, व्यवहार-फ्यवहार साधन नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? **अपने ही द्वारा...** अपने आनन्दस्वभाव से मैंने मेरा कार्य किया है। राग से और पुण्य से काम नहीं किया। आहाहा ! मेरा कार्य मैंने किया है। ऐसा आता है न ? आवे न, भाषा क्या आवे ? न्यालभाई में आता है एक जगह। जैसा महाराज ने बताया था, वह कार्य मैंने किया है, ऐसा आता है। कार्य

तो पर्याय है। कथन की शैली में कौन सा प्रकार है, क्या अपेक्षा है, ऐसा जानना चाहिए न! समझ में आया? आहाहा!

अपने ही लिये... यह आया सम्प्रदान। अपने लिये मैंने कार्य किया है। यह विकल्प की बात नहीं, हों! यह तो समझावे तो भेद से समझावे न! वहाँ ऐसा नहीं मेरे लिये यह करता हूँ। ऐसा है? विकल्प है? परन्तु परिणमन ऐसा होता है। **लीन होता है... अपने ही लिये विशेष लीन होता है...** यह कर्म है, लो! यह कार्य है, कर्तव्य। कर्ता, करण, कर्म, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। एक अपादान नहीं। अपादान का अर्थ उपादान। उपादान आ गया-स्वयं से। समझ में आया? आत्मा-आत्मा (करे), परन्तु आत्मा के अतिरिक्त क्या दूसरी चीज़? दूसरी चीज़ अजीव है, ले। समझ में आया?

तब निश्चयसम्यक्चारित्रस्वरूप होकर... लो! जब इस प्रकार से आत्मा अपने स्वभाव का आश्रय-शरण लेकर, स्वभाव का साधन करके स्वयं अपने में रखे, तब निश्चय सम्यक्चारित्रस्वरूप होता है। निश्चयसम्यग्दर्शन पूर्ण वस्तु का ज्ञान होकर निर्विकल्प प्रतीति और स्वरूप की स्थिरता-चारित्र। निश्चयसम्यक् और निश्चयचारित्र दो। व्यवहारचारित्र यहाँ नहीं। **अपना ही ध्यान करता है,...** समझ में आया? **तब ही सम्यग्ज्ञानी होता है,...** अवस्था वर्णन की न, अवस्था? अज्ञानी की उल्टी अवस्था, ज्ञानी की यह, ऐसा वर्णन करना है न यहाँ? समझ में आया? **इसका फल निर्वाण है,...** लो! उसका फल संसार था। अज्ञान का फल संसार को भोगता है। इसका फल मोक्ष। दोनों की बात की। यह गाथा पूरी हुई। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-८४

आगे इस ही अर्थ को दृढ़ करते हुए कहते हैं –

पुरिसायारो अप्पा जोई वरणाणदंसणसमग्गो।
जो झायदि सो जोई पावहरो हवदि णिद्दंदो।।८४।।

पुरुषाकार आत्मा योगी वरज्ञानदर्शनसमग्रः।
यः ध्यायति सः योगी पापहरः भवति निर्द्वन्दः।।८४।।

है योगि पुरुषाकार आतम श्रेष्ठ दर्शन-ज्ञानमय।
ध्याता वही हो पाप-हर निर्द्वन्द्व योगी समझ यह।।८४।।

अर्थ – यह आत्मा ध्यान के योग्य कैसा है ? पुरुषाकार है, योगी है, जिसके मन, वचन, काय के योगों का निरोध है, सर्वांग सुनिश्चल है और वर अर्थात् श्रेष्ठ सम्यक्‌रूप ज्ञान तथा दर्शन से समग्र है, परिपूर्ण है, जिसके केवलज्ञान दर्शन प्राप्त हैं, इस प्रकार आत्मा का जो योगी ध्यानी मुनि ध्यान करता है, वह मुनि पाप को हरनेवाला है और निर्द्वन्द है-रागद्वेष आदि विकल्पों से रहित है।

भावार्थ – जो अरहंतरूप शुद्ध आत्मा का ध्यान करता है, उसके पूर्व कर्म का नाश होता है और वर्तमान में रागद्वेषरहित होता है, तब आगामी कर्म को नहीं बांधता है।।८४।।

प्रवचन-९४, गाथा-८४ से ८६, सोमवार, भाद्र कृष्ण ७, दिनांक २१-०९-१९७०

गाथा ८४, मोक्षपाहुड़।

आगे इस ही अर्थ को दृढ़ करते हुए कहते हैं :- आत्मा का ध्यान कैसे करना? कैसा आत्मा जानकर (ध्यान करना), इसकी बात की है।

पुरिसायारो अप्पा जोई वरणाणदंसणसमग्गो।
जो झायदि सो जोई पावहरो हवदि णिद्दंदो।।८४।।

अर्थ :- यह आत्मा ध्यान के योग्य कैसा है ? आत्मा ध्यान करनेयोग्य, लक्ष्य में लेनेयोग्य, ध्येय करनेयोग्य (वह) कैसा आत्मा है ? अन्य अज्ञानियों ने तो अनेक प्रकार का आत्मा कल्पित किया है। परन्तु सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आत्मा देखा, कहा, वह कैसा आत्मा है ? एक तो **पुरुषाकार है,...** शरीर के आकार से भिन्न वस्तु है, लोकव्यापक नहीं। समझ में आया ? लोक में व्याप गया आत्मा, वह नहीं। शरीरप्रमाण ही उसका आकार और व्यापक है। क्योंकि ध्यान करना अर्थात् उसके अन्दर ऐसे एकाग्र करता है इतने में ? या बाहर में एकाग्र होता है ? इतने में शरीर आकार प्रमाण आत्मा है। पहले इसे ऐसा निर्णय करना।

और **योगी है,...** यहाँ मुख्यरूप से मुनि की व्याख्या है न। श्रावक की अब आयेगी। ... जिसने आत्मा शुद्ध पूर्ण ज्ञान, दर्शन और पवित्र पूर्ण स्वरूप में जिसने एकाग्रता साधी है, उसे यहाँ योगी, ध्यानी, मुनि कहा जाता है। **मन, वचन, काय के योगों का निरोध हैं,...** मन, वचन और काया का निरोध, योग का निरोध (हुआ है), वह योगी, ऐसा। मन, वचन और काया जो कम्पनरूप भाव, शरीर, वाणी, मन तो पर जड़ है, उनसे रहित अकम्पस्वरूप त्रिकाल का जिसे ध्यान है अथवा मन, वचन और काया के (योग को) रोककर निरोध (हुआ) है। **सर्वांग सुनिश्चल है...** योगी कहा न ? पुरुषाकार असंख्य प्रदेशी सुनिश्चल ऐसा आत्मा ध्यान करनेयोग्य है। उसे ध्येय बनाकर उसमें लीन होनेयोग्य है। समझ में आया ? लो, यह धर्म कैसे करना और धर्मी को धर्म कैसे होता है, यह बात है।

और **अर्थात् श्रेष्ठ सम्यक्रूप ज्ञान तथा दर्शन से समग्र है - परिपूर्ण है, जिसके केवलज्ञान-दर्शन प्राप्त है,...** अकेला ज्ञान और दर्शन परिपूर्ण स्वरूप आत्मा का है। केवलज्ञान अर्थात् वह केवलपर्याय नहीं। ज्ञान और दर्शन, दृष्ट और ज्ञाता—ऐसे स्वभाव से पुरुषाकार सुनिश्चल ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण ऐसा आत्मतत्त्व है। ऐसे आत्मतत्त्व का ध्यान करना। समकिती हो, उसे ऐसा ध्यान करना। समकिती न हो, उसे समकित प्राप्त करने के लिये भी उसका ध्यान करना। समझ में आया ? उसकी क्रिया ध्यान की है। दूसरे प्रकार से समकित प्राप्त हो, ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आयेगा, अभी इसके बाद।

इस प्रकार आत्मा का... ऐसा आत्मा। पुरुषाकार सुनिश्चल सम्पूर्ण ज्ञान-दर्शन से भरपूर परिपूर्ण पदार्थ आत्मा, उसे **जो योगी ध्यानी मुनि ध्यान करता है...** मुनि उसका जो

ध्यान करे, उसकी ओर का आश्रय करके स्थिर हो, ऐसा **योगी ध्यानी मुनि ध्यान करता है, वह मुनि पाप को हरनेवाला है...** पाप शब्द से पुण्य और पाप दोनों पाप ही हैं। समझ में आया? शुभ और अशुभभाव दोनों वास्तव में तो आत्मा के स्वभाव से विपरीत पाप और उससे बँधे हुए कर्म, वे पाप सब आठों ही। उसे हरनेवाले। कर्म का नाश, आत्मा ऐसा है, उसका ध्यान करे, उसे कर्म का नाश होता है। समझ में आया?

निर्द्वन्द्व है—राग-द्वेष आदि विकल्पों से रहित है। द्वन्द्व—दो प्रकार जिसमें नहीं हैं। पुण्य और पाप ऐसे विकल्प और राग-द्वेष ऐसे विकल्प उसमें है नहीं। ऐसी आत्म चीज़ को अन्तर दृष्टि में लेकर एकाग्र होना, वह कर्म के नाश की पद्धति और उपाय है। कहो, समझ में आया? इतने अपवास करे तो कर्म का नाश हो, ऐसा इसमें नहीं लिखा।

मुमुक्षु : यहाँ पाप लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पुण्य-पाप दोनों पाप हैं। कहा न? आठों कर्म ही पाप है और उसके भाव से बँधे हुए, वह भाव भी पाप ही है। स्वरूप से आत्मा ज्ञान, दर्शन परिपूर्ण स्वरूप से विपरीत विकल्प, वह तो स्वभाव का घात करनेवाला भाव है। चाहे तो शुभ हो या चाहे तो अशुभ हो। उसे घात करनेवाला यह ध्यान है। आहाहा! कठिन काम। यह निर्द्वन्द्व है-द्वन्द्व नहीं, विकल्प नहीं। यह अभेद अखण्ड आनन्दस्वरूप, इसकी दृष्टि करने से, इसमें ध्यान करने से आठों ही कर्म का नाश होता है।

भावार्थ :- जो अरहन्तरूप शुद्ध आत्मा का ध्यान करता है... देखो! आत्मा ही अरिहन्तस्वरूप ही है। अरिहन्त—अरि अर्थात् विकार अथवा शरीर का, कर्म का नाश करनेवाला। यह आत्मा का स्वभाव ही ऐसा है, ऐसा कहते हैं। अरिहन्तस्वरूप ही आत्मा है। उसे जो अन्दर ध्यावे, वस्तु आत्मा का जो प्रयत्न करके उसके लक्ष्य में एकाग्र हो, **उसके पूर्व कर्म का नाश होता है...** यह उपाय है।

वर्तमान में राग-द्वेषरहित होता है... वर्तमान में भी वीतरागता होती है, पूर्व के कर्म का नाश होता है, आगामी कर्म बाँधता नहीं। समझ में आया? अब कहते हैं कि वह तो भाई! मुनि की मुख्यता से बात की। परन्तु श्रावक को क्या करना? यह तो मुनि की मुख्यता से बात की। गौण श्रावक उसमें आ जाते हैं परन्तु मुख्य श्रावक का क्या करना?

गाथा-८५

आगे कहते हैं कि इस प्रकार मुनियों को प्रवर्तने के लिए कहा। अब श्रावकों को प्रवर्तने के लिए कहते हैं -

एवं जिणेहि कहियं सवणाणं सावयाण पुण सुणसु।
संसारविणासयरं सिद्धियरं कारणं परमं।।८५।।

एवं जिनैः कथितं श्रमणानां श्रावकाणां पुनः शृणुत।
संसारविनाशकरं सिद्धिकरं कारणं परमं।।८५।।

श्रमणार्थ जिन उपदेश ऐसा श्रावकार्थ कहें अभी।
है भव-विनाशक सिद्धि-कारक परम हेतु सुनें सभी।।८५।।

अर्थ - एवं अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार उपदेश तो श्रमण मुनियों को जिनदेव ने कहा है। अब श्रावकों को संसार का विनाश करनेवाला और सिद्धि जो मोक्ष उसको करने का उत्कृष्ट कारण ऐसा उपदेश कहते हैं, सो सुनो।

भावार्थ - पहिले कहा वह तो मुनियों को कहा और अब आगे कहते हैं, वह श्रावकों को कहते हैं, ऐसा कहते हैं जिससे संसार का विनाश हो और मोक्ष की प्राप्ति हो।।८५।।

गाथा-८५ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि इस प्रकार मुनियों को प्रवर्तने के लिये कहा। अब श्रावकों को प्रवर्तने के लिये कहते हैं :- लो! ८५।

एवं जिणेहि कहियं सवणाणं सावयाण पुण सुणसु।
संसारविणासयरं सिद्धियरं कारणं परमं।।८५।।

'**एवं जिणेहि कहियं**' वीतराग सर्वज्ञदेव ऐसा कहते हैं। '**सवणाणं सावयाण पुण सुणसु**' साधु को ऐसा कहा। अब श्रावक को क्या कहते हैं, वह सुन। देखो! सुन,

कहते हैं। '**संसारविणासयरं**' श्रावक का भी संसार का नाश करनेवाला। '**सिद्धियरं**' सिद्धि को देनेवाला। '**कारणं परमं**' उस मोक्ष के परम कारण की व्याख्या श्रावकों के लिये क्या है, यह कही जाती है।

अर्थ :- एवं अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार उपदेश तो श्रमण मुनियों को जिनदेव ने कहा है। वीतरागदेव त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने मुनि को तो अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है और उसका परिपूर्ण स्वरूप जो आत्मा का है, उसकी प्रतीति, ज्ञान और रमणता है, उसे अन्तर में एकाग्र करके ध्यान करना। उससे कर्म का नाश होता है। दूसरी कोई क्रिया से नाश नहीं होता। गजब!

अब श्रावकों को... कहते हैं। सुनो! जो कहूँगा वह **संसार का विनाश करनेवाला..** है। श्रावक को भी जो भाव कहूँगा, वह संसार का नाश करनेवाला है। **और सिद्धि जो मोक्ष उसको करने का उत्कृष्ट कारण...** संसार का नाश और सिद्धि की उत्पत्ति। संसार का व्यय और सिद्धि की उत्पत्ति का उत्कृष्ट कारण **ऐसा उपदेश कहते हैं...** (भगवान का है)।

भावार्थ :- पहिले कहा वह तो मुनियों को कहा और अब आगे कहते हैं, वह श्रावकों को कहते हैं, ऐसा कहते हैं जिससे संसार का विनाश हो... श्रावक को भी ऐसा उपदेश देते हैं कि जिस भाव से उसे संसार का नाश हो और मोक्ष की प्राप्ति हो।

गाथा-८६

आगे श्रावकों को पहिले क्या करना, वह कहते हैं -

गहिऊण य सम्मत्तं सुणिम्मलं सुरगिरीव णिक्कंपं।
तं झाणे झाइज्जइ सावय दुक्खक्खयट्ठाए।।८६।।

गृहीत्वा च सम्यक्त्वं सुनिर्मलं सुरगिरेरिव निष्कंपम्।
तत् ध्याने ध्यायते श्रावक! दुःखक्षयार्थे।।८६।।

यह सुर–गिरी–सम अचल निर्मल शुद्ध समकित ग्रहण कर।
नित दुःख–क्षय के लिए श्रावक! बस उसी का ध्यान धर।।८६।।

अर्थ – प्रथम तो श्रावकों को सुनिर्मल अर्थात् भले प्रकार निर्मल और मेरुवत् निःकंप अचल तथा चल मलिन अगाढ़ दूषणरहित अत्यंत निश्चल ऐसे सम्यक्त्व को ग्रहण करके दुःख का क्षय करने के लिए उसको अर्थात् सम्यग्दर्शन को (सम्यग्दर्शन के विषय का) ध्यान में ध्यान करना।

भावार्थ – श्रावक पहिले तो निरतिचार निश्चल सम्यक्त्व को ग्रहण करके उसका ध्यान करे, इस सम्यक्त्व की भावना से गृहस्थ के गृहकार्य संबंधी आकुलता, क्षोभ, दुःख हेय है, वह मिट जाता है, कार्य के बिगड़ने सुधरने में वस्तु के स्वरूप का विचार आवे, तब दुःख मिटता है। सम्यग्दृष्टि के इस प्रकार विचार होता है कि वस्तु का स्वरूप सर्वज्ञ ने जैसा जाना है, वैसा निरन्तर परिणमता है वही होता है, इष्ट–अनिष्ट मानकर दुःखी सुखी होना निष्फल है। ऐसा विचार करने से दुःख मिटता है, यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर है, इसीलिए सम्यक्त्व का ध्यान करना कहा है।।८६।।

गाथा–८६ पर प्रवचन

अब श्रावकों को पहिले क्या करना,... श्रावक को पहले क्या करना?

गहिऊण य सम्मत्तं सुणिम्मलं सुरगिरीव णिक्कंपं।
तं झाणे झाइज्जइ सावय दुक्खक्खयट्ठाए।।८६।।

अर्थ :- प्रथम तो श्रावकों को सुनिर्मल अर्थात् भले प्रकार निर्मल और मेरुवत् निःकम्प अचल तथा चल मलिन अगाढ़ दूषणरहित अत्यन्त निश्चल ऐसे सम्यक्त्व को ग्रहण करके... पहले तो उसे समकित को प्राप्त करना। श्रावक को पहले में पहले करनेयोग्य हो तो उसे सम्यग्दर्शन (प्रगट करना चाहिए)। कैसा है सम्यग्दर्शन? कि **भले प्रकार निर्मल और मेरुवत् निःकम्प...** है। शुद्ध चैतन्यद्रव्य की अन्तर्दृष्टि अनुभव में, वह निष्कम्प है। मेरुवत् निष्कम्प समकित है। जैसे त्रिकाल द्रव्य वस्तु अखण्ड ध्रुव नित्य है, वैसे उसका सम्यग्दर्शन भी मेरुवत् निष्कम्प है। अचल है–चलरहित है। अर्थात् कि चल, मलिन और अगाढ़ दोषणरहित।

अत्यन्त निश्चल ऐसे सम्यक्त्व को ग्रहण करके... ऐसा समकित को प्रथम ग्रहण करके... पहला उपदेश यह है, लो! भगवान का उपदेश पहला यह है। ऐई! प्रकाशदासजी! पहले महाव्रत ले लेना, अणुव्रत ले लेना, ऐसा नहीं – ऐसा कहते हैं। '**गहिऊण य सम्मत्तं सुणिम्मलं सुरगिरीव णिक्कंप**' प्रथम में प्रथम इसे द्रव्यस्वभाव परमानन्द ज्ञानमूर्ति प्रभु, द्रव्यवस्तु ज्ञायकभाव, कारणपरमात्मा की श्रद्धा अन्तर्मुख होकर मेरुपर्वत (के जैसी करना)। जैसे मेरु हिलता नहीं, वैसे उसका समकित चलित नहीं होता। **अत्यन्त निश्चल...** जिसे इन्द्र आवे तो चलित न हो, ऐसा समकित पहले इसे ग्रहण करना चाहिए। दुनिया की उल्टी प्ररूपणा, उल्टी मान्यतायें बहुत आती हैं। ऐसा होता है, इससे ऐसा होता है। शुभराग मन्द करते-करते समकित होता है, अमुक करते होता है, इन सब विपरीत श्रद्धा को छोड़कर... पोपटभाई! कठिन काम। एकदम समकित वापस.... पहला यह है।

सम्यक्त्व को ग्रहण करके दुःख का क्षय करने के लिये उसका अर्थात् सम्यग्दर्शन का ध्यान करना। आहाहा! समझ में आया? मुनि नहीं, उसे पहले समकित ग्रहण करना। पहले में पहला। समझ में आया? भगवान आत्मा ध्रुव, अचल, अखण्ड, अभेद, एकरूप शुद्ध, उसमें दृष्टि रखकर एकाग्र होकर सम्यक्त्व प्रगट करना। कहो, प्रकाशदासजी! यह तो पहली बात आयी। पहले क्या करना? समझ में आया? वह कहे, हम श्रावक हैं तो व्रत पालना, पहले ब्रह्मचर्य पालना? अब यह बात बाद में। छोड़ न। पहले सम्यग्दर्शन तो कर। समझ में आया?

कैसा? कहते हैं कि जैसे मेरुपर्वत नहीं फिरता। उसी प्रकार अन्दर श्रद्धा स्वरूप का अनुभव, रागरहित निष्क्रिय सम्यग्दर्शन। इस सम्यग्दर्शन में राग के अंश की मदद नहीं है। जिसे व्यवहार की अपेक्षा नहीं, ऐसा सम्यग्दर्शन आत्मा के द्रव्य को पकड़कर प्रगट करना। पहले में पहली यह बात है। कहो, समझ में आया? किसलिए? यह समकित ग्रहण करके ध्यान करना, उसका ही किसलिए? **दुःख का क्षय करने के लिये...** जिसे संसाररूपी दुःख की दशा उदयभाव की, उसका नाश करने के लिये समकित को ग्रहण करके समकित का ध्यान करना। आहाहा! कहो, समझ में आया?

भावार्थ :- श्रावक पहिले तो निरतिचार निश्चल सम्यक्त्व को ग्रहण करके

उसका ध्यान करे,... देखो! पहले तो यह पूर्ण प्रभु आत्मा... ऊपर कह गये न पूर्ण? मुनि के उपदेश में। पूर्ण केवलज्ञान-दर्शन ऐसे स्वभाव में दृष्टि देकर, एकाग्र होकर समकित ग्रहण करना। वह समकित ग्रहण करना। कोई समकित दे और ग्रहण किया, ऐसा नहीं। देते हैं न? समकित ग्रहण करो, जाओ। देव-गुरु-शास्त्र मानना।

मुमुक्षु : दीक्षा लो तो हमारे पास आना।

पूज्य गुरुदेवश्री : हमारे पास आना। ऐसा यह उसका अर्थ। समकित का अर्थ यह कि हमें मानना। वैराग्य हो तो हमारे पास आना। ऐसा उसका समकित। देनेवाला मिथ्यादृष्टि है, उसे भान नहीं कि समकित किसे कहना। समझ में आया?

वापस क्या कहा? '**झाणे झाइज्जइ सावय**' श्रावक को इस सम्यग्दर्शन को ग्रहण करके उसी और उसी को वापस ध्यान में ध्याना। वस्तु जो सम्यग्दर्शन का ध्येय और सम्यग्दर्शन का कारण, ऐसा जो द्रव्यस्वभाव, उसी और उसी का ध्यान करना। आहाहा! लो, यह क्या करना, वह आया। चन्दुभाई! कितने ही कहते हैं, परन्तु हमारे क्या करना? श्रावक को क्या करना?

मुमुक्षु : समकित का ध्यान?

पूज्य गुरुदेवश्री : समकित का, वह तो भाषा है। समकित का ध्यान क्या हो। समकित का अर्थ समकित ने यह द्रव्य पकड़ा है, उसका ध्यान करना अर्थात् वह समकित का ध्यान कहा जाता है। समकित तो पर्याय है। समझ में आया? पाठ तो यहाँ ऐसा आयेगा। परन्तु उसका आशय क्या? सम्यग्दर्शन अर्थात् परिपूर्ण ऐसी वस्तु है, (उसका) निष्क्रिय निर्मल सम्यग्दर्शन हुआ, तब उस सम्यग्दर्शन का ध्यान करना अर्थात् सम्यग्दर्शन का ध्येय जो द्रव्य है, उसका ध्यान करना, वह सम्यग्दर्शन का ध्यान कहा जाता है। समझ में आया? भारी सूक्ष्म, भाई! यह व्रत करना या तप करना या... भगवानजीभाई! अपवास करना, कन्दमूल नहीं खाना, सूर्यास्तपूर्व भोजन करना। भाई! अब छोड़ न, यह तो विकल्प की क्रिया है बाहर की। उत्तमचन्दभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : माहात्म्य बहुत होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत माहात्म्य होता है। सत्य बात है। बहुत जगह अभी वर्षा

बहुत आयी है न, इसलिए ठण्डक रही, इसलिए महीने-महीने के अपवास बहुतों ने किये हैं। स्थानकवासी में बहुत।

मुमुक्षु : ... किये।

पूज्य गुरुदेवश्री : ... किये हुए। वर्षा अच्छी आयी, इसलिए बहुत तकलीफ नहीं पड़ती। पानी पीवे तो भी। बाहर की बहुत गर्मी न हो, इसलिए कोई दिक्कत नहीं। अपवास हो, और शीतलता रहे और फिर मासखमण—एक महीने के अपवास। लंघन है। और उसमें मिथ्यात्व का पोषण है। उसे धर्म माने। मैंने आहार छोड़ा, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। आहार का धनी था, वह तूने छोड़ा? वह तो जड़ है। उसे अजीव का भी ज्ञान नहीं। अजीव छोड़ा छोड़े नहीं और आया आवे नहीं। वह तो उसके कारण से छूटता है। उसे जीव का ज्ञान नहीं कि जीव, अजीव को छोड़ नहीं सकता। बराबर होगा? रतिभाई! तुम्हारे गाँव में हुआ होगा या नहीं?

मुमुक्षु : बहुत हुए हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत हुए हैं।

मुमुक्षु : द्रव्य से लाभ और भाव से लाभ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कि द्रव्य से लाभ शरीर में भी निरोगता रहे और भाव से लाभ—तपस्या-निर्जरा हो। धूल भी नहीं होती, सुन न! अभी आत्मा वस्तु शुद्ध चैतन्यद्रव्य की दृष्टि सम्यक्त्व हुआ नहीं, उसे राग का स्वामीपना मिटता नहीं और परवस्तु के त्याग-ग्रहण का स्वामित्व टलता नहीं। समझ में आया? हमने आहार छोड़ा। आहार तो जड़ है। तुझमें प्रविष्ट हो गया था? घुस गया था, उसे छोड़ा? वह मिथ्यात्वभाव है। मिथ्यात्वभाव सेवन करे और माने कि हमारे तपस्या हुई, हमको निर्जरा हुई। अनादि से उल्टा ऐसा ही मारा है न इसने! समझ में आया?

मुमुक्षु : क्रियाकोष ग्रन्थ है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्रन्थ है। ग्रन्थ है क्रियाकोष। वह तो सम्यग्दर्शन के भान में राग की मन्दता के विकल्प कैसे होते हैं, उसकी वहाँ बात है। ठीक, सेठ भी बराबर याद रखते हैं। ऐसा कि क्रियाकोष है न। बात सच्ची। है न क्रियाकोष है अपने किशनदास का

क्रियाकोष है, सब है यहाँ। सब पढ़ा है। ग्रन्थ सब रखे हैं एक-एक (प्रत्येक)। सब ग्रन्थ पूरे देखे हैं। चिह्न भी किये हैं, वहाँ भी यह सम्यग्दर्शन की क्रिया बिना दूसरी क्रियाकोष की, राग की मन्दता आयी कहाँ से? समझ में आया?

यहाँ आचार्य भगवान कुन्दकुन्दाचार्य यह बात करते हैं, देखो! '**गहिऊण य सम्मत्तं**' कि पहले श्रावक को समकित ग्रहण करना। और वह समकित ग्रहण कैसे होगा? समझ में आया? '**झाणे झाइज्जइ सावय**' यह आत्मा ध्यान करनेयोग्य है, इसका ध्यान करे तो समकित हो और पश्चात् भी उसी और उसी का ध्यान करे। पश्चात् भी व्रत पालना, विकल्प करना और उससे फिर निर्जरा होगी, ऐसा नहीं है—ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। आहाहा! क्या कहते हैं? देखो न! '**झाणे झाइज्जइ सावय दुक्खक्खयट्ठाण**' '**सम्मतं**' समकित का ध्यान करना। पाठ तो ऐसा है। परन्तु उसका अर्थ यह। सम्यग्दर्शन, जिसमें प्रतीति में, अनुभव में आत्मा आया है। उस ज्ञायक पूर्ण अभेद चिदानन्द आत्मा की जो पर्याय में प्रतीति और निर्विकल्प श्रद्धा वर्तती है, वह विकल्प श्रद्धापर्याय का ध्यान करने जाने से द्रव्य का ही ध्यान होता है। समझ में आया?

सम्यक्त्व को ग्रहण करके उसका ध्यान करे,... पाठ तो ऐसा है न? समकित का ध्यान करना। इसका अर्थ यह। समकित तो पर्याय है। समकित पर्याय ने द्रव्य का आश्रय लिया है। इसलिए उस समकित पर्याय का ध्यान करने, पर्याय में एकाग्र होने जाने से वह द्रव्य में एकाग्र होता है। पर्याय में एकाग्र कहाँ से होता था? समझ में आया? कठिन बात!

मुमुक्षु : एकाग्र होना, वही सम्यक्त्व है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वह तो ठीक परन्तु वापस... यह दूसरी बात है। यहाँ तो समकित का ध्यान करना, ऐसा कहा है न? समकित तो पर्याय है। पर्याय का ध्यान किस प्रकार करना? पाठ तो ऐसा है। इसका अर्थ कि सम्यग्दर्शन ने जिस द्रव्य को पकड़ा और अनुभव किया है, उसी और उसी का ध्यान करना। जो पहला द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ, उसी और उसी का आश्रय फिर से लेना, ऐसा कहते हैं। पर के आश्रय से कहीं आत्मा को कर्म का क्षय नहीं होता। समझ में आया? भारी सूक्ष्म बातें। किसके लिये उसका ध्यान करना? कि दुःख के क्षय के लिये। कर्म के क्षय के लिये, (ऐसी) भाषा प्रयोग नहीं की है।

जो उदयभाव दुःख है, उदयभाव आकुलता, राग–द्वेष आकुलता। देखो! पुण्य और पाप के भाव दोनों आकुलता दुःख है। समझ में आया? भगवान आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है, आनन्द का धाम है, आनन्द का शाश्वत् स्थान है। ऐसा आत्मा, उसे अन्तर्मुख होकर अनुभव करके सम्यक्त्व प्रगट करना। आहाहा! और उसी और उसी का ध्यान करना, मूल तो ऐसा कहना है। जैसा स्वद्रव्य के आश्रय से सम्यक्त्व हुआ, पश्चात् भी उसे उग्ररूप से स्वद्रव्य का ध्यान–आश्रय करना। दूसरी कोई पर्याय का आश्रय या विकल्प के आश्रय से कुछ ध्यान नहीं होता। आहाहा! क्या हो? जगत को मूल बात में पहले से अन्तर पड़ गया है। समकित–बमकित कुछ नहीं। देव–गुरु–शास्त्र की श्रद्धा, वह समकित। अब मुंडाओ। पंच महाव्रत ले लो। फिर भटको अणुव्रत के आन्दोलन करने।

मुमुक्षु : इसी प्रकार का उपदेश है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसी प्रकार का उपदेश है। प्रकाशदासजी ने तो सब अनुभव किया है न? यह चलता है। मूल बात की खबर नहीं।

परमेश्वर वीतरागदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी ने इन तीन काल–तीन लोक को जाना, ऐसे परमात्मा की वाणी में श्रावक को पहले क्या करना, वह यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, यह आता है, भाई! समझ में आया? भगवान आत्मा आनन्द का धाम है, अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है। उसे राग की कीमत आती है, निमित्त की कीमत आती है और बहुत तो एक समय के उघाड़ की कीमत आती आती। परन्तु उस वस्तु की कीमत नहीं आती। समझ में आया? इसलिए कहते हैं कि पहले वस्तु का माहात्म्य कर और वस्तु की कीमत कर। इसके बिना तेरी सब बातें व्यर्थ हैं। आहाहा! समझ में आया?

दुःख का क्षय करने के लिये... भाषा प्रयोग की है, देखा! कर्म के क्षय के लिये, यहाँ शब्द प्रयोग नहीं किया है। इसका अर्थ कि पुण्य और पाप के दो विकल्प हैं, वे दुःख हैं, आकुलता है। इसे आत्मा के ध्यान द्वारा उस आकुलता का नाश करना, दूसरे प्रकार से नहीं होता। समझ में आया? श्रावक को यह तो कहा। प्रवचनसार में कहा, वह सब यहाँ आया। श्रावक को शुभभाव से मोक्ष परम्परा होता है। वह तो चरणानुयोग की बात में निमित्त की बात की है। उसे शुभभाव अधिक होता है, अशुभ टालने के लिये, ऐसा। परन्तु शुभभाव स्वयं क्या निर्जरा का कारण है?

यहाँ तो पुण्य और पाप दोनों के विकल्प हैं, वे सब दु:ख हैं, आकुलता है। भगवान तो अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति प्रभु है। ऐसे आनन्द के धाम की जिसने श्रद्धा-ज्ञान किये, उसे आनन्द के धाम का ही विशेष आश्रय करना। उससे दु:ख का नाश होता है। आहाहा! गजब! कहो, समझ में आया? वे क्रियावाले भड़कते हैं। हमारे सेठ ने क्रियाकोष याद किया न? क्रिया करने की है न? क्रियाकोष में आता है न सब विस्तार? ऐसा। बात सच्ची।

मुमुक्षु : ... यही पढ़ा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही पढ़ा है, बस। परन्तु पहले छोड़े किसे? आत्मा में पर के ग्रहण-त्याग का अभाव है। उसे आत्मा कहते हैं। आत्मा रजकण को ग्रहे और रजकण को छोड़े, ऐसा आत्मा में है नहीं। वह तो सच्चिदानन्द मूर्ति ज्ञान का पिण्ड आत्मा है। वह रजकण पकड़ा है तो रजकण को छोड़े? उसने आहार ग्रहण किया है तो आहार को छोड़े? वह तो परचीज़ है। आहार ग्रहण किया था तो अब छोड़ता हूँ, यह तो पर्यायबुद्धि-पर के स्वामीपने की बुद्धि हुई। उसे चैतन्य के स्वामीपने की खबर नहीं। समझ में आया? बात सच्ची। ओण वर्षा बहुत न चारों ओर, बहुत वर्षा। ४०-४० इंच। वह एक जन-भाई कल कहते थे। कैसा तुम्हारा गाँव? 'सियाणी' ६५ इंच। हिम्मतभाई का साला आया था। ६५ (इंच)। गाँवड़ा-'सियाणी', भलगाम सब देखे हैं न। लींबड़ी के बाद। सियाणी में गत वर्ष था चार इंच, इस वर्ष आया ६५ इंच। ... कल कहते थे। सियाणी, लींबड़ी, लींबड़ी है न? वहाँ छोटा गाँव है। ६५ इंच वर्षा। गत वर्ष चार इंच। कल रविन्द्र के मामा आये थे। उन्होंने कहा था। गत वर्ष चार इंच। वे वहाँ रहते होंगे।

मुमुक्षु : वे बैंक में मैनेजर हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैनेजर हैं? हाँ, ठीक। सियाणी में ठीक। आये थे। इस वर्ष ६५ इंच आयी। ६५ इंच वर्षा। वह तो परमाणु का परिणमन है। उसे किस काल में कैसे परिणमना, वह कहीं किसी के आधीन है?

यहाँ तो कहते हैं कि वह सब विकल्प की वृत्ति छोड़। यह आया और गया, वह सब धूल भी कुछ नहीं। समझ में आया? परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव वीतराग परमात्मा केवलज्ञान से देखकर दिव्यध्वनि में श्रावक को पहले क्या करना, वह यह आया

है। समझ में आया? ऐसे तो श्रावक अर्थात् श्रवण करना। परन्तु क्या श्रवण करना? कि ऐसी बात श्रवण करना। इसमें अर्थ है, श्रावक को श्रवण करना। इसमें है। श्रावक को श्रवण आता है न? श्र—श्रवण, व—विवेक, क—करना। ऐसे तीन बोल आते हैं। श्रावक—श्र। श्रवण करना। क्या? वीतराग की वाणी, अभेद स्वरूप को बतावे, उस वाणी को इसे श्रवण करना। और पश्चात् व अर्थात् विवेक करना। राग से भिन्न आत्मा को करके आत्मा की दृष्टि करना और फिर स्वरूप में स्थिर होना वह क—क्रिया।

मुमुक्षु : क—करणी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह करणी यह। किसका करना दूसरा? यह तो आया नहीं था अपने? नहीं कहा था? सेठ! उसमें ही कहा था न? बताया नहीं था? बताया था। करणी, हितहरणी सदा। नहीं आया था? ऐई! किसमें? मोक्ष में? सर्वविशुद्ध में आया था। प्रतिक्रमण की क्रिया? सर्वविशुद्ध अधिकार का। याद किया न सेठ ने।

देखो! यह तो आया था। '**करनी हित हरनी सदा, मुकति वितरनी नांहि**' करणी -विकल्प की क्रिया, वह सब हित की हरनेवाली है। राग है। मोक्षमार्ग में क्रिया का निषेध। सर्वविशुद्ध अधिकार। ९६वाँ श्लोक है। '**करनी हित हरनी सदा, मुकति वितरनी नांहि**' मुक्ति को देनेवाली नहीं। '**गनी बंध-पद्धति विषै,**' उसे बन्ध पद्धति में गिना है। '**सनी महादुखमांहि**' वह तो महादु:ख से सनी है, लिप्त है। वह पुण्यपरिणाम क्रियाकाण्ड के (परिणाम) वे महादु:ख से लिप्त है। ऐई! नवरंगभाई! '**करनीकी धरनीमें महा मोह राजा बसै,**' सेठ भी ठीक याद रखते हैं। पर्यूषण में ऐसा करो, ऐसा करो, यही चलता है। '**करनीकी धरनीमें महा मोह राजा बसै,**' उसमें कर्ताबुद्धि होती है, राग-मिथ्यात्व होता है। '**करनी अग्यान भाव राकिसकी पुरी है।**' समझ में आया? शरीर पुद्गल की मूर्ति राक्षस का नगर है। अज्ञानभाव तो राक्षस का नगर है। आहाहा!

भगवान आत्मा ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द निर्मलानन्द प्रभु में, यह शुभविकल्प की क्रिया राक्षस-राक्षस है। आत्मा की शान्ति को खा जाए, ऐसा शुभभाव है, यह कहते हैं। '**करनी करम काया**' यह शुभभाव की क्रिया तो कर्म की काया है, आत्मा की नहीं। '**पुग्गल की प्रतिछाया**' यह तो पुद्गल की छाया है। आत्मा नहीं। आत्मा कहाँ आया

शुभभाव में ? '**करनी प्रगट माया मिसरीकी छुरी है।**' शक्कर लपेटी हुई छुरी। शक्कर को ? छुरी। '**करनी के जालमैं उरझि रह्यो चिदानंद, करनीकी वोट ग्यानभाव दुति दुरि है।**' राग की पर्याय में लीन होने से इसका स्वभाव वहाँ ढँक जाता है। उसे राग की ओट में स्वभाव नजर में नहीं आता। '**आचारज कहे करनी सौ विवहारी जीव, करनी सदैव निहचे सुरूप बुरी है॥९७॥**'

'**अमृषा मोहकी परनति फैलीं। तातैं कर्म चेतना मैली॥**' यह शुभभाव कर्मचेतना। '**ग्यान होत हम समझी एती। जीव सदीव भिन्न परसेती॥९८॥**' इससे-राग से अत्यन्त भिन्न है। '**मैं त्रिकाल करनीसौं न्यारा। चिदविलास पद जग उजयारा॥ राग विरोध मोह मम नांही। मेरौ अवलंबन मुझमांही॥१००॥**' मेरा अवलम्बन मुझमें। राग की ओर का अवलम्बन मुझे लाभदायक नहीं है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कलश-कलश। यह ... अपने आवे...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा। ... कहा न। दोपहर में चलता है न, १४८ प्रकृति ? उसमें ... उसके ऊपर। ३७ नम्बर है। समझ में आया ? बनारसीदास।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो श्रावक को लेकर उपदेश है। क्या कहते हैं ? क्या लिखा ?

मुमुक्षु : त्यागी है तो उपदेश दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : त्यागी हो, वह उपदेश दे परन्तु श्रावक को वह उपदेश सुनना और यह करना न ? ऐसा कहते हैं। वह उपदेश मुझे ऐसा देता नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा कि त्यागी हमें ऐसा उपदेश नहीं देते। परन्तु भगवान ऐसा कहते हैं या नहीं ? समझ में आया ?

भावार्थ :- श्रावक पहिले तो निरतिचार निश्चल सम्यक्त्व को ग्रहण करके उसका ध्यान करें, इस सम्यक्त्व की भावना से... देखो ! भगवान आत्मा पूर्ण अतीन्द्रिय आनन्द का धाम, अतीन्द्रिय रस का सागर ऐसा भगवान आत्मा है। उस आनन्द को बाहर

में खोजने जाता है, वह मूर्ख है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं मोक्षहरणी, पण्डित जयचन्द्रजी ने (बहुत अच्छा लिखा है)। **सम्यक्त्व की भावना से गृहस्थ के गृहकार्य सम्बन्धी आकुलता, क्षोभ, दुःख होय है, वह मिट जाता है,...** समझ में आया? समकित की भावना से गृहस्थ को गृहकार्य सम्बन्धी आकुलता, क्षोभ, दुःख हो वह मिट जाता है। यह गृहस्थाश्रम में रहे हुए की बात है।

क्यों? कि **कार्य के बिगड़ने-सुधरने में वस्तु के स्वरूप का विचार आवे, तब दुःख मिटता है।** बिगड़े-सुधरे क्या? वस्तु का स्वभाव (ऐसा है), उसमें मैं क्या करूँ? यह लड़का मर गया, शरीर में रोग आया। परन्तु वह तो वस्तु का स्वभाव है। उसमें करना कहाँ? ...भाई! यह बीस वर्ष का पालन-पोषण करके, खर्च करके परीक्षा एल.एल.बी. की अन्तिम दी। बड़ी परीक्षा एक तो कहता था। वह क्या कहा जाता है तुम्हारे बड़ी परीक्षा को?

मुमुक्षु : आई.पी.एस।

पूज्य गुरुदेवश्री : आई.पी.एस. यहाँ एक मास्टर आये थे न? हिन्दुस्तान के पण्डित। आई.पी.एस. की परीक्षा दी लड़के ने। पूरी। आई.पी.एस. की बड़ी होगी। आठ दिन में मर गया। परीक्षा थी, देकर आठ दिन में मर गया। आहाहा! एक कोई आया था नहीं अपने? कहाँ का था?

मुमुक्षु : एक हिन्दी आया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हिन्दी आया था। वृद्ध। मास्टर थे, मास्टर थे। कहे, हमारे पास सीखा और फिर विलायत में परीक्षा भी दी। दी और आठवें दिन में तो मर गया। किसी परीक्षा? धूल की? समझ में आया? श्रावक को इस वस्तु का विचार आने पर ऐसा एक पुत्र इकलौता हो और ऐसा हो तो भी वस्तु का स्वभाव है। ऐसा करके उसे समता रहे। कहो, समझ में आया? देखो न! अपने यह मनसुखभाई नहीं? भावनगरवाले। अभी तो वढवाण गये थे। अभी वढवाण गये थे। आये थे। पाँच लड़कियाँ और एक ही लड़का। स्वयं की ५४ वर्ष की उम्र। एक ही लड़का १९ वर्ष का। मनसुखभाई आता है। वहाँ पोरबन्दर में। तुम तो कहाँ थे? पोरबन्दर गये थे। वढवाण रह गये थे। ५४-५५ वर्ष की उम्र है। पाँच लड़कियाँ। बड़ी लड़की का विवाह किया। लड़का वहाँ रहता है। पागल हो गयी। इसलिए

यहाँ घर में रखी है। चार लड़कियाँ और उसमें यह एक लड़का १९ वर्ष का। कुछ नाक का, क्या कहलाता है नाक का ? कुछ होगा। तो कहे, चल डॉक्टर के पास करावें। नाक का भाग होगा। १९ वर्ष का जवान। ऐसे कुछ नहीं। डॉक्टर के पास गये। कुछ ऑपरेशन करो। नाक का कुछ होगा। यह रहे नाक के सर्जन। हड्डी बढ़ती होगी। वे डॉक्टर के पास गये और कुछ दिया वहाँ उठ गया। खत्म। इकलौता १९ वर्ष का। डॉक्टर कहे कि कौन हैं इसके माता-पिता ? क्या कहना है तुम्हारे ? कि यह हुआ। कहा, उसमें हमें कोई हर्ष-शोक नहीं है। तुरन्त उसका पिता डॉक्टर को जवाब देता है। डॉक्टर कहे, आहा! यह इकलौता लड़का, कौन है पिता ? मैं हूँ। क्या है ? स्थिति पूरी हो गयी। समाधान करो। समाधान करने का हमारे नहीं। आत्मा समाधानस्वरूप है। ऐसा जवाब दिया। ऐई! मनसुख यहाँ आता है, नहीं ? रविवार को किसी समय आता है। कल था, कल था। वढवाण गये थे। वढवाण नहीं, कांप... कांप। पहले हम (संवत्) १९९९ में आये, तब उसके शक्कर का कारखाना था। वहाँ उतरे थे। रतिभाई कहाँ गये ? चिमनभाई! चिमनभाई नहीं ? वह कारखाना नहीं था पीछे ? वहाँ उतरे थे न ? १९९९ में वहाँ उतरे थे। शक्कर का कारखाना था। डॉक्टर वह हो गया। डॉक्टर कहे, परन्तु यह पाव घण्टे में, हों! हिलता-चलता। कुछ नहीं। मात्र ... एकदम क्या हुआ कौन जाने, गुजर गया। डॉक्टर को ऐसे त्रास हो गया, कहना किस प्रकार ? यह लड़का जवान, १९ वर्ष का जवान। कौन है इसके सगे ? क्या कहना है तुम्हारे ? फेल हो गया है। हमको कुछ है नहीं। हमको कुछ है नहीं, डॉक्टर! खेदखिन्न होना नहीं। डॉक्टर को कहते हैं, खेदखिन्न होना नहीं। होने के काल में होता है। यह पर्याय क्रमबद्ध में आयी, उसे बदले कौन ? ऐई! चन्द्रकान्तभाई!

देखो! इसे श्रद्धा और ज्ञान का भान हो तो **कार्य के बिगड़ने-सुधरने में वस्तु के स्वरूप का विचार आवे, तब दुःख मिटता है।** यह तो वस्तु की स्थिति जैसी थी, ऐसा होता है। उसमें दूसरा क्या हो ? इन्द्र-नरेन्द्र भी किसी को एक समय रख सकते हैं ? क्या है ? समझ में आया ? अभी श्रद्धा हो व्यवहार की तो भी ऐसी समता होती है। सम्यग्दर्शन में तो त्रिकाल त्रिकाल। उस चीज़ की स्थिति ही ऐसी है। अरे! परन्तु यह पैदा किये पाँच लाख और सवेरे चोर उठा ले गया। कहाँ से खबर पड़ी ? वह वस्तु की स्थिति ऐसी है। जो वस्तु की स्थिति वहाँ जाने की थी, उसमें कोई फेरफार नहीं कर सकता। समझ में

आया? आहाहा! परन्तु कल पाँच लाख पैदा करके आये, हीरा-माणेक रखे हैं उसमें। किसे खबर पड़ गयी? सवेरे उघाड़े तो कुछ नहीं मिलता। उस लड़के का दृष्टान्त दिया, यह पैसे का दृष्टान्त। जरा सोता हो स्वयं खा-पीकर निश्चिन्त। सवेरे जहाँ उठे वहाँ एकदम अरे! यह क्या हुआ? क्या कहा?

मुमुक्षु : सवेरे उठे तो चला गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह हो गया। हाय-हाय! अरे! यह क्या हो गया? यह हाथ चलता नहीं। शरीर की अवस्था उस काल में वही होनेवाली है, उसमें फेरफार करने के लिये कोई समर्थ नहीं है। सम्यग्दर्शन हो तो वस्तु बिगड़ने-सुधरने का खेद नहीं हो सकता। समझ में आया?

कार्य के बिगड़ने-सुधरने में वस्तु के स्वरूप का विचार आवे,... देखो! बिगड़ना -सुधरना अर्थात् क्या? वह तो उस समय की पर्याय... आहाहा! जड़ की अवस्था जड़ के कारण से होनेवाली हो, वह होती है। भगवानजीभाई! आहाहा! सहज ऐसा हो कि दो-पाँच लाख का माल हो, वहाँ सुलगे, बीमावाला भागे। यहाँ पड़े दुष्काल, पाँच लाख की उगाही हो, वह जाये। और शरीर में धड़ाका लगता रोग आवे, लड़का बीमार पड़े, लड़की विधवा हो जाये, लड़की मर जाये, उसकी दिक्कत नहीं। बीस वर्ष की ऐसी छह महीने की विवाहित विधवा हो। हाय-हाय क्या हुआ? पन्द्रह दिन में विधवा, मर जाते हैं न। यह कहते हैं कि यदि सम्यग्दर्शन हो तो समाधान कर सके। समझ में आया? इकलौता लड़का चला जाये और वह पन्द्रह-सोलह वर्ष की छोड़कर कच्चे सांठे जैसी। हाय-हाय। हाय-हाय क्या है? सुन न। आनन्द है, कह न। यह तूने हाय-हाय कहाँ लगायी? वस्तु का स्वभाव ऐसा है। उस समय वह होनेवाला था। कर न समाधान। पण्डितजी! अजीव की पर्याय वह होनेवाली थी, भाई! वह कहीं नयी नहीं हुई।

वस्तु के स्वरूप का विचार आवे, तब दुःख मिटता है। दुःख कैसा? हम तो आनन्दमूर्ति हैं, आनन्द के धाम हैं। कोई भी क्षेत्र-काल-भाव में हमको दुःख है नहीं। आहाहा! गृहस्थाश्रम में रहे होने पर भी, हों! यह उसकी बात चलती है। अकस्मात हो जाये, फेरफार हो जाये, सब बदले, भाई! समझ में आया? **सम्यग्दृष्टि के इस प्रकार**

विचार होता है कि वस्तु का स्वरूप सर्वज्ञ ने जैसा जाना... देखो! लो आया, भाई! यह तो वे कहते हैं। सर्वज्ञ ने देखा, वैसा होता है, ऐसा कहाँ तुम सहारा लेते हो? ऐसा कहते हैं न वे लोग? क्रमबद्ध होता है। कैसे सर्वज्ञ ने देखा, ऐसा हो, यह क्या करने को कहते हो। सुन न अब!

मुमुक्षु : यह तो मूल बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मूल बात है।

सम्यग्दृष्टि के इस प्रकार विचार होता है कि वस्तु का स्वरूप सर्वज्ञ ने जैसे जाना, वैसा निरन्तर परिणमता है... भगवान ने जैसा जहाँ परिणमन देखा, वहाँ परिणमन उसके कारण से होता है। उसमें फेरफार करने को कोई समर्थ नहीं है। 'जो जो देखी वीतराग ने सो सो होंशी वीरा।' – यह आता है या नहीं?

मुमुक्षु : अनहोनी होने...

पूज्य गुरुदेवश्री : 'अनहोनी कबहु न होवे काहे होत अधिरा, काहे होत अधिरा?' यह भैया भगवतीदास का है। यहाँ पुस्तक है। भैया भगवतीदास (कृत) उसमें है। 'जो जो देखी वीतराग ने, सो सो होंशी वीरा रे, अनहोनी कबहु न होंशी, काहे तू होत अधीरा रे।' क्यों अधीर होता है? नया होता है तेरे लिये? जगत की जड़ और चैतन्य की पर्याय भगवान ने देखी, तत्प्रमाण होती है। घटे न बढ़े। वह है न उसमें? समझ में आया? उसका भी मिथ्या ठहराते हैं। देखो! परन्तु उसमें ऐसा कहा है। पश्चात् बाद की कड़ी डालते हैं। ऐसा करके समता रख, ऐसा कहते हैं। देखो! समता रखने का प्रयत्न किया या नहीं? वहाँ कहाँ क्रमबद्ध आया? और ऐसा कहा भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : यही क्रमबद्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! परन्तु यही क्रमबद्ध है वहाँ।

मुमुक्षु : भाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ठीक कहते हैं। ऐसा नहीं। जो हुआ, वह वैसा ही होनेवाला है। उसमें दूसरी कोई बात थी नहीं। ऐसा। उपाय करे परन्तु न हो तो भी समाधान रखे,

ऐसा कहते हैं। पहले करने की तड़पहाड़ट मारे। फिर न हो तो कुछ नहीं। यह कहाँ समाधान रखा ?

मुमुक्षु : वह तो हार गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो हार गया, इसलिए पहुँचा नहीं। उसे पहुँच सका नहीं। नहीं तो मेरे ऐसे होने देना था, ऐसे होने देना था। क्या हो ? जड़ की क्रिया देह की, वाणी की जो अवस्था जिस काल में जैसी होनेवाली हो, वैसी होती है। उसे तू रोक नहीं सकता और टाल नहीं सकता। कहो, रतिभाई ! ऐसा समकित के माहात्म्य में वस्तु के स्वभाव का विचार आने पर उसे समाधान और शान्ति होती है। आहाहा !

दो-दो लाख रुपये खर्च करके अमेरिका भेजा हो और बड़ी परीक्षा देकर पाँच हजार का वेतन देता हो। वहाँ से उतरते हुए कहीं पड़ा जहाज में से नीचे। उतरते हुए गिरा समुद्र में। हाय-हाय। यह वडिया दरबार के हुआ था न ? यह वडिया नहीं तुम्हारा ? वह दरबार समुद्र में ... समुद्र में किसी ने डाल दिया था। वह दरबार उसका पिता था वह। अपने व्याख्यान में आते थे न वे दरबार ? वे गुजर गये। वे गुजर गये परन्तु उनका पिता था वह। जाते थे मुम्बई। चाहे जैसे हुआ। समुद्र में किसी ने... दरबार थे। सब होशियार, हों ! संसार के बहुत चतुर थे। वे एक, यह 'कलापी'। 'लाठी' का दरबार। वह लौकिक में होशियार कहलावे। और तीसरे यह राजकोटवाले बगसरा के। तीनों मित्र थे। तीनों मित्र थे, मित्र थे। राजकोटवाले तो हमारे पास बहुत आते थे न। यहाँ आते थे। वहाँ हम गये थे। उनके गाँव में गये थे न। 'वडाळा'। आहाहा ! दरबार का मुर्दा हाथ नहीं आया। किसने कैसे धक्का मारा या क्या हुआ समुद्र में। ऐसा होनेवाला था। नया नहीं हुआ। दूसरा तो निमित्त मात्र कहलाता है। वह होने की क्रिया तो वही होनेवाली थी। हाय-हाय। अन्तिम मुख भी नहीं देखा। महिलायें और ऐसी बातें करे। भीखाभाई ! अन्तिम मुख भी नहीं देखा। कैसे हुआ ? अरे ! मुर्दा देखा होता और फिर जलाया होता तो दिक्कत नहीं। ऐसे अरमान करे। मूढ़ को इन अरमान का कुछ पार है ? खोज निकाले। ऐसी महिलायें होती हैं न कितनी ही। धूल भी नहीं, सुन न ! मुँह किसका ? वह जड़ का। जड़ की पर्याय उस काल में वैसी होनेवाली थी। तेरा सगा पुत्र हो या पति हो। समता। समकिती महिला हो, उस समय उस प्रकार का होनेवाला है, उसमें हमें शोक और हर्ष है नहीं। आहाहा !

एकदम अकस्मात् पाँच-दस-पच्चीस लाख पैसा (रुपये) आवे तो ज्ञानी को हर्ष नहीं। वह वस्तु की स्थिति है। कोई पड़ी होगी पुण्य प्रमाण। समझ में आया? घर में खोदते हुए निकले पाँच करोड़ और दस करोड़। राजा के दबाये हुए कोई हीरा निकले। कुछ नहीं। वह जगत की चीज़ है। वह आयी तो भी क्या? मुझे कहाँ है? ऐसा जिसे वस्तु में विचार आने पर उसे उस काल में हर्ष नहीं आता, प्रतिकूलता में उसे शोक नहीं आता। ऐसा है। उसे धर्मी कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

वस्तु का स्वरूप सर्वज्ञ ने जैसा जाना है, वैसा निरन्तर परिणमता है... निरन्तर जड़ और चैतन्य की पर्याय उसरूप से होती है। उसमें भी आता है। श्वेताम्बर में भी आता है। देवचन्दजी ने स्तुति की है न शीतलनाथ की। 'द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव...' फिर चार आते हैं न, गुण। 'द्रव्य क्षेत्र और काल भाव गुण, राजनीति ये चार जी, जड़ चेतन की...' क्या है? आज्ञा ऐसा कि ... बिना जड़ चेतन की परिणति होती नहीं। भूल गये। कोई न रोके।

मुमुक्षु : त्रास बिना।

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रास बिना। हाँ। 'द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव गुण राजनीति ये चार जो। त्रास बिना जड़ चेतन प्रभु की कोई न लोपे कारजी' कार-आज्ञा। त्रास नहीं जड़ चैतन्य को। उनकी परिणति जैसी भगवान ने देखा है, तत्प्रमाण जड़-चेतन की पर्याय तत्प्रमाण परिणमती है। 'त्रास बिना जड़ चेतन परिणति कोई न लोपेकार।' प्रभु! तेरी आज्ञा कोई नहीं लोपता। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कहकर भी सम्यग्दृष्टि ऐसे विचारकाल में समता रखता है। प्रतिकूलता में शोक नहीं और अनुकूलता में हर्ष नहीं। परन्तु प्रतिकूल-अनुकूल कहना किसे? वह तो ज्ञेय है। ऐसा विचार रखकर धर्मी को समता रहती है। समझ में आया?

इष्ट-अनिष्ट मानकर दुःखी-सुखी होना निष्फल है। ऐसा विचार करने से दुःख मिटता है,... देखो! **यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर है, इसलिए सम्यक्त्व का ध्यान करना कहा है।** लो! श्रावक को ऐसा समकित ग्रहण करके और पश्चात् भी समकित का ध्यान करना। उससे दुःख का नाश होता है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-९५, गाथा-८७ से ८९, बुधवार, भाद्र कृष्ण ९, दिनांक २३-०९-१९७०

८६ गाथा हो गयी। ८६ में ऐसा कहा कि '**झाणे झाइज्जइ सावय**' प्रथम शब्द रखा है न? प्रथम का अर्थ यह। भले अन्दर प्रथम न हो, परन्तु श्रावक, ऐसा कहा न? श्रावक तुझे पहले समकित का ध्यान करना, समकित प्रगट करना। पहले में पहले यह है। '**तं झाणे झाइज्जइ सावय**' श्रावक, ऐसा कहा न फिर? परन्तु उसका अर्थ निकाला कि आचार्य श्रावक को कहना चाहते हैं, उसमें यह पहला कहना चाहते हैं। इसलिए इसमें से प्रथम निकाला। समझ में आया? श्रावक को पहले यह करने का है, ऐसा कहते हैं।

सम्यग्दर्शन '**दुक्खक्खयट्ठाण।**' आया न? दुःख का नाश करने के लिये समकित, वह उसे ग्रहण करना चाहिए। यह पहले में पहला श्रावक का उपाय है। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह तो जन्मते सम्यक्त्व है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जन्मते सम्यक्त्व हो गया। दिगम्बर में जन्मे, इसलिए हो गया भेदज्ञानी। ऐसा कहते हैं। कहते हैं न एक पण्डित? यह कहते हैं।

मुमुक्षु : जीव-अजीव का तो भेदज्ञान हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : जीव-अजीव का कहाँ भान है? यहाँ विकल्पमात्र अजीव है और चैतन्यमात्र अकेला आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव है। यहाँ तो बाह्य लक्षण वर्णन करेंगे। ऐसे आत्मा के अन्तर अन्तर्मुख होकर, अन्तर्मुख ऐसा जो आत्मतत्त्व, उसकी निश्चल मेरु की भाँति, गिरि मेरु। आया न ... गिरि? निकम्प सम्यग्दर्शन। कोई देव और कुदेव आदि चलित करे तो भी चलित नहीं। यह पहली यह सीख है। वहाँ ऐसा नहीं कहा कि हे श्रावक! पहले पूजा करना, भक्ति करना, व्रत पालना। ऐसा कहा है? कपूरचन्दजी! देखो! ऐसा, ऐसा कहा है।

मुमुक्षु : करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले करना यह।

देखो! कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं), श्रावक, ऐसा शब्द पड़ा है। हे श्रावक! भो श्रावक!

ऐसा है कहीं। करने का हो तो तुझे पहले में पहली चीज़ सम्यग्दर्शन और उसका विषय ध्रुव चैतन्यमूर्ति भगवान को अन्तर में निर्विकल्परूप से प्रतीति करके उसका ही ध्यान लगाना। '**झाइज्जइ**' है न? अथवा सम्यग्दर्शन का विषय-ध्येय ध्रुव चैतन्य है, उसे पकड़कर सम्यग्दर्शन ही पहली दशा प्रगट करना। कहो, समझ में आया? अधिकार मोक्षमार्ग का चलता है। मोक्ष का। तो भी समकित की मुख्यता। इसके बिना दूसरा कुछ नहीं है। सच्चा और कच्चा सब कच्चा है।

गाथा-८७

आगे सम्यक्त्व के ध्यान ही की महिमा कहते हैं –

सम्मत्तं जो झायइ सम्माइट्ठी हवेइ सो जीवो।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माणि।।८७।।

सम्यकत्वं यः ध्यायति सम्यग्दृष्टिः भवति सः जीवः।
सम्यक्त्वपरिणतः पुनः क्षपयति दुष्टाष्टकर्माणि।।८७।।

सम्यक्त्व को जो जीव-ध्याता कहा सम्यक्त्वी वही।
दुष्टाष्ट कर्म विनष्ट करता परिणतिमय समकिती।।८७।।

अर्थ – **जो श्रावक सम्यक्त्व का ध्यान करता है, वह जीव सम्यग्दृष्टि है और सम्यक्त्वरूप परिणमता हुआ दुष्ट आठ कर्मों का क्षय करता है।**

भावार्थ – **सम्यक्त्व का ध्यान इस प्रकार है – यदि पहिले सम्यक्त्व न हुआ हो तो भी इसका स्वरूप जानकर, इसका ध्यान करे तो सम्यग्दृष्टि हो जाता है। सम्यक्त्व होने पर इसका परिणाम ऐसा है कि संसार के कारण जो दुष्ट अष्ट कर्म उनका क्षय होता है, सम्यक्त्व के होते ही कर्मों की गुणश्रेणी निर्जरा होने लग जाती है, अनुक्रम से मुनि होने पर चारित्र और शुक्लध्यान इसके सहकारी हो जाते हैं, तब सब कर्मों का नाश हो जाता है।।८७।।**

गाथा-८७ पर प्रवचन

अब कहते हैं कि .... ८७। **सम्यक्त्व के ध्यान ही की महिमा कहते हैं :-** ८७।

सम्मत्तं जो झायइ सम्माइट्ठी हवेइ सो जीवो।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माणि।।८७।।

उसमें '**दुक्खक्खयट्ठाण**' था। इसमें आठ कर्म को खिपाने के लिये समकित का ध्यान करना, (ऐसा है)।

अर्थ :- जो श्रावक सम्यक्त्व का ध्यान करता है... क्यों देरी हुई ? पाँच मिनिट देरी हुई। रेल में देरी नहीं होती। रेल में देरी होती है ?

मुमुक्षु : आजकल...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आजकल नहीं, सदा देरी नहीं होती। बिगड़े, वह अलग बात है।

श्रावक सम्यक्त्व का ध्यान करता है... पहले में पहला आचरण कर्तव्य निश्चय सम्यग्दर्शन। वही न प्रगटा हो तो भी उसे पहले समकित का ध्यान करना, ऐसा यहाँ कहते हैं। **वह जीव सम्यग्दृष्टि है और सम्यक्त्वरूप परिणमता हुआ...** समकितरूप परिणमन। अन्दर निर्विकल्प ध्रुव स्वरूप... समझ में आया ? ऐसा जो आत्मद्रव्य स्वभाव, उसे ध्येय अर्थात् लक्ष्य में लेकर, सम्यग्दर्शन का विषय बनाकर पहले सम्यग्दृष्टि होना और पश्चात् भी **सम्यक्त्वरूप परिणमता हुआ...** उसरूप स्वभाव सन्मुख का परिणमन करते-करते **आठ कर्म उनका क्षय करता है।** लो! इतना वजन कुन्दकुन्दाचार्यदेव मोक्षपाहुड़ में देते हैं। समकित में तो—दर्शनपाहुड़ में तो आ गया था। समझ में आया ? कहो, सेठ! पहले यह करना, ऐसा कहते हैं। यह दान करना, पूजा करना, अमुक करना, इससे समकित हो जाये-ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भावार्थ :- सम्यक्त्व का ध्यान इस प्रकार है - यदि पहिले सम्यक्त्व न हुआ हो तो भी इसका स्वरूप जानकर इसका ध्यान करे तो सम्यग्दृष्टि हो जाता है। इसका स्वरूप जानकर इसका ध्यान करे तो सम्यग्दृष्टि हो जाता है—यह वजन है। समझ में

आया ? **सम्यक्त्व न हुआ हो तो भी इसका स्वरूप जानकर...** सम्यग्दर्शन में व्यवहार क्या है और निश्चय क्या है ? व्यवहार का दृष्टान्त यहाँ तो देंगे। समकित का .... का। परन्तु निश्चय और व्यवहार क्या है, उसे बराबर जानकर समकित / श्रद्धा, उसका विषय ध्रुव, उसका ध्यान करने से समकित न हो तो भी समकित होता है। उसका ध्यान करने से समकित होता है। कोई व्यवहार से-निमित्त से हो, इस बात का यहाँ निषेध किया है।

मुमुक्षु : बाहर की सहायता...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहा ?

आत्मा अखण्ड ज्ञायकभाव परिपूर्ण द्रव्यस्वभाव पहले जानना। व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र को पहले जानना। जानकर समकित का विषय जो चैतन्य ध्रुव, उसका ध्यान करने से समकित प्रगट होता है। समकित कोई व्यवहार समकित से निश्चय होता है या बाह्य वेदना-शास्त्र में आता है न ? नारकी में बहुत वेदना से समकित होता है, देव की ऋद्धि देखकर समकित होता है। समझ में आया ? यह सब तो निमित्त के कथन हैं। समकित प्राप्त करने का यह मूल साधन नहीं है। मूल साधन तो समकित का स्वरूप **इसका स्वरूप जानकर... इसका स्वरूप जानकर...** समकित का स्वरूप निर्विकल्प प्रतीति और उसका आश्रय त्रिकाली ज्ञायकभाव। यह सर्वज्ञ ने कहा हुआ परमेश्वर वीतरागदेव ने कहा हुआ आत्मा। इसके अतिरिक्त दूसरों ने आत्मा जाना, ऐसा वह नहीं हो सकता। अन्यमत में उस आत्मा का ध्यान नहीं हो सकता, क्योंकि आत्मा ऐसा ही जिसने जाना नहीं। समझ में आया ? पहले यह करना। ऐई ! प्रकाशदासजी ! महाव्रत ले-लेकर अणुव्रत का आन्दोलन करना (ऐसा नहीं)।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। यह तो एक। यह तो जानने की। जानने की बात है। जीव अनादि से यही करता है न। आहाहा !

पहले में पहला मोक्षमार्ग के अधिकार में—मोक्षप्राभृत में समकित को पहले अंगीकार करना। अंगीकार कहीं ... बाहर से समकित नहीं। इसलिए कहा न ? **इसका स्वरूप जानकर...** समकित का स्वरूप निर्विकल्प प्रतीति। और निर्विकल्प प्रतीति

निर्विकल्प द्रव्यस्वभाव के आश्रय से होती है। आहाहा! समझ में आया? जिसे धर्म करना हो, हित करना हो, ऐसे गृहस्थ को भी पहले क्या करना, उसकी यहाँ बात चलती है। समझ में आया?

सम्यक्त्व का ध्यान इस प्रकार है - यदि पहिले सम्यक्त्व न हुआ हो तो भी इसका स्वरूप जानकर... निश्चयसम्यग्दर्शन वीतरागी पर्याय है। वीतरागी पर्याय का ध्येय द्रव्य है। समझ में आया? द्रव्य अर्थात् वस्तु अखण्ड, अभेद। **इसका ध्यान करे तो सम्यग्दृष्टि हो जाते हैं।** इस प्रकार विकल्प से, कषाय मन्द करने से और बाह्य के आचरण में जरा सुधार करने से समकित हो जाता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? कितनी स्पष्ट बात रखी है। **इसका (सम्यग्दर्शन) स्वरूप जानकर इसका ध्यान करे...** शुद्ध चैतन्य ज्ञायक आनन्दकन्द प्रभु वह समकित का आश्रय है। उसके आश्रय से समकित होता है। इसलिए वस्तु का स्वरूप जानना और समकित का स्वरूप जानना, उसे समकित कहा जाता है और उसका आश्रय द्रव्य, ऐसा द्रव्य हो-ऐसा जानकर समकित का ध्यान करने से **सम्यग्दृष्टि हो जाता है।** दूसरे प्रकार से समकित हो जाये, ऐसा है नहीं। ऐसा हुआ या नहीं इसमें? कहीं यह देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति करने से समकित होगा। ऐई! कपूरचन्दजी! ऐसा इसमें लिखा है। वह आवे भले परन्तु वह शुभभाव है। शुभभाव से समकित हो, ऐसा नहीं है। समकित की रीति की उत्पत्ति की भी इसे खबर नहीं, ऐसा कहते हैं। देखो न, आचार्य स्वयं पुकार करते हैं। श्रावक का तो अधिकार लिया ८६ में। समझ में आया? ८५ में यह लिया। श्रावक और साधु दोनों सुनो। ऐसा कहा न? देखो! ऐसा कहा है ८५ में।

एवं जिणेहि कहियं सवणाणं सावयाण पुण सुणसु।
संसारविणासयरं सिद्धियरं कारणं परमं ।।८५।।

मोक्ष का परम कारण यह सम्यग्दर्शन है, उसे तू सुन। फिर उसका स्वरूप जानना। ऐसा का ऐसा ध्यान करने बैठ जाये, ऐसा नहीं। सर्वज्ञ ने कैसा आत्मा कहा है, उसे नय, निक्षेप, प्रमाण से पहले जानना। असंख्य प्रदेशी, अनन्त गुण का एकरूप अभेद किस प्रकार से है? उसकी पर्याय अनन्त गुण की कैसी है? विकार कैसे है? निमित्त कैसे है? उसके भलीभाँति सब पहलू जैसा उनका स्वरूप है, वैसा जानना। जानकर स्वभाव-सन्मुख का आश्रय करना।

मुमुक्षु : भगवान ने कहा, वह सत्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा चले? भगवान ने कहा, वह सत्य है। नेमिदासभाई ने कहा वह सत्य है। उनके पास पैसे कितने, हमें कुछ खबर नहीं। वे कहे वह सच्चा। ऐसा माना जाता है? उसे खबर होनी चाहिए न यह क्या वस्तु है। समझ में आया? इसे खबर बिना क्या भगवान ने कहा? भगवान ने क्या कहा? परन्तु क्या कहा? यह तो उसे खबर नहीं। खबर बिना भगवान ने कहा, वह सच्चा कहाँ से आया? उसके ज्ञान में सच्चेपने का भान हो, तब उसे सच्ची प्रतीति होती है। तब 'त्वमेव सत्यं'—ऐसा कहा जाता है।

और, **सम्यक्त्व होने पर इसका परिणाम ऐसा है...** देखो! समकित होने से परिणाम समकिती के ऐसे हैं कि **संसार के कारण जो दुष्ट अष्ट कर्म उनका क्षय होता है,...** समझ में आया? उसमें-धवल में आता है न जिनबिम्ब के दर्शन से निद्धत और निकाचित कर्म का नाश होता है। यह तो निमित्त के कथन हैं। जिनबिम्ब आत्मा है। समझ में आया? ऐसा सामने देखे, वह तो विकल्प-राग है। समझ में आया? देखो! यह कहा। वहाँ निद्धत और निकाचित का नाश कहा, यहाँ दुष्ट अष्ट कर्म का नाश कहा। समकित से दुष्ट अष्ट कर्म का नाश होता है। समझ में आया? और समकित का ध्येय और विषय तो त्रिकाली ज्ञायक है। पूरी वस्तु, पूर्ण वस्तु। एक समय की पर्याय पूर्ण वस्तु को प्रतीति करती है। समझ में आया?

संसार के कारण जो दुष्ट अष्ट कर्म उनका क्षय होता है,... उनका क्षय करता है। **सम्यक्त्व के होते ही कर्मों की गुणश्रेणी निर्जरा होने लग जाती है,...** देखो! सम्यग्दर्शन होते ही कर्म की गुणश्रेणी, कर्म खिरने ही लगते हैं। धारावाही कर्म खिरने लगते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? उसमें इनकार किया है न गुणश्रेणी का? मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। वह तो ऊपर की अपेक्षा से बात है। बाकी वहाँ गुणश्रेणी निर्जरा है। देखो न! यहाँ। आहाहा! **अनुक्रम से मुनि होने पर...** देखो! समकित में से गुणश्रेणी कर्म की धारा क्षय होने लगती है पश्चात् मुनि हो, चारित्र अन्दर में प्रगट करे, संयम चारित्रदशा, वीतरागीदशा चारित्र।

चारित्र और शुक्लध्यान इसके सहकारी हो जाते हैं,... देखो! क्या कहा? **मुनि**

होने पर चारित्र और शुक्लध्यान इसके (समकित के) सहकारी... भाई! ऐई! मुख्य समकित। उसका सहकारी चारित्र और शुक्लध्यान। समझ में आया? इतना वजन यहाँ दिया है। **अनुक्रम से मुनि होने पर चारित्र...** अर्थात् कि सम्यग्दर्शन शुद्ध चैतन्य वस्तु, निष्क्रिय ऐसा जो आत्मस्वभाव, इसमें दृष्टि पसारने से समकित का परिणमन उसे होता है। कहो, समझ में आया? **मुनि होने पर चारित्र और शुक्लध्यान इसके...** इसके अर्थात्? समकित हो, उस समकित को। समकित को चारित्र और शुक्लध्यान सहकारी है। साथ दिया है। समझ में आया? हें! ... सम्यक् ऊपर है न पूरा? कि जिस ध्येय को पकड़कर दर्शन हुआ, उसी और उसी को जब स्थिर हो, तब उस सम्यग्दर्शन का सहकार है। बाकी मूल तो सम्यग्दर्शन पूरे द्रव्य को पकड़ा है, वह साधन है, ऐसा। समझ में आया?

मुमुक्षु : चारित्र मुख्य नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन की प्रधानता वर्णन करनी है न यहाँ? मूल चीज़ यह है न? इसका मूल यह है। दंसण मूलो धम्मो। धर्म का मूल दर्शन / समकित है। समकित बिना उसे चारित्र क्या? ओर समकित होने के पश्चात् चारित्र हुआ, वह सहकारी कहने में आया है। उसे उसने मदद की है, ऐसा कहते हैं। स्वयं ही परिणमन करता है, उसमें चारित्र की मदद है और शुक्लध्यान की मदद है। आहाहा!

मुमुक्षु : गुणश्रेणी चौथे से?

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे से शुरुआत होती है न। समझ में आया?

सम्यक्त्व के होते ही कर्मों की गुणश्रेणी निर्जरा होने लग जाती है, अनुक्रम से... ऐसा कि अशुद्धता घटती जाती है। **मुनि होने पर चारित्र...** हो गया अन्दर। स्वरूप की लीनता, प्रचुर स्वसंवेदन और शुक्लध्यान, उसका नाम समकित के **सहकारी...** निमित्त सहकारी है। उपादान समकित को रखा। आहाहा! **तब सब कर्मों का नाश हो जाता है।** लो! तब चारित्र स्वरूप में रमणता और शुक्लध्यान होने पर... मूल तो समकित का परिणमन जो है ध्येय का, उस प्रकार से पर का आश्रय छोड़कर ध्येय विशेष उग्ररूप से परिणमता है अर्थात् उसमें समकित में वह चारित्र का सहकार हुआ और शुक्लध्यान का सहकार हुआ। आहाहा! वस्तु ही पूरी द्रव्य, पूरा चैतन्य द्रव्य को जहाँ अधिकार में लिया।

समझ में आया ? देखो ! यह श्रावक को पहले यह करना, ऐसा कहते हैं। ऐसा का ऐसा समाजभूषण और फलाणा और फलाणा पदवी दे, (उससे) कुछ मिले ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : बाहर का चारित्र किसी काम का नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ नहीं। बाह्य चारित्र, वह चारित्र ही नहीं है। चारित्र तो स्वरूप में सम्यग्दर्शनसहित की रमणता, वह चारित्र है। आहाहा ! समझ में आया ?

तब सब कर्मों का नाश हो जाता है। देखो ! गाथा बहुत सरस आयी। ८५ से शुरु है, नहीं ? श्रावक और मुनि सुनो-सुनो, ऐसा कहा न कुन्दकुन्दाचार्य ने ? ८५ में। हे साधु, हे श्रावक ! जो वीतराग ने कहा, वही बात मैं कहूँगा, उसे सुन, ऐसा। '**जिणेहि कहियं**' जिनेश्वर त्रिलोकनाथ ने ऐसा कहा है। पश्चात् कहा – हे श्रावक ! समकित को प्रथम अंगीकार कर। ऐसा जिनेश्वरदेव ने गृहस्थ के लिये भी पहले यह भगवान ने कहा है, ऐसा तू सुन। ऐसा कहते हैं, देखो ! आहाहा ! समझ में आया ?

गाथा-८८

आगे इसको संक्षेप से कहते हैं –

किं बहुणा भणिएणं जे सिद्धा णरवरा गए काले।
सिज्झिहहि जे वि भविया तं जाणह सम्ममाहप्पं ॥८८॥

किं बहुना भणितेन ये सिद्धाः नरवराः गते काले।
सेत्स्यंति येऽपि भव्याः तज्जानीत सम्यक्त्वमाहात्म्यम् ॥८८॥

अब बहु कथन से क्या ? अभी तक सिद्ध जो हो गए हैं।
आगे भि होंगे सिद्ध भवि माहात्म्य समकित जानिए॥८८॥

अर्थ **– आचार्य कहते हैं कि बहुत कहने से क्या साध्य है ? जो नरप्रधान अतीतकाल में सिद्ध हुए हैं और आगामी काल में सिद्ध होंगे, वह सम्यक्त्व का माहात्म्य जानो।**

भावार्थ – **इस सम्यक्त्व का ऐसा माहात्म्य है कि जो अष्टकर्मों का नाशकर मुक्ति प्राप्त अतीतकाल में हुए हैं तथा आगामी काल में होंगे, वे इस सम्यक्त्व से ही हुए हैं और होंगे, इसलिए आचार्य कहते हैं कि बहुत कहने से क्या? यह संक्षेप से कहा जानो कि मुक्ति का प्रधान कारण यह सम्यक्त्व ही है। ऐसा मत जानो कि गृहस्थ के क्या धर्म है, यह सम्यक्त्व धर्म ऐसा है कि सब धर्मों के अंगों को सफल करता है।।८८।।**

गाथा-८८ पर प्रवचन

अब ८८।

किं बहुणा भणिएणं जे सिद्धा णरवरा गए काले।
सिज्झिहहि जे वि भविया तं जाणह सम्ममाहप्पं।।८८।।

जो कोई मुक्ति को प्राप्त हुए, पायेंगे और पाते हैं, वह समकित का माहात्म्य है। यह एक ही। आहाहा! समझ में आया? देखो! जिनेश्वरदेव ऐसा कहते हैं कि हे श्रावक और साधु! तू सुन। भगवान ने-तीर्थंकरदेव, अनन्त तीर्थंकरदेवों ने ऐसा कहा है कि जितने अनन्त सिद्ध हुए, अभी महाविदेह में सिद्ध होते हैं और अनन्त सिद्ध भविष्य में होंगे, वह सब समकित का माहात्म्य है। वे कहें—नहीं, नहीं। यह समकित कुछ नहीं। चारित्र न हो तो समकित कुछ नहीं। धूल नहीं न, ऐसा करके हल्का बना देते हैं।

मुमुक्षु : चारित्र तो आवे ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु होता ही है उसे। समकित बिना चारित्र कैसा? पहले सम्यग्दर्शन का ही माहात्म्य है। समझ में आया? पश्चात् चारित्र की... यहाँ तो साथ में बात की। वस्तु के आश्रय से हुआ। विशेष आश्रय होने पर स्थिरता हो और शुक्लध्यान होता है। वह सब समकित का ध्येय है, उसके वे सब मददगार हैं, (ऐसा) कहते हैं। समझ में आया?

अर्थ :- आचार्य कहते हैं कि बहुत कहने से क्या साध्य है,... विशेष क्या कहना? बहुत करके बहुत-बहुत क्या कहना, कहते हैं। उसमें क्या ध्येय है? **जो नरप्रधान...**

नरवर-नरवर। नर के प्रधान पुरुष **अतीत काल में सिद्ध हुए हैं...** वे भूतकाल में मुक्ति को प्राप्त हुए **आगामी काल में सिद्ध होंगे वह सम्यक्त्व का माहात्म्य जानो।** देखो! आहाहा! समझ में आया? **बहुत कहने से क्या साध्य है...** बहुत कर-करके क्या कहना है? उसमें क्या साध्य सिद्ध होगा? यह वस्तु है। जिसने भगवान आत्मा को परिपूर्ण आनन्दकन्द ध्रुवधाम को पकड़ा और तेरा समकित, तेरे केवलज्ञानादि का अधिकार में लिया, बस! वह समकित ही भूतकाल में अनन्त मोक्ष पधारे, वह समकित का माहात्म्य है, भविष्य में पधारेंगे, वह समकित का माहात्म्य है। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि समकित अन्तर्मुख का परिणमन प्रगट करता है। और अन्तर्मुख के परिणमन को ही मुक्ति का कारण होता है, ऐसा कहना है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध उपयोग है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इस काल को कहाँ मेल है? उपशम समकित का शुद्ध उपयोग होता है। काल का शास्त्र जाने। कहो, समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं... यहाँ तो उपशम के सामने सामान्य समकित लिया है। उपशम होकर तुरन्त क्षयोपशम हो और क्षायिक हुए बिना रहे ही नहीं। यहाँ तो यह बात है। उसका यह हुआ, वह वापस पड़नेवाला नहीं है। वह धारावाही चारित्र मदद और शुक्लध्यान की मदद और... एक ही बात है। समझ में आया?

भावार्थ :- इस सम्यक्त्व का ऐसा माहात्म्य है कि जो अष्टकर्मों का नाशकर... आठ कर्म का नाश करके, समकित आठ कर्म का नाश करे, देखो! जो **मुक्ति प्राप्त अतीत काल में हुए हैं तथा आगामी होंगे, वे इस सम्यक्त्व से ही हुए हैं और होंगे,...** समकित से ही मुक्ति को प्राप्त हुए और समकित से ही प्राप्त होंगे। आहाहा! मूल चीज़ का पूरा विवाद उठा और रास्ता दूसरा ले लिया। अब उसमें से वापस हटना (कठिन पड़ता है)। अन्तर वस्तु जो है, उसकी तो पूरी बात पड़ी रही। समझ में आया? और ऊपर के थोथा ग्रहण करे, उसमें मिथ्यात्व का पोषण होता है। सहज धारा नहीं मिलती और सहज बिना मुक्ति का उपाय कृत्रिम और हठ नहीं है, ऐसा कहना चाहते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किसकी बात चलती है ? गृहस्थ की बात चलती है। गृहस्थ की तो चलती है। गृहस्थी को समकित अंगीकार करना और उस समकित द्वारा आगे बढ़कर चारित्र सहकारी शुक्लध्यान, पश्चात् मोक्ष जायेगा, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो गृहस्थी की ही बात चलती है।

मुमुक्षु : पहले चारित्र ग्रहण करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र-फारित्र कैसा समकित बिना ? समझ में आया ? चारित्र अर्थात् रमना, चरना। परन्तु किसमें ? जो चीज़ अनुभव में आयी नहीं, उसमें चरना कहाँ से ? रमना कहाँ से ?

मुमुक्षु : उसके अट्ठाईस मूलगुण में चर ले न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : चर ले राग को। राग को चर ले फिर...

मुमुक्षु : भूमि शुद्धि...

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी भूमि शुद्धि ? भूमि शुद्धि तो यह समकित, वह शुद्धि है। समकित, वही मोक्ष की पात्रता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ... पात्रता ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ से पात्रता ? यह बात... समझ में आया ?

आचार्य कहते हैं... भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं **बहुत कहने से क्या ?** तुझे बहुत क्या कहें ? **यह संक्षेप से कहा जानो कि मुक्ति का प्रधान कारण यह सम्यक्त्व ही है।** लो !

मुमुक्षु : पूरा क्रियाकाण्ड उड़ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रियाकाण्ड उड़ कहाँ गया ? था कहाँ उसमें ? मोक्ष का कारण क्रियाकाण्ड है नहीं। क्रियाकाण्ड बीच में आता अवश्य है परन्तु वह बन्ध का कारण है। यहाँ तो मुक्ति का कारण बतलाना है न ? आहाहा ! ऐसा कि आचार्य ने इसमें कहीं दिया नहीं। महाव्रत के परिणाम और अणुव्रत के परिणाम से मुक्ति होती है या कुछ (यह तो आया

नहीं)। वह तो बन्ध है, वह तो बन्ध का कारण है।

यहाँ तो आत्मा का स्वभाव अखण्ड अभेद, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ, उस सम्यग्दर्शन ने ऐसा सिखाया कि उसका उग्र आश्रय ले तो शुद्धि बढ़ेगी। उस सम्यग्दर्शन में यह आया कि जिसके आश्रय से मैं हुआ हूँ, उसका आश्रय विशेष ले तो चारित्र होगा। ऐसा फलेगा ही परन्तु इस रीति से। जिसके आश्रय से मैं प्रगट हुआ हूँ, उसका आश्रय तू ले, पर्याय नयी... आहाहा!

मुमुक्षु : एक ही कारण से दो कार्य नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह एक ही कारण है तीन होकर...

मुमुक्षु : समकित कार्य, चारित्र...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चारित्र, वह समकित की स्थिरता, वह चारित्र। द्रव्य का आश्रय होकर स्थिरता हो, वह चारित्र। परन्तु यहाँ तो कहते हैं द्रव्य का आश्रय मैंने लिया, उसका ही आश्रय तू ले, तो चारित्र होगा।

मुमुक्षु : समकित कहता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। समकित ऐसा कहता है। समकित ऐसा सिखाता है। इस प्रकार जो ऐसा वह बतलाता है कि मैं जिसका आश्रय लेकर प्रगट हुआ, उसका आश्रय ले। स्व के आश्रय से तुझे आगे बढ़ने का चारित्र बनेगा और शुक्लध्यान। दूसरा कोई उपाय नहीं है। बराबर है ? पण्डितजी ! मार्ग तो यह है, भाई ! लोगों को मार्ग की रीति की ही खबर नहीं। रीति की खबर बिना उल्टे मार्ग में चले और (मानते हैं कि) हम मार्ग नजदीक करते हैं। वह अनादि से भ्रम में पड़ा है। ऐई ! प्रकाशदासजी ! क्या है इसमें ? यह श्रावक को कहा है। श्रावक को पहले महाव्रत लेना, फिर अणुव्रत लेना, ऐसा लिखा है ? नहीं ?

मुमुक्षु : चारित्र ग्रहण किये बिना समकित प्रगट ही नहीं होता न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। और एक व्यक्ति ऐसा भी कहता है। चारित्र किसे कहना, यह तो खबर नहीं।

यहाँ तो यह कहते हैं, **मुक्ति का प्रधान कारण यह सम्यक्त्व ही है**। सम्यक्त्व ही

है। **ऐसा मत जानो कि गृहस्थ के क्या धर्म है,...** देखो! ऐसा न जानो कि गृहस्थ को... ऐई! कपूरचन्दभाई! देखो! लिखा है। ऐसा न जानो कि गृहस्थ को क्या धर्म? देखो! **ऐसा मत जानो कि गृहस्थ के क्या धर्म है, यह सम्यक्त्व धर्म ऐसा ही है कि सब धर्मों के अंगों को सफल करता है।** गृहस्थ को सम्यग्दर्शन है, वह सब धर्म को सफल करनेवाला सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? ऐई! रतिभाई! अब कितने ही कहे, हमको मुश्किल से जँचे वह महिलाओं को जँचे नहीं, ऐसा कहते हैं, लो! लड़कों को जँचे नहीं।

एक बार ऐसा बना था। मांगरोल में एक मन्दिरमार्गी था। उसका जवान लड़का बीमार पड़ा। मरने की तैयारी थी। स्त्री कहे कि मैं अमुक को मानूँ। वह कहे नहीं माना जाता। पहले चूड़ा तोड़, फिर मान। ऐसा बना हुआ है। मन्दिरमार्गी था। वह कहे कि मेरा पुत्र मरता है। मैं अमुक को मानूँगी। कुछ था। ऐसा कुछ अन्यमति का। हनुमान या ऐसा कुछ मानता। मेरे घर में दूसरी मान्यता नहीं होगी। लड़का मेरा है या नहीं? मर जाये तो भले मर जाये। परन्तु दूसरी मान्यता मेरे नहीं। तुझे माननी हो तो पहले चूड़ा तोड़। मैं तेरा पति नहीं। फिर माना जाये। ऐई!

मुमुक्षु : कठोर सही।

पूज्य गुरुदेवश्री : कठोर...

मांगरोल में कहीं हुआ था। बहुत वर्ष पहले सुना हुआ। बात बहुत आवे न यहाँ? नेमिदासभाई! तुम तो बाहर भटकते थे, कलकत्ते और सर्वत्र। यहाँ तो सब बातें आती हैं। ऐसा एक व्यक्ति कहे। दूसरी मान्यता मेरे घर में नहीं होती। लड़का मेरा है या नहीं? मुझे उसे रखने का भाव नहीं? किसी की मान्यता होगी और लड़का रहेगा? ऐसी भ्रमणा मेरे घर में नहीं। और तुझे करना हो तो पहले चूड़ा तोड़ डाल। विधवा हो। मैं तेरा पति नहीं। शोभालाल! समझ में आया या नहीं? दूसरी मान्यता नहीं चलती।

लड़का बीमार पड़ा। अन्तिम स्थिति। जवान। अन्तिम स्थिति हो गयी, इसलिए उसकी बहू को ऐसा हुआ, उस लड़के की माँ को कि किसी को मानते हैं। कोई होगा चाहे जो। अन्य में न हो तो कोई अम्बाजी होगी। मेरे घर में दूसरे को नहीं माना जायेगा। लड़का मेरा नहीं? मर जाये तो मुझे अच्छा लगता है? और मान्यता करे तो बच जायेगा? यह मेरी श्रद्धा नहीं है।

मुमुक्षु : त्रिया हठ।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्त्री हठ, वह अलग। यह तो पति ने ऐसा कहा। मुझे तो उस पति का कहना है। वह कहे नहीं, यहाँ हमारे घर में दूसरा नहीं माना जाता। तुम्हारे कहाँ कठिन है? तुम कहो, ऐसा मानते हैं। वहाँ कहाँ ऐसा है? समझ में आया? कंचनबेन भक्ति करती है, मैंने देखा है न! बराबर प्रेम से ऐसे भक्ति करे। भगवान के सामने अपने मन्दिर में पोरबन्दर। वहाँ दूसरी मान्यता हो, उसे क्या है। ऐई!

वीतराग परमात्मा के अतिरिक्त दूसरे की मान्यता कैसी? तीन लोक का नाथ वीतराग सर्वज्ञ, सौ इन्द्रों के पूजनीक, इसके अतिरिक्त दूसरे की मान्यता कैसी? यह यहाँ कहेंगे। ९० में। ९० में समकित के बाह्य लक्षण वर्णन करेंगे। यह तो ८८ चलती है न? **ऐसा मत जानो...** ऐसा न जानो। **कि गृहस्थ के क्या धर्म है,...** गृहस्थ में क्या धर्म है, ऐसा नहीं। गृहस्थ में महा धर्म है समकित का, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : गृहस्थ के व्रत कहाँ चले गये?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्रत कहाँ थे? व्रत कब? (विकल्प), व्रत ही कहाँ है? वह तो राग है। बन्ध का कारण है। ऐई! आहाहा! देखो! पण्डित जयचन्द्रजी स्पष्टीकरण करते हैं।

ऐसा मत जानो कि गृहस्थ के क्या धर्म है, यह सम्यक्त्व धर्म ऐसा है... गृहस्थ को भी सम्यक्त्व धर्म ऐसा है **कि सब धर्मों के अंगों को सफल करता है।** वह समकित होवे तो सब धर्म सफल, नहीं तो सफल है नहीं। समझ में आया? इस चारित्र को, शुक्लध्यान को, सम्यग्ज्ञान को सबको सफल करनेवाला सम्यग्दर्शन है। आहाहा! आया नहीं रत्नकरण्डश्रावकाचार में? वह कर्णधार है। कर्णधार समझे न? खेवटिया। क्या कहते हैं? खेवटिया कहते हैं? समन्तभद्राचार्य कहते हैं। सम्यग्दर्शन खेवटिया है। वह जहाज चलानेवाला। पूरा द्रव्य चलानेवाला शुद्ध में वह सम्यग्दर्शन है। उसकी ओर परिणमन करना, वह द्रव्य समकित में सब ताकत है। समझ में आया? **यह सम्यक्त्व धर्म ऐसा है...** गृहस्थ को। **कि सब धर्मों के अंगों को सफल करता है।** सम्यग्ज्ञान, शान्ति, स्थिरता इत्यादि-इत्यादि धर्म उसके कारण सफल है। नहीं तो क्या है?

गाथा-८९

आगे कहते हैं कि जो निरन्तर सम्यक्त्व का पालन करते हैं, वे धन्य हैं –

ते धण्णा सुकयत्था ते सुरा ते वि पंडिया मणुया।
सम्मत्तं सिद्धियरं सिविणे वि ण मइलियं जेहिं।।८९।।

ते धन्याः सुकृतार्थाः ते शूराः तेऽपि पंडिता मनुजाः।
सम्यक्त्वं सिद्धिकरं स्वप्नेऽपि न मलिनितं यैः।।८९।।

जिन स्वप्न में भी सिद्धि-कर सम्यक्त्व को मलिनित नहीं।
होने दिया वे धन्य नर सुकृतार्थ पण्डित शूर भी।।८९।।

अर्थ – जिन पुरुषों ने मुक्ति को करनेवाले सम्यक्त्व को स्वप्नावस्था में भी मलिन नहीं किया, अतिचार नहीं लगाया, वे पुरुष धन्य हैं, वे ही मनुष्य हैं, वे ही भले कृतार्थ हैं, वे ही शूरवीर हैं, वे ही पंडित हैं।

भावार्थ – लोक में कुछ दानादिक करे, उनको धन्य कहते हैं तथा विवाहादिक यज्ञादिक करते हैं, उनको कृतार्थ कहते हैं, युद्ध में पीछा न लौटे उसको शूरवीर कहते हैं, बहुत शास्त्र पढ़े उसको पंडित कहते हैं। ये सब कहने के हैं जो मोक्ष के कारण सम्यक्त्व को मलिन नहीं करते हैं, निरतिचार पालते हैं उनको धन्य है, वे ही कृतार्थ हैं, वे ही शूरवीर हैं, वे ही पंडित हैं, वे ही मनुष्य हैं, इसके बिना मनुष्य पशुसमान है, इस प्रकार सम्यक्त्व का माहात्म्य जानो।।८९।।

गाथा-८९ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो निरन्तर सम्यक्त्व का पालन करते हैं, उनको धन्य है :- देखो! आहाहा!

ते धण्णा सुकयत्था ते सुरा ते वि पंडिया मणुया।
सम्मत्तं सिद्धियरं सिविणे वि ण मइलियं जेहिं।।८९।।

स्वप्न में भी यदि यह बात निकलती हो तो नकार करे कि नहीं। स्वप्न में भी चर्चा-वार्ता निकलती हो तो कहे, ऐसा नहीं होता। मार्ग स्व के आश्रय से है। समकित के अतिरिक्त कोई धर्म-बर्म है नहीं। देखो! स्वप्न में भी कहते हैं। स्वप्न आवे तो उसे ऐसा आवे। समझ में आया?

मुमुक्षु : भगवान को भूलने की बात तो नहीं आयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : आ गयी न। तेरी दृष्टि कर अन्दर में, भगवान के ऊपर से दृष्टि छोड़ दे। कपूरचन्दभाई! व्यवहार आयेगा ९० में। व्यवहारश्रद्धा समझाने का चिह्न बतायेंगे। लक्ष्य छोड़। पर का लक्ष्य छोड़े बिना स्व का लक्ष्य होगा नहीं। ऐसे भी जाये, ऐसे भी जाये-ऐसी एक म्यान में दो तलवार समाये? तलवार समझते हो? पर के ऊपर भी लक्ष्य करना और स्व के ऊपर भी लक्ष्य करना, ऐसे दो नहीं चलते। स्व लक्ष्य में सबको भूल जा। अरे! भगवान तो ठीक परन्तु भगवान ने बतलाया हुआ ज्ञान जो ज्ञात हुआ, उसे भी भूल जा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ गृहस्थ की बात करते हैं। कपूरचन्दभाई! पाठ में श्रावक का नाम लिया है, देखो! लोगों को सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, माहात्म्य क्या? वह क्या कैसे महा अनन्त पुरुषार्थ से स्व के आश्रय से होता है... स्व भी कैसा? भगवान ने कह वैसा। वह आत्मा भी... कहा वैसा अर्थात् कि वस्तु ऐसा ज्ञान करके उसकी ओर से लक्ष्य छोड़कर कर, तब किया कहलाये। क्या कहा?

मुमुक्षु : आत्मा की श्रद्धा... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह श्रद्धा होती है, आगे कहेंगे। परन्तु वह व्यवहार हो, उसे पहिचानने का साधन है, इतना। निश्चय प्रगट हुआ हो, उसे ऐसे व्यवहार की श्रद्धा होती है, ऐसा। ९० (गाथा) में आयेगा। '**हिंसारहिए धम्मे अट्ठारहदोसवज्जिए देवे। णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होइ सम्मत्तं।**' गुरु निर्ग्रन्थ वीतरागी और प्रवचन शास्त्र। चार की श्रद्धा उसे व्यवहार से अन्दर होती है। विकल्प में उस जाति की होती है। परन्तु वह निर्विकल्प सम्यग्दर्शन करे तो यह भाव, उसे व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

ते धण्णा सुकयत्था ते सुरा ते वि पंडिया मणुया।
सम्मत्तं सिद्धियरं सिविणे वि ण मइलियं जेहिं।।८९।।

स्वप्न में भी जिसने मलिन नहीं किया। स्वप्न में आवे तो भी सम्यग्दर्शन, वह आत्मा के अनुभव की प्रतीति। इसके अतिरिक्त दूसरी चीज़ नहीं हो सकती। समझ में आया? आहाहा! बड़े देव ऊपर से डिगाने के लिये उतरे तो वह बदले नहीं। स्वप्न में भी कहते हैं कि च्युत नहीं हो। स्वप्न आवे तो यह आवे। देखो! स्वप्न में भी मलिन न करे। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : स्वप्न में भी मलिन न होने दे...

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वप्न में ऐसा कि यह समकित ऐसा है, व्यवहार से होता है, ऐसा स्वप्न में भी नहीं होता।

मुमुक्षु : पर आश्रय से होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। पर आश्रय से समकित होता है और उससे होता है, यह बात स्वप्न में भी उसे नहीं आती। स्वप्न में भी समकित मलिन नहीं करता। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले समझण करे कि ऐसी चीज़ है। समझे बिना प्रयत्न कहाँ करेगा? समझ में आया?

मुमुक्षु : गुरु समझावे तो हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समझे, तब गुरु दूसरे को कहा जाये। पहले गुरु स्वयं आत्मा हो, तब समझानेवाले को उपचार से गुरु कहा जाता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : इसमें तो लिखा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें यह लिखा है। यही आयेगा। देखो! इस गाथा के बाद यही गाथा आयेगी। निश्चय ऐसा हुआ, उसे व्यवहार ऐसा होता है। समझ में आया? इसके पश्चात् ९० गाथा में यही आता है। कुन्दकुन्दाचार्य की शैली गजब! केवलज्ञानी की पहेली हल कर डाली है। कोयडा-कोयडा कहते हैं न। समस्या (पहेली)।

अर्थ :- जिन पुरुषों ने मुक्ति को करनेवाले सम्यक्त्व को स्वप्नावस्था में भी मलिन नहीं किया, अतिचार नहीं लगाया, उन पुरुषों को धन्य है,... आहाहा ! समझ में आया ? देखो न ! आचार्य भी कितने प्रमोद से बात करते हैं ! हें ! भगवान ! तेरे घर में तू प्रविष्ट नहीं हुआ और दूसरी मलिनता की बातें तूने की, वह वस्तु नहीं है। स्वद्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। स्वप्न में भी परद्रव्य के आश्रय से हो, यह बात उसे जँचती नहीं। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ... जबरदस्ती नाम लिख डाले तो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम लिखे किसलिए ?

मुमुक्षु : हमारे तो श्रद्धा में अन्तर नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाते होंगे न। यह सेठ भी जाते हैं। तुम भी जाते होंगे कहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : जबरदस्ती लिख डाले। ठीक है। यह वहाँ काका-काकी है न, गाँव के सेठिया हैं, ऐसे और ऐसे। निवृत्त व्यक्ति, पैसेवाले को सब सामने बुलाते हैं। कुछ और देना हो। आशा हो न, कुछ देंगे। ऐसे को डालकर दिया हो तो ? उन्हें भी ऐसा हुआ है। उनका नाम लिखा एक उस बड़े बाबा में। सामने बैठावे, जाना पड़े वहाँ मुंडाने। ऐसा नहीं होता, कहते हैं। उसके गाँव में बड़े व्यक्ति है न। ... कुछ बाबा का होगा। अपने को कुछ खबर नहीं। परन्तु कोई कहे, चलो, यहाँ मन्दिरमार्गी साधु महाराज आये हैं। कुछ होगा कौन जाने। नाम लिखा हो तो क्या करे ? नाम लिखे। हम भाई कहीं जाते नहीं और हम किसी का मानते नहीं, इसलिए यदि अनादर हो तो तुमको ठीक नहीं लगेगा। ... हम आयें। चरणवन्दन करें, ऐसा हमारे में नहीं है। वहाँ शर्म-सिफारिश नहीं रखे। यह वाते। भाई ! शोभालालजी ! भाई को कहते हैं। जहाँ-तहाँ जाते हैं न ? पहले गये होंगे। अब तो क्या जाये।

मुमुक्षु : पहले जाकर नाम काटना (मिटाना) ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आवे तो कौन कहते हैं जबरदस्ती सिपाही लेकर बुलाते हैं तुमको ? सिपाही आकर ले जाता है तुम्हें पकड़कर ? तुम्हारा नाम लिखा, आओ वहाँ। यहाँ

तो कहते हैं कि अभी व्यवहार का ठिकाना सरीखा नहीं और निश्चय का ठिकाना कहाँ से होगा? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

स्वप्नावस्था में भी मलिन नहीं किया, अतिचार नहीं लगाया... देखो! कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को, कुगुरु-कुशास्त्र को वन्दन करना, प्रशंसा करे (कि) बहुत अच्छा किया। क्या धूल कुछ अच्छा किया? बहुत त्याग किया हो और बहुत वह किया हो और महीने-महीने के अपवास कुगुरु और कुशास्त्र के माननेवाले ने। उसमें महीने-महीने के अपवास किये हों। क्या कहते हैं सेठ? तो प्रशंसा न करे, ऐसा कहते हैं। महीने-महीने के अपवास करते हैं न?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : शंका-आशंका...

उन पुरुषों को धन्य है,... आचार्य कहते हैं, देखो! यह कुन्दकुन्दाचार्य मुनि। छठवें-सातवें गुणस्थानवाले कहते हैं, जिसने स्वप्न में भी समकित को मलिन नहीं किया। धन्य है, भाई! आहा! कहो, आचार्य भी धन्य कहते हैं! आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इस प्रमाण कहते हैं। आहाहा!

'**एवं जिणेहि**' कहा न? जिन ने कहा है, बापू! वीतराग ऐसा कहते हैं, वह मैं कहता हूँ। आहाहा! समझ में आया? **उन पुरुषों को धन्य है, वे ही मनुष्य हैं,...** लो ठीक! '**मणुया।**' है न अन्तिम शब्द? वह मनुष्य है। बाकी पशु है। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : हिलता-चलता मुर्दा कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुर्दा है। आहाहा! आगे लेंगे। वह पशु है।

बिना मनुष्य पशु समान है,... वे ही कृतार्थ हैं,... कृतार्थ अर्थात् उसने कार्य किया है, ऐसा कहते हैं। उसने कार्य किया। कृतार्थ-सुकृत उसने किया। बाकी सुकृत दूसरा है नहीं। दया, दान, व्रत और विकल्प, वह सुकृत नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन प्रगट किया, मलिन न होने दिया। स्वप्न में भी अतिचार नहीं लगा। धन्य है,

कहते हैं। वह कृतार्थ है। उसने काम किया। उसने करने का था, वह किया। यह करने का मनुष्यपने में है। समझ में आया?

वे ही शूरवीर हैं,... लो! वह वीर है। वीर-वीर। आचार्य को भी कितनी प्रशंसा! कड़क आचार्य कुन्दकुन्दाचार्य। न माने, अभव्य है। ऐसी बात उनकी जहाँ-तहाँ। बहुत जगह आता है। अभव्य का संक्षेप में। यह तो शूरवीर है। युद्ध में लड़नेवाले, वे पामर हैं। भगवान आत्मा सामने स्वरूप का समकित प्रगट किया और विभाव से जिसने पीठ ली है, वह शूरवीर है। समझ में आया? **वे ही पण्डित हैं।** लो।

भावार्थ :- लोक में कुछ दानादिक करें, उनको धन्य कहते हैं... कोई दान करे, दो-पाँच-दस लाख रुपये खर्च करे तो ओहोहो! भाई! धन्य भाई धन्य! **दानादिक करें...** माँ-बाप का कोई बड़ा मृत्युभोज करे। ओहो! भाई! पैसे दिये, बाप को प्रकाशित किया, ऐसा कहे। बाप को वृक्ष के ऊपर रखे थे न कितने ही, ऐसा कहते हैं। मर जाये न। मृत्युभोज नहीं किया हो। मृत्युभोज करते हैं न? कारज। दाडो समझते हो? (मृत्यु के बाद) भोजन करावे न? प्रीतिभोज। यहाँ कहते हैं कि ऐसे जो पीछे भोजन करे या करावे, उसका यहाँ गुणगान नहीं किया। ऐसे तो सब बहुत होते हैं, कहते हैं। वह कोई वस्तु नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं न! **दानादिक करें, उनको धन्य कहते हैं...** दुनिया धन्य कहे, ऐसा। दुनिया धन्य कहे। **तथा विवाहादिक यज्ञादिक करते हैं...** देखो! विवाह आदि आया, देखो न! विवाह आदि में यज्ञ करे, पैसा खर्च करे, दानादि दे, पगड़ी दे, कुटुम्ब में-जाति में ... दे। लोग कहे, ओहोहो! भाई! भगवान ने पैसे दिये तो खर्च किये न। दो-पाँच लाख विवाह में खर्च कर डाले। **उनको कृतार्थ कहते हैं,...** दुनिया उसे कृतार्थ कहे। कार्य किया, बापू!

युद्ध में पीछे न लौटे, उसको शूरवीर कहते हैं,... देखो! अज्ञानी तो ऐसा सब कहते हैं, जगत में कहते हैं। **बहुत शास्त्र पढ़े, उसको पण्डित कहते हैं।** बहुत शास्त्र पढ़ा हो उसे अज्ञानी, पण्डित कहते हैं। अज्ञानी को कहाँ खबर, क्या चीज़ है। **ये सब कहने के हैं;...** कहने के हैं, लो! **जो मोक्ष के कारण सम्यक्त्व को मलिन नहीं करते हैं, निरतिचार पालते हैं, उनको धन्य है,...** लो! आहाहा! गजब गाथा ली है। समझ में आया? **ये सब कहने के हैं;...** सब अर्थात् सभी। ऊपर कहे वे (सभी)। कहने मात्र हैं। वे कोई शूरवीर भी नहीं और कुछ कार्य किया नहीं। कुछ पण्डित नहीं शास्त्र पढ़ा वह। आहाहा!

मुमुक्षु : पण्डितों को...

पूज्य गुरुदेवश्री : पण्डित किसे कहना, यह तो कहते हैं। जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया, वह पण्डित है। आहाहा!

मुमुक्षु : पठन की डिग्री काम नहीं आती।

पूज्य गुरुदेवश्री : पठन-बठन वहाँ क्या काम आवे?

मोक्ष के कारण सम्यक्त्व को मलिन नहीं करते हैं, निरतिचार पालते हैं, उनको धन्य है, वह धन्य है, वे ही कृतार्थ हैं,... देखो! उसने कार्य किये। आहाहा! जिसे सम्यक्त्व हुआ, वह कार्य उसने किया। समाप्त। वह तो मुक्ति पानेवाला, पानेवाला और पानेवाला है। आहाहा! चाहे तो पशु का देह हो, स्त्री का देह हो। वह देह चाहे जो हो परन्तु जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया और निरतिचार किया, वह धन्य है, कहते हैं। उस मंडुक-मेंढ़क को धन्य है, ऐसा कहते हैं। चाण्डाल को धन्य है। आहाहा! विवाह आदि में बड़े काम करे न? विवाह-बिवाह में। ऐई बड़ा खर्चा लाख-दो लाख का। पहेरामणी दे। वह इसे दे, वह उसे दे। कन्यावाले, वरवाले को दे और वरवाला उसे दे। ओहोहो! परन्तु क्या विवाह किया और...

मुमुक्षु : ऐसा विवाह गाँव में कभी नहीं हुआ था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ऐसा भी कहे। ऐसा कभी हमने गाँव में देखा नहीं, ऐसा विवाह। लोगों ने भाई मांडवा... ओहोहो! दारूखाना फोड़ा है उसमें। दारूखाना समझते हो या नहीं?

मुमुक्षु : आतिशबाजी।

पूज्य गुरुदेवश्री : आतिशबाजी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो अब हुआ। पहले दारूखाना था। हमने तो यह सब देखा है, उसकी बात है। तुम्हारे है न वहाँ एक पालेज से चमारडी, वहाँ विवाह हुआ था वोरा का। नहीं दुकान के साथ? अभु-अभु। अभु नहीं? अभु का लड़का है न अभी वह

अभु। बहुत समय की बात है। (संवत्) १९६६-६७। वहाँ उसका विवाह था। वहाँ गये थे तो हमारे जीमने का अलग। ब्राह्मण। परन्तु दारूखाना। इतना छोटा गाँव चमारडी। अभी दूसरा नाम है। नगीनपुर नाम किया है। दारूखाना वह, ओहोहो! वोरा था, हों! लोटिया नहीं।... ओहोहो! क्या भाई! वापस ... बुलाये हुए। वे करे।... बात है। मैं और कुँवरजीभाई दो गये थे। दो जने गये थे। धूल के भी नहीं सब, होली है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जिसने भगवान पूर्णानन्द का नाथ, उसकी अभेददृष्टि प्रगट की और स्वप्न में भी जिसे दोष लगा नहीं, उसे हम धन्य कहते हैं, कृतार्थ कहते हैं, शूरवीर कहते हैं। वह पण्डित और वह मनुष्य है। उसे मनुष्य कहते हैं। नहीं तो मनुष्य भी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मनुष्यरूपेण मृगा चरंति - नहीं आता? **इसके बिना मनुष्य पशु समान है, इन प्रकार सम्यक्त्व का माहात्म्य कहा।** विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-९०

आगे शिष्य पूछता है कि सम्यक्त्व कैसा है ? इसका समाधान करने के लिए इस सम्यक्त्व के बाह्य चिह्न बताते हैं -

हिंसारहिए धम्मे अट्ठारहदोसवज्जिए देवे।
णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होइ सम्मत्तं।।९०।।

हिंसारहिते धर्मे अष्टादशदोषवर्जिते देवे।
निर्ग्रंथे प्रवचने श्रद्धानं भवति सम्यक्त्वम्।।९०।।

है दोष अष्टादश विना देवत्व हिंसा बिन धरम।
निर्ग्रंथ प्रवचन में सुश्रद्धा जानना समकित सतत।।९०।।

***अर्थ* - हिंसारहित धर्म, अठारह दोषरहित देव, निर्ग्रन्थ प्रवचन अर्थात् मोक्ष का मार्ग तथा गुरु इनमें श्रद्धान होने पर सम्यक्त्व होता है।**

_भावार्थ_ – लौकिकजन तथा अन्य मतवाले जीवों की हिंसा से धर्म मानते हैं और जिनमत में अहिंसा धर्म कहा है, उसी का श्रद्धान करे, अन्य का श्रद्धान न करे, वह सम्यग्दृष्टि है। लौकिक अन्य मतवाले जिन्हें देव मानते हैं, वे सब देव क्षुधादि तथा रागद्वेषादि दोषों से संयुक्त हैं, इसलिए वीतराग सर्वज्ञ अरहंतदेव सब दोषों से रहित हैं, उनको देव माने, श्रद्धान करे वही सम्यग्दृष्टि है।

यहाँ अठारह दोष कहे वे प्रधानता की अपेक्षा कहे हैं इनको उपलक्षणरूप जानना, इनके समान अन्य भी जान लेना। निर्ग्रन्थ प्रवचन अर्थात् मोक्षमार्ग वही मोक्षमार्ग है, अन्यलिंग से अन्य मतवाले श्वेताम्बरादिक जैनाभास मोक्ष मानते हैं, वह मोक्षमार्ग नहीं है। ऐसा श्रद्धान करे वह सम्यग्दृष्टि है, ऐसा जानना।।९०।।

प्रवचन-९६, गाथा-९० से ९२, गुरुवार, भाद्र कृष्ण १०, दिनांक २४-०९-१९७०

यहाँ अष्टपाहुड़ की मोक्षपाहुड़ की गाथा ८९ चली। समकित का माहात्म्य कहा। इस जगत में गृहस्थाश्रम में श्रावक को भी प्रथम सम्यग्दर्शन ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि सम्यग्दर्शन बिना कोई धर्म सच्चा नहीं हो सकता। सम्यग्दर्शनवन्त को यहाँ धन्य कहा गया है। कृतार्थ, शूरवीर और पण्डित वह मनुष्य है। इसके बिना पशु कहे गये हैं। आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप... (अनन्त काल में) प्राप्त न हुआ हो तो वह समकित प्राप्त नहीं हुआ। बाकी तो इसने अनन्त बार व्रत, तप, नियम ऐसी आचरण की क्रियायें भी अनन्त बार की हैं। दीक्षा भी अनन्त बार ली। जैन दिगम्बर साधु मुनि भी अनन्त बार हुआ, परन्तु इस सम्यग्दर्शन बिना कुछ काम लगा नहीं।

मुमुक्षु : मुनि कहो और काम न लगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि था ही कहाँ? सम्यग्दर्शन नहीं, वहाँ मुनि कैसा? पंच महाव्रत...

मुमुक्षु : ... मोक्ष की पकड़ी।

पूज्य गुरुदेवश्री : बन्ध की पकड़ी। राग को अपना धर्म मानता था। क्रिया जो पंच महाव्रत है, वह राग है। उस राग को धर्म मानता था, उसे धर्म का साधन मानता था।

मुमुक्षु : अभी भी बहुत डिमाण्ड है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे सब मिथ्यादृष्टि हैं।

मुमुक्षु : सब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब में जो है वह है।

आत्मा तो सच्चिदानन्दस्वरूप शुद्ध आनन्द और ज्ञानमात्र स्वभाववाला आत्मा है। उसे कोई भी विकल्प से लाभ हो, ऐसा मानना वह आत्मा का खून मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया ? इसलिए समकित का माहात्म्य वर्णन किया है न, देखो न! श्रावक को पहले में पहला सम्यग्दर्शन दृढ़ निश्चय करना, आत्मा का अनुभव करके। समझ में आया ? पहली बात बहुत आ गयी। ८९ तक।

जो कोई अभी तक मुक्ति को प्राप्त हुए, आत्मा के परमपद परमात्मपद को प्राप्त हुए या प्राप्त करेंगे, वह सब समकित के माहात्म्य से होगा। क्योंकि आत्मा पूर्णानन्द शुद्ध चैतन्य आत्मा, उसका अनुभव और उसका सम्यग्दर्शन, उसका ही यहाँ माहात्म्य है। धर्म में उसका माहात्म्य है। इसके बिना कोई क्रियाकाण्ड का कुछ माहात्म्य नहीं है। पुण्य बाँधे मिथ्यादृष्टिसहित। उसमें क्या ? भेद धारा। शरीर बदले, मनुष्य के बदले स्वर्ग का मिले। दृष्टि तो मिथ्याथ्व है। उसमें कुछ आत्मा को किंचित् लाभ नहीं। इसीलिए यह कहा, देखा!

जिसने स्वप्न में भी सम्यग्दर्शन को मलिन नहीं किया, अतिचार नहीं लगाया। देखो! कहाँ तक बात आयी! शुद्ध चैतन्य अखण्ड आनन्दकन्द पूर्ण, उसके अनुभव में, प्रतीति में कहीं दोष नहीं लगाया। ऐसे आत्मा को यहाँ धन्य, पण्डित और कृतार्थ—उसने सब कार्य किया, ऐसा कहा। एक समकित किया, वहाँ कृतार्थ हो गया, ऐसा कहते हैं। कृतार्थ कहा न ? पाठ है या नहीं ? वह कृतार्थ है। लो! समझ में आया ? वापस सुकृतार्थ, ऐसा। अकेला कृतार्थ नहीं। उसने सुकार्य किया। जो करने का था, वह किया—ऐसा कहते हैं। देखा! एक ओर सिद्ध कृतार्थ कहलाये, एक ओर सम्यग्दृष्टि सुकृतार्थ है। आहाहा!

भगवान पूर्ण.. पूर्ण.. पूर्ण.. परमात्मस्वरूप, जिसकी एक समय की पर्याय के भरोसे चैतन्य के अन्तर अनुभव में प्रतीति में आया, कहते हैं उसने सब किया। जो करने का था मोक्ष के लिये, वह उसने किया। क्योंकि उस श्रद्धा में चारित्र ऐसा होता है, रमणता ऐसी

होती है, यह भी साथ में आ गया है। इसलिए इसके बिना मनुष्य पशु समान है। ऐसा समकित का माहात्म्य कहा। ८९। समझ में आया? अब इसके थोड़े बाह्य चिह्न वर्णन करते हैं। बाह्य चिह्न, हों!

आगे शिष्य पूछता है कि सम्यक्त्व कैसा है? उसका समाधान करने के लिये इस सम्यक्त्व के बाह्य चिह्न बताते हैं :-

हिंसारहिए धम्मे अट्ठारहदोसवज्जिए देवे।
णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होइ सम्मत्तं।।९०।।

व्यवहार समकित की बात की है।

अर्थ :- हिंसारहित धर्म,... जिसमें कोई पंचेन्द्रिय आदि हिंसा हो, यज्ञ में हिंसा हो और धर्म माने, वह धर्म नहीं है। **अठारह दोषरहित देव,...** देव कैसे होते हैं? कि जिन्हें क्षुधा नहीं, तृषा नहीं, रोग नहीं, जन्म नहीं, मरण नहीं, जरा नहीं। ऐसे परमात्मदेव को देव कहा जाता है। कहो, समझ में आया? उसे जो श्रद्धे। कहीं भी हिंसा हो, उसमें धर्म माने नहीं। तब कहे कि मन्दिर आदि में एकेन्द्रिय की हिंसा होती है न? वह तो धर्मानुराग के भाव में साक्षात् भगवान की उपस्थिति न हो, इसलिए परमात्मा का मन्दिर और प्रतिमा को बनाकर भक्ति करते हैं, उसमें शुभभाव की प्रधानता है। थोड़ी हिंसा एकेन्द्रिय की है। अल्प पाप और बहुत पुण्य वहाँ है। समझ में आया? यहाँ पंचेन्द्रिय की हिंसा को धर्म माने, उसकी मुख्यता यहाँ है। समझ में आया? यह स्पष्टीकरण पहले आ गया है। बोधपाहुड़ में पीछे। छह काय की हिंसा होती है न! पाठ तो ऐसा है कि छह काय की हिंसारहित धर्म है। छह काय के हित करनेवाला मन्दिर, छह काय धर्म भगवान का है, ऐसा कहा है न। आया है न पहला। बोधपाहुड़ में। १५५ पृष्ठ पर है, देखो! १५५ है। पहले पैराग्राफ की नीचे की लाईन। १५५ पृष्ठ। गाथा नहीं, पृष्ठ। १५३, पृष्ठ। ६०वीं गाथा का अर्थ है अन्दर है। अर्थ-अर्थ।

परन्तु प्रश्न - गृहस्थ जिनमन्दिर बनावे, वसतिका, प्रतिमा बनावे और प्रतिष्ठा पूजा करे, उसमें तो छह काय के जीवों की विराधना होती है, यह उपदेश और प्रवृत्ति की बाहुल्यता कैसे है? है? आया? पैराग्राफ है। **इसका समाधान (इस प्रकार है कि)**

– गृहस्थ अरहन्त, सिद्ध, मुनियों का उपासक है; ये जहाँ साक्षात् हों, वहाँ तो उनकी वन्दना, पूजन करता ही है। जहाँ ये साक्षात् न हों, वहाँ परोक्ष संकल्प कर वन्दना-पूजन करता है... इसका समाधान... है न ? **गृहस्थ अरहन्त, सिद्ध, मुनियों का उपासक है; ये जहाँ साक्षात् हों, वहाँ तो उनकी वन्दना, पूजन करता ही है।**

परन्तु प्रश्न – गृहस्थ जिनमन्दिर बनावे,... यहाँ से लेना। तीन लाईन है, ऊपर तीन पंक्ति। **वसतिका, प्रतिमा बनावे और प्रतिष्ठा पूजा करे, उसमें तो छह काय के जीवों की विराधना होती है, यह उपदेश और प्रवृत्ति की बाहुल्यता कैसे है ?** प्रवृत्ति का उपदेश दो कैसे चले तब ? ऐसा कहते हैं। **इसका समाधान (इस प्रकार है कि) – गृहस्थ अरहन्त, सिद्ध, मुनियों का उपासक है; ये जहाँ साक्षात् हों, वहाँ तो उनकी वन्दना, पूजन करता ही है। जहाँ ये साक्षात् न हों, वहाँ परोक्ष संकल्प कर वन्दना-पूजन करता है तथा उनके रहने का क्षेत्र तथा ये मुक्त हुए क्षेत्र में तथा अकृत्रिम चैतन्यालय में उनका संकल्प कर वन्दना व पूजन करता है। इसमें अनुरागविशेष सूचित होता है;...** अनुराग विशेष है, छह काय की हिंसा होती है परन्तु वहाँ शुभभाव की विशेषता है।

फिर उनकी मुद्रा, प्रतिमा तदाकार बनावे और उनके मन्दिर बनाकर प्रतिष्ठा कर स्थापित करे तथा नित्य पूजन करे, इसमें अत्यन्त अनुराग सूचित होता है, उस अनुराग से विशिष्ट पुण्यबन्ध होता है और उस मन्दिर में छह काय के जीवों के हित की रक्षा का उपदेश होता है... छह काय के जीव का उपदेश है न ? इसलिए उसे छह काय की हिंसा से रहित धर्म कहा गया है। विशेष पूरा बड़ा है। **निरन्तर सुननेवाले और धारण करनेवाले के अहिंसा धर्म की श्रद्धा दृढ़ होती है, तथा उनकी तदाकार प्रतिमा देखनेवाले के शान्त भाव होते हैं, ध्यान की मुद्रा का स्वरूप जाना जाता है और वीतरागधर्म से अनुराग विशेष होने से पुण्यबन्ध होता है, इसलिए इनको भी छह काय के जीवों का हित करनेवाले उपचार से कहते हैं।** लो ! **जिनमन्दिर वसतिका प्रतिमा बनाने में तथा पूजा-प्रतिष्ठा करने में आरम्भ होता है, उसमें कुछ हिंसा भी होती है। ऐसा आरम्भ तो गृहस्थ का कार्य है, इसमें गृहस्थ को अल्प पाप कहा, पुण्य बहुत कहा है;...** इस अपेक्षा से। एकेन्द्रिय की अपेक्षा से।

मुमुक्षु : यत्नाचार।

पूज्य गुरुदेवश्री : यत्नाचार। थोड़ी हिंसा होती है परन्तु अनुराग है। धर्म का अनुराग विशेष है।

मुमुक्षु : उसका समर्थन महाराज समन्तभद्राचार्य ने किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा है परन्तु यहाँ तो अल्प...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्पष्टीकरण लिखा है। अल्प पाप है, पुण्य बहुत। धर्म नहीं। परन्तु वह होता है। वह यहाँ बात नहीं। यहाँ एकेन्द्रिय की हिंसा हुई, इसलिए उसमें पुण्य नहीं है। यत्नाचार। अपने चलती ९० गाथा। चलती गाथा।

अर्थ :- हिंसारहित धर्म, अठारह दोषरहित देव, निर्ग्रन्थ प्रवचन अर्थात् मोक्ष का मार्ग... देखो! मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और मोक्ष के मार्ग के धारक गुरु। **इनमें श्रद्धान होने पर सम्यक्त्व होता है।** समझ में आया?

भावार्थ :- लौकिकजन तथा अन्यमतवाले जीवों की हिंसा से धर्म मानते हैं... पशु आदि मारकर हिंसा में (धर्म माने)। **जिनमत में अहिंसा धर्म कहा है, उसी का श्रद्धान करे अन्य का श्रद्धान न करे, वह सम्यग्दृष्टि है।** व्यवहार से बात है न। अन्दर में तो हिंसा राग का एक कण हो तो भी वह हिंसा है। राग से रहित आत्मा का स्वभाव, वह अहिंसा है। समझ में आया? **लौकिक अन्यमतवाले मानते हैं, वे सब देव, क्षुधादि तथा राग-द्वेषादि दोषों से संयुक्त हैं,...** यह देव की बात करते हैं। अन्यमति आदि देव को मानते हैं। देव को क्षुधा, तृषा, रोग, **राग-द्वेषादि दोषों से संयुक्त हैं, इसलिए वीतराग सर्वज्ञ अरहन्तदेव सब दोषों से रहित हैं, उनको देव माने,...** समझ में आया? अभी यह व्यवहारशुद्धि की बात है।

यहाँ अठारह दोष कहे वे प्रधानता की अपेक्षा कहे हैं, इनको उपलक्षणरूप जानना, इनके समान अन्य भी जान लेना। निर्ग्रन्थ प्रवचन अर्थात् मोक्षमार्ग... आत्मा का निश्चय स्वभाव शुद्ध आनन्दघन परमात्मा, उसका सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान और उसका चारित्र, यह निश्चयमोक्षमार्ग, इसकी उसे श्रद्धा होती है। यह मार्ग है, ऐसी उसे श्रद्धा होती है। निश्चय ऐसा मार्ग उसका नाम, उसे श्रद्धा होती है। अथवा ऐसे मार्ग के साधक ऐसे

गुरु की उसे श्रद्धा होती है। '**पव्वयणे णिग्गंथे**' दो शब्द लिये हैं न ?

निर्ग्रन्थ प्रवचन अर्थात् मोक्षमार्ग वही मोक्षमार्ग है,... ऐसी अन्दर श्रद्धा। देखो! यह अन्दर का डाला थोड़ा। समझ में आया ? आत्मा पवित्र पूर्णानन्द प्रभु, वस्तु और वस्तु का स्वभाव ऐसे परिपूर्ण शुद्ध चैतन्य की श्रद्धा, उसका ज्ञान और उसकी रमणता, यही आत्मा को दु:ख से मुक्त होने का सच्चा मोक्षमार्ग है। उसकी उसे श्रद्धा होती है। मार्ग यह है। और ऐसे मार्ग के साधनेवाले सन्तों की श्रद्धा होती है। देखो! देव-गुरु-शास्त्र तीनों आ गये। समझ में आया ?

अन्यमतवाले श्वेताम्बरादिक जैनाभास मोक्ष मानते हैं... अन्य लिंग। बाबा का वेश हो, फकीर का वेश हो, यह वस्त्रसहित हो और मुक्ति माने, वह मार्ग मिथ्यामार्ग है। है ? इसमें लिखा है। घर का नहीं। **अन्यलिंग से...** वस्त्रसहित मुनि माने, वस्त्रसहित केवलज्ञान होता है, ऐसा माने, वे **अन्यमतवाले श्वेताम्बरादिक...** श्वेताम्बर आदिक जो हैं या स्थानकवासी आदि, वे सब मिथ्यादृष्टि अन्य लिंग में दूसरे में मुक्ति का मार्ग मानते हैं, वे सब मिथ्यादृष्टि हैं। उनकी इसे श्रद्धा नहीं होती। समकिती वह श्रद्धा छोड़ देता है। समझ में आया ? भगवानजीभाई! गजब! मार्ग तो ऐसा है। वहाँ कहाँ किसी की सिफारिश लागू पड़ती हो, ऐसा नहीं है। आनन्दस्वरूप प्रभु की मुक्ति का मार्ग, बाह्य से भी उसे नग्नदशा होती है। उसे दूसरा लिंग नहीं होता। अन्तर में तो वीतरागीदशा होती है। रागरहित आत्मा का भान, श्रद्धा और रमणता। बाह्य में ऐसी निष्परिग्रहीदशा। ऐसी दशावन्त को मोक्षमार्ग कहा जाता है। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकार से मोक्षमार्ग... ऐई! रतिभाई! यह महिलाओं को जँचता नहीं घर में, हों! यह बात जँचती नहीं। बहुत घूँटा हो उन्होंने। पति की चलती नहीं। रोकड़ा स्वतन्त्र है जीव।

मुमुक्षु : भाव की प्रधानता...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तो भाव की प्रधानता में यह भाव नहीं आया ? ठीक है घर में बैठे-बैठे करते होंगे यह। श्वेताम्बर है न यह ? भाव की प्रधानता में वस्त्रसहित लिंग, वह भाव मिथ्यात्वभाव है। उसे मोक्षमार्ग (नहीं होता)। मिथ्यात्व है। यह भाव की ही प्रधानता की बात चलती है। कहो, समझ में आया ? भाई! अपने को जँचता है। परन्तु स्त्री

न माने तो क्या करना? भाव की प्रधानता है, ऐसा करके समाधान करना, ऐसा होगा?

मुमुक्षु : दया का भाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन हो। युद्ध करता है न? युद्ध करता हो और समकित हो।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : संकल्पी हिंसा है। वह तो मार डालना, ऐसा है ही नहीं। परन्तु युद्ध करे, लाखों लोगों को मारता है, तथापि हिंसा नहीं। विरोधी की हिंसा होती है। हिंसा होती है, परन्तु उसमें समकित को बाधा नहीं।

मुमुक्षु : संकल्पी...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह संकल्प में यह मारने योग्य है, ऐसी मान्यता नहीं है। परन्तु विरोधी की हिंसा का भाव...

मुमुक्षु : ... सम्यग्दर्शन होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : होता है। दया किसे कहना? दया, अपनी दया है। पर की तो छह काय की प्राणी कहा न? पंचेन्द्रिय वध करता है समकिती, क्षायिक समकिती है। चक्रवर्ती समकिती है और छह खण्ड साधता है तो बहुत हिंसा होती है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्धान्त दूसरा होगा?

मुमुक्षु : साधारण प्राणी की बात।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। साधारण कोई समकिती हो, क्षायिक समकिती, पशु। पशु भी क्षायिक समकित होता है या नहीं? यहाँ क्षायिक समकित हुआ हो और पहले आयुष्य बँध गया हो। जुगलिया में जाता है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करते हैं परन्तु तो भी करोड़ों लश्कर है। परन्तु उन हिंसा के परिणाम में रुचि नहीं है। यह बात कठिन बात है। रुचि नहीं। यह परिणाम करने की रुचि नहीं। परिणाम होते हैं। परिणाम हिंसा आदि के न हों, तब तो चारित्र हो।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दूसरी बात है। यह तो अनन्तानुबन्धी की कषाय। यह दूसरी बात है। एक जीव को मारे तो भी अनन्तानुबन्धी कषाय होती है। उसके साथ सम्बन्ध नहीं है।

मुमुक्षु : ... एकेन्द्रिय की दया पाले और अनन्तानुबन्धी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्ट एकेन्द्रिय की दया पाले और अनन्तानुबन्धी की कषाय हो।

मुमुक्षु : अट्ठाईस मूलगुण पाले तो भी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अट्ठाईस मूलगुण पाले और अनन्तानुबन्धी की कषाय हो। उसके साथ सम्बन्ध क्या है ? वस्तु की दृष्टि नहीं और आसक्ति दो पाप अलग हैं। दो पाप एक नहीं हैं। क्षायिक समकिती को आसक्ति का पाप, विषय का, भोग का, युद्ध का, वासना का भाव होता है परन्तु उसकी रुचि नहीं है। यहाँ सम्यग्दृष्टि की बात चलती है न! चाहे तो रंक प्राणी हो समकिती। परन्तु उसे राग में रुचि नहीं। राग होता है। राग न हो तो समकित है, ऐसा है नहीं। बात पूरी बड़ा अन्तर है। सम्यग्दर्शन और बाहर की दया के भावरहित आत्मा होता है, तथापि समकित है। अन्तर की दयारहित नहीं होता। मेरा स्वभाव रागरहित है, ऐसी ही दृष्टि है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह संकल्पी हिंसा का त्याग कहा न ? वह मारनेयोग्य है, ऐसा नहीं। श्रद्धा में आ गया न यह ? कि मारनेयोग्य है, ऐसी प्रतीति तो उसे है ही नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हो। सिंह को समकित है। परन्तु उस समकित में फिर हिरण का शिकार नहीं होता। समकित में ऐसी हिंसा नहीं होती। ऐसी नहीं होती। युद्ध की हिंसा होती है। माँस खाना, यह भाव नहीं होता।

मुमुक्षु : त्याग नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह त्याग... आसक्ति है न वहाँ। माँस खाना है, मद्य पीना है, यह

भाव तो बिल्कुल होता ही नहीं, तथापि युद्ध के लाखों मनुष्यों का संहार हों। चक्रवर्ती हो। राजकुमार है, समकिती है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पूरी दूसरी चीज़ है। साधारण के लिये। यहाँ तो सम्यग्दृष्टि की बात चलती है न। साधारण प्राणी तो मिथ्यादृष्टि है, उसकी क्या बात करना? समझ में आया? मिथ्यादृष्टि को दया का भाव हो तो वह कहीं दया का भाव नहीं है। दया का भाव तो राग है और राग को वह धर्म मानता है। दया पाले, ऐसा मानता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। सूक्ष्म बातें, भाई! मूल मार्ग अन्दर ऐसा है। लोगों को बाह्य के आचरण से अन्दर में कुछ परिणमन शुद्ध हो, धर्म का होता है - ऐसा है ही नहीं। आहाहा! बाहर का यह आचरण है, राग है वह तो शुभ है। बाह्य आचरण है। उसे कहाँ अन्तर आचरण है।

मुमुक्षु : छह काय की दया पाले...

पूज्य गुरुदेवश्री : छह काय की दया पाले और न पाले तो भी समकिती होता है।

मुमुक्षु : पाले तो मिथ्यादृष्टि...

पूज्य गुरुदेवश्री : और पाले तो मिथ्यादृष्टि हो। मैं पाल सकता हूँ, ऐसा माने, वह मिथ्यादृष्टि। गोम्मटसार में नहीं आया? ... समकिती इन्द्रिय के विषयों से निवृत्त नहीं हुआ है। आरम्भ से निवृत्त नहीं हुआ है। गोम्मटसार में गाथा आती है। वह अलग बात है। वह राग की परिणति का भाव है। परन्तु उसकी रुचि नहीं है। दृष्टि है आत्मा के ऊपर। समकिती को ऐसा राग होने पर भी समकित को बाधा बिल्कुल नहीं है। यह बात तो पहले आ गयी है। समझ में आया? और मिथ्यादृष्टि को दया का भाव इतना अधिक हो कि एकेन्द्रिय मरे तो ऐसे काँपे, तथापि मिथ्यादृष्टि है। वह तो पर के ऊपर उसका प्रेम-रुचि है। क्रियाकाण्ड का। यह कर सकता हूँ और दया का राग, वह मेरा कर्तव्य है—ऐसा मानता है। ऐई! प्रकाशदासजी! यह अन्धेरे में से निकलने की बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : कौन सा माप लगाया?

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर की दृष्टि का माप है, बाहर का माप है नहीं। अज्ञानी ऊपर

से देखता है, ज्ञानी अन्तर से देखता है। ऐसी बात है। आहाहा! बाहर में ब्रह्मचारी, नव वाड़ से ब्रह्मचर्य और बालब्रह्मचारी हो, तथापि मिथ्यादृष्टि। और छियानवें हजार स्त्रियों का भोग लेता हो और क्षायिक समकिती। उसके साथ सम्बन्ध क्या है ? बाहर के राग और उसकी दो चीज़ ही अलग है। अमरचन्दभाई! आहाहा! पशु लो न। समकिती पशु स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्य हैं। विषयवासना उन्हें आती है। वहाँ कहाँ उन्हें मेल है कि यही तिर्यंचनी है मेरे लिये ? चाहे जो तिर्यंचनी हो, उसे राग आता है, तथापि वह समकित को बाधा नहीं है। समकित को बिल्कुल बाधा नहीं है। क्या कहा, समझ में आया ? यहाँ तो अभी स्वस्त्री यही होती है और परस्त्री नहीं होती। पशु को वहाँ कहाँ घर है। चारित्रदोष दूसरा है, समकितदोष दूसरा है। दो बातें ही एकदम भिन्न है। लोग चारित्रदोष में समकित का दोष लगा देते हैं और चारित्रदोष मन्द पड़े, वहाँ समकित शुद्ध है, श्रद्धा अच्छी है, ऐसा मनवा लेते हैं।

मुमुक्षु : दया से होता है, धर्म होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ जरा भी धर्म नहीं होता। पर की दया के भाव से जीव की हिंसा स्वयं की होती है। राग है। पुरुषार्थसिद्धिउपाय में अमृतचन्द्राचार्य ने कहा है, राग की उत्पत्ति वह हिंसा है। चाहे तो दया का हो या चाहे तो सत्य का हो, चाहे तो शरीर के ब्रह्मचर्य का हो।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह हिंसा। पुरुषार्थसिद्धि उपाय का श्लोक अमृतचन्द्राचार्य का। यह जिनागम का संक्षेप यह स्वरूप है। राग सूक्ष्म में सूक्ष्म विकल्प प्रशस्त, आत्मा में उत्पन्न हो, वह हिंसा है। राग की उत्पत्ति नहीं, आत्मा आनन्द की शान्ति की उत्पत्ति, वह अहिंसा। व्याख्या अलग है, भाई! समझ में आया ? देखो!

अन्यलिंग से अन्यमतवाले श्वेताम्बरादिक जैनाभास... ऐई! मगनभाई! यह जैनाभास आया। स्थानकवासी और श्वेताम्बर, मन्दिरमार्गी, वह जैनाभास है, जैन नहीं।

मुमुक्षु : भगवान तो वह के वह हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान उनके नहीं मानते। भगवान कौन है, वे नहीं जानते। भगवान वीतराग होते हैं, सर्वज्ञ होते हैं।

मुमुक्षु : परन्तु जैनाभास तो है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : जैनाभास का अर्थ क्या हुआ? जैन नहीं। यहाँ कोई सिफारिश चले, ऐसा नहीं है। ऐई! अमरचन्दभाई! भाई ने- टोडरमलजी ने (मोक्षमार्गप्रकाशक के) पाँचवें अध्याय में स्पष्ट लिखा है। अन्यमती है। दुःख लगे, न लगे, स्वतन्त्र है। वस्तु यह है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : जैनाभास। दिखाव है लिबास में, परन्तु जैन नहीं। ऐई! उत्तमचन्दभाई! ऐसा स्वरूप है। मार्ग तो जो होगा, वह होगा। वह कहीं किसी के कारण से बदले, ऐसा नहीं है। मगनभाई!

मुमुक्षु : जैन तीर्थंकर को माने तो भी....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीर्थंकर को मानते ही नहीं। तीर्थंकर की आज्ञा वीतरागभाव की है। वीतरागभाव बिना, उस राग में धर्म मानते हैं और वस्त्रसहित राग है, उसे साधु मानते हैं। वीतराग को मानते ही नहीं। ऐई! रतिभाई!

मुमुक्षु : सब नया सुनने को मिले उसमें...

पूज्य गुरुदेवश्री : काम करता है। क्या करता है? उल्टी मान्यता घुस गयी है। रतिभाई! घुसी हो न बहुत। अन्दर से धक्का लगे। बात सच्ची है, हों! एकदम... विवाद... विवाद। मार्ग ऐसा है, भाई! आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो बहुत समय से माना हुआ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत समय से माना हुआ। पोषण किया हो। परिवार उसमें हो, जाति उसमें हो, पोषित उसमें हो। गुरु ऐसे मिले हों।

मुमुक्षु : उसमें महत्ता मानी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, फिर उसमें कोई सामने करता हो वे अपवास-बपवास। सामने अच्छा कहलाये। ऐई! बापू! मार्ग ऐसा है, भाई! यहाँ तो भगवान तो कहते हैं कि वस्त्रसहित लिंग में जो साधुपना और मुक्ति मानता है, वह जैन नहीं, जैनाभास है।

मुमुक्षु : परद्रव्य...

पूज्य गुरुदेवश्री : परद्रव्य किसे। परद्रव्य का भी जो दोष है, उसे दोष नहीं स्वीकारता, वह अपना दोष है या उसका है ? दूसरे को मिथ्यादृष्टि है, वस्त्रसहित मानता है, उसे दोषवाला नहीं मानता। वह दोषवाला नहीं मानता, यह दोष किसका है ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर कहाँ मानता है ?

मुमुक्षु : ऐसा कहते हैं कि ...

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने कहा .... परवस्तु बाधक किसने कही ? परवस्तु है, दोषवाली है, उसे वह लाभदायक मानता है, यह स्वयं का दोष है, यह दोष करता है। पर के दोष की कहाँ बात है। और क्या कहा ? यह स्पष्ट कराते हैं। घर में महिला-महिलाओं को जरा हो न वह विपरीतता। ऐसा कि परद्रव्य का दोष क्या है यहाँ ?

मुमुक्षु : यह तो अपने कहते हैं कि परद्रव्य कुछ नुकसान नहीं करता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किसने कहा, परद्रव्य नुकसान करता है ? परद्रव्य है, वह वस्त्र है, वह नुकसानकारक नहीं है। परन्तु वस्त्र होने पर भी मुझे साधुपना होता है, मैं मुक्ति प्राप्त करूँगा, ऐसा भाव मिथ्यात्व है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : आप कहते हो कि परपदार्थ से नुकसान नहीं, फिर क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने कहा परपदार्थ से ऐसा ? उससे नुकसान वस्त्र रखनेवाला रागी है और मुनिपना माने, वह मिथ्यादृष्टि है। उसे इस प्रकार से न मानकर, वह धर्मी है, ऐसा माने, वह दोष अपना है या पर के कारण से है ?

मुमुक्षु : रागी है और वीतरागी माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा। वह रागी है, मिथ्यात्वी है और धर्मी मानता है, यह दोष स्वयं का है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका ? उपकरण-बुपकरण वस्त्र के नहीं होते। धर्मी को

उपकरण–बुपकरण मोरपिच्छी, कमण्डल और पुस्तक, इसके अतिरिक्त नहीं होते।

मुमुक्षु : पर से नुकसान...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किसने कहा पर से नुकसान? पर के कारण नुकसान कहता हौन है? ऐई! पर सच्चा है नहीं। खोटा है। उस खोटे को सच्चा मानता है, वह दोष अपने कारण से है। उसके कारण से कहाँ है? समझ में आया?

मोक्ष मानते हैं, वह मोक्षमार्ग नहीं है। देखो! अन्य लिंग में, वस्त्र में मोक्षमार्ग मानता है, उसे मोक्षमार्ग नहीं है। नहीं अन्दर। होवे तो उसे वह लिंग दूसरा रहे नहीं, तथापि उसे मानता है, उस मान्यतावाले का दोष पर के कारण से नहीं है। अमरचन्दभाई! आहाहा! मार्ग ऐसा है। लोगों ने भारी गड़बड़ कर डाली है। लोगों को छूटना भारी। मुश्किल से मनुष्यपना मिला, उसमें से इस वाड़ा में से छूटना...

मुमुक्षु : आग्रह हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ भी बचाव करके स्वयं कहीं मेरा दोष नहीं, ऐसा इसे सिद्ध करना है। पर के कारण से दोष नहीं है। परन्तु पर के कारण से किसने कहा?

मुमुक्षु : इसकी तो एक भी बात नहीं रखी।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किसकी एक बात नहीं? खोटी को किस प्रकार सच्ची करे?

देखो! **श्वेताम्बरादि जैनाभास मोक्ष मानते हैं...** मोक्ष मानते हैं, गुण मानते हैं। वस्त्रसहित, लिंगसहित साधुपना मानते हैं। ऐसा है नहीं, तथापि यह मानते हैं, वह श्रद्धा मिथ्यात्व है। **ऐसा श्रद्धान करे, वह सम्यग्दृष्टि है,...** देखो! समझ में आया? मार्ग कठिन, बापू! आहाहा! दुनिया अनादि से ऐसा का ऐसा कहीं न कहीं छोड़ा, साधु हुए, त्यागी हुए परन्तु बेचारे उलझन में तो हैं। उसमें। 'गच्छना भेद बहु नयण निहाळता, तत्त्वनी बात करता न लाजे...' ऐसा आया है न आनन्दघनजी में? 'गच्छना भेद बहु नयण निहाळता, तत्त्वनी बात करता न लाजे, उदर भरणादि निज काज करता थका मोह नडिया कलिकाल राजे।' कलिकाल में तो मोह का राज चला है। हम यह सच्चे हैं, हम यह वस्त्रसहित हैं, तथापि हम साधु हैं, हम मुनि हैं। वीतराग कहते हैं कि वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

आत्मा जहाँ वीतराग मार्ग में चढ़ा, तब तो दृष्टि में उड़ गया। विकल्प-बिकल्प कुछ मुझे नहीं। फिर स्थिरता होने पर विकल्प टूट जाये, उसका संयम सम्बन्ध वस्त्र-पात्र का हो नहीं सकता। ऐसा उसका सुमेल में सम्बन्ध है। ऐसा सम्बन्ध न माने, उसे अजीव की श्रद्धा नहीं। क्योंकि मुनि हो, उसे अजीव का संयोग वस्त्र-पात्र छूट जाये तो इतने अजीव की श्रद्धा उसे नहीं है। उसे अजीव छूटने पर उसे आस्रव तीव्र नहीं होता। मात्र आहार-पानी का विकल्प इतना होता है तो आस्रव की श्रद्धा भी उसे नहीं है। आस्रव इतना सब बहुत जाये तो संवर-शान्ति कितनी उग्र हो, इसकी भी श्रद्धा नहीं है। संवर और निर्जरा की श्रद्धा नहीं है, उसका कार्य मोक्ष की श्रद्धा नहीं है, उसका कारण जीव की भी श्रद्धा नहीं है। नव तत्त्व की विपरीत श्रद्धा है। ऐई! छोटाभाई!... तो पूरा है। उसमें फिर एकाध-दो निकल गये होंगे मुश्किल से। मयाचन्दभाई, छोटाभाई और वे। हिम्मतभाई थोड़ा-थोड़ा करना चाहे परन्तु अब... आहाहा! बापू! मार्ग ऐसा है। अनादि का वीतरागमार्ग यह है। इस वीतरागमार्ग को किसी की अपेक्षा-सिफारिश नहीं है। **ऐसा जानना**। लो!

गाथा-९१

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करते हुए कहते हैं –

जहजायरूवरूवं सुसंजयं सव्वसंगपरिचत्तं।
लिंगं ण परावेक्खं जो मण्णइ तस्स सम्मत्तं।।९१।।

यथाजातरूपरूपं सुसंयत सर्वसंगपरित्यक्तम्।
लिंगं न परापेक्षं यः मन्यते तस्य सम्यक्त्वम्।।९१।।

जो यथा-जातक रूप पर-निरपेक्ष सब परिग्रह-रहित।
है मानता लिंग संयती उसके कहा सम्यक्त्व जिन।।९१।।

अर्थ – **मोक्षमार्ग का लिंग-भेष ऐसा है कि यथाजातरूप तो जिसका रूप है, जिसमें बाह्य परिग्रह वस्त्रादिक किंचित् मात्र भी सुसंयत अर्थात् सम्यक् प्रकार इन्द्रियों**

का निग्रह और जीवों की दया जिसमें पाई जाती है ऐसा संयम है, सर्वसंग अर्थात् सब ही परिग्रह तथा सब लौकिक जनों की संगति से रहित है और जिसमें पर की अपेक्षा कुछ भी नहीं है, मोक्ष के प्रयोजन सिवाय अन्य प्रयोजन की अपेक्षा नहीं है। ऐसा मोक्षमार्ग का लिंग माने–श्रद्धान करे उस जीव के सम्यक्त्व होता है।

भावार्थ – मोक्षमार्ग में ऐसा ही लिंग है, अन्य अनेक भेष हैं वे मोक्षमार्ग में नहीं हैं, ऐसा श्रद्धान करे, उनके सम्यक्त्व होता है। यहाँ परापेक्षा नहीं है – यहाँ बताया है कि ऐसे निर्ग्रन्थ रूप को जो किसी अन्य आशय से धारण करे तो वह भेष मोक्षमार्ग नहीं है, केवल मोक्ष ही की अपेक्षा जिसके हो, वह सम्यग्दृष्टि है, ऐसा जानना।।९१।।

गाथा–९१ पर प्रवचन

देखो। **आगे इसी अर्थ को दृढ़ करते हुए कहते हैं :-**

जहजायरूवरूवं सुसंजयं सव्वसंगपरिचत्तं।
लिंगं ण परावेक्खं जो मण्णइ तस्स सम्मत्तं।।९१।।

अर्थ :- मोक्षमार्ग का लिंग-वेश ऐसा है कि यथाजातरूप तो जिसका रूप है,... जैसा माता से जन्मा, वैसा उसका लिंग–वेश होता है। समझ में आया? यथाजात कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। जैसा जन्मा वैसा। आहाहा! वीतराग पन्थ में चला है, केवलज्ञान लेने को तरसता है, उसकी दशा कैसी होगी! आहाहा! भगवान हुआ है न, और पूर्ण भगवान होने को प्रयासरत है। आहाहा! हल्का, हल्का। हल्का। समझ में आया? **यथाजातरूप तो जिसका रूप है,...** दो शब्द पड़े हैं न? '**यथाजातरूपरूपं**' ऐसे दो शब्द हैं। **यथाजातरूप तो जिसका रूप है,...** ऐसा। समझ में आया? '**जहजायरूवरूवं**' यथाजातरूप जिसका रूप है, ऐसा। वीतरागभाव जिसमें अन्तर में होता है, बाह्य में शरीर की निर्ग्रन्थदशा हो जाती है। ऐसा यथाजातरूप रूपं यथाजातरूप, वह रूप है।

मुमुक्षु : यथाजात माने...

पूज्य गुरुदेवश्री : ...

सम्यग्दर्शनसहित, सम्यग्ज्ञानसहित जहाँ चारित्र आया, वह तो अलौकिक दशा है।

बापू! यह बात सुनना तो महाकठिन है। ऐसी दशा की खबर नहीं होती और माने, वह बड़ा मिथ्यात्व है, महापाप है। समझ में आया? कसाईखाने से भी इस मिथ्यात्व का पाप बड़ा है। ऐई! उत्तमचन्दभाई!

मुमुक्षु : जरा भारी पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : भारी पड़े या हल्का पड़े, मार्ग तो यह है। माना हो, उसमें जरा कठिन पड़े।

आहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर... यह कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं पुकार करते हैं। '**जहजायरूवरूवं**' मुनि की वीतरागी दशा होती है। जैसा आत्मा वीतरागी, वैसी दशा प्रगट होती है। शरीर में यथाजात बालक की भाँति दोनों समान होते हैं। **जिसका रूप है, जिसमें बाह्य परिग्रह वस्त्रादिक किंचित्मात्र भी नहीं है,...** है? बाह्य परिग्रह वस्त्र आदि पात्र आदि **किंचित्मात्र भी नहीं है,...** जिसे नहीं होते। और **सुसंयत अर्थात् सम्यक्प्रकार इन्द्रियों का निग्रह और जीवों की दया जिसमें पाई जाती है...** छह काय के प्राणी, एक जीव को भी मारने का विकल्प उसे नहीं होता। सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र में। वस्त्र नहीं होता बाह्य में, पात्र नहीं होता, सम्यक् प्रकार की इन्द्रिय का निग्रह होता है और किसी जीव को एकेन्द्रिय को भी मारने का विकल्प उसे नहीं होता। संयती है न मुनि? कैसा होता है? **ऐसा संयम है,...** देखो! उसे ऐसा संयम होता है। आहाहा!

और, **सर्वसंग अर्थात् सब ही परिग्रह तथा सब लौकिक जनों की संगति से रहित है...** देखो! अपेक्षा बाद में आयेगी। **जिसमें पर की अपेक्षा कुछ नहीं है,...** सर्व परिग्रह, सर्व लौकिकजन की संगति रहित है। **जिसमें पर की अपेक्षा कुछ नहीं है,...** देखो! आहाहा! श्रीमद् ने नहीं कहा अपूर्व अवसर में? 'सर्व भाव से उदासीन वृत्ति करी, सर्व भाव से उदासीन वृत्ति करी।' सम्यग्दर्शन के बाद की बात है। 'मात्र देह वह संयम हेतु होय जब।' एक देह संयम के हेतु, इसके अतिरिक्त कोई चीज़ नहीं। रतिभाई! आता है न? अपूर्व अवसर में आता है। वहाँ अर्थ भी कौन समझता है?

मुमुक्षु : भाव समझे नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक कहते हैं। भाव समझे नहीं और हाँक रखते हैं।

'सर्व भाव से उदासीन....' मुनि किसे कहते हैं ? आहाहा ! धन्य अवतार ! धन्य सफल ! जिसने मोक्षमार्ग साधकर मोक्ष को निकट किया है। केवलज्ञान जिसे समीप आता है—केवलज्ञान जिसे निकट आता है। समझ में आया ? 'सर्व भाव से उदासीन वृत्ति करी, मात्र देह...' मात्र देह लिया है। वस्त्र और कुछ लिया है उसमें ? ऐई ! मगनभाई ! 'मात्र देह वह संयम हेतु होय जब। अन्य कारण से अन्य कछु कल्पूं नहीं। अन्य कारण से अन्य कछु कल्पूं नहीं।' पर की अपेक्षा रहित। 'देह परन्तु किंचित् मूर्च्छा न होय जब।' संयम का हेतु यह निमित्त देह रह गयी है। परन्तु इसमें भी मूर्च्छा नहीं होती, ऐसी अन्तरदशा सन्त की निर्ग्रन्थ होने पर उसे मोक्ष का मार्ग कहा जाता है। समझ में आया ? भीखाभाई ! आहाहा ! ऐसा मार्ग है, भाई !

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह तो अधिक साधु में रहे वह। अकेले रहे, वह जिनकल्पी और अधिक साधु में (रहे स्थविरकल्पी), स्थविरकल्पी वस्त्र रखे और जिनकल्पी नहीं रखे, ऐसा नहीं है। आहाहा ! दोनों इसमें लिया है, समयसार नाटक में।... है स्पष्ट। जिनकल्पी और स्थविरकल्पी दोनों नग्न मुनि होते हैं। स्थविरकल्पी हैं वे बहुत साधुओं के साथ इकट्ठे रहते हैं। जिनकल्पी अकेले रहते हैं। बाकी वस्त्र का टुकड़ा भी स्थविरकल्पी या जिनकल्पी किसी को नहीं हो सकता। वीतरागदशा प्रगट हुई है। आहाहा ! मात्र एक विकल्प बाकी है शरीर को आहार-पानी लेने का। बाकी कुछ नहीं होता। आहाहा !

मुमुक्षु : जिनकल्पी में दो-चार थोड़े होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। जिनकल्पी अकेले रहते हैं। स्थविरकल्पी साथ में रहते हैं। हैं दोनों नग्न। और स्थविरकल्पी को वस्त्र तथा उनको वस्त्र नहीं, ऐसा नहीं है। आहाहा !

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। जाओ। है न। मुनिन्द्रसागर आये थे (संवत्) १९८६ में। भावनगर में। नग्न थे। मुनिन्द्रसागर थे। तीन साधु थे। कुछ ठिकाना नहीं। अभी वहाँ गये तो कहे लाओ न जायें सुनें। फिर मक्खन लगाया। स्थविरकल्पी और जिनकल्पी दो प्रकार

के साधु होते हैं। ऐसा कहकर क्या कि यह स्थविरकल्पी है और हम जिनकल्पी हैं, ऐसा। यहाँ स्थविरकल्पी साधु कब था? १९८६ की बात है, ८६। ४० वर्ष हुए। भावनगर। मुनिन्द्रसागर थे लम्पटी। बाद में तो मर गये। तीन साधु थे। ८६ में भावनगर गये थे। स्थविरकल्पी, जिनकल्पी दोनों साधु वस्त्ररहित होते हैं। वस्त्रवाले साधु कैसे? ८६ की बात है शोभालालजी! कितने वर्ष हुए? ४० वर्ष हुए। दिगम्बर साधु। क्या कहते हैं कहा यह? क्या है? फिर सब देखा। गड़बड़-गड़बड़। आहाहा!

सर्वसंग अर्थात् सब ही परिग्रह तथा सब लौकिक जनों की संगति से रहित है और जिसमें पर की अपेक्षा कुछ नहीं है,... आहाहा! संयमी। कुछ अपेक्षा ही नहीं। जहाँ वीतरागभाव अन्दर है। आहाहा! साधुपद अर्थात् परमेश्वरपद। जिसे ऐसा पद हो उसे माने, उसे समकित कहा जाता है। इससे उल्टा माने, उसे मिथ्यात्व कहा जाता है। भले वीतराग को मानता हो और मन्दिर को पूजता हो तो भी (मिथ्यात्व कहा जाता है)। **मोक्ष के प्रयोजन सिवाय अन्य प्रयोजन की अपेक्षा नहीं है।** कोई अपेक्षा से लिंग भी रखा नहीं, ऐसा कहते हैं। नग्नपना भी कोई अपेक्षा से लिया नहीं, ऐसा कहते हैं। निरपेक्षरूप से ऐसा स्वभाव है, ऐसा हो गया है। दुनिया की इज्जत के लिये कि नग्न होंगे तो लोग अपने को पूजेंगे, बहुमान देंगे, साधुरूप से अपने को आदर दें तो वह भी नग्नपना सापेक्ष हुआ, यह वास्तविक निरपेक्ष है नहीं। समझ में आया? साधु हो तो आदर दे। साधु बिना इतना आदर नहीं दे, ऐसा करके नग्न धारण करे, वह कोई सच्चा लिंग नहीं है। अपेक्षारहित है। **ऐसा मोक्षमार्ग का लिंग माने-श्रद्धान करे, उस जीव के सम्यक्त्व होता है।** तो उसे समकित होता है। यदि निश्चय प्रगट करे तो। नहीं तो अकेला व्यवहार रहे तो व्यवहार में भी मिथ्यात्व है।

भावार्थ :- मोक्षमार्ग में ऐसा ही लिंग है, अन्य अनेक वेश हैं, वे मोक्षमार्ग में नहीं है, ऐसा श्रद्धान करे, उनके सम्यक्त्व होता है। लो! **यहाँ परापेक्ष नहीं है-ऐसा कहने से बताया है कि ऐसा निर्ग्रन्थरूप भी जो किसी अन्य आशय से धारण करे तो वह वेश मोक्षमार्ग नहीं है,...** आत्मा के लिये अन्दर। वीतरागी भाव प्रगट किया है और वीतरागी लिंग भी नग्न हो गया है। कोई कारण नहीं। ऐसा नग्नपना धारण करे तो लोगों में आदर मिले, महिमा हो, गिनती में आयें। यह कोई गिनता नहीं। एक व्यक्ति कहता था कि आठ

प्रतिमा ली है, परन्तु अभी कोई गिनता नहीं, इसलिए मुझे क्षुल्लक होना पड़ेगा। (संवत्) २००६ के वर्ष में, वहाँ राजकोट एक आया था। आठ प्रतिमावाला श्रावक। कोई गिनता नहीं मुझे अभी। साधु होगा तब गिनेंगे। (संवत्) २००६ के वर्ष। आहाहा! अरे! भगवान! करना है तुझे बापू? आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा है, वह आनन्द बाहर से लेने कहाँ गया? समझ में आया? कोई मुझे माने तो ठीक, वह भी बाहर के कारण आनन्द माना है। दूसरे मुझे कुछ गिने तो ठीक, यह तो बाहर में आनन्द माना है। मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! मेरा आनन्द तो मुझमें है। मेरे आनन्द के लिये किसी दूसरे की अपेक्षा नहीं है। आहाहा!

ऐसा कहने से बताया है कि ऐसा निर्ग्रन्थरूप भी जो किसी अन्य आशय से धारण करे तो वह वेश मोक्षमार्ग नहीं है, केवल मोक्ष ही की अपेक्षा जिसमें हो ऐसा हो, उसको माने, वह सम्यग्दृष्टि है... निश्चयसम्यग्दृष्टिसहित ऐसा माने, उसे व्यवहार समकित कहा जाता है। समझ में आया?

गाथा-९२

आगे मिथ्यादृष्टि के चिह्न कहते हैं –

कुच्छियदेवं धम्मं कुच्छियलिंगं च बंदए जो दु।
लज्जाभयगारवदो मिच्छादिट्ठी हवे सो हु।।९२।।

कुत्सितदेवं धर्मं कुत्सितलिंगं च वन्दते यः तु।
लज्जाभयगारवतः मिथ्यादृष्टिः भवेत् सः स्फुटम्।।९२।।

जो देव कुत्सित धर्म कुत्सित लिंग कुत्सित पूजता।
भय शर्म या गारव-वशी हो उसे मिथ्यात्वी कहा।।९२।।

अर्थ – जो क्षुधादिक और रागद्वेषादिक दोषों से दूषित हो वह कुत्सित देव है, जो हिंसादि दोषों से सहित हो, वह कुत्सित धर्म है, जो परिग्रहादि सहित हो वह कुत्सितलिंग है। जो इनकी वन्दना करता है, पूजा करता है, वह तो प्रगट मिथ्यादृष्टि है।

यहाँ अब विशेष कहते हैं कि जो इनको भले-हित करनेवाले मानकर वन्दना करता है, पूजा करता है, वह तो प्रगट मिथ्यादृष्टि है, परन्तु जो लज्जा भय गारव इन कारणों से भी वन्दना करता है, पूजा करता है, वह भी प्रगट मिथ्यादृष्टि है। लज्जा तो ऐसे कि लोग इनकी वन्दना करते हैं, पूजा करते हैं, हम नहीं पूजेंगे तो लोग हमको क्या कहेंगे? हमारी इस लोक में प्रतिष्ठा चली जायेगी, इस प्रकार लज्जा से वन्दना व पूजा करे। भय ऐसे कि इनको राजादिक मानते हैं, हम नहीं मानेंगे तो हमारे ऊपर कुछ उपद्रव आ जायेगा, इस प्रकार भय से वन्दना व पूजा करे। गारव ऐसे कि हम बड़े हैं, महन्त पुरुष हैं, सब ही का सन्मान करते हैं, इन कार्यों से हमारी बड़ाई है, इस प्रकार गारव से वन्दना व पूजना होता है। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि के चिह्न कहे।।९२।।

गाथा-९२ पर प्रवचन

आगे मिथ्यादृष्टि के चिह्न कहते हैं :- लो! वे समकित दृष्टि से बाहर के चिह्न थे।

कुच्छियदेवं धम्मं कुच्छियलिंगं च बंदए जो दु।
लज्जाभयगारवदो मिच्छादिट्ठी हवे सो हु।।९२।।

अर्थ :- जो क्षुधादिक... जिसे देव-परमेश्वर कहा जाता है, उसे क्षुधा लगे, उसे तृषा लगे, और रोग हो, उसे देव माने, उसे देव मानकर वन्दन करे, वह मिथ्यादृष्टि है। भारी कठिन काम, भाई! कहो, नेमिदासभाई! यह तुम्हारे कहाँ है उसमें दिक्कत? इनकार करे ऐसा नहीं कुछ घर में। जिसे दिक्कत हो, उसे दिक्कत होगी न? आहाहा! **जो क्षुधादिक...** क्षुधा, तृषा। भगवान को आहार। भगवान आहार लेने जाये, वे न जाये तो उनकी ओर से दूसरे जायें। यह सब बातें तत्त्व से एकदम विरोध है। देवीलालजी!

मुमुक्षु : हुण्डावसर्पिणी।

पूज्य गुरुदेवश्री : हुण्डावसर्पिणी है, इसलिए ऐसा होता है, ऐसा कहते हैं। हुण्डावसर्पिणी में रोटी की जगह कोई जहर खाते होंगे। अनाज के बदले मिट्टी खाते हैं? पानी के बदले पेशाब पीते होंगे कहीं? हुण्डावसर्पिणी है। मार्ग तो मार्ग है, ऐई... सेठ!

मुमुक्षु : महँगा ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : महँगा है परन्तु वस्तु तो जो हो, वह रहे न ? महँगा तो तुम्हारे नहीं पड़ता ? सवेरे एक मैंने पूछा था किसी का कि धूपेल क्या ? कि धूपेल तो पहले आठ आना सेर, अभी पाँच रुपये का सेर है। यह सिर में डालने का। ऐसा महँगा हो गया बोलो लो। धूपेल तेल। पहले महिलायें घर में बनाती थीं। आठ आना सेर पड़ता था, आठ आना। दस गुना हो गया। वैसे तो भाव सोलह गुना हो गया है। धूपेल-धूपेल। यह स्त्रियाँ बाल में डाले न तेल। पहले घर में बनाते थे। अब कहते हैं कि महँगा हो गया।

मुमुक्षु : अब तैयार आता है, घर में कोई नहीं बनाता।

पूज्य गुरुदेवश्री : महँगा परन्तु पाँच-पाँच रुपये का तेल। आहाहा ! महँगा है परन्तु लेते हैं न ? इसी प्रकार मार्ग महँगा है परन्तु आदर किया जाता है या नहीं ? यह तो महँगा-महँगा सेठ कहता था।

मुमुक्षु : सेठ आज उलझ गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : उलझ गये, वे तो अज्ञानी से उलझे हैं। ज्ञान में उलझन नहीं होती।

राग-द्वेषादि दोषों से दूषित... न हो। जिस देव में राग हो, द्वेष हो, स्त्री रखता हो। समझ में आया ? आयुध रखता हो, भगवान की माला जपता हो, वह तो अभी रागी है। उसे देव नहीं कहा जाता।

मुमुक्षु : भगवान की माला भी नहीं फिरावे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान माला फिरावे दूसरे भगवान की ? वे भगवान दूसरे भगवान की माला फिरावे, वह भगवान ही नहीं है, वह देव नहीं है। वहाँ तक राग है। यह देव की बात चलती है न ? मगनभाई ! अभी रागी प्राणी लगता है, किसी की माला फिराता है। ऐसा राग जिसे न हो, उसे देव कहा जाता है। परमेश्वर। आहाहा ! समझ में आया ? आयुध रखे, गोद में स्त्री बैठावे... कहो, वह सब देव नहीं कहलाते। वे सब कुदेव है।

वह कुत्सित देव है, जो हिंसादि दोषों से सहित हो... हिंसा करे, एकेन्द्रिय प्राणी, पंचेन्द्रिय प्राणी मरे और उसमें माने धर्म। **वह कुत्सित धर्म है, जो परिग्रहादि सहित हो**

वह कुत्सित लिंग है। तीन दोष कहे। देव खोटा, धर्म खोटा और लिंग खोटा। **परिग्रहादि सहित हो वह कुत्सित लिंग है। जो इनकी वन्दना करता है, पूजा करता है, वह तो प्रगट मिथ्यादृष्टि है।** उसे देव-गुरु-शास्त्ररूप से माने, वन्दन करे, पूजन करे तो प्रगट मिथ्यादृष्टि है। प्रगट, है न? '**च बंदए जो दु**' प्रत्यक्ष कहा।

यहाँ अब विशेष कहते हैं कि जो इनको भले-हित करनेवाले मानकर वन्दना करता है, पूजा करता है, वह तो प्रगट मिथ्यादृष्टि है, परन्तु जो लज्जा भय गारव इन कारणों से भी वन्दना करता है, वह तो प्रगट मिथ्यादृष्टि है। पाठ है या नहीं? '**लज्जाभयगारवदो**' दुनिया की लज्जा के लिये (पूजे)। भाई! क्या करें? बड़े हुए अभी तक, उनका आदर करना पड़ता है। बड़े सामने आगे बैठाकर इज्जत ... जाये। ऐई सेठ! **लज्जा...** है? **भय...** समाज का भय लगे। डरते-डरते भय लगे। समाज अपने को रहने नहीं दे। ऐसा करके भी यदि ऐसे मिथ्या देव-गुरु-शास्त्र को वन्दे-पूजे तो मिथ्यादृष्टि है।

गारव... अपने को ऐसे में अनुकूलता मिलती है। सेठाई की, प्रमुखता की, साता शैय्या भोगे। मान पोषित हो, प्रमुखपने का मान पोषित हो, संघवीपने का मान मिले, इसलिए भी दूसरे को वन्दे-पूजे तो मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु : ऐसा होवे तो।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा होवे तो निकाल डालना, ऐसा कहते हैं। बड़े को अधिक होता है। शोभालालभाई एक ओर बैठे। उसे कोई पूछे नहीं। बड़ा सिर करके बाहर जाये। भाई! बैठो यहाँ फोड़ो सिर। वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव का मार्ग ऐसा है। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य प्रसिद्ध करके बात करते हैं।

प्रगट मिथ्यादृष्टि है। लज्जा तो ऐसे कि लोग इनकी वन्दना करते हैं, पूजा करते हैं, हम नहीं पूजेंगे तो लोग हमको क्या कहेंगे? क्या कहेंगे? अरे! यह तो बिना ठिकाने का है, अमुक है। चक्कर फिर गया लगता है। पहले तो हमारे साथ बहुत आता था, सब करता था। बदल गया लगता है। आहाहा! **हमारी इस लोक में प्रतिष्ठा चली जायेगी,...** हमारी जायेगी और लोक में हमारी मान्यता जायेगी। यदि नहीं मानेंगे, पूजेंगे तो। चलो, राजा के गुरु हैं और राजा कहते हैं। चरण वन्दन करें। **इस प्रकार लज्जा से वन्दना व पूजा**

करे। भय ऐसे कि इनको राजादिक मानते हैं,... लो! आया। **हम नहीं मानेंगे तो हमारे ऊपर कुछ उपद्रव आ जायेगा,...** हमारे ऊपर उपद्रव आयेगा। राजा हो, वह माने और अपने को जैन न माने तो अपने को नुकसान हो जायेगा। ऐसा करके भी वन्दन करे तो मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया?

गारव ऐसे कि हम बड़े हैं, महन्त पुरुष हैं, सब ही का सम्मान करते हैं,... हम तो सबको समान मानते हैं, तो इनका भी हमें सम्मान करना पड़ेगा।

मुमुक्षु : इसमें नमो नारायण लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नमो नारायण संस्कृत में है।

इन कार्यों से हमारी बढ़ाई है,... ऐसा करने में हमारी बढ़ाई बनी रहेगी, संघपतिपना बना रहेगा, समाजभूषण की पदवी बनी रहेगी। ऐसे कारण से भी नहीं मानता, ऐसा कहते हैं। **इस प्रकार गारव से वन्दना व पूजना होता है। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि के चिह्न कहे।** लो! यह तो अज्ञानी के चिह्न हैं। विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-९३

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करते हुए कहते हैं कि –

सपरावेक्खं लिंगं राई देवं असंजयं वंदे।
मण्णइ मिच्छादिट्ठी ण हु मण्णइ सुद्धसम्मत्तो।।९३।।

स्वपरापेक्षं लिंगं रागिणं देवं असंयतं वन्दे।
मानयति मिथ्यादृष्टिः न स्फुटं मानयति शुद्धसम्यक्त्वी।।९३।।

है स्व-पर-सापेक्ष लिंग रागी देव वन्दन असंयत।
जो मानता मिथ्यात्व उसके शुद्ध समकित है उलट।।९३।।

अर्थ – स्वपरापेक्ष तो लिंग आप कुछ लौकिक प्रयोजन मन में धारण कर भेष

ले वह स्वापेक्ष है और किसी पर की अपेक्षा से धारण करे, किसी के आग्रह तथा राजादिक के भय से धारण करे, वह परापेक्ष है। रागी देव (जिसके स्त्री आदि का राग पाया जाता है) और संयमरहित को इस प्रकार कहे कि मैं वन्दना करता हूँ तथा इनको माने, श्रद्धान करे, वह मिथ्यादृष्टि है। शुद्ध सम्यक्त्व होने पर न इनको मानता है, न श्रद्धान करता है और न वन्दना व पूजन ही करता है।

भावार्थ **– ये ऊपर कहे इनसे मिथ्यादृष्टि के प्रीति भक्ति उत्पन्न होती है, जो निरतिचार सम्यक्त्ववान् है, वह इनको नहीं मानता है।।९३।।**

प्रवचन-९७, गाथा-९३ से ९७, शुक्रवार, भाद्र कृष्ण १०, दिनांक २५-०९-१९७०

मोक्षपाहुड़ की ९३ गाथा। ९२ हुई गयी न? ९३। **इसी अर्थ को दृढ़ करते हुए कहते हैं कि:-** क्या कहते हैं? मुनि है, उसका द्रव्यलिंग हो, वह नग्न होता है और उसका भावलिंग अन्तर वीतराग समभाव होता है। वह मुनि होते हैं, ऐसे मुनि भावलिंगी, वे सन्त हैं, गुरु हैं, वे वन्दन करनेयोग्य हैं। जैनदर्शन में अर्थात् वस्तु के स्वभाव में। दूसरे प्रकार से लिंग पर की अपेक्षा से स्व की अपेक्षा धारण करे कोई तो वह लिंग वन्दनीय नहीं है। यह बात की थी।

सपरावेक्खं लिंगं राई देवं असंजयं वंदे।
मण्णइ मिच्छादिट्ठी ण हु मण्णइ सुद्धसम्मत्तो।।९३।।

अर्थ :- स्वपरापेक्ष तो लिंग-आप कुछ लौकिक प्रयोजन मन में धारण कर वेश ले, वह स्वापेक्ष है... चलो कुछ वेश लूँगा तो अपने को आहार आदि अनुकूल मिलेगा, इज्जत मिलेगी, लोग मान देंगे। बाह्य लिंग धारे, वह वन्दन के योग्य नहीं है। **लौकिक प्रयोजन मन में धारण कर वेश ले, वह स्वापेक्ष है और किसी पर की अपेक्षा से धारण करे, किसी के आग्रह तथा राजादिक के भय से धारण करे, वह परापेक्ष है।** वह भी वन्दन योग्य नहीं है।

रागी देव (जिसके स्त्री आदि का राग पाया जाता है)... स्त्री का राग हो, हथियार आदि हो, ऐसे देव वन्दन के योग्य नहीं है। **और संयमरहित को इस प्रकार कहे...**

असंयमी देव, ऐसा लिया उसमें। देव है, परन्तु असंयमी है, रागी है, इसलिए उसे पूजनेयोग्य नहीं है। **रागी देव और संयमरहित को इस प्रकार कहे कि मैं वन्दना करता हूँ तथा इनको माने, श्रद्धान करे, वह मिथ्यादृष्टि है।** कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र की पूरी बात लेकर यहाँ कुलिंग की बात अधिक नहीं ली।

और, **शुद्ध सम्यक्त्व होने पर न इनको मानता है,...** इनको नहीं मानता। कुलिंग और कुवेश, पर की-स्व की अपेक्षा से ... प्रतिमा आदि धारण किये हों, अपना समभाव-वीतरागभाव है, वह प्रगट करके जिसने बाह्यलिंग ऐसा समभावी, पर की अपेक्षा बिना का लिंग हो, वह मुनि है। वह मोक्षमार्ग का अधिकारी है। समझ में आया?

भावार्थ :- ये ऊपर कहे इनसे मिथ्यादृष्टि के प्रीति भक्ति उत्पन्न होती है,... अज्ञानी को ऐसे खोटे देव, खोटे गुरु, खोटे शास्त्र के प्रति प्रीति भक्ति उपजती है। **जो निरतिचार सम्यक्त्वान् है, वह इनको नहीं मानता है।** समझ में आया?

मुमुक्षु : अतिचार....

पूज्य गुरुदेवश्री : अतिचार में आ जाये वह अलग बात है। मानता नहीं। कोई अतिचार आ जाये, वह बात है वहाँ। अतिचार, निरतिचार। अतिचार भी दोष है न? वह करनेयोग्य नहीं है। समझ में आया? यहाँ तो मुख्य दिगम्बर की भी किसी अपेक्षा से धारण करे मान-सम्मान या किंचित् पुण्य होगा, वह भी वन्दनीय नहीं और उसके अतिरिक्त श्वेताम्बर आदि वेश, वे वन्दनीय और पूजनीय नहीं है। ऐसी बात सिद्ध करनी है। ऐई! देवीलालजी!

गाथा-९४

सम्माइट्ठी सावय धम्मं जिणदेवदेसियं कुणदि।
विवेरीयं कुव्वंतो मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो।।९४।।

सम्यग्दृष्टिः श्रावकः धर्मं जिनदेवदेशितं करोति।
विपरीतं कुर्वन् मिथ्यादृष्टिः ज्ञातव्यः।।९४।।

सम्यक्त्व-युत श्रावक करे जिनदेव-देशित धर्म को।
यह जानना मिथ्यात्व-युत करता सदा विपरीत को।।९४।।

अर्थ – जो जिनदेव से उपदेशित धर्म का पालन करता है, वह सम्यग्दृष्टि श्रावक है और जो अन्यमत के उपदेशित धर्म का पालन करता है, उसे मिथ्यादृष्टि जानना।

भावार्थ – इस प्रकार कहने से यहाँ कोई तर्क करे कि यह तो अपना मत पुष्ट करने की पक्षपातमात्र वार्ता कही, अब इसका उत्तर देते हैं कि ऐसा नहीं है, जिससे सब जीवों का हित हो, वह धर्म है ऐसे अहिंसारूप धर्म का जिनदेव ही ने प्ररूपण किया है, अन्यमत में ऐसे धर्म का निरूपण नहीं है, इस प्रकार जानना चाहिए।।९४।।

गाथा-९४ पर प्रवचन

९४।

सम्माइट्ठी सावय धम्मं जिणदेवदेसियं कुणदि।
विवेरीयं कुव्वंतो मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो।।९४।।

सम्यग्दृष्टि श्रावक, वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने जो आत्मा का धर्म, पुण्य-पाप, शरीर, वाणी अजीव जो भगवान ने कहा, तदनुसार श्रावक सम्यग्दृष्टि करे। वीतराग सर्वज्ञदेव के अतिरिक्त विपरीत कुछ भी बात अज्ञानियों ने की है, उसे माने, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? स्पष्टीकरण करेंगे।

अर्थ :- जो जिनदेव से उपदेशित धर्म का... सर्वज्ञ परमात्मा...

मुमुक्षु : सबने ... सम्प्रदाय एक ...

पूज्य गुरुदेवश्री : जैन सम्प्रदाय में कहाँ मानते हैं ? सर्वज्ञ को कहाँ मानते हैं ? अभी सर्वज्ञ किसे कहना, इसकी खबर नहीं। यह विवाद सम्प्रदाय का है न। सर्वज्ञ तीन काल का जाने तो फिर पुरुषार्थ करना कहाँ रहा ? क्रमबद्धपर्याय भगवान जाने, वह तो इस समय यह होगा। उसमें करने का (कहाँ रहा) ? कहाँ उसे सर्वज्ञ की खबर है ?

मुमुक्षु : काललब्धि माने तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें सब पुरुषार्थ है। काललब्धि—जिस समय में होगा, उस प्रकार से होगा, ऐसा निर्णय करनेवाला स्वभाव के आश्रय से निर्णय करता है। जिस समय में होनेवाला होगा, वह होगा, भवितव्यता, नियति, या काललब्धि, उसका ज्ञान स्वभाव के आश्रय से होने पर होता है। अन्दर द्रव्य का आश्रय ज्ञायकमूर्ति प्रभु का आश्रय लिये बिना काललब्धि या योग्यता का ज्ञान यथार्थ नहीं होता। समझ में आया ?

मुमुक्षु : शर्त बहुत कठोर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शर्त परन्तु वस्तु तो यह है। चन्दुभाई ! जिस समय में काल में होना हो, वह होता है, योग्यता से होता है, क्रमबद्ध होता है, होनहार से होता है, भवितव्य हो, वह होता है। परन्तु इसका अर्थ क्या ? इसका यथार्थ ज्ञान किसे होता है ?

मुमुक्षु : यह तो पर्याय का ज्ञान हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पर्याय हुई। परन्तु पर्याय का ज्ञान, द्रव्य के ज्ञान बिना पर्याय का ज्ञान नहीं हो सकता। शोभालालजी ! सूक्ष्म बात है।

भगवान आत्मा चिदानन्दस्वरूप अनन्त आनन्द की खान, अविनाशी निजानन्दधाम की दृष्टि हुए बिना यह सब पर्याय आदि का ज्ञान सच्चा नहीं हो सकता। समझ में आया ? जिनदेव का उपदेश किया। सर्वज्ञ परमात्मा वीतरागदेव ने कहा जो धर्म। भगवान आत्मा स्वसन्मुख होकर आत्मा का अनुभव करे, उसका नाम धर्म। ऐसा जिनदेव ने कहा है। इसके अतिरिक्त अन्यत्र यह बात नहीं होती। समझ में आया ? श्वेताम्बर सम्प्रदाय में भी यह बात नहीं। लिंग में अन्तर, देव में अन्तर, गुरु में अन्तर, शास्त्र में अन्तर।

मुमुक्षु : केवलज्ञान का स्वरूप ही अलग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे केवलज्ञान का स्वरूप ही अलग मानते हैं। एक समय में केवलज्ञान, दूसरे समय में केवलदर्शन। सब बात में अन्तर है। क्या कहा, समझ में आया?

मुमुक्षु : जिनदेव का कथन वाँचन करे तो माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : जिनदेव का कथन यह है।

मुमुक्षु : जिनदेव का कथन क्या है, यह कौन निर्णय करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्णय करनेवाला करे या नहीं? जिनदेव वीतराग थे और सर्वज्ञ थे। यह सर्वज्ञ वीतराग ऐसा धर्म प्ररूपित करते हैं कि रागरहित और अल्पज्ञता का नाश करके सर्वज्ञ हो, ऐसा धर्म प्ररूपित करते हैं। क्योंकि स्वयं सर्वज्ञ हुए और वीतराग हुए। इसलिए उनकी वाणी में राग का अभाव और अल्पज्ञता का अभाव करके सर्वज्ञ वीतराग होना, यह सम्यग्दर्शन से लेकर पूर्णता का उपदेश सर्वज्ञ की वाणी में आता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : उसका कथन करे, उसमें तो माने न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु मुनि सच्चे हों तो न? कथन करने में क्या भला हुआ?

मुमुक्षु : शास्त्र में से जैसे आप पढ़ते हो, ऐसा पढ़ डाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं-नहीं। यह बात नहीं है। वे मुनि भी समभावी अन्दर वीतरागदशा प्रगट हो। समभाव अर्थात् पुण्य-पाप के विकल्परहित भगवान ने जो वीतरागपना प्रगट किया है, ऐसा वीतरागभाव अन्दर सम्यग्दर्शन का प्रगट हो, आनन्द का अनुभव वेदन-स्वाद हो, तदुपरान्त स्वसंवेदन की उग्रता आनन्द की हो, उसे वह यह प्ररूपणा करे, उसकी प्ररूपणा सच्ची। समझ में आया?

मुमुक्षु : उनकी ... ऐसा है कि वे भी भगवान के शास्त्र पढ़ते हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं; भगवान के शास्त्र के पृष्ठ पढ़े, उसमें क्या हो गया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं कहते वे।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ गये ? वे उल्टे हैं। ऐसा कि वे भी पाँच णमोकार गिनते हैं। नहीं गिनते। बौद्ध में भी आता है। समाधिबोधि। शब्द आवे, उसमें क्या हो गया ?

अरिहन्त वीतराग परमात्मा, जिन्हें एक समय में चार कर्म का नाश है और चार कर्म बाकी हैं और तीन काल का ज्ञान है। उनके मुख में से वीतराग होने की ही वाणी आती है। जिनवाणी, वह वीतरागभाव की पोषक होती है। वह राग की पोषक नहीं होती। यह उनकी वाणी की परीक्षा है। चन्दुभाई !

मुमुक्षु : पुण्य से परम्परा मोक्ष पावे, ऐसा कहे....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जिनवाणी नहीं है। पुण्य से परम्परा मोक्ष पावे, वह तो परम्परा का अर्थ क्या ? कि अभाव करके पावे, ऐसा वहाँ भगवान ने कहा है। परम्परा (अर्थात्) उससे पावे, ऐसा नहीं। तथा परद्रव्य के कारण संसार परित हो, सम्मेदशिखर के दर्शन से संसार का नाश हो, भगवान के समवसरण में और भगवान के दर्शन से संसार का नाश हो, यह वीतराग की वाणी नहीं। समझ में आया ?

यह अभी कहा था। वहाँ अन्तरिक्ष जाते थे न ? फूलचन्दजी। चलकर गये थे रास्ते में। वहाँ रेल नहीं है। अन्तिम गाँव है। वहाँ रेल नहीं है। मैंने कहा, देखो भाई ! जिनवाणी का महालक्षण यह है कि जिन अर्थात् वीतरागभाव अत्यन्त राग और पुण्य और निमित्त की अपेक्षा छुड़ाकर और भगवान आत्मा पूर्णानन्द की अपेक्षा करावे, उसका नाम जिनवाणी और उसका नाम सिद्धान्त कहा जाता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : मैंने कहा कि यह ... रास्ते में कहा। अन्तरीक्ष जाते थे। वह नहीं ? क्या ? वहाँ ही कहा था। वहाँ बराबर आये। उसे जाना था, फिर मोटर में बैठ गये। मार्ग यह एक महासिद्धान्त है। क्योंकि राग और द्वेष वह विषमभाव है। और विषमरहित आत्मा का स्वभाव ही समभाव है। जिनस्वरूप आत्मा है। वीतरागस्वभावी आत्मा है। उसकी वीतरागता प्रगट करने का उपदेश हो और राग का अभाव करने का उपदेश हो, अल्पज्ञ का अभाव करने का, सर्वज्ञ को प्राप्त करने का उपदेश (हो)। वह सर्वज्ञ की प्राप्ति और वीतरागता

स्वद्रव्य के आश्रय से होती है। समझ में आया ? लाख बात की बात परन्तु यह स्थिति न हो जहाँ....

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसका आश्रय करे। क्योंकि वह वीतरागस्वरूप आत्मा है, जिनस्वरूप आत्मा है। उसका आश्रय करने से ही संसार का अभाव होता है। तीन लोक के नाथ तीर्थंकर का आश्रय करने से भी संसार का नाश नहीं होता। समझ में आया ? क्योंकि वे परद्रव्य हैं। यह तो बहुत गाना आया अन्दर। अभी इसमें आयेगा। '**परदव्वादो दुग्गइ सदव्वा हु सुग्गइ होइ।**' इसका अर्थ यह है। यह अभी कहेंगे। वहाँ तो तुम पक्ष की बातें करते हो। अभी अर्थ में आयेगा। पक्ष की नहीं, वस्तु के स्वभाव की बात है। वस्तु ही ऐसी है। वीतरागस्वभाव और वीतराग आनन्द और वीतरागी ज्ञान से भरपूर पदार्थ है। समझ में आया ? ऐसा आत्मभगवान, उसका आश्रय लेना। क्योंकि वीतराग ने स्वयं उसका आश्रय लेकर वीतरागता और सर्वज्ञता प्रगट की है। उनकी वाणी में यह आता है। पर की अपेक्षा से कहीं शत्रुंजय की यात्रा से परित संसार हो और सम्मेदशिखर की यात्रा से ४९ भव में मोक्ष जाये, यह सब वाणी वीतराग की नहीं है।

मुमुक्षु : ४९ भव में जाये, एक भव में क्यों न जाये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ४९ रखे थोड़ा लम्बा इतना। एक व्यक्ति ने कहा था। यहाँ कहा न ? महावीरकीर्ति साधु थे। उनके पास पुस्तक थी। जैसे उन लोगों में शत्रुंजय माहात्म्य की है, वह सम्मेदशिखर के माहात्म्य की पुस्तक थी। उसमें (लिखा है), उसके दर्शन से ४९ भव से जाये। कहा, यह जिनवाणी नहीं है। पर के दर्शन से भव घटे, (ऐसा कहे) वह जिनवाणी नहीं है। क्योंकि भव घटने का स्वभाव आत्मा में है। क्योंकि भव और भव के भावरहित आत्मतत्त्व है। समझ में आया ? नवरंगभाई ! यहाँ तो भाई बात यह है। कोई भी दया, दान, व्रत के विकल्प से धर्म माने, मनावे, वह जिनवाणी नहीं है। वह देव को पहिचानता नहीं है, गुरु को पहिचानता नहीं है, शास्त्र को जानता नहीं है। ऐसा है। विपरीत हो, उसे भूल जाना।

मुमुक्षु : विपरीत है, ऐसा विश्वास हो तब न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इसलिए कहते हैं न, परीक्षा करो। संसार में परीक्षा करके...

लेते हैं या नहीं ? सम्प्रदाय में बहुत बार कहते। ... आता है न ? भाषा भूल गये। सातवें अध्याय में बात आती है। ... हम बहुत बार कहते थे। परीक्षा किये बिना माना हुआ, वह कहीं मुक्ति का कारण नहीं है। ऐसा सूयगडांग में एक शब्द आता है। समझ में आया ? भूल गये। बहुत वर्ष हो गये न। परीक्षीओ, ऐसा शब्द आता है। सूयगडांग में। परीक्षा किये बिना का मानना, कसौटी में चढ़े बिना का मानना, वह मानना सच्चा नहीं है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : आज्ञा...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आज्ञा यह। आज्ञा अर्थात् तेरा स्वभाव ज्ञान-आनन्द है, उसका ज्ञान कर, इसका नाम आज्ञा। आज्ञा अर्थात् क्या कि भगवान की यह आज्ञा है, और उसके सामने देखना है, ... वह तो विकल्प है। भगवान की आज्ञा का विचार करना, वह भी विकल्प है। वह आज्ञा ऐसा कहती है कि तेरा वीतरागस्वभाव है, उसका आश्रय ले। भगवान की वाणी में ऐसा आया। अनन्त तीर्थंकरों की वाणी, अरे ! समकिती की वाणी। समझ में आया ? स्थिरता भले कम हो चारित्र की, वह अलग बात है। अनन्त समकिती, अनन्त श्रावक, अनन्त सन्त, अनन्त केवली, अनन्त तीर्थंकर (ऐसा कहते हैं)। वीतराग स्वभाव से भरपूर भगवान आत्मा पूर्ण समभाव। समभाव का रसिक रसिक चैतन्यमूर्ति है, उसमें से समभाव प्रगट होगा। समझ में आया ? ऐसी वाणी हो, उसे माननेवाले हों, उसे सच्चा गिनने में आता है। कहा न ? देखो !

जिनदेव से उपदेशित धर्म का पालन करता है, वह सम्यग्दृष्टि श्रावक है... वीतराग ने कहा, ऐसा धर्म करे, वह श्रावक है। वीतराग ने तो (ऐसा कहा), आत्मा अखण्ड पूर्णानन्द प्रभु, उसकी दृष्टि समकित, समभाव की दृष्टि होना, वह समकित है। त्रिकाल समभाव भगवान वीतराग शान्तरस की मूर्ति, उसकी दृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि, समभाव की दृष्टि, वह सम्यक्-सच्ची दृष्टि। समझ में आया ? ऐसा जिनदेव का उपदेश जो है, उनके उपदेश से धर्म करे, वह सम्यग्दृष्टि श्रावक है। समझ में आया ? अज्ञानियों ने अपने स्वच्छन्द से कल्पित और कहा हुआ वह मार्ग नहीं चलता।

मुमुक्षु : परीक्षा कहाँ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परीक्षा आयी नहीं ? क्या कहा ? जिनवाणी वीतरागी होती है।

वीतरागभाव की पोषक होती है। क्योंकि वह स्वयं वीतराग क्यों हुए? राग का अभाव करके वीतराग क्यों हुए? अल्पज्ञान का नाश करके सर्वज्ञ क्यों हुए? समझ में आया? यह परीक्षा करना चाहिए। ऐसा का ऐसा अन्धी दौड़ से माना, यह भगवान सच्चे-भगवान सच्चे। बीड़ियों में परीक्षा करनी है तम्बाकू की और सब। ऐसी तम्बाकू ऊँची होती है और अमुक और अमुक। इस जाति की तम्बाकू और यह वापस ऊँची पीवे। घर के लोग ऊँचे में ऊँचा तम्बाकू पीवे।... बहुत खबर नहीं। बीड़ी कहा था न? 'करमसद' है न? गुजरात का। वहाँ बीड़ी का बहुत व्यापार है। हम भी सब बेचते थे न दुकान के ऊपर। तो वहाँ बीड़ी में वरियाली डाली हुई। बीड़ी में वरियाली का पानी। वरियाली समझते हो? वरियाली को क्या कहते हैं। सौंप। वह बीड़ी। बीड़ी होती है न बीड़ी? उसमें तम्बाकू में सौंप का रस डाले। फिर बीड़ी पीवे। एकबार मैं करमसद गया। पाटीदार है।... बनिया। तब पाटीदार का खाये नहीं। तो उसकी लड़की ने दूध और पूड़ी बनायी। पूड़ी और दूध। वहाँ रात में रहना था। दो-पाँच हजार की ली होगी। खोखा लिया तैयार। बीड़ी ऊँची। उसमें डाला हुआ रस, सौंप का रस। उसकी परीक्षा करते होंगे या नहीं? सौंप के रसवाली बीड़ी ऊँची कहलाती है। साधारण ऊँची नहीं कहलाती। उसके पैसे बराबर देना पड़े। इसी प्रकार जिसमें वीतरागरस छिड़का हुआ हो, वह धर्म का मार्ग सच्चा कहलाता है। बहुत वर्ष (पहले की) बात है। करमसद है न? (वहाँ) जिनमन्दिर है।

जिनवर का कहा हुआ उपदेश वीतराग परमात्मा पूर्णानन्द प्रभु सर्वज्ञदेव ने कहा हुआ धर्म श्रावक करे। अज्ञानी का कल्पित-माना हुआ, वह किसी को आत्मज्ञान नहीं हो सकता। सर्वज्ञ परमात्मा के मार्ग के अतिरिक्त दूसरे में कहीं आत्मज्ञान और सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता। तीन काल और तीन लोक में। भले फिर बाबा और फकीर होकर सब जंगल में नग्न होकर घूमे। समझ में आया?

मुमुक्षु : दया पाले तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : दया पाले तो क्या? दया पालना, वह राग है। उसमें आत्मा कहाँ आया? राग से दया पालता हूँ और पर की दया पाल सकता हूँ, वह जिनवर की आज्ञा ही नहीं है। वह जिनवर का उपदेश ही नहीं है। पर को पाल सके? परद्रव्य की पर्याय? और

परद्रव्य की दया पालने का भाव है, वह तो राग है। राग की आज्ञा भगवान की है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : राग और द्वेष...

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों साथ में हैं। राग हो, वहाँ द्वेष (होता ही है)। फिर राग जाता है। राग गया उसे द्वेष होता ही नहीं। दसवें गुणस्थान में राग जाता है न? जिसे राग जाये, उसे द्वेष नहीं होता। द्वेष जाये, उसे राग होता है।

मुमुक्षु : राग जाये, फिर द्वेष कहाँ रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले ही तो द्वेष चला जाता है।

सम्यग्दृष्टि श्रावक है और जो अन्यमत के उपदेशित धर्म का पालन करता है, उसे मिथ्यादृष्टि जानना। आहाहा! आत्मा अहिंसक राग की विकल्प दशा बिना का प्रभु, उसका राग में लाभ मनावे, वह हिंसा में धर्म मनाता है। राग स्वयं हिंसा है। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने कहा नहीं? आहाहा!

भावार्थ :- इस प्रकार कहने से यहाँ कोई तर्क करे कि यह तो अपना मत पुष्ट करने की पक्षपातमात्र वार्ता कही,... यह तो तुम्हारे मत की, पुस्तक की नहीं। **ऐसा नहीं है, जिससे सब जीवों का हित हो वह धर्म है,...** किसी भी प्राणी को दुःख हो, अपने आत्मा को भी राग से दुःख हो, वह धर्म नहीं है। समझ में आया? राग है शुभ या अशुभ, वह आत्मा को दुःख होता है। धर्म नहीं होता परन्तु दुःख होता है। समझ में आया? क्या कहा? **सब जीवों का रहित हो, वह धर्म है। ऐसे अहिंसारूप धर्म का जिनदेव ही ने प्ररूपण किया है,...** राग की उत्पत्ति होना, वह हिंसा। भगवान आत्मा अहिंसकस्वरूप ही त्रिकाल है। वीतराग स्वभाव कहो, समभाव कहो, शान्त अकषायस्वभाव स्वरूप कहो। उस अकषायस्वरूप की उत्पत्ति होना, इसका नाम धर्म है। यह वीतराग ने ऐसा धर्म कहा है। समझ में आया?

ऐसे अहिंसारूप धर्म का जिनदेव ही ने प्ररूपण किया है, अन्यमत में ऐसे धर्म का निरूपण नहीं है, इस प्रकार जानना चाहिए। देखो! वस्त्र रखना और वस्त्र रखने का भाव, वह राग है। राग, वह हिंसा है। और उस हिंसा में मुनिपना मानना, वह मिथ्यादृष्टि

है, ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भाई! अनन्त काल हुआ, अनन्त काल हुआ, इसने सत्य हाथ में लिया ही नहीं। खोटी गड़बड़ कहीं न कहीं पक्ष करके गड़बड़ चलायी है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सार कहा। यह क्या कहते हैं? यही कहते हैं। जैसा किया है, वैसा कहते हैं। उन्होंने भी ऐसा किया था। रागरहित श्रद्धा, रागरहित ज्ञान और रागरहित चारित्र। ऐसा किया था, वैसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा कि आता है न? उन्होंने जो किया, ऐसा न करना, उन्होंने कहा, वैसा करना। तो कहा भी है और किया भी ऐसा है।

मुमुक्षु : कहा हो तो वह...

पूज्य गुरुदेवश्री : किया है वह।

सर्वज्ञ परमात्मा एक समय में तीन काल-तीन लोक जानने की एक समय की पर्याय जानते हैं। तीन लोक को जानना वह तो ... बात। परन्तु एक समय की पर्याय जानते हुए तीन काल-तीन लोक ज्ञात हो जाता है, ऐसा जिसका स्वरूप, ऐसी जिनकी दशा, उनका कहा हुआ धर्म अलौकिक है। सम्यग्दर्शन भी उनका कहा हुआ अलग है। श्रीमद् में नहीं आता? आता है। हे भगवान! मैं बहुत भूला। आपके कहे हुए दया आदि को मैंने पहिचाना नहीं। पालन किया नहीं, ऐसा नहीं कहा। पहिचाना नहीं। है, उसमें है न? पाठ है। कितने में है वह? उसमें है? उसमें होगा या नहीं? मोक्षमाला में है या नहीं? मोक्षमाला में कितने में है? मोक्षमाला है न? यह भी खबर नहीं? कोई तो हाँ-ना करते नहीं। ३८९? यह बहु पुण्य पुंज प्रसंग से... आया। मोक्षमाला में होगा?

आपने कहे हुए दया, दान को मैंने पहिचाना नहीं। दया, दान मैंने किये नहीं, ऐसा नहीं। अभी क्या बात कहते हो, उसका हमें ज्ञान ही हुआ नहीं। पहिचाना नहीं। ऐसी बात है। श्रीमद् है न, श्रीमद् राजचन्द्र? उन्होंने एक क्षमापना पाठ लिखा है। आपने कही ऐसी पवित्रता, दया, शील को मैंने पहिचाना नहीं। पहिचाना नहीं, मैंने जाना ही नहीं। क्या आप कहते हो। किस प्रकार की दया, किस प्रकार का शील, किस प्रकार का संयम... समझ में आया? बहुत पाठ आता है। हे भगवान! मैं भूल गया। आता है। (तुम्हारे अमूल्य वचनों

को) लक्ष्य में लिया नहीं। लक्ष्य में लिया नहीं।

मुमुक्षु : तुम्हारे कहे हुए अनुपम तत्त्व का विचार...

पूज्य गुरुदेवश्री : किया नहीं।

मुमुक्षु : तुम्हारे प्रणीत किये हुए उत्तम शील को सेवन किया नहीं। तुम्हारे कहे हुए दया, शान्ति, क्षमा...

पूज्य गुरुदेवश्री : पहिचाना नहीं। बस यह। तुम्हारे कहे हुए दया, शान्ति, क्षमा आप जो कहते हो, उन्हें पहिचाना नहीं। समझ में आया? ऐसी बात है। आहाहा! क्षमापना पाठ है। १३वाँ।

हे भगवान! मैं बहुत भूल गया, मैंने तुम्हारे अमूल्य वचनों को लक्ष्य में लिया नहीं। आप क्या कहना चाहते हो, यह मैंने ख्याल भी नहीं किया। **तुम्हारे कहे हुए अनुपम तत्त्व का मैंने विचार नहीं किया।** अनुपम तत्त्व है, उनका विचार नहीं किया। अनुपम तत्त्व। उनकी वाणी अनुपम है, उनकी वाणी की उपमा कोई दे नहीं, ऐसी वाणी है। निराभिमान और निरागी भगवान परमात्मा को स्पर्श की हुई आपकी वाणी थी। आप राग को करने का, राग को छोड़ने का यह वीतरागमार्ग में नहीं है, ऐसा कहते हैं।

तुम्हारे प्रणीत किये हुए उत्तम शील को मैंने सेवन किया नहीं। उत्तम शील। अकेला ब्रह्मचर्य तो अनन्त बार पालन किया। परन्तु आत्मा का शील अर्थात् वीतरागस्वभाव, उसे मैंने सेवन नहीं किया। उसका नाम शील है। रागरहित उत्तम शील। है न? **तुम्हारे कहे हुए दया, शान्ति, क्षमा और पवित्रता को पहिचाना नहीं।** आपने जो दया कही, उसे मैंने पहिचाना नहीं। पर की दया नहीं। आत्मा का रागरहित अहिंसा स्वभाव, उसका नाम दया है। उसे पहिचाना नहीं। है न? शान्ति पहिचानी नहीं, क्षमा पहिचानी नहीं। **हे भगवान! मैं भूला, भटका, रुला और (अनन्त) संसार की विडम्बना में पड़ा हूँ।** इत्यादि-इत्यादि। **अज्ञान से अन्ध हुआ हूँ, मेरे विवेकशक्ति नहीं और मैं मूढ़ हूँ, निराश्रित हूँ, अनाथ हूँ। निरागी परमात्मा!** देखो, अब निरागी परमात्मा! **अब मैं तुम्हारा, तुम्हारे धर्म का और तुम्हारे साधु का शरण ग्रहण करता हूँ। मेरे अपराध क्षय होकर मैं उन सर्व पाप से मुक्त होऊँ, यह मेरी अभिलाषा है।** इत्यादि-इत्यादि है।

जैसे-जैसे मैं सूक्ष्म विचार से गहरा उतरता हूँ, वैसे-वैसे तुम्हारे तत्त्व के चमत्कार स्वरूप का प्रकाश करते हैं। लो! तुम्हारे स्वरूप का जो कहना चाहते हैं, मेरे स्वरूप का प्रकाश करता है। ओहो! महाप्रभु! अनन्त आनन्द की रत्न की खान भगवान, उसे आप जो बतलाते हो, उसे मैं देखूँ, वहाँ मेरे आत्मा को प्रकाशित करता है। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **तुम निरागी, निर्विकारी, सच्चिदानन्दस्वरूप, सहजानन्दी, अनन्त ज्ञानी, अनन्तदर्शी और त्रैलोक्य प्रकाशक हो। मैं मेरे हित के लिये आपकी साक्षी से क्षमा चाहता हूँ, एक पल भी तुम्हारे कहे हुए तत्त्व की शंका न हो, तुम्हारे कहे हुए मार्ग में मैं अहोरात्र रहूँ...** कहे हुए मार्ग में, हों! **यही मेरी आकांक्षा और वृत्ति होओ! हे सर्वज्ञ भगवान! मैं तुमसे विशेष क्या कहूँ? तुमसे कुछ भी अनजाना नहीं है। मात्र पश्चाताप से मैं कर्मजन्य पाप की क्षमा चाहता हूँ। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।**

मुमुक्षु : कौन सी पुस्तक है?

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रीमद् का प्रतिक्रमण। प्रतिक्रमण आवश्यक। यहाँ का बनाया हुआ है, यहाँ का बनाया हुआ है।

मुमुक्षु : नीचे लिखा है मोक्षमाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, लिखा है।

यहाँ कहते हैं, **अन्यमत के उपदेशित धर्म का पालन करता है, उसे मिथ्यादृष्टि जानना।** वीतरागभाव का पोषक, इसके अतिरिक्त कोई अन्यमति राग को पोषण कर, व्यवहार को पोषण कर धर्म मनावे, वह मिथ्यादृष्टि है। ऐसा कहते हैं। **ऐसा अहिंसारूप धर्म का जिनदेव ही ने प्ररूपण किया है, अन्यमत में ऐसे धर्म का निरूपण नहीं है,...**

गाथा-९५

आगे कहते हैं कि जो मिथ्यादृष्टि जीव है, वह संसार में दुःखसहित भ्रमण करता है –

मिच्छादिट्ठी जो सो संसारे संसरेइ सुहरहिओ।
जम्मजरमरणपउरे दुक्खसहस्साउले जीवो।।९५।।

मिथ्यादृष्टिः यः सः संसारे संसरति सुखरहितः।
जन्मजरामरणप्रचुरे दुःखसहस्राकुलः जीवः।।९५।।

जो है मिथ्यात्वी वह जनम-जर-मृत्यु के प्राचुर्य-युत।
संसार में ही भटकता सुख-बिन सहस्रों दुःख-युत।।९५।।

अर्थ – जो मिथ्यादृष्टि जीव है, वह जन्म जरा मरण से प्रचुर और हजारों दुःखों से व्याप्त इस संसार में सुखरहित दुखी होकर भ्रमण करता है।

भावार्थ – मिथ्याभाव का फल संसार में भ्रमण करना ही है, यह संसार जन्म, जरा, मरण आदि हजारों दुःखों से भरा है, इन दुःखों को मिथ्यादृष्टि इस संसार में भ्रमण करता हुआ भोगता है। यहाँ दुःख तो अनन्त हैं हजारों कहने से प्रसिद्ध अपेक्षा बहुलता बताई है।।९५।।

गाथा-९५ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो मिथ्यादृष्टि जीव है, वह संसार में दुःखसहित भ्रमण करता है :- वीतरागभाव का भाव आनन्दस्वरूप है और उसका फल भी आनन्द है। अज्ञानी के कहे हुए धर्म में वर्तमान राग दुःख है और भविष्य में भी दुःखी होता है।

मिच्छादिट्ठी जो सो संसारे संसरेइ सुहरहिओ।
जम्मजरमरणपउरे दुक्खसहस्साउले जीवो।।९५।।

जिसे आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव है, ऐसी दृष्टि नहीं है, सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को जिसने पहिचाना नहीं।

अर्थ :- जो मिथ्यादृष्टि जीव है, वह जन्म-जरा-मरण से प्रचुर और हजारों दुःखों से व्याप्त... नरक और निगोद के दुःख। जिसकी दृष्टि वीतरागदृष्टि नहीं, मिथ्यादृष्टि है, वह ऐसे हजारों दुःखों से आकुलता भोगता है। **संसार में सुखरहित दुःखी होकर भ्रमण करता है।**

भावार्थ :- मिथ्यात्वभाव का फल संसार में भ्रमण करना ही है, यह संसार जन्म-जरा-मरण आदि हजारों दुःखों से भरा है,... संसार में क्या हो? आकुलता... आकुलता... आकुलता... सेठाई की आकुलता, राग की आकुलता, द्वेष की आकुलता, प्रतिकूल संयोग की आकुलता, अनुकूल संयोग की आकुलता। **यह संसार जन्म-जरा-मरण आदि हजारों दुःखों से भरा है, इन दुःखों को मिथ्यादृष्टि इस संसार में भ्रमण करता हुआ भोगता है। यहाँ दुःख तो अनन्त हैं हजारों कहने से प्रसिद्ध अपेक्षा बहुलता बताई है...** अनन्त दुःख है परन्तु पद में बतलाना... लो! दो बातें की। समकित और मिथ्यात्व।

आत्मा का स्वभाव शुद्ध आनन्दस्वरूप, उसकी अन्तर्दृष्टि अनुभव सम्यग्दर्शन वस्तु, उसका क्या माहात्म्य कहना! यह तो सब बात आ गयी। जो कोई अनन्त सिद्ध हुए, अनन्त सिद्ध होंगे, वह समकित के माहात्म्य से है। आहाहा! हाथ में लिया डोरा—आत्मा। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि वास्तविक स्वभाव की दृष्टि बिना और कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को मानकर चार गति में भटकता है।

गाथा-९६

आगे सम्यक्त्व मिथ्यात्व भाव के कथन का संकोच करते हैं –

सम्म गुण मिच्छ दोसो मणेण परिभाविऊण तं कुणसु।
जं ते मणस्स रुच्चइ किं बहुणा पलविएण तु।।९६।।

सम्यक्त्वे गुण मिथ्यात्वे दोष: मनसा परिभाव्य तत् कुरु।
यत् ते मनसे रोचते किं बहुना प्रलपितेन तु।।९६।।

सम्यक्त्व गुण मिथ्यात्व दोष सु सोच मन से भावना।
मन में रुचे जो वह करो बहु कथन से है लाभ क्या?।।९६।।

अर्थ – हे भव्य! ऐसे पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्व के गुण और मिथ्यात्वभाव के दोषों की अपने मन से भावना कर और जो अपने मन को रुचे, प्रिय लगे वह कर, बहुत प्रलापरूप कहने से क्या साध्य है ? इस प्रकार आचार्य ने उपदेश दिया है।

भावार्थ – इस प्रकार आचार्य ने कहा है कि बहुत कहने से क्या? सम्यक्त्व मिथ्यात्व के गुण-दोष पूर्वोक्त जानकर जो मन में रुचे, वह करो। यहाँ उपदेश का आशय ऐसा है कि मिथ्यात्व को छोड़ो, सम्यक्त्व को ग्रहण करो, इससे संसार का दु:ख मेटकर मोक्ष पाओ।।९६।।

गाथा-९६ पर प्रवचन

आगे सम्यक्त्व-मिथ्यात्व भाव के कथन का संकोच करते हैं :-

सम्म गुण मिच्छ दोसो मणेण परिभाविऊण तं कुणसु।
जं ते मणस्स रुच्चइ किं बहुणा पलविएण तु।।९६।।

अर्थ :- हे भव्य! ऐसे पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्व के गुण... समकित की महिमा, समकित के गुण महा वर्णन किये। समकित जैसा इस जगत में कोई पूज्य वस्तु नहीं और

समकित जैसा कोई उसमें... समकित बिना मुक्ति कभी होती नहीं और समकित से अनन्त मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। समकित से प्राप्त हुए, ऐसा कहा है। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : समकित हो तो ज्ञान सच्चा, वहाँ चारित्र सच्चा, वहाँ सब (सच्चा है)। समकित नहीं, वहाँ सब थोथा है, एकड़ा बिना के।

सम्यक्त्व के गुण और मिथ्यात्व के दोषों की अपने मन से भावना कर और जो अपने मन को रुचे-प्रिय लगे, वह कर,... हम क्या कहें? देखो! यह मोक्षपाहुड़ की अन्तिम गाथा में दो (गुण को) ही पूरा वर्णन किया है। समकित का माहात्म्य और मिथ्यात्व का दोष। आहाहा! **अपने मन से भावना कर और जो अपने मन को रुचे-प्रिय लगे वह कर,...** इसका अर्थ यह कि स्वरूप प्रिय लगे, ऐसा तू कर। ऐसा। **बहुत प्रलापरूप कहने से क्या साध्य है? इस प्रकार आचार्य ने उपदेश दिया है।** लो! अधिक क्या कहें? भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर ने (ऐसा कहा) जो आत्मा रागरहित, विकल्परहित, शरीररहित, कर्मरहित अकेला पूर्णानन्दस्वरूप है, उसका अनुभव करके समकित करना, यही इस जगत में सार है। समझ में आया? लाख शास्त्र पढ़कर भी करने का यह है। भगवान को जानकर भी करने का यह है। फिर भगवान को भूलकर करने का यह है। क्या कहा?

मुमुक्षु : अपने मन को रुचे सो कर...

पूज्य गुरुदेवश्री : रुचे, ऐसा कर... सुलटा कर, ऐसा कहते हैं। ऐसा माहात्म्य तुझे कहा सम्यग्दर्शन का, वह रुचे, ऐसा कहते हैं। मिथ्यात्व कर, ऐसा कहे? समझ में आया?

दया के भाव से संसार परित होता है, मुनि को आहार-पानी देने से संसार नाश होता है। यह वाणी वीतराग की नहीं है, ऐसा कहना चाहते हैं। समझ में आया? ऐई! देवीलालजी! श्वेताम्बर में आता है मेघकुमार... जीव की-खरगोश की दया पालन की (और) परित संसार किया। कहते हैं कि वह वीतराग की वाणी नहीं है। वह मिथ्यादृष्टि की कही हुई वाणी है। पर की दया से संसार का नाश हो, यह वाणी वीतराग की नहीं है। आहाहा! पहले यह चर्चा बहुत की थी। और विपाक में आता है, दस विपाक नहीं? वह सब मिथ्यादृष्टि

श्रावक थे और गृहस्थ थे। मुनि को आहार-पानी दिया और परित संसार किया, ऐसा पाठ है। विपाक। बिल्कुल झूठ बात है। समझ में आया? परद्रव्य की भक्ति-पूजा और... है उसमें पुण्य होता है। परित—संसार का अभाव नहीं होता। वह वीतराग को पहिचानता नहीं। वीतराग का उपदेश ही दूसरे प्रकार का है। समझ में आया? यह श्वेताम्बर में ऐसा है।

मुमुक्षु : दान देने से धर्म होता है...

पूज्य गुरुदेवश्री : परित संसार हुआ। संसार नाश हुआ, ऐसा पाठ है। कभी अभाव नहीं होता। परद्रव्य की दया पालने से परित संसार। मेघकुमार का अधिकार है हाथी का। हाथी ने पैर ऊँचा किया और फिर नीचे खरगोश आ गया।... तोड़ डाला। परित संसार। छह काय की दया अनन्त बार पालन की और नौवें ग्रैवेयक गया, फिर (भी) संसार टला नहीं और पर की दया से परित संसार (हो), यह वीतराग की वाणी ही नहीं है। नवरंगभाई! आहाहा! दया तो राग है। पर की दया तो राग का विकल्प है। समझ में आया? राग से राग का अभाव होगा? बड़ी चर्चा चली थी। बहुत वर्ष पहले उसको कहा था। गाँधी थे न? एक गोकुलदास गाँधी थे।... उसे कहा था कि रखो यह प्रश्न तुम्हारे सम्प्रदाय में। साधु को आहार देने से परित संसार और दया पालन करो तो संसार कभी हो सके? उसे ठिकाना कहाँ था। यह... गया था न। ऐसा था।... वार्ता ... गप्प मारा है, लेखन किया है। भान बिना की थी उसकी माँ। सुनकर-वाँचन कर फिर पैसा लेने के लिये।... माणेक की वार्ता... लेखन की शैली ... दामोदर .... गजब। क्या गजब अब? किसी का लेखन किसी का लिख-लिखकर पैसा लेना।

यहाँ तो कहते हैं... क्या चलता है? **अपने मन को रुचे-प्रिय लगे वह कर,...** इसका अर्थ कि समकित रुचे, बापू! खोटी बात धर्मी को रुचे नहीं। समझ में आया? ऐसा जिसने भगवान का सुना। अहो! समभाव से भरपूर भगवान, उसकी समता प्रगट हुए बिना पुण्य-पाप के विकल्प से कुछ भी आत्मा को लाभ है नहीं। समझ में आया? छह काय की दया तो नौवें ग्रैवेयक गया तब कितनी पाली होगी? मिथ्यादृष्टि ने। कितनी! एक दाना घात हो तो आहार न ले। इतनी दया। जैन साधु नग्न दिगम्बर मुनि। भिक्षा के लिये जाये

तो एक दाना... दाना समझते हो? कण। पैर छू जाए तो आहार न ले। ऐसी क्रिया हमने भी बहुत की है, पन्द्रह वर्ष तक। भिक्षा के लिये जायें तो एक दाने का कण पड़ा हो, हमारे लिये बनावे तब तो प्राण जाये तो भी न लें। पानी की एक बूँद न लें बनायी हो तो। ऐसा पन्द्रह वर्ष तक किया। भिक्षा के लिये निर्दोष आहार।... गाँधी है न। सब गृहस्थ हैं बड़े पैसेवाले।

मुमुक्षु : श्रावक अपने लिये बनावे तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : तो लेते हैं। यहाँ के लिये कुछ पानी की बूँद हो, बिल्कुल नहीं। हमारे लिये नहीं हो तो निर्दोष... महिला खड़ी हुई आहार देने, और उसका कपड़े का पल्लू दाने को स्पर्श कर गया, दाना... मिर्ची होती है न मिर्ची। उस मिर्ची का बीज। वह मिर्ची का बीज नहीं? पड़ा हो, उसका पैर छू जाये तो पूरे दिन आहार बन्द... यदि पैर छू जाये तो पूरे दिन आहार बन्द। फिर कितने ही रोवे। आहाहा! परन्तु क्या करे? ऐसी क्रियायें हमने बहुत की हैं। यह इस भव में ही। समझ में आया? वह तो राग है। उसे खबर नहीं? उसे खबर है या नहीं? यह मार्ग नहीं है। आहाहा!

बहुत प्रलापरूप कहने से क्या साध्य है? बहुत कह-कहकर साध्य क्या है, कहते हैं। **इस प्रकार आचार्य ने उपदेश दिया है।** पर की दया का विकल्प है, वह तो राग है, पुण्यबन्ध का कारण है। उसमें धर्म कैसा? छह काय की दया। प्राण जाये तो एक पानी की बूँद उसके लिये बनाया हो (प्रासुक किया हो) तो न ले। ऐसी क्रिया-दया तो अनन्त बार पालन की है। नौवें ग्रैवेयक गया तब। तथापि एक खरगोश की दया पाले और परित संसार हो जाये? ऐई! देवीलालजी! सुना है या नहीं तुमने? बहुत सुना है।

बहुत कहने से क्या? सम्यक्त्व-मिथ्यात्व के गुण-दोष पूर्वोक्त जानकर जो मन में रुचे, वह करो। यहाँ उपदेश का आशय ऐसा है कि मिथ्यात्व को छोड़ो... ऐसा। 'करो' का अर्थ कहीं मिथ्यात्व को करो, ऐसा कहते हैं? **मिथ्यात्व को छोड़ो, सम्यक्त्व को ग्रहण करो, इससे संसार का दुःख मेटकर मोक्ष पाओ।** लक्ष्मी-बक्ष्मी से कोई धर्म होता है, ऐसा मनावे, वह पाँच करोड़ रुपये या दस करोड़ दो, मन्दिर बनाओ, तेरा भव-संसार का नाश होगा। बिल्कुल एक भव नहीं घटेगा। हमारे नानालालभाई थे न? नानालालभाई कालीदास ने मन्दिर बनाया। मन्दिर में सवा लाख तो उनके थे। (संवत्) २००६ के वर्ष।

बीस वर्ष हुए। दूसरे एक लाख, ऐसा करके दो लाख का मन्दिर राजकोट में बनाया। मुन्नालालजी आये थे। इन्दौरवाले न मुन्नालालजी। इन्दौरवाले मुन्नालालजी पण्डित थे। वे पंच कल्याणक कराने आये थे। नहीं तो हमारे नाथूलालजी आते थे। परन्तु नाथूलालजी... फिर उन्होंने कहा कि अरे! सेठ! ऐसा सवा लाख का मन्दिर बनाया। आहाहा! तो आठ भव में मोक्ष जाओगे। नानालालभाई कहे, हम ऐसा नहीं मानते। नानालालभाई कहे कि हम ऐसा नहीं मानते। मन्दिर बनाने से परित संसार हो या भव घटे, ऐसा हम नहीं मानते। वह पण्डित कहे आठ भव में मोक्ष जाओगे। यह कहे, हम ऐसा नहीं मानते। हम शुभभाव मानते हैं। मन्दिर आदि बनावे लाख... शुभभाव है। धर्म और परित संसार हो, ऐसा हम नहीं मानते। ऐसा जवाब दिया। अमरचन्दभाई!

मुमुक्षु : दो भाई...

पूज्य गुरुदेवश्री : दो थे। तीन थे। समझ में आया? वह पण्डित कहे लाख, सवा लाख, दो लाख खर्च किये तो परित संसार। आठ भव में मोक्ष जाओगे। शोभालालजी! तब हमारे नानालाल सेठ कहे... करोड़पति व्यक्ति। (वह कहे) महाराज तो कहते नहीं परन्तु हम भी मानते नहीं। दो लाख खर्च किये, इसलिए भव घटे और आठ भव में मोक्ष जायें, यह हम मानते नहीं। चन्दुभाई! २००६ के वर्ष की बात है। बीस वर्ष हुए। पर के कारण से क्या हो? लाख मन्दिर करे न, लाख शास्त्र बनाये न, उससे क्या? वह तो विकल्प है, शुभराग है। आहाहा! उससे संसार का नाश हो और भव घटे, बिल्कुल नहीं।

ऐसा है कि मिथ्यात्व को छोड़ो... विपरीत मान्यता छोड़ दे और **सम्यक्त्व को ग्रहण करो,...** भगवान आत्मा... व्यवहार से देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, निश्चय से अपनी श्रद्धा। समझ में आया? **इससे संसार का दु:ख मेटर मोक्ष पाओ**। लो!

गाथा-९७

आगे कहते हैं कि यदि मिथ्यात्व भाव नहीं छोड़ा, तब बाह्य भेष से कुछ लाभ नहीं है –

बाहिरसंगविमुक्को ण वि मुक्को मिच्छ भाव णिग्गंथो।
किं तस्स ठाणमउणं ण वि जाणदि [१]अप्पसमभावं।।९७।।

बहिः संगविमुक्तः नापि मुक्तः मिथ्याभावेन निर्ग्रन्थः।
किं तस्य स्थानमौनं न अपि जानाति [२]आत्मसमभावं।।९७।।

निर्ग्रन्थ बाह्य असंग पर मिथ्यात्व भाव न त्यागता।
जाने न निज सम-भाव उसका मौन खडगासन कहाँ?।।९७।।

अर्थ – जो बाह्य परिग्रह रहित और मिथ्याभाव सहित निर्ग्रन्थ भेष धारण किया है, वह परिग्रह रहित नहीं है, उसके ठाण अर्थात् खड़े होकर कायोत्सर्ग करने से क्या साध्य है ? और मौन धारण करने से क्या साध्य है ? क्योंकि आत्मा का समभाव जो वीतराग परिणाम उसको नहीं जानता है।

भावार्थ – आत्मा के शुद्ध स्वभाव को जानकर सम्यग्दृष्टि होता है और जो मिथ्याभावसहित परिग्रह छोड़कर निर्ग्रन्थ भी हो गया है, कायोत्सर्ग करना, मौन धारण करना इत्यादि बाह्य क्रियायें करता है तो उनकी क्रिया मोक्षमार्ग में सराहने योग्य नहीं है, क्योंकि सम्यक्त्व के बिना बाह्य क्रिया का फल संसार ही है।।९७।।

गाथा-९७ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि यदि मिथ्यात्वभाव नहीं छोड़ा, तब बाह्य वेश से कुछ लाभ नहीं है :- आहाहा!

बाहिरसंगविमुक्को ण वि मुक्को मिच्छ भाव णिग्गंथो।
किं तस्स ठाणमउणं ण वि जाणदि अप्पसमभावं।।९७।।

१. पाठान्तरः – अप्पसब्भावं। २. पाठान्तरः ह्र आत्मस्वभावं।

अर्थ :- जो बाह्य परिग्रहरहित... नग्न दिगम्बर हो। **मिथ्यात्वभावसहित निर्ग्रन्थ वेश धारण किया है...** आहाहा! देह की क्रिया मैं करता हूँ, यह राग है यह दया का, दान का राग, वह मुझे धर्म का कारण है, मैं कुछ धर्म करता हूँ, मैं कुछ बढ़ा हूँ, ऐसी जिसकी धारणा मिथ्यात्व की है, **वह परिग्रहरहित नहीं है,... बाह्य परिग्रहरहित मिथ्यात्वभावसहित निर्ग्रन्थ वेश धारण किया है, वह परिग्रहरहित नहीं है,...** क्योंकि परिग्रह में मिथ्यात्व परिग्रह तो पहला है। परिग्रह के बोल आते हैं या नहीं अन्दर? नौ और दस, बारह। परिग्रह में मिथ्यात्व परिग्रह, अभ्यन्तर में मिथ्यात्व परिग्रह तो पहला है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। अभ्यन्तर ... उसमें मिथ्यात्व पहला है। पहले वह टले बिना दूसरे तेरह (परिग्रह) कहाँ से टलेंगे तेरे? देखो! यह कहते हैं।

मिथ्यात्वभावसहित निर्ग्रन्थ वेश धारण किया है, वह परिग्रहरहित नहीं है, उसके ठाण अर्थात् खड़े होकर कायोत्सर्ग करने से क्या साध्य है? मौन धारण करे, उससे क्या साध्य है? मौनपना धारण करे। ... उसमें क्या आया? समझ में आया? अभ्यन्तर राग की क्रिया और शरीर की क्रिया मैं करता हूँ, मेरा कार्य है, ऐसी मिथ्यादृष्टि पड़ी है तो तेरे कायोत्सर्ग और मौन से क्या लाभ है? कहो, समझ में आया? पुण्य तो बाँधेगा, तो स्वर्ग में तो जायेगा—कितने ही और ऐसा कहते हैं। यह अनन्त बार गया तो क्या हुआ धूल में? जन्म-मरण का चक्र तो टला नहीं।

आता है न? 'भवचक्र का फेरा नहीं एक भी टला...' बहु पुण्य पुंज प्रसंग से, आता है। श्रीमद् में। 'बहु पुण्य पुंज प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला तो भी अरे भवचक्र का फेरा नहीं एक भी टला। सुख प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते सुख जाता दूर है, तू क्यों भयंकर भावमरण प्रवाह में चकचूर है?' यह राग का सूक्ष्म विकल्प भी लाभदायक माने, वह आत्मा की मृत्यु है, भावमरण है। 'क्षण-क्षण भयंकर भावमरण प्रवाह में चकचूर है।' ऐसा मनुष्यदेह मिला और भव का चक्र नहीं मिटा और राग में धर्म माना, उस राग की एकताबुद्धि, वह तेरे आत्मा का मरण है। यह सोलह वर्ष में कहा। सोलह वर्ष की उम्र देह की। सोलह वर्ष का यह कथन है श्रीमद् का। समझ में आया?

क्योंकि आत्मा का समभाव जो वीतराग-परिणाम उसको नहीं जानता है। देखो भाषा। क्या कहते हैं ? आत्मा स्वयं समभावी वीतरागमूर्ति आत्मा है। उसके अन्तर दर्शन और सम्यग्दर्शन के परिणाम, वे समभावी वीतरागी परिणाम हैं। उन वीतरागी परिणाम बिना तेरी यह सब क्रिया चार गति में भटकने का कारण है। समभाव की व्याख्या, हों! वापस समभाव अर्थात्... आत्मा वीतराग समभावस्वरूप है, उसकी दृष्टि और ज्ञान हुआ, उसमें समभाव प्रगट होता है। समझ में आया? **वीतराग-परिणाम उसको नहीं जानता है।** सम्यग्दर्शन, वह वीतराग परिणाम है; सम्यग्ज्ञान, वह वीतराग परिणाम है; चारित्र, वह वीतराग परिणाम है, तीनों वीतराग परिणाम है। वे वीतराग परिणाम वीतरागी समभावी आत्मा के आश्रय से होते हैं। समझ में आया ? उसे न जाने और राग को तथा निमित्त को जानो, ऐसा कहते हैं। भगवान कहते हैं कि मुझे जानने से भी तुझे राग है। तेरे वीतरागभाव को तूने नहीं जाना, वीतराग परिणाम प्रगट नहीं किये (तो) तुझे कुछ लाभ हुआ नहीं। आहाहा! देखो न वाणी! हमारी वाणी को मान, हमको मान तो यह तो विकल्प है, राग है। तूने समभाव प्रगट नहीं किया। समभाव तो आत्मा के आश्रय से होता है। यह कहेंगे भावार्थ में। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-९८, गाथा-९७ से १००, शनिवार, भाद्र कृष्ण ११, दिनांक २६-०९-१९७०

भावार्थ। इसकी पहली लाईन में जरा भूल है। **आत्मा के शुद्ध स्वभाव को (न) जानकर सम्यग्दृष्टि नहीं होता है।** ऐसा लेना। होता है न, उसके बदले नहीं होता, ऐसा लेना। क्या कहते हैं ? बात ऐसी है न ? '**न अपि जानाति आत्मसमभावं**'। यदि कोई पहले आत्मा शुद्ध चैतन्य द्रव्य आनन्द की तो दृष्टि-सम्यग्दर्शन हुआ नहीं। समझ में आया ? आत्मा परमानन्द की मूर्ति, परमानन्द की मूर्ति सच्चिदानन्द शुद्ध स्वरूप, उसका अनुभव होकर सम्यग्दर्शन अर्थात् प्रतीति—यह पूर्ण शुद्ध है, ऐसा भान और सम्यग्दर्शन हुआ नहीं।

और जो मिथ्यात्वभावसहित परिग्रह छोड़कर... मिथ्याश्रद्धासहित परिग्रह छोड़कर **निर्ग्रन्थ भी हो गया है,...** नग्न दिगम्बर मुनि हो। समझ में आया ? **कायोत्सर्ग करना, मौन**

धारण करना... कायोत्सर्ग करे, मौन धारण करे। **इत्यादि...** बाह्य भगवन्त की वन्दना आदि की क्रिया वह विशेष करे **तो उसकी क्रिया मोक्षमार्ग में सराहनेयोग्य नहीं है,...** मोक्ष के मार्ग में वह अनुमोदनयोग्य नहीं है। है ? सेठ! क्या है ? सम्यग्दर्शन तो है नहीं। आत्मा अनुभव रागरहित-विकल्परहित निर्विकल्प आत्मा का अन्तर में भान नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं और इसके अतिरिक्त कायोत्सर्ग करे, मौन धारण करे, भगवान की भक्ति करे इत्यादि आयेगा अन्दर, वह सब करे, वह कुछ सराहनेयोग्य नहीं है, अनुमोदनयोग्य नहीं है। वह तो पुण्यबन्ध का कारण है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी बात है यहाँ ? नहीं। मिथ्यादृष्टि की। सम्यग्दृष्टि की सराहनेयोग्य तो है ही नहीं। परन्तु आता है। सम्यग्दृष्टि को भी... यह ठीक प्रश्न करते हैं। यह क्रिया शुभभाव आवे, यह कहेंगे, परन्तु वह शुभभाव वास्तव में तो हेय है। दृष्टि में उसका आदर नहीं होता। परन्तु उसे आये बिना नहीं रहता। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : भूल के ऊपर भूल होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भूल के ऊपर भूल होती है। भाई ने कल कहा था न। परन्तु वह राग आता है।

यहाँ तो सम्यग्दर्शन का भान नहीं, चैतन्य को पहिचाना नहीं और अकेली क्रियाकाण्ड में चिपटा है, वह बन्ध का कारण है। उसमें जरा भी आत्मा की शान्ति और धर्म का कारण नहीं है। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : शुद्धि करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धि भूल भी करता नहीं। अशुद्धि करता है।

क्योंकि सम्यक्त्व के बिना बाह्यक्रिया का फल संसार ही है। है ? है या नहीं अन्दर ? सम्यग्दर्शन—आत्मा निर्विकल्प प्रतीति अनुभव की। मन और राग के भाव से भिन्न भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति, ऐसा जहाँ ज्ञान और उसका श्रद्धान और अनुभव हुआ नहीं, उस बिना की ऐसी सब क्रियायें तो संसार का फल है, भटकने का फल है। क्योंकि वे क्रियायें मिथ्यात्वभावसहित हैं। समझ में आया ? अब यह कहते हैं, देखो!

गाथा-९८

आगे आशंका उत्पन्न होती है कि सम्यक्त्व बिना बाह्यलिंग निष्फल कहा, जो बाह्यलिंग मूलगुण बिगाड़े उसके सम्यक्त्व रहता या नहीं ? इसका समाधान कहते हैं ह्न

मूलगुणं छित्तूण य बाहिरकम्मं करेइ जो साहू।
सो ण लहइ सिद्धिसुहं जिणलिंगविराहगो णियदं ।।९८।।

मूलगुणं छित्वा च बाह्यकर्म करोति यः साधुः।
सः न लभते सिद्धिसुखं जिणलिंगविराधकः नियतं ।।९८।।

जो मूलगुण को छेद केवल बाह्य कर्म करे सतत।
जिन–लिंग का वह विराधक नहिं कभी पाता सिद्धि–सुख।।९८।।

अर्थ – जो मुनि निर्ग्रन्थ होकर मूलगुण धारण करता है उनका छेदनकर, बिगाड़कर केवल बाह्य क्रिया कर्म करता है, वह सिद्धि अर्थात् मोक्ष के सुख को प्राप्त नहीं कर सकता है, क्योंकि ऐसा मुनि निश्चय से जिनलिंग का विराधक है।

भावार्थ – जिन आज्ञा ऐसी है कि सम्यक्त्वसहित मूलगुण धारण कर धन्य जो साधु क्रिया हैं, उनको करते हैं। मूलगुण अट्ठाईस कहे हैं – पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियों का निरोध, छह आवश्यक, भूमिशयन, स्नान का त्याग, वस्त्र का त्याग, केशलोच, एक बार भोजन, खड़ा होकर भोजन, दंतधावन का त्याग – इस प्रकार अट्ठाईस मूलगुण हैं, इनकी विराधना करके कायोत्सर्ग मौन तप ध्यान अध्ययन करता है तो इन क्रियाओं से मुक्ति नहीं होती है। जो इस प्रकार श्रद्धान करे कि हमारे सम्यक्त्व तो है ही, बाह्य मूलगुण बिगड़े तो बिगड़ो, हम मोक्षमार्गी ही हैं तो ऐसी श्रद्धा से तो जिन आज्ञा भंग करने से सम्यक्त्व का भी भंग होता है, तब मोक्ष कैसे हो और (तीव्र कषायवान हो जाय तो) कर्म के प्रबल उदय से चारित्र भ्रष्ट हो और यदि जिन आज्ञा के अनुसार श्रद्धान रहे तो सम्यक्त्व रहता है, किन्तु मूलगुण बिना केवल सम्यक्त्व ही से मुक्ति नहीं है और सम्यक्त्व बिना केवल क्रिया ही से मुक्ति नहीं है, ऐसे जानना।

प्रश्न – मुनि के स्नान का त्याग कहा और हम ऐसे भी सुनते हैं कि यदि चांडाल आदि का स्पर्श हो जावे तो दंडस्नान करते हैं।

समाधान – जैसे गृहस्थ स्नान करता है, वैसे स्नान करने का त्याग है, क्योंकि इसमें हिंसा की अधिकता है, मुनि के स्नान ऐसा है कि कमंडलु में प्रासुक जल रहता है, उससे मंत्र पढ़कर मस्तक पर धारामात्र देते हैं और उस दिन उपवास करते हैं तो ऐसा स्नान तो नाममात्र स्नान है, यहाँ मंत्र और तपस्नान प्रधान है, जलस्नान प्रधान नहीं है, इस प्रकार जानना ।।९८।।

गाथा-९८ पर प्रवचन

आगे आशंका उत्पन्न होती है कि सम्यक्त्व बिना बाह्यलिंग निष्फल कहा, जो बाह्यलिंग मूलगुण बिगाड़े, उसके सम्यक्त्व रहता या नहीं ? यह प्रश्न किया। क्या ? कि **सम्यक्त्व बिना बाह्यलिंग निष्फल...** क्रियाकाण्ड सब निष्फल। **जो बाह्यलिंग मूलगुण बिगाड़े...** मुनि होकर अट्ठाईस मूलगुण में दोष लगावे तो **सम्यक्त्व रहता या नहीं ?** ऐसा प्रश्न है। समझ में आया ? साधु होकर उसके लिये बनाया आहार ले, इत्यादि-इत्यादि ऐसी शुद्धि नहीं होती, ऐसे मूलगुण में दोष लगावे, मूलगुण में दोष लगे तो उसे समकित रहता है या नहीं ? बराबर है प्रश्न ?

मुमुक्षु : चारित्रदोष...

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्रदोष कहेंगे। परन्तु उसे माने कि हमारे ऐसा समकित होता है, मूल बिगड़े तो बिगड़ो। मिथ्यात्व हो जायेगा, ऐसा कहते हैं। मिथ्यात्व हो जाता है, यह बात सिद्ध करनी है। यह स्पष्टीकरण टीका में करेंगे। अभी उसके लिये बनाये हुए आहार-पानी लेता है, वह तो मूलगुण में दोष है।

मुमुक्षु : एक भी व्रत नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐषणा समिति नहीं, अहिंसा नहीं, सत्य नहीं। आहारशुद्धि, मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि तीनों खोटा हो। उसके लिये बिनाया हो।

मुमुक्षु : न बोले तो वे आहार न ले।

पूज्य गुरुदेवश्री : न ले, ऐसा है। इसे देना अवश्य है न, भाई!

मुमुक्षु : .... या मिथ्यादृष्टि की ?

पूज्य गुरुदेवश्री : समुच्चय बात करते हैं। समकिती नहीं। तब तो मिथ्यादृष्टि है। यह तो पहले बात की। यह बात पहले हुई। अब कोई सम्यग्दृष्टि है और साधु हुआ और अट्ठाईस मूलगुण में दोष लगावे तो वह समकित रहे या नहीं? यह बात है। समझ में आया? देखो, आता है।

मूलगुणं छित्तूण य बाहिरकम्मं करेइ जो साहू।
सो ण लहइ सिद्धिसुहं जिणलिंगविराहगो णियदं ।।९८।।

अर्थ :- जो मुनि निर्ग्रन्थ होकर मूलगुण धारण करता है,... २८ मूलगुण **उनका छेदनकर बिगाड़कर...** मूलगुण में बिगाड़ करे। **केवल बाह्यक्रिया-कर्म करता है...** दूसरी भक्ति, पूजा, भगवान की इत्यादि-इत्यादि, सामायिक-विकल्प की सामायिक ऐसा करे। **वह सिद्धि अर्थात् मोक्ष के सुख को प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि ऐसा मुनि निश्चय से जिनलिंग का विराधक है।** जिनलिंग धारण किया और मूलगुण बिगाड़े, वह तो जिनलिंग का विराधक है। स्पष्टीकरण करेंगे।

भावार्थ :- जिन-आज्ञा ऐसी है कि सम्यक्त्वसहित मूलगुण धारणकर अन्य जो साधु क्रिया हैं, उनको करते हैं। देखा! सम्यग्दर्शनसहित, अट्ठाईस मूलगुणसहित जो क्रिया भगवान की भक्ति आदि हो, वह तो भले हो, तथापि उसे धन्य कहा जाता है। समकितसहित अट्ठाईस मूलगुण के बिगाड़ बिना क्रिया करे तो उसे बराबर है।

मूलगुण अट्ठाईस कहे हैं—पाँच महाव्रत ५,... अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पाँच निरतिचार होना चाहिए। **पाँच समिति ५,...** ईर्या, ऐषणा—निर्दोष आहार लेना, देखकर चलना, विचारकर बोलना, यह पाँच समिति निरतिचार होना चाहिए। **इन्द्रियों का निरोध ५,...** पाँच इन्द्रियों का निरोध हो। यह अट्ठाईस मूलगुण हैं, हों! यह तो विकल्प है। **छह आवश्यक ६,...** सामायिक, चोविसंथो, वन्दन, प्रतिक्रमण आदि छहों आवश्यक की विकल्प की क्रिया करता हो। **भूमिशयन १,...** नीचे सोना। **स्नान का त्याग,...** मुनि स्नान नहीं करे। मुनि को स्नान नहीं होता। **वस्त्र का त्याग, केशलोच, एकबार भोजन, खड़ा भोजन, दन्तधोवन का त्याग, इस प्रकार अट्ठाईस मूलगुण हैं,**

इनकी विराधना करके... देखो! मूलगुण को विराधे और **कायोत्सर्ग मौन, तप, ध्यान, अध्ययन करता है तो इन क्रियाओं से मुक्ति नहीं होती है।** समझ में आया? पहले तो समकित बिना ऐसा करे तो उसे कुछ है नहीं। उसका फल आत्मा को संसार है।

अब समकित सहित है, साधु हुआ है और मूलगुण की विराधना करे तो उसका क्या? पाठ में तो इतना लिया कि मूलगुण की विराधना करे तो जिनलिंग का विराधक हुआ। अब अधिक स्पष्ट करते हैं। **मौन, तप, ध्यान, अध्ययन करता है तो इन क्रियाओं से मुक्ति नहीं होती है। जो इस प्रकार श्रद्धान करे कि हमारे सम्यक्त्व तो है ही,...** समकित हुआ हो, ऐसा कहते हैं। ऐसा माने। **बाह्य मूलगुण बिगड़े तो बिगड़ो, हम मोक्षमार्गी ही हैं**—देखो! आया। मूलगुण में दोष लगे तो लगो, हम समकित तो है। **हम मोक्षमार्गी ही हैं—तो ऐसी श्रद्धा से तो जिन आज्ञा भंग करने से सम्यक्त्व का भी भंग होता है...** लो! मूलगुण का विराधक और साधुपना मनावे, वह तो समकित का दोष है। समझ में आया? उसके लिये बनाया हुआ आहार, स्नान करे इत्यादि-इत्यादि; ऐषणासमिति का ठिकाना नहीं हो और माने कि हम मोक्षमार्गी तो है न! समकित तो है न हमारे। मूलगुण विराधक हो या न हो, परन्तु मोक्षमार्गी है। **ऐसी श्रद्धा से तो जिन आज्ञा भंग करने से सम्यक्त्व का भी भंग होता है...** मूलगुण का ठिकाना नहीं और फिर माने कि हमारे कुछ दिक्कत नहीं है, उसे तो समकित भी नहीं है।

मुमुक्षु : क्रिया तो सब पालता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सी पालता है? मूलगुण में दोष लगाता है और बाकी पाले।

मुमुक्षु : गृहस्थ जाने...

पूज्य गुरुदेवश्री : गृहस्थ को क्या कहना ठीक, बचाव करते हैं। खबर नहीं कि मैं आहार लेने आया हूँ। यहाँ दो व्यक्ति हैं और (प्रासुक) किया है दस सेर पानी। यह किसके लिये किया है? दस सेर गर्म पानी पीने के लिये करते होंगे? सवेरे उठकर जल्दी पानी छाने, कुएँ में से लाओ, आज भोजन बनाना है। आहारदान देना है। आता है या नहीं भाव? तुम्हारे अधिकार है? उसके लिये बनाकर करना, ऐसा अधिकार है तुम्हारा?

मुमुक्षु : भूखे जाने देना....

पूज्य गुरुदेवश्री : भूखे कौन आवे ? भूखा जाये, न जाये वह तो उसके कारण से है। सेठ को सामने सब किया है न सम्प्रदाय में अच्छा लगाने के लिये। समझ में आया ?

सम्यक्त्व का भी भंग होता है, तब मोक्ष कैसे हो;... मूलगुण में दोष लगावे, अट्ठाईस मूलगुण में खास उसके लिये बनाया हुआ आहार आदि ले, वह तो मूलगुण में दोष है, और माने कि हमारे समकित तो है न ? क्या दिक्कत ? समकित ही नहीं। वीतराग की आज्ञा अट्ठाईस मूलगुण निरतिचार की है, उसे बिगाड़कर तू मानता है कि हम साधु हैं, मोक्षमार्गी हैं। ऐसा कहा है न ?

मुमुक्षु : गृहस्थ करे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : गृहस्थ कर सकता है। वह अलग बात है। गृहस्थ ले सकता है। गृहस्थाश्रम में उसके लिये बनाया हुआ (आहार) आदि हो तो (ले सकता है)। साधु नाम धरावे, ऊँची पदवी नाम धरावे और मूलगुण बिगाड़े तो **सम्यक्त्व का भी भंग होता है...** उसे समकित भी नहीं होता। पण्डित जयचन्द्रजी ने स्पष्टीकरण किया है, देखो न! '**जिणलिंगविराहगो णियद**' है न ? '**णियद**' ऐसा है न ? '**णियद**' का अर्थ किया। '**णियद**' अर्थात् निश्चय।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्होंने स्पष्टीकरण किया है न कि क्यों ? कि यदि दोष है, उसे स्वीकार करे कि दोष है, ऐसा मूलगुण मुझमें नहीं है। मैं साधु नहीं हूँ। तो समकित हो तो आगे बढ़ जाये। परन्तु दोष का ही स्वीकार नहीं करता, ऐसा यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : मुझे मूलगुण नहीं है, मैं साधु नहीं, मुझमें साधुपना है नहीं, ऐसा स्वीकार करे तो समकित रह सके, (यदि) समकित प्रगट हुआ हो तो।

मुमुक्षु : ... कपड़े पहनना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कौन जाने क्या करना तुम्हारे ? यह तो मार्ग कहते हैं। यहाँ तो मार्ग भगवान कहते हैं। मोक्ष अधिकार है या नहीं ? सम्यग्दर्शनसहित, चारित्रसहित पंच महाव्रत अट्ठाईस मूलगुण मुनि को होते हैं। बराबर होते हैं। है विकल्प। परन्तु उन्हें बराबर

होते हैं। न हो, ऐसा नहीं है। उसमें—मूलगुण में भी भंग लगाये और माने कि हमें समकित तो है न, हम मोक्षमार्गी तो हैं न, ऐसा करके वीतराग की आज्ञा विराधता है। '**जिणलिंगविराहगो**' कहा न? इसका अर्थ किया है। चारित्रदोष स्वीकार कर। यह कहेंगे, देखो!

और कर्म के प्रबल उदय से चारित्र भ्रष्ट हो। देखो! ऐसा कोई चारित्र का भ्रष्ट हो जाये। **और यदि जिन आज्ञा के अनुसार श्रद्धान रहे तो सम्यक्त्व रहता है...** देखो! चारित्र से भ्रष्ट हो जाये। मुझमें चारित्र नहीं, मूलगुण नहीं। ऐसा माने तो समकित को दिक्कत नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ... दोष न माने।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। हमारे इसमें क्या दिक्कत है? हमारे समकित तो है न? मूलगुण दोष टूटे तो टूटे। कहे, नहीं।

मुमुक्षु : बाहर प्रसिद्ध न करे और अन्दर में जानता हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानता हो इसका अर्थ क्या?

मुमुक्षु : स्वयं अन्तर में जानता हो, बाहर में न कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु इसका अर्थ क्या है? उसकी मान्यता में अन्तर है। वीतराग का मार्ग जो मुनिपने का है, तत्प्रमाण पालता नहीं और मानता है कि हम साधु हैं, मोक्षमार्गी हैं, वह मिथ्यात्व है। प्रतिज्ञाभंग का महापाप है, ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : मुनि चौथे काल के और श्रावक...

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे-फौथे कुछ नहीं। ऐसा है। चौथे काल के साधु लेना और पाँचवें काल के श्रावक लेना। यह ठीक है। चौथे और पाँचवें में कुछ नहीं। जो है वह उसके साधु, श्रावक हो। शोभालालभाई! कहते हैं। साधु लेना चौथे काल के और श्रावक लेना पाँचवें काल के। ऐसा कहते हैं। यहाँ चौथे काल और पाँचवें काल की बात ही नहीं है। चौथे गुणस्थानवाला आत्मा के अनुभवी ऐसे समकिती हों। पश्चात् उसे साधुपना हो, तब चारित्र होता है, अट्ठाईस मूलगुण भी होते हैं, उन्हें शुभभाव होता है। ऐसा जिसे शुभभाव में अट्ठाईस मूलगुण में जहाँ खण्ड करता है और फिर दोष को स्वीकार करता है कि नहीं

भाई! हम साधु नहीं हैं। हमारे में साधुपना नहीं है। तब तो समकित रहे। परन्तु वापस मोक्षमार्गी मनावे (तो) मिथ्यादृष्टि हो जाता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : भूखे जाना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : भूखा ही है। क्या है? भूखा नहीं रह सके न, इसलिए (ऐसा कहते हैं कि) फिर उनको भूखा रहना पड़े।

यह तो स्पष्ट बात पण्डित ने भी की है। क्या कहलाते हैं यह? पण्डित जयचन्द्र। पाठ में तो यह है, देखो न! '**सो ण लहइ सिद्धिसुहं जिणलिंगविराहगो णियद**' जिनलिंग में साधुपद में उनके लिये बनाया हुआ (आहार) आदि नहीं होता, अट्ठाईस मूलगुण बराबर निरतिचार होते हैं। उनका दोष लगाये और दूसरी क्रियायें करे, वह समकित से भ्रष्ट हो जाता है। वह भगवान की आज्ञा नहीं मानता। परन्तु कर्म का प्रबल उदय, पुरुषार्थ की कमी हो, चारित्र से भ्रष्ट हो जाये। मूलगुण को छेद जाये।

यदि जिन आज्ञा के अनुसार श्रद्धान रहे तो... वीतराग की आज्ञा तो यही थी कि मूलगुण रखना और बिगाड़ना नहीं। मुझसे बिगड़े हैं। मैं साधु नहीं हूँ। तो वह समकित रहे। तो उसकी श्रद्धा में दोष नहीं लगे। माघनन्दी (का) नहीं आया? माघनन्दी।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कुम्हार के घर में। परन्तु उनके समकित को बाधा नहीं। जरा सूक्ष्म कठोर बात है। कुम्हार की कन्या से विवाह किया। जानते हैं कि मेरे चारित्र भ्रष्ट हुआ है। मुझे चारित्र नहीं है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन को बाधा नहीं। चारित्रदोष लगाया तो समकित को दोष है, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? और जो दोष को दोष रूप से मानता ही नहीं। उसमें क्या है? यह तो होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रिया करे तो भी वह धर्म नहीं, वह तो पुण्य है। वह साधु का आचरण नहीं।

मुमुक्षु : जैसे मुनि अपने को ... मूलगुण नहीं तो वह तो दोनों से भ्रष्ट हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों से भ्रष्ट है। क्रिया करे तो भी क्या क्रिया? समकितसहित

क्रिया आदि हो, समकितसहित उसकी क्रिया हो तो भी वह पुण्यबन्ध का कारण है। मूलगुण का ठिकाना नहीं, फिर कौन सी क्रिया? उसके लिये तो यह गाथा ली है। '**मूलगुणं छित्तूण**' मूलगुण का ठिकाना नहीं। दूसरी क्रिया की कीमत नहीं है। समकितसहित हो तो भी उसकी कीमत नहीं है। समझ में आया? यहाँ तो आचार्य का मूलगुण के ऊपर वजन है। '**मूलगुणं छित्तूण**' ऐसा शब्द पड़ा है। '**बाहिरकम्मं करेइ जो साहू**' निचली दशा में न रहे धर्म में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उतर गये नीचे। साधु नहीं। आहार-पानी लिया। वे क्या? शिव में, शिवशंकर। आहार-पानी ले लिया तो वह साधु नहीं। तो वह समकित को बाधा नहीं करता। साधु मोक्षमार्गी भी कहलाना है, ऊँची पदवी नाम धराना है और मूलगुण छेदना है तो वह चारित्र को दोष लगे तो वह समकिती साधु नहीं है। तो उसे समकित को बाधा नहीं है परन्तु हम मोक्षमार्गी हैं, (ऐसा माने तो) समकित का दोष है, मिथ्यात्व का। समझ में आया? हम दूसरी क्रिया तो करते हैं न, मूलगुण भले छिदते हैं। परन्तु दूसरी क्रिया तो करते हैं न? भगवान की भक्ति, पूजा इत्यादि-इत्यादि। नहीं। उसके लिये तो यह गाथा है। मूलगुण में बाधा, उसे साधुपना नहीं रहता। और साधुपना मोक्षमार्गी मनावे तो समकित को भी भ्रष्ट करता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। गुरु को संथारा करने का भाव हुआ था। क्षुधा इतनी लगती है। मुनिपने में ऐसा आहार नहीं मिलता। हम संथारा करेंगे। गुरु कहते हैं कि नहीं चलेगा। सन्थारा नहीं चलेगा। तुम्हारे ... गुरु ने कहा, ... माया, कपट किया था सब। वहाँ जाकर शंकर के मन्दिर में। फिर शंकर स्थापित किये। ... भस्म व्याधि मिट गयी। आहार बढ़ने लगा। अब? कि आहार तो यह स्वयं खाते थे। खबर पड़ी। नमस्कार करो इन्हें। मेरा नमन सहन नहीं कर सकेंगे। राजा को कहा कि मैं नमन करूँ, उसे यह मूर्ति सहन नहीं कर सकेगी। वह शंकर की मूर्ति थी न? शंकर की मूर्ति। वे उसके पास रहते थे न? नहीं सहन कर सकेगी। मैं शंकर को वन्दन करूँ, यह नहीं। अभी तक क्या किया? जो किया वह किया। मैंने वन्दन ... वन्दन सहन नहीं कर सकेंगे, मैं समकिती हूँ। महा स्तुति की। लिंग

फटा। ऐसा आता है। वहाँ है। बनारस नहीं। ... कैसा कहलाता है ? भुवनेश्वर। वहाँ ... गये थे। भुवनेश्वर गये थे। शंकर का बड़ा मन्दिर है। वहाँ ... रहा। कहो, पाव-आधे घण्टे देरी हो। दिखाया। कहा, देरी होने की बात नहीं। हम तो हमारे काम करने जानेवाले हैं। ... थे उनके ब्राह्मण। वे कहते हैं कि वहाँ भुवनेश्वर में क्या कहलाता है ? भुवनेश्वर। खण्डगिरि, उदयगिरि हैं न। हम यात्रा गये थे, खण्डगिरि-उदयगिरि की। प्लेन में कलकत्ता से। (संवत्) २०१३ के वर्ष। १३ वर्ष हुए। तीन हजार का प्लेन किया था। पहले उतरे थे, वह भुवनेश्वर स्टेशन। वहाँ उतरे थे। समन्तभद्राचार्य यहाँ ऐसा कि शंकर के मन्दिर में थे। वहाँ लिंग टूटा हुआ है। सच्चा-झूठा चाहे जो हो परन्तु अन्दर टूटा हुआ है, कहते हैं] होगा, चलो देखने जायें। पण्डे कहें आधा घण्टा होगा। भोजन-बोजन खाये न। कुछ देते होंगे, कराते होंगे।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : गये थे न ? हिम्मतभाई गये थे ? क्या था टूटा हुआ ?

मुमुक्षु : हाँ, टूटा हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : टूटा हुआ है। कहते थे। भगवान चन्द्रप्रभ निकले। यह तो पुण्य है।

मुमुक्षु : ... उस स्थिति में कहाँ है अभी

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई ऐसा कहते हैं कि प्रतिमा कहाँ है ? वह ... वह रहने दे कहीं ? परन्तु यह बात है। समकित के जोर में... उसे मैं वन्दन नहीं कर सकूँगा। वह वन्दन नहीं झेल सकेगी। और स्तुति जहाँ शुरु की तो एकदम (प्रतिमा निकली)। तब वह राजा था न, कौन ? शिवकोटि। बाद में साधु हुए। ओहो ! ऐसा मार्ग वीतराग का ! दोष लगा था परन्तु दोष स्वीकार करके जिसने सम्यग्दर्शन रखा। हम साधु नहीं। समझ में आया ?

यहाँ तो '**मूलगुणं छित्तूण**' का अर्थ पूरा है। सम्यग्दर्शन हो परन्तु यदि मूलगुण छेदकर साधुपना माने तो मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। परन्तु मेरे से पालन नहीं किया जा सकता, मैं साधु नहीं हूँ। **यदि जिन आज्ञा के अनुसार श्रद्धान रहे...** जिन आज्ञा तो मूलगुण पालने की ही है मुनि को। ऐसी श्रद्धा रखे। **तो समकित रहता है। मूलगुण बिना केवल सम्यक्त्व ही से मुक्ति नहीं है...**

मुमुक्षु : नग्न रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : नग्न रहते हैं। यहाँ साधारण बात की है। नग्न रहे... समकित जहाँ रहे, मुनिपना हो वहाँ रह सकता है न! मुनिपना ... छोड़ देता है। यह शास्त्र में आता है। क्या कहलाता है वह ? समझ में आया ? श्वेताम्बर में भी आता है। ... कहा जाता है उसे। साधु हो और फिर भान नहीं रहा... मुझमें वस्तु नहीं, अब चारित्र रहा नहीं। छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान आता नहीं। छोड़ दे। गृहस्थाश्रमी हो जाये। उसे ... श्रावक कहा जाता है। वस्त्र पहन ले। उसमें क्या है ? सत्य को ... रखना है या ....

मुमुक्षु : गृहस्थ को दगा न हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : गृहस्थ का गृहस्थ जाने। ऐसी शक्ति न हो तो क्या करे ? मिथ्यात्व का दोष लगावे ? साधुपना नहीं और साधुपना मनावे ? ऐसा नहीं चलता। शास्त्र में ऐसा आया है। मार्गणा में भी चला है। छठे से उतरकर पाँचवें में आ जाये। ऐसा आता है। मार्गणा है न गुणस्थान की ? छठे से उतरकर पाँचवें में आ जाये, पाँचवें से चौथे में आ जाये। समझ में आया ? श्वेताम्बर में तो इसकी बहुत बड़ी चर्चा है। यह तो पहले से कहते थे। साधु हो और पालन न कर सके तो छोड़ दे।

मुमुक्षु : उनके तो साधु भी वस्त्रधारी होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्त्रधारी साधु-बाधु नहीं होते। उनके होते हैं परन्तु यहाँ नहीं। उनके भी साधु वस्त्रधारी भले हो, परन्तु साधुपने का आचरण न पालन कर सके तो वह भी गृहस्थ हो जाये। ऐसा है, ऐसा शास्त्र में है। यहाँ कहते हैं, देखो न।

मुमुक्षु : दिगम्बर में ऐसा हो जाये तो बाह्यचार करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाह्यचार करे। यह सब तुम्हारे जैसे सब इकट्ठे होकर पालन न कर सकते हों तो उसका सब तिरस्कार करे। मार्ग तो ऐसा है। शास्त्र में ऐसा चला है कि समकित रहे, अन्दर भावलिंग साधुपना न हो परन्तु अट्ठाईस मूलगुण निरतिचार पालता हो। आता है न ? अमरचन्दभाई ! उसे द्रव्यलिंगी कहा है। वह नौवें ग्रैवेयक में जाता है। होवे समकिती। अन्दर मुनिपना नहीं होता। जानता है, उसे ख्याल है। परन्तु व्यवहार अट्ठाईस मूलगुण निरतिचार पालता हो। प्राण जाये तो भी उसमें फेरफार नहीं। ऐसा मुनि, वह भी

द्रव्यलिंगी है तो वह नौवें ग्रैवेयक में जाता है। तत्त्वार्थ राजवार्तिक में पाठ है।

मुमुक्षु : वहाँ गुलाँट लगावे तो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। गुलाँट की बात नहीं है। वह समकित है परन्तु छठे गुणस्थान की क्रिया खड़ी है। अन्दर छठवाँ गुणस्थान आया नहीं। अभी समझने में जरा तकलीफ पड़े, ऐसा है मस्तिष्क को। चन्दुभाई हँसते हैं। कहो, समझ में आया ? सम्यग्दर्शन है परन्तु अन्दर साधुपना उड़ गया। साधुपना पहला था, चारित्र था। ... अब तब पुरुषार्थ ... छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान आना चाहिए, वह आता नहीं। मुझमें चारित्र नहीं है। छोड़ दे। तो उसके समकित को दिक्कत नहीं है। दुनिया माने, न माने, उसका यहाँ क्या काम है ?

मुमुक्षु : विष्णुकुमार...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो दोष लगा। परन्तु वापस चारित्र ले लिया न। विष्णुकुमार भी साधु नहीं थे उस समय। जब (दूसरे मुनियों का) बचाव किया, (तब) साधु नहीं थे। वस्त्र पहने, वह कहीं साधु हो ? मिथ्यादृष्टि नहीं थे। साधुपना भ्रष्ट हो गया है।

मुमुक्षु : दोष की प्रशंसा कैसे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उनकी दोष की... कि उन्होंने वे सब साधु जलते थे, उनका इतना किया, इस अपेक्षा से प्रशंसा की है। परन्तु ... देखकर दूसरे सबको करना (ऐसा नहीं)। मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है। तब तो... सबको ऐसा करना, ऐसा नहीं चलता। वह तो उस समय खोटा कर्म (उपसर्ग) था, उस समय विकल्प आ गया। इस अपेक्षा से व्यवहार से प्रशंसा की है। वह तो मोक्षमार्ग में हैं। मुनिपना रहा नहीं। हमारे यह चर्चा बहुत वर्ष पहले हुई थी। (संवत्) १९७१ के वर्ष में। कौन सा ? ७१। आनन्दपुर-आनन्दपुर। ऐई ! प्रेमचन्दभाई के यहाँ। ... ७१। ५५ वर्ष हुए। वहाँ गये। पश्चात् ऐसी चर्चा हुई... भगवती में आया,... मुनि ध्यान में थे। ... पन्द्रहवें अध्ययन में आता है। है तो सब मिथ्या बात परन्तु... आचार्य थे। तीन ज्ञान के धनी, साधु। वे ध्यान करते थे। उसमें गोसाला का जीव निकला। गोसालो कहते हैं न ? बात तो सब कल्पित है।

मुमुक्षु : उपासरा को गोसाळा कहते हैं न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : गोसाळा एक आदमी है, जैनशासन का विरोधी। उस गोसाळा

की लम्बी बात है। यहाँ तो इतना कहना है, हमारे चर्चा ७१ में चली थी। गोसाळा था, उसने साधु को घोड़ागाड़ी थी न स्वयं की। राजा का कुँवर था। गोसाळा आयेगा। भविष्य में होगा। झूठ बात है, हों! सब कल्पित। पन्द्रहवें अध्ययन में है। घोड़ागाड़ी में है राजा। अभी बारहवें देवलोक में है, ऐसा कहे। फिर निकलकर राजा होगा। पश्चात् ... आचार्य ध्यान करेंगे। फिर उसे घोड़ागाड़ी चलायेगा साधु ... सामने होती है न लकड़ी की पट्टी। ... घोड़ा को ... दूसरी बार जहाँ लाया। क्या है ? ... बन्ध हो गया। तीसरी बार लाने की तैयारी की। ध्यान रखना कौन है तू ? अवधिज्ञान में देखा तो यह तो गोसाळा है। जैन शासन का वैरी। अब यदि तीसरी बार लाया तो भस्म कर दूँगा तुझे। साधु कहता है। तीसरी बार लाया तो सबको जला डाला। यह चर्चा हमारे चले ७१ में। वे कहे, देखो! ऐसा साधुपना रहे। बिल्कुल नहीं रहता, कहा। यह हमारे बड़ी चर्चा चली थी मूलचन्दभाई के साथ। ऐसा किया, उसमें कहाँ प्रायश्चित्त आया है ? उसमें-शास्त्र में लिखा नहीं। नहीं लिखा तो क्या ? कहा। बिल्कुल साधुपना नहीं रहता। राजा को मार डाला, घोड़ा मार डाला और साधुपना रहता होगा ? यह किसने कहा ऐसा ? बड़ी चर्चा (चली)। कुछ ठिकाने बिना की श्रद्धा। यह बड़ी बात आती है।

यहाँ तो कहते हैं कि मूलगुण में दोष लगावे, अट्ठाईस मूलगुण जिसे ऐसा हो तो वह पदवी नहीं है। इसमें मूल में विवाद। और ऐसा माने कि इसमें क्या दिक्कत है ? हमारे समकित तो है या नहीं ? बिल्कुल नहीं। वह जिन आज्ञा से भ्रष्ट है। परन्तु कोई दोष लगे, चारित्र भ्रष्ट हो जाये, श्रद्धा रहे परन्तु चारित्र नहीं। मैं साधु नहीं। समझ में आया ? तो उसके सम्यग्दर्शन को अटक नहीं है। मूल श्रद्धा...

मूलगुण बिना केवल सम्यक्त्व ही से मुक्ति नहीं है... अकेले समकित से कहीं साधुपना आये बिना मुक्ति होगी ? समकित हुआ, परन्तु चारित्र और अट्ठाईस मूलगुण आये बिना रहते नहीं। इसके बिना मुक्ति हो जाये ? अकेले समकित से मुक्ति होगी ? क्षायिक समकित हो। चारित्र—स्वरूप की रमणता और अट्ठाईस मूलगुण के भाव, इसके बिना मुक्ति नहीं है। **और सम्यक्त्व बिना केवल क्रिया ही से मुक्ति नहीं है,...** व्रत-तप लेते हैं या नहीं ? मूलगुण रखे बराबर, साधु पाले बाहर की क्रिया परन्तु समकित नहीं। उसे भी धर्म नहीं, उसे भी मुक्ति नहीं। ऐसा तो स्पष्टीकरण करते हैं। सेठ! इसमें गड़बड़ी नहीं चलती।

मुमुक्षु : केद लगाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : केद नहीं लगाते। जैसा है वैसा करते हैं। केद नहीं लगाते। केद लगाते हैं, कहते हैं।

यहाँ कोई पूछे... अब स्नान की बात लेते हैं। **प्रश्न :- मुनि के स्नान का त्याग कहा और हम ऐसे भी सुनते हैं कि यदि चाण्डाल आदि का स्पर्श हो जावे तो दण्डस्नान करते हैं।** शास्त्र में ऐसा आता है। मूलगुण में दिक्कत आती है। नहीं, नहीं। ऐसा नहीं होता। **समाधान :- जैसे गृहस्थ स्नान करता है, वैसे स्नान करने का त्याग है,...** जैसा गृहस्थ स्नान करके, वैसा मुनि स्नान नहीं करते। **क्योंकि इसमें हिंसा की अधिकता है,...** पानी के एकेन्द्रिय जीव मरे, वह नहीं हो सकता। **मुनि के स्नान ऐसा है कि कमण्डलु में प्रासुक जल रहता है...** निर्दोष थोड़ा। **उससे मन्त्र पढ़कर मस्तक पर धारामात्र देते हैं...** चाण्डाल आदि को स्पर्श हो गया हो और ऐसा हुआ हो। **और उस दिन उपवास करते हैं तो ऐसा स्नान तो नाममात्र स्नान है, यहाँ मन्त्र और तपस्नान प्रधान है, जलस्नान प्रधान नहीं है,...** यह तो मूलगुण का प्रश्न उठाया है। उसमें है बड़ा लम्बा-लम्बा।

मुमुक्षु : चाण्डाल को स्पर्श कर जाये उसमें...

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि है न। चाण्डाल है, रजस्वला स्त्री है। ऐसे को स्पर्श कर जाये तो स्नान करे।

मुमुक्षु : कौवे को...

पूज्य गुरुदेवश्री : कौवे का वह हो गया।

मुमुक्षु : स्पर्श...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, है। हमने सब पढ़ा है। सब है न, पूरी टीका देखी है। यह तो अभी आया, हमने तो पूरी टीका पढ़ी है। खोटे का ... पड़ जाये। स्नान करना पड़े।

मुमुक्षु : ... चाण्डाल सम्यग्दृष्टि हो तो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तो भी। बाहर में... ठीक प्रश्न करते हैं। ... परन्तु यहाँ लोक में चाण्डाल समकिती श्रावक हो दूसरी बात है। बाहर साधारण चाण्डाल...

मुमुक्षु : चाण्डाल को भी पूजे सम्यग्दृष्टि हो तो और यह स्पर्श करे, उसे स्नान करना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह चाण्डाल साधारण चाण्डाल की बात है। चाण्डाल साधारण की बात है, यहाँ समकिती की बात कहाँ है? चाण्डाल लोक में अस्पर्श गिना जाता है और उसका स्पर्श हो, ऐसी इतनी बात है। तो उस दिन उपवास करना। प्रासुक जल से स्नान करे, दण्डस्नान, हों! रगड़-रगड़ कर नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बस यह। ९८ गाथा हुई।

गाथा-९९

आगे कहते हैं कि जो आत्मस्वभाव से विपरीत बाह्य क्रियाकर्म है, वह क्या करे ? मोक्षमार्ग में तो कुछ भी कार्य नहीं करते हैं -

किं काहिदि बहिकम्मं किं काहिदि बहुविहं च खवणं तु।
किं काहिदि आदावं आदसहावस्स विवरीदो॥९९॥

किं करिष्यति बहिः कर्म किं करिष्यति बहुविधं च क्षमणं तु।
किं करिष्यति आतापः आत्मस्वभावात् विपरीतः॥९९॥

विपरीत आत्म-स्वभाव से बहि कर्म क्या अच्छा करें?
हों बहु विविध उपवास क्या? आतापनादि क्या करें?॥९९॥

अर्थ - आत्मस्वभाव से विपरीत, प्रतिकूल बाह्यकर्म में जो क्रियाकांड वह क्या करेगा ? कुछ मोक्ष का कार्य तो किंचिन्मात्र भी नहीं करेगा, बहुत अनेक प्रकार क्षमण अर्थात् उपवासादि बाह्य तप भी क्या करेगा ? कुछ भी नहीं करेगा, आतापनयोग आदि कायक्लेश क्या करेगा ? कुछ भी नहीं करेगा।

भावार्थ - बाह्य क्रियाकर्म शरीराश्रित हैं और शरीर जड़ है, आत्मा चेतन है, जड़

की क्रिया तो चेतन को कुछ फल करती नहीं है, जैसा चेतना का भाव जितना क्रिया में मिलता है उसका फल चेतन को लगता है। चेतन का अशुभ उपयोग मिले, तब अशुभकर्म बँधे और शुभ उपयोग मिले, तब शुभकर्म बँधता है और जब शुभ-अशुभ दोनों से रहित उपयोग होता है, तब कर्म नहीं बँधता है, पहिले बँधे हुए कर्मों की निर्जरा करके मोक्ष करता है।

इस प्रकार चेतना उपयोग के अनुसार फलती है, इसलिए ऐसा कहा है कि बाह्य क्रिया कर्म से तो कुछ मोक्ष होता नहीं है, शुद्ध उपयोग होने पर मोक्ष होता है। इसलिए दर्शन ज्ञान उपयोग का विकार मेटकर शुद्ध ज्ञान चेतना का अभ्यास करना मोक्ष का उपाय है।।९९।।

गाथा-९९ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो आत्मस्वभाव से विपरीत बाह्य क्रियाकर्म है, वह क्या करे? अन्तिम गाथायें हैं न? आत्मस्वभाव का तो भान नहीं। जिसे समयग्दर्शन तो प्रगट हुआ नहीं। उसके बिना **बाह्य क्रियाकर्म है, वह क्या करे? मोक्षमार्ग में तो कुछ भी कार्य नहीं करते हैं :-** आहाहा!

किं काहिदि बहिकम्मं किं काहिदि बहुविहं च खवणं तु।
किं काहिदि आदावं आदसहावस्स विवरीदो।।९९।।

अन्तिम शब्द का पहला अर्थ किया।

अर्थ :- आत्मस्वभाव से विपरीत, प्रतिकूल बाह्यकर्म जो क्रियाकाण्ड वह क्या करेगा? सम्यग्दर्शन स्वरूप निर्विकल्प (का) तो भान नहीं होता और निर्विकल्प सम्यग्दर्शन बिना, आत्मा निर्विकल्प है, राग है नहीं, क्रियाकाण्ड उसमें है ही नहीं, ऐसे भान बिना **क्रियाकाण्ड वह क्या करेगा? कुछ मोक्ष का कार्य तो किंचित्मात्र भी नहीं करेगा,...** संवर-निर्जरा का अंश भी नहीं होता, ऐसा कहते हैं। **कुछ मोक्ष का कार्य तो किंचित्मात्र भी नहीं करेगा, बहुत अनेक प्रकार क्षमण अर्थात् उपवासादि बाह्य तप...** अपवास करे तीन-तीन, चार-चार, पाँच-पाँच, दस-दस अपवास (करे), और गुरु का

विनय करे, भक्ति करे, मन्दिर आदि बनाने में बहुत अनुमोदन हो, ऐसा **बाह्य तप भी क्या करेगा ?** समझ में आया ?

भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु आत्मा, ऐसे निर्विकल्प आत्मा के भान बिना सहजानन्द की मूर्ति आत्मा है, उसका जहाँ भान नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं, वह चाहे जैसा क्रियाकाण्ड करे, उसे मुक्ति में कुछ लाभ है नहीं। मोक्ष का लाभ नहीं है। समझ में आया ? **मोक्ष का कार्य तो किंचित्मात्र भी नहीं करेगा,...** है न ? किंचित्मात्र, है न ? क्या करे ? क्या करे का अर्थ निकाला किंचित् भी करता नहीं। और, **अनेक प्रकार क्षमण अर्थात् उपवासादि बाह्य तप भी क्या करेगा ? कुछ भी नहीं करेगा, आतापनयोग...** सूर्य का आताप ले। ध्यान में रहे। आत्मा के ध्यान बिना **आदि कायक्लेश क्या करेगा ?** वह तो कायक्लेश है। आहाहा ! समझ में आया ? इतना तो स्पष्ट है। सम्यग्दर्शन बिना ऐसा सब चाहे जो करे, वह सब आतापन योग आदि क्या करे ? **कुछ भी नहीं करेगा।**

भावार्थ :- बाह्य क्रियाकर्म शरीराश्रित है और शरीर जड़ है, आत्मा चेतन है, जड़ की क्रिया तो चेतन को कुछ फल करती नहीं है,... शरीर की क्रिया हो, वह जड़ की, हों ! भाव दूसरा। **जैसा चेतना का भाव जितना क्रिया में मिलता है...** इस शरीर की क्रिया से कुछ फल नहीं है, ऐसा कहते हैं। उसमें फल नहीं है। परन्तु शरीर की क्रिया में जैसा भाव मिले, वहाँ **चेतन का अशुभ उपयोग मिले, तब अशुभकर्म बँधे...** देह की क्रिया में यदि अन्दर अशुभ परिणाम वर्ते तो पाप बाँधे। देह की क्रिया के काल में शुभयोग मिले तो शुभकर्म बाँधे। शुभभाव विकल्प हो तो वह पुण्य बाँधे।

और जब शुभ-अशुभ दोनों से रहित उपयोग होता है... दोनों से रहित ऐसा (शुद्ध) उपयोग हो, **तब कर्म नहीं बँधता है,...** देह की क्रिया से तो कुछ फल है ही नहीं, कहते हैं। परन्तु देह की क्रिया के काल में जो परिणाम हुए शुभ के, अशुभ के या शुद्ध के। अशुभभाव हो तो पाप बाँधे, शुभभाव हो तो पुण्य बाँधे, शुभाशुभभाव न हो तो शुद्ध उपयोग से धर्म हो, निर्जरा हो। समझ में आया ? इसमें सब आ गया न ? नवरंगभाई ! ... आ गया न इसमें ? सब आ गया।

यह तो (संवत्) २००५ के वर्ष का प्रश्न था। उसे २१ वर्ष हुए। अब तो सब बदल गया है। आहाहा ! उससे मैंने कहा था, हों ! एकबार। मगनभाई को। तब सम्प्रदाय में थे।

नवरंगभाई ऐसा बोले थे। महाराज! यह तुम्हारा श्रावक आया, ऐसा बोले थे। ६४ में बोले थे। तब तो वे पढ़ते थे। परन्तु एक बार बोले थे। उपाश्रय में, हों! स्थानकवासी का उपासरा है न? ऐसा बोले थे। उन्हें तो कुछ खबर नहीं कि बाद में क्या होगा? महाराज से आगे बढ़ेंगे। परन्तु वे बोले थे। ऐसा बोले, हों! इस प्रमाण, महाराज! तुम्हारा श्रावक आया। तुम्हारा श्रावक आया। ऐसा। श्रावक नहीं समझते? उस समय तो कुछ था भी नहीं। परन्तु यह बात मुझे उस समय मस्तिष्क में घुस गयी थी कि ऐसा बोलते हैं।

यहाँ कहते हैं, **कर्मों की निर्जरा करके मोक्ष करता है...** वह शुद्धोपयोग करे तो उस कर्म की निर्जरा होती है, बन्ध घटता है और मोक्ष होता है। तीन बातें की। देह की क्रिया चाहे जैसी हो, उसके साथ आत्मा को पुण्य-पाप का कोई कारण नहीं है, तथा धर्म भी नहीं है। देह की क्रिया। देखकर चलना या यह वह। वह तो देह की क्रिया है। उसमें अशुभ परिणाम मिलें तो पाप बँधता है। शुभ परिणाम मिलें तो पुण्य बँधता है। शुभाशुभ परिणाम रहित आत्मा शुद्ध चिदानन्दमूर्ति, उसका शुद्धोपयोग आवे तो कर्म खिरते हैं। समझ में आया?

इस प्रकार चेतना उपयोग के अनुसार फलती है,... देखो! क्या कहते हैं? देह की क्रिया से कहीं पुण्य-पाप या धर्म नहीं होता। चेतना के उपयोग के अनुसार फलता है। भगवान आत्मा चेतनस्वरूप, उसका उपयोग यदि अशुभ-पाप का हो तो पाप बँधता है। शुभ-पुण्य का हो तो पुण्य बँधता है। और शुभाशुभभावरहित चेतना का शुद्धोपयोग अन्दर वीतरागी उपयोग हो तो कर्म खिरते हैं। समझ में आया? यहाँ तो कहा था न ऊपर? देह की क्रिया कुछ नहीं करती। कहा था न। '**किं काहिदि बहिकम्मं किं काहिदि बहुविहं च खवणं तु। किं काहिदि आदावं आदासहावस्स विवरीदो ॥९९॥** आताप, योग और धूप में बैठे, तड़के समझे न? धूप में। क्या करे उसमें? वह तो शरीर की-जड़ की क्रिया है। परन्तु उसमें यदि परिणाम अशुभ हुए (तो पाप बँधता है), शुभभाव होवे तो पुण्य बाँधता है। वह क्रिया के कारण से नहीं, जड़ की क्रिया से नहीं, परिणाम से (बाँधता है)। और उस काल में शुभाशुभ परिणामरहित चैतन्यस्वभाव भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप का उपयोग करे, उस शुद्ध उपयोग से कर्म खिरते हैं। कर्म निर्जरित होते हैं, बन्ध नहीं होता। उनमें दो बन्ध (करते हैं), यह निर्जरा करता है। यह पद्धति है। काया की क्रिया से कुछ

नहीं होता। पुण्य भी नहीं, पाप भी नहीं और धर्म भी नहीं। पुण्य-पाप और धर्म इसके परिणाम से होता है, भाव से। समझ में आया?

इसलिए ऐसे कहा है कि बाह्य क्रियाकर्म से तो कुछ मोक्ष होता नहीं है, शुद्ध उपयोग होने पर मोक्ष होता है। लो! आत्मा... पहला तो सम्यग्दर्शन होने पर... शुद्ध उपयोग में सम्यग्दर्शन होता है। शुद्ध आत्मा आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण शुद्ध पवित्र, ऐसा अन्दर उपयोग जमे, तब उसे वस्तु की सच्ची प्रतीति होती है। पश्चात् भी जब-जब शुद्ध उपयोग हो और जितनी शुद्ध परिणति हो, उतनी निर्जरा (होती है)। बाकी शुभ-अशुभभाव हो तो बन्ध का कारण है। क्रिया बन्ध का कारण नहीं। द्रव्य का स्वभाव बन्ध का कारण नहीं। द्रव्य का शुद्ध उपयोग बन्ध का कारण नहीं। शुभाशुभ परिणाम बन्ध का कारण है। समझ में आया?

इसलिए दर्शन-ज्ञान उपयोगों का विकार मेटकर... देखो! क्या कहते हैं? श्रद्धा का विकार मिथ्यात्व छोड़कर, ज्ञान का विकार अज्ञान छोड़कर, चारित्र का विकार शुभाशुभ परिणाम छोड़कर। तीनों ले लिये। दर्शन-ज्ञान उपयोग का विकार मिटाकर **शुद्ध ज्ञानचेतना का अभ्यास करना...** शुभ-अशुभभाव तो कर्मचेतना है। उससे तो बन्ध होता है। शुद्ध ज्ञानचेतना। देखा! दर्शन का विकार बताकर अर्थात् मिथ्यात्व हुआ, ज्ञान का विकार अज्ञान। पर का लक्ष्य छोड़कर, उपयोग अर्थात् शुद्ध उपयोग में विकार मिटे तो शुद्धोपयोग हो। शुभाशुभ परिणाम मिटे तो शुद्ध उपयोग हो। शुद्ध उपयोग में से विकार मिटे तो शुद्धोपयोग धर्म का कारण हो।

दर्शन, ज्ञान उपयोगों का विकार मेटकर... आहा! भाषा देखों ने कैसी की है! **शुद्ध ज्ञानचेतना का अभ्यास करना...** आत्मा चैतन्यस्वभाव... आज तो ... ऐसी बात हुई। निरालम्ब की बात कही। व्यवहारवाला करे तो निर्जरा हो, ऐसा यहाँ नहीं कहा। होवे अवश्य व्यवहार। समझ में आया? पंच महाव्रतादि के विकल्प हों सही। परन्तु वह तो पुण्यबन्ध का कारण है। दर्शन में से विकार मिटाकर अर्थात् मिथ्यात्वभाव छोड़कर, ज्ञान में से अज्ञान मिटाकर (अर्थात्) पर का अकेला लक्ष्य है, उसे छोड़कर, स्व की प्रतीति और स्व का लक्ष्य करना, उपयोग में शुभाशुभभाव छोड़कर शुद्ध उपयोग करना, यह चारित्र है। उसकी व्याख्या की। उपयोग में से शुभाशुभ विकार मिटाने को उस उपयोग को

चारित्र कहते हैं। व्याख्या कठिन। लोग ऐसा बाहर से मानकर बैठे हैं न। अन्दर भगवान सच्चिदानन्द प्रभु है, उसकी श्रद्धा करने से मिथ्यात्व का विकार मिटे, उसका ज्ञान करने से पर का अकेला लक्ष्य अनादि का है, वह अज्ञान मिटता है और उसमें स्थिर होने से शुभाशुभ (नाश होते हैं)। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मेटकर शुद्ध ज्ञानचेतना का अभ्यास करना मोक्ष का उपाय है। यह मोक्ष का उपाय है। आहाहा!

गाथा-१००

आगे इसी अर्थ को फिर विशेषरूप से कहते हैं –

जदि पढदि बहु सुदाणि य जदि काहिदि बहुविहं च चारित्तं।
तं बालसुदं चरणं हवेइ अप्पस्स विवरीदं।।१००।।

यदि पठति बहुश्रुतानि च यदि करिष्यति बहुविधं च चारित्रं।
तत् बालश्रुतं चरणं भवति आत्मनः विपरीतम्।।१००।।

हो आत्म से विपरीत यदि पढ़ता बहुत श्रुत यदि करे।
बहु विविध चारित्र पर सभी हैं बाल-श्रुत-चारित्र वे।।१००।।

अर्थ – जो आत्मस्वभाव से विपरीत बाह्य बहुत शास्त्रों को पढ़ेगा और बहुत प्रकार के चारित्र का आचरण करेगा तो वह सब ही बालश्रुत और बालचारित्र होगा। आत्मस्वभाव से विपरीत शास्त्र का पढ़ना और चारित्र का आचरण करना, ये सब ही बालश्रुत व बालचारित्र हैं, अज्ञानी की क्रिया है, क्योंकि ग्यारह अंग और नव पूर्व तक तो अभव्यजीव भी पढ़ता है और बाह्य मूलगुणरूप चारित्र भी पालता है तो भी मोक्ष के योग्य नहीं है, इस प्रकार जानना चाहिए।।१००।।

गाथा-१०० पर प्रवचन

आगे इसी अर्थ को फिर विशेषरूप से कहते हैं :- इसे ही अधिक दृढ़ करते हैं।

जदि पढदि बहु सुदाणि य जदि काहिदि बहुविहं च चारित्तं।
तं बालसुदं चरणं हवेइ अप्पस्स विवरीदं।।१००।।

अर्थ :- जो आत्मस्वभाव से विपरीत... भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द के स्वभावस्वरूप प्रभु आत्मा, उसके स्वभाव से विपरीत **बाह्य बहुत शास्त्रों को पढ़ेगा...** ग्यारह अंग और... समझ में आया? नौ पूर्व। उसमें दस पूर्व है। टीका में दस पूर्व है। टीका में लिखा है। नौ पूर्व लेना। उन्होंने दस पूर्व लिखा है। दस पूर्व हो तो सम्यग्दृष्टि हो जाये। यहाँ नौ पूर्व लिखा है, यह बराबर है। ग्यारह अंग और नौ पूर्व का ज्ञान अभव्य को भी होता है। इससे आत्मा का कल्याण नहीं है। **आत्मस्वभाव से विपरीत बाह्य बहुत शास्त्रों को पढ़ेगा...**

मुमुक्षु : संस्कृत में दस पूर्व लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, लिखा है। अभी कहा न। नौ पूर्व। दस पूर्व के अन्दर।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे भी, तथापि वह मिथ्यात्व है। दस पूर्व पूरे हों, वह समकिती को ही होते हैं, ऐसा आता है। उसमें दस लिखे हैं, तथापि अंग पूर्व और नौ पूर्व लिखे हैं। उसमें दस लिखा है।

शास्त्रों को पढ़ेगा और बहुत प्रकार के चारित्र का आचरण करेगा... चारित्र अर्थात् व्यवहारक्रिया। व्रत की, अपवास की, वह चारित्र। **तो वह सब ही बालश्रुत और बालचारित्र होगा।** वह मूर्खता से भरपूर ज्ञान और मूर्खता से भरपूर चारित्र। टीका में आया है। मूर्ख, ऐसा शब्द अन्दर पड़ा है। है पण्डितजी?

मुमुक्षु : मूर्ख, शास्त्र में लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखा है। मूर्ख। बाल तो मूर्ख है। यह तो जरा स्पष्टीकरण किया।

यह तो समयसार में आता है। बालव्रत और बालतप। पुण्य-पाप अधिकार में। मूर्खता से भरपूर तप।

मुमुक्षु : अज्ञानी की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी की बात है। आहाहा!

सब ही बालश्रुत... इतना-इतना शास्त्र पढ़े-सुने परन्तु आत्मस्वभाव का भान नहीं, उन सबको बालश्रुत कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? **बहुत प्रकार के चारित्र का आचरण करेगा...** चारित्र अर्थात् यह व्रत, नियम, हों! व्रत पाले, नियम पाले, रस का त्याग करे, दूध-खाँड खाये नहीं। ऐसी सब क्रिया पाले। **वह सब ही बालश्रुत और बालचारित्र होगा। आत्मस्वभाव से विपरीत शास्त्र का पढ़ना और चारित्र का आचरण करना, ये सब ही बालश्रुत व बालचारित्र हैं, अज्ञानी की क्रिया है,...** वह अज्ञानी की क्रिया है। **क्योंकि ग्यारह अंग और नव पूर्व तक तो अभव्यजीव भी पढ़ता है,...**

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नौ पूर्व होते हैं, नौ पूर्व होते हैं। नौ पूर्व का आता है। उसमें है न, देखो न।

मुमुक्षु : ग्यारह अंग और नौ पूर्व....

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर है न। अभव्य को भी यह होता है। भव्य को नौ पूर्व और अभव्य को ग्यारह अंग, ऐसा आता है कहीं। खबर है। परन्तु यहाँ तो स्पष्ट है।

मुमुक्षु : दस पूर्व...

पूज्य गुरुदेवश्री : दस पूर्व होवे तो समकिती होता है, ऐसा शास्त्र में आता है। दस पूर्व अर्थात् पूरा .... ऐसी बात है। श्वेताम्बर में तो आता है। उसमें भी आता है। इतना याद न हो सब किस जगह आता है यह। बाकी यहाँ तो लिखा है, स्पष्ट नौ पूर्व अभव्य को।.... नहीं होता? अभव्य को विभंगज्ञान (होता है)। सात द्वीप, सात समुद्र देखे। उसमें क्या हुआ? परद्रव्य देखे उसमें आत्मा का भान नहीं। मिथ्यादृष्टि अभव्य। विभंग अज्ञान सात द्वीप और सात समुद्र अन्दर देखे। परन्तु है मिथ्यात्व। अभव्य को विभंगज्ञान होता है, वह

तो जब होने का काल हो, तब होता है न! अभी तो साधारण... ठिकाना नहीं, वहाँ अभव्य को... शास्त्र में आता है न। ... आवे न।

बाह्य मूलगुणरूप चारित्र भी पालता है... देखो! इतना ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़े, बाह्य मूलगुणरूप चारित्र अर्थात् व्रत, नियम पालन करे अभव्य, **तो भी मोक्ष के योग्य नहीं है,...** मोक्ष अधिकार है न? भगवान आत्मा अपने द्रव्य को स्पर्श किये बिना जितनी सब परद्रव्य को स्पर्श की क्रिया (करे), वह सब बन्ध का कारण है। वह ग्यारह अंग और नौ पूर्व का पठन भी बन्ध का कारण है। समझ में आया?

एक बार कहा था, मोक्षमार्गप्रकाशक का। ज्ञान के क्षयोपशम का अंश है, वह स्वभाव अंश है। आता है न भाई? वह तो दूसरी बात करते हैं। उघाड़ है, वह बन्ध का कारण नहीं होता, इतनी बात है। उघाड़ है, वह परलक्ष्यी है अर्थात् साथ में राग है, इसलिए बन्ध का कारण है। उसे राग साथ में ही होता है। बाहर का उघाड़ है, उसे राग साथ ही होता है। ऐसा। वह तो उघाड़ का अंश-क्षयोपशम है, वह बन्ध का कारण नहीं है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उदय बन्ध का कारण है। उसके साथ राग है। बाह्य ज्ञान में साथ में राग ही है। व्यवहार शास्त्र का ज्ञान, उसमें साथ में राग ही है। व्यवहार देव-गुरु की श्रद्धा, वह राग ही है। और पंच महाव्रत के परिणाम, वे भी राग है। तीनों बन्ध का कारण हैं।

यहाँ आचार्य कहते हैं, **बाह्य मूलगुणरूप चारित्र भी पालता है...** अभव्य। भावपाहुड़ में है। '**केवलिजिणपण्णत्तं एयादसअंग सयलसुयणाणं। पढिओ अभव्वसेणो...**' ऐसा पाठ है। ५२ गाथा है। भावपाहुड़। भावपाहुड़ की ५२ गाथा। ५० और २। यहाँ मूल पाठ में '**एयादसअंग सयलसुयणाणं**' ऐसा। ग्यारह अंग और सकल श्रुतज्ञान। उसे भी सकल श्रुतज्ञान कहा। और नीचे '**चउदसपुव्वाइं सयलसुयणाणं**' ऐसा कहा है। संस्कृत टीका में। नीचे है, नीचे है न ५२ गाथा में। '**पढ़िओ अभव्वसेणो ण भावसवणत्तणं पत्तो॥**' .... ग्यारह अंग हों, उसे सर्व श्रुतज्ञान कहा जाता है, तथापि आत्मा की दृष्टि नहीं है, स्वस्वभाव का अनुभव नहीं है, वह सब बालश्रुत और बालव्रत कहा जाता है। **इस प्रकार जानना चाहिए।** लो! (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१०१-१०२

आगे कहते हैं कि ऐसा साधु मोक्ष पाता है –

वेरग्गपरो साहू परदव्वपरम्मुहो य जो होदि।
संसारसुहविरत्तो सगसुद्धसुहेसु अणुरत्तो ।।१०१।।
गुणगणविहूसियंगो हेयोपादेयणिच्छिदो साहू।
झाणज्झयणे सुरदो सो पावइ उत्तमं ठाणं ।।१०२।।

वैराग्यपरः साधुः परद्रव्यपराङ्मुखश्च यः भवति।
संसारसुखविरक्तः स्वकशुद्धसुखेषु अनुरक्तः ।।१०१।।
गुणगणविभूषितांगः हेयोपादेयनिश्चितः साधुः।
ध्यानाध्ययने सुरतः सः प्राप्नोति उत्तमं स्थानम् ।।१०२।।

है साधु जो वैराग्य-तत्पर पराङ्मुख पर-द्रव्य से।
संसार-सौख्य-विरक्त अपने सिद्ध-सुख अनुरक्त है।।१०१।।
गुण-गण-विभूषित अंग हेयादेय निश्चितवान हो।
ध्यानाध्ययन में रत वही पाता परम स्थान को।।१०२।।

अर्थ – ऐसा साधु उत्तम स्थान रूप मोक्ष की प्राप्ति करता है अर्थात् जो साधु वैराग्य में तत्पर हो संसार-देह भोगों से पहिले विरक्त होकर मुनि हुआ, उसी भावनायुक्त हो, परद्रव्य से पराङ्मुख हो, जैसे वैराग्य हुआ, वैसे ही परद्रव्य का त्याग कर उससे पराङ्मुख रहे, संसार संबन्धी इन्द्रियों के द्वारा विषयों से सुख-सा होता है, उससे विरक्त हो, अपने आत्मीक शुद्ध अर्थात् कषायों के क्षोभ से रहित निराकुल, शान्तभावरूप ज्ञानानन्द में अनुरक्त हो, लीन हो, बारंबार उसी की भावना रहे।

जिसका आत्मप्रदेशरूप अंग गुण के गण से विभूषित हो, जो मूलगुण उत्तरगुणों से आत्मा को अलंकृत-शोभायमान किये हो, जिसके हेय उपादेय तत्त्व का निश्चय हो, निज आत्मद्रव्य तो उपादेय है और ऐसा जिसके निश्चय हो कि अन्य परद्रव्य के निमित्त

से हुए अपने विकारभाव ये सब हेय हैं। साधु होकर आत्मा के स्वभाव के साधने में भलीभांति तत्पर हो, धर्म–शुक्लध्यान और अध्यात्मशास्त्रों को पढ़कर ज्ञान की भावना में तत्पर हो, सुरत हो, भलेप्रकार लीन हो। ऐसा साधु उत्तमस्थान लोकशिखर पर सिद्धक्षेत्र तथा मिथ्यात्व आदि चौदह गुणस्थानों से परे शुद्धस्वभावरूप मोक्षस्थान को पाता है।

भावार्थ **– मोक्ष के साधने के ये उपाय हैं, अन्य कुछ नहीं है।।१०१–१०२।।**

प्रवचन-९९, गाथा-१०१ से १०३, रविवार, भाद्र कृष्ण १२, दिनांक २७-०९-१९७०

गाथा १०१ और १०२। **आगे कहते हैं कि ऐसा साधु मोक्ष पाता है :-** है न उपोद्घात? यहाँ सम्यग्दर्शनसहित पहला श्रावक होता है, यह बात पहली आ गयी। आत्मा का द्रव्यस्वभाव, आनन्दस्वभाव, ज्ञानस्वभाव को पकड़कर अनुभव में प्रतीति करे, उसे सम्यग्दर्शन (कहते हैं और) वह श्रावक का पहला कर्तव्य है। इसके बिना वह श्रावक नहीं हो सकता। और उसके बाद आगे की बात चलती है। उसे साधुपना अंगीकार करे, तब चारित्र अन्दर स्वरूप की रमणता उग्र हो, तब वह मोक्ष को प्राप्त करने के योग्य होता है। अकेले सम्यग्दर्शन से कहीं मोक्ष नहीं मिलता। यह कहते हैं, देखो! ऐसा साधु मोक्ष पाता है।

वेरग्गपरो साहू परदव्वपरम्मुहो य जो होदि।
संसारसुहविरत्तो सगसुद्धसुहेसु अणुरत्तो।।१०१।।
गुणगणविहूसियंगो हेयोपादेयणिच्छिदो साहू।
झाणज्झयणे सुरदो सो पावइ उत्तमं ठाणं।।१०२।।

अर्थ :- ऐसा साधु उत्तम स्थान जो मोक्ष... सिद्धक्षेत्र। उत्तम स्थान के दो प्रकार करेंगे। एक लोकशिखर के ऊपर सिद्धक्षेत्र और शुद्ध स्वभावरूप स्थान अपना। समझ में आया? है न? '**वेरग्गपरो साहू**' मिथ्यात्व आदि चौदह गुणस्थान के पार। जैसे सिद्धपना चौदह राजू ऊपर सिद्ध है, वैसे भाव में चौदह गुणस्थान के ऊपर शुद्ध स्वभाव पर सिद्धक्षेत्र स्थान को पावे। ऐसा शुद्ध स्वभावरूप स्थान, उसे पावे। समझ में आया? क्षेत्र में लोक के ऊपर और भाव में शुद्धस्वभाव की पूर्ण प्राप्ति, ऐसा जो उत्तम स्थान, उसे सम्यग्दृष्टि श्रावक

होने के पश्चात् साधु होकर चारित्र अंगीकार किया, उसके पश्चात् ऐसी दशा उसकी होती है तो वह मोक्ष को पाता है। अन्तिम गाथायें हैं न ? छह गाथायें (बाकी) है इस मोक्षपाहुड़ की। कैसा होगा ?

साधु वैराग्य में तत्पर हो... आत्मा के अनुभव की दृष्टि सम्यग्दर्शन हो, तदुपरान्त स्वरूप में स्थिरता हो, उसके साथ उसे **संसार-देह-भोगों से पहिले विरक्त होकर...** संसार शब्द से उदयभाव, भोग—उसका अनुभव और देह, इन तीनों से अन्तर में जो विरक्त हो। समझ में आया ? **संसार-देह-भोगों से पहिले विरक्त होकर...** पहले विरक्त हो। **मुनि हुआ उसी भावना युक्त हो,...** आत्मा आनन्दस्वरूप की भावना में साधु हुआ तो उस समय भी उसकी वह भावना चालू रहना चाहिए। आनन्दस्वरूप आत्मा की भावना निरन्तर चालू रहना चाहिए। ऐसा साधु मोक्ष के आनन्द को शुद्ध स्वभाव को प्राप्त करता है। कहो, समझ में आया इसमें ?

और, **परद्रव्य से पराङ्मुख हो,...** स्वद्रव्य में भावनायुक्त हो और परद्रव्य से पराङ्मुख हो। अर्थात् क्या कहा ? अपना आनन्द ज्ञायकभाव परिपूर्ण, उसमें भावना अर्थात् एकाग्रता हो, परद्रव्य से पराङ्मुख नास्ति से बात की। रागादि विकल्प से वह विमुख होता है। स्वभाव की परिपूर्णता के सन्मुख होता है, विभाव से वह विमुख होता है। समझ में आया ? यहाँ तो यह सिद्ध करना है न ? मोक्ष की साक्षात् कारणदशा कैसी होती है। अधिकार चलते-चलते १०० गाथायें हो गयीं। यह तो १०१-१०२ गाथा है।

ऐसा भगवान आत्मा द्रव्यस्वभाव अनुभव में, ज्ञान में, प्रतीति में जिसने पहले लिया है, वह जीव जब सम्यक्त्वसहित स्वरूप की रमणता का चारित्र अंगीकार करता है, तब उसे स्वभाव की भावना होती है। पुण्य और विकल्प की भावना होती नहीं।

मुमुक्षु : अज्ञानी को ऐसी भावना...

पूज्य गुरुदेवश्री : होती नहीं। अज्ञानी को किसकी भावना हो ? भाव भासित हुए बिना भाव के ओर की भावना कहाँ से होगी ?

मुमुक्षु : सुना....

पूज्य गुरुदेवश्री : सुना-बुना नहीं। प्रवीणभाई ! सुना, ऐसा नहीं। अन्दर में भावभासन

होना चाहिए। वीतरागमूर्ति जिनस्वरूप आत्मा है, अकषाय (स्वभाव है)। समझ में आया? उसकी मोक्षमार्ग की पद्धति यह है।

परद्रव्य से पराङ्मुख हो,... मुनि हुआ उसी भावना युक्त हो,... ऐसा। जो आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, ऐसी जो दृष्टि में, ज्ञान में आया था, ऐसा भाव, उसे विशेष स्थिरता द्वारा चारित्र कहा और उसकी वह भावना उसे निरन्तर चालू रहे कि जिससे उसे परद्रव्य से पराङ्मुखपना वर्ते। आहाहा! समझ में आया? मार्ग अलौकिक अचिन्त्य मार्ग है। ऐसा का ऐसा सहजता से मिल जाये, ऐसा वह नहीं है।

मुमुक्षु : इसीलिए तो मुनि हो जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि भी किसे कहना? मुनि हो जाते हैं। लो! अनुभव आत्मा का भान हुआ हो, वह आत्मा को साधने के लिये मुनि होता है। परन्तु आत्मा कैसा है, यह भान बिना साधना किसे?

मुमुक्षु : साधु हुए उसे अनुभव होता ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे होता ही है अनुभव। परन्तु साधु हुआ हो उसे न? बाहर से नग्न होकर पाँच महाव्रत लिये, वह साधु हो गया?

मुमुक्षु : बाहर में तो ऐसा दिखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर में ऐसा दिखता है। तुम्हारे जैसे अन्दर सेठिया पड़े और सबके साथ लाल-पाल करे। ऐई! ऐसा यहाँ वीतरागमार्ग में नहीं चलता। ऐसा कहते हैं।

वस्तु जो आत्मभगवान पूर्ण प्रभु, इसके बाद की गाथा में यह लेंगे। समझ में आया? तीर्थंकरों को भी वन्दनीय आत्मा है। तीर्थंकर भी जिसकी—आत्मा की स्तुति करते हैं। इन्द्रों को जगत नमता है और इन्द्र जिसे नमते हैं, ऐसा भगवान तेरा आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण शान्ति और आनन्द से भरपूर है। आहाहा! ऐसे वस्तु के स्वभाव के भाव को अन्तर में भासे, ज्ञान में आये बिना, उसके ओर की भावना किस प्रकार होगी? समझ में आया? इसलिए पहले सम्यग्दर्शन, श्रावक को पहले सम्यग्दर्शन प्रगट करना, यह बात आ गयी। समझ में आया? पहले में पहला श्रावक का कर्तव्य वस्तु चैतन्यबिम्ब परमात्मा स्वयं (है), उसके सन्मुख होकर उसका सम्यग्दर्शन करना। विभाव से विमुख

होकर, स्वभाव में सन्मुख होकर। इतनी बात तो सम्यग्दर्शन में भी होती है। यहाँ तो अब चारित्र की बात है। स्वरूप में स्थिरता और जो अस्थिरता का राग था, उससे विमुखता। समझ में आया? बात तो यह है। समझ में आया?

कोई कहे कि समकिती के भोग भी निर्जरा का हेतु है, इसलिए उस भोग में रहने से निर्जरा हो जाती होगी? ऐसा नहीं है। समझ में आया? आत्मा का ज्ञान हुआ, इसलिए निर्जरा भोग का हेतु शास्त्र में कहा है। भोग का हेतु (अर्थात्) भोग है, वह निर्जरा का कारण है? वह तो राग है। हेतु का अर्थ क्या? उसकी दृष्टि सम्यक् चैतन्य आनन्दधाम में पड़ी है। दृष्टि की प्रधानता आनन्द में पड़ी है। उसकी अधिकता-विशेषता गिनकर, उसे अल्प बन्ध होता है, उसे न गिनकर, बहुत निर्जरा होती है, ऐसा कहने में आता है। परन्तु वह भोग का भाव निर्जरा है? तब तो फिर चारित्र लेना, वह कुछ रहता नहीं। उसे भोग में निर्जरा हो जाये। ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह यहाँ कहते हैं कि भाई! तुझे कहा है कि भोग की निर्जरा। परन्तु प्रभु! ऐसा किसलिए कहा है?

जहाँ दृष्टि वस्तु का स्वभाव, ज्ञायकभाव, आनन्दभाव, अविकारीभाव, परमात्मभाव, स्वभावभाव, शुद्धभाव के ऊपर जहाँ दृष्टि पड़ी है, उसके अनुभव के कारण, भोग का भाव भी जहाँ काम विशेष नहीं करता परन्तु दृष्टि का विषय काम अधिक करता है, ऐसा बतलाना है। परन्तु अब तो कहते हैं कि यदि चारित्र लेना हो तो भोग में रहा नहीं जायेगा। समझ में आया? स्वरूप में... आता है न उसमें? राग-द्वेष निवृत्ति के लिये साधु चारित्र ग्रहण करे। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में आता है।

मुमुक्षु : करम प्रतिपद्यते।

पूज्य गुरुदेवश्री : करम प्रतिपद्यते। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन में भान तो हुआ कि राग-द्वेष मैं नहीं, विकल्प मैं कुछ नहीं। परन्तु अभी आसक्ति के राग-द्वेष वर्तते हैं। उन्हें स्वभाव की स्थिरता द्वारा उन्हें छोड़कर उनसे विमुख होकर स्वभाव की भावना, परमानन्द का पिण्ड आत्मा चैतन्यप्रभु का स्वाद लेने में उग्ररूप से अन्दर जाये, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जिसके आनन्द के समक्ष पूरी दुनिया का रस फीका पड़ जाये। इन्द्र के इन्द्रासन सड़े हुए तिनके जैसे (लगे)। तिनका समझते हो?

कूड़ा। कचरे का ढ़ेर होता है न ? तिनका नहीं।... ढ़ेर नहीं होता ? क्या कहा जाता है ? गारा नहीं, यह उकरडो। उकरडो नहीं कहते ? कचरे में सूखा गोबर और तिनके पड़े हों न कचरे में। क्या कहलाता है ? कूड़े का ढ़ेर। कचरे का ढ़ेर। वह बात है। तिनका-फिनका की बात नहीं। कचरे का बड़ा ढ़ेर। सड़ा-सड़ा हो।

मुमुक्षु : कचरे का ढ़ेर ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब कचरे का ढ़ेर है। इन्द्र के इन्द्रासन कचरे का ढ़ेर। विष्टा समान मानता है। आहाहा! आता है या नहीं यह ? 'चक्रवर्ती की सम्पदा इन्द्र सरीखा भोग, कागवीटसम मानत है सम्यग्दृष्टि लोग।' परन्तु अभी आसक्ति है, तब तक चारित्र नहीं है। देवीलालजी! यहाँ इष्ट ही गिनना। अकेला सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, इसलिए उसे मोक्ष हो जाये, ऐसा नहीं है। उसे स्वरूप का चारित्र वीतरागी दशा प्रगट करनी पड़ेगी। आत्मा के आनन्द में लीनता का झूला झूलते हुए। समझ में आया ? यह कहते हैं, देखो!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : आसक्ति है और राग है। संसार में इतना राग है। नहीं तो कैसे रहा ? स्त्री-कुटुम्ब के प्रेम में क्यों रहा ? राग है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो दृष्टि की अपेक्षा से। सम्यग्दर्शन की अपेक्षा से ... परन्तु आसक्ति है या नहीं ? स्त्री, कुटुम्ब, परिवार में राग की वृत्ति उठती है या नहीं ? वह राग बन्ध का कारण है। समझ में आया ? यहाँ तो वीतरागमार्ग है, भाई! उसमें कुछ पोल नहीं चलती।

वैरागी कहा, 'भरत' चक्रवर्ती को। आया या नहीं ? घर में वैरागी। परन्तु वैरागी हुए हों, उसे वीतरागता घर में हो जायेगी ? नहीं हुआ। अन्दर वीतराग होकर चारित्र अंगीकार किया है। दो घड़ी उन्होंने भी चारित्र अंगीकार किया है। नौ-नौ कोटि से सब छूट गया है। तब ध्यान में अन्दर चारित्र प्रगट हुआ, तब ध्यान जमा, तब केवलज्ञान हुआ। ऐसा का ऐसा वस्त्र और स्त्री-पुत्र में बैठे-बैठे ध्यान हुआ और केवलज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : काँच भुवन में...

पूज्य गुरुदेवश्री : काँच भुवन में भले हो। थे आत्मा भवन में। वह तो स्थान हो काँच भवन। परन्तु अन्दर से नव कोटि से सब छूट गया है। मन, वचन से, काया से, करना, कराना, अनुमोदना, परिग्रह छूटा, तब ध्यान हुआ, तब चारित्र हुआ है। समझ में आया? मार्ग ऐसा है, भाई! उसे कम, अधिक, विपरीत नहीं किया जाता। जैसी है, वैसी वस्तुस्थिति रहेगी। आहाहा!

मुमुक्षु : ... परिग्रह है। यहाँ कहाँ परिग्रह...

पूज्य गुरुदेवश्री : परिग्रह है। अन्दर ममता है या नहीं अभी श्रावक को? ममता को परिग्रह कहते हैं।

मुमुक्षु : मूर्च्छा परिग्रह।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूर्च्छा परिग्रह है। पंचम गुणस्थान में मूर्च्छा नहीं अभी? रौद्रध्यान होता है, आर्तध्यान होता है। व्यापार-धन्धे की आसक्ति है या नहीं? व्यापार-धन्धा नहीं कर सकते, परन्तु आसक्ति है या नहीं? रुचि नहीं। उसमें रुचि नहीं। रुचि तो सब सम्यग्दर्शन होने पर उड़ गयी। भोग में सुख है, धन्धे में सुख है, यह रुचि तो सब उड़ गयी है। परन्तु आसक्ति रही है, तब तक उसे चारित्र नहीं है। समझ में आया? वह चारित्र कहीं बाहर से वस्त्र बदलकर नग्न हो, इसलिए चारित्र आ जाये, ऐसा भी नहीं है। अन्तर का भगवान आत्मा अपने में लीन होकर वीतरागता प्रगट करे, अर्थात् स्वसन्मुख की भावना हो, उसे परद्रव्य की परान्मुखता होती है। समझ में आया?

जैसे वैराग्य हुआ वैसे ही परद्रव्य का त्यागकर... देखो! वैराग्य हुआ। परद्रव्य का त्याग अर्थात् विकल्प को छोड़ दे। समझ में आया? **उससे पराङ्मुख रहे,...** चारित्र की व्याख्या है न यहाँ तो? सम्यग्दर्शन अनुभवसहित परद्रव्य से पराङ्मुख और स्वद्रव्य से सन्मुख। यह तो अस्ति-नास्ति से कथन है। **अपने आत्मिक शुद्ध अर्थात् कषायों के क्षोभ से रहित निराकुल, शान्तभावरूप ज्ञानानन्द में...** पाठ में ऐसा है न? **'स्वकशुद्धसुखेषु' 'स्वकशुद्धसुखेषु अनुरक्तः'** समझ में आया? संसार में सम्यग्दृष्टि होने पर भी आसक्ति का भाव होता है। वह आसक्ति छूटकर सहज सुख में लीन है। आनन्द के धाम में भगवान आत्मा लीन है। आहाहा! उसे चारित्र कहा जाता है। चारित्र अर्थात् चरना; चरना अर्थात्

रमना। आनन्द की मौज अन्दर माँडे, उसे चारित्र कहते हैं। भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु में रमे-लीन हो, तब आसक्ति से विमुख हो जाये और उतनी तीव्रता रस में आत्मा में एकाग्रता हो।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आसक्ति है न अभी... अस्थिरता कहो या आसक्ति कहो। वह छूटकर स्थिर हो, तब अप्रमत्तदशा होती है। पंच महाव्रत के परिणाम भी विकल्प है, बन्ध का कारण है। छठवें गुणस्थान में। उन्हें छोड़कर स्वद्रव्य के सन्मुख और पर से विमुख, ऐसी अन्तर धारा जमे तब श्रेणी चढ़कर केवलज्ञान होता है। यहाँ ऐसा कहते हैं। बात तो जैसी है, वैसी रहेगी। समझ में आया? देखो!

अपने आत्मीक शुद्ध... क्या? **कषायों के क्षोभ से रहित...** क्या? **निराकुल, शान्तभावरूप ज्ञानानन्द में अनुरक्त हो,...**

मुमुक्षु : अनुरक्त। रक्त अर्थात् राग।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग कहाँ आया? अनुरक्त अर्थात् लीनता। आनन्द में लीनता अर्थात् अनुसरकर रक्त अर्थात् लीन रहना। आनन्द को अनुसरकर भगवान आनन्द का धाम अविनाशी आनन्द का सागर, उसे अनुसरकर लीन रहना, उसका नाम अनुरक्त है। आहाहा! ऐसी दशा हुए बिना मुक्ति नहीं होती। समझ में आया?

देखो! अनुरक्त का अर्थ किया। अनुरक्त हो अर्थात् लीन हो। लो! है न? आहाहा! **बारम्बार उसी की भावना रहे।** भगवान आत्मा आनन्दस्वभाव, ऐसी दृष्टि में सम्यग्दर्शन में स्वाद आया है। इससे उसकी भावना बारम्बार आनन्द में वर्तती है। कहो, समझ में आया? भावना शब्द से कल्पना-चिन्तवना नहीं; एकाग्रता।

मुमुक्षु : आगे भावना आयी थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : आयी थी न। यह बारम्बार एकाग्रता अर्थात् भावना। यह चिन्तवन शब्द पड़ा था, परन्तु आगे शुद्ध उपयोग में रमे, ऐसा कहा था न? बारम्बार चिन्तवन शब्द आया था। खबर है न। परन्तु चिन्तवन का अर्थ एकाग्रता और भावना, वह चिन्तवन है।

मुमुक्षु : एकाग्रता वीतरागता।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह वीतरागता कहो या एकाग्रगता, उसका नाम शुद्धभाव। उसका नाम भावना। चिन्तवना विकल्प का क्या (काम है) यहाँ? विकल्प तो अपराध है, राग है, दोष है। आहाहा!

मुमुक्षु : निर्विकल्प तो मुनि रहते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि रहते हैं सातवें में। यहाँ सातवें की बात लेनी है न? निर्विकल्प आनन्द में। भले फिर च्युत हो जाये परन्तु धारा तो वहाँ है। उपयोग वहाँ जमना चाहिए, ऐसी भावना है। समझ में आया? भावना शब्द से (आशय) एकाग्रता।

मुमुक्षु : शुभभाव में भी...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वह नहीं। शुद्धभावना वह तो आत्मा में एकाग्रता है। ... शब्द से सुखी हूँ।

मुमुक्षु : भाव से भावना भावीये भागवत...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह भावना अर्थात् भाव में एकाग्रता, वह भावना। ऐसे कल्पना, वह भावना नहीं।

मुमुक्षु : कल्पना कहाँ है, निश्चित किया है कि आत्मा तो त्रिकाल शुद्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध है परन्तु शुद्ध में रमे तब चारित्र हो न? इसके बिना चारित्र कहाँ से आता था? कपना से करे कि ऐसा शुद्ध है... शुद्ध है... शुद्ध है... यह तो दृष्टि हुई।

मुमुक्षु : दृष्टि तो हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दृष्टि तो हुई तो पहली विकल्परहित दृष्टि हुई, तथापि अभी अचारित्र का, आसक्ति का विकल्प उठता है, तब तक चारित्र नहीं है। ऐसी बात है। वीतरागमार्ग है, यह तो केवली का तत्त्व है। इसमें कहीं किसी के घर की बात करे तो चले, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ... इसके बिना होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके बिना नहीं। भावना भावे ... केवलज्ञान का अर्थ क्या

हुआ? स्वरूप में एकाग्रता की लीनता से भावना से केवलज्ञान होता है। विकल्प से केवलज्ञान होगा?

मुमुक्षु : सोलहकारणभावना भाय...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तीर्थंकरगोत्र तो राग है। उसमें क्या आया? यह तो आया नहीं? तीर्थंकरगोत्र में तो उसे दो भव करना पड़ेंगे।

मुमुक्षु : वह भावना तो हुई न।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावना अर्थात् राग की, वह राग की भावना। वीतराग की भावना है? दर्शनविशुद्धि आदि विकल्प है। ग्यारह प्रतिमा विकल्प है। षोडशकारणभावना तो विकल्प आस्रव है।

मुमुक्षु : शून्य हो जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे रहित अन्दर स्थिर हो। शून्य अर्थात् कि रागरहित अन्दर अस्तित्व में स्थिर हो। अकेला शून्य हो जाये, यह तुम्हारे कहते हैं, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प परन्तु स्वरूप के अस्तित्व में जोर में गया, तब विकल्प से शून्य हुआ। ऐसे पैर उठाकर रखा, तब नीचे से उठा। सीढ़ियों में पैर रखा, तब नीचे से उठा। पैर उठाया परन्तु वापस रखा नहीं तो नीचे गिरेगा। इसी प्रकार अस्तित्व भगवान महाप्रभु पूर्णानन्द का नाथ आत्मा में दृष्टि स्थापित करके उसमें स्थिर हुआ, (वहाँ) विकल्प से उठ गया। समझ में आया? विधि और पद्धति यह है। दूसरी शिथिल-बिथिल करना चाहे तो हो, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : लीनता और भावना में...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह तो लीनता का नाम एक ही है। कहा न? अनुरक्त, लीनता एक ही भाव है। भावना शब्द से भाव में एकाग्रता, वह भावना। आत्मस्वभाव आनन्दमूर्ति ऐसा भाव, उसमें एकाग्रता, वह भावना।

बारम्बार उसी की भावना रहे। किसकी? आनन्द की। और **जिसका आत्म-**

प्रदेशरूप अंग गुण से विभूषित हो,... आहाहा! देखा! पाठ है न? '**गुणगणविहूसियंगो**' देखो! क्या कहा? **जिसका आत्मप्रदेशरूप अंग गुण से विभूषित हो,...** आत्मा के प्रदेश से शुद्ध हो गया अन्दर। वह उसका अंग है। शुद्ध वीतरागी दशा। आत्मा का क्षेत्र जो असंख्य प्रदेश है, उसमें लीनता की परिणति शुद्ध असंख्य प्रदेश में हो गयी। वह आत्मा का अंग, वह शुद्ध हुआ। समझ में आया? आहाहा! एक गाथा में कितना रखा है!

जिसका आत्मप्रदेशरूप अंग गुण से विभूषित हो, जो मूलगुण, उत्तरगुणों से आत्मा को अलंकृत-शोभायमान किये हो,... पश्चात् विकल्प भी अट्ठाईस मूलगुण के और उत्तरगुण के उसे होते हैं। उससे **शोभायमान किये हो,...** देखो! व्यवहार से भी ऐसा उसे विकल्प होता है, छठवें हो तब तक। **जिसके हेय-उपादेय तत्त्व का निश्चय हो,...** देखो! तथापि पंच महाव्रतादि के विकल्प आते हैं, परन्तु हेय हैं और स्वरूप के आनन्द में रहना, वह उपादेय है। यह स्पष्टीकरण स्वयं करेंगे।

निज आत्मद्रव्य तो उपादेय है... लो! आहाहा! भगवान आत्मा अकेला परमानन्दस्वरूप, वह अपना आत्मा। देखी, वापस भाषा! पर का परमात्मा का (आत्मा) नहीं। **निज आत्मद्रव्य तो उपादेय है...** देखो! इसमें राग उपादेय नहीं, निमित्त उपादेय नहीं, पर्याय उपादेय नहीं। पर्याय एक समय की नहीं, निज आत्मद्रव्य। भगवान पूर्णानन्दस्वरूप अपना द्रव्यस्वभाव, वस्तुस्वभाव, वह उपादेय-अंगीकार करनेयोग्य है। समझ में आया? **अन्य परद्रव्य के निमित्त से हुए अपने विकारभाव ये सब हेय हैं।** कर्म के निमित्त से हुए अपने विकारभाव शुभ-अशुभ विकल्प **सब हेय हैं।** समझ में आया? ऐसी दृष्टि तो सम्यग्दर्शन होने पर हुई, परन्तु स्वरूप में रमने से निज आत्मा का अंगीकार करके स्थिर हुआ, रागादि सब हेय छूट गये। सम्यग्दर्शन में रागादि हेय हैं, परन्तु रागादि रहे थे। यहाँ चारित्र में राग हेय अर्थात् रहे नहीं, राग छूट गया, स्वरूप की स्थिरता हुई। समझ में आया? अलौकिक मार्ग है, भाई! दुनिया के साथ कुछ मिलान खाये, ऐसा कहीं नहीं है। वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर अन्दर परमात्मा स्वयं निजानन्द भगवान में भान होकर लीन होना, भान होकर लीन होना। भान बिना लीन किसमें होगा?

मुमुक्षु : आपके निकट सुन लिया न।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनने से क्या हुआ? भगवान के निकट दिव्यध्वनि अनन्त बार सुनी, समवसरण में अनन्त बार गया। अपने द्रव्यस्वभाव को अंगीकार किये बिना इसे कोई लाभ नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : योग्यता से...

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं की योग्यता नहीं थी। भगवान की दिव्यध्वनि (सुनी), समवसरण में जाये प्रभु... नारायण (कहकर) आरती उतारी। कल्पवृक्ष के फूल, मणिरत्न का दीपक, हीरा का थाल।

मुमुक्षु : चमत्कार देखकर भूल गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : चमत्कार देखकर भूला नहीं। अपने द्रव्य को भूला, इसलिए भूल गया। ऐसा कि ऐसा देखा न, इसलिए भूल गया।... ऐसा कि ऐसा महान देखकर... उसमें धूल में भी कहीं नहीं। भगवान हो या समवसरण। यह भगवान कहाँ वहाँ है? इसीलिए तो यहाँ कहते हैं कि **निज आत्मद्रव्य तो उपादेय है...** परद्रव्य भगवान भी आदरणीय है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : आनन्द आया, वह उपादेय है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु आनन्द आया, वह उपादेय का अर्थ ही यह हुआ कि अन्दर एकाग्र हुआ, तब उपादेय कहने में आया। उपादेय अर्थात् यह आदरणीय है, ऐसा विकल्प है? अन्दर स्वरूप की एकाग्रता हुई और अन्तर उपादेयपने का परिणमन हुआ है। यह द्रव्यस्वभाव ऐसा पर्याय में भान हुआ, तब वह उपादेय कहने में आया। उपादेय अर्थात् यह द्रव्य उपादेय और विकल्प हेय है, वह तो विकल्प है। वस्तु जो है त्रिकाल ज्ञायकभाव आनन्द प्रभु। शरीर, वाणी भिन्न, पुण्य-पाप के विकल्प-राग से भी भिन्न भगवान है, ऐसा निज आत्मद्रव्य उपादेय अर्थात् उसमें लीनता हुई, तब उसे उपादेय कहने में आता है।

मुमुक्षु : आनन्द...

पूज्य गुरुदेवश्री : कीमत तो है द्रव्य की। परन्तु द्रव्य की कीमत होने पर पर्याय में आनन्द आता है।

मुमुक्षु : आनन्द आवे तब...

पूज्य गुरुदेवश्री : आनन्द आवे तब खबर पड़े परन्तु पड़ी किसकी ? पर्याय की या द्रव्य की ? क्या कहा समझ में आया ? यह तो अपने समयसार की छठवीं गाथा में नहीं आया ? छठवीं में ? '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो। एवं भणंति सुद्धं**' पर से लक्ष्य छूटकर स्वद्रव्य की सेवा की और शुद्धता प्रगट हुई, तब उसे यह शुद्ध है, ऐसा निर्णय हुआ। यह द्रव्य शुद्ध है, ऐसा निर्णय हुआ। समझ में आया ?

मुमुक्षु : उपादेय भी लीनता ?

पूज्य गुरुदेवश्री : लीनता। उपादेय का अर्थ ही लीनता है। यह द्रव्य उपादेय अर्थात् एकाग्र होना। यह उपादेय आदरणीय है, ऐसा विकल्प आदरणीय कहाँ हुआ ? स्वद्रव्य में एकाग्रता। तो एकाग्रता द्वारा स्वद्रव्य उपादेय कहने में आया। ऐसा है, भाई ! आहाहा !

मुमुक्षु : मन की एकाग्रता...

पूज्य गुरुदेवश्री : मन की एकाग्रता नहीं चलती। ऐसी एकाग्रता तो अनादि से की। आहाहा !

मुमुक्षु : मनजनित एकाग्रता तो कहलाये न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : मनजनित एकाग्रता कहलाये भले परन्तु मन छूट गया, तब एकाग्रता होती है। रहस्यपूर्ण चिट्ठी में आता है। मनजनित भी कहलाता है। अरूपी है न इसलिए। इसका अर्थ यह है। लक्ष्य वहाँ से छूटकर, पर्याय से लक्ष्य छूट गया था। वहाँ से छूटकर अतीन्द्रिय स्थिर हुआ, (उसे) मनजनित कहा गया है।

मुमुक्षु : मन पावै विश्राम।

पूज्य गुरुदेवश्री : मन पावै विश्राम।

मुमुक्षु : अनुरक्तता, लीनता, भावना और उपादेय सब एकार्थ में है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब एकार्थ में है।

मुमुक्षु : उस समय कषाय क्या काम करे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कषाय कषाय का काम करे, राग बन्ध का काम करे।

मुमुक्षु : अनुभव...

पूज्य गुरुदेवश्री : अनुभव... राग बन्ध का काम करे। अनुभव के समय क्या राग नहीं? तीन कषाय का राग है। राग का अर्थ... बन्ध का कारण है। समकित को भी अनुभव के समय निर्विकल्प आनन्द के भान में भी तीन कषाय का राग है। वह बन्ध करता है, इतनी मलिनता खड़ी करता है। देखो!

निज आत्मद्रव्य तो उपादेय है... आहाहा! **ऐसा जिसके निश्चय हो कि अन्य परद्रव्य के निमित्त से हुए अपने विकारभाव ये सब हेय हैं। साधु होकर आत्मा के स्वभाव के साधने में भलीभाँति तत्पर हो,...** लिया है न? '**झाणज्झयणे सुरदो**' दूसरी गाथा का तीसरा पद। अपना स्वभाव साधना में तत्पर हो। विशेष-विशेष उसकी बात है। **धर्म-शुक्लध्यान और अध्यात्मशास्त्रों को पढ़कर ज्ञान की भावना में तत्पर हो,...** अध्यात्म शास्त्र पढ़ा परन्तु उसमें कहने का शास्त्र का सार यह ज्ञानस्वरूप भगवान में लीन होना, वह उसका कहना है अध्यात्म का। समझ में आया? अकेला ज्ञान-जानपना करना, ऐसा नहीं। समझ में आया? बहुत डाला है। पाठ में है न, देखो न! '**झाणज्झयणे सुरदो**' **शुक्लध्यान और अध्यात्मशास्त्रों को पढ़कर ज्ञान की भावना में तत्पर हो,...** अर्थात् '**सुरदो**' **सुरत हो, भले प्रकार लीन हो।** लो! **ऐसा साधु उत्तमस्थान जो लोकशिखर पर सिद्धक्षेत्र तथा मिथ्यात्व आदि चौदह गुणस्थानों से परे शुद्धस्वभावरूप मोक्षस्थान को पाता है।** लो! ऐसे साधु उत्तर शुद्धस्वभावरूपी मोक्ष और लोक के शिखर पर मोक्ष। यह काम। समझ में आया?

भावार्थ :- मोक्ष के साधने के ये उपाय हैं, अन्य कुछ नहीं है। कोई दूसरा उपाय है नहीं। आहाहा!

गाथा-१०३

आगे आचार्य कहते हैं कि सर्व से उत्तम पदार्थ शुद्ध आत्मा है, वह इस देह में ही रह रहा है, उसको जानो –

णविएहिं जं णविज्जइ झाइज्जइ झाइएहिं अणवरयं।
थुव्वंतेहिं थुणिज्जइ देहत्थं किं पि तं मुणह।।१०३।।

नतैः यत् नम्यते ध्यायते ध्यातैः अनवरतम्।
स्तूयमानैः स्तूयते देहस्थं किमपि तत् जानीत।।१०३।।

नमनीय का नमनीय जो ध्येयों का भी सुध्येय है।
स्तुत्य का स्तुत्य है देहस्थ कुछ जानो उसे।।१०३।।

अर्थ – हे भव्यजीवो ! तुम इस देह में स्थित ऐसा कुछ क्यों है, क्या है, उसे जानो, वह लोक में नमस्कार करने योग्य इन्द्रादि हैं, उनसे तो नमस्कार करनेयोग्य, ध्यान करनेयोग्य है और स्तुति करनेयोग्य जो तीर्थंकरादि हैं, उनसे भी स्तुति करनेयोग्य है, ऐसा कुछ है, वह इस देह ही में स्थित है, उसको यथार्थ जानो।

भावार्थ – शुद्ध परमात्मा है, वह यद्यपि कर्म से आच्छादित है तो भी भेदज्ञानी इस देह ही में स्थित का ही ध्यान करके तीर्थंकरादि भी मोक्ष प्राप्त करते हैं, इसलिए ऐसा कहा है कि लोक में नमने योग्य तो इंद्रादिक हैं और ध्यान करनेयोग्य तीर्थंकरादि हैं तथा स्तुति करनेयोग्य तीर्थंकरादिक हैं, वे भी जिसको नमस्कार करते हैं, जिसका ध्यान करते हैं, स्तुति करते हैं, ऐसा कुछ वचन के अगोचर भेदज्ञानियों के अनुभवगोचर परमात्मा वस्तु है, उसका स्वरूप जानो उसको नमस्कार करो, उसका ध्यान करो, बाहर किसलिए ढूंढते हो, इस प्रकार उपदेश है।।१०३।।

गाथा-१०३ पर प्रवचन

आगे आचार्य कहते हैं कि सर्व से उत्तम पदार्थ शुद्ध आत्मा है,... देह में भगवान

विराजता है पूरा आत्मा। इस जगत में उत्तम में उत्तम पदार्थ तेरा तेरे लिये है। आहाहा! **वह इस देह में ही रह रहा है...** भगवान विराजता है। आहाहा!

णविएहिं जं णविज्जइ झाइज्जइ झाइएहिं अणवरयं।
थुव्वंतेहिं थुणिज्जइ देहत्थं किं पि तं मुणह।।१०३।।

'**अणवरयं**' निरन्तर।

अर्थ :- हे भव्यजीवो! तुम इस देह में स्थित ऐसा कुछ क्यों है,... '**देहत्थं किं पि तं मुणहि**' ऐसा है न?... है न? कोई भी ऐसा तत्त्व अन्दर में भगवान विराजता है, ऐसा कहते हैं। **कुछ क्या है उसे जानो,...** क्या है वह चीज़, उसे जानो। देह में भगवान विराजता है। आहाहा! तेरा भगवान तेरे देह में विराजता है। यह व्यवहार किया। भगवान, भगवान में है। क्या करे परन्तु वाणी तो... आहाहा!

देह में तिष्ठता। लो। वह तो जड़ है। अपना स्वभाव परमानन्दमूर्ति ज्ञायकभाव का दल, सत् का सत्त्व, भगवान सत्, उसका पूरा सत्त्व, उस परमात्मस्वरूप, वह तू है। देह से भिन्न तेरा स्वरूप, वहाँ देह में विराजता है। देह से भिन्न देह में विराजता है। देह से भिन्न। आहाहा! कैसा है? **वह लोक में नमस्कार करनेयोग्य इन्द्रादिक हैं...** इन्द्र को भी जो लोक नमे। ओहोहो! इन्द्र! महाविभूति ऋद्धिवाला। **उनसे तो नमस्कार करनेयोग्य,...** इन्द्रादि से भी नमन करनेयोग्य वह आत्मा है। आहाहा! समझ में आया? दुनिया इन्द्रों को, चक्रवर्ती को, बड़े प्रमुख राजाओं को, सेठियाओं को नमे। खम्मा अन्नदाता... खम्मा अन्नदाता। कहते हैं कि ऐसे जीव भी आत्मा को नमते हैं। नमन करनेयोग्य जीवों को भी नमन करनेयोग्य आत्मा है। आहाहा! प्रभु अन्दर सच्चिदानन्द परमात्मा स्वयं ही परमात्मा है। आहाहा!

उनसे तो नमस्कार करनेयोग्य, ध्यान करनेयोग्य है और स्तुति करनेयोग्य... ध्यान करनेयोग्य तीर्थंकर आत्मा को। और स्तुति करनेयोग्य भी तीर्थंकर गणधर, वे भी **तीर्थंकरादि हैं उनसे भी स्तुति करनेयोग्य है,...** तीर्थंकर भी छद्मस्थ हों, तब तक। उन्हें भी स्तुति करनेयोग्य और ध्यान करनेयोग्य उन तीर्थंकरों को भी आत्मा है। समझ में आया? **ऐसा कुछ है...** ऐसा भगवान कुछ है अर्थात् कुछ पदार्थ है, ऐसा कहते हैं। **वह इस देह ही में स्थित है...** आहाहा! सब विकल्प-फिकल्प छोड़कर, कल्पना छोड़कर भगवान

चिदानन्द अन्दर है, उसका ध्यान कर, उसकी स्तुति कर। वह स्तुति करने के योग्य है, नमन करने के योग्य, ध्यान करने के ध्येय विषय करने के योग्य, ध्यान में विषय करनेयोग्य है। आहाहा! भगवान तीर्थंकर भी कहते हैं ध्यान का विषय करनेयोग्य तेरे लिये नहीं। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : वही उत्तम...

पूज्य गुरुदेवश्री : वही उत्तम पदार्थ है। आहाहा! इष्टदेव तेरा परमात्मा तेरे लिये उत्तम है। कहो, समझ में आया?

ऐसा कुछ है... कहाँ वस्तु है, ऐसा कहते हैं। अवस्तु नहीं। महा पदार्थ है बड़ा। ज्ञान की दशा में ज्ञेय करनेयोग्य, ज्ञात होनेयोग्य वह आत्मा पदार्थ है। वह जाननेयोग्य भगवान आत्मा अन्दर है। उसे जान, उसका ध्यान कर, उसकी स्तुति कर और उसे वन्दन कर। आहाहा! समझ में आया? उसे नमन कर। देखो! अन्तिम गाथा है न मोक्षपाहुड़ की, (इसलिए) सार... सार... सार लिया है।

भावार्थ। देखो! ऐसा है न? '**किं पि तं मुणहि**' ऐसा है न? उसे जान न! अन्दर भगवान पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्द द्रव्यस्वभाव के सन्मुख कभी लक्ष्य किया नहीं। उसमें है। अर्थ में अन्तिम शब्द है। इसमें अन्तर होगा। अर्थ में, अर्थ में।

मुमुक्षु : लक्ष्य नहीं किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। लक्ष्य नहीं किया। उसके सामने कभी तूने लक्ष्य किया ही नहीं। ऐसा कहते हैं। बाहर के लक्ष्य किये—पर्याय का और विकल्प का और निमित्त का। वह वस्तु क्या है, उसके सामने तो कभी लक्ष्य किया नहीं। बाहर में खोजने लगा। यहाँ पालीताणा से मिलेगा, सम्मेदशिखर से मिलेगा।

मुमुक्षु : यहाँ बैठकर ध्यान करे, तब तो मिले न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ बैठकर अन्दर में ध्यान करे तो मिले। शोभालालजी! कठिन बात है। भगवान के समवसरण में बैठा हो तो भी अन्दर का ध्यान करे तो आत्मा मिले। किसी बाहर के समवसरण के ध्यान से आत्मा मिले, ऐसा नहीं है। ऐसा भगवान कहते हैं। मेरे सामने देखने से तेरा आत्मा तुझे प्राप्त हो, ऐसा नहीं है। देवीलालजी! भगवान ऐसा

कहते हैं। छोड़ दे मेरी ओर का लक्ष्य। महापरमात्मा, मुझे भी जाननेवाला तेरा आत्मा, उसे तू जान, तब मुझे जाना, ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। आहाहा! ऐसा भगवान फरमाते हैं। समझ में आया? त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव की वाणी में परमात्मा ऐसा कहते हैं। सीमन्धर भगवान के पास गये थे न! आठ दिन रहे थे। भगवान ऐसा कहते हैं कि हमारे सामने देखना रहने दे। हमारा पठन पढ़ना छोड़ दे। यह तेरा स्वभाव, उसका पठन कर। आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान को करुणा...

पूज्य गुरुदेवश्री : अकषाय करुणा है। वहाँ विकल्प कहाँ है? समझ में आया? आहाहा! अकषाय करुणा। करुणा दूसरी कहाँ है? करुणा कहाँ है? आदिपुराण में कहा है। 'करुणा हम पावत है तुमकी, यह बात रही सुगुरुगम की', ऐसा श्रीमद् लिखते हैं। 'करुण हम पावत', करुणा का अर्थ? भगवान! तेरे ज्ञान में मेरा आत्मा ऐसा भासित हुआ, ऐसा मुझे भासित हो तब आपकी करुणा हुई, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? 'पल में प्रगटे मुख आगल है।' आता है न?

भावार्थ :- शुद्ध परमात्मा है, वह यद्यपि कर्म से आच्छादित है,... भले कर्म का ढ़ेर अन्दर ऐसे जड़ में जड़रूप से पड़ा है, कहते हैं। परन्तु भगवान चैतन्य अग्नि तो अन्दर भिन्न पड़ी है, ऐसा कहते हैं। अग्नि के ऊपर राख है तो राख राख में है, अग्नि में राख नहीं।

मुमुक्षु : आच्छादित...

पूज्य गुरुदेवश्री : आच्छादित का अर्थ राख ऊपर पड़ी है, अग्नि दिखती नहीं। परन्तु अग्नि तो राग से भिन्न ही है। समझ में आया? राख की नजर करनेवाले को चैतन्य अग्नि दिखाई नहीं देती, इसी प्रकार जड़ की नजर करनेवाले को चैतन्य दिखाई नहीं देता, इसलिए आच्छादित है, ऐसा कहा गया है। वह आच्छादित नहीं। समझ में आया? आहाहा! अपनी भूल के कारण आच्छादित है। परन्तु वस्तु में तो भूल है नहीं। समझ में आया? यह बहुत अच्छी गाथा है।

अहो! आच्छतो। क्या कहा? राख में अग्नि दबी हुई दिखती है तो भी वह अग्नि तो राख से भिन्न है। वैसे कर्म के जड़ के अन्दर संयोग में भिन्न चीज़ भगवान दिखता है, मानो कि कर्म से ढँका हुआ हो। **तो भी भेदज्ञानी इस देह ही में स्थित का ही ध्यान**

करके... देखो! परन्तु राग और कर्म से भिन्न करके स्वभाव का ध्यान करके आत्मा प्रगट हो जाता है। तिल में तेल है। उसमें तीन दृष्टान्त दिये हैं। तिल में तेल है, दूध में घी है, पश्चात्? लकड़ी में अग्नि। देह में भगवान स्थिर है। स्थिर शब्द प्रयोग किया है। समझ में आया? जैसे लकड़ी में अग्नि। यह अरण की लकड़ी होती है न? अरणिया लकड़ी। अन्दर अग्नि है। तिल में तेल है। पत्थर में चकमक-अग्नि होती है न, वैसे देह में भगवान चैतन्य अग्नि भिन्न है। समझ में आया? दूध में घी, तिल में तेल, लकड़ी में अग्नि, पत्थर में चकमक में अग्नि जैसे भिन्न चीज़ है, ऐसा भगवान आत्मा भले शरीर ऐसे ऊपर ढँका हुआ दिखाई दे, भगवान तो चैतन्यस्वरूप भेदज्ञानी को... देखो! शरीर से भिन्न दृष्टि करनेवाले को **देह ही में स्थित का ही ध्यान करके...** भले शरीर में रहा आत्मा और उसी और उसी में आत्मा का ध्यान करता है। क्या कहा?

देह ही में स्थित का ही ध्यान करके... देह में रहा भगवान आत्मा, परन्तु उसे भिन्न करके उसका ध्यान करता है। गजब बात, भाई! आहाहा! भेदज्ञान से तिजोरी खोल डाली है। पर से भिन्न, भिन्न भगवान निराला चैतन्य, निरालम्बी किसी के आधार से रहा नहीं। किसी विकल्प के भाव से रहा नहीं। किसी क्षेत्र के आधार से नहीं, विकल्प के भाव से नहीं। ऐसा भिन्न तत्त्व, देह में रहे ऐसे तत्त्व को, देह में रहा होने पर भी देह से भिन्न भेदज्ञानी अनुभव करते हैं। आहाहा! समझ में आया? लो, यह तो अभी पहली सम्यग्दर्शन की बात आयी। जो करने का यह, उसका कभी लक्ष्य किया नहीं। लक्ष्य भी किया नहीं। कहो, भीखाभाई! ऐसे का ऐसा बाहर में और बाहर में रस चिपकाये रखा, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? भगवान के सामने या शास्त्र के सामने या मूर्ति के सामने।

मुमुक्षु : समवसरण में भी...

पूज्य गुरुदेवश्री : समवसरण में सामने देखकर बैठा, वहाँ कुछ हो ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : वहाँ जाकर भूल जाता है...

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ भी भूल गया है। बाहर जाकर क्या? वहाँ पर के लक्ष्य में पड़ा, स्व को भूल गया है। आहाहा! यह भगवान। ... आहाहा! मानो मेरा कल्याण कर देंगे। कल्याण करनेवाला तो तेरा आत्मा अन्दर है। शोभालालजी! भारी कठिन काम। तीन

लोक के नाथ साक्षात् तीर्थंकर, वे भी आत्मा को कल्याण का कारण नहीं। कल्याण का कारण भगवान स्वयं है। आहाहा! गुरु स्वयं, देव स्वयं, धर्म स्वयं। जिसमें से शास्त्र निकले, वह आत्मा स्वयं पवित्रधाम, उसमें से शास्त्र निकले हैं। आहाहा! परन्तु बात यह क्या चैतन्यरत्न है? अकेली हीरा की खान है आत्मा। चैतन्य के अनन्त... अनन्त... अनन्त... गुण की हीरा की खान। आहाहा! यह बड़ा पर्वत-पहाड़। आहाहा! भिन्न करके देख तो सही। देख यह थोड़ा पृष्ठ उघाड़कर देख। ऊपर बहुत ... नहीं दिखता। आहाहा! यह! ऐई! पड़ उखाड़कर बताया देख यह देख हीरा का भाग।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बताते हैं, कौन बतावे?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उस पहाड़ में तो पत्थर है। वहाँ कहाँ? यह चैतन्य पहाड़ यह। आहाहा! अनन्त ज्ञान-दर्शन आदि ऐसे अनन्त गुण के रत्न से छलाछल ऐसा भरपूर भरा है। ऐसा भगवान पर्याय में भी नहीं आता। वह फिर राग में आवे और बाहर में आवे, ऐसा वह आत्मा नहीं है। समझ में आया? आहाहा! गजब आचार्य! देखो न, कितना भरा है! कुन्दकुन्दाचार्य की शैली साक्षात् भगवान को नीचे उतारते हैं। नीचे से ऐसा आड़ा गया है न आगे ऐसा। आगे कहाँ जाता है? कहते हैं।

तीर्थंकरादि भी मोक्ष प्राप्त करते हैं,... देखो! **देह ही में स्थित का ही ध्यान करके तीर्थंकरादि...** गणधर, बलदेव आदि पुरुष महाशलाका पुरुष। अन्दर का ध्यान, वस्तु सन्मुख का ध्यान, उसने भी स्वयं को ध्याया है। उस आत्मा को ध्याते हैं। ध्यान में लिया है, उसे धाता है—आनन्द को चूसते हैं, ऐसा कहते हैं। लो! आहाहा! **इसलिए ऐसा कहा है कि लोक में नमनेयोग्य तो इन्द्रादिक हैं और ध्यान करनेयोग्य तीर्थंकरादिक है तथा स्तुति करनेयोग्य तीर्थंकरादिक है, वे भी जिसको नमस्कार करते है,...** उसे ध्याते और उसकी स्तुति करते हैं। आहाहा! नवरंगभाई! ऐसा प्रभु तू अन्दर है, ऐसा कहते हैं। वस्तु है या नहीं पदार्थ? पदार्थ तत्त्व है तो तत्त्व में तो अनन्त-अनन्त चैतन्यरत्न आदि अनन्त शक्तियाँ पड़ी हैं। ऐसा भगवान आत्मा नमन करने के लिये यह आत्मा है। यह बाहर का

भगवान का नमन करना, वह तो विकल्प-राग है। समझ में आया? स्तुति करनेयोग्य तू देव। आता है न? कलश में आता है। देव। कलश में आता है। समवसरण में भगवान की स्तुति आदि करना, वह तो विकल्प है, राग है। परद्रव्य ... यह तेरा आत्मा स्तुति करनेयोग्य है। स्तुति शब्द से उसमें एकाग्र (होनेयोग्य है), ऐसा। विकल्प नहीं। उसके गुण गाने का अर्थ गुण में एकाग्र होना। उसका नाम गुण गाना कहलाता है। विकल्प का गाना गाये, कल आया था, बहुत आया था। सुना न?... करो। सेठ को रात्रि में सुनाया था। ... था न। रात्रि में सुनाया सबको। सुनो, देखो यह आया। लम्बा-लम्बा आया था। ... यह करो... यह करो... अरे! निवृत्त... अरे चारों ही बार ... प्रश्न पूछा उसका जवाब। वहाँ का वहाँ बैठा रहा। बेचारा उसे भावना हो। भावनावाला दूसरा कुछ देखे?

मुमुक्षु : आपका समय पास हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ... समय वहाँ पास होता होगा? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, नमन करनेयोग्य ऐसे इन्द्र भी आत्मा को नमे, तीर्थंकर स्तुति करने (योग्य) है, वह भी उसका ध्यान करे। **ऐसा कुछ वचन... स्तुति करते हैं ऐसा कुछ वचन के अगोचर भेदज्ञानियों के अनुभवगोचर परमात्मा वस्तु है,...** वस्तु है। आहाहा! द्रव्य पदार्थ है, तत्त्व है, स्वभावभाव वस्तु है, **उसका स्वरूप जानो,...** अन्तिम शब्द है न? '**तं मुणहि**' उसे जानो, उसे जानो। सब जानना छोड़कर उसे जानो, ऐसा कहते हैं। यह शास्त्र-बास्त्र जानना एक ओर रह गया, कहते हैं उसमें। उसे जान। यह (शास्त्र) जान तो भी अज्ञान है, बाकी कुछ ठिकाना नहीं। '**मुणहि**' शब्द पड़ा है न। '**देहत्थं किं पि तु मुणहि**' उसे जान।

उसका स्वरूप जानो, उसको नमस्कार करो, उसका ध्यान करो, बाहर किसलिए ढूँढ़ते हो,... सम्मेदशिखर जाओ तो मोक्ष होगा, सिद्धगिरि जाओ तो, सोनगढ़ जाओ तो होगा। मन्दिर में कहीं नहीं। कहते हैं मुफ्त का किसलिए खोजता है? समझ में आया? ऐई! भीखाभाई! यह तो नगद नारायण की बात है। **बाहर किसलिए ढूँढ़ते हो,...** उसमें ऐसा लिखा है अन्दर तूने लक्ष्य किया ही नहीं। अन्दर ऐसी वस्तु है, उसके ऊपर तूने कभी लक्ष्य भी नहीं किया। आहाहा! **इस प्रकार उपदेश है।** लो! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का (ऐसा उपदेश है)।   (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१०४

आगे आचार्य कहते हैं कि अरहन्तादिक पंच परमेष्ठी भी आत्मा में ही हैं, इसलिए आत्मा ही शरण है –

अरुहा सिद्धायरिया उज्झाया साहु पंच परमेट्ठी ।
ते वि हु चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं ।।१०४।।

अर्हन्तः सिद्धा आचार्या उपाध्यायाः साधवः पंच परमेष्ठिनः ।
ते अपि स्फुटं तिष्ठन्ति आत्मनि तस्मादात्मा स्फुटं मे शरणं ।।१०४।।

अरहंत सिद्धाचार्य अध्यापक श्रमण परमेष्ठी हैं।
पाँचों निजातम में अवस्थित शरण है आतम मुझे।।१०४।।

अर्थ – अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु – ये पाँच परमेष्ठी हैं, ये भी आत्मा में चेष्टारूप हैं, आत्मा की अवस्था हैं, इसलिए मेरे आत्मा का ही शरण है, इस प्रकार आचार्य ने अभेदनय प्रधान करके कहा है।

भावार्थ – ये पाँच पद आत्मा ही के हैं, जब यह आत्मा घातिकर्म का नाश करता है, तब अरहन्तपद होता है, वही आत्मा अघाति कर्मों का नाश कर निर्वाण को प्राप्त होता है, तब सिद्धपद कहलाता है, जब शिक्षा दीक्षा देनेवाला मुनि होता है, तब आचार्य कहलाता है, पठनपाठन में तत्पर मुनि होता है, तब उपाध्याय कहलाता है और जब रत्नत्रयस्वरूप मोक्षमार्ग को केवल साधता है, तब साधु कहलाता है, इस प्रकार पाँचों पद आत्मा ही में हैं। सो आचार्य विचार करते हैं कि जो इस देह में आत्मा स्थित है सो यद्यपि (स्वयं) कर्म आच्छादित है तो भी पाँचों पदों के योग्य है, इसी के शुद्धस्वरूप का ध्यान करना पाँचों पदों का ध्यान है, इसलिए मेरे इस आत्मा ही का शरण है – ऐसी भावना की है और पंच परमेष्ठी का ध्यानरूप अन्तमंगल बताया है।।१०४।।

प्रवचन-१००, गाथा-१०४ से १०५, सोमवार, भाद्र कृष्ण १३, दिनांक २८-०९-१९७०

मोक्षपाहुड़, १०३ गाथा हुई। १०४। **आगे आचार्य कहते हैं कि अरहन्तादिक पंच परमेष्ठी हैं, वे भी आत्मा में ही हैं...** मोक्षपाहुड़ की अन्तिम गाथा है न? पंच शरण है, अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, ये पाँचों ही पद मेरे आत्मा में ही है। समझ में आया? इसलिए मेरा आत्मा ही मुझे शरण है, ऐसा कहते हैं।

अरुहा सिद्धायरिया उज्झाया साहु पंच परमेट्ठी।
ते वि हु चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं।।१०४।।

देखो! यह अन्तिम गाथा है न? पहले तीन में यह कहा कि तीर्थंकर जो ध्यान करनेयोग्य है, उनका भी जो ध्यान करे, वह आत्मा तो यहाँ तेरे पास है। नमन करनेयोग्य है, ऐसे तीर्थंकर भी जिसे—आत्मा को नमते हैं, इन्द्रादि आत्मा को नमते हैं। स्तुति करनेयोग्य जीव जो उत्तम पुरुष हैं, वे भी अन्दर स्वरूप में नमते हैं। ओहो! भगवान आत्मा में पाँच परमेष्ठी स्थित हैं, कहते हैं। आत्मा का ध्यान करने से पंच परमेष्ठी का ध्यान होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अर्थ :- अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पंच परमेष्ठी हैं, ये भी आत्मा में ही चेष्टारूप हैं,... आत्मा की अवस्था है। आत्मा की शुद्ध परिणति है, यह पाँच। चेष्टारूप, ऐसा लिखा है। मूल तो चेष्टारूप आत्मा की अवस्था ... हुई है न? इसलिए कहते हैं, मुनि तिष्ठ है—अन्दर रहते हैं। चेष्टा तो उसमें भी है। ... उसमें भी है। उसमें भी आत्मा में चेष्टारूप, ऐसा आया है। नीचे ऐसा अर्थ लिखा है। चेष्टा अर्थात् अवस्था।

मुमुक्षु : आत्मा...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह चेष्टा तो पाठ है न। यह तो जरा इसका अर्थ किया। चेष्टा अर्थात् आत्मा की अवस्था है पाँचों ही, ऐसा। अरिहन्त भी आत्मा की अवस्था केवलज्ञानादि, सिद्ध भी पूर्ण निर्मल अवस्था, आचार्य-उपाध्याय भी अवस्था निर्मल। वही विकल्प और शरीर, उसे आचार्य, उपाध्याय नहीं गिना—ऐसा इसमें कहते हैं। समझ में आया? अरिहनत को भी समवसरण और चार अघातिकर्म बाकी रहे न, वे नहीं गिने। आत्मा की जो निर्मल

वीतरागी केवलज्ञान अवस्था, वह अरिहन्त। सिद्ध भी आत्मा की पूर्ण शुद्ध अवस्था, वह सिद्ध। आचार्य भी आत्मा की वीतरागी अवस्था, वह आचार्य। उपाध्याय भी वीतरागी ज्ञान की रमणता, वह (उपाध्याय)। साधु—तीन रत्नत्रय का साधक, वह भी अवस्था। उन सब अवस्थाओं का सागर संग्रहात्मक भगवान है। मुझे उनकी शरण लेना नहीं, ऐसा कहते हैं। आत्मा का शरण लेने से पाँचों का शरण आ जाता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अन्तिम गाथायें हैं न! देखो न कितनी आराधना और कितनी स्थिति है! एकदम पाँच परमेष्ठी को अपने में समाहित किया है। यहाँ इस आत्मा में है आत्मा में, बाहर कहीं वे नहीं हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा को ही भगवान कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा अरिहन्त है ही। आत्मा अरिहन्तस्वरूप होने की अवस्था के योग्य है। शक्तिरूप से अरिहन्त ही है। शक्ति से तो अरिहन्त है। शक्ति से सिद्ध है। शक्ति से आचार्य, उपाध्याय और वीतरागी पर्याय इस शक्ति से तो पाँचों ही पद आत्मा में ही है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में... यहाँ तो आत्मा में है, इसलिए आत्मा शरण है—ऐसा कहना है। समझ में आया?

ये भी आत्मा में ही चेष्टारूप हैं, आत्मा की अवस्था हैं,... ऐसा अर्थ किया। चेष्टा का अर्थ किया। **इसलिए मेरे आत्मा ही का शरण है,...** आहाहा! अब तो अन्तिम गाथा है न। पश्चात् आराधक की अन्तिम गाथा रखेंगे। आराधना अन्तिम गाथा में रखेंगे। पश्चात्... पूरा कर देंगे मोक्षपाहुड़। अहो! कहते हैं कि अरिहन्त सर्वज्ञ केवलज्ञानी परमात्मा, अरिहन्ता शरणं, ऐसा मांगलिक में आता है न? अरिहन्ता शरणं, सिद्धा शरणं, साहु शरणं। अरिहन्ता मंगलं, सिद्धा मंगलं, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा... परन्तु वह सब मेरे आत्मा में है, यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! मेरा भगवान आत्मा, उसका मैं ध्यान करूँ, तब इन पाँच का ध्यान उसमें आ जाता है, कहते हैं। इसलिए मुझे तो आत्मा शरण है, बाकी कोई शरण है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

आत्मा ही का शरण है, इस प्रकार आचार्य ने अभेदनय प्रधान करके कहा है। लो! यह पाँच परमेष्ठी वीतरागी पर्याय है पाँचों। थोड़ी भले अपूर्ण हो और पूर्ण, परन्तु है सब वीतरागी दशा। और ऐसी वीतरागी अनन्त दशा मेरे आत्मा में पड़ी है। और इसीलिए आत्मा का ध्यान करने से मुझे आत्मा शरण है और उसमें पाँचों पद का शरण, वह आत्मा के ध्यान में आ जाता है। इस प्रकार आ जाता है। बाहर से पाँचों पद का शरण लेने से विकल्प उठता है। समझ में आया? यह पाँचों पद की वीतरागीदशा का समूह भगवान आत्मा है। कैसी बात की है, देखो न! तीन में, चौथी और पाँचवीं, तीन गाथायें अन्तिम।

नमन योग्य इन्द्रादि जिसे, अन्तर में स्वभाव सन्मुख में ढलते हैं, झुकते हैं, ऐसा आत्मा। वन्दन और स्तुति करनेयोग्य, ध्यान करनेयोग्य गणधर आदि तीर्थंकर जब तक छद्मस्थ हों, वे भी जिसका ध्यान करते हैं—आत्मा का ध्यान करते हैं। समझ में आया? आत्मा महाप्रभु वीतरागी स्वभाव का रसकन्द, अकेला वीतरागभाव के स्वभाव का पिण्ड, उसे ध्येय ध्यान में विषय करने से, उसका आराधन करने से पाँचों ही पद का आराधन उसमें समाहित हो जाता है, ऐसा कहा। इसलिए मुझे तो आत्मा ही शरण है। अन्तिम ऐसा है न? मेरे आत्मा में पाँचों ही पद रहे हैं, इसलिए मेरा आत्मा मुझे शरण है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! विकल्प-फिकल्प निकाल डाला। पाँच परमेष्ठी का स्मरण करने से, याद करने से वह तो विकल्प उठता है। वह कहीं वस्तुस्थिति नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : एकदम आत्मा...

पूज्य गुरुदेवश्री : एकदम आत्मा पकड़े तो उसका नाम आत्मा कहा जाये, ऐसा कहते हैं। एकदम भूख लगी हो, तृषा लगी हो तो मौसम्बी का पानी गटक-गटक एकदम पीवे। कल सेठ को कहा नहीं था? बूँदी खायी होगी तो एक-एक बूँदी खायी होगी? सेठ भी बचाव करते थे न। धीरे... धीरे... धीरे... धीरे... फिर बूँदी का दृष्टान्त दिया सेठ को। बूँदी खाने की। यह हमारे भाई ने कहा, तपसी ने। इसलिए याद आया। बूँदी एक-एक खाते होंगे ऐसे? एकदम मुट्ठी उठाये ऐसे। बुकडो समझते हो?

मुमुक्षु : ऐसा ही यहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही यहाँ है, ऐसा कहते हैं। एकदम। आहाहा!

ऐसा भगवान आत्मा, ओहो! पाँचों परमेष्ठी अन्दर स्थित हैं। उन पाँच परमेष्ठी का रूप और स्वरूप तू है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! गजब बात! वस्तु की स्थिति ऐसी है, ऐसे यह बाह्य के न्याय देकर स्पष्ट करते हैं। पाँच पद तो वीतरागी पर्याय है न? वह कहीं अरिहन्त पद और समवसरण और वाणी, वह कहीं अरिहन्त पद नहीं है। हें! सिद्धपद अकेली वीतरागीदशा है, आचार्य भी तीन कषाय के अभावरूप वीतरागी परिणति, वह आचार्य है। विकल्प जो है, वह कहीं आचार्य नहीं; नग्नपना, वह कहीं आचार्य नहीं; दूसरों को शिक्षा-दीक्षा देने की क्रिया हो, वह आचार्यपना नहीं। आचार्य तो वीतरागी पर्याय, वह आचार्यपना है। आहाहा! समझ में आया? उपाध्याय भी वीतरागी अवस्था, वह उपाध्याय। साधु भी रत्नत्रय का साधकपना दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्विकल्प वीतराग पर्याय को साधते हैं। वे सभी पर्यायें मुझमें रही हुई हैं। यह पंच परमेष्ठी का पूरा सत्त्व का सत् सत्त्व मेरे आत्मा में है। आहाहा! मुझे नजर करनेयोग्य हो तो आत्मा है। मेरा निधान मेरे पास है, ऐसा कहते हैं। शोभालालजी! आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा...

मुमुक्षु : आचार्य, उपाध्याय, साधु तीन भेद तो वर्णन करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद कैसा वर्णन करना? वीतरागी पर्याय की ही यहाँ अभी बात है। पाँचों वीतरागी पर्याय है। बस इतना।

मुमुक्षु : ... होवे तो अन्तर पड़े। अन्दर तो सब एक साधे...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह वीतरागी पर्यायपना उसे यहाँ कहा। अरिहन्त भी वीतरागी पर्याय, सिद्ध भी वीतरागी पर्याय, आचार्य भी वीतरागी पर्याय। यह सब वीतरागी पर्यायें मेरे आत्मा में हैं।

मुमुक्षु : ... क्रिया की।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन सी क्रिया कैसी? धूल की क्रिया बाहर की? अन्तर ध्यान लगाना, वह क्रिया उसकी है। आहाहा! वृत्ति कहो, बहिर्मुख जो है, उसे अन्तर्मुख झुकाना कि मेरे आत्मा में ही सब है। परमेष्ठी की पाँचों पर्यायें मुझमें हैं, ऐसी अनन्त पर्यायें मुझमें हैं। भेद से यहाँ कुछ बात नहीं है। यह तो वस्तु अभेद से कहा न?

आचार्य ने अभेदनय प्रधान करके कहा है। यह सब मुझमें अभेदरूप से पड़ा है।

समझ में आया? आहाहा! मेरे आँख ऊँची करके बाहर देखना नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अन्तर भगवान पूर्णानन्द का नाथ पाँच परमेष्ठी की सब पर्यायों को संग्रहात्मक-संग्रह करके पड़ा है। यह पैसा संग्रह करके पड़ते हैं न यह? भगवानजीभाई! आहाहा! धूल भी शरण नहीं वहाँ, कहते हैं। आहाहा! मांगलिक चार। आता है न? अरिहन्ता मंगलं, सिद्धा (मंगलं)। वह कोई शरण नहीं। वह तो बाह्य पदार्थ है, कहते हैं। आहाहा! उसकी जो अवस्था वीतरागी है, निर्दोषदशा, आनन्ददशा, वह सब दशायें मुझमें हैं। मेरे आनन्दगुण में वे सभी दशायें हैं, चारित्रगुण की सभी वीतरागी पर्यायें उसमें हैं। आहाहा! समझ में आया? उसमें क्षायिक समकित आदि की पर्यायें, वे मेरे समकितगुण में हैं। इच्छा निरोधरूपी जो तप की उग्र पुरुषार्थ की दशा, वह भी मुझमें अन्दर में है। चारित्र के गुण में यह सब पड़ा है। वह मैं ही आत्मा ही मुझे शरण है। मुझे पाँच पद भी शरण नहीं। पाँच पद मुझमें समाहित हो गये। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : आत्मा गुरु का गुरु...

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु का गुरु आत्मा है। अपना गुरु, हों! दूसरे का गुरु कहाँ है यहाँ? यहाँ तो गुरु शब्द से उत्कृष्ट वीतरागीदशा जिसे प्रगट हुई, वह पंच परमेष्ठी गुरु। वह वीतरागी पर्याय का कन्द प्रभु आत्मा है। ऐसी अनन्त... अनन्त... अनन्त पर्यायें, वे मेरे गुण स्वभाव में पड़ी हैं, पाँचों परमेष्ठी मुझमें है। ऐसी प्रतीति करके ध्यान स्व का करना, ऐसा कहते हैं। ध्यान स्व का करना, पर का नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : करने में वेदन होता है उसका क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : वेदन होता है, उसकी जगह पुरुषार्थ नहीं इसलिए। कुछ बाहर में रुक गया है। बाहर में कुछ रुचि में रुका है। इसलिए उसे अन्तर रुचि में जाना नहीं होता। जाना नहीं होता।

मुमुक्षु : बात प्रिय लगती है...

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रिय लगती है, वह विकल्प से।

यह चैतन्यप्रभु पूर्ण अनन्त पाँच परमेष्ठी, ऐसी तो अनन्त पर्याय का संग्रह करके स्थित है भगवान। देखो न! सिद्ध की अनन्त पर्याय, अरिहन्त की अनन्त, भले जब तक

रहे उतनी निर्मल पर्याय। आचार्य की भी उतनी, पद में रहे उतनी पर्याय। उपाध्याय भी वह सब पर्यायें वीतरागी, निर्दोष, निष्कलंक ऐसी दशायें, वह आत्मपद, वह पाँच पद और वह पद की दशा मुझमें है। आहाहा! पहले तो विश्वास लाता है कि वह पद सब मुझमें है। इसलिए मेरा आत्मा मुझे शरण है। मुझे वहाँ ध्यान करके स्थिर होनेयोग्य है। बाकी कोई ध्यान करके स्थिर होनेयोग्य नहीं है। मेरे ध्यान का विषय कोई दूसरी चीज़ नहीं है। पाँच परमेष्ठी भी मेरे ध्यान का विषय नहीं, ऐसा कहते हैं। पाँच परमेष्ठी मेरे अन्दर में बैठे हैं, इसलिए ध्यान का विषय मैं हूँ। समझ में आया? आहाहा! गजब बात है! दिगम्बर मुनि और उसमें कुन्दकुन्दाचार्य की शैली। सर्वोत्कृष्ट! सर्वोत्कृष्ट!! सत्य को प्रसिद्ध करने के लिये ढ़िंढ़ोरा पीटकर प्रसिद्ध करते हैं। भगवान! तू ऐसा है न, नाथ! आहाहा! तेरे लिये शरण कौन? तेरे लिये तू शरण। समझ में आया? है न? '**तम्हा आदा हु मे सरणं**।' मेरा आत्मा मुझे शरण है।

मुमुक्षु : ... पूर्ण दशा में...

पूज्य गुरुदेवश्री : पूर्ण तो स्वभाव में सब अनन्त पर्यायें पूर्ण हैं, ऐसा कहते हैं। स्वभाव की बात है न? भले अपूर्ण पर्याय, परन्तु वीतरागी पर्याय है न? वीतरागी पर्याय का पिण्ड मुझमें है। मुझमें से प्रवाह आयेगा। या बाहर से आयेगा? सब पूर्ण है। सब पर्याय का पिण्ड का पूर्ण मैं हूँ। ऐसा। समझ में आया?

मरते हुए कहीं सब शरीर स्थिर न हो। रोग आवे। पानी-बानी पीने का समय हो नहीं, तृषा लगी हो, खड़ा नहीं रहा जा सके। साधु को खड़ा नहीं रहा जा सके। अब पानी बैठे-बैठे लिया जाये नहीं। तब उस समय... आहाहा! शरीर जीर्ण हो गया हो। वह कहीं झट छूटे, ऐसा नहीं है। तब उसने ध्यान में आत्मा लिया है। मेरा आत्मा मुझे शरण है। अभी कोई शरण है नहीं। पहले भी कोई शरण नहीं था। समझ में आया? देहस्थिति ऐसी निर्बल पड़ गयी। उल्टी हो, दस्त हो, शरीर हाथ रहे नहीं, खड़ा रहा जाये नहीं, शरीर काँपे। उस समय ऐसा मुनि कहते हैं... ओहोहो! मेरा भगवान मेरे पास पाँच परमेष्ठी से भरपूर है, वह मैं हूँ। कोई शरण है नहीं। वाणी बोलने की ताकत भी न हो कि मुझे कुछ नहीं, उसके लिये मुझे कुछ है नहीं। आहाहा! वे स्मरण करते हैं यह सब। समझ में आया?

भावार्थ :- ये पाँच पद आत्मा ही के हैं,... यह आत्मा ही के हैं। वह विकल्प जो पंच महाव्रत आदि है, वह आत्मा की अवस्था नहीं, वह आत्मा नहीं। वह वीतरागीदशा, वह आत्मा है। **ये पाँच पद आत्मा ही के हैं, जब यह आत्मा घातिकर्म का नाश करता है, तब अरहन्तपद होता है,...** अरिहन्तपद। **वही आत्मा अघातिकर्मों का नाशकर निर्वाण को प्राप्त होता है, तब सिद्धपद कहलाता है,...** आत्मा में सिद्धपद होता है न! वह कहीं बाहर से आता है ? ऐसा कहते हैं। आत्मा ही सिद्धपद को प्राप्त होता है, आत्मा ही अरिहन्तपद को प्राप्त होता है। वे सब पद अन्दर पड़े हैं। परिपूर्ण है, ऐसा कहते हैं।

जब शिक्षा-दीक्षा देनेवाला मुनि होता है, तब आचार्य कहलाता है,... यह सब उसकी वीतरागी पर्याय मुझमें है। **पठन-पाठन में तत्पर मुनि होता है, तब उपाध्याय कहलाता है,...** वह भी मुझमें है। मैं सब ज्ञान का सागर हूँ। वह उपाध्याय की दशा भी मुझमें पड़ी है। **और जब रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग को केवल साधता है, तब साधु कहलाता है,...** देखो! साधु की व्याख्या। सेठ! **जब रत्नत्रय...** निश्चय सम्यग्दर्शन स्व आश्रय का, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् स्वरूप में रमणता-चारित्र, यह मोक्षमार्ग। देखो! यह मोक्षमार्ग। **केवल साधता है...** उसे केवल साधता है। विकल्प-फिकल्प को मुनि साधते नहीं। आराधना में जरा निश्चय-व्यवहार डालेंगे। समझ में आया ? अर्थ में-अर्थ में।

यहाँ तो यह आत्मा मुनि, अपना भगवान आत्मा, उसका स्व का सम्यग्दर्शन, स्व का ज्ञान और स्व का आचरण, उस रत्नत्रय को साधे, वह साधु। निश्चयरत्नत्रय को साधनेवाला साधक, वह साधु। **इस प्रकार पाँचों पद आत्मा ही में है।** वे पाँचों पद आत्मा में हैं। समझ में आया ? पर्याय में हैं, ऐसा भी नहीं कहा। आत्मा में है, ऐसा कहा है। मेरा भगवान आत्मा, उसमें वे पाँचों पद रहे हैं। आहाहा! देखो न! यह गुणस्वभाव वर्णन किया। समझ में आया ? दृष्टि द्रव्य के ऊपर दे और उसे ध्यान में-लक्ष्य में लेकर ध्यान कर, पंच परमेष्ठी का ध्यान तुझे हो गया, जा! समझ में आया ? बाहर के भगवान को स्मरण करने की तुझे आवश्यकता नहीं। कितने ही मरते समय कहते हैं न, भगवान के पास जाना है, मुझे उठाकर भगवान के पास ले जाओ। भगवान वहाँ कहाँ भगवान है ? तेरा भगवान तो यहाँ है। मूर्ति भगवान दे देवे ऐसा है वहाँ ? दर्शन करने दो। भगवान के अन्तिम दर्शन करने दो। वह भगवान है या यह भगवान ? सेठ! अब अवसर आया और अब कहाँ... उठाकर

ले जाये फिर अर्थी में। भगवान के पास अन्तिम दर्शन कराओ, भाई के! किसके दर्शन करना है तुझे? ऐई!

मुमुक्षु : दर्शन करे तो आशीर्वाद तो मिल जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो! किसका आशीर्वाद? आशीर्वाद तो आत्मा दे। भगवान आत्मा के ऊपर दृष्टि देने से आशीर्वाद देता है। पर्याय में निर्मलता होती है।

मुमुक्षु : ... है तो माँगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा में है, वह माँग, कहते हैं। ऐसा। बाहर में कहा है तो माँगे? बाहर में तू कहाँ है? दूसरे आत्मा में तू कहाँ है तो दूसरे से माँगता है? यहाँ तो ऐसा है। समझ में आया?

जब रत्नत्रयस्वरूप मोक्षमार्ग को केवल साधता है... ऐसी भाषा क्यों ली? कि मुनि का पद दूसरा नहीं है। शिक्षा-दीक्षा देना, वह तो मुनि को होता नहीं। मुनि तो अपना स्वभाव शुद्ध आनन्दकन्द को साधे, बस। उन्हें उपदेश की प्रधानता नहीं, शिक्षा-दीक्षा की प्रधानता नहीं। वह तो आचार्य, उपाध्याय को होता है। समझ में आया? **केवल साधता है...** शुद्ध उपयोग की रमणता ही साधु करते हैं। समझ में आया? देखो! **रत्नत्रयस्वरूप...** तीन है न? उपयोग है। उपयोग अन्दर रमता है।

इस प्रकार पाँचों पद आत्मा ही में हैं। सो आचार्य विचार करते हैं कि जो इस देह में आत्मा स्थित है... आत्मा में है ये पाँचों और आत्मा स्वयं इस देह में भिन्न स्थित है। **सो यद्यपि (स्वयं) कर्म आच्छादित है...** भले कर्म का पटल भिन्न ऊपर पड़ा है। **पाँचों पदों के योग्य है,...** तो भी भगवान तो पाँचों पद को प्राप्त करने के योग्य है। समझ में आया? **इसी के शुद्धस्वरूप का ध्यान करना पाँचों पदों का ध्यान है,... इसी के शुद्धस्वरूप का ध्यान करना...** भगवान शुद्धस्वरूप अत्यन्त पवित्र, उसका ध्यान करने से पाँचों पद का ध्यान हो जाता है।

इसलिए मेरे इस आत्मा ही का शरण है... देते हैं न अन्त में शरण? अरिहन्ता शरणं। हमको अरिहन्त का शरण होओ। सिद्ध का शरण होओ। यह कहते हैं कि मैं अरिहन्त और सिद्ध हूँ। मेरी शरण मुझे होओ। भगवानजीभाई! ऐसी बातें हैं। अन्त में ऐसा

हो गया, बापू! यह अन्तिम स्थिति का वर्णन करते हैं। शरीर पड़ जायेगा, आहाहा! शूल (पीड़ा) चढ़ेगा। वह जड़ में। तेरा आत्मा तो उससे अत्यन्त भिन्न है और उसमें पाँचों पद बसे हुए-रहे हुए हैं। उसे छोड़कर भगवान का स्मरण करना, वह तुझे उचित नहीं है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! नजर गड़ाकर बाहर से समेटकर अन्दर में करनी है या बाहर में रखनी है? ऐसा कहते हैं। महा परमात्मा अन्दर स्थित है। ऐसा भगवान आत्मा वह मुझे दुःख के नाश करने के काल में यह आत्मा शरण है। समझ में आया?

ऐसी भावना की है... लो! ऐसी भावना—स्वरूप की एकाग्रता कुन्दकुन्दाचार्य ने बनायी है, करायी है। **और पंच परमेष्ठी का ध्यानरूप अन्तमंगल बताया है।** मोक्षपाहुड़ है न? अन्तमंगल का मांगलिक भी इस गाथा में किया है। पहली गाथा में मांगलिक था, बीच में और अन्त में मांगलिक (करते हैं)। पाँचों परमेष्ठी मुझमें है, वह मैं मंगल स्वरूप ही हूँ। आत्मा ही मांगलिक स्वरूप है। समझ में आया?

मुमुक्षु : निश्चय, व्यवहार को साधे, व्यवहार... निश्चय को...

पूज्य गुरुदेवश्री : साधे-फाधे कोई नहीं। निमित्त से नहीं साधे। व्यवहार को व्यवहार से साधे, ऐसा कहेंगे। १०५ गाथा में। अर्थ करेंगे, हों! यह तो। पाठ में नहीं। अर्थ करेंगे। समझ में आया?

पंच परमेष्ठी का ध्यानरूप अन्तमंगल बताया है। लो! बहुत सरस। प्रत्येक पल आत्मा ही शरण है, एक ही बात यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? पाँचों ही परमात्मा परमेष्ठी, पंच पद में तिष्ठ हैं न वे? तो परमपद ऐसा तेरा स्वरूप, उसमें वे पाँचों पद तिष्ठ हैं।

मुमुक्षु : उसमें कोई आराधना करनी या?

पूज्य गुरुदेवश्री : आराधना करनी न। उसके स्वरूप की ओर ढलना यह। आराधना किसे? राग को? पर को आराधना है? आराधना अर्थात् तुझे किसे आराधना है?

मुमुक्षु : अन्तमंगल...

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तिम। गाथा... है न। अन्तिम गाथा। अन्त में मांगलिक किया। अन्तिम, अन्तिम।

मुमुक्षु : सार-सार...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, ऐसा नहीं। अन्तिम अर्थात् आखिरी। अन्तिम मंगल किया। यह गाथा आखिरी है न? अन्तिम मांगलिक किया।

अन्तमंगल बताया है। गाथा अन्तमंगल की है। स्वरूप में अन्तमंगल है आत्मा, उसकी यह बात बतलायी है। आहाहा! बात यह है कि आत्मा वस्तु दृष्टि में जब तक न आवे, तब तक उसका माहात्म्य इसे दिखाई नहीं देता। समझ में आया? इसका स्वभाव महाप्रभु है। पर्याय का भी माहात्म्य जहाँ नहीं। विकल्प का तो नहीं, निमित्त पर का तो (नहीं), पाँच परमेष्ठी वे दूर रह गये। यहाँ कहाँ है? यहाँ हो, उसका ध्यान होता है या वहाँ हो उसका ध्यान होता है? ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : एकबार .... करा दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन करा दे? अभी तक पाप की मेहनत किसने की है? इसने की है। जिसने की, वह करेगा यह सब। दूसरा कोई कर दे, ऐसा है? कहो, समझ में आया? कितनी सावधानी की है? बीड़ी में... हो... हा... हो... साईकिल में दौड़ादौड़। वह तो जड़ की क्रिया थी। वह कहीं तुमने की नहीं। तुमने तो किया पाप। जो करे, वह तोड़े। दूसरा कोई करे तो तोड़े?

मुमुक्षु : गुरु उपदेश।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गुरु अर्थात् आत्मा का उपदेश लागू पड़े, तब गुरु उपदेश व्यवहार से कहा जाता है। यह आयेगा अभी, देखो!

गाथा-१०५

आगे कहते हैं कि जो अन्तसमाधिमरण में चार आराधना का आराधन कहा है, यह भी आत्मा ही की चेष्टा है, इसलिए आत्मा ही का मेरे शरण है –

सम्मत्तं सण्णाणं सच्चारितं हि सत्तवं चेव।
चउरो चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं।।१०५।।

सम्यक्त्वं सज्ज्ञानं सच्चरित्रं हि सत्तपः चैव।
चत्त्वारः तिष्ठन्ति आत्मनि तस्मादात्मा स्फुटं मे शरणं।।१०५।।

सम्यक्त्व सम्यग्ज्ञान सच्चारित्र सत्तप ये चतुक।
हैं आतमा में अवस्थित यों आतमा मुझको शरण।।१०५।।

अर्थ – सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तप – ये चार आराधना हैं, ये भी आत्मा में ही चेष्टारूप हैं, ये चारों आत्मा ही की अवस्था हैं, इसलिए आचार्य कहते हैं कि तेरे आत्मा ही का शरण है।।१०५।। (भगवती आराधना गाथा नं. २)

भावार्थ – आत्मा का निश्चय-व्यवहारात्मक तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप परिणाम सम्यग्दर्शन है, संशय-विमोह-विभ्रम से रहित और निश्चयव्यवहार से निजस्वरूप का यथार्थ जानना सम्यग्ज्ञान है, सम्यग्ज्ञान से तत्त्वार्थों को जानकर रागद्वेषादिक रहित परिणाम होना सम्यक्चारित्र है, अपनी शक्ति अनुसार सम्यग्ज्ञानपूर्वक कष्ट का आदर कर स्वरूप का साधना सम्यक् तप है, इस प्रकार ये चारों ही परिणाम आत्मा के हैं, इसलिए आचार्य कहते हैं कि मेरी आत्मा ही का शरण है, इसी की भावना में चारों आ गये।

अन्तसल्लेखना में चार आराधना का आराधन कहा है, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप इन चारों का उद्योत, उद्यवन, निर्वहण, साधन और निस्तरण ऐसे पंच प्रकार आराधना कही है, वह आत्मा को भाने में (आत्मा की भावना-एकाग्रता करने में) चारों आ गये ऐसे अंतसल्लेखना की भावना इसी में आ गई, ऐसे जानना तथा आत्मा ही परम मंगलरूप है ऐसा भी बताया है।।१०५।।

गाथा-१०५ पर प्रवचन

आगे कहते हैं कि जो अन्तसमाधिमरण में चार आराधना का आराधन कहा है... देखो! भगवती आराधना में आता है न? भगवती आराधना है न? भगवती आराधना। दूसरी गाथा देखनी पड़ेगी न। पीछे बोल आते हैं। १०५ गाथा में अब आराधना (स्वरूप कहते हैं)। यह चारों आराधना। भगवती आराधना की दूसरी गाथा का लेख है। अर्थ में आयेगा। **अन्तसमाधिमरण में चार आराधना का आराधन कहा है, यह भी आत्मा ही की चेष्टा है,...** है उसमें ऐसा लिखा, देखा न? अर्थात् आत्मा की अवस्था, ऐसा। चेष्टा अर्थात् अवस्था। योग की चेष्टा नहीं आती? समयसार में आती है। मन, वचन और काया योग की चेष्टा है। यह आत्मा की चेष्टा है। वीतरागी चेष्टा-अवस्था। **इसलिए आत्मा ही का मेरे शरण है।**

सम्मत्तं सण्णाणं सच्चारित्तं हि सत्तवं चेव।
चउरो चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं।।१०५।।

देखो! प्रत्येक को सत् शब्द लागू किया है। चारों को। '**सत् सम्मत्तं, सत् णाणं, सत् चारित्तं, सत्त्वं चेव।**' उसमें था '**ते वि हु चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं।**' बुद्धं शरणं गच्छामि। नहीं आता वह बौद्ध में? इसी प्रकार यहाँ कहे, अरिहन्त शरणं गच्छामि। अपने यहाँ अगल-बगल था न? धीरुभाई को। गत वर्ष गुजर गये, नहीं? दोनों गुजर गये। वीनुभाई। शिवलालभाई के। शिवलालभाई आये हैं? शिवलालभाई का वीनु और यह छोटाभाई का धीरु। यहाँ अकलंक और निकलंक का नाटक किया था। वहाँ एक व्यक्ति (बोला), बुद्धं शरणं गच्छामि। वह उठा, अरिहन्त शरणं गच्छामि। अरे! यह तो जैन लगता है। मारो... यह आता है न? नाटक किया था उसमें। पढ़ने गये थे न? अकलंक-निकलंक बौद्ध पाठशाला में पढ़ने गये थे। अकलंक-निकलंक का नाटक। अकलंक-निकलंक बौद्ध में पढ़ने गये थे। बौद्ध की पाठशाला थी। यह... अरिहन्त शरणं... वहाँ वे देख गये, अरे! यह क्या? यह तो जैन लगता है। मारो। दोनों भागे। एक तो तालाब में छुप गया और एक को मार डाला। तालाब में छुप गया, वह अकलंक। यहाँ कहते हैं, वह सब शरण

आत्मा में है, भाई! बुद्धं शरणं या अरिहन्त शरणं, वह आत्मा है। सिद्धा शरणं, वह आत्मा है।

अर्थ :- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तप... देखो! चार आराधना, आया न? **ये चार आराधना हैं, ये भी आत्मा में ही चेष्टारूप हैं,...** वह आत्मा की अवस्था है। यह चारों वीतरागी अवस्था है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, सम्यक्तप। समझ में आया? **ये चारों आत्मा ही की अवस्था हैं, इसलिए आचार्य कहते हैं कि मेरे आत्मा ही का शरण है।** आराधना, यह मेरे आत्मा का शरण है। समझ में आया? यह देवी-देवला को आराधते नहीं? यहाँ तो कहते हैं, पंच परमेष्ठी को आराधना, वह भी विकल्प है। वह सब वीतरागदशा मुझमें पड़ी है, इसलिए उसका आराधन करना, वह आत्मा मुझे शरण है। आहाहा! स्पष्टीकरण आयेगा।

भावार्थ :- आत्मा का निश्चय-व्यवहारात्मक तत्त्वार्थश्रद्धानरूप परिणाम... अर्थकार ने दोनों लिया है। निश्चय समकित और व्यवहार समकित। निश्चय समकित वीतरागी परिणाम है, व्यवहार समकित विकल्प है। **सम्यग्दर्शन है, संशय विमोह विभ्रम से रहित और निश्चयव्यवहार से निजस्वरूप का यथार्थ जानना...** संशय छोड़कर, विमोह छोड़कर, भ्रमणा छोड़कर निश्चय-व्यवहार से निज स्वरूप का ज्ञान। निश्चय का द्रव्य का, व्यवहार का पाँच परमेष्ठी आदि का ज्ञान। वह व्यवहार है। शास्त्र का ज्ञान, वह व्यवहार है। उसे **यथार्थ जानना सम्यग्ज्ञान है,...**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : संशय छोड़ देना। ऐसा होगा या ऐसा होगा? यह संशय। विमोह। क्या होगा कुछ खबर नहीं पड़ती, यह विमोह। अनध्यवसाय। कुछ खबर नहीं पड़ती। छोड़ दे। वस्तु यथार्थ है और विभ्रम अर्थात् विपरीत। विपरीतभाव। है उससे उल्टा मानना, वह विपरीत। छोड़ दे तीनों। संशय छोड़ दे, ऐसा होगा या कैसा? उसे भी छोड़ दे। अन्दर आत्मा का निश्चय कर। समझ में आया? विभ्रम अर्थात् भ्रमणा, विपरीत। अनध्यवसाय, संशय, विपरीत। तीन बातें ली हैं। उन्हें छोड़ **और निश्चयव्यवहार से निजस्वरूप को यथार्थ जानना...** देखो! भाषा ऐसी है। समझ में आया? पर्याय का ज्ञान आदि करना, वह व्यवहार है। निश्चय द्रव्य का ज्ञान करना, वह निश्चय है।

सम्यग्ज्ञान से तत्त्वार्थों को जानकर... सम्यग्ज्ञान से, आत्मा का ज्ञान करके तत्त्वार्थश्रद्धान, ज्ञान में श्रद्धान प्रगट करके जानकर **राग-द्वेषादिक रहित परिणाम होना सम्यक्‌चारित्र है,...** लो! उसमें व्यवहार नहीं डाला। समझ में आया? वीतरागी अन्तर रमणता आत्मा में आनन्दमय, वह चारित्र है। आहाहा! निर्विकल्प रस पीजिये। आनन्द का रस निर्विकल्प स्थिरता, उसका नाम भगवान चारित्र कहते हैं। सत्‌चारित्र। शब्द पड़ा है न सर्वत्र? सत्‌दर्शन, सत्‌ज्ञान, सत्‌चारित्र, सत्‌तप। सब लंघण तप आदि करे, वह तप नहीं। यह बहुत चला, और आत्मा... आत्मा चला न? लोग आत्मा-आत्मा बोले। आत्मलक्ष्य से अपन करते हैं अब, हों! कोई अपने को ऐसा कहता हो कि यह लंघण करता है, ऐसा नहीं। ठीक, बदलो शब्द।

मुमुक्षु : शब्द बदलने से कहीं भाव थोड़े ही बदलता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : शब्द बदला। भाव कहीं बदलता है? भाव तो मिथ्यादृष्टि है। पर्यूषण में अपवास हुए न बहुत? ऐई! मलूकचन्दभाई! तुम्हारे गाँव की बात चलती है। ऐसा कि आत्मलक्ष्यी यह सब अपवास है, फलाणां है, अमुक है। धूल भी आत्मलक्ष कहाँ था तुझे अब? अभी देव-शास्त्र-गुरु का ठिकाना नहीं और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को माने तो वह विकल्प और राग है। आत्मा अन्दर अखण्ड आनन्द है, उसके भाव के भान बिना लक्ष्य कैसा आत्मा का? लंघन नहीं। लंघन-लंघन यहाँ से आती है न? नहीं। ऐसा नहीं। यह कायक्लेश नहीं। वह तो आत्मलक्ष्यी तपस्या होती है। देखो कितने! व्याख्यान सुनने में अपवास ३०, ३५, ४०-४०। ध्यान से सुनते हैं। परन्तु अब तेरा व्याख्यान ही मिथ्यादृष्टि का है। ऐई!

मुमुक्षु : निश्चय में तो नहीं परन्तु व्यवहार में तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार अर्थात्? बारदान खाली। बारदान। चावल का बारदान हो तो कहीं पकाने में काम आवे? चार मण और ढाई सेर। चार मण चावल और ढाई सेर बारदान। चार मण पकाया और ढाई सेर टूटे। बारदान पकता होगा? कोथला समझते हो? बारदान। बोरी। खाली बोरी। होवे तब बोला जाये उसमें। चार मण और ढाई सेर। ऐसा बोले हमारी दुकान में एक... करके। बोले सब। चार मण चावल और ढाई सेर तो बारदान है।

चावल कम पड़े तो ढाई सेर लेने जाना पड़े। कहीं बारदान पकता होगा? ऐसे व्यवहार तो बारदान है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : इकट्ठा बोला अवश्य जाये कि यह व्यवहार मोक्षमार्ग है और यह निश्चय है। परन्तु यह कहीं आत्मा में काम नहीं आता। ऐसी बात है। समझ में आया?

कहते हैं कि रागादि सहित मिथ्यात्व। लो। अब यह तप की व्याख्या आयी। **अपनी शक्ति अनुसार (सम्यग्दर्शन)-सम्यग्ज्ञानपूर्वक कष्ट का आदर...** अर्थात् पुरुषार्थ उग्र करके **स्वरूप का साधना सम्यक्तप है,...** कहा था न अपने? महाकष्ट से आराधन होता है। सम्यग्दर्शन महाकष्ट से मिले, महाकष्ट से ज्ञान, महाकष्ट से चारित्र। कष्ट अर्थात् पुरुषार्थ, उग्र पुरुषार्थ। चारित्र के पुरुषार्थ से भी तप का उग्र पुरुषार्थ। इच्छा निरोध महा पुरुषार्थ। चारित्र की रमणता तो है। उसे तप होता है। परन्तु उसे उत्कृष्ट भाव से... समझे? महा पुरुषार्थ आदर कर स्वरूप को साधना, वह सम्यक्तप है। सम्यक्तप लेना है न? यहाँ सच्चा तप लेना है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना का तप, वह तप नहीं है। वह तो बालतप है, मूर्खता से भरपूर तप है।

इस प्रकार ये चारों ही परिणाम आत्मा के हैं,... देखो! चारों ही परिणाम वीतरागी आत्मा के हैं। यह कष्ट अर्थात् कहा न पुरुषार्थ। महा पुरुषार्थ से। बड़ा पुरुषार्थ। लोगों को ऐसा लगे कि, आहाहा! शरीर जीर्ण हो गया। बड़ा कष्ट सहन करते हैं। लोग ऐसा बोलते हैं न। कष्ट कहाँ है वहाँ? कष्ट हो, तब तो आर्तध्यान है। यहाँ तो तप कहना है। तप-तप। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसहित का तप। **चारों ही परिणाम आत्मा के हैं,...** देखो! यह तो चारों ही आत्मा के परिणाम हैं। कष्ट जो दुःख हो तो विकल्प है।

मुमुक्षु : ... ना करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह झूठ बात है। आता है न तुम्हारे? ... में आता है। खोटी बात। देह दुःखं महाफलं। धूल होती है। देह को दुःख है? वह तो जड़ है। आत्मा को कष्ट लगे, अरुचि लगे, वह तो आर्तध्यान है। वहाँ पुण्य नहीं, फिर धर्म कहाँ से आया? कठिन काम है, भाई!

सहज स्वरूप प्रभु, उसकी चारित्रदशा में उग्र पुरुषार्थ है। इच्छा निरोध करके अमृत के सागर को उछाला अन्दर से। समझ में आया? अमृत के सागर में ज्वार लाना पर्याय में, उसे तप कहते हैं। तप्यंति इति तप: ! आत्मा की शुद्ध अवस्था, तपे, शोभे। जैसे सुवर्ण को गेरु देने से शोभता है। सुवर्ण-सुवर्ण (उसे) गेरु (लगावे तो) शोभता है न? शोभता है। चमक आ जाती है, चमक। इसी प्रकार चारित्रसहित इच्छा निरोध में आत्मा में चमक आ जाती है। आनन्द की चमक। उसे सत् तप कहा जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : अपनी शक्ति अनुसार।

पूज्य गुरुदेवश्री : हठ नहीं, ऐसा कहते हैं। हठ करे तो कहाँ... उसकी अपनी शक्ति प्रमाण पुरुषार्थ करके करे।

इस प्रकार ये चारों ही परिणाम आत्मा के हैं, इसलिए आचार्य कहते हैं कि मेरे आत्मा ही का शरण है,... आत्मा के परिणाम आत्मा के अन्दर पड़े, इसलिए मुझे आत्मा शरण है। आहाहा! वह परिणाम है न अवस्था? परन्तु वह अवस्था सब मेरे गुण में पड़ी है। ऐसा गुण स्वभाववाला आत्मा, वह मुझे शरण है। घूमा-घूमाकर वहाँ लाना है। **इसी की भावना में चारों आ गये।** आत्मा के शरण में चारों भावना में आराधना आ गयी। **इसकी भावना में...** अर्थात् आत्मा की एकाग्रता में **चारों (आराधना) आ गये।** चारों ही आराधना। आत्मा आनन्द में एकाग्रता से दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप की चारों आराधना आ गयी। आहाहा!

अन्तसल्लेखना में... अन्त में सल्लेखना होती है न, अन्त में? जिसे संथारा कहते हैं, सल्लेखना। **चार आराधना का आराधन कहा है,...** मरण के समय चारों ही आराधना करना। पण्डितमरण, भगवती आराधना में सब वर्णन किया है। सेठी! यह भगवती आराधना पढ़ते हो न अब? **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप इन चारों का...** लो, अब कहा, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्‌चारित्र। सम्यक् सबको लागू करना। **इन चारों का उद्योत, उद्यवन, निर्वहण, साधन और निस्तरण ऐसे पंच प्रकार आराधना कही है,...** दूसरी गाथा में है इसमें।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... दूसरी गाथा में पाठ है। भगवती आराधना में है, यही है।

'**उज्जोवणमुज्जवणं, णिव्वहणं साहणं च णित्थरणं**' यह पाँच बोल। दूसरी गाथा। उज्ज्वल परिणाम, उद्योत अर्थात् उज्ज्वल परिणाम। सम्यग्दर्शन निर्मल करना, ज्ञान निर्मल करना, चारित्र निर्मल करना, तप निर्मल करना। **इनकी पूर्णता के लिये उद्यम करना, इनका निराकुलता में निर्वाह करना, निरतिचार सेवन करना एवं आयु के अन्तपर्यन्त निर्विघ्नतापूर्वक सेवन करके परलोक तक ले जाना, उसको जिनेन्द्र भगवान ने आराधना कही है।** चारों ही बोल आ गये। '**उज्जोवणमुज्जवणं, णिव्वहणं साहणं च णित्थरणं**' ठेठ मरण तक आराधित। समझ में आया?

मुमुक्षु : इसमें चार आये। कौन सी गाथा?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरी-दूसरी। मूल पाठ है। यहाँ चार बोल हैं। नहीं? पाँच। यहाँ पाँच है। उज्ज्वल करना, उद्यापन करना विशेष पुरुषार्थ करना। निर्वाह करना, साधन करना और अन्त समय तक पूर्ण करना। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप को अन्त में पूर्ण करना, वह निस्तरण। बड़ा पूरा अर्थ है।

भावार्थ :- उनमें से दर्शन का उद्योतन करना अर्थात् शंकादि दोष नहीं लगाना, आप्त के द्वारा कहे गये तत्त्व में अचल प्रतीति करना ही है। ज्ञान का उद्योतन करना अर्थात् प्रमाणनयादि से निर्णय करके उन्हें संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय रहित जानना। देखो! **चारित्र का उद्योतन करना अर्थात् निरतिचार मूलगुण-उत्तरगुणों को धारणा करना तथा तप का उद्योतन करना अर्थात् असंयम के अभावरूप आत्मा की विशुद्धता करना तथा जिस मार्ग से ये दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप आराधना अपने को प्राप्त हो या विशेष-विशेष विशुद्धता हो, उस मार्ग में प्रवर्तन करना अथवा आराधना के धारकों की संगति करना या मन-वचन-काय की प्रवृत्ति या ग्रहण-त्याग जैसे भी आराधन हो, वैसे करना-यह उद्यमन।** उद्यमन की व्याख्या ली।

आराधना के विराधक उपसर्ग परीषह की वेदनादि आने पर भी आकुलता रहित धारण करना - यह निर्वहण जानना। शान्ति से निर्वाह करना। और **आराधना के कारणभूत आप्त के वचनों का पठन, श्रवण और साधु संगति करना तथा जिनसे आराधना की विशुद्धता हो, उन कारणों को मिलाना - ये साधन हैं। अपनी ये चारों आराधनायें जिस प्रकार भी परलोकपर्यन्त न छूटे, उस प्रकार आयु के अन्तपर्यन्त**

प्रवृत्ति करना - यह निस्तरण है। संक्षिप्त कर डाला। लम्बा करने जाये कहीं? यहाँ तो उसका शब्दार्थ (लिया है)। कहा न?

उद्योत अर्थात् उज्ज्वल करना। '**उज्जोवणम**' विशेष निर्मलता। निर्वाह करना। जो कुछ मार्ग ग्रहण किया, उसका निर्वाह करना और साधन—उसके साधन में अन्तर एकाग्र होना और निस्तरण अर्थात् पूरा करना। निस्तार करना, अन्त लाना, शान्ति... आराधना चार प्रकार की देखो आचार्य ने भी, ओहोहो! पण्डित जयचन्द्रजी ने भी अर्थ चाहिए, वैसा किया है, हों! ऐसे श्रावक भी ऐसे अर्थ करते हैं, देखो न! चारों ओर से मिलाकर। उस समय श्रावक भी बहुत ऊँचे थे। मुनि सच्चे थे। अभी सब बहुत बदल गया। मार्ग बदल डाला। भगवान आत्मा का आराधन करने का मार्ग चाहिए, उसके बदले बाहर के विकल्प की सिरपच्ची का पार नहीं। उसमें आत्मा को लाभ नहीं होता। अहो कष्टो, महाकष्टो लाभं किंचित् विद्यति। कष्ट बहुत और आत्मा को लाभ कुछ नहीं। नुकसान।

यहाँ तो कहते हैं, सहजस्वरूप सम्यग्दर्शन, सहजस्वरूप सम्यग्ज्ञान, सहजस्वरूप सम्यक्चारित्र, सहजस्वरूप इच्छानिरोध अमृत का उछाल। ऐसे भाव को **पाँच प्रकार की आराधना कही है,...** भगवती आराधना की दूसरी गाथा। मूल पाठ। **वह आत्मा को भाने में (-आत्मा की भावना-एकाग्रता करने में) चारों आ गये,...** लो! जिसने आत्मा अखण्ड पूर्णानन्द प्रभु की एकाग्रता का साधन किया, उसे यह चारों आराधना-पाँचों अन्दर आ गयी। समझ में आया? आत्मा का आराधन किया, उसे पाँचों पद आ गये और आत्मा का आराधन किया, उसे यह पाँचों आराधना आ गयी, ऐसा कहते हैं। क्योंकि यह सब आराधना की पर्यायें निर्मल, वीतरागी, वह तो सब आत्मा में पड़ी है। उसका आराधन करने से पाँचों ही आराधना हो जाती है। पार पड़ जाता है पार। सल्लेखना पूरी पड़ गयी। सल्लेखना से आनन्द में एकदम देह छूट जाये। अतीन्द्रिय आनन्द में अन्दर लग गया है आत्मा में।

मुमुक्षु : आत्मा की लीनता में...

पूज्य गुरुदेवश्री : सब आ गया। आत्मा में सब आ गया। ... यह आत्मा जैसा है, उसका आराधन करने से पाँचों आराधना आ गयी। भिन्न करने की आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

ऐसे अन्तसल्लेखना की भावना इसी में आ गयी ऐसे जानना... इसी में आ गयी... इसी में... अर्थात् आत्मा में। आत्मा... आत्मा... आत्मा... एक व्यक्ति कहता है कि दस महीने तक आत्मा कूटा है। (संवत्) १९९५ में आत्मा की व्याख्या चलती थी। ९५। ... ३१ वर्ष हुए। ... एक व्यक्ति कहे, आत्मा-आत्मा करते हैं। और एक व्यक्ति ऐसा निकला कि महाराज ने दस महीने का व्याख्यान दिया, (संवत्) १९९५ के वर्ष में, उसका दस लाईन में सार दे, उसे दस रुपये का ईनाम। छेलभाई नागर थे। नागर थे न? ९५ का चातुर्मास राजकोट था न? ३१ वर्ष पहले की बात है। ३१। ३० और १। समयसार चला। दस महीने और दस दिन। एक व्यक्ति कहे, यह आत्मा-आत्मा... यहाँ सामने न कहे। पीछे से बात सुनी थी। आत्मा-आत्मा कूटा दस महीने। परन्तु यह करना (वह कुछ तो आया नहीं)। अरे... भगवान!

एक व्यक्ति ऐसा निकला। वकील था न? कौन था? वकील था नागर। छेलभाई वैष्णव थे। वे व्याख्यान में आते थे। इसलिए वे कहे, महाराज ने दस महीने और दस दिन व्याख्यान दिया, उसे दस लाईन में सार करे, उसे दस रुपये दूँगा। ९५ की बात है।

मुमुक्षु : सम्प्रदाय की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्प्रदाय की बाद की है। यह तो ३१ वर्ष हुए। सम्प्रदाय को साढ़े पैंतीस वर्ष हुए। समझ में आया? सब दोनों निकले, दोनों प्रकार के लोग।

यहाँ कहते हैं, आत्मा-आत्मा तीन गाथा से शुरु किया अकेला। नमनयोग्य तो वह, स्तुति करनेयोग्य हो तो वह, ध्यान करनेयोग्य हो तो वह। यह पंच परमेष्ठी समाहित हो गये हों तो भी वह, और पाँचों आराधना समाहित हो गयी हो तो भी वह। आहाहा! अरे! आत्मा के अतिरिक्त दूसरी क्या चीज है? आहाहा!

मुमुक्षु : कूटने का आत्मा को है, शरीर को कहाँ कूटना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर क्या, परन्तु पर्याय की यहाँ तो बात नहीं। यहाँ तो आत्मा वस्तु, ऐसा कहते हैं। उसमें सब बसा हुआ है। पाँच परमेष्ठी, आराधना सब बसा हुआ है। इतना बड़ा आत्मा, उसे अन्दर रुचि में बैठना महापुरुषार्थ है। यही पहला महापुरुषार्थ है। फिर और चारित्र का पुरुषार्थ, पश्चात् तप का पुरुषार्थ, आराधना का पुरुषार्थ।

पूरा। एक-दो भव में पूरा। समझ में आया? संसार का अन्त, मोक्ष की प्राप्ति। मोक्ष अधिकार है न।

तथा आत्मा ही परममंगलरूप है, ऐसा भी बताया है। देखो! उसमें ऐसा कहा था न? अन्तमंगल कहा था। यहाँ आत्मा परममंगलरूप है। आहाहा! महा परममंगलरूप तो तेरा आत्मा है। भगवान मांगलिक तो पर है। **ऐसा भी बताया है।** लो! ... पश्चात्।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा-१०६

आगे यह मोक्षपाहुड ग्रन्थ पूर्ण किया, इसके पढ़ने-सुनने-भाने का फल कहते हैं -

एवं जिणपण्णत्तं मोक्खस्स य [1]पाहुडं सुभत्तीए।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ सासयं सोक्खं ।।१०६।।

एवं जिनप्रज्ञप्तं मोक्षस्य च प्राभृतं सुभक्त्या।
य: पठति शृणोति भावयति स: प्राप्नोति शाश्वतं सौख्यं ।।१०६।।

जो जिन-कथित इस मोक्ष पाहुड़ को सुभक्ति से पढ़े।
या सुने भावे शाश्वत शिव-सौख्य को वह ही लहे।।१०६।।

_अर्थ_ - पूर्वोक्त प्रकार जिनदेव के कहे हुए मोक्षपाहुड ग्रन्थ को जो जीव भक्तिभाव से पढ़ते हैं, इसकी बारम्बार चिन्तवनरूप भावना करते हैं तथा सुनते हैं, वे जीव शाश्वत सुख, नित्य अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दमय सुख को पाते हैं।

_भावार्थ_ - मोक्षपाहुड में मोक्ष और मोक्ष के कारण का स्वरूप कहा है और जो मोक्ष के कारण का स्वरूप अन्य प्रकार मानते हैं, उनका निषेध किया है, इसलिए इस ग्रन्थ के पढ़ने, सुनने से उसके यथार्थ स्वरूप का ज्ञान श्रद्धान आचरण होता है, उससे

१. 'पाहुड' का पाठान्तर 'कारणं' है, सं. छाया में भी समझ लेना।

कर्म का नाश होता है और इसकी बारम्बार भावना करने से उसमें दृढ़ होकर एकाग्र ध्यान की सामर्थ्य होती है, उस ध्यान से कर्म का नाश होकर शाश्वत सुखरूप मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए इस ग्रन्थ को पढ़ना-सुनना निरन्तर भावना रखनी, ऐसा आशय है।।१०६।।

इस प्रकार श्रीकुन्दकुन्द आचार्य ने यह मोक्षपाहुडग्रन्थ सम्पूर्ण किया। इसका संक्षेप इस प्रकार है कि यह जीव शुद्ध दर्शन-ज्ञानमयी चेतनास्वरूप है तो भी अनादि ही से पुद्गलकर्म के संयोग से अज्ञान मिथ्यात्व रागद्वेषादिक विभावरूप परिणमता है, इसलिए नवीन कर्मबन्ध के सन्तान से संसार में भ्रमण करता है। जीव की प्रवृत्ति के सिद्धान्त में सामान्यरूप से चौदह गुणस्थान निरूपण किये हैं, इनमें मिथ्यात्व के उदय से मिथ्यात्व गुणस्थान होता है। मिथ्यात्व की सहकारिणी अनन्तानुबन्धी कषाय है, केवल उसके उदय से सासादन गुणस्थान होता है और सम्यक्त्व मिथ्यात्व दोनों के मिलापरूप मिश्रप्रकृति के उदय से मिश्रगुणस्थान होता है, इन तीन गुणस्थानों में तो आत्मभावना का अभाव ही है।

जब *काललब्धि के निमित्त से जीवाजीव पदार्थों का ज्ञान-श्रद्धान होने पर सम्यक्त्व होता है, तब इस जीव को अपना और पर का, हित-अहित का तथा हेय-उपादेय का जानना होता है, तब आत्मा की भावना होती है, तब अविरतनाम चौथा गुणस्थान होता है। जब एकदेश परद्रव्य से निवृत्ति का परिणाम होता है, तब जो एकदेशचारित्ररूप पाँचवाँ गुणस्थान होता है, उसको श्रावकपद कहते हैं। सर्वदेश परद्रव्य से निवृत्तिरूप परिणाम हो तब सकलचारित्ररूप छट्ठा गुणस्थान होता है, इसमें कुछ संज्वलन चारित्र मोह के तीव्र उदय से स्वरूप के साधने में प्रमाद होता है, इसलिए इसका नाम प्रमत्त है, यहाँ से लगाकर ऊपर के गुणस्थानवालों को साधु कहते हैं।

जब संज्वलन चारित्रमोह का मन्द उदय होता है, तब प्रमाद का अभाव होकर स्वरूप के साधने में बड़ा उद्यम होता है, तब इसका नाम अप्रमत्त, ऐसा सातवाँ गुणस्थान है, इसमें धर्मध्यान की पूर्णता है। जब इस गुणस्थान में स्वरूप में लीन हो, तब सातिशय अप्रमत्त होता है, श्रेणी का प्रारम्भ करता है। तब इससे ऊपर चारित्रमोह का अव्यक्त

* स्वसन्मुखतारूप निज परिणाम की प्राप्ति का नाम ही उपादानरूप निश्चय काललब्धि है वह हो तो उससमय बाह्य द्रव्य-क्षेत्र-कालादि की उचित सामग्री निमित्त है, उपचार कारण है, अन्यथा उपचार भी नहीं।

उदयरूप अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय नाम धारक ये तीन गुणस्थान होते हैं। चौथे से लगाकर दसवें सूक्ष्मसाम्पराय तक कर्म की निर्जरा विशेषरूप से गुणश्रेणीरूप होती है।

इससे ऊपर मोहकर्म के अभावरूप ग्यारहवाँ, बारहवाँ, उपशान्तकषाय क्षीणकषाय गुणस्थान होते हैं। इसके पीछे शेष तीन घातिया कर्मों का नाश कर अनन्त चतुष्टय प्रगट होकर अरहन्त होता है, यह सयोगी जिन नामक गुणस्थान है, यहाँ योग की प्रवृत्ति है। योगों का निरोधकर अयोगी जिन नाम का चौदहवाँ गुणस्थान होता है, यहाँ अघातिया कर्मों का भी नाश करके लगातार ही अनन्तर समय में निर्वाणपद को प्राप्त होता है, यहाँ संसार के अभाव से मोक्ष नाम पाता है।

इस प्रकार सब कर्मों का अभावरूप होता है, इसके कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहे इनकी प्रवृत्ति चौथे गुणस्थान से सम्यक्त्व प्रगट होने पर एकदेश होती है, यहाँ से लगाकर आगे जैसे-जैसे कर्म का अभाव होता है, वैसे-वैसे सम्यग्दर्शन आदि की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है और जैसे-जैसे इसकी प्रवृत्ति बढ़ती है, वैसे-वैसे कर्म का अभाव होता जाता है, जब घातिकर्म का अभाव होता है, तब तेरहवें गुणस्थान में अरहन्त होकर जीवनमुक्त कहलाते हैं और चौदहवें गुणस्थान के अन्त में रत्नत्रय की पूर्णता होती है, इसलिए अघातिकर्म का भी नाश होकर अभाव होता है, तब साक्षात् मोक्ष होकर सिद्ध कहलाते हैं।

इस प्रकार मोक्ष का और मोक्ष के कारण का स्वरूप जिन आगम से जानकर और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष के कारण कहे हैं, इनको निश्चय व्यवहाररूप यथार्थ जानकर सेवन करना। तप भी मोक्ष का कारण है, उसे भी चारित्र में अन्तर्भूत कर त्रयात्मक ही कहा है। इस प्रकार इन कारणों से प्रथम तो तद्भव ही मोक्ष होता है। जबतक कारण की पूर्णता नहीं होती है, उससे पहले कदाचित् आयुकर्म की पूर्णता हो जाये तो स्वर्ग में देव होता है, वहाँ भी यह वांछा रहती है कि यह *शुभोपयोग का अपराध है, यहाँ से चयकर मनुष्य होऊँगा तब सम्यग्दर्शनादि मोक्षमार्ग का सेवन कर मोक्ष प्राप्त करूँगा, ऐसी भावना रहती है, तब वहाँ से चयकर मोक्ष पाता है।

* पुरुषार्थ-सिद्ध्युपाय श्लोक नं. २२० "रत्नत्रयरूप धर्म है वह निर्वाण का ही कारण है और उस समय पुण्य का आस्रव होता है वह अपराध शुभोपयोग का है।"

इस पंचम काल में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की सामग्री का निमित्त नहीं है, इसलिए तद्भव मोक्ष नहीं है तो भी जो रत्नत्रय का शुद्धतापूर्वक पालन करे तो यहाँ से देव पर्याय पाकर पीछे मनुष्य होकर मोक्ष पाता है। इसलिए यह उपदेश है कि जैसे बने वैसे रत्नत्रय की प्राप्ति का उपाय करना, इसमें सम्यग्दर्शन प्रधान है, इसका उपाय तो अवश्य करना चाहिए, इसलिए जिनागम को समझकर सम्यक्त्व का उपाय अवश्य करना योग्य है, इस प्रकार इस ग्रन्थ का संक्षेप जानो।

(छप्पय)

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण शिवकारण जानूं,
ते निश्चय व्यवहाररूप नीकैं लखि मानूं।
सेवो निशदिन भक्तिभाव धरि निजबल सारू,
जिन आज्ञा सिर धारि अन्यमत तजि अघ कारूँ।।
इस मानुषभव कूं पाय कै अन्य चारित मति धरो।
भविजीवनिकूं उपदेश यह गहिकरि शिवपद संचरो।।१।।

(दोहा)

वंदूं मंगलरूप जे अर मंगलकरतार।
पंच परम गुरु पद कमल ग्रंथ अंत हितकार।।२।।

यहाँ कोई पूछे कि ग्रन्थों में जहाँ तहाँ पंच णमोकार की महिमा बहुत लिखी है, मंगलकार्य में विघ्न को दूर करने के लिए इसे ही प्रधान कहा है और इसमें पंच परमेष्ठी को नमस्कार है, वह पंच परमेष्ठी की प्रधानता हुई, पंच परमेष्ठी को परम गुरु कहे, इसमें इसी मन्त्र की महिमा तथा मंगलरूपपना और इससे विघ्न का निवारणपना, पंच परमेष्ठी का प्रधानपना और गुरुपना तथा नमस्कार करने योग्यपना कैसे है ? वह कहो।

इसके समाधानरूप कुछ लिखते हैं – प्रथम तो पंच णमोकार मन्त्र है, इसके पैंतीस अक्षर हैं, ये मन्त्र के बीजाक्षर हैं तथा इनका योग सब मन्त्रों से प्रधान है, इन अक्षरों का गुरु आम्नाय से शुद्ध उच्चारण हो तथा साधन यथार्थ हो, तब ये अक्षर कार्य में विघ्न दूर करने में कारण हैं, इसलिए मंगलरूप हैं। 'म' अर्थात् पाप को गाले, उसे मंगल कहते हैं। 'मंग' अर्थात् सुख को लावे, दे, उसको मंगल कहते हैं, इससे दोनों कार्य होते हैं। उच्चारण से विघ्न टलते हैं, अर्थ का विचार करने पर सुख होता है, इसी से इसको मन्त्रों में प्रधान कहा है, इस प्रकार तो मन्त्र के आश्रय की महिमा है।

इसमें पंच परमेष्ठी को नमस्कार है, वे पंच परमेष्ठी अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये हैं, इनका स्वरूप तो ग्रन्थों में प्रसिद्ध है तो भी कुछ लिखते हैं – यह अनादिनिधन अकृत्रिम सर्वज्ञ की परम्परा से सिद्ध आगम में कहा है, ऐसा षट्द्रव्यस्वरूप लोक है, इसमें जीवद्रव्य अनन्तानन्त हैं और पुद्गलद्रव्य इनसे अनन्तानन्त गुणे हैं, एक-एक धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य हैं और कालद्रव्य असंख्यात द्रव्य हैं। जीव तो दर्शनज्ञानमयी चेतना स्वरूप है।

अजीव पाँच हैं, ये चेतनारहित जड़ हैं, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये चार द्रव्य तो जैसे हैं, वैसे ही रहते हैं, इनके विकारपरिणति नहीं है, जीव-पुद्गलद्रव्य के परस्पर निमित्त नैमित्तिकभाव से विभावपरिणति है, इनमें भी पुद्गल तो जड़ है, इसके विभावपरिणति का, दु:ख-सुख का संवेदन नहीं है और जीव चेतन है, इसके सुख-दु:ख का संवेदन है।

जीव अनन्तानन्त हैं, इनमें कई तो संसारी हैं, कई संसार से निवृत्त होकर सिद्ध हो चुके हैं। संसारी जीवों में कई तो अभव्य हैं तथा अभव्य के समान हैं। ये दोनों जाति के संसार से निवृत्त कभी नहीं होते हैं। इनके संसार अनादिनिधन है। कई भव्य हैं, ये संसार से निवृत्त होकर सिद्ध होते हैं, इस प्रकार जीवों की व्यवस्था है। अब इनके संसार की उत्पत्ति कैसे है, वह कहते हैं –

जीवों के ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का अनादिबन्धपर्याय है, इस बन्ध के उदय के निमित्त से जीव रागद्वेषमोहादि विभावपरिणतिरूप परिणमता है, इस विभावपरिणति के निमित्त से नवीन कर्मबन्ध होता है।

इस प्रकार इनके सन्तानपरम्परा से जीव के चतुर्गतिरूप संसार की प्रवृत्ति होती है, इस संसार में चारों गतियों में अनेक प्रकार सुख-दु:खरूप हुआ भ्रमण करता है, तब कोई काल ऐसा आवे, जब मुक्त होना निकट हो, तब सर्वज्ञ के उपदेश का निमित्त पाकर अपने स्वरूप को और कर्मबन्ध के स्वरूप को, अपने भीतरी विभाव के स्वरूप को जाने, इनका भेदज्ञान हो, तब परद्रव्य को संसार का निमित्त जानकर इससे विरक्त हो, अपने स्वरूप के अनुभव का साधन करे – दर्शन-ज्ञानरूप स्वभाव में स्थिर होने का साधन करे, तब इसके बाह्यसाधन हिंसादिक पंच पापों का त्यागरूप निर्ग्रंथ पद, सब परिग्रह की त्यागरूप निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुद्रा धारण करे, पाँच महाव्रत, पाँच समितिरूप, तीन गुप्तिरूप प्रवर्ते, तब सब जीवों पर दया करनेवाला साधु कहलाता है।

इसमें तीन पद होते हैं – जो आप साधु होकर अन्य को साधुपद की शिक्षादीक्षा दे, वह आचार्य कहलाता है, साधु होकर जिनसूत्र को पढ़े–पढ़ावे, वह उपाध्याय कहलाता है, जो अपने स्वरूप के साधन में रहे वह साधु कहलाता है, जो साधु होकर अपने स्वरूप साधन के ध्यान के बल से चार घातियाकर्मों का नाशकर केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य को प्राप्त हो वह अरहन्त कहलाता है, तब तीर्थंकर तथा सामान्य–केवली जिन इन्द्रादिक से पूज्य होता है, इनकी वाणी खिरती है, जिससे सब जीवों का उपकार होता है, अहिंसा धर्म का उपदेश होता है, जिससे सब जीवों की रक्षा होती है, यथार्थ पदार्थों का स्वरूप बताकर मोक्षमार्ग दिखाते हैं, इस प्रकार अरहन्त पद होता है और जो चार अघातियाकर्मों का भी नाश कर सब कर्मों से रहित हो जाते हैं, वह सिद्ध कहलाते हैं।

इस प्रकार ये पाँच पद हैं, ये अन्य सब जीवों से महान हैं, इसलिए पंच परमेष्ठी कहलाते हैं, इनके नाम तथा स्वरूप के दर्शन, स्मरण, ध्यान, पूजन, नमस्कार से अन्य जीवों के शुभपरिणाम होते हैं, इसलिए पाप का नाश होता है, वर्तमान विघ्न का विलय होता है, आगामी पुण्य का बन्ध होता है, इसलिए स्वर्गादिक शुभगति पाता है। इनकी आज्ञानुसार प्रवर्तने से परम्परा से संसार से निवृत्ति भी होती है, इसलिए ये पांच परमेष्ठी सब जीवों के उपकारी परमगुरु हैं, सब संसारी जीवों से पूज्य हैं। इनके सिवाय अन्य संसारी जीव राग–द्वेष–मोहादिक विकारों से मलिन हैं, ये पूज्य नहीं हैं, इनके महानपना, गुरुपना, पूज्यपना नहीं है, आप ही कर्मों के वश मलिन हैं, तब अन्य का पाप इनसे कैसे कटे?

इस प्रकार जिनमत में इन पंच परमेष्ठी का महानपना प्रसिद्ध है और न्याय के बल से भी ऐसे ही सिद्ध होता है, क्योंकि जो संसार के भ्रमण से रहित हो वे ही अन्य के संसार का भ्रमण मिटाने को कारण होते हैं। जैसे जिसके पास धनादि वस्तु हो वही अन्य को धनादिक दे और आप दरिद्री हो तब अन्य की दरिद्रता कैसे मेटे, इस प्रकार जानना। जिनको संसार के दु:ख मेटने हों और संसारभ्रमण के दु:खरूप जन्म–मरण से रहित होना हो वे अरहन्तादिक पंच परमेष्ठी का नामरूप मन्त्र जपो, इनके स्वरूप का दर्शन, स्मरण, ध्यान करो, इससे शुभ परिणाम होकर पाप का नाश होता है, सब विघ्न टलते हैं, परम्परा से संसार का भ्रमण मिटता है, कर्मों का नाश होकर मुक्ति की प्राप्ति होती है, ऐसा जिनमत का उपदेश है, अत: भव्यजीवों के अंगीकार करने योग्य है।

यहाँ कोई कहे – अन्यमत में ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदिक इष्टदेव मानते हैं, उनके भी विघ्न टलते देखे जाते हैं तथा उनके मत में राजादि बड़े-बड़े पुरुष देखे जाते हैं, उनके भी ये इष्ट विघ्नादिक को मेटनेवाले हैं, ऐसे ही तुम्हारे भी कहते हो, ऐसा क्यों कहते हो कि यह पंच परमेष्ठी ही प्रधान हैं, अन्य नहीं हैं ? उसको कहते हैं हे भाई ! जीवों के दु:ख तो संसारभ्रमण का है और संसारभ्रमण के कारण रागद्वेषमोहादिक परिणाम हैं तथा रागादिक वर्तमान में आकुलतामयी दु:खस्वरूप है, इसलिए ये ब्रह्मादिक इष्टदेव कहे, ये तो रागादिक तथा काम क्रोधादि युक्त हैं, अज्ञानतप के फल से कई जीव सब लोक में चमत्कारसहित राजादिक बड़ा पद पाते हैं, उनको लोग बड़ा मानकर ब्रह्मादिक भगवान कहने लग जाते हैं और कहते हैं कि यह परमेश्वर ब्रह्मा का अवतार है तो ऐसे मानने से तो कुछ मोक्षमार्गी तथा मोक्षरूप होता नहीं है, संसारी ही रहता है।

ऐसे ही अन्य देव सब पदवाले जानने, वे आप ही रागादिक से दु:खरूप हैं, जन्म-मरण सहित हैं, वे पर का संसार दु:ख कैसे मेंटेगे ? उनके मत में विघ्न का टलना और राजादिक बड़े पुरुष कहे जाते हैं, वहाँ तो उन जीवों के पहिले शुभकर्म बंधे थे, उनका फल है। पूर्वजन्म में किंचित् शुभ परिणाम किया था इसलिए पुण्यकर्म बंधा था, उसके उदय से कुछ विघ्न टलते हैं और राजादिक पद पाते हैं, वह तो पहिले कुछ अज्ञानतप किया है, उसका फल है यह तो पुण्यपापरूप संसार की चेष्टा है, इसमें कुछ बड़ाई नहीं है, बड़ाई तो वह है, जिससे संसार का भ्रमण मिटे, सो यह तो वीतराग-विज्ञान भावों से ही मिटेगा, इस वीतराग-विज्ञान भावयुक्त पंच परमेष्ठी हैं, ये ही संसारभ्रमण का दु:ख मिटाने में कारण हैं।

वर्तमान में कुछ पूर्व शुभकर्म के उदय से पुण्य का चमत्कार देखकर तथा पाप का दु:ख देखकर भ्रम में नहीं पड़ना, पुण्य-पाप दोनों संसार हैं, इनसे रहित मोक्ष है, अत: संसार से छूटकर मोक्ष हो-ऐसा उपाय करना। वर्तमान का विघ्न जैसा पंच परमेष्ठी के नाम, मन्त्र, ध्यान, दर्शन, स्मरण से मिटेगा वैसा अन्य के नामादिक से तो नहीं मिटेगा, क्योंकि ये पंच परमेष्ठी ही शान्तिरूप हैं, केवल शुभपरिणामों ही के कारण हैं। अन्य इष्टदेव के रूप तो रौद्ररूप हैं, इनके दर्शन स्मरण तो रागादिक तथा भयादिक के कारण हैं, इनसे तो शुभ परिणाम होते दीखते नहीं हैं। किसी के कदाचित् कुछ धर्मानुराग के वश से शुभपरिणाम हों तो वह उनसे हुआ नहीं कहलाता, उस प्राणी के स्वाभाविक

धर्मानुराग के वश से होता है। इसलिए अतिशयवान शुभपरिणाम का कारण तो शान्तिरूप पंच परमेष्ठी ही का रूप है, अत: इसी का आराधन करना, वृथा खोटी युक्ति सुनकर भ्रम में नहीं पड़ना, ऐसे जानना।

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित मोक्षप्राभृत की
जयपुरनिवासी पण्डित जयचन्द्र छाबड़ा कृत देशभाषामयवचनिका का
हिन्दी भाषानुवाद समाप्त।।६।।

प्रवचन-१०१, गाथा-१०६, मंगलवार, भाद्र कृष्ण १४, दिनांक २९-०९-१९७०

मोक्षपाहुड़, १०६ गाथा, अन्तिम गाथा है। **आगे यह मोक्षपाहुड़ ग्रन्थ पूर्ण किया, इसके पढ़ने-सुनने-भाने का फल कहते हैं:-**

एवं जिणपण्णत्तं मोक्खस्स य पाहुडं सुभत्तीए।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ सासयं सोक्खं।।१०६।।

अर्थ :- पूर्वोक्त प्रकार जिनदेव ने कहे... वीतराग परमेश्वर ने मोक्ष का मार्ग कहा। **ऐसा मोक्षपाहुड़ ग्रन्थ...** जिनदेव ने कहा, ऐसा मोक्षपाहुड़ ग्रन्थ है। आचार्य कहते हैं कि मैंने कहा, ऐसा नहीं। जिनदेव ने यह कहा है। वीतराग परमेश्वर ने यह मार्ग कहा है। **जो जीव भक्तिभाव से पढ़ते हैं,...** भक्तिभाव से पढ़ता है। बहुमान से, रुचि से पढ़े। अकेला पढ़े, ऐसा नहीं। समझ में आया? '**सुभत्तीए**' शब्द है न? रुचि से, प्रेम से भगवान का मार्ग क्या है, ऐसा स्वयं समझने के लिये बहुत प्रेम, बहुत उल्लास, बहुत भक्ति से पढ़े। **इसकी बारम्बार चिन्तवनरूप भावना करते हैं...** अन्दर की एकाग्रता करे। आत्मा का स्वभाव भगवान ने वर्णन किया, ऐसा सुनकर, उसमें बारम्बार अन्तर एकाग्रता करे।

तथा सुनते हैं, वे जीव शाश्वत् सुख,... और सुने। पढ़ता है, यह पहले लिया न इसलिए फिर सुने लिया फिर से। उसे पढ़े अथवा सुने। **वे जीव शाश्वत् सुख, नित्य...** आत्मा के **अतीन्द्रिय आनन्दमय सुख को पाते हैं।** मोक्ष का अर्थ यह है। अतीन्द्रिय आनन्द ज्ञानानन्द। ज्ञान का जो स्वभाव आनन्द, ऐसी पर्याय में पूर्णता ज्ञान और आनन्द की

पावे, उसका नाम मुक्ति, उसका नाम मोक्ष। उसका उपाय स्वभाव सुनकर अन्तर एकाग्रता करे तो मोक्ष को पावे।

मुमुक्षु : सुनकर...

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनकर परन्तु सुनकर अन्तर एकाग्र करे तो फल। अकेले सुनने से कहीं नहीं है। ऐसा कहा न ? क्या कहा ? देखो न ! '**पढइ सुणइ भावइ**' तीन बातें। ऐसा का ऐसा सुने और समझे नहीं कुछ वस्तु क्या है, उसे जाने नहीं तो किस काम का ? भक्ति से सुने, भक्ति से वाँचन करे, सुभक्ति, हों ! वापस। ऐसे अकेली भक्ति नहीं। सुभक्ति— बहुत रुचि से, प्रेम से मेरे आत्मा का उद्धार इसमें है, ऐसा जानकर जो प्रेम से मोक्षपाहुड़ को (सुने, पढ़े)। कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं, देखो !

मुमुक्षु : भक्ति का अर्थ किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : परम प्रेम। आत्मा के प्रति अर्थात् भगवान के प्रति प्रेम रखकर सुने, वाँचन करे। ऐसा का ऐसा बेगाररूप से सुने कि ठीक है, आज सुनने का समय है चलो सुनें। ऐसा नहीं। हमेशा थोड़ा पढ़ना चाहिए। वाँचना चाहिए। चलो, वाँच लें। ऐसा नहीं। अन्दर प्रेम से। जैसे लड़के परीक्षा देने के लिये प्रेम से पढ़ते हैं या नहीं ? कितना प्रेम। कितना रात्रि जागरण करे, देखो ! इसी प्रकार आत्मा का स्वरूप सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव जिनदेव ने कहा, उसे सुने, उसे पढ़े। पढ़े अर्थात् वाँचन करे और फिर वह किस भाव को कहा, उसमें क्या भाव है ? ऐसा कहते हैं। कि आत्मा में एकाग्र होना, यह उसमें कहा था। सुनने में या पढ़ने में ऐसा आया था कि यह आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसमें एकाग्र होना। यह सुनने में और पढ़ने में आया था। ऐसा एकाग्र हो तो मुक्ति को पावे। समझ में आया ?

अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दमय सुख को पाते हैं। क्योंकि आत्मा का स्वभाव ही अतीन्द्रिय ज्ञान-आनन्द है। उसमें एकाग्र होने का भगवान ने वाणी में कहा। पढ़कर भी उसमें से यह निकालना। शास्त्र पढ़कर, शास्त्र सुनकर, उसमें यह कहा है कि भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का कन्द प्रभु है, उसका ज्ञान-श्रद्धा करके उसमें एकाग्र होना। भगवान ने वाणी में ऐसा कहा था। कहो, समझ में आया इसमें कुछ ? अन्दर लीनता। स्वसन्मुख होकर लीनता (करना), ऐसा भगवान की वाणी में और शास्त्र पढ़ने में ऐसा आया था। ऐसा यदि

पढ़कर और सुनकर ऐसा निकाले तो उसने सुना और पढ़ा बराबर कहलाये। ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? क्योंकि आत्मा का स्वभाव ही ज्ञान और आनन्द है। उसमें यही बात भगवान ने कही थी कि तेरा ज्ञान और आनन्द स्वभाव है, उसकी दृष्टि कर, ज्ञान कर और रमणता कर। ऐसा मोक्षमार्ग भगवान ने वाणी द्वारा कहा था। तत्प्रमाण सुनकर, पढ़कर अन्तर सन्मुख होकर एकाग्र हो तो मुक्ति पाये। कहो, समझ में आया इसमें ?

भावार्थ :- मोक्षपाहुड़ में मोक्ष और मोक्ष के कारण का स्वरूप कहा है... यह मोक्षप्राभृत में मोक्ष का अधिकार और मोक्ष के कारण के स्वरूप का अधिकार, मोक्ष का स्वरूप और मोक्ष के कारण का स्वरूप, मार्ग का स्वरूप (कहा है)। **और जो मोक्ष के कारण का स्वरूप अन्य प्रकार मानते हैं, उनका निषेध किया है,...** वीतराग परमेश्वर ने जो यह मार्ग कहा, उससे अन्य अज्ञानी अन्य प्रकार से कहते हैं, इसमें उनका निषेध किया है कि जो अन्यमति इस प्रकार से कहते हैं, वह मोक्षमार्ग नहीं है। **इसलिए इस ग्रन्थ के पढ़ने, सुनने से उसके यथार्थ स्वरूप का-ज्ञान-श्रद्धान आचरण होता है,...** देखो ! इस ग्रन्थ को पढ़कर, सुनकर उसका यथार्थ स्वरूप का। यथार्थ स्वरूप—आत्मा का यथार्थ शुद्ध आनन्दस्वरूप। उसका ज्ञान, उसका श्रद्धान, आचरण होता है, **उस ध्यान से कर्म का नाश होता है...** वह ज्ञान-दर्शन और चारित्र ध्यान है। अन्तर की एकाग्रता। समझ में आया ? बहुत सरस अधिकार था।

ध्यान से कर्म का नाश होता है और इसकी बारम्बार भावना करने से... अन्तर में बारम्बार एकाग्रता करने से **दृढ़ होकर एकाग्रध्यान की सामर्थ्य होती है,...** अन्दर ध्यान करने का बल जगे। स्वभाव में एकाग्रता होने से, दृढ़रूप से रहने से अन्दर में ध्यानपने में रहने का सामर्थ्य जगे। समझ में आया ? **उस ध्यान से कर्म का नाश होकर शाश्वत् सुखरूप मोक्ष की प्राप्ति होती है।** लो ! इस ध्यान से कर्म का नाश होता है। ध्यान अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह ध्यानस्वरूप ही है। अन्तर के ध्येय की एकाग्रता है न ? समझ में आया ? अपना भगवान शुद्ध स्वरूप उसका ज्ञान, उसकी श्रद्धा और उसका आचरण, यह भगवान ने वाणी में कहा था। यह शास्त्र में कहा है। उसे जानकर, श्रद्धा कर, अन्तर में आचरण करके मुक्ति को पावे। **शाश्वत् सुखरूप मोक्ष की प्राप्ति होती है।**

परमानन्द की पर्याय प्राप्त हो, शाश्वत रहे। ऐसा का ऐसा अनन्त आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... आनन्द... पर्याय शाश्वत् अर्थात् ऐसी की ऐसी नयी-नयी हो तो ऐसी की ऐसी रहे। समझ में आया? **इसलिए इस ग्रन्थ को पढ़ना-सुनना निरन्तर भावना रखनी...** स्वभाव सन्मुख की एकाग्रता की भावना रखना। **ऐसा आशय है।** लो। पूरे शास्त्र का-मोक्षपाहुड़ का यह आशय है—अभिप्राय यह है।

इस प्रकार श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने यह मोक्षपाहुड़ ग्रन्थ सम्पूर्ण किया। इसका संक्षेप इस प्रकार है... अब टीका में थोड़ा विस्तार करते हैं। अन्दर जो पूरा कहा था ... गाथा में। **यह जीव शुद्ध दर्शनज्ञानमयी चेतनास्वरूप है...** भगवान आत्मा तो शुद्ध दर्शन-ज्ञानचेतना (स्वरूप है)। जानना, देखना ऐसा शुद्धपना, ऐसी चेतनास्वरूप आत्मा है। वह कोई पुण्य-पापरूप, विकल्परूप, उदयभावरूप, संसाररूप आत्मा है नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा आत्मा होने पर भी, **तो भी अनादि ही से पुद्गल कर्म के संयोग से...** वस्तुस्वभाव तो शुद्ध दर्शन-ज्ञानचेतना चेतनामय, चेतनास्वरूप ऐसा ही आत्मा है। तथापि अनादि से एक दूसरे कर्म के संयोग सम्बन्ध से **अज्ञान मिथ्यात्व राग-द्वेषादिक विभावरूप परिणमता है,...** ज्ञान के विरुद्ध अज्ञान, सम्यक्त्व के विरुद्ध मिथ्यात्व, चारित्र के विरुद्ध राग-द्वेष।

भगवान आत्मा शुद्ध दर्शन-ज्ञानचेतनास्वरूप वस्तुरूप से तो ऐसी है, तथापि कर्म के सम्बन्ध से मिथ्यात्व, अज्ञान और राग-द्वेषरूप कर्म के सम्बन्ध से परिणमता है। वह संसार है, वह परिभ्रमण और दु:ख है। **इसलिए नवीन कर्मबन्ध के सन्तान से संसार में भ्रमण करता है।** ऐसा अज्ञान, स्वरूप का अज्ञान, स्वरूप जो शुद्ध दर्शन-ज्ञानचेतनामय उससे विपरीत मान्यता और उससे विपरीत राग-द्वेष का आचरण, उससे नये कर्म बँधते हैं, उससे चार गति **नवीन कर्मबन्ध के सन्तान से संसार में भ्रमण करता है।** उसका प्रवाह चार गति में भटकने का है।

जीव की प्रवृत्ति के सिद्धान्त में सामान्यरूप से चौदह गुणस्थान निरूपण किये हैं :- चौदह गुणस्थान कहे हैं, लो! जैसे मंजिल में चढ़ने की सीढ़ियाँ होती हैं न? सीढ़ियाँ-निसरणी। चौदह बड़े चौदह मुख्यरूप से। फिर ऐसे आगे... आगे... आगे... यह तो बहुत हों बहुत। बहुत सीढ़ियाँ हैं। **चौदह गुणस्थान निरूपण किये हैं-निरूपण-**

कथन, इनमें मिथ्यात्व के उदय से मिथ्यात्व गुणस्थान होता है,... विपरीत मान्यता के कारण से मिथ्यात्व गुणस्थान होता है। आत्मा में शुद्ध दर्शन-ज्ञानचेतनामय होने पर भी दर्शनमोह के निमित्त में जुड़ने से विपरीत मान्यता का भाव हो, वह मिथ्यात्व गुणस्थान में है। उसे आत्मा की भावना नहीं होती, ऐसा कहते हैं।

मिथ्यात्व की सहकारिणी अनन्तानुबन्धी कषाय है, केवल उसके उदय से सासादन गुणस्थान होता है... यह दूसरा गुणस्थान। मिथ्यात्व पहला, सासादन का उदय रहे, वह दूसरा। **सम्यक्त्व-मिथ्यात्व दोनों के मिलापरूप मिश्रप्रकृति के उदय से मिश्रगुणस्थान होता है, इन तीन गुणस्थानों में तो आत्मभावना का अभाव ही है।** देखो! क्योंकि वहाँ आत्मा चैतन्य दर्शन-ज्ञानमय चेतन है, उसका उसे भान नहीं। आत्मा शुद्धदर्शन-ज्ञान चेतनस्वरूप है, ऐसा भान नहीं। इससे उसमें एकाग्रता की भावना, मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र में नहीं होती। आत्मा की एकाग्रता की भावना उसमें नहीं होती। है?

और, **जब काललब्धि के निमित्त से...** देखो! आया। देवीलालजी! काललब्धि निमित्त। अपना पुरुषार्थ स्वभाव, वह उपादान। टोडरमलजी कहते हैं, काललब्धि कोई वस्तु नहीं है। जिस समय में पुरुषार्थ से पर्याय प्रगटी, वह काललब्धि। काललब्धि दूसरा क्या है? उसके सामने देखना है? कहीं सामने देखना है? अपना शुद्ध दर्शन-ज्ञानचेतना जो स्वभाव कहा, शुद्ध दर्शन-ज्ञानचेतना आत्मस्वभाव के सन्मुख देखा, वह काललब्धि पक गयी। समझ में आया? यह तो पहली बात की। वस्तु तो शुद्ध दर्शन-ज्ञानचेतनामय स्वरूप है, उसमें पुरुषार्थ को जोड़ा। बस, पाँचों समवाय साथ में आ गये। समझ में आया?

काललब्धि के निमित्त से... निमित्त से कहा है न? **जीवाजीव पदार्थों का ज्ञान-श्रद्धान होने पर सम्यक्त्व होता है...** जीव और अजीव का भेदज्ञान करके उनका ज्ञान, भेदज्ञान करके श्रद्धान **होने पर सम्यक्त्व होता है...** भगवान आत्मा शुद्ध दर्शन-ज्ञानमय है। रागादि विकल्प, वे सब आस्रवतत्त्व भिन्न हैं। अजीव भी भिन्न है। अजीव भिन्न, दया-दान-व्रतादि के परिणाम भी भिन्न, भगवान आत्मा भिन्न। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्धपुद्गल परन्तु पुरुषार्थ करे, फिर परावर्तन हो... पुरुषार्थ से

अर्धपुद्गलभाव से जाने कौन ? यह अर्धपुद्गल (परावर्तन काल) बाकी था, इसलिए हुए, ऐसा जाने कौन ? पुरुषार्थ से स्वसन्मुख देखा, स्वसन्मुख पुरुषार्थ किया (तो) सब ज्ञात हुआ कि अर्धपुद्गल (परावर्तन) संसार बाकी। अरे! अन्तर्मुहूर्त भी बाकी हो।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वह तो जानने के लिये बात है। 'भवस्थिति आदि नाम ले छेदो नहीं आत्मार्थ।' आता है न ? आत्मा, उसका कार्य करना है तो उसे पुरुषार्थ के सामने, स्वभाव के सामने देखना है या यह काल है, उसके सामने देखना है उसे ? कार्य करने का पुरुषार्थ करे तो कार्य हुए बिना रहे नहीं।

मुमुक्षु : काललब्धि के निमित्त से।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, पुरुषार्थ के निमित्त से काललब्धि पकी, ऐसा कहा।

मुमुक्षु : पाँचों समवाय साथ में...

पूज्य गुरुदेवश्री : साथ में ही है। परन्तु इस काललब्धि का ज्ञान कब होगा ? कि स्वभाव चैतन्य शुद्ध दर्शन-ज्ञानमय, उसका अनुभव, उसकी प्रतीति, उसका भान होने से स्वभाव आया, पुरुषार्थ आया, काललब्धि आयी, भवितव्यता आयी और कर्म का अभाव भी उस समय होता ही है। पाँचों समवाय एक समय में होते हैं। परन्तु वह पुरुषार्थ के आधीन है।

मुमुक्षु : पुरुषार्थ के आधीन ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ के आधीन है। पुरुषार्थ आधीन नहीं तो किसके आधीन ? किसी के आधीन है ?

मुमुक्षु : पुरुषार्थ किसी के आधीन ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ किसी के आधीन नहीं। आत्मा के आधीन पुरुषार्थ, स्वभाव के आधीन पुरुषार्थ।

मुमुक्षु : पुरुषार्थ क्रमबद्ध के आधीन।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रमबद्ध-फ्रमबद्ध... क्रमबद्ध का निर्णय कौन करे ? क्रमबद्ध

का निर्णय कौन करे ? द्रव्यस्वभाव का निर्णय करे, वह क्रमबद्ध का निर्णय करे। ऐसे पोपाबाई का राज नहीं तो ऐसा आ जाये उसमें। समझ में आया ? यह सेठ कहे काललब्धि, यह कहे क्रमबद्ध। यह सब काललब्धि-क्रमबद्ध, योग्यता सब द्रव्यदृष्टि का भान होने पर तब उसे ज्ञान ऐसा कहने में आता है। वस्तु की स्थिति यह है। रुचि रखे पर में और फिर कहे काललब्धि पकी नहीं। राग की रुचि रखे और फिर कहे काललब्धि पकी नहीं, राग की रुचि रखे और क्रमबद्ध में हमारे ऐसा होना था, (ऐसा कहे)। किसने जाना ? अमरचन्दभाई ! बात ऐसी है।

मुमुक्षु : दोष दूसरे का निकाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। सीधा दोष। तेरा दोष नहीं अन्दर। मेरा झुकाव पर के प्रति अनादि से है, उसे मेरे स्वभाव के झुकाव में मुझे आना, ऐसा न मानकर, वह तो काललब्धि आयेगी, क्रमबद्ध आयेगा तो होगा। समझ में आया ?

यह मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है। पढ़ा है न मोक्षमार्गप्रकाशक ? खबर है ? यह तो हमारे बहुत वर्ष पहले चर्चा हुई थी। (संवत्) १९८३। यह ८३-८३। ८३ के वर्ष में चर्चा हुई थी। वे दामोदर सेठ थे न ? सातवें अध्याय में है न दो ? क्या कहलाता है ? पुरुषार्थ-पुरुषार्थ। नौवाँ, हों, नौवाँ-नौवाँ। ८३ में बड़ी चर्चा हुई। हमारे तो दूसरों के साथ बहुत चर्चायें होती आयी है। विरोध-विरोध करे। क्या है तुझे ?

प्रश्न :- मोक्ष का उपाय काललब्धि आने पर भवितव्यानुसार बनता है या मोहादिक का उपशम होने पर बनता है ? या अपने पुरुषार्थ से उद्यम करने पर बनता है ? सेठ ने प्रश्न किया था। नौवाँ अध्ययन (अधिकार)। मोक्ष का उपाय काललब्धि आने पर भवितव्यानुसार बनता है ? या मोहादि का उपशम होने पर बनता है ? या अपने पुरुषार्थ का उद्यम करने पर बनता है, वह कहो। **यदि प्रथम दोनों कारण मिलने पर बनता है तो हमें उपदेश किसलिए देते हो ? और यदि पुरुषार्थ से बनता है तो उपदेश सब सुनते हैं, उनमें कोई पुरुषार्थ कर सकता है, कोई नहीं कर सकता; उसका कारण क्या है ?**

उत्तर :- एक कार्य होने में अनेक कारण मिलते हैं। अनेक कारण मिलते हैं, होते हैं, ऐसा कहते हैं। **मोक्ष का उपाय बनता है, वहाँ तो पूर्वोक्त तीनों ही कारण मिलते हैं...**

ऐसा है। मोक्ष का उपाय बनता है, स्वभाव सन्मुख की दृष्टि-ज्ञान करता है, वहाँ तो पूर्वोक्त तीनों ही कारण होते हैं। काललब्धि आदि सब, भवितव्य, कर्म का अभाव सब होता है। **नहीं बनता, वहाँ तीनों ही कारण नहीं मिलते। पूर्वोक्त तीन कारण कहे, उनमें काललब्धि व होनहार तो कोई वस्तु नहीं है।** लो! यह प्रश्न हमारे ८३ में हुआ था। कितने वर्ष हुए? १७ और २६=४३। ४३ वर्ष। ८३। दामोदर सेठ थे। यह कहा था। देखो! काललब्धि अर्थात् कि यह क्या है? टोडरमल केवली हो गये? और ऐसा कहा। ऐई! उन्हें दिक्कत आयी। टोडरमल केवली हो गये? केवली नहीं। परन्तु यह क्या कहते हैं, यह तो वहाँ आया है। स्वयं को मान्यता में दिक्कत आवे, इसलिए एकदम सबका उड़ाना, ऐसा नहीं चलता, कहा। यह पाठ था।

मुमुक्षु : चाहे जितना पुरुषार्थ करो तो भी काललब्धि...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पुरुषार्थ करे, उसे काललब्धि आये बिना रहती ही नहीं। ऐसा लेना उसका अर्थ। कलश टीका में है न। हमें ठेठ से सब खबर है। इसकी चर्चा हुई थी। इस पाठ की मोक्षमार्गप्रकाशक (संवत्) १९८२ में मिला न? ८३ में बड़ी चर्चा हुई। ४३ वर्ष। ४० और ३ पहले। बहुत पढ़ा हुआ, वाँचन किया हुआ बहुत उसने। भाई ने शास्त्र के अर्थ किये, देखो! मैंने कहा, यह क्या है? आत्मा अपने स्वभावसन्मुख की प्रीति-रुचि करे और काल पके नहीं, ऐसा तीन काल में बने? करना इसे है या काल के सन्मुख देखना है? यहाँ काल पकेगा, ऐसा देखना है उसके सन्मुख? काल पकेगा, इसका अर्थ क्या? समझ में आया? हाँ। ऐसा नहीं चलता। वीतरागमार्ग में तो पुरुषार्थ है। समझ में आया? देखो! क्या कहा?

काललब्धि व होनहार तो कोई वस्तु नहीं। जिस काल में कार्य बनता है, वही काललब्धि और जो कार्य हुआ, वही होनहार। तथा जो कर्म के उपशमादिक हैं वह पुद्गल की शक्ति है, उसका आत्मा कर्ता-हर्ता नहीं है। तथा जो पुरुषार्थ से उद्यम करते हैं, वह आत्मा का कार्य है, इसलिए आत्मा को पुरुषार्थ से उद्यम करने का उपदेश देते हैं। भगवानजीभाई!

मुमुक्षु : ...पने रहने का।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसे रहना है, भटकना है? काललब्धि आयेगी तब होगा।

क्रमबद्ध होगी, तब होगा। कर्म घटेंगे तब होगा। भगवान ने देखा तब होगा। क्या है परन्तु? भगवान को मानता है तू? भगवान को माने बिना भगवान ने देखा, ऐसा होगा, ऐसा सीधे... क्या कहलाता है.. ? भाषा। भगवान तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव को जिसने माना। एक समय में केवलज्ञान, तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसी ज्ञान की जिसे प्रतीति हो, उसकी तो स्वदृष्टि उसमें जाये, तब उसकी प्रतीति होती है। उसे फिर भव-बव होते नहीं। समझ में आया? देवीलालजी!

यह बहुत चर्चा हमारे (संवत्) १९७२ में हुई। ७२। कितने वर्ष हुए? ५४। ७२ के फाल्गुन शुक्ल ११-१२। पाळियाद है, पाळियाद में। पाळियाद है न? वहाँ बड़ी चर्चा हुई थी। हमारे गुरुभाई के साथ। बड़ी चर्चा। पुरुषार्थ आत्मा करे और भव रहे (ऐसा) बनता नहीं। भगवान को माने, उसे भव रहता नहीं, ऐसा कहा। भगवान ने देखा ऐसा होगा। भगवान को माना इसने कि देखा, वैसा होगा (या) अध्धर से बोलने की लप करता है? ऐई! भीखाभाई! यह कहीं पोपाबाई का राज नहीं, वहाँ ले जाये माल।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : तब आया था अन्दर से।

मुमुक्षु : पढ़कर गये थे घर से?

पूज्य गुरुदेवश्री : पढ़ा कहा था? था कहाँ? पुस्तक भी तब नहीं थी। आत्मा था अन्दर। ७२ के फाल्गुन शुक्ल की ११-१२ थी। लो! समझ में आया? नहीं। कहे, भगवान जिसे कलेजे-ज्ञान में बैठे, उसे भव नहीं होते। भगवान ने देखे... देखे... देखे... किया करे। वाणी ही भगवान की नहीं, कहा। तुम्हारी वाणी आगम की नहीं। ऐई! देवीलालजी! एक दिन तो छोड़ दिया था। सम्प्रदाय छोड़कर, गुरु छोड़कर चला गया। यह बात सुनना हमें सुहाती नहीं। यह सम्प्रदाय नहीं चाहिए, यह वाणी नहीं चाहिए, यह मार्ग नहीं चाहिए। मार्ग तो अन्तर आत्मा में भगवान जिसे ज्ञान में बैठे, उसे भव नहीं होते, ऐसी वाणी हो, वह वाणी हमारे सुननी है। ऐई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी बात सच्ची। वापस वे सब सेठिया आये। ... और फिर

जवान शरीर, अभी तो २५ वर्ष की उम्र। अब अकेले कहाँ... ? वहाँ आये वे लोग, महाराज! आपकी बात सत्य है, ऐसा कहीं स्वीकार नहीं किया। समझ में आया? वहाँ सब सेठिया आये थे। बोटाद के चत्रभुज सेठ, गाँधी और सब आये थे। यहाँ से आये थे। ७२ की बात है। ७२। कितने वर्ष हुए? ५४ वर्ष हुए। ५० और ४। वे लोग आये। चलो, भाई चलो। क्योंकि वहाँ पूरे दिन व्यतीत किया। चतुर्दशी थी, फाल्गुन शुक्ल चतुर्दशी।

मुमुक्षु : आज भी चतुर्दशी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आज भी चतुर्दशी है, लो! फाल्गुन में थे। दामोदर सेठ के साथ चर्चा हुई थी। वह ८३ में। यह ७२ में।

जिसे आत्मा रुचना है, उसे काललब्धि और क्रम ऐसा शब्द तुम्हें कहाँ रुचता है? यह रुचता है, यह रुचता है उसे। आत्मा दर्शन-ज्ञानचेतना का स्वभाव भगवान भण्डार, उसकी जिसे रुचि अथवा भगवान की रुचि लो, सर्वज्ञ परमात्मा जिन्हें एक समय में तीन काल, तीन लोक का ज्ञान (हुआ है), ऐसी सत्ता का स्वीकार, वह पर्याय की इतनी बड़ी सत्ता का स्वीकार कौन करे? ऐसे का ऐसा भगवान है... भगवान है... ऐसा माने, ऐसा होगा? ऐसी सत्ता का स्वीकार तो द्रव्यदृष्टि ज्ञायक पर जाये, तब सत्ता का स्वीकार होता है। उसे भव नहीं हो सकते। उसे काललब्धि पक गयी और अल्प काल में मोक्ष होनेवाला है। ऐई! भीखाभाई! आहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहीं वह तो किसी को हो। एक-दो भव में तो पूरा। भव-भव कैसे? समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका कुछ नहीं। छोड़ो अभी बात। अभी सुनो। कहो, समझ में आया इसमें?

यहाँ तो कहते हैं, **अब यह आत्मा जिस कारण से कार्यसिद्धि अवश्य हो, उस कारणरूप उद्यम करे, वहाँ तो अन्य कारण अवश्य मिलते ही हैं...** मिलते ही हैं। समझ

में आया ? टोडरमलजी ने भी गजब ! बहुतों की नाड़ियाँ पकड़-पकड़कर वस्तु कही है। ऐई ! सेठ ! यह काललब्धि... काललब्धि... काललब्धि करते हैं।

मुमुक्षु : सत्य का राज है। पोपाबाई का राज नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पोपाबाई का राज नहीं। किसी के ऊपर डाले, उसका मोक्ष हो जाये। और वापस माने ऐसा कि काललब्धि आयेगी तब मानूँगा। मानना है तुझे ? या काललब्धि आयेगी, ऐसा मानना है ? मानना है ही कहाँ तुझे ? समझ में आया ? भगवान आनन्द का धाम ज्ञानस्वरूप अकेला, ऐसी जिसे श्रद्धा और भरोसा बैठे, उसे रुचे, सब पक गया, सुन न !

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा था। केवलज्ञान में नोंध है, कहा। तब कहाँ पढ़ा था। केवलज्ञान में कहा था। परन्तु यह पुरुषार्थ करे, तब केवलज्ञान में नोंध, ऐसी इसे खबर पड़े। 'करुणा हम पावत है तुमकी वह बात रही सुगुरुगम की।' आता है न श्रीमद् में ? केवलज्ञान की करुणा हुई। केवलज्ञान में जो भासित हुआ था, ऐसा यहाँ भासित हुआ, माना, तब केवलज्ञान की करुणा हुई, ऐसा कहने में आता है। ऐसा है। समझ में आया ?

समयसार नाटक में तो बहुत लिया है।... भूमिका मिथ्यात्वमांही... ऐसा आता है। समझ में आया ? पुरुषार्थ की गति आत्मा की। आता है वहाँ। कहीं आता है। क्या खबर कुछ याद होता है सब ? ऐई ! वजुभाई ! यह बन्ध अधिकार या कहीं आता है। श्लोक आते हैं, हों ! बन्ध अधिकार। **'जे जिय मोह नींदमैं सोवैं। ते आलसी निरुद्यमि होवैं।'** बन्ध अधिकार।

'जे जिय मोह नींदमैं सोवैं। ते आलसी निरुद्यमि होवैं।
द्रष्टि खोलि जे जगे प्रविना। तिनि आलस तजि उद्दिम कीना॥'

ऐई ! सेठ ! कितना सरस ! बनारसीदास ने बहुत डाला है। यह चार शब्द हैं। दो लाईन दूसरी है। बहुत जगह आ गया तुम्हारे, लो न। ...उद्यम करे, नहीं तो मोह नींद में सो रहा है, ऐसा कहते हैं। पुरुषार्थ करना नहीं और बातें (करनी हैं), ऐसा नहीं चलता। यहाँ तो मार्ग पुरुषार्थ की भणकार है अन्दर।

यहाँ (मोक्षमार्गप्रकाशक में) तो कहते हैं कि जो पुरुषार्थपूर्वक मोक्ष का उपाय करता है, उसे सर्व कारण मिलते हैं। अवश्य मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह निश्चित है। जो जीव पुरुषार्थपूर्वक मोक्ष का उपाय नहीं करता, उसे काललब्धि, भवितव्य भी नहीं। जाओ! उसे मोक्ष का उपाय नहीं होता। यह तो सब बहुत बार वाँचन हो गया है न! सैंकड़ों बार वाँचन हो गया है यह तो। व्याख्यान में, उसमें। समझ में आया? देखो! (चलता अधिकार)।

जीवाजीव पदार्थों का ज्ञान-श्रद्धान होने पर सम्यक्त्व होता है, तब इस जीव को अपना और पर का, हित-अहित का तथा हेय-उपादेय का जानना होता है... लो! जब जीव और अजीव का भिन्नता का भान होने पर आत्मा का ज्ञान-श्रद्धान होने पर समकित होता है। **तब इस जीव को अपना और पर का,...** अपना और पर का **हित-अहित का तथा हेय-उपादेय का जानना होता है...** यह काल हेय है, उपादेय है, ऐसा भान हो, तब उसे इन दोनों प्रकार का ज्ञान यथार्थ होता है। समझ में आया?

यह कहा था, काल हेय है। द्रव्यसंग्रह में कहा था न? काल हेय है। अधिकार बराबर मैं पढ़ता था और जीवराजजी और वे सेठ वहाँ कहते थे। द्रव्यसंग्रह है। यह (संवत्) १९८४ के ज्येष्ठ महीने की बात है। ८४ का ज्येष्ठ महीना। वहाँ द्रव्यसंग्रह में आता है काल का अधिकार। काल हेय है। काललब्धि बिना होता नहीं, ऐसा कहा, परन्तु वह काल हेय है। द्रव्यसंग्रह में आता है। बताया था न एक बार। अपना पुरुषार्थ। प्रेम-रुचि करनी है, उसका वह भान हो कि यह... यह (करे उसे) रुचि ही कहाँ है? समझ में आया? भगवान आत्मा दर्शन-ज्ञान की मूर्ति, उसका प्रेम-रुचि करनी है या सामने देखे कर्म को और काल को देखता होगा? हैं? आहाहा! व्यभिचारी भी जहाँ स्नेह में दौड़ जाये, फिर माँ-बाप और दुनिया को गिनते नहीं। गिनते हैं वे? इसी प्रकार यहाँ आत्मा के स्वभाव के प्रेम के समक्ष किसी की गिनती नहीं है। जानने का जाने, कहते हैं। देखो न! क्या कहा?

अपना और पर का,... यह काल भी पर है, उसका ज्ञान हो तब। बराबर है? देवीलालजी! **हित-अहित का तथा हेय-उपादेय का...** वास्तव में तो पर्याय आदि भी हेय है। द्रव्य, वह उपादेय है। ऐसा भिन्न ज्ञान हो, तब यह ज्ञान सच्चा होता है। ऐई! भाई!

शोभालालजी ! आहाहा ! ऐसा मार्ग है, भाई ! ऐसा कहे कि हमारे आत्मा की रुचि करनी है, आत्मा की रुचि करनी है, प्रेम करना है और फिर प्रेम उसके साथ डाले-कर्म के साथ। वह खिरे तब होगा। तब प्रेम कहाँ है तुझे ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : बचाव चले...

पूज्य गुरुदेवश्री : बचाव नहीं चलता। आहाहा !

तब आत्मा की भावना होती है। जीव, अजीव, आस्रव और आत्मा। उनका भेदज्ञान हो, पुरुषार्थ से हो, '**भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।**' जो कोई बँधे हैं, वे भेदज्ञान के अभाव से बँधे हैं, ऐसा कहा है। कर्म के कारण बँधे हैं, ऐसा वहाँ नहीं कहा। राग और अजीव से भगवान भिन्न है, ऐसा भेदज्ञान का अभाव हो, वह बन्ध में पड़ता है। भेदज्ञानवाला बन्ध में नहीं आता। आहाहा ! समझ में आया ? उसे दोष निकालने की आदत पड़ गयी है न ? पर का दोष निकलता है पर का। सेठ ! समझ में आता है यह ? तुम अपने आप पढ़ो तो उसमें से कुछ न कुछ निकालो अन्दर से। यह काललब्धि है, इसमें लिखा है।

मुमुक्षु : यह...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहे... करे पढ़ना नहीं। ऐसा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : पढ़ता है। वह भी चोपड़ा कितना पढ़े वहाँ जाकर। जायेगा तो सब वापस पूछेंगे।

मुमुक्षु : ऐसी आदत पड़ गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : आदत पड़ गयी। आदत भी पाड़ने से पड़ी है न ? वह तो उल्टी है।

तब आत्मा की भावना होती है,... देखो ! **तब अविरतनामक चौथा गुणस्थान होता है।** देखो ! है ? यहाँ से शुरु किया है, देखो ! **जीवाजीव पदार्थों का ज्ञान-श्रद्धान होने पर सम्यक्त्व होता है, तब इस जीव को अपना और पर का, हित-अहित का तथा हेय-उपादेय का जानना होता है, तब आत्मा की भावना होती है (एकाग्रता), तब**

अविरत चौथा गुणस्थान होता है। भावना-स्वभाव की एकाग्रता। शुद्ध दर्शन ज्ञान हूँ, वह। **चौथा गुणस्थान होता है।** लो! बहुत सरस व्याख्या की। पण्डित जयचन्द्रजी। वे पहले के पण्डित भी... बात को बहुत अच्छी... पण्डित जयचन्द्रजी ने बहुत अर्थ किये हैं।

मुमुक्षु : ...कल तो आठ गुण की बात की, वह नहीं ली। आठ मूलगुण...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो ठीक। उसका होता ही है वह। ऐसा हो, वहाँ होता ही है। यह तो साधारण माँस, शराब न खाये (पीये), तब तो उसे नाममात्र जैन कहा जाता है। शराब, माँस.... समझ में आया? क्या कहलाता है? मद्य। मधु, माँस, शराब यह हो जब तक तो जैनधर्म सुनने के योग्य नहीं। यह तो ऐसी बात है, भाई। मद्य-मद्य होता है न? शहद, माँस और शराब का जब तक त्याग नहीं, तब तक तो वह जैन नाम कहने के योग्य नहीं। जैन नाम कहलाने के योग्य नहीं। यह वीतरागमार्ग है, भाई! समझ में आया? आता है उसमें—पुरुषार्थसिद्धि उपाय में। यह सात व्यसन का त्याग जब तक नहीं, शराब, माँस का त्याग नहीं, तब तक जैन की वाणी सुनने के योग्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? वे सब अभक्ष्य हैं। माँस, मदिरा, मधु। औषध में शहद लेते हैं। वह नहीं होता। शहद की एक बिन्दु में... शास्त्र में पाठ है। सात गाँव के जीव मारे, इतना पाप है। शहद की एक बिन्दु में। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह है। क्षमावाणी पुस्तक है। यह तो अमितगति श्रावकाचार में पाठ है। एक बिन्दु में सात गाँव के जीव मरे, इतना पाप है। ऐसा पाठ है। सब शास्त्र पढ़े हैं न हमने तो। शहद नहीं होता। यह सेठिया और बेठिया शहद-बहद खावे ने दवा में? वापस वे पण्डित बचाव करे। ऐई! सेठ! समझ में आया? यह तो साधारण बात है, इसलिए ऐसी नहीं है। अभक्ष्य नहीं होता। परस्त्री आदि ऐसे आचरण खोटे अनीतिवाले अनेक हों, उसे यह वीतराग का मार्ग सुनने का रुचेगा? उसे नहीं रुचेगा। ऐसा मार्ग है, भाई! यह तो ऊँची बात ठेठ करने की परन्तु निचली बात में ठिकाना न हो, उसे यह ऊँची बात बैठेगी कहाँ से? समझ में आया?

तब आत्मा की भावना... यह भावना अर्थात् क्या विकल्प है? चिन्तवना है? हें!

एकाग्रता। मैं दर्शन-ज्ञान-चेतनास्वरूप हूँ। उसमें एकाग्रता। राग में एकाग्रता छूट गयी है। राग है अवश्य, परन्तु राग की एकाग्रता छूट गयी है समकिती को। आहाहा! समझ में आया? **जब एकदेश परद्रव्य से निवृत्ति का परिणाम होता है...** अब श्रावक पंचम गुणस्थान। **जब एकदेश परद्रव्य से निवृत्ति...** सम्यग्दर्शन अनुभवसहित। आत्मभावना सहित। राग की एक अंश निवृत्ति हो, **परद्रव्य से निवृत्ति का परिणाम होता है...** देखो! परिणाम अन्दर। **तब जो एकदेशचारित्ररूप पाँचवाँ गुणस्थान होता है...** तब एकदेश पाँचवें गुणस्थान का चारित्र होता है। आत्मा की भावना जीवाजीव भेदज्ञान से हुई है, एकाग्रता है, तदुपरान्त परद्रव्य के प्रति जो आसक्ति है, इसलिए आंशिक आसक्ति घटाकर शान्ति की वृद्धि करता है, तब उसे पंचम गुणस्थान प्रगट होता है। **तब जो एकदेशचारित्ररूप पाँचवाँ गुणस्थान होता है...** लो! आहाहा! समझ में आया? **उसको श्रावकपद कहते हैं।** लो! उसे श्रावकपद कहा जाता है।

और **सर्व देश परद्रव्य से निवृत्तिरूप...** सब परद्रव्य वस्त्र, पात्र आदि सब छूट जाये। मुनिपने में एक शरीरमात्र रहे। **परद्रव्य से निवृत्ति का परिणाम होता है...** वीतरागी परिणाम हो अन्दर। **तब सकलचारित्ररूप छठा गुणस्थान होता है,...** समझ में आया? **इसमें कुछ संज्वलन चारित्रमोह के तीव्र उदय से स्वरूप के साधने में प्रमाद होता है,...** छठवें गुणस्थान में संज्वलन का तीव्र उदय है न जरा? सातवें में मन्द पड़ जाता है। इससे प्रमाद होता है। **इसका नाम प्रमत्त है, यहाँ से लगाकर ऊपर के गुणस्थानवालों को साधु कहते हैं।** लो! इस छठवें गुणस्थान से साधु कहा जाता है। इससे पहले साधु नहीं कहा जाता। मुनि और साधु इससे पहले नहीं कहा जाता। समझ में आया?

और **तब संज्वलन चारित्रमोह का मन्द उदय होता है, तब प्रमाद का अभाव होकर,...** सातवाँ गुणस्थान। **तब स्वरूप के साधने में बड़ा उद्यम होता है...** देखो! **तब इसका नाम अप्रमत्त ऐसा सातवाँ गुणस्थान है...** लो! **इसमें धर्मध्यान की पूर्णता है।** लो! सातवें गुणस्थान में धर्मध्यान है। एकाग्रता है न! और **जब इस गुणस्थान में स्वरूप में लीन हो, तब सातिशय अप्रमत्त होता है,...** लो! सातवें से आगे बढ़कर श्रेणी का आरम्भ करता है आठवें में। श्रेणी अर्थात् विशेष स्थिरता। **तब इससे ऊपर चारित्रमोह का अव्यक्त उदयरूप...** उदय अव्यक्त रहता है। **अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय**

नाम धारक ये तीन गुणस्थान होते हैं। अभी दसवें में लोभ है न। **चौथे से लगाकर दसवें सूक्ष्मसाम्पराय तक कर्म की निर्जरा विशेषरूप से गुणश्रेणीरूप होती है।** लो! सम्यग्दर्शन से लेकर दसवें गुणस्थान तक कर्म की निर्जरा विशेषता से गुणश्रेणीरूप होती है। कर्म की गुणश्रेणी निर्जरा चौथे से होती है। वह ठेठ दसवें तक। भले राग रहे।

इससे ऊपर मोहकर्म के अभावरूप ग्यारहवाँ, बारहवाँ, उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय गुणस्थान होते हैं। इसके पीछे शेष तीन घातियाकर्मों का नाशकर अनन्त चतुष्टय प्रगट होकर अरहन्त होता है... लो! **यह सयोगी जिन नाम गुणस्थान है,...** यह सयोगी जिनभगवान अरिहन्त को कहा जाता है। **यहाँ योग की प्रवृत्ति है। योगों का निरोधकर अयोगी जिन नाम का चौदहवाँ गुणस्थान होता है, यहाँ अघातिया कर्मों का भी नाश करके लगता ही अनन्तर समय में निर्वाणपद को प्राप्त होता है,...** मोक्ष। लो। पहले से चौदहवें तक की मोक्ष तक की बात ले ली। **यहाँ संसार के अभाव से मोक्ष नाम पाता है। इस प्रकार सब कर्मों का अभावरूप मोक्ष होता है,...** यह मोक्ष की व्याख्या की। अब इसके कारण।

इसके कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहे, इनकी प्रवृत्ति चौथे गुणस्थान से सम्यक्त्व प्रगट होने पर एकदेश होती है,... चौथे गुणस्थान से दर्शन-ज्ञान और चारित्र की एकदेश प्रवृत्ति होती है। लो, यह एकदेश चारित्र की प्रवृत्ति कही। इसमें आया या नहीं? अनन्तानुबन्धी का अभाव हुआ है तो एकदेश स्वरूपाचरण हुआ। पहले के पण्डितों की रुचता नहीं। नयी बात अपनी खोटी चलानी है न। नहीं, स्वरूपाचरण चौथे में नहीं होता। यहाँ क्या कहते हैं? **इनकी प्रवृत्ति...** तीनों की प्रवृत्ति। देखा? **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहे, इनकी प्रवृत्ति चौथे गुणस्थान से सम्यक्त्व प्रगट होने पर एकदेश होती है,...** समझ में आया?

मुमुक्षु : चारित्र एकदेश हो और श्रद्धा-ज्ञान तो पूर्ण होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धा-ज्ञान पूर्ण है। तथापि कोई क्षयोपशम समकित होता है न? क्षयोपशम भी है न? ज्ञान भी अपूर्ण है न? समझ में आया?

यहाँ से लगाकर आगे जैसे-जैसे कर्म का अभाव होता है, वैसे-वैसे सम्यग्दर्शन

आदि की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है और जैसे-जैसे इनकी प्रवृत्ति बढ़ती है, वैसे-वैसे कर्म का अभाव होता है, जब घातिकर्म का अभाव होता है, तब तेरहवें गुणस्थान में अरहन्त होकर जीवनमुक्त कहलाते हैं और चौदहवें गुणस्थान के अन्त में रत्नत्रय की पूर्णता होती है,... एकदेश चौथे से शुरु होने पर चौदहवें गुणस्थान के अन्त में रत्नत्रय की पूर्णता होती है। वहाँ चारित्र पूर्ण होता है, अन्त में चौदहवें में। आत्मआचरण। आत्मआचरण, हों! वह चारित्र तो बारहवें में पूरा हो गया। तीनों का आचरण होकर, आत्मा का पूरा आचरण अन्त में चौदहवें में हुआ। **इसलिए अघातिकर्म का भी नाश होकर अभाव होता है, तब साक्षात् मोक्ष होकर सिद्ध कहलाते हैं।**

इस प्रकार मोक्ष का और मोक्ष के कारण का स्वरूप जिन-आगम से जानकर... यह वीतराग के शास्त्र से यह जानना। इसके अतिरिक्त अन्यत्र यह बात सच्ची होती नहीं। परमेश्वर वीतराग सर्वज्ञदेव की वाणी में यह आया। उस आगम से यह बात जानना। **सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष के कारण कहे हैं, इनको निश्चय-व्यवहाररूप यथार्थ जानकर...** स्वआश्रय निश्चय, परआश्रय व्यवहार, ऐसे दोनों मोक्षमार्ग को भलीभाँति जानना। **सेवन करना।** सेवन करना। व्यवहार को व्यवहाररूप से और निश्चय को निश्चयरूप से। ऐसा कहा जाता है। **तप भी मोक्ष का कारण है,...** तप... तप, **उसे भी चारित्र में अन्तर्भूत कर त्रयात्मक ही कहा है।** देखो! यह तप चारित्र में अन्तर्भूत है। चारित्र की उग्रता, वह तप है। **इस प्रकार इन कारणों से प्रथम तो तद्भव ही मोक्ष होता है।** किसी को तो उस भव में मोक्ष होता है। **जब तक कारण की पूर्णता नहीं होती है, उससे पहिले कदाचित् आयुकर्म की पूर्णता हो जाये तो स्वर्ग में देव होता है,...** स्वर्ग में जाये। **वहाँ भी यह वांछा रहती है, यह शुभोपयोग का अपराध है,...** देखो! आहाहा! स्वर्ग में आना पड़ा, यह शुभोपयोग का अपराध है। (शुभ) उपयोग अपराध है।

मुमुक्षु : बहुत आगे ले गये?

पूज्य गुरुदेवश्री : आगे ले गये? आगे कहाँ ले गये? जहाँ है, वहाँ ले गये।

शुभोपयोग का अपराध है,... यह अपराध किया, इसलिए मैं देव में आ गया, ऐसा कहते हैं। तीर्थंकरगोत्र और आहारकशरीर बाँधना, वह शुभोपयोग का अपराध है। पुरुषार्थसिद्धि

उपाय में कहा है। शुभोपयोग का अपराध है, शुभोपयोग अपराधरूप है। आहाहा! अप-राध है वह। वह राध है? राध अर्थात् आत्मा की सेवना। अपराध अर्थात गुनाह। समझ में आया? शुभोपयोग भी अपराध है। अपराध का अर्थ राध नहीं, आत्मा की सेवा नहीं। उसे बुरा राध है। आहाहा! वीतरागमार्ग में यह हो, भाई! समझे न?

यहाँ से चयकर मनुष्य होऊँगा, तब सम्यग्दर्शनादि मोक्षमार्ग का सेवनकर मोक्ष प्राप्त करूँगा, ऐसी भावना रहती है, तब वहाँ से चयकर मोक्ष पाता है। अभी इस पंचम काल में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की सामग्री का निमित्त नहीं है... द्रव्य ऐसा नहीं, क्षेत्र ऐसा नहीं, काल ऐसा नहीं, भाव भी केवलज्ञान को पावे ऐसा नहीं। ऐसे वापस भाव शामिल है। **इसलिए तद्भव मोक्ष नहीं है, तो भी जो रत्नत्रय का शुद्धतापूर्वक पालन करे...** रत्नत्रय की शुद्धतापूर्वक सेवे। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्रव्य के आश्रय शुद्धता से सेवे। लो! **तो यहाँ से देव पर्याय पाकर बाद में मनुष्य होकर मोक्ष पाता है। इसलिए यह उपदेश है-जैसे बने वैसे...** जैसे बने वैसे **रत्नत्रय की प्राप्ति का उपाय करना, इसमें भी सम्यग्दर्शन प्रधान है, उसका उपाय तो अवश्य चाहिए...** समझ में आया? **अवश्य चाहिए; इसलिए जिनागम को समझकर सम्यक्त्व का उपाय अवश्य करना योग्य है, इस प्रकार इस ग्रन्थ का संक्षेप जानो।**

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१०२, गाथा-१०६, गुरुवार, आसोज शुक्ल ०१, दिनांक ०१-१०-१९७०

अब मोक्षपाहुड़। गाथा हो गयी। इसका सार वर्णन करते हैं। छप्पय।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण शिवकारण जानूं,
ते निश्चय व्यवहाररूप नीकैं लखि मानूं।
सेवो निशदिन भक्तिभाव धरि निजबल सारू,
जिन आज्ञा सिर धारि अन्यमत तजि अघ कारूँ।।
इस मानुषभव कूं पाय कै अन्य चारित मति धरो।
भविजीवनिकूं उपदेश यह गहिकरि शिवपद संचरो।।१।।

क्या कहते हैं? ऐसा मनुष्यपना पाकर दूसरा कुछ न करो। जगत के काम, पुण्य-पाप के भाव आदि। ऐसा कहते हैं। अनन्त काल में मनुष्यपना मिला, उसमें सार करना, ऐसा अन्तिम शब्द आया था न? '**अन्य चारित मति धरो**।' दूसरा वर्तन, वर्तन कहीं पर का तो कर नहीं सकता, परन्तु पुण्य-पाप के भाव का वर्तन, वह भी नहीं करो अब। क्योंकि वह तो चार गति में भटकने का कारण है। चार गति में भटकने का दु:ख का कारण है। रतिभाई! यह सब मशीन-बशीन... बाकी दुनिया की सब प्रवृत्ति दु:ख के कारण में है। भटकने का चार गति में, डण्डा खाने का। ढोर, मनुष्य, नारकी होकर, देव होकर भी दु:खी है, कहते हैं। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण शिवकारण जानूं,
ते निश्चय व्यवहाररूप नीकैं लखि मानूं।

निश्चयस्वरूप आत्मा के आश्रय से, भगवान पूर्ण आनन्द अपना स्वभाव, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन, उसके आश्रय से सम्यग्ज्ञान, उसके आश्रय से चारित्र (हो), वह निश्चय। देव-गुरु-शास्त्र आदि की श्रद्धा आदि का भाव, वह व्यवहार। वह विकल्प-राग। उसे '**नीकैं**' बराबर लखी-जानो। लखी अर्थात् जानपना करके बराबर मानो। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान; व्यवहार सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह विकल्प है, शुभराग है। और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह आत्मा के शुद्ध परिणाम—वीतरागी परिणाम, वह मोक्ष का खास कारण

है। उसे '**नीकैं लखि मानूं।**' बराबर जानकर मानो। ऐसा कहते हैं। '**नीकैं लखि मानूं।**' बराबर जानकर मानो। कहो, समझ में आया?

सेवो निशदिन भक्तिभाव धरि निजबल सारू,
जिन आज्ञा सिर धारि अन्यमत तजि अघ कारूँ।।

अपनी शक्ति प्रमाण '**निशदिन**' रात और दिन प्रेमभाव से यह निश्चय और व्यवहार मोक्षमार्ग को जानो और सेवन करो।

मुमुक्षु : भक्ति से जानो।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रेम से। कहा न! प्रेम से। भक्ति अर्थात् प्रेम से। बेगारी से नहीं, ऐसा। समझ में आया? बलजोरी से पर के दबाव के कारण आना पड़े, पिता आवे तो लड़के को आना पड़े, पति आवे तो स्त्री को आना पड़े और सुने। वह तो सब बेगारी है। समझ में आया? शोभालालजी! वह सब बेगारी है, कहते हैं। अपने प्रेम से। अरे! मेरा हित कहाँ है? यह सब अहित के रास्ते में दौड़ रहा है। होली। यह करोड़ों, पाँच करोड़, दस करोड़ की पूँजी दुःख का कारण है। यह दुःख के पर्वत में सिर फोड़ता है। भगवानजीभाई! वह बेचारा दुःखी है, रंक है, भिखारी है। रंक है बेचारा। आत्मा का भान नहीं। और यह पैसा और बैसा यह मेरे... यह मेरे... यह मेरे... भिखारी है। स्वरूप के भानरहित है। माँगता है कि यह हो... यह हो... यह हो... समझ में आया?

कहते हैं, निशदिन यह प्रेम करके आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति का सेवन करो। आहाहा! '**सेवो निशदिन भक्तिभाव धरि**' भक्तिभाव धरि अर्थात् प्रेमभाव से। ऐसा। ऐसा कि उसमें भक्ति आयी न! सेठ को ऐसा कहते हैं, देखो यह भक्ति आयी। प्रेम से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को सेवन करो। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, अतीन्द्रिय आनन्द का धाम, ऐसा अतीन्द्रिय सुखस्वरूप आत्मा है। बाहर में सब दुःख के कारण हैं। यह स्त्री, पुत्र, पैसा, बँगला, हजीरा अर्थात् यह मकान, दस-दस लाख, बीस-बीस लाख के बड़े मकान बँगले, ये सब दुःख की क्रीडायें हैं, दुःख के निमित्त हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा अनन्त काल में कभी इसने जाना नहीं। उसकी इसे कभी अनन्त काल में कीमत की नहीं। जगत की कीमत और बहुमान दिया परन्तु मैं कौन हूँ, उसकी

कीमत इसने कभी की नहीं। इसलिए '**निजबल सारू**' अपनी शक्ति प्रमाण प्रेम धरकर निशदिन सेवो। '**जिन आज्ञा सिर धारि**' सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी, उन तीर्थंकरदेव की आज्ञा मस्तक पर लेकर। भगवान सर्वज्ञ ने जो देखा और कहा, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसी आज्ञा को सिर धारो। समझ में आया?

'**अन्यमत तजि अधकारू**॥' वीतराग परमात्मा सर्वज्ञदेव ने जो मार्ग कहा, उसके अतिरिक्त अन्यमति जितने हैं, वे सब '**अधकारू**' पाप के करनेवाले हैं। समझ में आया? वीतराग परमात्मा सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ तीर्थंकर ने जो मार्ग फरमाया, वह मार्ग ही एक मोक्ष का है। अन्यमत सब पाप करनेवाले, पाप के—मिथ्यात्व के उत्पन्न करनेवाले हैं। '**अध**' अर्थात् पाप, कारू। समझ में आया? यह पक्ष तो नहीं होगा न?

मुमुक्षु : शास्त्रजी.... चाहिए ऐसा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कि यह जैनमत ही सच्चा है और अन्यमत मिथ्या है, यह पक्ष नहीं न? ऐसा कहता हूँ। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। जिनमत कोई पक्ष नहीं। आत्मा का आनन्द वीतरागी स्वभाव ऐसा जिसने अनुभव किया, जाना और केवलज्ञान हुआ, उसने यह मार्ग बताया। वस्तु यह है, भाई! तेरी शान्ति का ठिकाना पड़े, ऐसा आत्मा शान्त तो तेरे पास है। बाकी कहीं शान्ति है नहीं।

मुमुक्षु : अन्यमत...

पूज्य गुरुदेवश्री : 'अधकारू' 'अन्यमत तजि'

मुमुक्षु : अन्यमत को छोड़कर।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़कर। कैसे हैं अन्यमत? कि '**अधकारू**' पाप।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब पाप...

मुमुक्षु : कोई भी प्राणी हो...

पूज्य गुरुदेवश्री : हो। यह क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : किसी मत का माननेवाला हो...

पूज्य गुरुदेवश्री : सब पाप के करनेवाले हैं। जैनमत के अतिरिक्त सब पाप के करनेवाले हैं। यह तो बात पहले की।

मुमुक्षु : यह निजबल का अर्थ क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : निजबल-अपनी शक्ति प्रमाण। कोई चौथे गुणस्थान में, कोई मुनिपना। ऐसा।

मुमुक्षु : ...कैसे मानना?

पूज्य गुरुदेवश्री : खबर नहीं पड़ती कि मुझमें अभी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कठिन है, मुनिपने की योग्यता नहीं। ऐसी खबर पड़ती है या नहीं अपने को? सम्यग्दर्शन की योग्यता मेरे लिये बस है। अधिक मेरी शक्ति है नहीं। चारित्र की मेरी शक्ति नहीं। चारित्र की शक्ति हो, वह चारित्र धारण करे; सम्यग्दर्शन की शक्ति हो, वह सम्यग्दर्शन धारण करे। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पहले सम्यग्दर्शन धारे। पहली बात यह है न? पहली बात आ गयी कल ऊपर। देखो!

इसमें भी सम्यग्दर्शन प्रधान है, इसका उपाय तो अवश्य चाहिए... पहला। सम्यग्दर्शन का उपाय पहला करना। चारित्र की, वीतरागता की शक्ति न हो तो पहला यह उपाय कर। शक्ति हो तो सम्यग्दर्शनसहित, अनुभवसहित, स्थिरता चारित्र की आनन्द की स्थिरता करना। वह शक्तिप्रमाण करना। हठ से करना नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? हठ से कहीं धर्म नहीं होता। यह आता है न? षोडशकारण भावना में आता है न? शक्ति तप त्याग।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा न! यह दर्शन की बात चलती है।

अखण्ड चैतन्यमूर्ति पूर्णानन्द। यह तो वह बात चलती है न, वह तो सवेरे-शाम यही चलता है यहाँ तो। पूर्ण स्वरूप शुद्ध ध्रुव, उसका अनुभव, उसका नाम सम्यग्दर्शन। उसे पहले धारण करो, ऐसा। सम्यग्दर्शन को पहले शक्तिरूप से तत्त्व पड़ा है, उसे प्रतीतिरूप करो, ऐसी बात है। पहली यह चीज है। पश्चात् शक्ति हो तो अधिक। ज्ञान, चारित्र, वीतरागता प्रगट करे। समझ में आया?

'**जिन आज्ञा सिर धारि**' वीतराग की आज्ञा, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन को धारण करके। अन्यमत तजि—वीतरागमार्ग के अतिरिक्त जितने मार्ग हैं, वे सब पाप के करनेवाले हैं। समझ में आया? '**इस मानुषभवकूं पायकै**' अहो! यह मनुष्यदेह मुश्किल से अनन्त काल में मिला है। ढोर और नरक में पड़ा था। कीड़ा, कौआ और कुत्ते में, कंथवा में अवतार कर-करके इसे कचूमर निकल गया। यहाँ मनुष्यपना जहाँ आया, जहाँ कुछ थोड़ा-बहुत बाहर का देखे, पाँच, पचास लाख, करोड़, दो करोड़ पैसा, स्त्री-पुत्र अच्छे, इज्जत बड़ी (मिली उसमें) मर गया। मैं चौड़ा और गली सकड़ी हो गयी। आहाहा! हम दूसरे से बढ़ गये हैं। इसमें? पाप में।

मुमुक्षु : ...पाप में पड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पाप में पड़ा। कहाँ का कहाँ था। था यहाँ? नैरोबी जाकर मोम्बासा जाकर कितने रुपये... मकान हो, वह बेच डाले, डेढ़ लाख का किराया था भाई को। इतने तो मकान थे। बारह महीने में डेढ़ लाख रुपये का किराया।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। दो लाख कम देकर बेच डाला, कहते हैं। क्या करे वहाँ पैसा न आवे तब। उसमें धूल में भी कुछ नहीं। करोड़ और दो करोड़ और दस करोड़ के बड़े अंक गिनना है न धूल के। वे सब दुःख के कारण हैं। शोभालालजी! यह दुनिया तो पैसेवाले को सुखी कहती है तुम्हें।

मुमुक्षु : रुपयों को नदी में डालना?

पूज्य गुरुदेवश्री : डाले कहाँ और रखे कहाँ? वह परचीज़ है, उसे डालनी है कहाँ? वह तो जड़ है। जड़ को रख नहीं सकता, जड़ को छोड़ नहीं सकता। मिथ्यात्वभाव को ग्रहण कर सकता है और समकितभाव को छोड़ सकता है। समकितभाव को ग्रहण करके मिथ्यात्वभाव को छोड़ सकता है।

मुमुक्षु : दोनों साथ नहीं रहें?

पूज्य गुरुदेवश्री : जहर और अमृत दोनों साथ रहते होंगे? एक म्यान में दो तलवार रहती होगी?

राग और द्वेष तथा पुण्य और पाप मेरे, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव। बाहर की चीज़ तो धूल कहीं रह गयी अब। स्त्री, पुत्र, वह तो बेचारे परवस्तु। उनके कारण से आये, उनके कारण से चले जानेवाले हैं। वे कहीं तेरे नहीं और तेरे लिये आये नहीं। आहाहा! परन्तु तेरे लिये जो अन्दर राग और द्वेष, पुण्य और पाप ऐसे भाव, वह मेरे, मैं उनका, इसका नाम मिथ्यात्वभाव, अधर्मभाव, पापभाव। समझ में आया? उसे छोड़। भगवान आनन्दकन्द निष्परिग्रह निर्विकल्पस्वरूप को पकड़, ग्रहण कर। पहला सम्यग्दर्शन यह है। समझ में आया? देखो! क्या कहा?

'**इस मानुषभवकूं पायकै अन्य चारित मति धरो।**' दूसरा आचरण सम्यग्दर्शन सिवाय, मोक्षमार्ग सिवाय, दूसरा आचरण पुण्य और पाप का, बन्ध का-जहर का, वह आचरण न करो। आहाहा! समझ में आया? '**इस मानुषभवकूं पायकै अन्य चारित मति धरो।**' चारित्र अर्थात् आचरण। मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान और राग-द्वेष के परिणाम अन्य चारित्र हैं, दुःखदायक हैं, नरक और निगोद के रास्ते जाने के पन्थ हैं, वे सब। आहाहा! समझ में आया? दुनिया में खम्मा-खम्मा होती है। देखो, वह और मर गया न कोई? अरबस्तान का प्रेसीडेन्ट। दुनिया में बाहर तो आहा...हा..हा..हा..! मरकर नरक में गया होगा नीचे। अभी चिल्लाहट मचाता होगा। हाय रे मर गया। कहाँ से आया, इसकी खबर नहीं उसे। ऐई! शोभालालजी! पर्दा गिरा एक। मूढ़ दुनिया को भान कहाँ है? बाहर में उम्र छोटी ६२ वर्ष की। खम्मा... खम्मा... हिटलर को कितना होता था, देखो न! हिटलर ऊपर से उतरता हो, ऐसे बलून में। नीचे हजारों पुलिस ऐसे। क्या कहलाती है उसकी बन्दूक? सलामी। उसकी सलामी वहाँ लेने की अब नरक में। वह हिटलर नरक में। हाय-हाय। एक-एक दिन और एक-एक घड़ी उसकी जाये, ऐसे तो अरबों वर्ष तक वहाँ दुःखी रहेगा। यहाँ तो पाँच-पच्चीस-पचास वर्ष कदाचित्। वहाँ तो अरबों क्या कोई पल्योपम में जाये तब तो असंख्य अरब वर्ष। आहाहा! कहो, पच्चीस वर्ष, पचास वर्ष। मिनिट कितनी? पचास वर्ष के मिनिट संख्यात हो। और पल्योपम में जाये तो एक मिनिट में असंख्य वर्ष, एक मिनिट में असंख्य वर्ष, एक मिनिट का दुःख भोगा हुआ, पाप किया हुआ, उसका असंख्य वर्ष का दुःख वहाँ।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़ी नहीं है। पचास वर्ष लो न तुम। यहाँ बीस वर्ष तक तो बालक में गँवाये। बाद में वृद्ध हो तो ठूँठ जैसे गँवाये हों। बीच में जरा २५-३०-४० वर्ष हूं-हाँ, हूं-हाँ बड़ा होकर माना हो। अब उसमें ४०-५० वर्ष के मिनिट कितने? संख्यात। और नरक में पल्योपम में जाये। एक पल्योपम में। सागरोपम होता है बड़ा। एक पल्योपम में जाये तो एक मिनिट यहाँ, वहाँ असंख्य अरब वर्ष। एक मिनिट और असंख्य अरब वर्ष। इतना दु:ख भोगे।

मिथ्यात्व का और राग-द्वेष का तीव्र पाप किया है। तीव्र। उसे ऐसा कहाँ था? माप मर्यादा थी कि इतना ही पाप करना? और इतने काल तक करना, ऐसी मर्यादा थी? जीवुं तो सौ वर्ष तक, लाख वर्ष तक जीवुं तो यह सब मुझे करना। मेरे जितने विरोधी हों, उन सबको उड़ा दूँ। उनकी संख्या कहाँ आयी? माप कहाँ आया? ऐई! सेठ! थोड़े पाप का फल नहीं, यह बहुत पाप है, ऐसा बतलाना है।

मुमुक्षु : अज्ञान में हुए हों तो ...

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञान हो तो जहर खाये तो मर जाये या नहीं? अज्ञान से जहर आवे, हरड़ की जगह जहर आवे तो मर जाये या बचता होगा? यह अज्ञान कहीं बचाव है? समझ में आया? मूढ़पना, वही महापाप है, वही महापाप है। आहाहा! अरे! प्रभु! भाई! ऐसे अवतार मिले, (वे) चले जायेंगे। देखो न! '**इस मानुषभवकूं पायकै**' आहाहा! अनन्त काल में ऐसा मनुष्यदेह (मिला)। कहीं कीड़े, कौवे, कुत्ते में भटक-भटककर मर गया। और यहाँ जहाँ थोड़ा-बहुत देखे, दो-चार लड़के अच्छे (हुए हों), पाँच-पच्चीस लाख, पैसे करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़, धूल करोड़ (हों) और आहाहा! स्त्री आज्ञाकारी, लड़के आज्ञाकारी रूपवान, बहुएँ अच्छी, समधी अच्छे। वेवला अर्थात् बहू के माँ-बाप। समधी अच्छे, समधि। बस। मर गया, परन्तु अब सुन न! चैतन्यज्योति भगवान आत्मा तेरी निज चीज़, उसकी तो तूने सम्हाल की नहीं। और इस पर की सम्हाल में तेरा जीवन गया। ऐसा मनुष्यभव! इसके लिये मनुष्यभव है तुझे? ऐसा कहते हैं, देखो न। ऐई! पण्डितजी! आहाहा! भगवान! यह समय मिला है।

मुमुक्षु : दो हजार सागर...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। दो हजार सागर त्रस में रहे। फिर जाए स्थावर में। एकेन्द्रिय। आहाहा!

कहते हैं, अरे! '**इस मानुषभवकूं पायकै अन्य चारित मति धरो।**' आहाहा! भारी बात करते हैं। है तो स्वयं गृहस्थ पण्डित, परन्तु कहते हैं, दूसरा आचरण न हो। मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान, राग-द्वेष के परिणाम अब न करो। आहाहा! समझ में आया? '**भविजीवनिकूं उपदेश यह गहिकरि शिवपद संचरो**' यह तो भव्यजीव के लिये उपदेश है। अभव्य— नालायक के लिये कुछ उपदेश नहीं है। ऐसा कहते हैं। आहाहा! '**भविजीवनिकूं उपदेश यह गहिकरि**' यह उपदेश का सार ग्रहण करके। '**शिवपद संचरो**' अब मोक्ष में जाओ। संचरो। तुम्हारा मोक्ष हो, बापू! संसार कारागृह। चौरासी के अवतार में कारागृह-जेल में बहुत दु:खी हुआ, भाई! आहाहा! कहो, रतिभाई! यह सब तुमको-पैसेवालों को सुखी कहते हैं, लो! यहाँ कहते हैं कि वह दु:खी है, ऐसा कहते हैं। अब माप किस प्रकार निकालना इसमें? ऐई! यह सब पैसेवाले।

मुमुक्षु : दो मत जगत में पहले थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो मत तो अज्ञानी का मत हो, वह कहीं सच्चा मत कहलाये? ऐई! सेठ! बालक का माप, वह सच्चा कहलाये? भव्य जीव के लिये यह उपदेश है। अभव्य को लागू नहीं पड़ेगा, नालायक प्राणी को। आहाहा! बालक को माप करना आता है? दृष्टान्त नहीं दिया था एक बार।

रविवार का दिन था। उसका पिता ले आया पचास वार। क्या कहलाता है? आलपाक। यह आलपाक नहीं आता? पचास वार ले आया। पचास हाथ। वह लड़का छोटा आठ वर्ष का था। वह फुरसत में था तो ऐसे नापा। बापूजी! यह सौ हाथ होता है। तुम कहते हो कि पचास हाथ है। सौ हाथ ले आये। भाई! तेरे हाथ काम नहीं आते। हमारे व्यापार के गज में तेरा गज काम नहीं आता। यह हमारा गज काम आता है। उसी प्रकार ज्ञानी के गज ज्ञान में काम आते हैं, अज्ञानी के माप काम में नहीं आते। समझ में आया? '**भविजीवनिकूं उपदेश यह गहिकरि शिवपद संचरो ॥१॥**'

वंदूं मंगलरूप जे अर मंगलकरतार।
पंच परम गुरु पद कमल ग्रंथ अंत हितकार।।२।।

'**बंदूं मंगलरूप**' पाँच परमेष्ठी तो मंगलस्वरूप हैं। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य निमित्तरूप से हैं न मंगलस्वरूप। आत्मा ही मंगलस्वरूप है। यहाँ भगवान पंच परमेष्ठी को मंगलस्वरूप कहा गया है। '**अर मंगलकरतार**' मंगल के करनेवाले भगवान त्रिलोकनाथ निमित्तरूप से हैं। पाँचों को ही परमगुरु कहा। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु परमगुरु हैं, परमगुरु। जिन्हें वीतरागता परिपूर्ण प्रगटी अरिहन्त को, सिद्ध को। आचार्य, उपाध्याय, साधु को भी बहुत वीतरागता प्रगट हुई है। उन्हें इस जगत में पंचम परमगुरु, पाँच बड़े परमगुरु कहा जाता है। जगत में बड़े में बड़ा हो तो पंच परमेष्ठी बड़े हैं। बाकी सब नीचे हैं। समझ में आया? आहाहा! '**पद कमल**' उनके पदरूपी कमल को वन्दन करता हूँ। '**ग्रंथ अंत हितकार**' ग्रन्थ के अन्त में हित को करने के लिये। ग्रन्थ का अन्त है न अन्तिम?

यहाँ कोई पूछे कि ग्रन्थों में जहाँ-तहाँ, पंच णमोकार की महिमा बहुत लिखी है,... पहले कहा न? .... पहले। क्या कहा यह मोक्षपाहुड़? इसके पहले स्तवन में आया था न? मोक्ष है न यह?

णाणमयं अप्पाणं उवलब्धं जेण झाडियकम्मेण
चइउण य परदव्वं णमो णमो तस्स देवस्स॥१॥

दूसरी गाथा ऐसी है। '**णमिऊण य तं देवं अणंतरवरणाणदंसणं सुद्धं।**' उसे कहकर अब मैं मोक्षपाहुड़ कहूँगा। पहली-दूसरी गाथा में नमस्कार (किया है)। कुन्दकुन्दाचार्य महाप्रभु, पंच परमेष्ठी को मंगल करके, वन्दन करके, मंगल करके स्मरण करके वन्दन किया है। यह मैं शास्त्र मोक्षपाहुड़ कहूँगा। क्योंकि पंच परमेष्ठी परमगुरु हैं, उनका कहा हुआ यह मार्ग है। पंच परमेष्ठी भगवान अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु। वीतरागी भगवान परमगुरु जगत में बड़े में बड़े पुरुष हों तो वे हैं। समझ में आया?

पंच णमोकार की महिमा बहुत लिखी है, मंगलकार्य में विघ्न को दूर करने के लिये इसे ही प्रधान कहा है... देखो! बाहर के विघ्न मिटाने के लिये भी परमेष्ठी को मुख्य कहा। मंगल किया न? मांगलिक। **और इसमें पंच परमेष्ठी को नमस्कार है, वह पंच**

परमेष्ठी की प्रधानता हुई, पंच परमेष्ठी... सर्वोत्कृष्ट पद जिसका आनन्दमय, उसके समक्ष राग भी नहीं, पैसा नहीं, स्त्री-पुत्र नहीं, परिवार नहीं, यह हजीरा—मकान नहीं। और स्वयं परमगुरु बड़े कहने में आते हैं। कहो, समझ में आया ? अपनी सम्पदा प्रगट करके बड़े हुए, उन्हें यहाँ बड़े कहे जाते हैं। आहाहा ! **पंच-परमेष्ठी को परम गुरु कहे, इसमें इसी मन्त्र की महिमा तथा मंगलरूप का और इससे विघ्न का निवारण, पंच परमेष्ठी के प्रधानपना और गुरुपना तथा नमस्कार करनेयोग्यपना कैसे है ? वह कहो।** समझ में आया ? पहले से शुरु किया है न ? **इसके समाधानरूप कुछ लिखते हैं :-** कुछ लिखते हैं। सब तो भगवान लिखे।

प्रथम तो पंच णमोकार मन्त्र है, इसके पैंतीस अक्षर हैं,... पैंतीस अक्षर हैं। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आईरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। समझ में आया ? लोए सव्व। वे अन्त में डालते हैं। एक-एक में लोए सव्व डाले तो अधिक होते। नहीं ? णमो लोए सव्व अरिहंताणं, तो अधिक होते। परन्तु अन्त में णमो लोए सव्व साहूणं। फिर सबमें डाला चारों में। कहा चारों को। णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं। परन्तु णमोकार मन्त्र में यह अन्तिम णमो लोए (सव्व) चारों में समाहित कर देना, ऐसा करके कहा है। इसलिए यह सब होकर णमो लोए उनमें न डालकर लोए सव्व साहूणं में डाला, तब पैंतीस अक्षर होते हैं।

ये मन्त्र के बीजाक्षर हैं... मन्त्र का बीज यह है। पैंतीस अक्षर भगवान के पंच परमेष्ठी के मन्त्र का बीज है। **तथा इनका योग सब मन्त्रों से प्रधान है,...** इन पाँचों ही अक्षरों का मिलाप सब मन्त्रों में बड़े में बड़ा मन्त्र है। यह घटयन्त्र और घट क्या कोई कहते हैं ऐसा ? यह घण्टाकर्ण और अमुक कर्ण करते हैं न ? उन सबमें यह पंच परमेष्ठी के पैंतीस अक्षर बड़े में बड़ा मन्त्र है। समझ में आया ? **इन अक्षरों का गुरु आम्नाय से शुद्ध उच्चारण हो...** लो ! यह पैंतीस अक्षर को गुरु आम्नाय से शुद्ध वचन बोलने का। **तथा साधन यथार्थ हो, तब ये अक्षर कार्य में विघ्न के दूर करने में कारण हैं...** बाहर के विघ्न टलने में भी यह पैंतीस अक्षर मन्त्र के हैं। इस प्रकार का मन्त्र। मिटना हो तो मिटे, हों ! वह तो पुण्य हो तो फिर मिटे। परन्तु यहाँ तो विघ्न का नाश करनेवाला सिद्ध करना है न ? यह निश्चय सत्। अन्यमति कहे विघ्न का नाश। यह तो पूर्व का कोई पुण्य हो तो विघ्न का

नाश होता है। परन्तु यह पंच परमेष्ठी तो वास्तव में विघ्न का नाश करनेवाले हैं। पाप के नाश करनेवाले और पवित्रता की प्राप्ति करानेवाले। ऐसे में वे निमित्त भगवान पंच परमेष्ठी हैं। समझ में आया?

बहुत मन्त्र (होते हैं) परन्तु इस महामन्त्र में यह मूल मन्त्र है। आहाहा! उसकी लोगों को कीमत नहीं। बहुत बारम्बार जन्म से णमो अरिहंताणं सीखा है न? इसलिए फिर हो गया साधारण। दूसरा मन्त्र नया आवे कुछ। आहाहा! ॐ नम सिद्धेभ्य:। ॐ... ॐ... अ, सि, आ, उ, सा। नये अक्षर हों, तब ऐसा लगे कि आहाहा! परन्तु यह मूल चीज़ है। यह पंच परमेष्ठी के मूल, ओहोहो! पूरे लोक को हिला डाले। यदि उसकी मन्त्र की ध्वनि बराबर उठे, तो विघ्न टाले, ऐसा कहते हैं, देखो न! भूत-बूत वहाँ खड़े नहीं रहते। मन्त्र का यथार्थ जप जहाँ अन्दर उठा... समझ में आया? यह भूत-बूत खड़े नहीं रहते। भागते हैं। आहाहा! यह महा परमेष्ठी पद, उनका यह स्मरण मन्त्र करते हैं। उसका विश्वास होना चाहिए! विश्वास बिना ऐसे का ऐसे ठें... ठें... करे, ऐसा नहीं चलता।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। होता है परन्तु सच्चा तो यह है। नाम भले दे। परन्तु उसकी पहिचान नहीं होती उसे। जैन परमेश्वर की परम्परा... कहेंगे यहाँ। इसके अतिरिक्त यह बराबर इस मन्त्र की पहिचान है नहीं। शब्द ये हों, परन्तु भाव में अन्तर है न? अरिहन्त पद को दूसरे प्रकार से चित्रित किया है दूसरों ने। वह तो बौद्ध में भी अरिहन्त-अरिहन्त शब्द आता है। शब्द आवे उसमें क्या काम आवे? यह आयेगा अन्दर।

अनादि निधन नीचे आयेगा। कहते हैं कि यदि यथावत साधन करे। देखो! है न? **साधन यथार्थ हो, तब ये अक्षर कार्य में विघ्न के दूर करने में कारण हैं इसलिए मंगलरूप हैं। 'मं' अर्थात् पाप को गाले, उसे मंगल कहते हैं तथा 'मंग' अर्थात् सुख को लावे, दे, उसको मंगल कहते हैं,...** लो! दो अर्थ लिये। मं अर्थात् पवित्रता सुख को दो अथवा मंग अर्थात् पाप को गल अर्थात् गाले। मंगल। **उसको मंगल कहते हैं, इससे दोनों कार्य होते हैं। उच्चारण से विघ्न टलते हैं, अर्थ का विचार करने पर सुख होता है,...** कहो, समझ में आया? उसके भाव की बात है, हों! बाहर से भगवान कुछ करते नहीं। अर्थ विचारे सुख होता है। इसका अर्थ भाव विचारे। अरिहन्तपद, सिद्धपद ऐसा मेरा

पद है, ऐसा विचारे तो उसे सुख होता है। देखो! दो बातें कीं। बराबर शब्दों के उच्चारण में विकल्प है, उससे पाप गलते हैं। समझ में आया? और यह कहे हुए पाँच परमेष्ठी का भाव लक्ष्य में ले। वीतरागभाव पाँचों ही पद हैं। यह अपने आ गया है इसमें। पाँचों पद मुझमें हैं। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय वह मेरा पद है। निजपद में वह सब है, ऐसा स्मरण कर याद करके करे तो उसे सुख होता है, आनन्द होता है स्वभाव के आश्रय से।

मुमुक्षु : यथार्थ साधन का अर्थ यह?

पूज्य गुरुदेवश्री : यथार्थ साधन का अर्थ कि बाहर से यदि उच्चारण करे तो पाप टले, अन्तर में उसका भान करे वीतरागता का तो आत्मा को सुख मिले।

मुमुक्षु : यथार्थ साधन... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। यह यथार्थ साधन सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अन्दर। साधन अर्थात् विकल्प अकेला नहीं। देखो! सुख कहा न? अन्तर वीतरागता को याद करके अन्तर में वीतरागता प्रगट करे तो सुख होता है।

मुमुक्षु : ...साधन कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह साधन यह। बाहर के साधन अकेले मन्त्र गिनना, वह नहीं। मन्त्र में कहा हुआ भाव। वीतरागता को स्मरण करे, विकल्प को छोड़े। राग, वह मैं नहीं, वीतरागता वह मैं हूँ, ऐसा करे तो सुख होता है। वह यथार्थ साधन है।

इसी से इसको मन्त्रों में प्रधान कहा है, इस प्रकार तो मन्त्र के आश्रय महिमा है। मन्त्र के आश्रय से यह महिमा कही गयी है। बाहर और अन्दर दोनों।

पंच परमेष्ठी को नमस्कार इसमें है—वे पंच परमेष्ठी अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये हैं, इनका स्वरूप तो ग्रन्थों में प्रसिद्ध है, तो भी कुछ लिखते हैं :- यह अनादिनिधन... देखो! अनादि अनन्त **अकृत्रिम, सर्वज्ञ की परम्परा से...** देखो यह। उससे पंच परमेष्ठी होना चाहिए। कल्पित बाहर से किया अपने आप, वीतरागमार्ग को छोड़कर, उसकी यहाँ बात नहीं है। समझ में आया? अनादिनिधन अर्थात् अनादि-अनन्त। अनादि अर्थात् आदि नहीं, निधन अर्थात् अन्त नहीं। अनादि-अनन्त **अकृत्रिम, सर्वज्ञ की परम्परा से सिद्ध...** नहीं किया हुआ नया। अनादि का सर्वज्ञपद चला आता है।

ऐसे सर्वज्ञ की परम्परा से सिद्ध **आगम में कहा है...** सर्वज्ञ की परम्परा के आगम में यह बात है। समझ में आया? भगवान की परम्परा छोड़कर नये कृत्रिम आगम बनाये, उसमें यह बात है नहीं, ऐसा कहते हैं।

ऐसा षट्द्रव्यस्वरूप लोक,... लो! छह द्रव्यस्वरूप लोक है। पूरा लोक छह द्रव्यस्वरूप है। **इसमें जीवद्रव्य अनन्तानन्त हैं...** जीवद्रव्य अनन्तानन्त हैं। **पुद्गलद्रव्य इनसे अनन्तानन्त गुण हैं, एक-एक धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य हैं और कालद्रव्य असंख्यात द्रव्य है। जीव तो दर्शनज्ञानमयी चेतनास्वरूप है।** लो। आत्मा तो दर्शन-ज्ञान चेतनास्वरूप है। यह दया, दान और व्रत के विकल्पस्वरूप आत्मा नहीं है। पैसा स्वरूप, स्त्री स्वरूप, इज्जत स्वरूप आत्मा नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? गजब! पूरी दुनिया को विस्मृत करे, तब इसे आत्मा बैठे। कहीं भी यदि पर में महिमा रह गयी तो वह आत्मा का मेल नहीं खायेगा।

भगवान आत्मा दृष्टा-ज्ञाता के स्वभावस्वरूप चैतन्य है। उसे आत्मा कहते हैं। दया, दान और व्रत के विकल्प, वह भी आत्मा नहीं। आहाहा! यह अनन्तानन्त आत्मा में आत्मा कैसा, यह वर्णन करते हैं। जिसने दृष्टा और ज्ञातास्वभावमय चेतना कभी छोड़ी नहीं। ऐसा जिसका स्वरूप है। पुण्य-पाप तो नये उत्पन्न होते हैं और छूट जाते हैं। वह कहीं इसका स्वरूप नहीं है। शरीर नया मिले और जाये, वह कहीं इसका स्वरूप नहीं है। स्वरूप तो दर्शन-ज्ञान। जानने और देखने का ऐसा स्वभाव, ऐसा चैतन्यरूप वह आत्मा का स्वरूप। ऐसा चेतनरूप, वह जीव का स्वरूप। आहाहा! स्वरूप अर्थात् उसका अपना रूप—अपना भाव। आहाहा! कहो, समझ में आया?

दर्शनज्ञानमयी चेतनास्वरूप है। अजीव पाँच हैं... आत्मा के अतिरिक्त। छह द्रव्य हैं, उनमें पाँच तो अजीव हैं। **चेतनारहित जड़ हैं—धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये चार द्रव्य तो जैसे हैं, वैसे ही रहते हैं...** चार को कुछ विकार-बिकार नहीं है। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल **इनके विकारपरिणति नहीं है, जीव-पुद्गलद्रव्य के परस्पर निमित्त-नैमित्तिकभाव से विभावपरिणति है...** अब विशिष्टता करते हैं। जीव और पुद्गल में परस्पर निमित्त-निमित्त सम्बन्ध से विकार है। चार में तो विकार है नहीं।

इनमें भी पुद्गल जो जड़ है,... यह मिट्टी शरीर, वाणी जड़ है। **इसके विभावपरिणति**

का दु:ख-सुख का संवेदन नहीं है... है ? यह विभाव परिणमन है, वह जड़ का। देखो, इस शरीर का, उसे दु:ख है ? अकेले परमाणु का स्वभाव परिणमन है। अकेला परमाणु। सुख है ? दु:ख कहाँ है उसे ? परमाणु में यह लकड़ी देखो। यह विभाव परिणमन है इसका। विकारी परिणमन है, यह परमाणु का। परन्तु विकार कोई दु:ख नहीं। एक परमाणु अकेला रहे। अविकारी परिणाम है, वह उसे दु:ख नहीं। समझ में आया ?

कहते हैं कि लड्डू अनन्त परमाणुओं का विभाव परिणाम है। लड्डू है, वह विभावपरिणाम है, परन्तु उसे कुछ सुख नहीं। और परमाणु जहररूप परिणमे-विकार तो सुख नहीं। परमाणु विष्टारूप परिणमे तो दु:खी और लड्डूरूप परिणमे तो सुखी, ऐसा होगा ? जड़ को सुख-दु:ख कैसा ? भले विभावरूप हो। जहररूप परिणमे तो भी विभाव है। लड्डूरूप परिणमे तो भी विभाव है। सड़े हुए कुत्ते के परमाणुरूप परिणमे तो वह विभाव है। सड़ा हुआ गन्ध मारे ऐसी, तो भी वह तो विभावपरिणति, परन्तु उसे कुछ दु:ख है नहीं, जड़ को दु:ख है नहीं। सुन्दर आकृति परिणति ऐसी सुन्दर, सुगन्ध मारे फूलझाड़ में। फूलझाड़ में कितनी सुगन्ध ! कितने ही वृक्ष में जाकर ऐसे श्वास ले। वह सुगन्ध है, उसे सुख होगा ? परमाणु को सुख होगा ? परमाणु सुगन्धरूप हो या दुर्गन्धरूप हो, जहररूप हो या कस्तूरीरूप हो, उसे सुख-दु:ख है नहीं। इसलिए उसकी बात निकाल डालो। चार वे निकल गये, दो को विकार होता है। जड़ में तो उसे निकाल डाला।

अब जीव। लो ! **जीव चेतन है, इसके सुख-दु:ख का संवेदन है।** भगवान आत्मा जाननेवाला है, उसे विभावरूप तीव्र परिणमन हो, वह दु:ख। मन्द हो, वह सुख। दोनों है दु:ख। यह सुख, वह दु:ख (ही है), परन्तु लोक की दृष्टि से समझाया है। उसे कषाय मन्द का परिणमन हो तो सुख कहा जाता है। लोग ऐसा कहते हैं। शान्त... है दोनों विभाव परिणाम। **इसके सुख-दु:ख का संवेदन है। जीव अनन्तानन्त हैं, इनमें कई तो संसारी हैं,...** जीव के दो भेद हैं न ? कोई संसारी और कोई सिद्ध। **संसार में निवृत्त होकर सिद्ध हो चुके हैं।** लो ! और जो संसार से निवृत्त हुए, वे सिद्ध हुए। **संसारी जीवों में कई तो अभव्य हैं तथा अभव्य के समान हैं,...** आहाहा ! संसारी में तो कितने ही जीव तो अभव्य हैं, अभव्य। कोरडुं मूँग जैसे, कोरडुं मूँग जैसे। लाख मण पानी डाले तो भी सीझता नहीं।

कोरडु का क्या कहते हैं ? क्या कहते हैं ? वह सीझता नहीं, ऐसे अभव्य जीव हैं। कोरडुं भाषा दूसरी है तुम्हारी। कोरडु कहते हैं ? दूसरी भाषा कहते हैं। उसकी भाषा क्या है ? इसकी भी खबर नहीं होती।

मुमुक्षु : मठर...

पूज्य गुरुदेवश्री : मठर अर्थात् क्या ? ... गले नहीं। इसी प्रकार कितने ही जीव ऐसे हैं कि गलते ही नहीं। लाख बार उपदेश जाये उसके कान में। परन्तु ऐसे छूने नहीं देता। मगसळिया जैसे पत्थर। मगसळिया छोटा पत्थर हो मूँग जितना इतना सा। मूँग जितना पत्थर। लाख मण पानी पड़े परन्तु वह एकदम कोरा। इतना ऊपर कोमल होता है कि पानी छूता ही नहीं। नदी में हो। रेत में मगसळिया पत्थर बारीक-बारीक। हमने तो वापस सब देखा हुआ है। ... नदी में देखा हुआ है। हरे होते हैं। हरे बारीक गोल-गोल पत्थर मूँग जैसे। पानी छूए तो हो गया। निकल जाये कुछ नहीं होता। इसी प्रकार कितने ही अभव्य और कितने ही अभव्य जैसे। जीव बहुत हैं न ? भव्यजीव बहुत हैं, उसमें कोई मोक्ष नहीं जाये, ऐसे अनन्त निगोद में पड़े हैं। आहाहा!

दोनों जाति के संसार से निवृत्त कभी नहीं होते हैं,... दोनों जाति के जीव संसार से निवृत्त नहीं होते। **इनके संसार अनादिनिधन हैं**। लो! इस कारण से अनादि-अनन्त संसार है। रहनेवाला है। तू टाल तो टले, बाकी संसार अनादि-अनन्त है। आहाहा!

मुमुक्षु : दूरान्दूर भव्य कभी तो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। कभी नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सरीखा कहा न ? अभव्य सरीखा कहा।

मुमुक्षु : यह तो दृष्टान्त है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टान्त यह। विधवा महिला है, पुत्र होने के योग्य है परन्तु उसे पुत्र होने की योग्यता ही प्रगट नहीं है। और कितने ही सधवा हो और पुत्र होने के योग्य हो नहीं, ऐसा। शास्त्र में ऐसा दृष्टान्त है। समझ में आया ? शास्त्र में दृष्टान्त है। **अब इनके संसार की उत्पत्ति कैसे है, वह कहते हैं :-** यह जीव की व्यवस्था कही।

जीवों के ज्ञानावरणादिक आठ कर्मों का अनादिबन्धरूप पर्याय है,... देखो! है तो यह जीव ज्ञान-दर्शन-चेतनास्वरूप। ऐसे अनन्त आत्मा होने पर भी कितने ही आत्मा अभव्य जैसे, अभव्य जैसे को मुक्ति नहीं होती। अब कितनों को अनादि से संसार क्यों है उन्हें? **आठ कर्मों का अनादिबन्धरूप पर्याय है, इस बन्ध के उदय के निमित्त से जीव राग-द्वेष-मोहादि विभावपरिणतिरूप परिणमता है,...** लो! भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन और आनन्दस्वरूप, ऐसा उसका स्वभाव होने पर भी कर्म के निमित्त के संग से पर्यायबुद्धि में उसमें राग-द्वेष और मिथ्यात्वरूप परिणमता है। वह संसारी जीव अनादि से ऐसे हैं।

इस विभावपरिणति के निमित्त से नवीन कर्मबन्ध होता है,... लो! आठ कर्म का निमित्त है, उसके लक्ष्य से परिणमे मिथ्यात्वरूप, अज्ञानरूप। और उसके कारण से नये कर्म होते हैं। द्रव्यकर्म का निमित्त और भावकर्म मिथ्यात्व आदि का अपने को नैमित्तिकभाव और उसका निमित्तपना नये कर्म का नैमित्तिकपना। ऐसा अनादि से संसार अज्ञानी का चला आता है। ओहोहो! गहन... गहन... गहन... गहन... कहीं नजर डाले तो कहीं भव बिना की कोई चीज़ है नहीं। अनादि का भव... भव... भव... भव... भव... भव... चला ही आता है अनादि... अनादि... अनादि...

इस प्रकार इनके सन्तानपरम्परा से जीव के चतुर्गतिरूप संसार की प्रवृत्ति होती है,... लो! यह चार गति संसार भटके। चाहे तो देव हो या चाहे तो सेठिया व्यक्ति हो या नारकी हो। **इस संसार में चारों गतियों में अनेक प्रकार सुख-दुःखरूप हुआ भ्रमण करता है;...** यह सुख-दुःख होकर भटकता है। सुख किसका? यह लोगों ने माना हुआ, हों! सुख नहीं परन्तु दुःख। राजा हो, सेठिया हो या देव हो। माने, हम सुखी हैं। मूढ़ है। निर्धन हो, नरक-निगोद में जाये। उसे तो खबर भी नहीं कि निगोद में दुःखी हूँ। नरक में जाये। दुःखी है। ऐसी सुख-दुःख की कल्पना से चौरासी के अवतार में अनादि से परिभ्रमण कर रहा है। **तब कोई काल ऐसा आवे जब मुक्त होना निकट हो...** समझ में आया? अर्धपुद्गलादि निकट हो। **तब सर्वज्ञ के उपदेश का निमित्त पाकर...** सर्वज्ञ का उपदेश मिलना चाहिए।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बल कहाँ आया ? निमित्त होता है, ऐसा कहा।

मुमुक्षु : होना ही चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। उपदेश निमित्त का यही होता है। निमित्त यह हो, ऐसा कहा। उपदेश ऐसा होता है परन्तु समझे तब उसको निमित्त कहा जाये न ? यहाँ तो दूसरे अज्ञानियों की, मिथ्यादृष्टि की वाणी निमित्त नहीं होती, इतना सिद्ध करना है। परन्तु वाणी निमित्त है, इसलिए वहाँ हो जाता है, ऐसा है नहीं।

मुमुक्षु : भगवान की वाणी खाली जाये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : खाली तो उनके उपदेश में वहाँ सभा में नहीं जाये। परन्तु वहाँ अनन्त बार सुना, उसे तो खाली गयी। समझ में आया ? कोई पानेवाला उसमें न हो, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त मिलाने को क्या मिलाये ? भाव समझने का आता है। निमित्त को मिलाना क्या है ? मिला सकता है ? वह तो पूर्व के पुण्य के कारण निमित्त आता है। सूक्ष्म बात है।

सर्वज्ञ के उपदेश का निमित्त पाकर अपने स्वरूप को... देखो ! यहाँ तो कहना है कि सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो उपदेश किया, वह उसे मिले। क्या मिले ? कि अपने स्वरूप को बराबर जाने। **कर्मबन्ध के स्वरूप को, अपने भीतरी विभाव के स्वरूप को जाने...** तीन प्रकार। अपना निज स्वभाव ज्ञान-दर्शन और आनन्द जाने। कर्म और शरीर का स्वभाव जड़ जाने और पुण्य-पाप का स्वभाव विभाव दुःखरूप जाने। इन तीन की व्याख्या की। भगवान ने कही ऐसी तीन की व्याख्या उसे ख्याल में आना चाहिए। इसमें बहुत डाला है।

अपने स्वरूप को और कर्मबन्ध के स्वरूप को... क्योंकि निमित्त है न साथ में ? उसे जानना चाहिए न कि कर्मबन्ध क्या चीज़ है ? **अपने भीतरी विभाव के स्वरूप को...**

अपने भी निमित्त के आधीन जो विकार मिथ्यात्व राग-द्वेष होता है, **इनका भेदज्ञान हो,...** उसका स्वरूप जानकर कर्म और विभाव से भिन्नता का भान होता है। भेदज्ञान (होता है)। ऐसा उपदेश वीतरागवाणी में होता है। समझ में आया? **इनका भेदज्ञान हो, तब परद्रव्य को संसार का निमित्त जानकर...** परद्रव्य को दु:ख का, संसार का निमित्त जाने। **इससे विरक्त हो, अपने स्वरूप का अनुभव का साधन करे**- अपना जो स्वभाव। अपना स्वरूप कहा था न ऊपर? दर्शन-ज्ञानमय ऐसे स्वरूप का अन्दर साधन करे। अनुभव का साधन अनुभव। ज्ञान, दर्शन ऐसा आत्मा का अनुभव करे, वह साधन। विकल्प-फिकल्प और पुण्य-पाप, वह साधन नहीं।

दर्शन-ज्ञानरूप स्वभाव में स्थिर होने का साधन करे... लो! एक तो अनुभव का साधन करे। एक बात पहली। सम्यग्दर्शन का—ज्ञान का अनुभव। तदुपरान्त **दर्शन-ज्ञानरूप स्वभाव में स्थिर होने का साधन करे...** चारित्र। लो, यह साधन। **तब इसके...** ऐसा साधन करे उसे **बाह्यसाधन हिंसादिक पंच पापों का त्यागरूप निर्ग्रन्थ पद,...** बाह्य साधन अब कहते हैं। अन्तर साधन यह। ऐसा अन्तर साधन जिसे हो, उसे बाह्य साधन मुनि आदि को पाँच पाप का त्याग, निर्ग्रन्थ पद। **सर्व परिग्रह की त्यागरूप निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुद्रा धारण करे,...** लो! बाह्य साधन यह होता है। समझ में आया?

पाँच महाव्रत, पाँच समितिरूप, तीन गुप्तिरूप प्रवर्ते, तब सब जीवों पर दया करनेवाला साधु कहलाता है। व्यवहार से। आत्मा दर्शन-ज्ञान-चारित्र का अनुभव करे पहला। पश्चात् स्वरूप में स्थिरता और चारित्रदशा करे। उसे यह बाह्य साधन ऐसे होते हैं। अभ्यन्तर साधन तो यह। देखो! बाह्य निमित्त भी ऐसे ही होते हैं। ऐसा। नग्न मुनि की मुद्रा। समझ में आया? पाँच महाव्रत के विकल्प के निमित्त, पाँच समिति-गुप्ति के निमित्त विकल्प।

इसमें तीन पद होते हैं :- लो! साधु में तीन प्रकार की पदवी। **जो आप साधु होकर अन्य को साधुपद की शिक्षा-दीक्षा दे, वह आचार्य कहलाता है,...** है तो साधु, परन्तु यह शिक्षा-दीक्षा की प्रधानता से उसे आचार्य कहा जाता है। **साधु होकर जिनसूत्र को पढ़े-पढ़ावे, वह उपाध्याय कहलाता है,...** उपाध्याय है न? जिसके समीप में पढ़े-

पढ़ावे। **जो अपने स्वरूप के साधन में रहे, वह साधु कहलाता है,...** आहाहा! स्वरूप के साधन में रहे, वह साधु। स्वरूप दर्शन-ज्ञान और चारित्र। उसमें रहे, वह साधु।

जो साधु होकर अपने स्वरूप के साधन के ध्यान के बल से... देखो! साधु होकर। **अपने स्वरूप के साधन के ध्यान के बल से चार घातियाकर्मों का नाशकर केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य को प्राप्त हो...** लो! वह केवली होता है। जो अन्तर के अपने निजस्वरूप शुद्ध चैतन्य का साधन करके घातिकर्म का नाश हो और चार स्वरूप की पर्याय प्रगट हो। **वह अरहन्त कहलाता है,...** लो! **तब तीर्थंकर तथा सामान्यकेवली-जिन इन्द्रादिक से पूज्य होता है,...** तीर्थंकर और सामान्य केवली **जिन इन्द्रादिक से पूज्य होता है, इनकी वाणी खिरती है, जिससे सब जीवों का उपकार होता है,...** भगवान की वाणी खिरे, इसमें बहुत जीवों को उपकार का निमित्त होता है।

मुमुक्षु : सर्व जीव का।

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्व जीव का। सर्व जीव, वही जीव कहलाता है। तिरे, वह जीव। न तिरे, वह अजीव। समझ में आया? आहाहा!

अहिंसा धर्म का उपदेश होता है, सब जीवों की रक्षा कराते हैं, यथार्थ पदार्थों का स्वरूप बताकर मोक्षमार्ग दिखाते हैं, इस प्रकार अरहन्त पद होता है... लो! ऐसी तो अरिहन्तपदवी होती है। **और जो चार अघातिया कर्मों का भी नाशकर सब कर्मों से रहित हो जाते हैं, वह सिद्ध कहलाते हैं। इस प्रकार ये पाँच पद हैं,...** लो! अब वे पाँच पद बड़े महान कैसे कहे, इसकी व्याख्या करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन-१५५, गाथा-१०६, शुक्रवार, ज्येष्ठ शुक्ल ०३, दिनांक २४-०५-१९७४

नोंध - यह प्रवचन १९७४ के वर्ष में से लिया गया है।

दूसरा पैराग्राफ। फिर से। इस संसार की उत्पत्ति कैसे है ? **जीवों के ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का अनादि बन्ध पर्याय है,...** जड़। **इस बन्ध के उदय के निमित्त से जीव राग-द्वेष-मोहादि विभावपरिणतिरूप परिणमता है...** कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में अनादि से मिथ्या अर्थात् विपरीत श्रद्धा और राग-द्वेष के परिणामरूप परिणमता है। **इस विभावपरिणति के निमित्त से...** मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष के भाव की परिणति के निमित्त से **नवीन कर्मबन्ध होता है।** नया कर्मबन्धन होता है।

इस प्रकार इनके सन्तान परम्परा से... इस प्रकार से सन्तान परम्परा (अर्थात्) प्रवाहरूप से अनादि। **जीव के चतुर्गतिरूप संसार की प्रवृत्ति होती है,...** यह चार गति में अनादि से नरक में, नारकी में, तिर्यंच में, मनुष्य में और देव में (भटकता है)। परिभ्रमण की चार गतियाँ हैं। आहाहा! **तब कोई काल ऐसा आवे, जब मुक्त होना निकट हो...** मुक्त होने की दशा जिसकी नजदीक है। **तब सर्वज्ञ के उपदेश का निमित्त पाकर...** लो। सर्वज्ञ परमात्मा, जिन्हें पूर्ण ज्ञान प्रगट हुआ है, ऐसे परमात्मा का उपदेश पाकर। अज्ञानी का उपदेश नहीं। जिसने तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा का उपदेश पाकर। भले गुरु से मिले परन्तु यह उनका उपदेश है। सर्वज्ञ परमात्मा ने सर्वज्ञस्वभाव से जो तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसा उपदेश आया, उस उपदेश का निमित्त पाकर **अपने स्वरूप को...** अपने स्वरूप को जाने। **और कर्मबन्ध के स्वरूप को...** जाने। कर्मबन्धन एक निमित्त है, उसे भी जाने। **अपने भीतरी विभाव के स्वरूप को जाने...** अपना आत्मा का स्वरूप क्या है, उसे जाने, कर्मबन्ध का स्वरूप क्या है, उसे जाने और बन्ध के सम्बन्ध में विभाव होता है, उसे जाने। **इनका भेदज्ञान हो,...** जब इन तीनों का भेदज्ञान (हो अर्थात्) अपने स्वरूप का आनन्द, ज्ञानस्वरूप; विभाव का दुःखरूप स्वरूप और कर्म का अजीव -स्वरूप। ऐसा जाने। **इनका भेदज्ञान हो, तब परद्रव्य को संसार का निमित्त जानकर...** परद्रव्य जितने हैं, उन्हें तो संसार का निमित्त जाने। आहाहा! क्योंकि स्व भगवान आत्मा

स्वद्रव्य का आश्रय ले, तब ही उसका कल्याण होता है। इसलिए परद्रव्य का जितना लक्ष्य जाये, वह सब राग का और संसार का ही कारण है। आहाहा!

परद्रव्य को संसार का निमित्त जानकर इससे विरक्त हो... परवस्तु को संसार के दुःख का विकार का निमित्तकारण जानकर उससे विरक्त हो। परद्रव्य का लक्ष्य छोड़े। परद्रव्य का आश्रय, लक्ष्य छोड़े। क्योंकि परद्रव्य संसार का निमित्तकारण है। इसलिए जिसे मोक्ष का मार्ग प्रगट करना है, वह परद्रव्य के निमित्त का लक्ष्य छोड़े। **अपने स्वरूप के अनुभव का साधन करे...** अपना स्वभाव चैतन्य शुद्ध आनन्द, ज्ञान, उसके स्वरूप का साधन करे, वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! **तब इसके बाह्यसाधन हिंसादिक पंच पापों का त्यागरूप निर्ग्रन्थ पद,...** हो जाये। लो। मुनि हो, उसे बाह्य निर्ग्रन्थ दिगम्बरदशा (हो जाये)। उसे बाह्य साधन; अन्तर साधन तो करे, कहते हैं, परन्तु उसे बाह्य साधन में हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना के त्यागरूप निर्ग्रन्थपद दिगम्बरपद, दिगम्बरदशा धारण हो। **सब परिग्रह की त्यागरूप...** उसे वस्त्र का धागा भी न रहे, वस्त्र का कण भी न रहे। ऐसी मुनिदशा धारण करे, तब **निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुद्रा धारण करे,...** यह अन्तर और बाह्य का साधन बताते हैं। **पाँच महाव्रत, पाँच समितिरूप, तीन गुप्तिरूप प्रवर्ते, तब सब जीवों पर दया करनेवाला साधु कहलाता है।** सब जीवों की छह काय के जीवों पर जिसका दयाभाव है।

इसमें तीन पद होते हैं - जो आप साधु होकर अन्य को साधुपद की... साधु होकर अन्य को साधुपद की **शिक्षादीक्षा दे, वह आचार्य कहलाता है,...** आत्मा के स्वरूप के साधन की पद की शिक्षा और दीक्षा दे, ऐसा कहते हैं। देखा! अन्तर स्वरूप भगवान आत्मा का साधन स्वरूप में साधु को जो हो, उसका ज्ञान और उसकी दीक्षा दे। आहाहा! वह आचार्य। **वह आचार्य कहलाता है,...** लो, यहाँ तो दूसरा उपदेश दे, ऐसा नहीं। साधुपद की शिक्षा-दीक्षा दे। आहाहा! वीतरागभाव आचार्य ने स्वयं स्वद्रव्य के आश्रय से किया है, ऐसे वीतरागभाव की शिक्षा और दीक्षा (देते हैं)। उपदेश भी वीतरागभाव का दे और दीक्षा भी वीतरागभाव की दे। ऐसा कहते हैं। आहाहा! वे आचार्य कहलाते हैं।

साधु होकर जिनसूत्र को पढ़े-पढ़ावे... अब उपाध्याय की बात है। **वह उपाध्याय**

कहलाता है, जो अपने स्वरूप के साधन में रहे, वह साधु कहलाता है... आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा के साधन में रहे, उसे साधु कहते हैं। नग्नपना और पंच महाव्रत के परिणाम में रहे, तो साधु – ऐसा नहीं कहा। ऐसी दशा हो भले, परन्तु स्वयं भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप में रहे, उसे साधे, स्वरूप आनन्द शुद्ध है। पूर्ण वीतरागस्वरूप आत्मा की पर्याय में साधन करे, उसे यहाँ साधु कहा जाता है।

जो साधु होकर अपने स्वरूप साधन के ध्यान के बल से... इस प्रकार साधु होकर... अब तीन पद उपरान्त (बात करते हैं)। **अपने स्वरूप के साधन के ध्यान के बल से...** देखा! चैतन्यस्वभाव बलरूप स्वरूपरूप, उसके साधन के बल से। **स्वरूप के साधन के ध्यान के बल से...** अपना स्वरूप जो शुद्ध आनन्द, उसके ध्यान के बल द्वारा **चार घातिया कर्मों का नाशकर...** कैसी भाषा प्रयोग की है, देखो न! व्यवहाररत्नत्रय करके चार घाति का नाश करते हैं, ऐसा नहीं कहा। बाह्य साधन कहा था पहले कि पाँच महाव्रत आदि। होते हैं बस इतना। आहाहा! परन्तु मोक्ष का साधन तो अन्तर आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूपी प्रभु, उसका साधन अन्तर में करे, उस साधन से चार घातिकर्म का नाश होता है। **केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य को प्राप्त हो...** लो। तब अरिहन्त कहलाता है। उसे अरिहन्त भगवान–णमो अरहंताणं... णमो अरिहंताणं तब उसे कहा जाता है। आहाहा! पाँच णमोकार में ऐसा पहला पद है न! वह इस प्रकार शुद्ध चैतन्यस्वरूप के साधन द्वारा चार घातिकर्म का नाश करके केवलज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य ऐसे चार (गुण) पूर्ण प्रगट करे, उसे अरिहन्त परमात्मा कहा जाता है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

तब तीर्थंकर और सामान्यकेवली जिन इन्द्रादिक से पूज्य होता है,... उसमें तीर्थंकर और सामान्य केवली, वह भी **इन्द्रादिक से पूज्य होता है, इनकी वाणी खिरती है,...** भाषा देखो! इनकी वाणी खिरती है, ऐसा शब्द प्रयोग किया है। वे वाणी बोलते हैं, ऐसा नहीं कहा। भाषा कैसी तोल–तोलकर प्रयोग करते हैं न! भगवान सर्वज्ञ परमात्मा को तीन काल–तीन लोक का ज्ञान हो, तब शरीरमात्र रहता है। उसमें से वाणी खिरे, ऐसा कहा। देखा! ध्वनि–वाणी की आवाज उठे। आहाहा! **वाणी खिरती है,...** आहाहा! पण्डित

जयचन्द्रजी ने बहुत भरा है! **वाणी खिरती है,...** भगवान के मुख से वाणी (खिरती है) । मुख से भी नहीं, वह तो अरिहन्त हों, तब वाणी खिरती है। आहाहा! **जिससे सब जीवों का उपकार होता है,...** वह वाणी सुनकर जगत के प्राणी अपने आत्मा का साधन करे तो उपकार कहने में आता है। आहाहा!

अहिंसा धर्म का उपदेश होता है,... वाणी में अहिंसाधर्म का उपदेश (आता है) । राग की उत्पत्ति होना, वह हिंसा। आहाहा! वस्तु के स्वरूप में वीतरागता भरी है तो वीतरागता की उत्पत्ति हो, वह अहिंसा। ऐसा भगवान ने उपदेश किया। वह अहिंसा। आहाहा! **जिससे सब जीवों की रक्षा होती है,...** अर्थात् किसी प्राणी को मारना नहीं, उसका नाम रक्षा। **यथार्थ पदार्थों का स्वरूप बताकर...** जैसा आत्मा का, जड़ का, धर्म का और अधर्म का जैसा स्वरूप है, वैसा बतलाकर **मोक्षमार्ग दिखाते हैं। इस प्रकार अरहन्त पद होता है**। यह अरिहन्त पद की व्याख्या की। **और जो चार अघातिया कर्मों का भी नाश कर सब कर्मों से रहित हो जाते हैं, वह सिद्ध कहलाते हैं**। परमात्मा शरीररहित हो जाये। शरीरसहित परमात्मा को अरिहन्त कहते हैं, शरीररहित परमात्मा को सिद्ध कहते हैं। आहाहा!

इस प्रकार ये पाँच पद हैं, ये अन्य सब जीवों से महान हैं,... यह पाँच पद सब जीवों में महान है। **इसलिए पंच परमेष्ठी कहलाते हैं, इनके नाम तथा स्वरूप के दर्शन, स्मरण, ध्यान, पूजन, नमस्कार से अन्य जीवों के शुभपरिणाम होते हैं...** देखो! यह पंच परमेष्ठी के नाम से, उनके स्वरूप का दर्शन, उनका स्मरण, उनका ध्यान, उनका पूजन, उन्हें नमस्कार, उससे दूसरे जीव को शुभभाव होता है। धर्म होता है, ऐसा नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया? **इसलिए पाप का नाश होता है,...** शुभपरिणाम होते हैं न इसलिए, मांगलिक कहना है न! **वर्तमान विघ्न का विलय होता है, आगामी पुण्य का बन्ध होता है...** लो, तीन बातें हुईं। यह पंच परमेष्ठी के स्मरण, ध्यान से शुभभाव होता है, उससे पाप का नाश होता है। जो समकिती है, उसे मिथ्यात्व के पाप का तो नाश है। दूसरे अशुभभाव का भी उसे कर्म का अशुभभाव हो, वह घट जाता है। **वर्तमान विघ्न का विलय होता है,...**

मुमुक्षु : पंच परमेष्ठी के ... का विचार करे तो शुभभाव होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। शुभभाव (होता है) । **शुभपरिणाम होते हैं, इसलिए पाप**

का नाश होता है... कहाँ आया? कुछ समझ में नहीं आता। कौन सा पृष्ठ? ९५, यह तो मंगलरूप कहा है। यह व्यवहारसुख। मन में सुख लगता है। वह तो मन की व्याख्या की। यह तो है। वह सुख लाता है, वह तो स्वयं प्रगट करे तो। उससे तो शुभभाव होता है। परद्रव्य के लक्ष्य से तो शुभभाव होता है। यह है मांगलिक, परन्तु स्वयं भाव करे तो। आहाहा! सविकल्प दशावन्त को शुभभाव में पंच परमेष्ठी निमित्त हैं। सविकल्पदशा... कल रात्रि में कहा था। ... बात नहीं की थी? है इसमें।

रात्रि में आत्मावलोकन का कहा था। तू देख। सम्यग्दृष्टि को कहते हैं। 'यह स्व अनुभवदशा स्वसमयरूप स्वसुख है।' आत्मा का अनुभव, वह स्व अनुभव, वह सुखरूप है। शान्त विश्राम है। स्थिररूप है। स्व के आश्रित। पर के आश्रित जो विकल्प है, वह दुःखरूप है, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा! 'कोई कल्याण है।' स्व अनुभवदशा वह कल्याण का कारण है, कोई कल्याण है, ऐसा लिखा है। 'चैन है, तृप्तिरूप है, समभाव है और मुख्य मोक्ष का मार्ग है। यह सम्यक् सविकल्प दशा...' अब विकल्प आया। पंच परमेष्ठी का ध्यान लक्षण वह भी सविकल्प है। यद्यपि उपयोग निर्मल है। अर्थात् कि जानने के-देखने के परिणाम शुद्ध हैं। जानने-देखने के। ज्ञाता-दृष्टा के परिणाम शुद्ध है न।

मुमुक्षु : चारित्र...

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र ... बस यह। जानने-देखने के परिणाम शुद्ध हैं।

'तथापि चारित्रपरिणाम परालम्ब अशुद्ध चंचलरूप होता है।' देखा! चारित्र के परिणाम परालम्बन-पर आलम्बन। देखो! यह पाँच परमेष्ठी। ये शुभभाव है। ऐसी बात है। अशुद्ध चंचल होते हैं, अशुद्ध और चंचल होते हैं। इसलिए सविकल्पदशा दुःखरूप है। आहाहा! बात तो ऐसी है, इसकी खबर भी कुछ नहीं। आहाहा! सविकल्पदशा दुःखरूप है। तृष्णा तप्त चंचल है। तृष्णा में तप्त से वह दशा—राग चंचल है। आहाहा! पुण्य-पापरूप कलाप है। सविकल्प में शुभभाव और अशुभ दोनों कलाप है—मैल है। आहाहा! उद्वेगता है। असन्तोषरूप है। ऐसे-ऐसे विलापरूप है। आहाहा! आत्मावलोकन में दीपचन्दजी ने स्वयं बहुत अच्छी स्पष्टता की है। चारित्र परिणाम। ऐसे-ऐसे विलापरूप है, ऐसा चारित्र परिणाम। ज्ञान-दर्शन के परिणाम शुद्ध हैं। क्योंकि ज्ञान दर्शन है, वह उसका जानने-देखने

का कार्य तो करता है न? सविकल्पदशा के काल में भी। सविकल्प चारित्र के परिणाम जो है, वे मलिन हैं, वहाँ उद्वेग है, असन्तोष है, दुःख है। आहाहा! और वापस कहते हैं, यह दोनों अवस्था अपने में देख। दोनों अवस्था तेरी पर्याय में तू देख। आहाहा! इन्होंने कितना सरस लिखा है न! वस्तु की स्थिति ही यह है। इसलिए भला तो यह है कि तू स्वअनुभवरूप रहने का उद्यम रखा कर। आहाहा! सविकल्पदशा उद्वेग असन्तोष है। आहाहा!

यहाँ तो पंच परमेष्ठी के लक्ष्य से तो भाव, वह शुभभाव है, इतना सिद्ध करना है। सुख, आत्मा का सुख नहीं। उसे तो मांगलिक स्वयं करे तो सुख होता है। समझ में आया? ऐसी बात है, भाई! पहले तो कह गये न, परद्रव्य संसार का निमित्तकारण है। पश्चात् प्रश्न कहाँ रहा? आगे तो कहीं कहा है।... ऐसा निकाला है, हों! तू तेरे आत्मा के साथ इन दो भावों को मिलान कर, ऐसा कहते हैं। आत्मा के साथ निर्मलदशा और सविकल्पदशा इस प्रकार है या नहीं तुझे? ऐसा है। कहीं है अवश्य। आया था। ख्याल नहीं, अब भूल गये। आत्मावलोकन? यह कहीं है। तेरे आत्मा को प्राप्त कर, ऐसा कहा है। ऐसा इतना, यह तो प्राप्त कर, ऐसा एक जगह है। यह आया न? परालम्बी है। वहाँ परस्वाद आवे। सविकल्प भी हो जाये। और कितना ही काल फिर यह सविकल्प भाव से रहित होकर परिणाम अनुभवरूप हों। अन्तर्मुहूर्त पश्चात् परिणाम सविकल्प हों। कितने ही काल पश्चात् परिणाम सविकल्पपना छोड़कर अनुभवरूप होते हैं। जघन्य ज्ञानी का सम्यक् आचरण धाराप्रवाही परिणाम हो। समकित का आचरण तो धाराप्रवाही है। चारित्र आचरण अनुभव धाराप्रवाही नहीं है। कितना स्पष्ट! जघन्य ज्ञानी को अनुभव कदाचित्... कहते हैं, पश्चात् उसकी बात ली है। आहाहा! आया, देखो! यह आवे तब न। १६६ पृष्ठ पर है।

देख तू। ऐसे परिणामों का वर्णन करके परिणामों का सविकल्प निर्विकल्प अनुभव होना दिखाया। इसलिए तू भी अपनी परिणति इस कथन प्रमाण है या नहीं, वह देख। तुलना कर, ऐसा कहते हैं। तू भी अपनी परिणति इस कथन प्रमाण है या नहीं, वह तुलना करके देख। यह कोष्ठक में लिखा है। और सम्यग्दृष्टि को इस प्रमाण होती देख तो हम दूसरा कहते हैं। निर्विकल्प सविकल्पदशा में क्या होता है वह। सविकल्प में दुःख है। पश्चात् यह कहा। उसके बाद कहा। बात तो जैसी हो वैसी जानना चाहिए न। आहाहा!

स्व का आश्रय लेकर जितनी निर्विकल्पता हुई है, उतनी तो सुखरूप है, विश्राम है, शान्ति है, सन्तोष है, तृप्ति है और जितना सविकल्प भाव है, उतना अतृप्त भाव है, चंचल है, दु:खरूप है, अविश्राम है, असन्तोष है। आहाहा! कहो, गिरधरभाई! यह तो कहते हैं, देख, तेरे आत्मा के साथ मिलान कर। हम जो कहते हैं, उसके साथ तेरी दिशा को मिलान कर न! आहाहा!

(यहाँ चलता अधिकार)। पुण्य का बन्ध होता है। देखो! है? यह नमस्कार करने से **अन्य जीवों के शुभपरिणाम होते हैं...** शुद्ध नहीं, सुख नहीं। **इसलिए पाप का नाश होता है...** अघाति कम होते हैं। **वर्तमान विघ्न का विलय होता है, आगामी पुण्य का बन्ध होता है...** यह शुभभाव भविष्य के पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! **इसलिए स्वर्गादिक शुभगति पाते हैं।** लो! स्वर्ग अथवा यह सेठाई। यह पैसेवाले धूल के धनी कहलाये न। करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ और धूल करोड़। ऐ... प्रवीणभाई! इस शुभभाव से यह धूल के धनी होते हैं, ऐसा कहते हैं। पुण्यबन्ध हो तो स्वर्ग में जाये। थोड़ा फिर बाकी रहा हो तो और सेठाई में आवे। करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ मिले इसे। परन्तु यह सब पुण्य से इसे धूल मिलती है; आत्मा नहीं मिलता। आहाहा!

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न दोनों। जितनी निर्विकल्प दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता है, उतना इसे सुख का कारण, मोक्ष का कारण है। और जितनी सविकल्पदशा है, वह स्वर्ग और पुण्यबन्ध का कारण है। कहो, समझ में आया इसमें? कल दोपहर को तुझे याद किया था। ऐ... पराग! तेरे पिता को कहा था। गये हैं दोनों। यह दोनों व्यक्ति गये हैं न, भावनगर। कहा, भावनगर तो यहाँ (अन्दर) है। ऐसा कल कहा था। आहाहा!

अकेला ज्ञानस्वभाव, आनन्दस्वभाव, शान्तस्वभाव जिसका भाव का नगर। सिर पर कोई कर नहीं, कर्ज नहीं, ऐसी चीज़ स्वयं पड़ी है। आहाहा! उसका आचरण करना, वह मोक्ष का कारण है। और परद्रव्य की ओर जितना लक्ष्य जाये, चाहे तो पंच परमेष्ठी के ऊपर जाये, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार के ऊपर लक्ष्य जाये, तब तो पापभाव है। यहाँ तो पंच परमेष्ठी के ऊपर लक्ष्य जाये तो वह पुण्यभाव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! मार्ग ऐसा है,

भाई ! लोगों को ऐसा कठिन लगता है कि शुभभाव में कुछ नहीं है ? निचलेवालों को शुभभाव लाभ का कारण है। भाई ! शुभभाव लाभ का कारण है ही नहीं। किसी काल में, किसी को। होता है, वह अलग बात है। आवे सही, परन्तु वह है तो दु:खरूप विकल्पदशा।

मुमुक्षु : स्वर्ग की गति का लाभ मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह लाभ कहलाये ? धूल भी नहीं वहाँ। यह सब बात ही खोटी है। ऐसा कहते हैं कि शुभभाव से स्वर्ग का सुख तो मिले। धूल में भी नहीं, दु:ख है वहाँ। अंगारों से सिंकता है। आहाहा ! और वहाँ से बाहर निकले और कदाचित् पुण्य के कारण वाणी मिले परन्तु उसके ऊपर लक्ष्य जाने से राग होता है। दु:ख का फल है, ऐसा नहीं कहा था ? ऐई ! कहाँ कहा ? ७४ (गाथा, समयसार)। दु:खरूप और दु:ख का फल। शुभभाव दु:ख का फल, शुभभाव से संयोग मिले। उसके ऊपर लक्ष्य जायेगा तो राग ही होगा, दु:ख होगा। आहाहा ! गजब बात है न ! क्योंकि पंच परमेष्ठी मिले और उनकी वाणी मिले, परन्तु उसके ऊपर लक्ष्य जायेगा तो शुभभाव होगा, दु:ख होगा। आहाहा ! यह तो वीतराग ऐसा कहे। रागी और राग के प्रेमी ऐसा नहीं कह सकते। आहाहा ! उसमें आया था, जैनप्रकाश में। ऐसा कि अमृतकरण नाम दिया न ? पढ़ा है न तुमने वह ? आगम और मूर्ति... ऐ... देवानुप्रिया ! भविजन का आधार। आहाहा ! आगम और मूर्ति। स्थानकवासी का जैनप्रकाश है। वह कहता है, भविजन को आधार।

यहाँ तो कहते हैं, वह आगम और मूर्ति शुभभाव का निमित्त है। दु:ख का निमित्त है। आहाहा ! वह स्थानकवासी का लेख है। उन्हें भी कहाँ खबर है। उसमें वेदान्त के लेख डाले। पहले कितनी बार डालते थे। आहाहा ! यह जीवण है, वह पक्का है। उस जाति का। तुम्हारा जीवणलाल। वढवाण। वह क्या परुं कहलाये ? जीवणलाल का। तुम्हारे वढवाण में रहता है वह क्या कहलाये ? मोचीयार। मोचीयार में रहता है न। खबर है। वह पक्का स्थानकवासी। उसकी लाईन प्रमाण। यह तो कुछ ठिकाना नहीं होता। आगम और मूर्ति अभी आगम आधार है।

यहाँ तो कहते हैं, मूर्ति और आगम... १७० गाथा में कहा न ? पंचास्तिकाय। आगम की श्रद्धा, नव तत्त्व और पदार्थ की श्रद्धा और तीर्थंकर कहे, मेरी श्रद्धा जब तक रहेगी, तब

तक मोक्ष नहीं होगा। क्योंकि विकल्प, राग है। आहाहा! होता है, वह अलग बात है। इससे मूल चीज़ नहीं होती और शुभभाव नहीं होता, ऐसा नहीं है। होता तो है ही। जब तक वीतराग नहीं, इसलिए वह भाव आये बिना नहीं रहता। परन्तु उसका फल तो स्वयं वर्तमान दु:ख और पश्चात् भी दु:ख का कारण है। ऐसी बात है। आहाहा! अरे! ऐसी वस्तु की स्थिति है वहाँ...

दु:ख का कारण है तो भगवान का स्मरण करना (या नहीं करना)? या नवकार गिनना? क्या करना? और ऐसा कहे। भाई! वह तो अशुभ से बचने को आये बिना नहीं रहे। वह अशुभ से बचने को कहना, यह भी व्यवहार है। उस काल में वह भाव आये बिना नहीं रहता। ऐसी बात है। उसका-राग का चारित्रमोह की विपरीतता का स्वकाल होता है। तब शुभभाव आता है, होता है। आहाहा! परन्तु उसकी मर्यादा तो पुण्यबन्ध जितनी है। हें! क्षायिक समकिती को भी पंच परमेष्ठी का स्मरण, भक्ति, पूजा होते हैं। परन्तु उसके फलरूप से तो पुण्यबन्ध है। बात तो ऐसी है। वह कहीं वस्तु बदले, ऐसी नहीं है।

इनकी आज्ञानुसार प्रवर्तने से... देखा! **इसलिए स्वर्गादिक शुभगति पाता है।** वह शुभगति। **इनकी आज्ञानुसार प्रवर्तने से...** अब इनकी आज्ञा जो है, उसकी **परम्परा से संसार से निवृत्ति भी होती है,...** आज्ञा प्रमाण प्रवर्ते तो, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह इनकी-भगवान की आज्ञा है, तो **परम्परा से संसार से निवृत्ति भी होती है,...** क्रम से उसे संसार का अभाव हो जाता है। पूर्ण हो तो अभाव हो जाता है। अधूरा रहे, तब तक संसारभाव है। आहाहा!

इसलिए ये पाँच परमेष्ठी सब जीवों के उपकारी परमगुरु हैं। आहाहा! **सब संसारी जीवों से पूज्य हैं।** संसारी प्राणी से पूज्य है। **इनके अतिरिक्त अन्य संसारी जीव राग-द्वेष-मोहादि विकारों से मलिन हैं,...** पंच परमेष्ठी के अतिरिक्त जो दूसरे देवादि नाम धराते हैं, वे तो राग-द्वेष, मोह से, विकार से मलिन हैं। **ये पूज्य नहीं हैं, इनके महानपना, गुरुपना, पूज्यपना नहीं है, आप ही कर्मों के वश मलिन हैं, तब अन्य का पाप इनसे कैसे कटे?** लो?

इस प्रकार जिनमत में इन पाँच परमेष्ठी का महानपना प्रसिद्ध है और न्याय के

बल से भी ऐसा ही सिद्ध होता है,... न्याय से भी यही सिद्ध होता है। पंच परमेष्ठी जो आत्मा की दशायें, पूर्ण प्राप्त और साधकरूप प्राप्त, वही जगत में उत्कृष्ट महान और पूज्य है। राग-द्वेष और मोहवाले कहीं पूज्य नहीं हैं। भले देव नाम धरावे। आहाहा! **इस प्रकार जिनमत में इन पाँच परमेष्ठी का महानपना प्रसिद्ध है और न्याय के बल से भी ऐसा ही सिद्ध होता है, क्योंकि जो संसार के भ्रमण से रहित हो, वे ही अन्य के संसार का भ्रमण मिटाने को (निमित्त) कारण होते हैं।** तब यह कारण होते हैं। **जैसे जिसके पास धनादि वस्तु हो, वही अन्य को धनादिक दे और आप दरिद्री हो तो तब अन्य की दरिद्रता कैसे मेटे, इस प्रकार जानना।** इसी प्रकार जो राग-द्वेष और मोहवाले हैं, वे दूसरे को राग-द्वेष, मोह टालने में निमित्त किस प्रकार होंगे? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

जिनको संसार के दुःख मेटने हों और संसारभ्रमण के दुःखरूप जन्म-मरण से रहित होना हो, वे अरहन्तादिक पंच परमेष्ठी का नाम मन्त्र जपो, इनके स्वरूप का दर्शन, स्मरण, ध्यान करो, इससे शुभ परिणाम होकर... लो, यहाँ भी शुभ परिणाम लाये वापस। आवे तो सही न वह। **पाप का नाश होता है, सब विघ्न टलते हैं, परम्परा से संसार का भ्रमण मिटता है,...** सम्यग्दर्शनसहित है, उसकी बात है। अज्ञानी को परम्परा कहाँ था? जिसे वास्तविक पंच परमेष्ठी का स्वरूप आत्मा में जिसे जँचा है, ऐसे जीवों के लिये यह स्मरण है, वह शुभभाव है, ऐसा कहते हैं। **कर्मों का नाश होकर मुक्ति की प्राप्ति होती है, ऐसा जिनमत का उपदेश है। अतः भव्य जीवों के अंगीकार करनेयोग्य है।** सर्वज्ञ परमात्मा वीतरागदेव का यह उपदेश है कि उसे भव्यजीवों को अंगीकार करनेयोग्य है।

यहाँ कोई कहे - अन्यमत में ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदिक इष्टदेव मानते हैं, उनके भी विघ्न टलते देखे जाते हैं तथा उनके मत में राजादि बड़े-बड़े पुरुष देखे जाते हैं, उनके भी वे इष्ट विघ्नादिक को मेटनेवाले हैं, ऐसे ही तुम्हारे भी कहते हो, ऐसा क्यों कहते हो कि यह पंच परमेष्ठी ही प्रधान है, अन्य नहीं है? उसको कहते हैं, हे भाई! जीवों के दुःख तो संसारभ्रमण का है... देखा! संयोग का दुःख नहीं, दुःख संसारभ्रमण का है। आहाहा! चार गति में भटकना, वह दुःख है। आहाहा! **और संसारभ्रमण के कारण राग-द्वेष-मोहादिक परिणाम हैं...** संसार परिभ्रमण का कारण, संसार परिभ्रमण, वह दुःखरूप है चार गति का भ्रमण और उस परिभ्रमण का कारण राग-द्वेष, मोहादि है।

तथा रागादिक वर्तमान में आकुलतामयी दुःखस्वरूप हैं। राग-द्वेष और मिथ्यात्व तो वर्तमान में आकुलता-दुःखरूप है। **इसलिए ये ब्रह्मादिक इष्टदेव कहे, वे तो रागादिक तथा काम-क्रोधादि युक्त है, अज्ञानतप के फल से कई जीव सब लोक में चमत्कारसहित राजादिक बड़ा पद पाते हैं, उनको लोग बड़ा मानकर ब्रह्मादिक भगवान कहने लग जाते हैं और कहते हैं कि यह परमेश्वर ब्रह्मा का अवतार है, तो ऐसे मानने से कुछ मोक्षमार्ग तथा मोक्षरूप होता नहीं है, संसारी ही रहता है।** जिसे राग-द्वेष और मोह है, उसके फल में तो संसार है, ऐसा कहते हैं। तो उसे भजने से तो संसार मिलेगा, भटकना मिलेगा। आहाहा!

ऐसे ही अन्यदेव सब पदवाले जानने,... बड़े-बड़े पदवाले देव होते हैं न! **आप ही रागादि से दुःखरूप है, जन्म-मरण सहित हैं, वे पर का-संसार का दुःख कैसे मेटेंगे? इनके मत में विघ्न का टलना और राजादिक बड़े पुरुष होते कहे जाते हैं, वहाँ तो उन जीवों के पहिले कुछ शुभकर्म बँधे, ये उनका फल है।** पहले शुभ बाँधा हो तो यह राजा होते हैं, उसमें क्या है? **वह तो पहिले कुछ अज्ञानतप किया है, उसका फल है, यह तो पुण्य-पापरूप संसार की चेष्टा है, इसमें कुछ बढ़ाई नहीं है, बढ़ाई तो वह है जिससे संसार का भ्रमण मिटे...** यहाँ तो बात यह है। चार गति का भटकना मिटे, वह तो पंच परमेष्ठी के निमित्त से होता है। जिसे संसार परिभ्रमण मिट गया है, उसे संसार परिभ्रमण (मिटने में) निमित्त कहने में आता है। **वह तो वीतरागविज्ञान भावों से ही मिटेगा,...** लो, वे राग-द्वेष और मोह, वह संसार परिभ्रमण का कारण। और परिभ्रमण से रहित होने का वीतरागविज्ञान कारण। वीतरागविज्ञान कारण है। आहाहा! वीतरागविज्ञान बहुत डालते हैं न? जयपुर, हुकमचन्दजी। वीतरागविज्ञान शिवकारण शिवरूप वीतरागविज्ञानता। नहीं? छहढाला में आता है न? पहली (ढाल में) पहली लाईन आती है न? वीतरागविज्ञानता। क्या कहलाती है वह पुस्तक आवे वह? पाठमाला। वीतरागविज्ञान पाठमाला, देखा है तुमने? तुमने देखा है? नहीं? क्या किया तब? वीतरागविज्ञान माला पाठशाला आ गयी है। पाठशाला में वह पुस्तक आयी है। वीतरागविज्ञान। वहाँ बड़ी परीक्षा ली जाती है। पाँच-पाँच हजार लड़के, दस-दस हजार लड़के। उस ओर। हुकमचन्दजी पण्डित है न। पन्द्रह-पन्द्रह हजार लड़कों की परीक्षा लेते हैं। उस ओर। पाठशालायें बहुत

बनी हैं। **वीतरागविज्ञान भावयुक्त पंच परमेष्ठी हैं...** लो, पंच परमेष्ठी वीतरागविज्ञान भावरूप हैं। वे (दूसरे) राग-द्वेष, मोहरूप हैं। आहाहा! **वे ही संसारभ्रमण का दुःख मिटाने में कारण हैं।**

वर्तमान में कुछ पूर्व शुभकर्म के उदय से पुण्य का चमत्कार देखकर तथा पाप का दुःख देखकर भ्रम में नहीं पड़ना,... पुण्य का चमत्कार देखकर और पाप का दुःख देखकर भ्रमणा नहीं करना। अपना पूर्व का कोई पाप का उदय हो तो प्रतिकूल संयोग होते हैं और दूसरे को पुण्य का उदय हो तो बाहर की अनुकूलता मिलती है। बड़े चमत्कार दिखते हैं। करोड़ों, अरबों रुपये आवें। उसमें क्या हुआ ? आहाहा! दूसरे के पुण्य देखकर ऐसा नहीं मानना कि यह भी कुछ है और अपनी प्रतिकूलता देखकर ऐसा नहीं मानना कि हम तो कुछ धर्मी नहीं लगते। यह पाप के उदय हमें ? और वे लोग बड़े राजा-महाराजा। वह तो पूर्व के पुण्य-पाप के फल हैं, उन्हें नहीं देखना। वर्तमान आत्मा शुद्ध, राग-द्वेष, मोहरहित है, उसके परिणाम को देखना, उसे जानना और वह करना। यह नहीं देखना कि उसको पुण्य का उदय और बड़ा राजा करोड़ोंपति। माँस खाता हो, शराब पीता हो, मछलियाँ खाता हो। लो, करोड़ों रुपये पैदा करे, उसमें क्या है ? पूर्व के पुण्य के कारण से है। उसमें कुछ चमत्कार नहीं मानना, विशेषता नहीं मानना उसके कारण से। आहाहा! हम धर्मी और हमको शरीर में यह रोग ? स्त्री, पुत्र कोई नहीं और मर जाये। अकेला रहे। यह विघ्न ? क्या है ? वह तो पूर्व के पाप के कारण से होता है। उसमें वर्तमान में तुझे धर्म में क्या बाधा है ? और अन्य को पुण्य के कारण यह होता है, इसलिए वहाँ कहाँ धर्म हो गया ? ऐसा कहते हैं।

पुण्य-पाप दोनों संसार है... पुण्य से सामग्री देखकर भ्रमणा नहीं करना। पाप की प्रतिकूलता देखकर भ्रमणा में नहीं पड़ना कि यह क्या ? अरे! यह तो होता है, परन्तु उसमें है क्या ? आहाहा! क्षायिक समकिती श्रेणिक राजा, लो। बड़ा राजा। क्षायिक समकिती। तीर्थंकरगोत्र बाँधा। लड़का मार डालने आया लो। उनको कैद में डाला था, फिर छुड़ाने के लिये आया। स्वयं सिर पछाड़कर मर गये। वह तो चारित्र का-राग का भाव था, इसलिए हुआ। क्षायिक समकित को बाधा नहीं है। आहाहा! राग का भाग होता है। उतना द्वेष आया और देह छूट गयी। राग राग और कषाय ने कषाय का काम किया, समकित ने

समकित का काम किया। वह समकित और ज्ञान हुआ है, वह कहीं कार्य बिना रहे नहीं। उस काल में भी जानने-देखने और श्रद्धा करने का कार्य तो निरन्तर है। आहाहा!

अतः संसार से छूटकर मोक्ष हो, ऐसा उपाय करना। पुण्य-पाप को बाँधकर, पुण्य के फल को देखकर चमत्कार नहीं मानना। पाप का फल देखकर दीनता नहीं करना। आहाहा! **वर्तमान का भी विघ्न जैसा पंच परमेष्ठी के नाम, मन्त्र, ध्यान, दर्शन, स्मरण से मिटेगा, वैसा अन्य के नामादिक से तो नहीं मिटेगा, क्योंकि ये पंच परमेष्ठी ही शान्तिरूप हैं, केवल शुभ परिणामों ही के कारण हैं।** आहाहा! बदल-बदलकर भी बात वहाँ (लाते हैं)। शुभपरिणाम में वह निमित्तकारण है। अज्ञानी, राग-द्वेष, मोहवाले, वे शुभपरिणाम में भी कारण नहीं। उस जाति का कोई साधारण पुण्य हो, यह कहेंगे।

णवविहबंभं पयडहि अब्बंभं दसविहं पमोत्तूण।
मेहुणसण्णासत्तो भमिओ सि भवण्णवे भीमे॥९८॥

भावपाहुड़ की बात है।

अर्थ :- हे जीव! तू पहिले दस प्रकार का अब्रह्म है, उसको छोड़कर... आहाहा! विषय की वासना दस प्रकार से है, उसे छोड़। **नव प्रकार का ब्रह्मचर्य है, उसको प्रगट कर, भावों में प्रत्यक्ष कर।** आहाहा! भावशुद्धि का कारण... **यह उपदेश इसलिए दिया है कि तू मैथुनसंज्ञा जो कामसेवन की अभिलाषा उसमें आसक्त होकर अशुद्ध भावों से इस भीम (भयानक) संसाररूपी समुद्र में भ्रमण करता रहा।** आहाहा! यह विषय की वासना, भोग की वासना से चौरासी लाख (योनियों में) अनादि काल से भटक रहा है। आहाहा! इसलिए कहते हैं कि वह वासना छोड़ और ब्रह्मचर्य की भावना कर। यह भावशुद्धि का कारण है, ऐसा कहते हैं।

भावार्थ :- यह प्राणी मैथुनसंज्ञा में आसक्त होकर गृहस्थपना आदिक अनेक उपायों से स्त्री सेवनादिक अशुद्धभावों से अशुभ कार्यों में प्रवर्तता है,... लो। **अशुद्धभावों से अशुभ कार्यों में प्रवर्तता है,...** ऐसा। संसार में... **उससे इस भयानक संसारसमुद्र में भ्रमण करता है,...** आहाहा! विषयवासना, स्त्री आदि का सेवन, उसमें तीव्र विकारभाव दुःखरूप भाव सेवन कर चार गति में भ्रमण करता है। आहाहा! **अब्रह्म को छोड़कर नव प्रकार के ब्रह्मचर्य को अंगीकार करो।**

दस प्रकार का अब्रह्म ये है—१. पहिले तो स्त्री का चिन्तन होना,... स्त्री का चिन्तवन करना, वह भी अब्रह्म है। आहाहा! **२. पीछे देखने की चिन्ता होना, ३. पीछे नि:श्वास डालना,...** ऐसे श्वास डाले। **४. पीछे ज्वर होना,...** विषयवासना की तीव्रता से ज्वर-बुखार आवे। शरीर में उष्णता आवे। आहाहा! **५. पीछे दाह होना,...** शरीर में दाह हो। **६. पीछे काम की रुचि होना,...** विषय की रुचि। **७. पीछे मूर्च्छा होना,...** फिर विषय में मूर्छित हो जाये। **८. पीछे उन्माद होना,...** गहल-पागल भी हो जाये। आहाहा! **९. पीछे जीने का सन्देह होना...** जीवन का सन्देह हो जाये कि हाय... हाय...! इसमें तो मर जाऊँगा। **१०. पीछे मरण होना।** यह दस तो अब्रह्म हैं। आहाहा! यह भावपाहुड़ है न। अच्छे भाव करने के लिये ऐसे भाव छोड़। आहाहा!

नव प्रकार का ब्रह्मचर्य इस प्रकार है—नव कारणों से ब्रह्मचर्य बिगड़ता है, उनके नाम वे हैं—१. स्त्री को सेवन करने की अभिलाषा, २. स्त्री के अंग का स्पर्शन, ३. पुष्ट रस का सेवन,... पुष्ट रस (अर्थात्) दूधपाक और मैसूर का सेवन करे। वहाँ ब्रह्मचर्य बिगड़ता है। गरिष्ठ आहार होवे न। यह भस्म खाते हैं न? किसकी यह लोहे की, ताँबे की भस्म खाते हैं न? उसमें फिर विषय वक्र हो। **४. स्त्री के संसक्त वस्तु शय्या आदि का सेवन...** जो स्त्री जहाँ जिस स्थान में रही हो अथवा शैय्या आदि-पलंग आदि का सेवन, वह भी अब्रह्म का भाव है, ब्रह्मचर्य बिगड़ने का भाव है। **५. स्त्री के मुख, नेत्र आदिक को देखना, ६. स्त्री का सत्कार-पुरस्कार करना,...** बहुमान करना। उसका शरीर आदि सुन्दर देखकर बहुमान करना। वह सब ब्रह्मचर्य बिगाड़ने के लक्षण हैं। आहाहा!

७. पहिले किये हुए स्त्रीसेवन को याद करना,... पहले स्त्री का सेवन किया हो, उसे याद करना। वह वर्तमान (ब्रह्मचर्य को) बिगाड़ने का कारण है। आहाहा! **८. आगामी स्त्रीसेवन की अभिलाषा करना, ९. मनवांछित इष्ट विषयों का सेवन करना,...** मन को इच्छित इष्ट विषयों—रूप, गन्ध, रस, स्पर्श बहुत ऊँचे-ऊँचे सेवन करना। **ऐसे नव प्रकार हैं। इनका त्याग करना, सो नवभेदरूप ब्रह्मचर्य है अथवा मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमोदना से ब्रह्मचर्य का पालन करना...** नौ प्रकार यह लेना। **ऐसे करना, सो भी भाव शुद्ध होने का उपाय है।** लो! भाव शुद्ध होने का यह कारण है। साधारण बात

थी न। यह छोड़ दी थी। तब लोग अधिक थे न। अब तो ठण्डा पहर हुआ, यहाँ बाधा नहीं। सब चलता है।

आगे कहते हैं कि जो भावसहित मुनि है, सो आराधना के चतुष्क को पाता है, भाव बिना वह भी संसार में भ्रमण करता है :-

भावसहिदो य मुणिणो पावइ आराहणाचउक्कं च।
भावरहिदो य मुणिवर भमइ चिरं दीहसंसारे॥९९॥

अर्थ :- हे मुनिवर! जो भावसहित है... शुद्धभाव। **दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप ऐसी आराधना के चतुष्क को पाता है,...** जिसका भाव शुद्ध है, वह आत्मा के शुद्ध सम्यग्दर्शन, आत्मा का ज्ञान, आत्मा का चारित्र और आत्मा का तप, इन चार आराधनाओं को पाता है। लो। **वह मुनियों में प्रधान है और जो भावरहित मुनि है सो बहुत काल तक दीर्घसंसार में भ्रमण करता है।** जिसे शुद्धभाव का भान नहीं, अकेले क्रियाकाण्ड में है, वह तो चार गति में भटकता है। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)